Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

itized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGan

BHASHA

G.K.V.

in Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hari

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113550

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

COMPILED

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

70218

COMPILED

सत्यमेव जयते

[illegible] १९८४-१९८५

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् - ऋवे०

भाषा

त्रै मा सि क

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

शिक्षा-मंत्रालय ● भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113550
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
113550

अनुक्रम

हिंदी भाषा की समस्याएँ

- ज्ञान के विकास में भाषा का स्थान . नंदलाल सिंह 9
- आधुनिक पंजाबी साहित्य में शब्द निर्माण की समस्या प्रेमप्रकाश सिंह 13
  अनु० आशानंद वोहरा
- हिंदी की समस्याएँ . . . वीरेंद्रकुमार श्रीवास्तव 22
- हिंदी और कन्नड़ : कुछ समस्याएँ . सोमशेखर 'सोम' 26

भाषा और व्याकरण

- 'ऋ' स्वर और उसका व्याकरण . बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' 33
- आधुनिक ब्रज भाषा में संयुक्त क्रियाओं का स्वरूप . अंबाप्रसाद 'सुमन' 40
- हिंदी के विशिष्ट विभक्ति-प्रयोग : पुनर्विचार विश्वनाथ अय्यर 50
- भाषा के प्राण : मुहावरे और कहावतें . सुरेंद्र शुक्ल 60

शब्द-श्री

- वैदिक शब्द और उनका यथार्थ परिचय . सूर्यनारायण व्यास 67
- हिंदी 'आप' की व्युत्पत्ति . . भोलानाथ तिवारी 72
  अनु० अजीतलाल गुलाटी
- पौधों में नामकरण . . . प्रेमानंद चंदोला 75
- मालवी भाषा और उसके शब्दों में बहुरूपता संतोष व्यास 79

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुट विचार

- संवैधानिक भाषा नीति : हिंदी के प्रति भ्रम — सीताराम शास्त्री 85
- भारत में भाषा-समस्या . . — विद्या मिश्र 89
- पंजाबी हिंदी . . . — कृष्णकुमार गुप्त 94
- हिंदी में उच्चारण के अनुसार लेखन की समस्या — कृष्ण विकल 97

द्वभा

- शिक्षा और राष्ट्रभाषा (कविता) . — मैथिलीशरण गुप्त 102
  मराठी अनुवाद : प्रभाकर माचवे
- नई ताकत (कहानी) . — दवन गुप्त 106
  गुजराती अनु: मनहर चौहान

स्रोतस्विनी

- अप्रत्याशित अंत (तमिल-नाटक) . — पी० संबंध मुदलियार 116
  हिंदी अनु० : जमुना
- गाणें (मराठी कविता) . . — मंगेश पाडगाँवकर 148
  हिंदी अनु० : दिनकर सोनवलकर

सरकारी कामकाज में हिंदी 152

भारतीय भाषाविद्

- डॉ० मोनियर विलियम्स . . — जे० एच० आनंद 158

भारतीय साहित्य

- कबीर की काव्य-भाषा का आधार रूप . — रामस्वरूप चतुर्वेदी 165
- दो पत्र : एक अध्ययन . . — का० शं० कलकर 170
- आधुनिक असमिया कहानी . . — नवारुण 174
- मैथिलीशरण गुप्त: एक श्रद्धांजलि . — रामश्वर गुरू 177

निकष — बिहारीलाल व्यास; सुरन्द्र सिन्हा; जगदीश चतुर्वेदी 182

हिंदी पाठ — नरेन्द्र व्यास 189

लेखक परिचय 199

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवंगत राष्ट्रकवि के प्रति श्रद्धांजलि

भारतीय संस्कृति के अमर गायक तथा आधुनिक काव्य के उन्नायक 'दद्दा मैथिलीशरण गुप्त के निधन से खड़ी बोली तथा हिंदी कविता को जो अपार क्षति हुई है, उसकी पूर्ति असंभव है। इस सदी के प्रारंभ से मृत्युपर्यंत गुप्त जी साहित्य-सेवा में रत रहे। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला और उनके समाधान सुझाए।

उनके द्वारा प्रसूत काव्य में भारत की अधिष्ठात्री भारती के प्रति अनन्य अनुराग परिलक्षित होता है। यथा—

'हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।'

इसी आशय को आधार मानकर गुप्त जी ने भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का समन्वय किया है। यह समन्वय भारतीय संस्कृति की गरिमा से संश्लिष्ट है। समाज की विविध समस्याओं पर लिखी कविताएँ करुणार्द्र हैं। समाज की स्वर्णिम कल्पना सर्वोदयी विचारधारा से अनुप्राणित है। उनकी प्रारंभिक कृति 'भारत-भारती' मर्मज्ञों और चिंतकों के लिए प्रेरणास्पद रही है।

गुप्त जी के प्रारंभिक काव्य में आह्वान् का युग-सापेक्ष स्वर है। बाद की रचनाओं में उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया, रत्नावली आदि अभिनव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणोपेत चरित्रों की सृष्टि है। इनके प्रति विशेष संदर्भों में प्रकटित संवेदना आगे चल कर धार्मिक सहिष्णुता के व्यापक क्षेत्र का वरण करती है, जो हम्मद साहब, ईसा, बुद्ध तथा सिक्ख गुरुओं के संवध में रचित काव्य में प्रस्फुटित होती है।

भारत के विभिन्न संप्रदायों के बीच ही नहीं, पूर्व और पश्चिम, प्राचीन और नवीन सब के बीच विषमता का विलय और एकता-समता का उद्रेक गुप्त जी की वाणी का भास्वर छंद है।

उनकी रचनाओं में खड़ी बोली काव्य की अभूतपूर्व संभावनाओं का दर्शन होता है और उसका क्रमिक विकास लक्षित होता है

गुप्त जी अंतिम क्षण तक काव्य-साधना में लीन रहे। 12 दिसंबर, 1964 को उनकी मृत्यु से हिंदी काव्य का प्रकाश स्तंभ बुझ गया।

हम 'भाषा' परिवार की ओर से उनकी दिवंगत आत्मा की शांति की कामना करते हैं और श्रद्धावनत होकर संकल्प करते हैं कि हिंदी सेवा और विकास में हम अनवरत लगे रहेंगे। सारे देश में अनंत काल तक उनकी भारती गूंजती रहे।

'भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी भाषा की समस्याएँ

ज्ञान के विकास में भाषा का स्थान

आधुनिक पंजाबी साहित्य में शब्द निर्माण की समस्या

हिंदी की समस्याएँ

हिंदी और कन्नड़ : कुछ समस्याएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान के विकास में भाषा का स्थान

नंदलाल सिंह

मनुष्य जीवन के प्रारंभ काल से अंत समय तक कुछ न कुछ जानकारी प्राप्त करने में संलग्न रहता है। शैशव काल में माता की गोद और पालने में वह सीमित वस्तुओं और घर में पड़े खिलौनों तथा परिवार के लोगों को पहचानता है। वाणी स्फुट होने पर उनका नाम-संबंध माँ की बोली में उच्चारण करने लगता हैं। बालपन में उसे अक्षरों से परिचित कराया जाता है। उसकी जानकारी घर, बाहर तथा स्कूल में होती है। इस अवस्था में उसे प्रत्येक वस्तुओं की जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता होती है। स्कूल में उसकी वास्तविक शिक्षा प्रारंभ होती है। वह अब अपने मस्तिष्क से भी काम लेना प्रारंभ करता है। अक्षर, शब्द, वाक्य, अंक आदि का वह उपयोग करना सीखता है। शिक्षा-प्रणाली के अनुसार उसे मातृभाषा का व्याकरण, गणित, भूगोल, इतिहास आदि का बोध कराया जाता है। यह बालक के विकास की अवस्था होती है, और विभिन्न विषयों के प्रति जैसी रुचि उसके मन में पैदा की जाती है उसी के अनुरूप वह आगे बढ़ता है। यह प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा संपूर्ण जीवन की आधार-शिला होती है। विषयों में रुचि पैदा करना शिक्षकों पर निर्भर करता है। अच्छा शिक्षक किसी भी विषय को मनोरंजक बना सकता है। बालक में अपने गुण और चारित्र्य ढाल सकता है। बालक के स्वच्छ मस्तिष्क-पटल पर माता-पिता, भाई-बंधु की अपेक्षा गुरु के गुण, स्वभाव और चारित्र्य का प्रभाव अधिक पड़ता है। अपने देश में जहाँ कुछ ही माता-पिता शिक्षित हैं, विद्यार्थियों का जीवन शिक्षकों पर विशेष रूप से आश्रित है। हम यहाँ एसे शिक्षकों की चर्चा कर रहे हैं जो अपने-विषयों के पंडित हैं, और विद्यार्थियों को तन्मय होकर पढ़ाते हैं। जिनका चरित्र-बल ऊँचा है और जो अपने पांडित्य की छाप विद्यार्थी पर डाल कर विषय को रुचिकर बना सकते हैं। ऐसे आदर्श शिक्षक के होते हुए भी कक्षा के सभी विद्यार्थी एक समान नहीं पाए जाते। किसी में कुछ विषयों के प्रति रुचि बढ़ती है और किसी में कुछ अन्य विषयों के प्रति। किसी का मन गणित में लग जाता है तो किसी का साहित्य में। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए उठता है और उसी विषयों को चुनता है जिसमें उसे रुचि पैदा हुई है, अथवा जो विषय उसे आर्थिक दृष्टि से लाभकर प्रतीत होता है। यदि उसने रुचिकर विषय लिया तो सफलता निश्चित होती है अन्यथा संदेहात्मक।

2—7 CHD/64
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यही उसके मानसिक विकास का स्वाभाविक क्रम है जिससे वह अपने प्रारंभिक स्तर से उठता हुआ स्वस्थ नागरिक बनता है। अपने चरित्र से समाज की सेवा में संलग्न होता है। वस्तुत: ज्ञान चारित्र्य के लिए दिया जाता है। ज्ञान साधन है और चारित्र्य साध्य। यदि शिक्षा से विद्यार्थी का चरित्र बन सका तो शिक्षा का उद्देश्य पूरा समझना चाहिए अन्यथा नहीं। शिक्षा का उद्देश्य उसे मनुष्य बनाना है। जिस शिक्षा से त्रिविध--आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है वही वास्तविक शिक्षा या विद्या है। हर देश की पूरी शिक्षा उसे तरक्की की ओर ले जाने वाली होनी चाहिए, अर्थात् शिक्षा के साथ राष्ट्रीयता का विकास अनिवार्य है। इस लक्ष्य से वही शिक्षा हृदयंगम होती है जो मातृभाषा में दी जाती है।

अब हमें यह देखना है कि आधुनिक शिक्षा से कितनी उन्नति हो रही है। डिगरियाँ प्राप्त कर किस प्रकार के विद्यार्थी निकल रहे हैं और देश इस प्रकार की शिक्षा से कितना सबल हो रहा है। गांधी जी कहते थे कि "मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारे कालेजों में जो शिक्षा दी जाती है वह बिल्कुल फजूल है। उससे शिक्षितों में बेकारी फैलने के अलावा कुछ नहीं होता"। इसका कारण महात्मा जी विदेशी भाषा बताते थे। वास्तव में, शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होने से विद्यार्थियों को विद्या हृदयंगम नहीं होती। शिक्षा-प्रणाली के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों को रटकर परीक्षा पास कर डिगरियाँ प्राप्त कर लेना कठिन नहीं; किंतु वास्तविक ज्ञान न होने से ये तोता रटंत जीवन में उन्नति नहीं कर पाते। इससे राष्ट्र की कितनी बौद्धिक और नैतिक हानि होती है, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। वास्तविक शिक्षा विदेशी भाषा के माध्यम से संभव नहीं क्योंकि वही फलवती होती है जो अंतर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास कर सके। विदेशी भाषा के माध्यम से हमारा मस्तिष्क भूखा रह जाता है। शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही सर्वोत्तम ढंग से हो सकती है।

भारत जैसे विशाल देश में 14 भाषाएँ हैं और अनेक बोलियाँ (dialects) बोली जाती हैं। विभिन्न भागों की मातृभाषाएँ भिन्न हैं। प्रारंभिक शिक्षा तो मातृ-भाषा में होनी चाहिए, किंतु उच्च शिक्षा देश की एक सर्वमान्य भाषा, राष्ट्रभाषा, में होनी चाहिए। हिंदी देश की राष्ट्रभाषा मान्य हो गई है, कारण कि देश की अधिक जनसंख्या इसे बोल सकती है और इसमें लिख-पढ़ सकती है। साथ ही हिंदी, गुजराती, मराठी की लिपि एक होने से गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के निवासी इसका अभ्यास उसी प्रकार सुगमता से कर सकते हैं जैसे हिंदी भाषी प्रांत उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और पंजाब की जनता करती है। एक बात ध्यान में रखनी है कि इन प्रांतों की बोलियाँ (dialects) लिखित हिंदी भाषा से भिन्न हैं। हिंदी पढ़ने और लिखने के लिए इन प्रांतों के निवासियों को अन्य प्रांत के लोगों की अपेक्षा कम परिश्रम नहीं करना पड़ता। जब तक ये लोग भी पाठ्यक्रम के अनुसार व्याकरण और साहित्य का अध्ययन नहीं करते तब तक वे न तो शुद्ध बोलना सीखते हैं और न शुद्ध लिखना। अत: दूसरे प्रांत के लोगों का यह विचार कि हिंदी इन्हीं प्रांतों की मातृभाषा है और इन लोगों को राष्ट्रभाषा हिंदी होने से सुविधा है, असंगत जान पड़ता है। अन्य प्रदेशों की भाषा-लिपि यद्यपि भिन्न है, किंतु उनका भी विकास संस्कृत से हुआ है। अत: संस्कृत और हिंदी के द्वारा राष्ट्रीय एकता संभव है। इसी कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी को राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित किया गया; किंतु राजनीति के क्षुद्र विचारों को उन्मुख कर आज हिंदी के प्रति विरोध खड़ा किया गया है जिसके कारण राष्ट्रीय एकता को खतरा है। साथ ही हिंदी-प्रेमी हिंदी की पूर्ण सेवा न कर आंदोलन करने लगे हैं जिससे प्रादेशिक अंतर बढ़ता जा रहा है और अभी तक हिंदी पूर्णरूप से प्रतिष्ठित नहीं हो सकी है। राष्ट्र खंडित न हो और हमारी एकता बनी रहे। एकता के लिए राष्ट्र की एक भाषा का होना नितांत आवश्यक है ताकि सुदूरवर्ती प्रदेशों के निवासी एक दूसरे से बातचीत कर सकें, एक दूसरे को समझ सकें और ज्ञान का आदान-प्रदान कर सकें।

अँग्रेज़ी के प्रति हमें कोई बैर नहीं। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का साहित्य अँग्रेज़ी में है। हमें उस साहित्य से लाभ उठाना है, किंतु जैसे फ्रांस, जर्मनी, हालैंड, इटली के लोग उच्च स्तर पर पहुँच कर अँग्रेज़ी सीखते हैं वैसे ही हम भी अँग्रेज़ी सीख सकते हैं। यूरोप के विभिन्न देशों में जाने पर पता चलता है कि कुछ इने-गिने लोगों को छोड़कर सभी अपनी राष्ट्रभाषा में बातचीत करते हैं। यदि आप अँग्रेज़ी में बात करें तो वे अवाक् रहते हैं। हमारे कुछ साथियों को तो लज्जित भी होना पड़ा जब कि उनसे पूछा गया कि वे अपनी राष्ट्रभाषा में पूछताछ क्यों नहीं करते। यह राष्ट्रभाषा के प्रति सच्चा प्रेम और अभिमान है।

मैं तो स्वयं अँग्रेज़ी हटाने के पक्ष में नहीं, यदि हम इसी का प्रचार जनता तक कर सकें, किंतु यह संभव नहीं। यद्यपि अँग्रेज़ी सीमित जनसंख्या द्वारा ही बोली-समझी जाती रही, किंतु इसी के द्वारा हमारे बीच राष्ट्रीय भावना आई। यदि हम अपने नेताओं की जीवनियों पर ध्यान दें तो स्वयं इस बात को मान लेंगे। यदि हम राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास को पढ़ें तो समझ सकते हैं कि विभिन्न प्रदेशों को एकत्र करने और उनमें राष्ट्रीय भावना जागृत करने के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों में भाषण अँग्रेज़ी ही में होते थे। हमारे विज्ञान का तो संपूर्ण इतिहास और साहित्य अँग्रेज़ी में हैं; किंतु हम इसे जन-भाषा नहीं बना सकते और जबतक देश में विज्ञान की शिक्षा जनता की भाषा में नहीं होती देश की उन्नति नहीं हो सकती। अँग्रेज़ी में राम, कृष्ण, बुद्ध का जीवन पढ़ने से, कांग्रेस का इतिहास अँग्रेजी में पढ़ने से, हम अपनी भारतीय संस्कृति नहीं छोड़ सकते। हाँ, विदेशी संस्कृति अपनाने से, उनका रहन-सहन, उनका सामाजिक विचार भाव ग्रहण करने से, और अपनी संस्कृति भुलाने और उसे हीनता की दृष्टि से देखने से अवश्य भारतीय संस्कृति भूल सकते हैं। भाषा और ज्ञान में दोष नहीं होता, दोष तो हमारे हृदय से उत्पन्न होता है और वह मानसिक पटल पर प्रभाव डालता है। जब हमारे मन में अपनी संस्कृति, वेश-भूषा, खान-पान आदि के प्रति उदासीनता होगी, हृदय में संस्कृति के लिए स्थान नहीं होगा तब चाहे हम अँग्रेज़ी पढ़ें या न पढ़ें अन्य संस्कृति स्वतः आ बैठेगी। हम अँग्रेज़ी भाषा के ऋणी हैं और विज्ञान संबंधी ज्ञान के लिए शायद बराबर रहेंगे। हमें अँग्रेज़ी भाषा से घृणा नहीं किंतु शिक्षा प्रचार के लिए विज्ञान को साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए अपने देश की भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना ही है। जब तक हमारी जनता शिक्षित नहीं होगी और विज्ञान का प्रसार जनता में नहीं होगा तब तक हमारा देश उन्नति नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज संसार की संस्कृति वैज्ञानिक संस्कृति है। विज्ञान ने "वसुधैव कुटुंबकम्" चरितार्थ कर भूमंडल को हस्तामलक-सा बना दिया है फिर आगे बढ़कर ग्रह, उपग्रह, एवं नक्षत्रमंडल नापने में भी सफलता हो रही है।

इस वैज्ञानिक युग में अपने देश की स्थिति 400 वर्ष पुराने यूरोप की 16वीं शताब्दी जैसी दिखाई पड़ती है। हमारे यहाँ आज भी वैसा ही अंधविश्वास फैला हुआ है। जादू, टोना, इंद्रजाल पर हमें आज भी विश्वास है। विज्ञान का प्रचार इस बड़े देश में कुछ पढ़े-लिखे लोगों के द्वारा नहीं हो सकता। वैज्ञानिक सिद्धांतों को अपनाने और नियमों से लाभ उठाने के लिए हमें सारी जनता की मनोवृत्ति बदलने का भागीरथ प्रयत्न करना होगा और इसमें हमारी सफलता देश की भाषा द्वारा ही हो सकती है। रूढ़िवाद को हटाए बिना कोई भी समाज वैज्ञानिक मनोवृत्ति नहीं बना सकता। विज्ञान के विद्यार्थियों को चाहिए कि पहले वे ही स्वयं एसी मनोवृत्ति अपनावे और फिर साधारण जनता की भाषा में उसका प्रचार करें। विज्ञान सार्वभौमिक ज्ञान है। यह सत्य पर आधारित है। इसके लिए न देश भेद है और न वर्ण भेद। यद्यपि इसका जन्म यूरोप में हुआ किंतु यह न तो अंग्रेज़ी का है और न किसी अन्य देश वालों का। जो देश वैज्ञानिक मनोवृत्ति जिस अंश तक अपना सका उस देश की उन्नति उतनी ही हुई। हमें तो सभी देशों की भाषाओं से ज्ञान लेना है और उसे अपने देश की भाषा में परिणत कर जनता तक पहुँचाना है। अपनी ही भाषा में विज्ञान का प्रचार सुलभ है। हम अपनी ही बोली में अपने बच्चों के मन में विज्ञान के प्रति रुचि पैदा कर सकते हैं। विज्ञान की भाषा निराली होती है। विज्ञान का साहित्य अन्य साहित्यों से भिन्न होता है। यदि कोई व्यक्ति विज्ञान के सिद्धांतों से परिचित हो और दूसरी भाषा की थोड़ी भी जानकारी हो तो अन्य भाषा में लिखा हुआ लेख वह समझ सकता है, क्योंकि विज्ञान के संकेत सभी देशों में एक ही माने गए हैं।

आज राष्ट्रभाषा के प्रश्न को लेकर देश में विभिन्न राग अलापे जा रहे हैं। कहीं संविधान की प्रतियाँ जलाई जा रही हैं, कहीं पारिभाषिक शब्दों को लेकर हिंदी का मज़ाक उड़ाया जा रहा है। देश के शिक्षाशास्त्री और शिक्षा संस्थाओं के कर्णधार भी एकमत नहीं। शिक्षा संबंधी अनेक प्रयोग हो रहे हैं जिससे राष्ट्र की शक्ति क्षीण हो रही है और भावी नागरिकों की दशा दयनीय होती जा रही हैं। यह हमारी अस्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक है। प्रगति का ढिंढोरा पीटने से जन-मानस नहीं उठता। उसके लिए एकाभिमुखी संकल्प और मनोबल की आवश्यकता है; वही मनोबल जिसके शुभ उदय से हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की प्रेरणा मिली, किंतु जो दुर्भाग्यवश संकीर्णता और राजनीति के दलदल में फँसा झींक रहा है। उसे उठा कर ठीक दिशा देनी है जिससे राष्ट्र की उन्नति के लिए सभी कपाट खुल जाएँ और भारती के इस पुण्यभवन में ज्ञान की वायु स्वच्छता से प्रवेश पा सके। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक पंजाबी साहित्य में शब्द-निर्माण की समस्या

प्रेमप्रकाश सिंह

आधुनिक पंजाबी साहित्य का यह काल एक जागरण काल है। इसके प्रत्येक अंग उपांग में एक जागृति विद्यमान है। क्या सिद्धांत, क्या अनुभूतियाँ, क्या भाषा, हर स्थान पर नवीन चेतना दृष्टिगत होती है। इस जागृति के फलस्वरूप आधुनिक पंजाबी साहित्य का आंतरिक पक्ष काफी विकसित हो रहा है। परंतु इसका बाह्य पक्ष अपने आंतरिक पक्ष के समकक्ष होने में अभी असमर्थ है। आंतरिक पक्ष से हमारा भाव 'भाव पक्ष' या 'अनुभूति पक्ष' से है जिसे भारतीय समीक्षकों ने 'आत्मा' कहा है और बाह्य पक्ष से तात्पर्य है 'शैली पक्ष' या 'अभिव्यक्ति पक्ष' जिसे आचार्यों ने 'शरीर' या 'देह' कहा है। साहित्य का आंतरिक पक्ष तभी परिपूर्णता को प्राप्त होता है जब इसका प्रतिरूप बाह्य पक्ष भी शक्तिसंपन्न और समकक्ष हो। दोनों के संतुलन में ही सुन्दर और कल्याणकारी साहित्य का उदय हो सकता है। एक भारतीय समीक्षक का कथन है कि 'सुंदरी का सुंदर मुख यदि बिना श्रृंगार के ही रह जाए तो पूरा प्रभाव नहीं दे सकता, प्रभाव के लिए योग्य अलंकार और श्रृंगार की भी आवश्यकता है'। इस रूपक से हमारे कथन की पुष्टि अवश्य होती है कि साहित्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों को शक्ति संपन्न, समर्थ, चमत्कारी और सार्थक बनाने की आवश्यकता है।

आज के पंजाबी साहित्य के समक्ष अनुभूति या भाव पक्ष की समस्या अभी कुछ कम है, परंतु अभिव्यक्ति या शैली पक्ष की समस्या सचमुच ही प्रबल है। शैली क्या है? स्थूल शब्दों में भाषा ही है। शैली में अलंकार, स्वर, लय, छंद, रीति, वृत्ति, गुण सभी तत्व आ जाते हैं, परंतु इनका मूल्यांकन या समावेश तब ही संभव है जब इनकी आधार रूप भाषा की नींव स्थिर हो। इसलिए आधुनिक पंजाबी साहित्य में भाषा की समस्या दर्शनीय है। जिसमें शब्द निर्माण की समस्या भी संमिलित है, क्योंकि अंततः शब्दों का समूह ही तो भाषा है।

शब्द निर्माण की विशिष्ट समस्या को देखने और समाधान प्रस्तुत करने से पूर्व वैसे यह न्याय संगत बात प्रतीत होती है कि विशाल स्तर से सामूहिक भाषा की समस्या देखी जाए। इसलिए आधुनिक पंजाबी साहित्य के संमुख पंजाबी भाषा से संबंधित क्या समस्याएँ हैं, इस पर पहले विचार किया जाए। इन शब्दों के लेखक के विचारानुसार साहित्यिक पंजाबी भाषा की निम्नलिखित समस्याएँ हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1—पंजाबी भाषा का मूल स्रोत किस क्लासीकल भाषा को माना जाए ?

2—वर्तमान बोली जाने वाली पंजाबी भाषा के अस्त व्यस्त शब्दों को कैसे शुद्ध (Refined) संस्कृत और उपयोगी अर्थ दिए जाएँ।

3—प्रयुक्त होने वाले या उधार लिए गए शब्दों को कैसे ठीक प्रयोग में लाया जाए।

4—प्रत्येक लेखक के साथ परिवर्तित शब्दों की वर्तनी में कैसे एकरूपता उत्पन्न की जाए ?

5—जब किसी नए विचार-भाव के लिए शब्द की आवश्यकता पड़े तब उसकी कहाँ से प्राप्ति की जाए ?

6—पाकिस्तानी पंजाबी और भारतीय पंजाबी में कैसे ताल-मेल और एकसारता स्थापित की जाए ?

पंजाबी भाषा के समक्ष ये उपरोक्त छः महान और जटिल समस्याएँ हैं। जहाँ तक पहली समस्या का संबंध है, यह बात प्रमाणित है कि हर उस भाषा को जो उन्नति के पथ पर उन्मुख हो, यह निश्चय करना आवश्यक होता है कि वह अपनी बढ़ रही आवश्यकताओं के लिए किस क्लासीकल भाषा के साथ संबंध स्थापित करे, हर आधुनिक भाषा को ऐसा करना पड़ता है। हमारे ज्ञान में उर्दू, हिंदी, अँग्रेज़ी भाषाएँ हैं। उर्दू ने अपना मूल स्रोत फारसी और अरबी को स्वीकार किया। हिंदी (उत्तर भारत की सभी बोलियों) ने संस्कृत और अँग्रेज़ी ने लेटिन ग्रीक को। ऐसी क्लासीकल बोलियों से जहाँ सीधे शब्द ग्रहण किए जा सकते हैं, वहाँ (Root) लेकर नए शब्द भी बनाए जा सकते हैं। पंजाबी साहित्य के माध्यम के तौर पर पंजाबी भाषा के लिए यह निर्णय शीघ्र होना चाहिए। पंजाबी की जननी संस्कृत भाषा है, यह ऐतिहासिक तथ्य है, परंतु मध्यकालीन साहित्य सृजन के समय इसे फारसी ने अत्यंत प्रभावित किया। इस प्रकार संस्कृत का जननी रूप विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया और फारसी निकटवर्ती धात्री बनी। अब देखना यह है कि मूल स्रोत के रूप में किसे स्वीकार किया जाए। पिछले पंद्रह-बीस वर्षों की साहित्यिक गतिविधियों से तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नए शब्दों की आवश्यकता के समय अधिकतर साहित्यकार संस्कृत के शब्दों को, चाहे वे अशुद्ध ही क्यों न हों, ग्रहण करते रहे हैं। परंतु अभी इसे एक सिद्धांत के रूप में ग्रहण नहीं किया गया। सरलता और सुगमता के नारों ने इस निर्णय को अनिर्णीत रखा हुआ है।

दूसरी समस्या के विषय में यदि ध्यान से देखा जाए तो विदित होता है कि पंजाबी प्रदेश में अनेकों शब्द ऐसे बोले जा रहे हैं, जो अभी पंजाबी भारती (भाषा) के मंदिर में प्रवेश नहीं पा सके। अच्छे अच्छे लेखक उन्हें लिखने और प्रयोग करने से संकोच करते हैं। यह बात निर्णय करने योग्य है कि क्या वास्तव में ऐसे शब्दों को प्रयुक्त करने वाला साहित्यकार असाहित्यिक या असभ्य होगा या भाषा निर्माता ? 'छड़े' शब्द को ही लें। इसका सर्व प्रचलित अर्थ है अविवाहित। इस अर्थ के कारण 'छड़ा' शब्द एक पारिभाषिक शब्द बनता है। परंतु इसके सामान्य अर्थ भी हैं, जैसे कि 'अकेला' (Single), एकाकी, केवल एक, आदि आदि। प्रि० सेखों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले पहल परवर्ती अर्थों में इस शब्द को छोटी कहानियों में प्रयुक्त किया । अब वह परंपरा रुक गई है । इस शब्द को अभी असंस्कृत, असभ्य, अशिष्ट समझा जाता है । आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे शब्द समूह को ख्याति प्राप्त लेखक प्रयुक्त करें और सभ्यता की सीमा में ले आएँ ।

एक रेडियो वार्ता में मैंने शब्द निर्माण की पद्धतियों की गणना की थी । जिसमें से एक थी अनुश्रुति मूलक पद्धति । इसका भाव था कि कई सज्जन कोई शब्द सुन सुना लेते हैं, परंतु मूल और सही अर्थ से अनभिज्ञ होकर भी अशुद्ध प्रयोग करते रहते हैं जिससे अशुद्धि पर अशुद्धि होती रहती है । आधुनिक पंजाबी साहित्य में इसके अनंत उदाहरण मिलते हैं । 'प्रतिष्ट' (प्रतिष्ठ) शब्द मुझे बहुत खलता है । प्रयुक्त करने वाले का भाव मान्य योग्य या आदर योग्य है । प्रतिष्ठ सज्जन अर्थात् (Distinguished guest)। परंतु शब्द का सत्यानाश हो गया है । मूल संज्ञा शब्द है प्रतिष्ठा (प्रति+स्था) जिससे विशेषण रूप में भूत कृदंत बनता है प्रतिष्ठित । लेखक प्रतिष्ठित का अर्थ लेना चाहते हैं । परंतु 'प्रतिष्ट' में न तो मूल रहा और न ही कोई सिद्धांत दिखाई देता है जिससे यह पंजाबी की ठेठता के अनुकूल हो । एक काफी समय से प्रचलित उदाहरण लेते हैं । पंजाबी में व्याकरणों में लिखते हैं 'कारदंतक' । यह 'कारदंतक' (Primary suffix) होता है । वास्तविक रूप है 'कृदन्त' (कृत् + अन्त) परंतु पता नहीं किस प्रभावाधीन यह विचार उत्पन्न हुआ था । यह तीसरी समस्या की व्याख्या है ।

चौथी समस्या वर्तनी (Spellings) की है । मूल शब्दों में दो तरह से विकार या तद्भवीकरण होता है । या ऐसे कहें कि पंजाबी के शब्दों में स्पेलिंग की विभिन्नता के दो कारण हैं, एक अज्ञान और दूसरा अनुकूल्य । अज्ञान के निष्कर्ष स्वरूप मूल शब्द में परिवर्तन होगा, वहाँ अर्थ के अनर्थ होने का भय है; परंतु जहाँ जानते हुए पंजाबी की ठेठता के अनुरूप ढालने के लिए वर्तनी में परिवर्तन किया जाता है वहाँ आत्मा स्थिर रहती है । मुझे एक उदाहरण याद है । अभी-अभी एक पुस्तक के आरंभ में भूमिका के स्थान पर 'प्राकथन' शब्द प्रयुक्त देखा । वास्तव में यहाँ नए शब्द के प्रयोग का लोभ है । संस्कृत हिंदी की पुस्तकों में 'प्राक्कथन' होता है । पहला 'क' हलंत होने के कारण कई बार यह दूसरे 'क' के साथ देवनागरी में जुड़ा रहता है । इस संयोग का पंजाबीकरण किया गया और 'प्राकथन' बना लिया । 'प्राक्' का अर्थ है पूर्व, पहला, प्राचीन, और प्राकथन का अर्थ हुआ पूर्व कथन (Fore Wording) । परंतु 'प्रा' एक उपसर्ग है अवश्य, परंतु यहाँ निरर्थक है । यह प्रथम प्रकार का उदाहरण है । जहाँ ज्ञान वश तद्भवीकरण हो वहाँ अनर्थ नहीं होता । हाँ, स्वर ध्वनि में अंतर पड़ सकता है ।

पाँचवी समस्या है कि आवश्यकता पूर्ति के लिए कौन से माध्यम अपनाए जाएँ । क्या नए विचारों को प्रकट करने के लिए नए शब्द हू-बहू तत्सम संस्कृत या फारसी के ले लिए जाएँ या पंजाबी की Floating vocabulary में से खोज की जाए ? या फिर तत्सम शब्दों को थोड़े घने अंश में तद्भव बनाया जाए ? यह समस्या देखने में छोटी प्रतीत होती है । परंतु समाधान के लिए जटिल और ग्रंथिल है । इसके समाधान में शब्द निर्माण की समस्या सुलझती है । इस समय तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस ओर किसी एजेंसी की ओर से कोई सिद्धांत नहीं, मन मरज़ी चलती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रत्येक शब्द के लिए पृथक सिद्धांत है । एक हफड़ा-तफड़ी है, गड़बड़-झाला है । प्रामाणिक भाषाएँ किसी सिद्धांत पर चलती हैं । प्रामाणिक सिद्धांत बनाने चाहिएँ । यों अपवाद भी होंगे । पाणिनि को भी अष्टाध्यायी बनाते समय काफी अपवाद रखने पड़े हैं । यह समस्या तथा पहली समस्या पारस्परिक संबंधित समस्याएँ हैं । इसका विस्तृत विवेचन आगामी पृष्ठों में करेंगे ।

छठी समस्या पाकिस्तानी पंजाबी और भारतीय पंजाबी के दिन प्रतिदिन बढ़ रहे अंतर की है । यह खेदजनक बात है कि एक ही भाषा दो पड़ोसी क्षेत्रों में पृथक-पृथक रूप में पनपने लगी । क्या अँग्रेज़ी यूरोप के अतिरिक्त एशिया के देशों में द्विदेशीय पंजाबी की भाँति पृथक होने की संभावना रखती है ? कदाचित् नहीं । चाहे अँग्रेजी उच्चारण में स्थानीय अंतर हो, परंतु भाषा के शरीर में बिल्कुल अंतर नहीं आया और न ही आएगा । परंतु यह द्विदेशीय पंजाबी खेदजनक अंतर आरंभ कर रही है । मेरे समक्ष लाहौर से उर्दू अक्षरों में प्रकाशित मासिक पत्र 'पंज दरिया' की प्रतियाँ पड़ी हैं । पढ़ने से पता लगता है कि हम अभी आरंभिक शब्दों में भी समान नहीं । हमने 'साहित' 'साहितक' प्रचलित कर लिया है । वहाँ 'अदब', 'अदबी' ही चल रहा है । यहाँ 'संखेप इतिहास' वहाँ 'मुखतिसर तारीख' । यहाँ 'आलोचना' वहाँ 'तनकीद' । विशेष कर आलोचना साहित्य में अंतर बहुत बढ़ रहा है ।

अब तक हम पंजाबी भाषा की सामान्य समस्याओं पर विचार कर रहे थे । अब हम इसकी एक प्रमुख समस्या के विषय में सविस्तार विचार करेंगे । उपरोक्त भाषा की पीठिका के प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि 'शब्द' की समस्या ही भाषा की समस्या है और भाषा की समस्या ही 'शब्द' की समस्या है । ये दोनों परस्पर अभिन्न हैं । क्योंकि भाषा के मूर्तिमंत रूपक आधार शब्द हैं । इसलिए शब्दों के रूप से उच्चारण की समस्या भाषा की समस्या बन जाती है ।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने शब्दों की महिमा का बहुत गायन किया है । शब्द ही ब्रह्म है, शब्द ही इच्छाओं की पूर्ति करने वाला है और शब्द नित्य और अविनाशी है । वैसे देखा जाए तो काव्य या साहित्य का आधार शब्द ही है । इसलिए सुंदर, श्रुतिमधुर शब्दों का शुद्ध प्रयोग उत्तम साहित्य के लिए बहुत ही आवश्यक है । आधुनिक पंजाबी साहित्य के समक्ष यही गंभीर समस्या है कि पंजाबी साहित्य में प्रविष्ट हो रहे विचारों, भावों, अनुभूतियों, संकल्पनाओं, सिद्धांतों, अर्थात् शब्दों की शंकाओं को शुद्ध रूप में प्रकट करने के लिए शब्दों का निर्माण कैसे किया जाए, निर्मिति या संरचना कैसे की जाए, ताकि बोली के चौखटे में कोई भाषा संबंधी उपद्रव भी न घटित हो और उचित समर्थता और शुद्धता भी स्थिर रहे ।

अब हम ज्ञान, विज्ञान और साहित्य के लिए पंजाबी भाषा का माध्यम अपना रहे हैं । हमारे पास जो प्रचलित शब्द मौजूद हैं वे बहुत थोड़े हैं । हमारे पास कुछ कृषि संबंधी शब्द, सेना, न्यायालय, परंपरागत दर्शन और काम शास्त्रीय स्थूल शब्द थे । यह शब्द देहवादी अधिक थे, परंतु आत्मवादी कम । अब हमें सूक्ष्म कल्पनाएँ और गहन प्रक्रियाओं को शाब्दिक प्रतीक देकर पुस्तकों में लिपिबद्ध करना है । ज्ञान-विज्ञान की बात का ज़िक्र न भी करें तो भी आधुनिक पंजाबी साहित्य को सृजन पक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में न सही, परंतु आलोचना पद्धति में जो नए रचनात्मक शब्दों की अत्यंत आवश्यकता है। यह आवश्यकता विशुद्ध आलोचना के अतिरिक्त साहित्य में साहित्यकार की विवेचनात्मक और वर्णनात्मक उक्तियों में भी वर्तमान है। इस प्रकार इस शब्द निरूपण की ओर जो कार्य हो रहा है उसमें सचमुच ही समस्याएँ हैं।

शब्द निर्माण की बात करते समय हमें शब्द के विधायक तत्वों (Constituents) के विवेचन की भी आवश्यकता है। सामान्यतः शब्द के चार भाग होते हैं। धातु (Root), उपसर्ग (Prefix) प्रत्यय और शब्दों का समास।

संस्कृत और फ़ारसी दोनों भाषाओं के शब्द इस प्रणाली पर बनते हैं, जो प्रक्रिया पंजाबी में भी धीरे-धीरे चलती आ रही है। इस तत्व-विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पंजाबी की वर्तमान शब्दावली में इन्हीं तत्वों के पृथक-पृथक परीक्षण, प्रयोग और अर्थ लेने की समस्या है।

यह हम संक्षेप में पीछे भी वर्णन कर चुके हैं कि शब्द निर्माण के प्रसंग में यह भी समस्या उत्पन्न होती है कि संस्कृत और फ़ारसी (उर्दू) को कहाँ तक अपनाया जाए, क्योंकि पंजाबी शब्दावली के लिए इन का आश्रय लेना अनिवार्य है। आजकल जो पंजाबी में शब्द निर्माण हो रहा है उसका आधार अधिकतर संस्कृत है, परंतु अज्ञान वश बहुत भूलें पैदा हो रहीं हैं। हम कभी-कभी उप-भाषाओं के शब्द भी लेते हैं, परंतु वे कहाँ और कैसे प्रयोग में लाए जाएँ, यह भी एक समस्या है।

समस्या केवल शब्दों की नहीं, आवश्यक व्याकरणिक अंग की भी है। व्याकरण के अनुसार शब्द समूह दो भागों में विभाजित किया जाता है, आवश्यक अंग और अनावश्यक अंग। आवश्यक अंग वे होते हैं जो कम परिवर्तित होते हैं, जैसे क्रिया, क्रिया-विशेषण, सर्वनाम। अनावश्यक अंग होते हैं विशेष्य, विशेषण। पंजाबी में अनावश्यक अंग वाले शब्दों के निर्माण की समस्या है। पंजाबी की क्रियाएँ (Verbs) स्थिर हैं। 'जाणदा', 'करदा', 'उलीकदा', 'पढ़दा' अपरिवर्तनशील हैं। सर्वनाम में 'साड़ा', 'तुहाड़ा', 'तेरा', 'मेरा' है। परंतु पड़चोल, आलोचना, समीखिआ, विवेचन, प्रतिपादन, कथन, वर्णन परिवर्तनशील हैं। यह आवश्यकतानुसार बदलते या घटते बढ़ते रहते हैं।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह भी ठीक है कि शब्द अर्थ का एक अधूरा चिह्न है। वैसे शब्द का अपना कोई अर्थ नहीं। जिस वस्तु या भाव के लिए भाषा बोलने वाले लोग शब्द को स्थिर बना लें वही इसका अर्थ है। संस्कृत में अर्थ-स्थिरता के कई प्रतिबंध वर्णित हैं, जैसे संयोग, वियोग, सान्निध्य आदि। परंतु फिर भी निश्चित अर्थ के लिए एक निश्चित शब्द नियत करना आवश्यक है।

शब्द निर्माण के प्रसंग में सरलता या सुगमता के रखने की भी एक समस्या है। पंजाबी में अभी अपने शब्द थोड़े हैं, परंतु जब भी नया शब्द ग्रहण किया जाता है तो उससे परिचित न होने के कारण, समझने और बोलने में कुछ कठिनाई अनुभव होती है। अब तो बहुत अंतर है। पिछले पंद्रह वर्षों में बहुत से नए शब्द आए और पंजाबी लेखकों की लेखनी के साथ घुल मिल गए। परंतु सरलता की समस्या अभी बाकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० नगेन्द्र ने 'भाषा' (त्रैमासिक) के संपादकीय में सरलता के विषय में लिखा है कि सरलता को जितना कहना सरल है उतना निभाना कठिन है। जटिल और गंभीर विचारों के लिए सरल अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यदि इस ओर प्रयास किया भी जाए तो उन विचारों की अधूरी अभिव्यक्ति होगी जो केवल अन्याय होगा। इस प्रकार की कृत्रिम और मिथ्या सरलता को पाश्चात्य मर्मी आचार्य लांज-इन्स ने बचकानापन कहा है। सारांश यह हैं कि भाषा की सरलता एक संबंधित और सापेक्ष गुण है जो प्रसंग और मूल अर्थ की अनुगामी होती है।

अब इस प्रसंग में आधुनिक पंजाबी साहित्य की शब्दावली का सर्वेक्षण करना उचित होगा। हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि प्रत्येक शब्द को प्रायः चार अंगों में विभाजित किया जा सकता है—उपसर्ग, धातु, प्रत्यय और समास। पंजाबी के पहले और वर्तमान बहुत से शब्द संस्कृत प्रधान हैं, विशेष रूप से आलोचना साहित्य के संस्कृत से लिए इन शब्दों के रूपों के बारे में बहुत बड़ी भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। संस्कृत के 'परि' उपसर्ग से संयुक्त हो कर अनेक शब्द बनते हैं परंतु पंजाबी लेखक इनका प्रयोग कई प्रकार से कर रहे हैं। उदाहरण के रूप में 'परिचय' शब्द लिया जा सकता है। हम इसे 'परीचै', 'प्रचै', 'परीचय' और 'परिचय' विविध रूपों में लिखते हैं। यही हाल 'परिषद', 'अभिनय' आदि का है। मोटे तौर पर ध्यान से देख लिया जाए तो बहुत से भ्रम अपने आप दूर हो सकते हैं। संस्कृत में सारे निम्न लिखित उपसर्ग हैं :—"प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर्, दुस, दुर, आङ, नि, अधि, अपि, सु, उत, अभि, प्रति, परि, उप।"

इन्हीं में से ही कोई न कोई उपसर्ग शब्द के प्रारंभ में आता है। एक भी और बहुत भी और नहीं भी। यदि इनका ज्ञान हो तो बहुत से भ्रम और अशुद्धियाँ दूर हो सकती हैं, क्योंकि इन उपसर्गों के संयोग से अर्थ में परिवर्तन होते हैं। 'पराधीन' शब्द के दो अंग हैं 'पर' और 'अधीन' अर्थात् दूसरे के अधीन। इसलिए 'पराधीन' तो ठीक है, 'प्राधीन' का कोई वैज्ञानिक रूप नहीं बनता। इसलिए 'परि, अभि, अति, प्रति, अनु' इन उपसर्गों को सावधानी से प्रयोग करने की आवश्यकता है। 'प्रमाण' में, प्र+माण है अर्थात् अच्छी तरह मान यानी मापने का भाव। परंतु यदि 'परमाण' लिखें तो अर्थ हुआ दूसरे का मान। इस प्रकार अनर्थ की संभावना है। निषेध के अर्थ में 'निर' के अतिरिक्त 'अ', और 'अन', दो उपसर्ग हैं। व्यंजन से आरंभ होने वाले शब्दों के पहले 'अ', और स्वर से आरंभ होने वाले शब्दों के पहले 'अन' लगता है, जैसे ज्ञान से अज्ञान, संतुष्ट से असंतुष्ट परंतु उचित से अनुचित (अन+उचित), अंत से अनंत (अन+अंत), आदि से अनादि (अन+आदि)। उन्नति से विपरीत अवनति तो ठीक है परंतु 'अवुनति' सरासर ग़लत है क्योंकि यहाँ 'अव' उपसर्ग में नति मूल शब्द और प्रत्यय है।

फ़ारसी के उपसर्ग भी सावधानी की माँग करते हैं, जिनका हम प्रयोग करते आ रहे हैं। मसलन ग़ैर (ग़ैर-कानूनी), बे (बेचैन, बेखोफ़), ला (लासानी, ला-परवाह), अदम (अदम तशदद), बा (बा-रसूख) आदि। परंतु पंजाबी लेखक इस ओर भी कई बार शिथिलता दिखाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम प्रत्ययों की चर्चा करते हैं। शब्द निर्माण के संबंध में प्रत्ययों की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि गंभीर और परंपरित विचारों के प्रकटीकरण के लिए समास संबंधी और प्रत्यय वाले शब्द विशेष रूप से समर्थ होते हैं। आज कल पंजाबी लेखक संस्कृत के कई प्रत्ययों को प्रयुक्त करने के लिए लालायित हैं परंतु कोई परंपरा स्थापित नहीं हो सकी। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रयोग चल रहे हैं। पंजाबी में प्रविष्ट संस्कृत के नए प्रत्यय इस प्रकार हैं :—"आत्मक, मय, इक, शील, कार, कारी, शाली, गत, ता, त्व" आदि।

आत्मक जैसे उपदेशात्मक, आलोचनात्मक में। यह आत्मक आत्मा वाला रूप है और 'क' स्वार्थ में है। परंतु एक ऐसा शब्द 'आत्मिक' भी है जिसमें ह्रस्व इकार रहती है। आम लेखकों के लिए यह भी समस्या रहती है, कि आलोचनात्मक लिखें या आलोचनात्मिक। वास्तव में आलोचनात्मक ही ठीक है। सिहारी सिर्फ़ वहाँ रहती है जहाँ विशेषण वाला अर्थ हो और स्वतंत्र शब्द हो। 'मय' और 'मयी' दो प्रत्यय क्रमशः पुलिंग और स्त्रीलिंग हैं। परंतु पंजाबी में दोनों के लिए 'मयी' या अधिकतर 'मई' ही प्रचलित है जैसे 'शांतमई युध' परंतु चाहिए तो यह कि 'शांतमय युद्ध'। यह एक परंपरा ही है। 'इक' वाले शब्द हैं, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि। ये विशेषण हैं। इससे विपरीत अर्थ में 'अक' है, जैसे संपादक, संचालक, अनुवादक। यहाँ सिहारी नहीं होती। परंतु लेखकों के लिए इस सूक्ष्म भेद की समस्या अभी सामने है। 'ता' भी बहुत प्रधान प्रत्यय हो रहा है। परंतु अशुद्ध प्रयोग भी बहुत हो रहे हैं। 'विरोध' अपने आप में संज्ञा (Noun) है। इसे 'विरोधिता' लिखना अज्ञान की चरम सीमा है। इसी प्रकार 'अज्ञान' के स्थान पर 'अज्ञानता', कौशल के स्थान पर कौशलता। यहाँ अज्ञान, कौशल वही अर्थ ही लिए बैठे हैं जो कई लेखक 'ता' साथ लगा कर लेना चाहते हैं। 'त्व' संयुक्त प्रत्यय है। 'तत्व' में 'त्व' परंतु (assimilation) हो गया है। अब कहीं-कहीं आवश्यकता है जैसे 'व्यक्तित्व'। परंतु इसके कई रूप होते जा रहे हैं।

यकारांत शब्दों की भी समस्या है। वे हैं 'अभिप्राय, निर्णय, विषय, निश्चय, भय, समुदाय, अध्याय, संप्रदाय'। पंजाबी में इनके अभी कई रूप प्रचलित हैं, जैसे 'विषा', 'विषै', 'विषय', इसी तरह 'निरणय', 'निरणै', 'निरना', 'निरणा'।

अब कुछ शब्दों की ओर भी लेखकों का ध्यान दिलाना है। प्रमाण से प्रामाणिक बनता है जैसे धर्म से धार्मिक। परंतु हैरानी की बात है कि 'प्रमाणीक' शब्द कैसे स्वीकृत हो गया है। हम कम से कम 'प्रमाण इक' कर के 'प्रमाणिक' तो कर सकते हैं। परंतु 'प्रमाणीक' तो बिल्कुल ही अवैज्ञानिक और अव्याकरणिक रचना है। इसी तरह 'व्यक्ति' 'विअकती' शब्द की बात कहने योग्य है। एक बार मैं बहुत लज्जित हुआ जब एक काव्यगोष्ठी और सभा के मंत्री ने परिचय देते हुए कहा कि "यह महान व्यक्ति आई है जो हमारे समक्ष दर्शन दे रही है।' पुरुष को 'आई है' कहना लज्जा वाली बात है जब कि व्यक्ति का प्रयोग पुलिंग में ही है। हमें कहना चाहिए कि 'विकअती आया है'। 'साहित्य' और 'समाज' दोनों पुलिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रयुक्त होने चाहिएँ । 'साडी साहित', 'साडी समाज' जैसे वाक्यांश हास्यास्पद प्रतीत होते हैं । 'उत्साह' और 'विकास' ठीक हैं परंतु यहाँ 'स' दंत्य के स्थान पर तालव्य लगाकर लिखना कैसे ठीक है ? यह बड़ी हैरानी की बात है कि पंजाबी की विशेषता दंत्य 'स' की है । 'विकाश' के स्थान पर 'विकास' लिखना बड़ा ज़रूरी है । 'संग्रहिक' कहाँ का नया शुद्ध शब्द है ? 'पुंडरीक' को 'पुंदरीक' लिखना ठीक स्थिति से दूर रहना है । शायद via अँग्रेज़ी होने के कारण यह रूप प्रचलित हुआ है ।

लेखक की राय है कि हमारे पास संस्कृत और फ़ारसी के अतिरिक्त कुछ देशी प्रत्यय और उपसर्ग हैं, जैसे 'सार' (हंडणसार, मिलणसार'), हार ('रचणहार, चल्लणहार), बिन (बिन-बुलाए, बिन-बीजे) आदि । हम यदि ऐसे अंगों को ढूँढ़ कर शब्द निर्माण में सहायता लें तो इससे अधिक लाभ होगा और अधिक अर्थवत्ता पैदा होगी ।

शब्द-निर्माण के संबंध में श्री गुरू ग्रंथ साहिब की शब्द-राशि की ओर ध्यान जाना भी आवश्यक है । आदि ग्रंथ में दार्शनिक, मानसिक, सामाजिक शब्दों का बाहुल्य है । पंजाबी भाषा की प्रकृति के अनुसार शब्दों की शैली भी ढली हुई मिलती है । यदि हम सही अर्थ लेकर उनका प्रयोग आरंभ कर दें तो बहुत सारे झगड़े समाप्त हो सकते हैं । "भगत वछल तेरा विरदु है जुग जुग वरतंदा" यह पंक्ति मुझे याद आई है । इसमें दो शब्द बहुत ही सुंदर पंजाबी रूप में आए हैं : वछल और विरद । वछल संस्कृत वत्सल है—बड़े व्यक्ति का छोटे के प्रति स्नेह भाव । वत्सल से वत्सल्य रस का प्रयोग होता है । पर बछल को अपनाया जा सकता है । इसी तरह 'विरद' है । इसका प्रयोग साहित्य में आवश्यक है । इस तरह शब्द निर्माण में योग-दान प्राप्त हो सकता है ।

पंजाबी की कई उपभाषाएँ हैं । उनमें काफी शब्दावली है जो अभी तक लिपिबद्ध नहीं हुई । हमें उनमें से कई शब्द मिल सकते हैं जो हमारी अनुभूति या संकल्पना को ठीक तरह से प्रकट कर सकते हैं । उन शब्दों या मुहावरों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर प्रयुक्त करना चाहिए । अभी कल ही हमारे गांव के एक रिश्तेदार कह रहे थे "उह तां नित्त-मेध जांदा है" मुझे नित्त के साथ 'मेध' की आवृत्ति सुन कर प्रसन्नता हुई । शायद यह वैदिक संस्कृत के किसी शब्द का खंडित रूप हो । इसी प्रकार के अन्य भी बहुत से शब्द मिलते हैं । यदि हम कहें कि इस तरह केंद्रीय बोली का रूप बिगड़ेगा, यह कोई डर वाली बात नहीं । प्रयोग से एक तो शब्दों का परिचय हो जाता है और दूसरा बोली की समृद्धि होती है । हिंदी ने बिहारी से लेकर राजस्थानी तक के शब्दों को अपनाना आरंभ किया है । वर्तमान लेखक तो यहां तक सोचता है कि पश्चिमी पंजाबी के व्याकरणिक रूप जैसे 'कुटींदा मुंडा', 'मुरींदा सप्प' हमें ग्रहण कर लेने चाहिएँ । इनमें एक संगठित अभिव्यक्ति है ।

शब्द निर्माण की समस्या सचमुच गंभीर है । इस ओर भाषा विभाग पंजाब के यत्न उल्लेखनीय हैं । उप-बोलियों की शब्दावलियाँ तैयार हुई और हो रही हैं । इनमें से नए-नए शब्द मिलेंगे । इसके अतिरिक्त पंजाबी विश्वविद्यालय भी पंजाबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों का कोश तैयार कर रहा है। मुझे हिंदी अर्थात् खड़ी बोली का वह युग याद आता है जब खड़ी बोली का विकास काल था। तब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' द्वारा हिंदी के व्याकरण वर्तनी मुहावरों आदि का खूब सुधार किया और बड़े-बड़े लेखकों का सही पथ-प्रदर्शन किया। अब आवश्यकता है कि पंजाबी की किसी न किसी पत्रिका में ऐसे शब्दों या पंजाबी भाषा के बन रहे रूप की समीक्षा या सर्वेक्षण किया जाए, जिसमें हर मास आ रहे नए शब्दों का विश्लेषण हो, ताकि पंजाबी को ग़लत प्रयोगों और ग़लत रीतियों से बचाया जा सके।

पुस्तकालय
113550
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

अनु० आशानंद वोहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी की समस्याएँ

वीरेंद्रकुमार श्रीवास्तव

हमें स्वतंत्र हुए 17 वर्ष हो गए पर हिंदी के प्रति हम उतने उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करते जितना देश की राष्ट्रभाषा के प्रति करना चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जो उत्साह, जो लगन हिंदी के प्रति प्रदर्शित करते थे वह अब शांत सा हो गया है। इधर प्रकाशन के क्षेत्र में प्रगति अवश्य हुई है तथा साहित्य की विविध विधाओं की पुस्तकें अधिक संख्या में प्रकाशित की गई हैं और नित्य होती रहती हैं, पर यहाँ इस निबंध में हिंदी की कुछ उन मूलभूत समस्याओं की ओर ध्यान आर्कषित करना इष्ट है जिन समस्याओं की ओर से हमारा ध्यान हट गया है एवं वे अपने पूर्व रूप में वर्तमान हैं।

हस्तलिखित प्रतियों की खोज

इधर दस वर्षों में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज नकारात्मक ही कही जाएगी। इस संबंध में कुछ आवाज़ें उठाई गईं, कुछ के कार्यक्रम बने, पर वे कार्य-क्रम मात्र ही रह गए। राजकीय स्तर पर ज़िलाधीशों को आदेश दिए गए किंतु कितनों ने इसमें रुचि दिखाई तथा कितना कार्य किया गया, यह अंधकार में है। देश की गण्यमान्य संस्था 'नागरी प्रचारिणी सभा' का झुकाव, लगता है, प्रकाशन-कार्य की ओर अधिक हो गया है। दूसरी प्रसिद्ध संस्था है 'हिंदी साहित्य संमेलन', पर संभवतः उसके अंतर्गत कोई खोज-विभाग नहीं है—यदि है तो मृत रूप में—उसका क्षेत्र हिंदी विश्वविद्यालय के रुप में परिक्षा लेने मात्र तक सीमित रह गया है। विश्वविद्यालयों में हस्तलिखित ग्रंथों के खोज-कार्य के लिए विशष गुंजाइश नहीं। दूसरी कोई संस्था नहीं दीखती जो इस कार्य को बड़े पैमाने पर कर सके।

सुसंपादित संस्करण

प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों के वैज्ञानिक ढंग से संपादित संस्करण उपलब्ध नहीं हैं। प्राचीन साहित्य की जो सामग्री है उसमें से बहुत थोड़ी का संपादन हुआ है। जिस किसी ग्रंथ का संपादन एक बार हुआ उसके पुनः प्रकाशन का अवसर ही नहीं आया अथवा आवश्यकता नहीं समझी गई। हिंदी का आदि प्रबंध, विशाल-काय ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' संपूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। उसके प्रक्षिप्त अंश को लेकर चर्चा खूब हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ने प्रमाणिक माना तो किसी ने जाली, पर अभी तक यह नहीं हो सका कि प्राप्त सभी प्रतियों के आधार पर किसी सर्वमान्य संस्करण का प्रकाशन हो। इस ग्रंथ के विषय में हम आज भी पूरे कोरे हैं। इसी प्रकार नाथ-पंथ एवं निर्गुण संत-कवियों की रचनाएँ संपादित नहीं हुई हैं। धार्मिक महत्व की दृष्टि से कुछ ग्रंथ विभिन्न पंथियों द्वारा प्रकाशित मिल सकते हैं पर संभवतः 'गोरखबानी' का कोई सुसंपादित संस्करण प्राप्त नहीं हो सका है। हाँ, यह अवश्य है कि उनमें से कई संस्करणों के आधार पर शोध प्रबंध लिखे जा चुके हैं।

प्रांतीय साहित्यों से संपर्क

हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वमान्य बनाने के लिए आवश्यक है कि उसका संपर्क अन्य प्रांतीय भाषाओं से हो। इसके लिए हिंदी वाले विभिन्न प्रांतीय भाषाओं को सीखें। तभी हम अन्य भाषा भाषियों का विश्वास प्राप्त कर सकेंगे। इस संबंध में आवश्यकता अनुभव होने पर भी हम विशेष प्रगति नहीं कर सके हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों के एम० ए० (हिंदी) में एक प्रश्नपत्र प्राचीन भाषाओं या विशिष्ट कवियों के स्थान पर आधुनिक भारतीय भाषाओं का भी होता है, पर कितने विश्व-विद्यालयों में उन सभी भाषाओं के अध्यापन की व्यवस्था है? विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त संबंधित महाविद्यालयों की दशा तो और भी शोचनीय है। प्रांतीय भाषाओं से संपर्क के लिए आवश्यक है कि विभिन्न साहित्यिक संस्थाएँ अपने अंतर्गत एक ऐसा विभाग खोलें जिसके तत्तवावधान में प्रांतीय भाषाओं की शिक्षा दी जा सके एवं साथ ही साथ प्रांतीय भाषाओं के विद्वानों के साहित्यिक व्याख्यान भी आयोजित किए जाएँ जिससे उनका कुछ सम्मान हिंदी प्रदेश में हो सके। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उच्च कोटि के ग्रंथों का अनुवाद भी हिंदी भाषा में होना चाहिए।

अनुवाद कार्य

आधुनिक भारतीय भाषाओं से अनुवाद के अतिरिक्त हमें विदेशी भाषाओं से अनुवाद कार्य को आगे बढ़ाना है। सभी विदेशी भाषाओं का ज्ञान सब के लिए संभव नहीं। अतः जिन विद्वानों की गति जिस भाषा में हो उन्हें उस भाषा के उच्च साहित्य का अनुवाद हिंदी में करना चाहिए। इससे जहाँ हिंदी का भंडार भरेगा वहाँ संसार की साहित्यिक गति-विधि का ज्ञान हिंदी के माध्यम से पाठकों को होता रहेगा, पर अनुवाद कार्य में अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता है। सस्ती ख्याति या अर्थ लाभ की दृष्टि से किया गया अनुवाद कभी उच्च स्तर का नहीं हो सकता। श्रम और त्याग के द्वारा ही अच्छे अनुवाद किए जा सकते हैं। घटिया और अशुद्ध अनुवादों से अनुवाद का न होना ही ठीक होगा।

ग्राम साहित्य का संकलन

ग्राम-साहित्य के संकलन एवं समीक्षा की प्रवृत्ति इधर बढ़ रही है। बहुत कुछ शोध-प्रबंध अथवा स्वतंत्र रूप से भी लिखा जा रहा है। समीक्षा में तो ग्राम-साहित्य लिखने को फैशन समझा जाने लगा है किंतु, ये कार्य फुटकर ही अधिक हुए हैं, सुनियोजित एवं सुचारु ढंग से बहुत ही कम। सर्वप्रथम प्रयास करने वालों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० रामनरेश त्रिपाठी का नाम उल्लेख्य है। श्री देवेंद्र सत्यार्थी, कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ० श्याम परमार आदि ने अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किए हैं। पर संपूर्ण ग्राम-साहित्य के आधार पर क्षेत्रों का विभाजन किया जाए तो उन स्थानों के विद्वानों के सहयोग से यह कार्य विभिन्न संस्थाओं या परिषदों की स्थापना द्वारा संचालित किया जाना चाहिए।

वैज्ञानिक साहित्य

विज्ञान के आधुनिक युग में अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव जन-मानस को विज्ञान-ज्ञान से पृथक् करना है। विज्ञान तभी उपादेय है जब आविष्कृत उपकरणों का समुचित प्रयोग सभी कर सकें। वैज्ञानिक साहित्य के अभाव में यह संभव नहीं। देश की भौतिक उन्नति के लिए भी अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य का होना अत्यंत आवश्यक है, नहीं तो विज्ञान कुछ मस्तिष्कों तक ही सीमित रह जाएगा और हम अपनी प्रगति उतनी गति से नहीं कर सकेंगे। भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य के होने से जनरुचि परिष्कृत होगी, साहित्य समृद्ध होगा, अंध विश्वास एवं परंपरागत रूढ़ियों से समाज को छुटकारा मिलेगा।

समालोचना-शास्त्र का व्यवस्थीकरण

आए दिन शोध-प्रबंध एवं महत्त्व के समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाशित होते रहते हैं पर हिंदी का समालोचना शास्त्र व्यवस्थित रूप में नहीं है। कुछ विद्वान भारतीय समीक्षा-शास्त्र की ओर अधिक रुचि दिखाते हैं तो कुछ विद्वान पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र में रुचि दिखाते हैं। अतः हिंदी के समसामयिक रचनात्मक साहित्य की समीक्षा में सामंजस्य का अभाव मिलेगा। यह सामंजस्य तभी संभव है जब हिंदी में भारतीय समीक्षा-शास्त्र व पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र के सभी प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध हों। इसके द्वारा दोनों विचार-धाराओं के ज्ञान के पश्चात् ही समसामयिक रचनाओं की व्यावहारिक समीक्षा एवं मूल्यांकन किया जा सकेगा। डा० नगेंद्र, आचार्य विश्वेश्वर तथा डा० सत्यव्रत ने संस्कृत ग्रंथों के प्रामाणिक अनुवाद एवं संपादन किए हैं। डॉ० नगेंद्र ने पाश्चात्य आचार्यों में से अरस्तू व लोंजाइनस की कृतियों के अनुवाद प्रस्तुत किए हैं जो प्रशंसनीय हैं। ऐसे और भी अनुवादों की आवश्यकता है।

भाषा का परिनिष्ठित रूप

हिंदी भाषा के मानकीकरण की आवश्यकता अभी बनी हुई है। यद्यपि हिंदी-हिंदुस्तानी की चर्चा इन दिनों नहीं है, तब भी डा० रघुवीर की संस्कृतनिष्ठ शब्दा-वलियों का विरोध किया गया। एक ओर उर्दू को हिंदी की एक शैली मानने वाले लोग हैं तो दूसरी ओर संस्कृतनिष्ठ हिंदी के पोषक। प्रश्न है हिंदी भाषा का स्वरूप कैसा हो? संस्कृतनिष्ठ हिंदी से जहाँ पुस्तकीय भाषा का भय है वहीं उर्दू मिश्रित हिंदी से उसके मौलिक स्वरूप के नष्ट हो जाने का भय है। अन्य भाषाओं के गृहीत सामान्य प्रचलित शब्दों को तो अब निकाला नहीं जा सकता। रहा प्रश्न नए शब्दों का जो हिंदी में नहीं हैं यथा वैज्ञानिक शब्दावलियाँ—उनका चुनाव कहाँ से हो? जो शब्द हिंदी की प्रकृति के अनुकूल हों या जो सरलता से उसमें खप सकते हों उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना हिचक स्वीकार कर लेना चाहिए । बिना भाषा का मानकीकरण किए, परिनिष्ठित रूप दिए, पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग व विवेचन में अर्थ का अनर्थ हो जाने की संभावना सदैव बनी रहेगी ।

लिपि

इस समय हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और इसके दो रूप प्रचलित हैं, एक तो सामान्य प्रचलित रूप जिसका प्रयोग हम लोग करते हैं, और पुस्तकें इसी लिपि में प्रकाशित होती हैं । दूसरी लिपि थोड़े संशोधन से काका कालेलकर की है, जो मध्य भारत की कुछ साहित्यिक संस्थाओं द्वारा प्रयोग में लाई जाती है । इस लिपि में मात्रा वाले अक्षरों के स्थान पर 'अ' में ही मात्रा लगाकर लिखा जाता है यथा—अि (ई), अु (उ), अू (ऊ) आदि । लिपि के व्यवहार में एकरूपता होनी चाहिए जिससे सीखने वालों को परेशानी न हो । लिपि में संशोधन किए जा सकते हैं पर जो सर्वमान्य हों और साथ ही वैज्ञानिक हों । लिपि संशोधन में प्रांतीय भाषाओं की लिपि का ध्यान भी रखना उचित होगा । मराठी का 'ळ' व 'ज्ञ' हिंदी में भी प्रचलित है जिसे उसी रूप में ग्रहण किया जा सकता है । कुछ वर्षों पूर्व उत्तर प्रदेश सरकार ने लिपि में संशोधन किए थे पर वे अव्यावहारिक सिद्ध हुए ।

कोश तथा विश्वकोश (Encyclopedia) का निर्माण

हिंदी के कई कोश उपलब्ध हैं । पर उसके महत्व को देखते हुए ये कोश काफी नहीं हैं । 'ज्ञान-मंडल वाराणसी' द्वारा प्रकाशित कोश ही इस समय बृहद् रूप में प्राप्त है । 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'शब्द-सागर' के कई खंड उपलब्ध नहीं हैं । वह प्राचीन भी हो गया है । विविध विषयों, जैसे—अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोल आदि शास्त्रों के स्वतंत्र कोशों तथा प्रांतीय भाषाओं से हिंदी में अथवा हिंदी से प्रांतीय भाषाओं में कोश-निर्माण की आवश्यकता है । साहित्य के शास्त्रीय शब्दों के दो कोश प्रकाशित हुएहैं जो अच्छे हैं । हिंदी में कोई विश्वकोश नहीं है । एक विश्वकोश का निर्माण 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा हो रहा है ।

मैंने हिंदी की मुख्य समस्याओं का उल्लेख किया है । ये समस्याएँ एसी नहीं जिनसे मुख मोड़ा जा सके । यदि इनका समाधान किया जाए तो हिंदी को सशक्त बना शीघ्र ही विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है । आज संस्कृत का मान विदेशों में इसलिए नहीं है कि वह प्राचीन भाषाओं में से है, वल्कि इसलिए कि उसका साहित्य श्रेष्ठ और प्रचुर है । भाषाविज्ञान के विद्यार्थियों के लिए तो संस्कृत का ज्ञान अत्यावश्यक समझा जाता है, क्योंकि भाषा संबंधी जो सिद्धांत पश्चिम के लिए नए हैं वे संस्कृत में आज से डेढ़ दो हज़ार वर्ष पूर्व निर्मित हो चुके थे । अतः हिंदी साहित्य का निर्माण हमें इस गति से करना है कि शीघ्र ही वह विश्व के उच्चकोटि के साहित्य से टक्कर ले सके ।

3—7 CHD/64
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी और कन्नड़ : कुछ समस्याएँ

सोमशेखर 'सोम'

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कन्नड़ तथा हिंदी दोनों भाषाएँ शास्त्रपूर्ण हैं। लेकिन एक आर्य-परिवार के अंतर्गत है तो दूसरी द्रविड़ परिवार के अंतर्गत। कन्नड़, जैसे कि सर्वमान्य तथ्य है, कि द्रविड़ परिवार की उच्चतम भाषा है। मुख्यतः द्रविड़ परिवार के अंतर्गत चार भाषाएँ मुख्य मानी गई हैं जो तमिल, तेलगु, मलयालम तथा कन्नड़ हैं। इन चार भाषाओं में तमिल के पश्चात् यदि कोई भाषा समृद्धशाली, सरल एवं साहित्य तथा शास्त्रपूर्ण है तो कन्नड़ ही। कन्नड़ कर्नाटक की प्रांतीय भाषा है जिसे बोलने वालों की संख्या लगभग १० लाख से भी अधिक मानी जा सकती है। कर्नाटक प्रदेश एक विशाल प्रदेश है जो आजकल मैसूर कहलाता है।

दक्षिण में यदि हिंदी का अधिक प्रचार एवं प्रसार कहीं हुआ है तो कर्नाटक में तथा आंध्र में ही। जब से दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना हुई तब से लेकर आज तक प्रत्येक घर में एकाध हिंदी अवश्य ही सीख लेते हैं। लेकिन कन्नड़ वालों के सामने हिंदी सीखते समय अनेक समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। हिंदी तथा कन्नड़ का रूप-विधान अवश्य ही भिन्न है। मोटे तौर पर निम्नांकित समस्याएँ हो सकती हैं।

(1) अक्षर संबंधी समस्याएँ

जैसे कि ऊपर कह आया हूँ कि दोनों भाषाओं का रूप-विधान भिन्न है। हिंदी में कन्नड़ की अपेक्षा दो स्वराक्षर कम हैं—दीर्घ 'ए' तथा दीर्घ 'ओ'। कन्नड़ के इन दोनों अक्षरों के उपयोगी शब्दों में हिंदी में ह्रस्व 'ए' तथा ह्रस्व 'ओ' से काम लिया जाता है, जिसके कारणवश कन्नड़ भाषा का सौंदर्य तथा लालित्य लुप्त हो जाता है। तब यह कहकर टाल दिया जाता है कि प्रसंगानुसार दीर्घ एवं ह्रस्व का उच्चारण कर, शब्द का अर्थ समझ लें। किंतु हिंदी प्रदेशी यदि कन्नड़ सीखना चाहता है तो इस बात की उसे अधिक कठिनाई उठानी पड़ती है। उदाहरणस्वरूप यह कहा जा सकता है कि 'ओट' (कन्नड़ का शब्द, भागने की क्रिया) शब्द में 'ओ' स्वर दीर्घ है तभी इसका समुचित अर्थ निकलता है, अन्यथा ह्रस्व 'ओ' लेकर इस शब्द का उच्चारण करेंगे तो शब्द का अर्थ ही नहीं होगा। दूसरा शब्द लीजिए ओदोनवर—जिसका अर्थ है पढ़नेवाला। इस शब्द में 'ओ' तथा 'दो' कन्नड़ में दीर्घाक्षर हैं। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी वाले इन दोनों अक्षरों को लेख में उपयोग करेंगे तो इसका अर्थ ही नहीं होगा। व्यंजनों के दीर्घाक्षर प्रयोग करते समय कन्नड़ के 'ए' तथा 'ओ' के लिए एक ही चिह्न है जैसे—— कोण (भैंसा)। हिंदी में पढ़ते समय यह चिह्न लुप्त हो जाता है और रह जाता है कोण, तब इसका अर्थ ही नहीं निकलता है।

कन्नड़ के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ते समय यह समस्या सबसे बड़ी समस्या बन जाती है। ऐसे अवसर पर हिंदी अध्यापक यह कह टाल देते हैं कि प्रसंगानुसार उस शब्द के अर्थानुसार उसका उच्चारण कर लेना चाहिए। ऐसे शब्द कन्नड़ में अधिक हैं।

'ळ' अक्षर की समस्या

इसके अंतर्गत दूसरी समस्या है 'ळ' अक्षर की। हिंदी में 'ळ' अक्षर ही नहीं है, जबकि कन्नड़ में 'ळ' का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। हिंदी में 'ळ' के न होने के कारण कन्नड़ में आने वाले 'ळ' का प्रयोग 'ल' से किया जाता है। किंतु कन्नड़ के ऐसे अनेक शब्द हैं, जिन्हें 'ळ' के बदले 'ल' पढ़ने से भिन्नार्थ के साथ ही साथ गंदे अर्थ भी दे डालते हैं।

(हेळु) कन्नड़ का शब्द 'कह' का द्योतक है। इसी को हम हिंदी में लिप्यांतरण करेंगे तो 'हेलु' हो जाता है जिसका अर्थ हो जाता है 'शौच'। 'ळ' का उच्चारण करने से जहाँ 'कह' अर्थ होता है वहाँ 'ल' का उच्चारण करने से 'शौच' का अर्थ हो जाता है। कितना अंतर है दोनों के अर्थ में, केवल एक अक्षर की कमी से। कळी शब्द लीजिए। कळी शब्द का अर्थ है 'खोना' जब कि हम हिंदी के अनुसार इसे 'कली' पढ़ेंगे तो अर्थ होता है 'दाग'। 'मळि' का अर्थ है 'कीला' जब कि 'ळ' के बदले 'ल' पढ़ेंगे तो अर्थ हो जाता है 'स्तन'। देखिए कहाँ कीला और कहाँ स्तन। 'हाळु' शब्द का अर्थ है 'नाश' जब कि 'ल' का उच्चारण करेंगे तो 'हालु' हो जाता है——अर्थ है 'दूध'। 'काळु' का अर्थ है 'अनाज' जब कि ल का उच्चारण करेंगे तो कालू हो जाता है जिसका अर्थ है 'पैर'। कौळे का अर्थ है गंधा, जब कि 'ल' का प्रयोग करने से (कौले)——खून करना अर्थ हो जाता है। उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि एक 'ळ' अक्षर के न होने से लिप्यांतर करने में कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं तथा कितने भिन्नार्थ हो जाते हैं।

हिंदी में शब्द के अंतिम अक्षर को ज़ोर देकर उच्चारण करने की प्रथा है जब कि कन्नड़ में नहीं, जैसे अब, कब, जब और फल इन शब्दों के अंतिम 'ब' तथा ल को ज़ोर देकर कहा जाता है परंतु कन्नड़ के शब्दों में प्रत्येक अक्षर को सरलता से कहा जाता है, जैसे अब को अ ब, कब को क ब आदि। कब, जब, तक आदि का लिप्यांतरण कन्नड़ में करेंगे तो कब्ब, जब्ब, तब्ब का उच्चारण किया जाता है।

अब लीजिए संयुक्ताक्षर संबंधी समस्याएँ। तत्पर, पर्याप्त, वीरत्व संयुक्त, वत्कल आदि शब्दों को उदाहरण स्वरूप लेंगे। कन्नड़ में संयुक्ताक्षर के लिए कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिह्न निर्धारित हैं जो निम्नांकित हैं।

(1) त (1) कत्तले (अंधकार)

(2) न (2) नन्न (मेरा)

(3) य (3) अय्या (स्वामी).

(4) र् (4) आर्य (आर्य)

(5) र (5) प्रयोग (प्रयोग)

चिह्नांकित चिह्न कन्नड़ के संयुक्ताक्षर के विशेष-चिह्न हैं जो हिंदी में नहीं हैं हिंदी में उन्हीं अक्षरों को आधा लिख, संयुक्ताक्षर बना दिया जाता हैं । परंतु संयुक्ताक्षर में एक और कठिनाई है कि कन्नड़ में संयुक्ताक्षर के पहले अक्षर को पूरा लिख कर अंतिम अक्षर को आधा लिखा जाता है,

जब कि हिंदी में इसका उल्टा होता है। देखिए—

(1) तत्पर	तप्तर
(2) पर्याप्त	पर्यात्प
(3) वीरत्व	वीरव्त
(4) संयुक्त	संयुत्क
(5) वत्कल	वक्तल

उपरोक्त संयुक्ताक्षरों में आप देख सकेंगे कि हिंदी के बिल्कुल विरूद्ध प्रयोग है। इससे स्पष्ट है कि हिंदी में संयुक्ताक्षर का प्रथम अक्षर कन्नड़ में पूर्ण रहता है जबकि हिंदी में आधा रहता है तथा हिंदी के संयुक्त अक्षर का अंतिम अक्षर कन्नड़ में आधा रहता है जब कि हिंदी में पूर्ण रहता।

हिंदी में जैसे संयुक्ताक्षर में स्वर के बदले व्यंजनों के भी प्रयोग होते हैं वैसे कन्नड़ में नहीं। जैसे--

संवल--सम्बल--(संबल)—सम्बल के जैसे कन्नड़ में 'म' प्रयोग नहीं होता है। सम्बन्ध—संबंध--संबंध—संबन्ध, हिंदी में एक शब्द को चार ढंग से लिखते देखा जा सकता है, जबकि कन्नड़ में 'संबंध' ही लिखा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि संयुक्ताक्षरों में व्यंजनों की अपेक्षा स्वर का प्रयोग होता है।

संयुक्ताक्षर में एक और भिन्नता है। वह यह है कि हिंदी में संयुक्ताक्षर लिखते समय पूर्ण अक्षर आधे अक्षर के बाजू में लिखा जाता है, जब कि कन्नड़ में आधा अक्षर पूर्ण अक्षर के नीचे।

जैसे उत्पादन यहाँ 'त्पा' संयुक्ताक्षर जो 'पा' पूर्ण अक्षर 'त्' आधा-अक्षर के बाजू लगा है। किंतु कन्नड़ 'त' के नीचे ('त' पूर्ण, जैसे ऊपर स्पष्ट किया गया है) 'प' का आधा अक्षर नीचे आ जाता है।

हिंदी तथा कन्नड़ भाषाओं के संयुक्ताक्षर की यह भी एक भिन्नता है तथा विशेषता भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(2) लिंग संबंधी समस्याएँ
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़ वालों के लिए ही क्यों, सभी दक्षिण की भाषाओं को हिंदी की लिंग संबंधी बड़ीसमस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। कन्नड़ में तीन लिंग हैं—(1)पुलिंग, (2) स्त्रीलिंग, (3)नपुंसक लिंग। जैसे नामों से ही स्पष्ट है कि जो पुरुषवाची शब्द हैं वे पुलिंग हैं, जो स्त्री वाचक शब्द हैं वे स्त्रीलिंग शब्द हैं तथा जो निर्जीव हैं वे नपुंसक लिंग के शब्द हैं। परंतु हिंदी में दो ही लिंग हैं, पुलिंग तथा स्त्रीलिंग। जैसे कि स्पष्ट है कि कन्नड़ में क्रियाएँ सदा कर्ता के लिंग वचन के अनुसार चलती हैं जबकि हिंदी में वर्तमान काल तथा भविष्यत् कालों में भूत काल की अकर्मक क्रियाओं में ही यह नियम लागू होता है। हिंदी में भूतकाल के (सामान्य, संदिग्ध आसन्न तथा पूर्ण) सकर्मक वाक्यों में क्रियाएँ कर्म के लिंग, वचन के अनुसार होती हैं क्योंकि कर्ता के आगे 'ने' जो लग जाता है ऐसे कन्नड़ में नहीं है। कन्नड़ वालों को हिंदी के लिंग समझना असाध्य नहीं तो कठिन अवश्य है। यह अभ्यास से आ सकता है। 'ने' का प्रयोग शायद ही कन्नड़ वाले शीघ्र समझ सकें। मेरी समझ में तो 'ने' का प्रयोग जानने वाला हिंदीएतर प्रदेशी हिंदी को शीघ्र सीख सकता है। कई वैयाकरणियों का विचार है कि हिंदी से 'ने' प्रयोग हटा दिया जाए। लेकिन यह सत्य है कि 'ने' प्रयोग के उठ जाने से हिंदी का भाषा-सौंदर्य नष्ट हो जाता है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशेषता होती है जिसके आधार पर ही उस भाषा का सौंदर्य निखरता रहता है। अस्तु।

(1) रामने एक रोटी खाई। रामनु ओंदु रोट्टियन्तु तिंदनु। इस वाक्य में 'राम' कर्ता पुलिंग है तथा 'खाई' क्रिया स्त्रीलिंग का रूप है। कन्नड़ में 'ने'का प्रयोग न जानने वाले को अवश्य ही आश्चर्य प्रकट करेगा कि कर्ता पुलिंग हो तथा क्रिया स्त्रीलिंग तब वह इसका अर्थ ही करेगा "रामनु रोट्टियन्नु तिंदलु"। अर्थात् 'राम' को स्त्रीलिंग की क्रिया में ठूंस देगा।

(2) सीता ने दो आम खाए—इस वाक्य में सीता स्त्रीलिंग (कर्ता) है जबकि क्रिया 'खाए' पुलिंग बहुवचन में है। कन्नड़ में इसका अर्थ होता है कि सीतेयु एरडु माविन हण्णु गळन्नु तिंदलु। परंतु 'ने' का प्रयोग न जानने वाला इसका अर्थ करेगा कि सीतेयु एरडु माविन हण्णु गळन्नु तिंदरू—अर्थात् क्रिया को पुलिंग बहुवचन में ग्रहण करेगा।

इस प्रकार कन्नड़, वालों के लिए 'ने' प्रयोग तथा 'लिंग विधान' एक सिर दर्द बन जाता है।

(3) का, की, के की समस्या

कन्नड़ वालों को हिंदी सीखते समय, का, की, के कारकों (विभक्तियों) की भी बड़ी दिक्कत होती है। इस कारक को कन्नड़ में षष्टी विभक्ति कहते हैं, जिसकी विभक्ति (प्रत्यय-कन्नड़ में) 'अ' है। कन्नड़ में ये विभक्तियाँ कर्ता के जैसे चलती हैं न कि हिंदी की तरह कर्म या उसके आगे के शब्द के अनुसार। जैसे सीतेय लेक्कण के (सीता की कलम) यहाँ देखिए। हिंदी में कलम स्त्रीलिंग होने के कारण सीता 'कर्ता' की विभक्ति ले लेती है। जब कि कन्नड़ में कलम से कोई संबंध नहीं जैसे—

राम की कलम।
सीता की कलम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी में कर्ता चाहे पुलिंग हो, चाहे स्त्रीलिंग परंतु [illegible] होने के कारण सीता के आगे 'की' विभक्ति का प्रयोग होता है। कन्नड़ में ऐसा नहीं जैसे—

रामन लेक्कण के

सीतेय लेक्कण के—पुलिंग बहुवचन में देखिए ।

रामन हण्णु गळु (राम के फल)
सीतेय हण्णु गळु (सीता के फल)
आ जनर हण्णु गळु (उन लोगों के फल)

इत्यादि। यहाँ भी उपरोक्त बात ही स्पष्ट होती है। फल से तथा विभक्ति के बहुवचन से (जैसे हिंदी में होता है) कोई संबंध नहीं। पुलिंग एक वचन में देखिए।

रामन ग्रंथ (राम का ग्रंथ)
सीतेय ग्रंथ (सीता का ग्रंथ)

अर्थात् स्पष्ट है कि हिंदी में विभक्ति के आगे आने वाले शब्दों के लिंग, वचन के अनुसार का, की, के, के प्रयोग होते हैं। कन्नड़ की एक ही विभक्ति (प्रत्यय) 'अ' तीनों पुरुषों में उपयोग में आती है जब कि हिंदी में का, की, के भिन्न-भिन्न हैं।

पूर्ण विराम संबंधी समस्या

कन्नड़ तथा हिंदी के विराम-चिह्नों में पूर्ण विराम के अलावा शेष चिह्नों में समानता है। कन्नड़ में पूर्णविराम केवल एक बिंदु (.) है परंतु हिंदी में एक खड़ी लकीर (।) है। जो कि कन्नड़ के विद्यार्थियों के लिए कभी-कभी संदेहास्पद हो जाता है। जैसे

रामनु शालेगे होगुत्ताने.—कन्नड़ में
राम स्कूल जाता है। हिंदी में।

कन्नड़ तथा हिंदी में कुछ ऐसे शब्द भी समस्यामूलक हैं जो दोनों भाषाओं में भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हैं। ये शब्द कन्नड़ वालों को भ्रम में डाल देते हैं। जैसे—

	शब्द	हिंदी में अर्थ	कन्नड़ में अर्थ
(1)	बाल	केश	पूँछ
(2)	उपहार	भेंट	नाश्ता
(3)	चेष्टा	प्रयत्न	मज़ाक
(4)	प्रपंच	षडयंत्र रचना	जगत
(5)	संसार	जगत	परिवार

ऐसे अनेक शब्द हैं।

उपरोक्त समस्याएँ कन्नड़ वालों के सामने हिंदी सीखते समय पहाड़ जैसी खड़ी हैं। इस संबंध में मेरा अपना विचार यह है कि कर्नाटक में पढ़ाने वाले हिंदी-शिक्षक इन अंतरों को ठीक समझें ताकि विद्यार्थियों को ये कठिनाईयाँ महसूस न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋ' स्वर और उसका उच्चारण

आधुनिक ब्रज भाषा में संयुक्त क्रियाओं का स्वरूप

हिंदी के विशिष्ट विभक्ति-प्रयोग : पुर्नविचार

भाषा के प्राण : मुहावरे और कहावतें

भाषा और व्याकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋ' स्वर और उसका उच्चारण

बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'

'ऋ' स्वर हमारी वर्णमाला में एक समस्या है। यह समस्या भाषाशास्त्रीय है, अतएव भाषाविज्ञानियों को आकृष्ट करती है और समाधान खोजने की चुनौती-सी दे डालती है। भाषाविदों ने प्राचीन शिक्षाशास्त्रों में इसके उच्चारण की जो व्यवस्था दी है वह आज अपर्याप्त घोषित कर दी गई है। पाणिनीय शिक्षा में इसका मूर्धा स्थान और विवृत[2] प्रयत्न कहा गया है। विवृत प्रयत्न तो सभी स्वरों का है अतः ऋकार की विचित्र रचना पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। इस प्रबंध में हम इस विषय पर विस्तार से विचार करना चाहेंगे और सुगमता के लिए अपना अध्ययन पांच उपशीर्षकों में विभक्त करेंगे।

(क) 'ऋ' स्वर की रचना

यहाँ रचना से हमारा तात्पर्य 'ऋ' की बनावट से है। इस पर विचार करने पर हम अन्य स्वरों से इसकी विलक्षणता को स्वतः समझ लेंगे और इस स्वर के उच्चारण की समस्या का समाधान ढूंढ सकेंगे।

(1) सर्वप्रथम यह उद्घोषित कर देना आवश्यक है कि ऋकार शुद्धस्वर न होकर मिश्र-स्वर है जिसमें स्वरभाग आसपास है और शनिकुंडली के समान अपने झाडे में व्यंजनांश-रेफ-को छिपाए है। जैसे नारियल का रोमांचित वेष्टन अपने भीतर गूदी छिपाए रहता है और उस गूदी या गरी को भूल कर हम पूरे को फल कह देते हैं वही दशा 'ऋ' स्वर की है। इसे स्वर कहते समय अंतर्निहित रेफांश को पूर्णतया भुला दिया जाता है।

कात्यायन ने एक ऐसा 'ऋ' माना है जिसके स्वरांश के बीच दो रेफ विद्यमान रहते हैं[3] फलतः स्वर के ह्रस्व रहने पर भी पूरा अक्षर द्विमात्रिक हो कर दीर्घ हो जाता है,। महाभाष्यकार पतंजलि ने उस द्विरेफ 'ऋ' को भी स्वाभाविक स्वर माना है।[4]

---

[1] स्युमूर्धन्या ऋटुरषाः।
[2] स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्।
[3] सू० 6/1/101 पर वार्तिक।
[4] सू० 1/1/9 पर महाभाष्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभाष्य में 'ऋ' को स्युक्त या रवत् स्वर भी कहा गया है[1]। ऋक्प्रातिशाख्य ने तो स्पष्ट ही यह स्वीकार किया है[2]।

(2) स्वर और व्यंजन का मिश्र रूप देख लेने पर 'ऋ' के उच्चारण स्थान का प्रश्न सामने आ जाता है। यहाँ एक स्वीकृत तथ्य की ओर संकेत कर देना अभीष्ट है कि 'ऋ' का स्थान ऋग्वेदकाल से सूत्रकाल तक एक नहीं रहा है, आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित हुआ है। यह कथा वैज्ञानिक होने के साथ-साथ मनोरंजक भी है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में उसका स्थान जिह्वामूल माना है,[3] ठीक वहीं जहाँ से आज भी 'ह' और 'कवर्ग' का उच्चारण होता है[4]। आगे चल कर यही जिह्वामूल किंचित अंतर से कंठ कहा जाने लगा[5]। पाणिनीय शिक्षा में 'ऋ' का स्थान जिह्वामूल न मान कर मूर्धा माना है। इस विशाल अंतर का एक मात्र कारण यहीं दिखता है कि रेफांश और स्वरांश की खींचातानी से यह नौबत आई होगी। ऋक्प्रातिशाख्य में 'र' का उच्चारणस्थान 'दंतमूल' अथवा 'वर्स्व' कहा गया है[6] जब कि पाणिनि में वहीं मूर्धन्य है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋग्वेदकाल के रेफराज ने स्वरांश को जिह्वामूल से खींच कर अपने देश का प्रवासी बनाना चाहा तो स्वरदेव ने अपनी आकर्षण शक्ति आजमाई। दोनों के तुल्यबल विरोध का परिणाम इस समझौते में मिलता है कि बीचोबीच मूर्धा पर दोनों टिक गए और महायुद्ध से अवकाश मिला।

इस प्रकार स्वरांश और व्यंजनांश दोनों मूर्धन्य हो गए तो स्वतंत्र व्यवहार में आने वाले 'र' का स्थान भी मूर्धा ही ठहरा दिया गया। स्पष्ट ही मनुष्य ने उच्चारण की सुविधा के लिए इतनी अशांति मचाई कि दोनों प्रवास स्वीकृत कर मनुष्य के आदेशपालक बने रहे परंतु इस शांत युद्ध में सैकड़ों वर्षों का समय लग गया, इसे निर्विवाद मानिए।

(3) प्रयत्न की दृष्टि से देखें तो सभी स्वरों के समान 'ऋ' स्वर भी विवृत है परंतु अन्य स्वरों की तुलना में इसे पूर्ण विवृत नहीं मान सकते। कारण यही है कि जब वह पूर्ण शुद्ध स्वर नहीं तो पूर्ण विवृत कैसे हो सकता है। उसका रेफांश ईषत्स्पृष्ट है अर्थात् रकार के उच्चारण में किंचित् स्पर्श अनुभव होता है[7]। अतः 'ऋ' के उच्चारण

---

[1]महाभाष्य आह्निक 2 मा० सू० पर वार्तिक–'खत्प्रतिषेधाच्य'।

[2]'रेफोऽ स्त्यृकारे च परस्य चार्धे पूर्वे ह्रसीयांस्तु न वेतरस्मात्। मध्येसः ऋक्प्रातिशाख्य पटल 13 सू० 34।

[3]ऋक्प्रातिशाख्य-पटल 1 सू० 41।

[4]'जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः'— पाणिनीय शिक्षा।

[5]'अकुह विसर्जनीयानां कण्ठः'— सिद्धांतकौमुदी-संज्ञा प्रकरण।

[6]ऋक्प्रातिशाख्य-पटल 1 सू० 45,46।

[7]अयोडस्पृष्टा यणस्त्वीषत्—पा० शि०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यदि हम स्वरयंत्र को पूरा खोल देंगे—विवृत कर देंगे—तो अ, इ, उ आदि कुछ बोल जाएँ 'ऋ' नहीं बोल सकते। इसके उच्चारणार्थ 'ईषत्' या थोड़ा स्पर्श तो उच्चारणस्थान में करना ही होगा, भले ही वह आधी या चौथाई मात्रा में ही क्यों न हो। इसी ईषत्स्पर्श ने 'ऋ' को अन्य स्वरों से विलक्षणता दे रक्खी है। आसपास लिपटे हुए स्वरांश ने उसे पूर्ण व्यंजन भी न रहने दिया—'संकरवर्ण' बना डाला। इस प्रकार 'ऋ' ईषत्स्पृष्ट-विवृत स्वर है—मिश्र स्वर है।

(ख) उच्चारण की विविधता

अब हम उच्चारण-वैविध्य पर विचार करें तो समस्या का रूप स्पष्ट हो जाए और समाधान खोजने की दिशा में प्रगति हो।

(1) दक्षिण भारत में इसका उच्चारण उकार प्रधान 'रु' के सदृश होता है। स्पष्ट है कि यहां व्यंजनांश को मूर्धन्य और स्वरांश को ओष्ठ्य कर लिया गया है जो उपर्युक्त परंपरा के साथ ठीक नहीं बैठता क्योंकि 'ऋ' का ओष्ठ स्थानीय होना कभी मान्य नहीं रहा।

(2) उत्तर भारत का उच्चारण इकार प्रधान 'रि' के समान होता है। यहाँ स्वरांश को तालव्य बना लिया गया है। मूर्धा से समीप होने के कारण ही यह स्थानांतरण संभव हुआ है जैसा कि हम 'ष' के विषय में देखते हैं कि वह तालव्यरूप में प्रायः बोला जाने लगा है। बहुत कम सज्जन हैं जो ठीक मूर्धन्य उच्चारण की कृपा करते हैं।

(3) भूल से यदि कुछ लोग 'ऋ' को 'र' बना कर 'कृषि' का 'क्रषि' उच्चारण करते हैं तो केवल इसलिए ही कि 'ऋ' स्वर की मात्रा को वे रेफ समझते हैं। ऐसे महानुभाव तो 'ब्रज' और 'वृज' में अंतर नहीं कर पाते तथा 'शृंगार' को 'श्रंगार' लिखने में गौरव समझते हैं। इस प्रकार की समस्या भ्रममूलक है और वैसे भ्रम की दवा तत्काल न की जाए तो स्थायी रोग बन कर किसी-न-किसी दिन पूरे समाज में उसके फैल जाने की आशंका रहती है।

ऊपर जिन तीन उच्चारणों का निर्देश किया गया है उनमें से प्रथम दो ही ऐसे हैं जो 'ऋ' स्वर को विभिन्न रूप से जानबूझ कर अपनाए गए हैं। इन सभी उच्चारणों में अब ऐसा लगता है कि व्यंजनांश को आदि में और स्वरांश को अंत में स्थिर कर लिया गया है। स्वरांश की वह लपेट या आवरणवत् स्थिति एक प्रकार से समाप्त हो गई है और यही मूल प्रश्न है। उव्वट ने प्रातिशाख्य-भाष्य में स्पष्ट कर दिया है कि स्वरांश आदि या अंत में नहीं है, प्रत्युत आसपास है और रेफांश उसके बीच में है[1]। सूत्र में यह भी स्पष्ट है कि यह रेफांश साधारण रकार की अपेक्षा कम रहता है परंतु कभी-कभी साधारण 'र' के बराबर ही बैठ जाए तो हानि नहीं[2]। हमने यदि आदिम स्वरांश को घिस डाला है तो यह हमारी भाषा का भले ही विकास हुआ हो, बेचारे ऋकार का तो

---

[1]ऋक्प्रातिशाख्य-उव्वटभाष्य 13/34।

[2]ऋक्प्रातिशाख्य 13/34।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ह्रास ही माना जाएगा। इस प्रकार हमने 'ऋ' में चार परिवर्तन पाए हैं :—

अ—व्यंजनांश आदि में और स्वरांश अंत में स्थिर हो गया है।

आ—व्यंजनांश स्वाभाविक रेफ की आधी मात्रा हो गया है ।[1]

इ—दो रेफों वाला 'ऋ' पूर्णतया अस्त हो गया है।

ई—स्वर की मूर्धन्यता जाती रही है और तालव्य या ओष्ठ्य भाव आ गया है।

यही समस्या का यथार्थ स्वरूप है।

(ग) ऋ-स्थानीय विकारों की बहुरूपता

हम समस्या का समाधान करने के पूर्व देखेंगे कि विविध भाषाओं में इस स्वर ने कौन-कौन-से वैभाषिक विकास प्राप्त किए हैं। सुविधा के लिए हम यह संदर्भ चार भागों में बाँट कर देखेंगे।

(य) संस्कृत विकार

संस्कृत व्याकरण के अनुसार ऋकार प्रायः पाँच विकार ग्रहण करता है जिनमें विभिन्नता यह है कि जहाँ अन्य स्वर अपने ही स्थान वाले स्वरों या व्यंजनों के रूप में विकास लेते हैं—जैसे, इ, ए —हरि, हरे अथवा इ, य—दधि+आनय=दध्यानय—वहाँ 'ऋ' ऐसे विकार लेता है जहाँ कि व्यंजनांश का स्थानसाम्य सदैव रहता है पर स्वरांश अ, इ, उ में से ही कोई होता है:—

(1) अधिकतर विकास 'अर्' या 'आर्' होते हैं। मृद्—मर्दन, कृ—करण। कृ—अकार्षीत्, भ-भार्या आदि।

(2) दूसरे स्थान पर वे विकार हैं जो 'इर्' अथवा 'ईर', के रूप में आते हैं। कृ—किरति, कृत—कीर्त्तन।

(3) ओष्ठ्य व्यंजन वाले धातुओं का 'ऋ' 'उर', या 'ऊ' के विकार लेता है। पृ—पिपूर्तः, पिपुरति आदि।

(4) कहीं-कहीं, 'रि' विकार भी पाया जाता है। भृ—भ्रियात् आदि। ऐसा विकार यकारादि प्रत्यय के पूर्व ही मिलता है।

(5) कभी-कभी 'र' भी होता है। दृश्—द्रक्ष्यति, द्रष्टा आदि।

इन विकारों में बाह्य प्रभाव से रहित दो ही विकार हैं—एक तो उकारघटित और दूसरे इकार-घटित। लगता है कि वैदिक काल में ही कंठ या जिह्वामूल से 'ऋ' का उच्चारण विचलित हो कर तालु की दिशा में चल पड़ा था परंतु अधिक प्रयोगों में उसकी जिह्वामूलता सुरक्षित थी। यही कारण है कि अधिकतर विकारों में जिह्वामूल या कंठ स्थान का अकार स्वर उसके स्थान पर आता है। कुछ स्थलों

---

[1]व्यंजनं चार्धमात्रकम्—पा० शिक्षा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वह कंठ से विचलित हो कर तालु की ओर आ जाता था जिसका परिणाम इकार घटित विकार है। सूत्रकाल में शुद्ध 'ऋ' तालू के पार्श्ववर्ती मूर्धा से बोला जाने लगा, इसका भाषा वैज्ञानिक हेतु यही हो सकता है।

(र) प्राकृत-विकार

प्राकृत में 'ऋ' ज्यों का त्यों भी मिलता है और अनेक परिवर्तित रूपों में भी आता है :—

(1) 'अ' रूप में—कृत्यम=कच्चु। मृतक=मऽअ=मरा। कृत=कऽअ, कडे=करा=करना आदि।

(2) 'इ' रूप में—सुकृतम्-सुकिउ। कृतः=किओ=किया। हृदयम्=हिअअं=हिया। कृष्णः=किसणो=किसुन। दृष्टिः=दिट्ठी=दीठ। ऋषिः=इसी। कृषाणः=किसान।

(3) 'उ' रूप में—ऋतुः=उदू आदि।

इन में इकारघटित विकार ही अधिक हैं क्योंकि प्राकृत के विकार संस्कृत सम्मत वर्णोच्चारण के आधार पर हुए हैं।

(ल) ईरानी विकार

अवेस्ती और आधुनिक फ़ारसी दो भागों में बाँट कर इन विकारों का अध्ययन कर लें तो विषय स्पष्ट हो जाएगा।

अ—अवेस्ती विकार—

(1) 'अ' रूप में —भृ-भरति=Baraiti
होतृ=Zaotar

(2) 'इ' रूप में—कृणोति=Kerenaoti
वृकः=Vereka
वृत्रः=Verethra

आ—फ़ारसी के विकार—

फ़ारसी से हम अर्वाचीन फ़ारसी लेते हैं क्योंकि वही समय से हमारे समीप है तथा विषय के स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त है :—

(1) 'अ' रूप में—मृत्यु=मर्ग, दृ=दरीदन्,
ऋच्छति=रसीदन्, कृ=कर्दन, मातृ=मादर,
पितृ=पिदर, भ्रातृ=बिरादर, दुहितृ=दुख़्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) 'इ' रूप में--गृणाति=गिरिफ़्तन्, ऋक्ष्=रिश्तन्

(3) 'उ' रूप में--पृच्छति=पुर्शीदन, मृत=मुर्दा, भृ=बुर्दन्, पृ=पुरीदन्, गृ=ख़ुर्दन् ।

फ़ारसी में अकार-प्रधान विकार ही अधिक हैं। उकार प्रधान प्रायः वहीं हैं जहाँ ओष्ठ्य व्यंजन हैं अथवा यदि वैसा नहीं है तो मिथ्यासादृश्य मानना चाहिए। इकार-प्रधान विकारों की बड़ी कमी है जो इस बात का प्रमाण हैं कि ईरानी भाषाओं का संबंध ऋग्वेद काल से ही अधिक है, बाद में दोनों देशों ने अलग-अलग भाषाएं विकसित कर ली हैं। अवेस्तो में तो फिर भी इकार की प्रधानता है।

(व) यूरोपीय विकार

ग्रीक और लैटिन से लेकर आधुनिक भाषाओं तक इस विकार का क्षेत्र है :--

(1) ग्रीक--पितृ=Pater (Father); हृद्=Kardia (heart); मातृ=Meter (Mother); भृ=Pherein (bear)

(2) लैटिन--पितृ=Pater ; मातृ=Mater; भृ=Ferre

(3) अँग्रेज़ी--संस्कृत का 'तृ' प्रत्यय व्यंजनरहित हो कर अँग्रेज़ी का 'er' प्रत्यय बनता है तो स्पष्ट ही संस्कृत का 'ऋ' ही है। धातृ=doer भर्तृ=bearer, श्रोतृ=hearer आदि।

इन विकारों के अनुसार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूलभाषाकाल से ही 'ऋ' एक वैविध्यग्रस्त स्वर बनता चला आया है जिसके स्वरांश ने अधिकतर 'अ' और 'इ' से साम्य रक्खा है। यूरोपीय विकारों में अधिकतर स्वरांश का अनुवाद 'e' स्वर से हुआ है जो पुष्ट करता है कि हमारा 'ऋ' तालु के समीप कहीं से बोला जाता रहा है। उकार से उसका साम्य अल्प ही रहा है जो समीपस्थ वर्ण की छाया-मात्र कहा जा सकता है।

(घ) समाधान की खोज

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम 'ऋ' के उच्चारण की समस्या का समाधान खोजने में सहायता पा सकते हैं। वह समाधान व्यावहारिक कम, वैज्ञानिक अधिक होगा।

पाणिनि के आधार पर 'ऋ' का उच्चारण मूर्धन्य होना चाहिए जो तालव्य से मिलता-जुलता होगा क्योंकि मूर्धा भी तालू का ही पश्चभाग है। ऊपर जिन विकारों का संकलन किया गया है उनका अनुपात 'इ' की ओर झुकाव रखता है। 'अ' विकार की अधिकता उन्हीं भाषाओं में है जिनकी वैदिक भाषा से समीपता रही है अन्यथा प्राकृत और यूरोपीय विकारों में 'इ' की प्रधानता है। 'तृ' का 'er' तो स्पष्ट ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इकार तुल्य उच्चारण की ओर संकेत करता है। 'भ' के लैटिन ferre में तो 'erre' अंश दो रेफों के आसपास स्वरावरण वाले 'ऋ' की स्पष्ट स्वीकृति दे देता है और व्यंजनांश के दोनों ओर तालव्य 'e' विशेष महत्व की वस्तु है, लगता है कि मूल भाषा में भी आज से मिलता जुलता उच्चारण होता रहा होगा क्योंकि ग्रीक और लैटिन भाषाएँ संस्कृत की अपेक्षा कहीं अधिक स्वररक्षा कर सकी हैं—ऐसा भाषाविज्ञों का मत है। अवेस्ती का Kere 'कृ' का सहोदर है जो रेफ के आसपास तालव्य स्वर की रक्षा किए हुए है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'ऋ' स्वर का उच्चारण तालव्य-मूर्धन्य रहा है। कम से कम पाणिनि की परंपरा की पुष्टि सभी निष्कर्ष करते हैं।

(ङ) उपसंहार

सार रूप में हमें समझ लेना चाहिए कि यद्यपि 'ऋ' पुरातन काल से परिवर्तमान स्वर--मिश्र स्वर--रहा है फिर भी पाणिनि काल की परंपरा के समीप उसका उच्चारण तथा स्वरूप कुछ ऐसा होना चाहिए :—

(1) वह चूँकि व्यंजनांश में मूर्धन्य है अतः स्वरांश में भी मूर्धन्य रहना चाहिए जो तालव्य उच्चारण के समीप है पर 'मूर्धा' कठोर तालू न हो कर कोमल तालू है। पूरे का उच्चारण वहीं से करना परंपरागत है।

(2) रेफ का उच्चारण चूँकि लोडित होता है अतः उसके पूर्व स्वर श्रुति अपने आप आ जाती है और बाद में तो स्वर है ही। इस प्रकार रेफांश के दोनों ओर आज भी स्वर-स्थिति पाई जा सकती है। शर्त यही है कि हम ठीक से उच्चारण करना चाहें। हिंदी में उच्चारण की व्यवस्था है नहीं, अतः प्रायः विकृत उच्चारण ही किया जाता है, यह दूसरी बात है।

(3) बोलते समय ध्यान रखें कि 'ऋ' का उच्चारण वहीं से हो जहाँ से 'ट' का उच्चारण होता है। आजकल टवर्ग का उच्चारण भी तभी मूर्धन्य हो पाता है जब हम सावधान रहते हैं अन्यथा वह भी तालव्य चलता है। ऐसी दशा में 'र' और 'ऋ' भी तालव्य हो जाएँ तो क्या किया जाए? थोड़ी सावधानी बरतें तो जीभ को ताल से पीछे मूर्धा की ओर ले जा सकते हैं और शुद्ध उच्चारण संभव है।

(4) ऋकार अन्य स्वरों के समान पूर्णविकृत नहीं है। रेफांश के उच्चारण में थोड़ा सा स्पर्श भी उच्चारण-स्थान में अपेक्षित है।

(5) 'ऋ' को शुद्ध स्वर मानना भ्रांत है। वह मिश्र-ईषत्स्पृष्ट--विवृत स्वर है। स्वरांश की अधिक मात्रा के कारण ही वह स्वर कहा जाता है।

स्पष्ट है कि हम पाणिनि काल के उच्चारण से इतना दूर नहीं हैं कि 'ऋ' को वर्णमाला से निष्कासन देना आवश्यक हो जाए। सुविधा भाषा पर लादी नहीं जाती प्रत्युत आंतरिक प्रयत्नों से स्वतः भाषा में जो परिवर्तन आ जाते हैं उनका भी तभी स्वागत होता है जब उन परिवर्तनों का समुच्चय नई भाषा खड़ी कर दे। यदि रोज़ाना के इक्के-दुक्के विकारों पर भाषा बदल दी जाए तो साहित्य की दैनिक मृत्यु अवश्यंभावी है जो सर्वथा अशोभन है। वर्णों के विषय में उच्चारण की असावधानी दूर करके हमें वर्णमाला की हिंदी में भी रक्षा करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक ब्रजभाषा में संयुक्त क्रियाओं का स्वरूप

अंबाप्रसाद सुमन

हिंदी की भांति अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी संयुक्त क्रियाएँ बहुत बड़ी संख्या में पाई जाती हैं। संस्कृत और फ़ारसी में भी संयुक्त क्रियाओं के उदाहरण मिलते हैं।

हिंदी-व्याकरण में संयुक्त क्रियाओं का रूप-विश्लेषण एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुखतत्त्व है। संयुक्त क्रियाओं के स्वरूप का अध्ययन व्याकरण के अर्थ विचार से भी संबंध रखता है, वैसे व्याकरणीय ढांचे के आधार पर भी संयुक्त क्रियाओं के स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।

ऋग्वेद के ऋषि ने 'वाच'[1] के संबंध में जो कथन किया है, वह कथन संयुक्त क्रियाओं के प्रति अवैयाकरण के संबंध में पूरी तरह चरितार्थ हो सकता है।

एक संयुक्त क्रिया में दो अथवा दो से अधिक क्रियाएँ ऐसे ढंग से मिली हुई रहती हैं कि उन्हें व्याकरणीय ढांचे अथवा अर्थ-स्वरूप की दृष्टि से पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता। इन संश्लिष्ट क्रियाओं में प्रथम क्रिया तो प्रधान विशेष क्रिया होती है और शेष दूसरी क्रियाएँ या तो अप्रधान विशेष होती हैं या सहायक क्रियाएँ होती हैं। प्रधान विशेष क्रिया तो मुख्य अर्थ को प्रकट करती हैं और शेष दूसरी क्रियाएँ उसके अर्थ के पहलू अथवा छाया को प्रकट करने में सहायक सिद्ध होती हैं। किंतु उन संश्लिष्ट क्रियाओं के दोनों तत्त्व व्याकरणीय ढांचे के अंतर्गत अपृथक्य होते हैं। जैसे——छोरा **उठि पर्यो**, छोरी जा काम ए **कर सकैगी**, छोरा **उठ्बैठि सकैगो** (जिला अलीगढ़)।

संयुक्त क्रिया में प्रधान विशेष क्रिया को छोड़ कर शेष जो अप्रधान या सहायक क्रियाएँ होती हैं, वे अपने मुख्य अर्थ तथा महत्त्व को त्याग देती हैं, लेकिन अपने से पूर्व आने वाली प्रधान विशेष क्रिया के अर्थ में कुछ परिवर्तन अथवा संवर्द्धन अवश्य उत्पन्न कर देती हैं। प्रधान विशेष क्रिया वास्तव में कृदंत, संज्ञा अथवा विशेषण के

---

1 "उतत्वः प्रश्यन् न ददर्श वाचम्।
उतत्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्॥—ऋक् 10/79/1।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रूप में आती है और अप्रधान विशेष क्रिया अथवा सहायक क्रिया संश्लिष्टावस्था में रहते हुए ही एक प्रकार से काल की सूचना देती है।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त क्रिया और एकाकी मुख्य क्रिया के अंतर को प्रकट करने के लिए हम यहाँ दो वाक्यों को प्रस्तुत कर रहे हैं :—

ब्रजभाषा	**हिंदी (साहित्यिक खड़ी बोली)**
छोरा बड़ौ ह्वै **गयौ**	लड़का बड़ा **हो गया**।
छोरा तुम्हारे घर् ह्वै **गयौ**, पर् तुम् न मिले।	लड़का तुम्हारे घर **हो गया** परंतु तुम न मिले।

ब्रजभाषा के प्रथम वाक्य में '**ह्वै गयौ**' एक क्रिया है। और वह संयुक्त है। इसमें 'ह्वै' अर्थ की दृष्टि से प्रधान है। '**गयौ**' तो केवल भूतकाल को प्रकट करती है। अतः यहाँ '**होना**' प्रधान विशेष क्रिया और '**जाना**' अप्रधान विशेष क्रिया है। '**ह्वै गयौ**' में हम 'ह्वै' और '**गयौ**' को पृथक्-पृथक् भी नहीं कर सकते अर्थात् '**छोरा बड़ौ ह्वै गयौ**' का यह मंतव्य नहीं कि लड़का पहले बड़ा हुआ और फिर कहीं चला गया। वास्तव में दोनों क्रियाओं का एक ही अर्थ है कि 'लड़का बड़ा हुआ'। यहाँ '**गयौ**' का कोई अर्थ नहीं, वह तो केवल सामान्य भूतकाल प्रकट कर रही है। '**ह्वै गयौ**' को दो खंडों में अलग-अलग भी नहीं किया जा सकता। इसलिए '**ह्वै गयौ**' संयुक्त क्रिया है। व्याकरणीय गठन में भी '**ह्वै गयौ**' अविभाज्य है और एक है।

किंतु ब्रजभाषा के द्वितीय वाक्य का '**ह्वै गयौ**' भिन्न अर्थ दे रहा है। वहाँ '**ह्वै गयौ**' का अर्थ है 'होकर गया' अर्थात् लड़का पहले तुम्हारे घर पहुँचा और फिर वहाँ से चला गया। ऐसी दशा में अर्थ की दृष्टि से वाक्य को यों समझना चाहिए कि '**छोरा तुम्हारे घर ह्वै कै गयौ, पर तुम् न मिले**'। इसलिए वाक्य के व्याकरणीय ढाँचे तथा अर्थ पर विचार करने पर हम कह सकते हैं कि द्वितीय वाक्य में केवल एक मुख्य क्रिया '**गयौ**' है। 'ह्वै' तो पूर्वकालिक कृदंत है जो क्रिया विशेषण की स्थिति में '**गयौ**' की विशेषता प्रकट कर रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि द्वितीय वाक्य में संयुक्त क्रिया न होकर, केवल एकाकी मुख्य क्रिया है और वह केवल '**गयौ**' है। पहले आई हुई क्रिया 'ह्वै' तो वास्तव में क्रिया विशेषण है।

हिंदी (साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी) की भांति ब्रजभाषा में भी संयुक्त क्रियाएँ पर्याप्त संख्या में पाई जाती हैं। वास्तव में जनपदीय बोलियाँ ही साहित्यिक भाषाओं के मूल स्रोत हुआ करती हैं। बुलंदशहर (आधा भाग), अलीगढ़, मथुरा और आगरा ज़िले की जनभाषा ही वास्तव में 'स्टैंडर्ड' ब्रजभाषा है। इसे हम 'विशुद्ध ब्रज' या 'केंद्रीय ब्रज' के नाम से पुकार सकते हैं।[1]

---

[1]देखिए, डा० धीरेंद्र वर्मा, ब्रजभाषा, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

4—7CHD/64.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इस लेख में ब्रजभाषा की संयुक्त क्रियाओं के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए मैंने अपना आधार-क्षेत्र अलीगढ़, बुलंदशहर तथा मथुरा जिले के गाँवों को चुना है। सर्वेक्षण करने पर जो उदाहरण प्राप्त हुए हैं, उन्हें ही इस लेख में लिखा गया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रजभाषा की संयुक्त क्रियाओं को सामान्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :—

(1) क्रिया+क्रिया (कृदंत+क्रिया)[1]=उठि बैठ्यो (ज़िला अलीगढ़)

(2) संज्ञा+क्रिया=बिदा भयौ, दिखाई दयौ (ज़िला अलीगढ़)

(3) विशेषण+क्रिया=गरम् भयौ, कर्‌नी परैगी (ज़िला अलीगढ़)

ब्रजभाषा में कुछ धातुएं ऐसी हैं जो संयुक्त क्रियाओं में केवल द्‌वितीय अथवा प्रथमेतर सदस्य के रूप में ही आ सकती हैं। जैसे—√सक्

द्‌वितीय सदस्य (ब्रजभाषा)	**प्रथमेतर सदस्य (ब्रजभाषा)**
(1) बाई काँम ऐं छोरा **कर् सकै**। (ज़िला बुलंदशहर)	(1) ऊ या काँम ऐं **कर दै सकैगो**। (बुलंदशहर)
(2) गु रुपया **दे सकै**। (ज़िला अलीगढ़)	(2) गु **उठाइल सकैगो**। (अलीगढ़)

द्‌वितीय सदस्य (हिंदी)	**प्रथमेतर सदस्य (हिंदी)**
(1) इस काम को लड़का नहीं **कर सकता** है।	(1) वह इस काम को **कर दे सकेगा**।
(2) वह रुपए नहीं **दे सकता**।	(2) वह **उठा ले सकेगा, उठा ले जा सकेगा**।

कुछ विशेष धातुएँ ऐसी हैं जो ब्रजभाषा की संयुक्त क्रियाओं में प्रथम सदस्य तथा द्‌वितीय सदस्य—दोनों रूपों में आ सकती हैं।

धातु	**प्रथम सदस्य (ब्रज० तथा हिंदी)**	**द्‌वितीय सदस्य (ब्रज० तथा हिंदी)**
√आ =	**ब्रज** आई परौ (अलीगढ़)—	ब्रज-मिलि आयौ।
	"आई पर्‌यौ (बुलंदशहर)—	"–करि आयो, कर आयौ।
	हिंदी० आपड़ा	हिंदी० मिल् आया।

---

[1]क्रिया का सामान्य रूप+क्रिया—यह वर्ग भी इसी में समाविष्ट समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

√उठ् = ब्रज० उठि परौ (तह० कोल, अलीगढ़) — ब्रज० बोलि उठौ ।
ब्रज० उठि पर्‌यौ [1] (अलीगढ़, बुलंदशहर, मथुरा) — बोलि उठ्यौ ।
हिंदी० उठ् पड़ा — हिंदी० बोल् उठा ।

√चुक् = ब्रज० चुकि गयौ (अलीगढ़, मथुरा) — ब्रज० करि चुकौ (चुक्यौ) ।
ब्रज० चुक् गयौ (बुलंदशहर) — ब्रज० कर् चुक्यौ ।
हिंदी० चुक् गया — हिंदी० कर् चुका ।

√जा = ब्रज० जाइ परौ, जाइ पर्‌यौ (अलीगढ़) — ब्रज० मरि जा, मर् जा ।
ब्रज० जा पर्‌यौ (बुलंदशहर) — ब्रज० मर् जा ।
ब्रज० जाई पर्‌यौ (मथुरा) — ब्रज० मरि जा, मर् जा ।
हिंदी० जा पड़ा — हिंदी० मर् जा ।

√टूट् = ब्रज० टूटि गयौ (अलीगढ़, मथुरा) — ब्रज० आई टूटौ, आई टूट्‌यौ ।
ब्रज० टूट् गयौ (बुलंदशहर) — ब्रज० आ टूट्‌यौ ।
हिंदी० टूट् गया — हिंदी० आ टूटा ।

√डार् = ब्रज० डारि दयौ (अलीगढ़) — ब्रज० दै डारौ, दै डार्‌यौ ।
डार् दियो (बुलंदशहर) — ब्रज० दै डार्‌यौ ।
हिंदी० डाल् दिया — हिंदी० दे डाला ।

√दै = ब्रज० दै गयौ — ब्रज० चल् दयौ, चल् दियौ ।
हिंदी० दे गया — हिंदी० चल् दिया ।

√पर् = ब्रज० परि गयौ (अलीगढ़, मथरा) — ब्रज० जाइ परौ, जाई पर्‌यौ ।
ब्रज० पर् गयौ (बुलंदशहर) — ब्रज० जा पर्‌यौ ।
हिंदी० पड़ गया — हिंदी० जा पड़ा ।

√पा = ब्रज० पाई लयौ (अलीगढ़, मथुरा) — ब्रज० लै पायौ ।
ब्रज० पा लियौ (बुलंदशहर) — ब्रज० लै पायौ ।
हिंदी० पा लिया — हिंदी० ले पाया ।

---

[1] 'पर्‌यौ' की 'य्' 'श्रुति अलीगढ़ ज़िले की कोल तहसील में नहीं पाई जाती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

√बैठ्=ब्रज० बैठि गयौ (अलीगढ़, मथुरा)	—ब्रज० बोलि बैठ्यौ।
ब्रज० बैठ् गयौ (बुलंदशहर)	—ब्रज० बोल् बैठ्यौ।
हिंदी० बैठ् गया	—हिंदी० बोल् बैठा।
√बन्=ब्रज० बनि परौ, बनि पर्यौ (अलीगढ़, मथुरा)	—ब्रज० आई बन्यौ।
ब्रज० बन् पर्यौ (बुलंदशहर)	—ब्रज० आ बन्यौ।
हिंदी० बन पड़ा	—हिंदी० आ बना।
√मर्=ब्रज० मरि गयौ (अलीगढ़, मथुरा)	—ब्रज० आइ मर्यौ।
ब्रज० मर गयौ (बुलंदशहर)	—ब्रज० आ मर्यौ।
हिंदी० मर् गया।	—हिंदी० आ मरा।
√रह्=ब्रज० रहि जाओ, रहै जाऔ (अलीगढ़, मथुरा)	—ब्रज० सोई रहौ।
ब्रज० रह् जाओ (बुलंदशहर)	—ब्रज० सो रहौ।
हिंदी० रह् जाओ	—हिंदी० सो रहौ।
√लग्=ब्रज० लग् सक्त्यै (अलीगढ़)—	—ब्रज० करन् लग्यौ।
ब्रज० लग् सकै (बुलंदशहर)—	—ब्रज० करन् लग्यौ।
हिंदी० लग् सकती, लग् सकता	—हिंदी० करने लगा।
√ला=ब्रज० लाइ सकै (अलीगढ़, मथुरा)	—ब्रज० करिलायौ, कर् लायौ।
ब्रज० ला सकै (बुलंदशहर)	—ब्रज० कर् लायो।
हिंदी० ला सकता, ला सकती	—हिंदी० कर् लाया।
√लै=ब्रज० लै गयौ।	—ब्रज० कर् लयौ।
हिंदी० ले गया।	—हिंदी० कर् लिया।
√ह=ब्रज० है गयौ	—ब्रज० गयौ है।
हिंदी० हो गया	—हिंदी० गया है।

पुरुष तथा वचन द्योतक संयुक्त क्रियाएँ

1. क्रिया+किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.1 वर्तमानकालिक कृदंत+क्रिया

(क) ज़िला अलीगढ़—

	एक वचन		बहु वचन	
उत्तम पु०	तज्तूं[1]	(=तज्ता हूँ),	तज्तएँ[2]	(तज्ते हैं)।
मध्यम पु०	तज्त्वै	(=तज्ता है),	तज्तौ	(तज्ते हो)।
अन्य पु०	तज्त्वै	(=तज्ता है),	तज्तएँ	(तज्ते हैं)।

(ख) ज़िला बुलंदशहर—

उत्तम पु०	तजूँ हूँ	(तज्ता हूँ);	तजैं हैं	(तज्ते हैं)।
मध्यम पु०	तजै है	(तज्ता है);	तजौ हौ	(तज्ते हो)।
अन्य पु०	तजै है	(तज्ता है);	तजैं हैं	(तज्ते हैं)।

(ग) ज़िला मथुरा (तहसील माट)—

उत्तम पु०	तज्तूँ	(तज्ता हूँ)	तज्तएँ	(तज्ते हैं)।
मध्यम पु०	तज्त्वै	(तज्ता है)	तज्तौ	(तज्ते हो)।
अन्य पु०	तज्त्वै	(तज्ता है)।	तज्तऐं	(तज्ते हूँ)।

भूतकालिक कृदंत+क्रिया

(क) ज़िला अलीगढ़ तथा (ग) ज़िला मथुरा—

	एक वचन		बहु वचन	
उत्तम पु०	चलौ आयौ, चल्यौ आयौ	(चला आया)	चले आए	(=चले आये)।
मध्यम पु०	चलौ आयौ, चल्यौ आयौ	(चला आया)	चले आए	(=चले आये)।
अन्य पु०	चलौ आयौ, चल्यौ आयौ	(चला आया)	चले आए	(=चले आये[3])।

विशेष : उक्त संयुक्त क्रिया–रूपों पर वचन का प्रभाव तो है, किंतु पुरुष का प्रभाव नहीं है। तीनों पुरुषों में रूप समान हैं।

---

[1]तज्त हूँ>तज्तूं ।

[2]तज्त हैं>तज्तऐं

[3]'भयौ करै' (=हुआ करता है)—यह भी भूतकालिक कृदंत+क्रिया से बना हुआ रूप है जो अलीगढ़ की खैर तहसील में प्रचलित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) जिला बुलंदशहर—

उत्तम पु०	चल्यौ आयौ (=चला आया)	चले आए (चले आये)।
मध्यम पु०	चल्यौ आयौ (=चला आया)	चले आए (चले आये)।
अन्य पु०	चल्यौ आयौ (=चला आया)	चले आए (चले आये)।

विशेष :—तीनों पुरुषों में रूप समान हैं

1.3 पूर्वकालिक कृदंत+क्रिया

(क) जिला अलीगढ़ तथा (ग) जिला मथुरा

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पु०	बोलि उठौ, बोलि उठ्यौ (बोल् उठा)	बोलि उठे (=बोल् उठे)।
मध्यम पु०	बोलि उठौ, बोलि उठ्यौ (बोल् उठा)	बोलि उठे (=बोल् उठे)।
अन्य पु०	बोलि उठौ, बोलि उठ्यौ (बोल् उठा)	बोलि उठे (=बोल् उठे)।

(ख) जिला बुलंदशहर—

उत्तम पु०	बोल् उठ्यौ (बोल् उठा)	बोल् उठे (बोल उठे)।
मध्यम पु०	बोल् उठ्यौ (बोल् उठा)	बोल् उठे (बोल उठे)।
अन्य पु०	बोल् उठ्यौ (बोल् उठा)	बोल् उठे (बोल उठे)।

विशेष—तीनों पुरुषों में रूप समान हैं। केवल वचन का प्रभाव है।

1.4. पूर्ण क्रिया द्योतक कृदंत+क्रिया

(क) जिला अलीगढ़ तथा (ग) जिला मथुरा—

उत्तम पु०	गहें ठाड़ो (पकड़े खड़ा था)	गहें ठाड़े (पकड़े खड़े थे)।
मध्यम पु०	गहें ठाड़ो (पकड़े खड़ा था)	गहें ठाड़े (पकड़े खड़े थे)।
अन्य पु ०	गहें ठाड़ो (पकड़े खड़ा था)	गहें ठाड़े (पकड़े खड़े थे)।

(ख) जिला बुलंदशहर

उत्तम पु ०	गहे ठाड़ौ (=पकड़े खड़ा था)	गहे ठाड़े (पकड़े खड़े थे)।
मध्यम पु०	गहे ठाड़ौ (=पकड़े खड़ा था)	गहे ठाड़े (पकड़े खड़े थे)।
अन्य पु०	गहे ठाड़ौ (=पकड़े खड़ा था)	गहे ठाड़े (पकड़े खड़े थे)।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत+क्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी संयुक्त क्रिया प्रायः भाववाच्य रूप[1] रखती है।

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
छोरी ते हलुआ खातु नाँइं बनें (खाते नहीं बनता)	छोरी ते रोटी खात् नाँइँ बनें (खाते नहीं बनती)।
छोरा ते हलुआ खातु नाँइं बनें (खाते नहीं बनता)	छोरा ते रोटी खात् नाँइँ बने (खाते नहीं बनती)।

2. संज्ञा + क्रिया

2.1 क्रिया का सामान्य रूप + क्रिया

(क) जिला अलीगढ़ तथा (ग) जिला मथुरा

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पु०	भाग्नौ चाहतूं (भाग्नौं चाहता हूं)	भाग्नौं चाहत ऐं (भाग्ना चाहते हैं)।
मध्यम पु०	भाग्नौ चाहुत्वै (भाग्ना चाहता है)	भाग्नौं चाहतौ (चाहते हो)।
अन्य पु०	भागनौ चाह त्वै (भाग्ना चाहता है)	भाग्नौं चाहत ऐं (भाग्ना चाहते हैं)।

(ख) जिला बुलंदशहर

उत्तम पु०	भाग्नौ चाहूँ (भागना चाहता हूँ)	भाग्नौ चाहें (भाग्ना चाहते हैं)।
मध्यम पु०	भाग्नौ चाहै (भागना चाहता है)	भाग्नौ चाहौ (भाग्ना चाहते हो)।
अन्य पु०	भाग्नौ चाहै (भागना चाहता है)	भाग्नौ चाहें (भाग्ना चाहते हैं)।

विशेष—'चाहै', क्रिया तिड़्न्तरूपिणी है। जैसे : छोरा चाहै; छोरी चाहै। कुछ प्रयोग ऐसे भी मिलते हैं जिनमें क्रिया के सामान्य रूप की पुनरुक्ति भी हो जाती है। जैसे—

गु पूजन— पाजन् लगौ (अलीगढ़) (वह पूज्ने-पाज्ने लगा)।

---

[1]जब क्रिया न कर्ता के लिंग-वचन से और न कर्म के लिंग-वचन से प्रभावित हो, तब भाव वाच्य की क्रिया कहाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2.2 शुद्ध संज्ञा + क्रिया

(क) जिला अलीगढ़ तथा (ग) मथुरा

	एक वचन	**बहु वचन**
उत्तम पु०	बिदा भयौ (=बिदा हुआ)	बिदा भये (बिदा हुए)।
मध्य पु०	बिदा भयौ (=बिदा हुआ)	बिदा भये (बिदा हुए)।
अन्य पु०	बिदा भयौ (=बिदा हुआ)	बिदा भये (बिदा हुए)।

(ख) जिला बुलंदशहर

उत्तम पु०	बिदा हुयौ (=बिदा हुआ)	बिदा हुए (बिदा हुए)।
मध्यम पु०	बिदा हुयौ (=बिदा हुआ)	बिदा हुए (बिदा हुए)।
अन्य पु०	बिदा हुयौ (=बिदा हुआ)	बिदा हुए (बिदा हुए)।

विशेष--'आँखि मार्नौं,' 'दम् फूलनौं', 'गुल खिल्नौं' आदि मुहावरे इसी कोटि (संज्ञा + क्रिया) में आते हैं।

3. विशेषण + क्रिया

(क) जिला अलीगढ़ तथा (ग) जिला मथुरा

	एक वचन	**बहु वचन**
उत्तम पु०	पीरौ परुड़गो (पीला पड़ूँगा)	पीरे परिड़्गे (पीले पड़ेंगे)।
मध्यम पु०	पीरौ परैंगौ (पीला पड़ेगा)	पीरे परौगे (पीले पड़ोगे)।
अन्य पु०	पीरौ परौगौ (पीला पड़ेगा)	पीरे परिड़्गे (पीले पड़ेंगे)।

(ख) बुलंदशहर

उत्तम पु०	पीरौ परड़्गौ (पीला पड़ूँगा)	पीरे परड़्गे (पीले पड़ेंगे)।
मध्यम पु०	पीरौ परैंगौ (पीला पड़ेगा)	पीरे परौगे (पीले पड़ोगे)।
अन्य पु०	पीरौ परैंगौ (पीला पड़ेगा)	पीरे परड़्गे (पीले पड़ेंगे)।

4. कुछ संयुक्त क्रियाएँ ऐसी हैं जिन में प्रथम क्रिया दो बार आती है जैसे--
   छोरा उठि उठि पर्यौ (=लड़का उठ् उठ् पड़ा)।
   छोरी उठि उठि परी (=लड़की उठ् उठ् पड़ी)।

5. कुछ संयुक्त क्रियाएँ ऐसी दो पुनरुक्त क्रियाओं से बनती हैं जो मिल कर एक बन जाती हैं किंतु उनमें अर्थ निरंतरता तथा 'पुनः पुनः' रहता है।

जैसे :— √दै + √दै = दै दैनौ (दे देना)
√लै + √लै = लै लैनों (ले लेना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

√कूट्+√कूट्=कुट्कुटानौं (कुट्कुटाना) ।

√मिच्+√मिच्=मिचमिचानौं (मिचमिचाना) ।

उदा० (1) मैंने छोरा **कुट्कुटाई लयौ** (=कुट्कुटा लिया) (अलीगढ़) ।

(2) मैंने छारी कुट्कुटाई (=कुटकुटा ली) (अलीगढ़) ।

मैंने छोरा कुट्कुटा लयौ (=कुटकुटा लिया) (बुलंदशहर) ।

मैंने छारी कुट्कुटा ली (=कुटकुटा ली) (बुलंदशहर) ।

आधुनिक ब्रजभाषा—जो बुलंदशहर, अलीगढ़ और मथुरा के ज़िलों में बोली जाती है—का यह संक्षिप्त वर्णनात्मक प्रणाली के आधार पर यहाँ संयुक्त क्रियाओं का व्याकरणिक गठन प्रस्तुत किया गया है ।

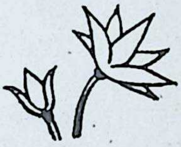

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी के विशिष्ट विभक्ति-प्रयोग : पुनर्विचार

—विश्वनाथ अय्यर

राष्ट्र भाषा हिंदी भौगौलिक बंधनों को तोड़कर भारत भर में और बाहर भी फैल रही है । उसके साहित्य-कोश का वैभव दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है । उसकी भावाभिव्यंजना पुष्ट होती जा रही है । इस पावन गंगा में कितनी ही नदियाँ और उपनदियाँ अपने शब्दों की धाराएँ मिलाती रही हैं तथा वह सब का स्वागत करती रही है । किंतु सुरसरि गंगा और हिंदी गंगा में अंतर है । सुरसरि सबको एकवर्ण बनाकर अपने से अभिन्न कर लेती है । हिंदी के निर्माता और व्याकरणकार जगह-जगह पर नियमों का व्यवधान उपस्थित करते हैं । वे विभिन्न प्रयोगों को छाँटकर शुद्ध तथा अशुद्ध की दो कोटियाँ बना लेते हैं । किंतु भाषा विकास के जल-प्रवाह में ऐसी कोटियाँ कुछ कर नहीं पातीं । अधिकतर चीजें प्रवाह में ही वह जाती हैं । सामान्यत: बोलचाल में कड़ाई का निर्वाह नहीं होता, लेकिन लिखित भाषा के क्षेत्र में व्याकरणकार बड़े कठोर रहते हैं । वे नियम का दंड लेकर दरवाज़े पर खड़े होते हैं और देखते हैं कि देवों के साथ कौन-कौन अदेव घुसते हैं।

गत तीस पैंतीस वर्षों से हिंदी दक्षिण के चारों प्रांतों में शीघ्रता से फैल रही है । थोड़े वर्षों से तो साहित्यिक स्तर पर भी हिंदी का व्यवहार हो रहा है । चूंकि भाषा हृदयगत विचारों की प्रतीक है, इसलिए दक्षिण के इन लोगों की बाह्य हिंदी के व्याकरणिक गठन पर दक्षिणी भाषाओं का प्रभाव कुछ-कुछ पड़ता हैं । इस नई स्थिति में एक नया प्रश्न भी उठता है कि व्याकरण ऐसे प्रसंग पर कौन सी नीति बरते । क्या व्याकरणकार को कठोर रुख अपनाना चाहिए और प्रत्येक नवागंतुक की अवहेलना करनी चाहिए अथवा सुबोधगम्य शब्दों को स्वीकार करना चाहिए ? इस प्रश्न को सुलझाते समय हमें यह नहीं भूलना है कि प्रत्येक युग में भाषा-संबंधी विवाद अवश्य उठा करता है और उठना भी चाहिए । यदि उदार नीति स्वीकृत हो तो भाषा का शीघ्र विकास संभव है । किंतु इसका मतलब यह भी नहीं है कि व्याकरणकार हर एक भाषा-सुधारक के सारे प्रस्ताव मंजूर करके भाषा को बहुरूपिया बना दे और उसके हास्यास्पद रूप का समर्थन करे । नवीन दिशा की ओर भाषा का मोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक और, हितकारी भी हो सकता है। हिंदी के गद्य-स्वरूप की परीक्षा करने से विदित होता है कि हिंदी ने इस नई दिशा को अपनाकर, संस्कृत का प्रयोग छोड़कर अँग्रेज़ी से तादात्म्य प्रारंभ किया है। वैसे इस नए मोड़ से हिंदी की भलाई ही हुई है। इसी प्रकार यदि दक्षिण भाषा के कुछ तर्क-संगत प्रयोगों को हिंदी स्वीकार कर ले तो क्या हिंदी की सरलता व संपन्नता बढ़ती नहीं है। यदि यह संभव हो तो इस नई नीति को ठुकराना या इंकार करना बुद्धिमानी का काम नहीं माना जाएगा।

उपर्युक्त दृष्टि से यहाँ हिंदी की कुछ विभक्तियों के सामान्य एवं विलक्षण प्रयोगों की चर्चा की जाती है। इस चर्चा के विचारसूत्र निम्नलिखित हैं :—

(1) इन प्रयोगों के स्रोत विचारणीय हैं।

(2) प्रयोग के पीछे वक्ता या लेखक के भाव अथवा तात्पर्य की बात आती है।

(3) मूल स्रोत की भाषा में भाव की जो व्याख्या की जाती है उससे वर्तमान प्रयोग की व्याख्या भिन्न हो सकती है। ऐसी हालत में पुराने रूप पर हठपूर्वक डटे रहने की बात भी पुनर्विचार माँगती है।

(4) खड़ी बोली हिंदी के निर्माण के समय तद्भव क्रिया धातुओं का बहुधा त्याग कर तत्सम कृदंतों का प्रयोग किया गया। नई क्रियाओं के रूप कृदंत के साथ सहायक क्रिया के रूप में "हो" या "कर" धातु जोड़ कर बनाए गए हैं। इसलिए कुछ क्लिष्ट विभक्ति-प्रयोग आवश्यक हुए।

(5) दक्षिणी भाषाओं में सीधे क्रियापद आमतौर पर प्रचलित हैं। इनके प्रभाव से हिंदी में रूप-परिवर्तन विचारणीय है।

(6) विकासशील भाषा में अर्थ-विकास होता ही जाता है। जब नया और व्यापक अर्थ आता है तब तदनुसार विभक्ति-परिवर्तन ज़रूरी होता है। इसके अभाव में भाषा का विकास रुकता है।

(7) व्याकरण का कार्य प्रचलित रूपों पर शुद्धता की मुहर लगाना ही है। इन रूपों की व्याख्या तो कभी-कभी संतोषजनक नहीं लगती। जैसे, संस्कृत में "षष्ठी चानादरे" सूत्र अनादर्श में षष्ठी का विधान करता है। ऐसे प्रयोग वाले वाक्य की सामान्य व्याख्या से यह अर्थ निकलना कठिन है। संस्कृत भाषा के व्याकरणकार तो "षष्ठी चानादरे" का आदर न करने वालों का अनादर करते हैं।

इन विचार-सूत्रों से यह निष्कर्ष प्रायः निकल सकता है कि भाषा-भाव का परस्पर संबंध समझने वाले सज्जन किसी अन्य भाषा में साधु प्रयोग देखकर उसका अनुकरण संभवतः हिंदी में भी करते हैं। यदि इस नए प्रयोग की साधुता तर्क प्रमाणित हो तो पुराने तर्कहीन प्रयोगों को रूढ़ि के नाम पर दृढ़ता से पकड़े रहना अनुचित लगता है। उचित तो यह होगा कि इन भाषांतरीय प्रयोगों को हिंदी में भी प्रतिष्ठा मिल जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख में मैंने एक मलयालम भाषी की दृष्टि से, मुख्यतः मलयालम और हिंदी का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है । यों तमिल, अँग्रेज़ी एवं संस्कृत के प्रयोग ये वाक्य लिखते समय भी मेरे मन में रहे हैं । इस लेख में सात प्रयोग-विधाओं पर एक-एक करके विचार करने की योजना है । उदाहरण अधिकांश विभिन्न ग्रंथों का हैं। एकाध निजी उदाहरण भी देने पड़े हैं ।

उदाहरण–1

हिंदी		मलयालम	
क्रिया :	जाना	**क्रियाः**	पोकुका (जाना) ।
विभक्ति सहित प्रयोग	से जाना।	विभक्ति सहित प्रयोग	इल् पोकुका (में जाना)।
साधारण प्रयोग :		**साधारण प्रयोग :**	
भक्त रेलगाड़ी से मथुरा जाते हैं (निजी) ।		एन्नाल् तलश्शेरियिल्निन्नु बस्सिनु पोकाम् (इन् इक्कु का रूपांतर है) (तो तलश्शेरी से बस को जा सकते हैं) ("सहृदयनाथ"…. पृ० 66), "टी० पद्मनाभन । अव्र स्वन्तं कारिल् पोयि (निजी) वे अपनी मोटर में गए।	
विलक्षण प्रयोग :		**विलक्षण प्रयोग :**	
(1) शुरू में हम एक छोटी मोटर में गए थे (सं० मेरी कहानी पृ० 49, हरिभाऊ उपाध्याय)। (2) काउंट ज़ेपलीन अपने नए हवाई जहाज़ में कौंस्टेंस झील पर फ्रीडरिश रौफिल से उड़कर बर्लिन आए (वही, पृ० 29)।		नहीं के बराबर	

स्पष्टीकरण :

इस क्रिया और क्रिया के उदाहरणों में कुछ बातें दर्शनीय हैं । हिंदी का प्रयोग "से जाना" संस्कृत-प्रयोग 'रथेन गच्छति' के तुल्य और उस प्रयोग से प्रभावित कहा जा सकता है । आजकल हमारे व्यवहार में अँग्रेज़ी का प्रभाव अधिक है । इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इस प्रयोग में गोइंग बाइ ए कार (going by a car) की झलक भी देखी जा सकती है। निदान संस्कृत एवं अंग्रेजी—दोनों की प्रयोग-साधुता हिंदी में स्वीकृत दिखाई पड़ती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी के जो विलक्षण उदाहरण एवं मलयालम के साधारण उदाहरण हैं, उनमें करण कारक की तृतीया विभक्ति के बदले अधिकरण कारक की सप्तमी विभक्ति आई है। यहाँ सप्तमी विभक्ति की व्याख्या नए ढंग से करनी पड़ेगी। "गाड़ी में" का अर्थ "गाड़ी में बैठकर" करना होगा। यह प्रयोग द्रविड़, मलयालम एवं तमिल में खूब प्रचलित है। अतएव इन भाषाओं के वक्ता हिंदी लिखते समय भी इसी विभक्ति का व्यवहार करें, यह संभव है। एक हिंदी भाषी प्रशस्त लेखक का वाक्य 'विलक्षण प्रयोग' के उदाहरण में दिया गया है, उसमें "में" का प्रयोग दिया गया है, न कि "से"। भाषा विकास की दृष्टि से हिंदी भाषा के उपर्युक्त प्रयोग में "से" के साथ 'में' का भी प्रयोग क्या वांछनीय नहीं ? यह सोचने की बात है।

उदाहरण—2

हिंदी	मलयालम
क्रिया : कहना, बताना।	**क्रिया** : परयुका
विभक्ति सहित प्रयोग—से कहना, को बताना।	विभक्ति सहित प्रयोग } **ओटु परयुका** (से कहना, से बताना)
साधारण प्रयोग :	**साधारण प्रयोग** :
(1) उन्होंने मुझसे उसमें से हिस्सा लेने को कहा (बाहर-भीतर-देवराज)।	(1) कार्त्यायनि अंमा जानकियोद परयुम् (कार्त्यायनी अम्मा जानकी से कहनी) (एतिर्प्पु—पृ० 38, केशवदेव)।
(2) हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल गया (रीढ़ की हड्डी—जगदीश चंद्र माथुर)।	(2) येशुदेवन् शीमोनोटायि ओरु उपमा परयुन्नु (ईसामसीह धनी से एक उपमा कहते हैं—विचारकौतुकम्—डा० के० एम० जार्ज)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी	मलयालम
विलक्षण प्रयोग :	**विलक्षण प्रयोग :**
(1) मैं तुम से (को) यह भेद बताता हूँ (हिंदी व्याकरण–कामताप्रसाद गुरु) ।	
(2) अब मैं तुमसे क्या बताऊँ (गोदान पृ० 41–प्रेम चंद) ।	नहीं के बराबर ।
(3) हमने राजबाला को अँधेरे में वहीं विश्राम करने को कहा (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 32–डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी) ।	
विलक्षण प्रयोग का प्रमाण :	
हिंदी व्याकरण (गुरु) सूत्र-528–बनाना क्रिया के साथ विकल्प से करण अथवा संप्रदान कारक आता है) ।	

स्पष्टीकरण :

"कहना" और "बताना" कुछ-कुछ भिन्नार्थक शब्द हैं। पर दोनों का मूल भाव एक है "कथन" । "कहना" के पहले आनेवाले विभक्ति-प्रत्यय "से" की एक व्याख्या मुझे सूझती है। वक्ता श्रोता को लक्ष्य करके कहता है और "के प्रति" के अर्थ में "से" प्रयोग आता है । यदि "बताना" का भी कमोबेश मतलब यही है तो "बताना" के पहले "को" और "कहना" के पहले "से" यह भेद असंगत है। मलयालम में अनिवार्यत: "से" अर्थ का प्रत्यय "ओटु" आता है। वहाँ "को" प्रत्यय की बात नहीं उठती। "बताना" के विषय में गुरु जी ने वैकल्पिक रूप से "से" दिया है। इसका तात्पर्य यही कि गुरु जी के व्याकरण लिखते समय "से" प्रत्यय भी "बताना" के पहले आता था ।

हमारी आधुनिक बातचीत में दो प्रवृत्तियाँ दीखती हैं । एक तो हिंदी में "से कहना", "से बोलना", "से पूछना" आदि प्रयोग हैं। दूसरी तरफ अँग्रेजी में tell him, ask him, request him (टैल हिम, आस्क हिम, रिक्वेस्ट हिम) जैसे कर्मकारक वाले प्रयोग हैं। इस अँग्रेज़ी प्रयोग के प्रभाव से ही किसी किसी हिंदी लेखक ने "को" कहा लिखा है, यह भी संभव है । यदि "को" को ही स्वीकृत करें तो अर्थभ्रम की संभावना है क्योंकि "उसको कहना" एवं "उससे कहना" दो प्रसंगों पर आने लायक प्रयोग हैं। "से" अधिक सरल, शुद्ध एवं उचित लगता है। "से कहना" के समान "से बताना" भी स्वीकार करने में सचमुच आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उदाहरण–3

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी	मलयालम
क्रिया : डरना विभक्तिसहित प्रयोग–से डरना	**क्रिया :** पेटिक्कुका (डरना) विभक्ति सहित प्रयोग } ए पेटिक्कुका (को डरना)।
साधारण प्रयोग : (1) मैं किसी से नहीं डरती (गोदान, पृ० 46, प्रेमचंद)। (2) भोले लोग उनसे डरते रहते हैं। (सच्ची वीरता, अध्यापक पूर्णसिंह)।	**साधारण प्रयोग :** (1) इवळेप्पेटिचांरु नेवीषि नटप्पीला– इसे डरकर कोई सीधे रास्ते नहीं चलता (एषुत्तच्छन्)। (2) एलियेप्पेटिच्चु इल्लं चुटुका- चूहे को डरकर घर फूँकना (लोकोक्ति)।
विशेष :– "गुरु" "डरना" क्रिया के साधारण के अर्थ में विकल्प से कर्मकारक भी आता है "मैं" शेर को नहीं डरता।	**विलक्षण प्रयोग :** नहीं के बराबर

स्पष्टीकरण :

"डरना" भयार्थक शब्द है और पाणिनीय नियम में भयार्थक धातु के पहले अपादान कारक के "से" प्रत्यय का प्रयोग विहित है। इसलिए "से डरना" अधिक चलता है। मगर मलयालम में जो भयकारक वस्तु या व्यक्ति है उसके बोधक शब्द के साथ "को" प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। उद्धरण देख लें। इस विषय में मलयालम सरल है। तमिल में भी यह "को" वाला प्रयोग ही चलता है–अरक्कनैप्पयन्त देवर्कल् (राक्षस को डरे हुए देवगण)।

कामता प्रसाद गुरु जी ने भी "को" वाले प्रयोग को परोक्ष रूप से साधुता दी है। तभी तो उन्होंने इस ओर संकेत किया है। इतना तो जोड़ना आवश्यक लगता है कि यद्यपि "से" एवं "को" के लगने का अंतिम प्रभाव एक ही है तो भी व्याख्या में कुछ अंतर अवश्य है। जैसे, "से" से आधार की भयजनकता सूचित है तो "को" से लक्ष्य भय बताया जाता है। चूंकि दोनों का तात्पर्य अभिन्न है इसलिए "से" की तरह "को" भी स्वीकार करने की बात विचारणीय है।

उदाहरण–4

हिंदी	मलयालम
क्रिया : प्रेम करना, प्यार करना। विभक्तिसहित प्रयोग––से प्रेम करना, को प्यार करना।	**क्रिया :** स्नेहिक्कुका विभक्तिसहित प्रयोग } ए स्नेहिक्कुका (को प्यार करना)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी	मलयालम
साधारण प्रयोग :	**साधारण प्रयोग :**
(1) जिसे हम प्यार करें वही हमारी रानी (मछुए की बेटी—श्रीमती चौहान)।	(1) ञान् अवळे स्नेहिक्कान् तुरङ्ङियिट्टु एष, कोल्लमायि (मुझे उसे प्यार करना शुरू किए सात वर्ष हुए।) (टी. पद्मनाभन)।
(2) उसे प्यार नहीं कर सकते, न उससे परामर्श कर सकते हैं (आत्म शिक्षण—जैनेंद्र)।	(2) स्नेहिक्कयिल्ला ञान, नोवुमात्माविने-स्नेहिच्चिटात्तोरु तत्वशास्त्रत्तेयुम—मैं आत्मा को प्यार न करने वाले किसी दर्शन को प्यार नहीं करूँगा—(वयलार रामवर्मा)।

स्पष्टीकरण :

"प्रेम करना" और "प्यार करना" एक ही अर्थ का बोध कराने वाले दो क्रिया-शब्द हैं। अंतर इतना ही है कि 'प्रेम' तत्सम शब्द है और "प्यार" तद्भव शब्द। कोई कारण ऐसा नहीं दिखता कि "प्रेम" शब्द के पहले "से" का प्रयोग हो और "प्यार" शब्द के पहले "को" आए। केवल व्यवहार ही इसका नियामक कारण प्रतीत होता है। यह प्रयोग भेद मलयालम व तमिल जैसी कुछ भाषाओं के लिए अपरिचित है। मलयालम में "स्नेहिक्कुका" के पहले "को" विभक्ति का "ए" प्रत्यय ही आता है। तमिल में इसी विभक्ति का "ऐ" प्रत्यय आता है। अतएव मलयालम या तमिल का व्यवहार करने वाले हिंदी-प्रेमी "प्रेम करना" के पहले भी "को" लिखें, इसकी संभावना है। इस प्रयोग को सरासर अशुद्ध मानने की प्रवृत्ति अनुचित मालूम देती है। अँग्रेज़ी से प्रभावित शैली में तो ऐसा प्रयोग अवश्य आता है—हरि लव्स् राधा (Hari loves Radha.)

उदाहरण—5

हिंदी	मलयालम
क्रिया : मिलना विभक्तिसहित प्रयोग—**से मिलना**।	**क्रिया** : काणुका, संदर्शिक्कुका विभक्तिसहित **प्रयोग**—ए काणुका, ए सन्दर्शिक्कुका।
साधारण प्रयोग :	**साधारण प्रयोग :**
(1) मैं भी कुतूहलवश गांधी जी से मिलने निकला (बापू जी से पहली मुलाकात—आचार्य कृपलानी)।	(1) भार्ययुं इल्य मकनुं अद्देहत्ते संदर्शिच्चु—पत्नी और छोटे पुत्र ने उनको दर्शन किए (कैनिक्करा कुमार पिल्लै)।
(2) मैं भाभी से फिर मिलने को बहुत उत्सुक था (बाहर-भीतर—देवराज)।	(2) अच्छन् तासिलदारे क्कण्टु—पिता ने तहसीलदार को देखा (निजी)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्टीकरण :

"मिलना" "भेंट करना" के अर्थ में प्रयुक्त क्रियाशब्द है, जो हिंदी-भाषियों के लिए सुपरिचित है। "देखना" के पहले "को" प्रत्यय आता है तो "मिलना" के पहले "से" प्रत्यय ही आता है। इस अंतर के बारे में सोचना चाहिए। शायद "मिलना" "संमिलित" होना के अर्थ में आता है और "से" का प्रयोग "के साथ" के अर्थ में किया गया है। "से मिलना" केवल देखने से बढ़कर कुछ घनिष्ठता भी सूचित करता है। यह प्रयोग "शामिल होना" के अर्थ में ठीक ही है, जैसे रमेश बुरे लड़कों से मिलकर खराब हो गया, "किंतु केवल दर्शन करना" के अर्थ में "से" का प्रयोग विचारणीय है। मलयालम काणुका, संदर्शिक्कुका आदि दर्शनार्थक क्रियाओं के पहले ए(को) ही आता है। तमिल में "ऐ" आता है। इसी प्रभाव से मलयालम-तमिल-भाषी लोग "से" के बदले 'को' लिखते है तो वह अचरज करने की बात नहीं है। कुछ हिंदी भाषी राजनैतिक नेताओं के भाषणों में "को मिले" प्रयोग बढ़ने की स्मृति भी आती है। संस्कृत में दर्शनार्थ में कर्म-कारक तथा "को" प्रत्यय ही आया करते हैं।

उदाहरण—6

हिंदी	मलयालम
विभक्ति प्रयोग——राजा के एक बेटा हुआ (निजी)	**क्रिया:** उण्याकुका जनिक्कुका, (उण्टायिरिक्कुका:).
साधारण प्रयोग :	विभक्ति सहित प्रयोग :
(1) चाहे साहूकार क संतान हो चाहे न हो (गुरु द्वारा उद्धृत)।	(1) एनिक्कु एत्र मक्कलुण्टेन्नु... परञ्ञु (कहा कि मुझे कितने बच्चे हैं आदि)।
(2) चौधरी महाशय के तीन सुयोग्य पुत्र थे (शंखनाद, प्रेमचंद)।	(मार्तंड वर्मा, पृ० 126)
(3) पर्वतेश्वर की कई रानियाँ थीं (प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक—जगदीशचंद्र जोशी)।	(2) गोमितिक्कु ओरु आणकुट्टि उण्टायि——गोमती को एक बच्चा हुआ।
विलक्षण प्रयोग : राजा को नौ पुत्र थे। (मुद्राराक्षस)	

विशेष : कामता प्रसाद गुरु की संमति :

संबंध के अर्थ में कोई-कोई लेखक संप्रदान कारक का प्रयोग करते हैं—जैसे "राजा को नौ पुत्र थे (मुद्राराक्षस)" "जमदग्नि को परशुराम हुए (सत्य हरिश्चंद्र)।"

इस प्रकार की रचना बहुधा काशी और बिहार के लेखक करते हैं और भारतेंदु जी इसके प्रवर्तक जान पड़ते हैं। मराठी में इस रचना का बहुत प्रचार है। हिंदी में यह रचना इसलिए अशुद्ध है कि इसका प्रयोग न तो पुरानी भाषा में पाया जाता है और न आधुनिक शिष्ट लेखक ही इसका अनुमोदन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी का यह प्रयोग हिंदी ही में प्रचलित और कुछ विलक्षण है। इसे संस्कृत-प्रयोग का अनुकरण कहना कठिन है क्योंकि संस्कृत में प्रयोग चलता है–रामस्य (पुत्रो जात:) या (पुत्री जाता) या (पुत्रा: जाता:)। रामस्य––षष्ठी एकवचन का रूप ही सभी जगहों पर आता है। किंतु हिंदी में पुरुष संतान के विषय में एकवचन व बहुवचन में पुल्लिग-बहुवचन प्रत्यय न था। स्त्री संतान के विषय में दोनों वचनों में स्त्रीलिंग "की" प्रत्यय का प्रयोग कोई विशेष संतोषजनक तर्क नहीं देता। मलयालम व तमिल में संप्रदान व संबंध के अर्थ में प्रयुक्त "इक्कु" या "इनु" ही ऐसे उदाहरणों में आते ह[ैं]। इसी भाव के अनुसार हिंदी में भी "के" तथा "की" के बदले यदि "को" लिखा जाता है तो गलती ढूँढ़ने का कोई कारण देख नहीं पड़ता। "गुरु जी" की जो विशेष टिप्पणी ऊपर उद्धृत है उससे स्पष्ट है कि उनके व्याकरण रचना काल में ऐसे प्रयोग सुलभ थे। तभी तो वे लिखते हैं कि कोई-कोई लेखक संप्रदान कारक का प्रयोग करते हैं। भाषा प्रवहमान प्रवृत्ति की चीज़ है और कृत्रिम रूप से आने वाले प्रयोगों का बदलना संभव ही है।

उदाहरण– 7

हिंदी	मलयालम
क्रिया : करना (स्वागत, संस्कार, आदर, ग्रहण, प्रणाम आदि) देना (उत्तर) विभक्तिसहित प्रयोग : **का** स्वागत करना आदि। **का** उत्तर देना।	**क्रिया** : स्वागतं चेय्युका, संस्कारक्कुका, आदुरिक्कुका, ग्रहिक्कुका, प्रणामिक्कुका, उत्तरंपरयुका। विभक्ति सहित प्रयोग : **ए** स्वागतं चेय्युका। **ए** संस्करिक्कुका आदि। उटे उत्तरं परयुका या इक्कु उत्तरं परयुका का उत्तर देना या को उत्तर देना।
साधारण प्रयोग : (1) पिता जी गांधी जी का आदर इसलिए नहीं करते कि वह कोई साधु या महात्मा हैं (मेरी कहानी, पृ० 95)। (2) कौन है, जो देवपुत्र का इस शोक-सागर से उद्धार करेगा ? (बाण-भट्ट की आत्मकथा, पृ० 164)।	**साधारण प्रयोग :**
विलक्षण (विशिष्ट) प्रयोग : (1) टालस्टाय को वह दिल से प्रणाम करता है (सच्ची वीरता––अध्यापक पूर्णसिंह)। (2) मैं जब जब उन शब्दों **को** स्मरण करता हूँ तब तब सारा शरीर रोमांचित हो उठता है (बाण भट्ट की आत्मकथा, पृ० 224)।	विप्रन्मारेयुं साधुक्ककेयुं सल्करिक्कुन्न ओरु वपक्कम उंटायिरुन्नु:––विप्रों और साधु संतो को स्वागत करने का क्रम था (विचारकौतुकम्–के० एम० जार्ज)। (2) नी एन्हे चोद्यंतिनु उत्तरं परयू––तुम मेरे प्रश्न का उत्तर कहो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) बड़ों की आज्ञा सदा सुननी चाहिए और कभी **उनको** अनुचित उत्तर नहीं देना चाहिए (आत्मशिक्षण—जैनेंद्र)।

विशेष: कामताप्रसाद गुरु की **सम्मति:** **सूत्र** 534(ख) नीचे लिखे शब्दों के योग में बहुधा संप्रदान कारक आता है:—

प्रणाम, नमस्कार, धन्य, धन्यवाद आदि ।

स्पष्टीकरण :

इस उदाहरण में एक स्वतंत्र क्रिया नहीं ली गई है । क्रियाओं का एक वर्ग लिया गया है । यह वर्ग ब्रजभाषा के स्तर से खड़ी बोली के स्तर के रूप में हिंदी के परिवर्तन के बाद निष्पन्न है । ब्रजभाषा में जो मीठे क्रियाशब्द थे उनकी जगह पर कृदंत क्रियार्थक संज्ञाओं का प्रयोग खड़ी बोली में होने लगा । इनके साथ "कर" सहायक क्रिया के रूप में आती है । उसके साथ ही अर्थपूर्ति संभव है। कृदंत पदों के पहले "का" या "की" प्रत्यय उचित लगता भी है । खैर।

इन पदों का विचार एक संमिलित क्रिया के रूप में भी करना चाहिए जैसे आदर करना, स्वागत करना, प्रणाम करना आदि। जब ऐसा संमिलित प्रयोग अधिकतर होता है तब एक एक पद की स्वतंत्र विभक्ति रचना असंगत लगती है । संयुक्त रूप की व्याख्या में कर्म कारक के अर्थ में "को" आ सकता है। जैसे "राम को देखना" के समान ही "राम को प्रणाम करना" प्रयोग भी आ सकता है । मलयालम में कृदंत शब्दों के साथ "इक्कुका" प्रत्यय जोड़कर थोड़ा वर्णपरिवर्तन लाने से क्रिया शब्द बनता है। तमिल में इसी अर्थ में "तल" या "इत्तल" प्रत्यय लगता है । मलयालम एवं तमिल की इस सहज-सुलभ प्रवृत्ति के कारण इन भाषाओं के बोलने वाले हिंदी लिखते वक्त भी ऐसा प्रयोग करें, यह भी संभव है । अँग्रेज़ी में किसी भी क्रियावाचक शब्द के कर्म का प्रयोग कर्मार्थिक विभक्ति के साथ ही होता है। अँग्रेज़ी का वर्तमान भारतीय भाषाओं पर प्रभाव सर्वविदित है । इस दशा में इन नए प्रयोगों को हिंदी में आने देने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए ऐसा मेरा विचार है ।

उपसंहार :

यहाँ मैने अपने अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर हिंदी के कुछ विशिष्ट विभक्ति प्रयोगों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहा है। हिंदी के पंडितों एवं भाषाविदों का कार्य है कि वे इन प्रयोगों पर अखिल भारतीय भाषा हिंदी की दृष्टि से पुनर्विचार करें और समुचित निर्णय दें। टेढ़े-मेढ़े पथ को कुछ सीधा बना देने से यात्रा सुलभ व सुगम बन सकती है । ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के प्राण : मुहावरे और कहावतें

सुरेंद्र शुक्ल

मनुष्य की सामाजिकता का मूल आधार भाषा है। भाषा ही जाति की सम्मिलि संपत्ति होती है। मुहावरे व लोकोक्तियों के लिए यह बात विशेष रूप से लागू होत है। ये समाज के लिए एक अनुभूत ज्ञान की बँधी-बँधाई कसौटी—से निक हुए अभिव्यक्त रत्न हैं। अपने लोक-व्यवहार अथवा साहित्यिक आदान-प्रद में इनका व्यवहार करने से वक्ता अथवा लेखक की वार्ता को और भी बल मि जाता है और श्रोता या पाठक पर बड़ा असर पड़ता है। मुहावरा या कहावत क सहारा लेकर जो बात कही-लिखी जाती है, उसमें एक विशिष्ट प्रकार की श आ जाती है और उसमें एक ऐसा जादू आ जाता है, जिसका घाव गहरा ह हुए भी त्रासदायी नहीं होता, अपितु अर्थ-व्यंग अथवा अर्थ-व्यंजक, सोद्देश्य होता

हिंदी किसी भी समय न एक विशेष जमात की भाषा रही है और न कि सीमित क्षेत्र की। उसकी उत्पत्ति भी किसी विशेष काल क्रम से निश्चित न की जा सकती। वह सारे देश की भाषा रही है, सारे भारतीयों की भाषा रही और आज जब वह राष्ट्रभाषा घोषित हो गई है, तब सभी का यह सहज स्वाभावि कर्तव्य हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रभाषा को सबल समृद्ध करने में अपना स योग दें।

किसी भी भाषा को कारगर, जोरदार बनाने में मुहावरे और कहावतों विशेष स्थान है। हिंदी में आजकल बहुधा एक वाक्य सुनने में आता है "प्रेम जी की भाषा मुहावरेदार है," जिसमें "मुहावरा" शब्द अरबी का है और "दा शब्द फारसी का; किंतु "मुहावरेदार" शब्द न अरबी का, न फ़ारसी का और ही उर्दू का है और इसी लिए अब वह "हिंदी" का हो गया है। तात्पर्य यह हिंदी में अनेक भाषाओं के मुहावरे और कहावतें आकर मिलते गए हैं, जि हिंदी ने आत्मसात कर लिया है। यह एक समृद्ध भाषा का संकेत है।

बहुधा परीक्षार्थी "मुहावरे और कहावतों" का अंतर नहीं समझ पाते। ज कहावत में एक पूर्ण सत्य या विचार की अभिव्यक्ति होती है, वहाँ मुहावरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वतंत्र वाक्य नहीं होता। वह किसी वाक्य में रखे जाने का मुहताज होता है। जैसे टेढ़ी खीर, "नाक-भौं सिकोड़ना", "हवा खाना", "खाक छानना", "पापड़ बेलना"—ये सभी मुहावरे हैं और "'तेते पाँव पसारिए, जेती लांबी सौर", "नदी-नाव संयोग", "न रहेगा बाँस, न बजेगी बांसरी"—ये कहावतें हैं।

कुछ मुहावरे और कहावतें कहानियों पर बने हैं, जैसे—"निन्यानबे का फेर", "टेढ़ी खीर"। कुछ पुराने कवियों की सूक्तियों के अंग हैं—जैसे, "शरीरमाध्यं खलु धर्मसाधनम्", "अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति", "न वांगनानं नवएव पन्थाः", "दुईन होयं एक संग भुवालू, हँसब ठठाबु फुलावबु गालू", "पर उपदेश कुशल बहुतरे" आदि (इसके विपरित कुछ मुहावरे व कहावतें जीवन के अनुभव सूत्र बनकर "गुर" बन गए हैं, यथा–"नाच न जान ले उठान बांका" (बंगला), और कुछ पौराणिक कथाओं पर आधृत हैं–यथा–"रामबाण", "द्रौपदी का चीर", "सुदामा के तंदुल" आदि।

मुहावरे और कहावतों का जितना प्रयोग उर्दू के साहित्यकारों ने किया है, उतना हिंदी के साहित्यकारों ने नहीं। हिंदी के साहित्यकारों में प्रेमचंद व प्रसाद को "कलम का धनी" व "कलम का जादूगर", माना जाता है, किंतु जितनी बामुहावरा भाषा प्रेमचंद की है, उतनी प्रसाद की नहीं कही जा सकती। प्रेमचंद जी की एक कहानी "बड़े भाई साहब" के ही एक अनुच्छेद का कुछ अंश लें, देखेंगे कि इतने मुहावरों का प्रयोग होते हुए भी कोई बनावट-सी नहीं लगती, मुहावरे अपने सहज, स्वाभाविक रूप में आते गए हैं :—

"मेरे फेल होने पर मत जाओ, मेरे दर्जे में आओगे तो दाँतों पसीना आ जाएगा, जब अलजबरा और ज्योमेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा. . . . मेरे दर्जे में आओगे, लाला तो, यह सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे दाल का भाव मालूम होगा। दर्जे में अव्वल आ गए हो तो ज़मीन पर पाँव नहीं रखते। इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन संसार का मुझे तुमसे ज़्यादा अनुभव है।"

इसी के विपरीत श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"–का ठेठ हिंदी का ठाठ पढ़ते हुए जी ऊब जाता है, किंतु उर्दू के ये चंद शेर हम बड़े मज़े से पढ़ते हुए नहीं थकते :—

नाक में दम आ गया दिन रात झगड़े झेलते
ज़िंदगी अपनी कटी है, जैसे पापड़ बेलते ॥1॥

तुम नाक चढ़ाते हो मेरी बात पर ऐं शेख
खीचूंगा किसी रोज़ अब मैं कान तुम्हारे ॥2॥

वोले चपरासी जब मैं पहुँचा बाउम्मीदे सलाम
फाँकिए खाक आप भी साहब हवा खाने गए ॥3॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी के प्राचीन कवि सूर, तुलसी, केशव आदि ने भी कहावतों का प्रयोग किया है—जिनमें से तुलसी ने "रामायण" में कहावतों का खुल कर प्रयोग किया है, यथा—हमहूँ कहब अब ठकुर सुहाती, "गाल बजावत तोहि न लाजा", "दुई न होई इक संग भुवालू"—हँसन ठठावु-फुलावबु गालू, "होई है वही जो राम रचि राखा", "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" आदि।

मुहावरे व कहावतों का प्रयोग प्रत्येक भाषा में होता है। अतः हम यहाँ संक्षेप में कुछ अन्य भाषाओं के मुहावरे व कहावतों से हिंदी पाठकों को परिचित कराना चाहते हैं।

हिंदी	.	अगर-मगर करना।
उड़िया	.	दो फाँकिआ कथा कहिबा।
मणिपुरी	.	ओइदबा तौबा, कंगयेत।
असमिया	.	ठेरो गेरो करा, कथा साजि कोबा।
मराठी	.	अल-टल करणें।
गुजराती	.	हा-ना करवी।
हिंदी	.	चुल्लू भर पानी में डूब मरना।
मराठी	.	कोरड्या विहीरींत जीव देणें।
मणिपुरी	.	ईकाइदुना ममाइ हाइगत तवा।
असमिया	.	पानी नाइकिया पुखुरीत परिमरा।
उड़िया	.	पोषे पाणिरे बुढ़ि मरिबा।
हिंदी	.	आँख का अंधा, नाम नयन सुख।
असमिया	.	चकुटो फुटा नाम है छे पद्मलोचन।
मणिपुरी	.	मगुणदगी ममिंग-ना हेनबा।
मराठी	.	नांव सोनुबाई हातीं कथलाचा वाला नाहीं।
गुजराती	.	पेटमां पावलुं पाणी नहि ने नाम दरियावखां।
नेपाली	.	कानी खूशी गुर्नु (काना फूसी करना)।
मलयालम	.	कालामरिजुं कोलम कट्टणम् (जैसा देश, वैसा भेष)।
कन्नड़	.	इंदिन सोलु नाठिन गुँलुवु (आज की हार, कल की जीत)
तमिल	.	आड माट्टदि तेवाडियाकुक्कु कूडम कोणल् (नाच न आवे आँगन टेढ़ा)।
बंगला	.	नाच न जान ले अुठान बांका (नाच न जाने आँगन टेढ़ा)
नेपाली	.	आँखा मा छारो हाल्नु (आँख में धूल झोंकना)।
गुजराती	.	लख्या लेख मिथ्या न थाय (विधिकर लिखा को मेटनहारा)
मराठी	.	नांव मोठे लक्षण खोटें (ऊँची दुकान, फीका पकवान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिपुरी . अहनगी मथिना चफ मेलिलि (जो बोले सो कुण्डी खोले)।

असमिया . उरहर खं मंगा ढारित तोंला (आप हारे बहू को मारे)।

उड़िया . पाटिर लार बाहिबा (मुँह में पानी भर आना)।

संस्कृत . अधो घटो घोषमुपैति नूनम् (थोथा चना बाजे घना)।

उड़िया . गतस्य शोचना नास्ति (अब पछताए होता क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत)।

अँग्रेज़ी . It is no use crying over spilt milk (अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

मणिपुरी . मयोंग अमत की भीति (एक थैली के चट्टे-बट्टे)।

संस्कृत . दूरतः पर्वताः रम्याः (दूर के ढोल सुहावने)।

नेपाली . सटक सीताराम अथवा देखता देख्खैतें चम्पतराम (नौ दो ग्यारह हो जाना)।

तमिल . समयक्कोंदु मातु साबिरक्कायितु (नौ नग़द न तेरह उधार)।

मलयालम . काक्क कुळिच्चाल् कोक्काका (कौआ नहावे तो हंस नहीं बनता)।

कन्नड़ . बॅळॅयुव सिरि मॉळकयल्ले काणुत्ते (होनहार बिरवान के होत चिकने पात)।

संस्कृत . कुपुत्रेण कुलं नष्टम् (डूबा वंश कबीर का उपजे पूत कमाल)।

अँग्रेज़ी . Every potter praises his own pot (कोई अपने मट्ठे को खट्टा नहीं कहता)।

गुजराती . सान ठेकाणे आववी (होश ठिकाने आना)।

असमिया . पररपरा शुना, किंतु निजर मते करा (सुनिए सब की करिए मन की)।

संस्कृत . चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानिच (चार दिन की चाँदनी फिर अंधेरी रात)।

अँग्रेज़ी . Pride goeth before a fall (ग़रूर का सिर नीचा)।

कन्नड़ . ओदि ओदि मरुलाद कूचबट्ट (पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय)।

तात्पर्य यह है कि मुहावरे और कहावतें भाषा के प्राण हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है "मुहावरों के न रहने से भाषा जीवंत और प्रवाहमयी नहीं रह पाती"। इसी के संदर्भ में डा० नगेंद्र की मान्यता है—"मुहावरे और कहावतें किसी भी जीवंत जन-भाषा के प्राण हैं। मुहावरे में जहाँ भाषा का लाक्षणिक चमत्कार रूढ़ होकर समा जाता है वहाँ कहावत में सामान्य जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

का कोई न कोई अनुभव सिद्ध सत्य निहित रहता है"।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः राष्ट्रभाषा हिंदी को जानदार, समृद्ध व बामुहावरा (मुहावरेदार) बनाने के लिए उचित स्थान पर सहज स्वाभाविक अर्थ-बोधक मुहावरे व कहावतों का प्रयोग करते रहना चाहिए। आज राष्ट्रभाषा हिंदी में कुछ अन्य भारतीय भाषाओं के मुहावरे व कहावतें भी प्रयुक्त होने लगे हैं। हिंदी भाषा की प्रवृत्ति उन्हें भी आत्मसात करती जा रही है। जिन्हें कदाचित् आज के शुद्धिवादी हिंदी कोशकार अपने भाषा कोश में स्थान न दें। इस संबंध में डाक्टर नगेंद्र का कहना है--"परंतु भारतीय भाषाओं के मुहावरे, कहावतों की व्यंजकता को देखते हुए मैं हिंदी में उनका अंतर्भाव करने का लोभ सम्वरण नही कर सकता। विकासशील राष्ट्रभाषा का हाज़मा इतना तो दुरुस्त होना ही चाहिए" *।

*मुहावरे और कहावतें : लेखक--श्री बालमुकुंद 'अर्श' मलसियानी : पृष्ठ-4।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक शब्द और उनका यथार्थ परिचय

हिंदी 'आप' की व्युत्पत्ति

शब्द-श्री

पौधों में नामकरण

मालवी भाषा और उसके शब्दों मे बहुरूपता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक शब्द और उनका यथार्थ परिचय

सूर्यनारायण व्यास

वैदिक साहित्य में अनेक शब्द ऐसे आए हैं जिनकी संगति आज के भौगोलिक नामों से होती है। पर्वतों, नदियों, नगरों, ग्रहों आदि के नाम यथावत् मिलते हैं। किंतु जिस मंत्र से ये नाम आए हैं उनका वहाँ अर्थ भिन्न होता है, इस कारण यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि वह नाम वास्तविक है, या वहाँ जो अर्थ है वह है। उन मंत्रों में कुछ शब्द ऐसे हैं जिन्हें यदि हम वास्तविक नाम स्वीकार करते हैं तो यह कठिनाई उत्पन्न होती है कि वैदिक कालीन समाज—जो एक सीमित भू-भाग तक ही परिचित रहा है वह इन मध्यवर्ती भागों के नामों से कैसे परिचित हुआ होगा? अभी तक अनेक पश्चिमी– और देशी विद्वानों की यह धारणा है कि पंजाब की नदियाँ, और गंगा आदि प्रमुख जलाशयों से ही उस काल के आर्यजनों का परिचय था, इसी कारण से वे अन्य नामोल्लेखों को उस रूप में नहीं मानते जैसे वे प्रतीत होते हैं। किंतु उस रूप में मानते हैं—जिन अर्थों में वे मंत्रों में प्रयुक्त हुए हैं, उदाहरणार्थ यजुर्वेद में एक मंत्र आया है—'शिप्रे अवे: पय:'। इसमें 'शिप्रा' उस नदी का नाम है जो उज्जैन में प्रवाहित होती है, परंतु वहाँ मंत्र में नदी से उसका मतलब नहीं है। किंतु मंत्र में 'शिप्रा' और 'पय:' शब्द से नदी, और जल भी स्पष्ट संकेत देते हैं कि चाहे वहाँ अर्थ भिन्न हो, यह शिप्रा-नदी अवश्य है।

इसी प्रकार जिन ग्रहों के नाम-सहित मंत्र मिलते हैं उनका मंत्रार्थ भिन्न है। किंतु यह भी स्पष्ट है कि उन मंत्रों में ग्रहों के नाम भी यथावत् हैं, तथा ठेठ स्मृति काल से लेकर इन नामोल्लेखों के कारण ही उन मंत्रों का प्रयोग उन-उन ग्रहों के स्तवन आदि के समय होता आ रहा है। तब स्मृतिकारों ने—अर्थ के भिन्न होते हुए भी—उनका प्रयोग ग्रहों के लिए कैसे किया? क्या वे अर्थ से अज्ञात रहे होंगे? यह तो संभव नहीं। तब यह प्रयोग कब आता है कि—अर्थ भिन्न होते हुए भी उन शब्दों की ग्रह-सूचक मान्यता—या—परंपरा प्राप्त होनी चाहिए। और अवश्य ही ग्रहों से उन मंत्रों की संगति रहनी चाहिए। वेदों के मूल मंत्रों के महज शब्दार्थ से इस प्रकार भ्रम-भावना होना स्वाभाविक है। जब तक हम उन मंत्रों को ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और पुराण आदि से मिलाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

न देखें, कहा भी गया है कि .....Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इतिहास पुराणाभ्यां
वेदं समुय ब्राह्मेत्'

इतिहास-पुराण आदि से वेद की व्याख्या समझी जानी चाहिए। इसमें अवश्य तथ्य है।

वेद-विज्ञान तभी गाया जा सकता है जब उसके अंग भूत ग्रंथों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाए। अंग भूत ग्रंथों में प्रत्येक संहिता के श्रृंखला बद्ध विवेचन हैं, उसके जाने बिना मर्मज्ञान संभव नहीं होता। यथाक्रम ग्रंथों के अवलोकन से उन विषयों का विशद परिचय उपलब्ध हो सकता है। आगे चलकर पुराणों में उन्हीं विषयों का रूपकालंकार युक्त वर्णन है। किंतु उनका मूल स्रोत वेद ही है।

वेदों के पश्चात् ब्राह्मण-ग्रंथों में अधिक पुरातन तैत्तिरीय माना जाता है। यह कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय-शाखा का गद्य भाग है। इसकी रचना बड़ी ओज-पूर्ण है, यह तीन भागों में विभक्त हैं। इसी का परिशिष्ट-भाग तैत्तिरीय आरण्यक है। ब्राह्मण साहित्य से हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं भौगोलिक अवस्था का पता चलता है। ऐत्तरेय ब्राह्मण में कुरु, और पांचाल देश का नाम आया है। तांड्य-ब्राह्मण में सरस्वती, और द्रषद्वती के मध्यवर्ति स्थानों का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद के ब्राह्मणों में कुरु, पांचाल, अयोध्या, विदेह, तथा अवंती का नाम आया है। ब्राह्मण-ग्रंथ याज्ञिक-विधान के रहस्य का ज्ञान देने वाले हैं, अतएव उनका आध्यात्मिक होना स्वाभाविक है। उनमें आया हुआ वर्णन आध्यात्मिकता से रिक्त नहीं हो सकता। देश, नदी, स्थानों के वर्णन में यह पुट ज़रूरी है।

ब्राह्मणों में जगत् की समस्त वस्तुओं का अर्थात् समष्टि का व्यष्टि में समर्थ वर्णन है। उदाहरणार्थ—अग्नि, वायु-सूर्य आदि के प्रमाण उपस्थित किए गए हैं, और बतलाया है कि हममें और वाह्य जग व्याप्त वस्तुओं में भेद नहीं है। जैसे

'अग्निर्यथेकों भुवनं प्रविष्टो,
वायुर्यथेकों भुवनं निविष्ट:
सूर्योयथा सर्व लोकस्य चक्षु:।' आदि।

ऐसे ही भौगोलिक-वर्णनों का भी अध्यात्ममय वर्णन है। यहाँ हम तैत्तिरीय ब्राह्मण का एक मंत्र प्रस्तुत करते हैं,

वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य
वेदानां माताऽमृतस्यनाभि:।
सानो जुषाणोप यज्ञभागात्
अवंती देवी सुहवा मे अस्तु।

(तैत्त० ब्रा० 2 का० प्रपा 8 अ० 7)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः इस मंत्र का अर्थ वाणी की स्तुति के रूप में है, किंतु इसमें 'अमृतस्य-नाभिः' और 'अवंती देवी' शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं। यहाँ अवंती देवी के रूप में जहाँ वाणी का बोध है, वहाँ नगरी का भी सहज परिचय होता है। इसके लिए जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, उपनिषद् और पुराण का परिचय आवश्यक है। अकेले मंत्र, या नाम-साम्य से निर्णय पर पहुँचना सरल-संभव नहीं। मंत्र में वाणी के रूप में अवंती (रक्षंती) का प्रयोग हुआ है, इसी प्रकार—

'अष्ट चक्रा नव द्वारा
देवानां पूरयोध्या,
तस्यां हिरण्मयः कोषः
स्वर्गो लोको ज्योतिषाऽवृतः।'

(कृ० यजु० तैत्ति० आरण्यक प्रपा० 1 अनु० 27)

इस मंत्र में 'अयोध्या' शब्द आया है। भाष्यकार ने इसका अर्थ इस तरह किया है—'अयोध्या—कर्मगति मंतरेण केनापि प्रहर्तु मशक्या।' किंतु यह एक प्रकार से भूगोल का आध्यात्मिक रूप है। इसके समझने के लिए थोड़ा अधिक अंतर में प्रवेश करना आवश्यक है। पुराणों में तीर्थों का शरीर में ही अभिनिवेश सूचित किया है। ये आध्यात्मिक तीर्थ कहे जाते हैं। इनका शरीर के विभिन्न अंगों में अधिष्ठान माना गया है। भगवान ने गीता में भी कहा है—

'इदं शरीरं कौंतेय
क्षेत्र मित्यभिधीयते'

जिस मंत्र में अवंती शब्द आया वहाँ 'वेदानां माता' और—'अमृतस्यनाभिः' कहा है, अर्थात् अमृत की नाभि है। अक्षर का अर्थ है 'अमृत' जो नष्ट न हो उसकी नाभि। वैज्ञानिक और योग विज्ञान में शरीर का नाभि-प्रदेश 'वाणी' का स्थान है। वाणी चार प्रकार की होती है। उनमें जो परा-वाणि है, वह मोक्ष मार्गानुयायियों की साधना का मूल है। उस (परा) वाणी का स्थान नाभि है। इस परा का नाम नाद भी है। यह अभिधेयबुद्धि का बीज मानी जाती है। सुषुप्ति में भी यह कार्य करती है। परावाक् के स्वरूप से पुरुष के रूप का पृथक् साक्षात्कार होने पर ही पुरुष का भोगाधिकार निवृत्त होता है। यही प्रमुख विवेक ज्ञान है। जब तक इसका उदय नहीं होता तब तक शब्दानुविद्धज्ञान से अतीत विशुद्ध निर्विकरण-ज्ञान प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं होता। परावाक् परमेश्वर की स्वतंत्र-शक्ति का नाम ही है। इस 'परावाणी' का स्थान नाभि-देश है। जिसे यौगिक-व्याख्या में मणि पूर चक्र (जो नाभि देश में है) कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाभि को मणिपुर इसलिए कहा गया है कि यहाँ मणियों में जैसे सूत्र पिरोया जाता है, वैसे स्नायु मंडल यहाँ सूत्र की तरह गुँथे हुए हैं, ध्यान विंदु-उपनिषद में लिखा है—

'मणिवत्तंतुना यत्र
वायुना पूरितं वपुः
तन् नाभि मंडलं चक्रं
प्रोच्यते मणि पूरकम् ।'

नाभि देश में वायु का स्थान है, जो शरीर को पूरित करता है। अतएव इस नाभि (मणिपूर) चक्र में जिस वायु की प्रेरणा से वाणी का जन्म होता है, वह परा-वाणी है। इसी कारण वाणी को पूर्वोक्त मंत्र में 'अमृतस्यनाभिः' कहा है।

अध्यात्म-कर्म में जिस परा वाणी की उक्त मंत्र में स्तुति की गई है, वह नाभि-स्थान से जन्म लेती है। मंत्र की सायण-भाष्य में जो व्याख्या की गई है, वह अधिक स्पष्ट है। विस्तार भय से यहाँ उसे देना संभव न होगा।

तैत्तरीय की व्याख्या के अनुसार 'पूरिति शरीर मुच्यते' अर्थात् शरीर को तीर्थ रूप माना है।

नाभि देश (मणिपूर चक्र—जो परावणी का स्थान है) को ही 'अवंती' तीर्थ कहा गया है। शरीर का मध्यभाग नाभि है और देश का मध्य भाग भी अवंती है। वाराह पुराण में इसी तैत्तिरीय-मंत्र की व्याख्या में स्पष्ट कहा गया है कि

'नाभि देशे महाकाल
स्तन्नाम्ना तत्र वैहरः ।'

इससे सर्वथा स्पष्ट हो गया कि नाभि देश के लिए मंत्र में जो अवंती शब्द व्यवहृत किया गया है, वह अवंती वर्तमान उज्जयिनी ही है, जहाँ महाकाल (शिव) स्थित है।

अव इस योजना को उपनिषद् की व्याख्या से मिला कर देखा जाए।

याज्ञवल्क्य से महर्षि अत्रि ने पूछा कि—यह जो अनंत, अव्यक्त, परिपूर्णानंद चिदात्मा है—उसे कैसे जाना जाए? याज्ञवल्क्य ने कहा—इसके जानने के लिए अविमुक्त की उपासना आवश्यक है। तब प्रश्न हुआ कि यह अविमुक्त कहाँ, और किस स्थान पर प्रतिष्ठित है? तब याज्ञवल्क्य ने रहस्य पूर्ण उत्तर दिया।

'वरणायां नास्यांच प्रतिष्ठितः' अर्थात् वरणा और नासा के मध्य प्रतिष्ठित है। इसे दूसरे शब्दों में वाराणसी (काशी) का यह स्पष्ट उल्लेख है। और इसी तरह व्याख्या करते हुए अंत में खुले शब्दों में वतला दिया कि 'श्री रामस्य मनुः काश्यां जजाप वृषभध्वजः', अर्थात् जिस वरणा और नासा का संकेत किया था वह 'काशी' ही है।

अवंती की तरह ही वाराणसी का यह वर्णन भी आध्यात्मिक रूप से उपनिषद् में आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार जाबाली उपनिषद् में अनेक स्थानों का वर्णन शरीर पर ही सूचित किया है, जैसे—

श्रीपवर्तत शिर: स्थाने
केदारंतु ललाटके
वाराणसीं महाप्राज्ञ
भ्रुवोघ्रणिस्य मध्यमे—आदि

ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् की व्याख्या में ही वराह पुराण में अध्यात्म-तीर्थ का वर्णन एक अध्याय में किया है, और उसमें स्पष्ट बतलाया है कि जिन तीर्थों को धरणी पर कहा गया है, वे मानव शरीर में भी निवास करते हैं—

(यानि तीर्थानि वाराहो जगाद धरणीं प्रति। तानि तीर्थानि देवर्षे तिष्टन्ति नरविग्रह 9)

और अंत में स्पष्ट उल्लेख किया है कि यह 'तैत्तिरी-श्रुति' का कथन है।

(अष्टचक्रा नव द्वारा
देवानां पूरयोध्यया
तस्यां हिरण्मय: कोष
इत्येषा तैत्तिरी श्रुति:।)

इसमें यौगिक दृष्टि से मथुरा को अनाहत चक्र कहा है। माया पुरी को मूलाधार स्थित कहलाया है। काशी को आज्ञाचक्र पर, कांचि को स्वाधिष्ठान-चक्र पर, और **अवंती** को मणि पूर चक्र पर। यह मणि पूर नाभि स्थान पर है।

(आज्ञाचक्रं स्मृता काशी
या वाला श्रुतिमूर्धनि।
स्वाधिष्ठानं स्मृता कांची
मणि पूर यवंतिका। 13)

जो वात मंत्र द्वारा सूत्ररूप में सूचित हुई, वह आरण्यक में अधिक स्पष्ट हुई, और उपनिषद् तथा पुराण में वह बिलकुल स्पष्ट हो गई है। उसमें आध्यात्मिकता का आवरण भी इतना झीना हो गया है कि असली चित्र सामने आ जाता है।

इस प्रकार अनेक देशों, नगरों, नदियों, स्थानों के वर्णन, रूपांतर, अर्थांतर के रहस्यमय रूप में अध्यात्मभावनाअभिभत होकर वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र विस्तृत है।

(शेष पृष्ठ 82 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी 'आप' की व्युत्पत्ति

भोलानाथ तिवारी

व्याकरण के अनुसार हिंदी में दो 'आप' हैं। पहला निजवाचक सर्वनाम है— मैं आप कर लूँगा, वह आप आ जाएगा। दूसरा सम्मानसूचक सर्वनाम है—आप कहाँ जा रहे हैं? वह आपका क्या कर लेगा?

ऐतिहासिक दृष्टि से बीम्स, चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा आदि सभी विद्वान इन दोनों को एक ही शब्द मानते हैं। उन सबका मत है कि 'आप' का संबंध संस्कृत 'आत्मन्' से है। प्राचीन प्राकृत के उत्तरी, पूर्वी तथा मध्यवर्ती भेदों में 'आत्मन्', 'अत्त' में परिवर्तित हो गया, जिससे इन क्षेत्रों की आधुनिक भाषाओं तथा बोलियों में 'अत'* या 'अत्'* विकसित होना चाहिए। परंतु हमें ऐसे रूप नहीं मिलते। प्राचीन प्राकृत के दक्षिणी तथा पश्चिमी भेदों में 'आत्मन्' का 'अप्प' हो गया। इसका संभाव्य विकास आत्मन्>अत्वाँ* अत्ताँ*>अत्पा>अप्प हैं। अंतिम से पूर्व वाला रूप अशोक के गिरनार वाले शिलालेख में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालक्रम में 'अप्प' 'अत्त' पर छा गया। यही 'अप्प' अनेक आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के निजवाचक रूपों (हिंदी 'आप', बंगला 'आपनि', मराठी 'आपन्', नेपाली 'आफ' आदि) का मूल कारण है।

निजवाचक 'आप' का तो संस्कृत 'आत्मन्' से विकास ठीक है, परंतु सम्मान सूचक रूप का विकास कैसे हुआ? विद्वानों का विचार है कि आधुनिक भाषाओं में निजवाचक 'आप' का ही सम्मानसूचक सर्वनाम के रूप में भी विस्तार हुआ है। किसी भी आधुनिक भारतीय आर्य भाषा के प्राचीनतर साहित्य में इसका सम्मान सूचक अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता। अतः इसे आधुनिक प्रयोग ही मानना पड़ता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि निजवाचक का सम्मानसूचक अर्थ में विस्तार किस प्रकार हुआ? इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सका है।

'व्' के 'प्' में परिवर्तन की धारणा के अनुसार स्टीवेंसन ने गत शताब्दी में सम्मान सूचक 'आप' का द्रविड़ 'आव्' से संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि द्रविड़ परिवार में 'अव्' मूल शब्द है (जिससे कुर्ग में 'अवु',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव', तेलुगु में 'आयन', 'अवम्', तमिल में 'इवण' आदि बनते हैं)[1] परंतु यह सम्मानसूचक नहीं है। यह अन्य पुरुष वह है। स्टीवेंसन ने यह नहीं बताया कि अन्य पुरुष का सम्मानसूचक अर्थ में कैसे विस्तार हुआ ? अत: यहाँ भी वही समस्या उपस्थित है, जो पहले प्रकरण में थी।

मेरे विचार से तीन संभावनाएँ हो सकती हैं :—

(क) स्टीवेंसन की धारणा के अनुसार यदि 'व्' का 'प्' में परिवर्तन होता है ('व्' > 'व्' > (अघोषीकरण) > 'प्') तो संस्कृत 'भवान्' से हिंदी 'आप' की व्युत्पत्ति संभव है। यह कहना अनावश्यक है कि संस्कृत में 'भवान्' का प्रयोग उसी अर्थ में होता था, जिस अर्थ में हिंदी 'आप' का होता है।

(ख) संस्कृत में शब्द है 'आप्त' जिसके बुद्धिमान, प्रामाणिक आदि अर्थ हैं। प्राकृत और अपभ्रंश में यह 'अत्त' हो गया, जिसका गुणी अर्थ हुआ। 'व्यवहार सूत्र' में देखिए।

नाणमादीणि अत्ताणि जेण, अत्तो उ सो भवे।
रागद्दोसपहीणो वा, जे व इट्ठा विसोहिए ॥

'अत्त' का स्त्रीलिंग अत्ता है, जिसका प्रयोग माता, सास आदि कई अर्थों (देशीनाममाला 1.51) में हुआ है। आधुनिक भाषाओं में संभवत: केवल असमिया में 'आता' पिता और दादा के अर्थ में सुरक्षित है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विकास (आप्त > आत्त > अत्त > अत्ता > आता) के समानांतर, संस्कृत 'आत्मन्' के उपर्युक्त दो विकासों के समान, संस्कृत 'आप्त' का भी 'आप्प', 'अप्प', 'आप' और 'आपा' में विकास हुआ। 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' के अनुसार प्राकृत में 'अप्प' पिता के अर्थ में प्रयुक्त होता था। कई क्षेत्रों में हिंदी में भी 'आपा' का प्रयोग बड़ी बहन के लिए होता है। उर्दू में बड़ी बहन के लिए प्रयुक्त होने वाला 'आपा' भी वही है। हिंदी 'आप' का संबंध बाद में होने वाले इस विकास के साथ हो सकता है। यहाँ हम पाते हैं कि सम्मान का भाव संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और उत्तर भारत की आर्य भाषाओं में सर्वत्र विद्यमान है।

(ग) एक तीसरी संभावना भी है। द्रविड़ भाषाओं में भी हिंदी के सम्मानसूचक 'आप' के अर्थ और ध्वनि के समान एक शब्द है। यह द्रविड़ शब्द कई रूपों और अर्थों में विभिन्न भाषाओं में मिलता है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं[2] :—

तमिल—	अप्पण्,	अप्पच्चि	=पिता
	अप्पात्तई,	अप्पि	=बड़ी बहन
मलयालम—		अप्पन्	=पिता

[1] 'ग्रैमैटिकल स्ट्रक्चर ऑफ ड्रविडियन लैंग्वेजिज़' ड्यूल्स ब्लाख 1954, पृ० 26.
[2] 'ए ड्रविडियन एटीमॉलोजिकल डिक्शनरी'—बरो एवं एमेन्यू 1961, पृ० 13.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़—अप्प	अप्प	=पिता
तुळु—	अप्पे	=माता
तेलुगु—	अप्प	=पिता, माता, बड़ी बहन
गोंडी—	आपोड़ाल्	=पिता
कुवि—	अप्प	=दादी

इसके अतिरिक्त कन्नड़ में 'अप्प' व्यक्ति वाचक पुरुष नामों के साथ प्राय सम्मानसूचक अर्थ में जोड़ा जाता है, जैसे—नागप्प, करिअप्प, कन्नप्प, तिम्मप्प आदि। तेलुगु और किसी सीमा तक तमिल एवं मलयालम में भी 'अप्प' का प्रयोग इसी प्रकार होता है। सम्मान के अर्थ में तुळु में 'अप्प' के अतिरिक्त 'अप्पे' का भी प्रयोग होता है[1]। इससे स्पष्टरूप से प्रकट होता है कि द्रविड़ भाषाओं में 'अप्प' सम्मानार्थक शब्द के रूप में बहुत प्रचलित है। हम यह भी देखते हैं कि पिता, माता, और अन्य बड़े लोगों के लिए ऐसे सम्मानसूचक सजातीय शब्द भी द्रविड़ परिवार की प्राय: सभी भाषाओं और बोलियों में व्यापक रूप में प्रचलित हैं। इससे नि:संकोच भाव से यह अनुमान किया जा सकता है कि अपने अनेक सजातीय शब्दों के साथ यह शब्द इस परिवार में उधार के रूप में लिया हुआ नहीं हो सकता। नि:संदेह रूप से यह शब्द मूल में द्रविड़ प्रतीत होता है। हिंदी 'आप' का संबंध भी इसी द्रविड़ 'अप्प' से जोड़ा जा सकता है।

जब इन तीनों संभावनाओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाता है तो दूसरी संभावना असंभव न होते हुए भी अंतिम संभावना अधिक संगत प्रतीत होती है। प्राकृत, अपभ्रंश और उत्तर भारत की आर्य भाषाओं के सभी अर्थों को अपने में निहित किए हुए 'अप्प' का द्रविड़ परिवार में इतना व्यापक प्रयोग देखने पर सरलता पूर्वक यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न केवल हिंदी का सम्मानसूचक 'आप' ही इससे संबंधित है वरन् प्राकृत, अपभ्रंश, असमिया, हिंदी और उर्दू आदि के पिता, माता, और दूसरे बड़े संबंधियों के लिए प्रयुक्त 'अप्प', 'अप्पा' और 'आपा' भी इससे भिन्न नहीं हैं।

अनु० अजीतलाल गुलाटी

---

[1] मराठी में भी 'अप्पाजी', 'अप्पाराओ' हैं। यह द्रविड़ प्रभाव ही प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौधों में नामकरण

—प्रेमानंद चंदोला

विज्ञान के शब्द बहुधा अपना अर्थ स्वयं प्रकट करते हैं और यदि कहा जाए कि न पर यथा नाम तथा गुण वाली कहावत चरितार्थ होती है तो कोई अत्युक्ति होगी। सत्य यह है कि वैज्ञानिक शब्दों का नामकरण उनके गुण परखने के बाद ही ता है। तभी तो उनके नाम की सार्थकता भी है।

बायॉलोजी (जीव विज्ञान) शब्द की व्युत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों बायोस (Bios) र लोगौस (logos) से हुई है। बायोस का अर्थ है जीवन और लोगौस का र्थ है विज्ञान। इस प्रकार वह विज्ञान जो जीवन तथा जीवित पदार्थों से संबंध खता है बायॉलोजी (जीव-विज्ञान) कहलाया। चूँकि जंतु तथा पौधे दोनों जीवमय अतएव बायॉलोजी को पुन: दो शाखाओं में विभाजित किया गया।

वह शाखा (अथवा विज्ञान) जो जंतुओं के अध्ययन से संबंध रखती है जुऑ-लोजी (जंतु विज्ञान) कहलाई; और पौधों से संबंध रखने वाली दूसरी शाखा (अथवा विज्ञान) बौटनी (Botony) वनस्पति-विज्ञान कहलाई। यदि ऊपर लिखे इन दो शब्दों में अंतर्निहित लघु शब्दों का विवेचन करें तो इन नामों की सार्थकता स्पष्ट हो जाएगी। ग्रीक में जूओ (Zoo) का अर्थ होता है 'जंतु', जो कि बहुवचन में है और जिसका एकवचन है जोआ (Zoa)। बायॉलोजी शब्द की ही तरह जूओ और लोजी के संयोग से जुओलोजी (जंतु विज्ञान) बन गया। इसी प्रकार बौटनी (वनस्पति विज्ञान) शब्द भी अस्तित्व में आ गया, इसी आधार पर कि ग्रीक में बौटेन (Botane) का अर्थ होता है, शाक या नन्हा पौधा।

पौधों का सामान्य नामकरण मुख्यतया आकृति, वर्ण, गुण, वातावरण, कार्यों आदि के ही आधार पर हुआ है। प्रत्येक कोटि के कुछेक उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

लैटिन के बैक्युलम (Baculum) शब्द से ही बैसिलस (Bacillus दंडाणु) शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ है दंड अर्थात दंड की आकृति का; और तभी से छड़ की आकृति के जीवाणुओं (बैक्टीरिया) के लिए बैसिलस (दंडाणु) शब्द प्रयुक्त होने लगा। ठीक इसी तरह घुंघराली आकृति के जीवाणु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

स्पाइरिलम (spirillum) का नाम लैटिन के स्पाइरा (spira) शब्द के ही
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आधार पर पड़ा है, जिसका अर्थ होता है घुमा-मुड़ा हुआ तार (Coil)। नेपेंथीज या पिचर प्लांट (Pitcher plant) नामक कीटाहारी पौधे की पत्तियाँ रूपांतरित होकर घड़े का आकार ग्रहण कर लेती हैं; और इस पौधे को घड़े की आकृति की पत्तियाँ होने के कारण ही 'पिचर प्लांट' नाम पड़ा। किंतु हमारी पारिभाषिक शब्दावली में पिचर प्लांट के लिए इससे भी अधिक अभिव्यंजक शब्द बना है 'घटपर्णी' क्योंकि इसमें परस्पर संबंधित दोनों शब्द घट और पर्ण साथ-साथ आ गए है जो एकदम पौधे की आकृति विशेष का बोध करा देते हैं। परंतु जब पौधे के वर्धी भागों में कोई विशेषता न दिखी किंतु उनके बीज एक विशेष आकृति के मिले, तब बघनखी (Tiger claw) शब्द की उत्पत्ति हुई। एक पौधा इस प्रकार का भी है, जिसकी पत्तियाँ दुधारू तलवार (Dagger) की तरह होती हैं; अतएव उसकी यही विशेषता उसका नामकरण कर बैठी और इसे ऐडम्स नीडल (Adam's needle) या डैगर प्लांट (Degger plant) के नाम से पुकारा जाने लगा।

वातावरण तथा रहने के स्थान पर भी पौधों के नाम रखने में सुविधा होती है। उदाहरण के लिए सैप्रोफाइट (Saprophyte —मृतोपजीवी), एपी फाइट (Epiphyte —उपरिरोही) नाम इसी आधार पर रखे गए हैं। सड़े-गले तथा अन्य अजीवित पदार्थों पर उगने वाले पौधे—सैप्रोफाइट (मृतोप जीवी) और दूसरे जीवों पर उगने किंतु भोजन स्वयं बनाने वाले पौधे एपी फाइट (उपरिरोही) कहलाए। ग्रीक के सैप्रास (Sapros —अजीवित), एपी (Epi —ऊपर) तथा फाइटोन (Phyton —पौधा) शब्द अपने वासस्थान का बोध करा देते हैं। इसी प्रकार, वर्ण के आधार पर बने शब्द के उदाहरण के लिए पत्ती के हरे रंग—क्लोरोफिल (Chlorophyle —पर्णहरिम) से उपयुक्त और क्या शब्द होगा ? ग्रीक में क्लोरोस (chloros) का अर्थ है हरा और फिलौन (Phyllon) का पत्ती। इसलिए पत्ती का हरा वर्णक (Pigment) क्लोरोफिल (पर्णहरिम) कहा जाने लगा। इसी तरह वर्ण के आधार पर लाल शैवालों (Red algae) का कुल रोडोफाइसी (Rhodophyceal) और भूरे शैवालों (Brown algae) का कुल फाइयोफाइसी (phaeophyceal) के नाम से प्रसिद्ध हो गया क्योंकि ग्रीक में रोडोन (Rhodon) का अर्थ गुलाब, फाइयो (phaios) का फीका भूरा और फाइकोस (phykos) का अर्थ होता है शैवाल।

कीड़ों का आहार करने वाले पौधे अपने इस विचित्र गुण के निमित्त ही इनसेक्टीवोरस (Insectivorous —कीटाहारी) कहलाए क्योंकि ग्रीक में वोरो (vora) का अर्थ है आहार करना। विचित्र गुण वाला एक हरा शैवाल है, जिसके तंतु (फिलामेंट) घड़ी के पेंडुलम की भाँति दोनों ओर इधर-उधर निरंतर गति करते रहते हैं और इस औसिलेशन (Oscillation—झूलने) के गुण के कारण ही उसका नाम औसिल्लेटोरिया (Oscillatoria) पड़ा। टच-मी-नाट (Touch-Me-Not) नाम भी इसी लिए पड़ा कि इसके परिपक्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलों को जरा-सा छुआ नहीं कि वे एकदम छिटककर दूर जा गिरते हैं। हमारे यहाँ इसे गुलमेंहदी कहते हैं। गुलमेंहदी नाम अवश्य मेंहदी से समानता तथा साथ ही साथ असमानता के ही कारण पड़ा होगा। समानता इस गुण में कि यह मेंहदी की ही तरह हाथ-पैर रंगने के काम आती है और असमानता इस बात में कि इसमें रंग-बिरंगे आकर्षक फूल होते हैं।

छुई-मुई की पत्तियों को ज़रा-सा छू लेने पर वे दुलहिन की भाँति लजाकर एकदम पत्तियों का घूंघट बंद कर लेती हैं। इसलिए इस नाजुक पौधे का नाम छुई-मुई, लजावती, लज्जावंती (Sensitive plant) ठीक ही तो पड़ा। एक और शब्द है बौगेनविलिया (Bongainvillea) जो लैटिन का है किंतु बंगला में इसी पौधे का नाम बागान विलास है जिसका अर्थ है 'बागों की शोभा' या 'ग्लोरी ऑफ दि गार्डन' (Glory of the garden)। इस प्रकार हम देखते हैं कि लैटिन के बोगैनविलिया और बंगला के संस्कृतनिष्ठ शब्द बागान विलास में कितना साम्य है और साथ ही साथ दोनों एक ही मूल की ओर इंगित भी करते हैं।

परंतु कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो एक भाषा से दूसरी भाषा में पहुँचकर नकि वेश बदलकर प्रचलित हो गए हैं जिसका एकमात्र कारण था उच्चारण की भिन्नता। वही शब्द दूसरी भाषा में, दूसरे ही स्वरूप में बदली हुई वर्तनी का जामा पहन गया। उदाहरण के तौर पर अँग्रेजी का पौटैटो (Potato) ग़लत उच्चारण से बिगड़कर मराठी में 'बटाटा' बन गया होगा और यही गुजराती में 'बटाका' कहलाया जाने लगा होगा। ऐसे ही शकरकंद की आकृति आलू से मिलती-जुलती होने तथा स्वाद में कुछ मीठी होने के कारण ही उसे शकरकंद, मीठा आलू (Sweet potato) कहा गया होगा। और अभी हाल में ही वनस्पति वैज्ञानिकों ने प्रयोग करते हुए एक पौधा उत्पन्न किया, जिसके नीचे का वर्धी भाग आलू (Potato) और ऊपर का भाग टमाटर (Tomato) था। इस विचित्र पौधे का नाम वे क्या रखते? एक समस्या ही तो थी उनके सामने। अतएव उन्होंने दोनों शब्दों से कुछ शब्द छाँटकर एक नया शब्द गढ़ लिया—पोमैटो (Pomato)।

यह तो था पौधों के सामान्य नामों के बारे में परंतु विज्ञान की भाषा में सामान्य नामों को अधिक महत्व नहीं क्योंकि सामान्य नाम तो भिन्न-भिन्न देशों में क्या एक ही देश के विभिन्न प्रदेशों व स्थानों पर बदल जाते हैं। इसलिए इस समस्या को हल करने के लिए, एक सर्वमान्य मानक नाम निश्चित करने के लिए जीवों को उनके लक्षणों के आधार पर विभिन्न वंशों, जातियों तथा उप-जातियों में विन्यस्त कर उन्हें वैज्ञानिक तकनीकी नाम दे दिए गए हैं। ये नाम लैटिन में हैं और अंतर्राष्ट्रीय द्विनामीय नामकरण पद्धति (International Binomial Nomenclature System) पर आधारित हैं। द्विनामीय पद्धति का प्रारंभ सर्वप्रथम लिनिअस (Linualus) ने अट्ठारहवीं शती के मध्य में किया था। इसके अनुसार जीवों के दो नाम होते है—एक वंश (Germs) का और दूसरा जाति (Species)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का। पहला नाम बड़े अक्षर से प्रारंभ होता है और दूसरा नाम छोटे अक्षर से। इस तरह समान लक्षण वाले जीव एक ही वंश में रखे जाते हैं।

उदाहरण के लिए वनस्पति विज्ञान की भाषा में नारंगी का नाम है साइट्रस औरेंशियम (Citrus aurantium)। यह साइट्रस वंश का (Generic) और औरेंशियम जाति का (Specific) नाम है। पुनः एक वंश में कई जातियाँ भी हो सकती हैं; जैसे साइट्रस की कुछ जातियाँ निम्नलिखित हैं :—

साइट्रस औरेंशियम (Citrus aurantium)—नारंगी
साइट्रस डेकुमाना (Citrus decumana)—चकोतरा
साइट्रस लिमोनिया (Citrus limonia)—नींबू, आदि।

और त्रिनामीय नामकरण पद्धति (Trinomial Nomenclature system) में तो वंश तथा जाति के अतिरिक्त उप-जाति (Sub-species या Variety) का नाम भी दिया जाता है अर्थात् तीन नाम दिए जाते हैं; जैसे शरबती नींबू—साइट्रस मेडिका लिमेटा—में अंतिम शब्द 'लिमेटा' उप-जाति का नाम है।

बहुत से नाम ऐसे भी हैं जो वनस्पति वैज्ञानिकों के नाम पर हैं; जैसे इटली के वनस्पति वैज्ञानिक पियरो ऐंटोनियो माइकेल (Piero Antonio Micheli) के नाम पर ही पौधों का एक वंश 'माइकेलिया' कहलाया और चंपक या चंपा माइकेलिया की ही एक जाति होने के कारण माइकेलिया चंपका (Michelia Champaca) कहलाई। विज्ञान में धतूरे के वंश का नाम डैटूरा (Datura) ही है और इसकी श्वेत पुष्प वाली जाति को डैटूरा एल्बा (Datura alba) कहते हैं क्योंकि लैटिन में एलबस (Albus) का अर्थ होता है सफ़ेद। इसी तरह शहतूत के रंग को वैज्ञानिक आधार मानकर उसे विभिन्न जातियों में विभाजित कर दिया गया है। लैटिन में शहतूत के लिए शब्द है मोरस (Morus), जिसकी तीन जातियाँ है—मोरस एल्बा (Morus alba) या सफ़ेद शहतूत, मोरस नाइग्रा (Morus nigra) या काली शहतूत और मोरस रूब्रा (Morus rubra) या लाल शहतूत।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो स्थान विशेष के नाम से ही प्रसिद्ध हो गए हैं; जैसे गुड़हल, जपा, जसुम, शू-फ्लावर या चाइना रोज (China Rose) को वैज्ञानिक भाषा में भी हिबिस्कस रोजा-साइनेंसिस (Hibiscus rosa-sinensis) कहा गया है। इसी हिबिस्कस की एक जाति हिबिस्कस इस्कुलेंटस (Hibiscus esculentus) का ही सामान्य नाम भिंडी (Lady's finger) है। कुछ पवित्र तथा पूज्य पौधे वैज्ञानिक भाषा में भी उसी भाव से नाम पा गए है; जैसे तुलसी को औसिमम सैंक्टम (Ocimum sanctum) तथा पीपल को फाइकस रिलीजिओसा (Ficus religiosa) का लैटिन नाम प्रदान किया गया है। कुछ नाम पुराने विश्वासों के आधार पर भी हैं जैसे जियापूत या पुत्रंजीव (Child's life tree) जिसका वैज्ञानिक नाम भी इसी आधार पर पुत्रंजीव रॉक्सबर्गाइ (Putranjeeva roxburghii) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालवी भाषा और उसके शब्दों में बहुरूपता

—संतोष व्यास

विंध्यपर्वतमाला तथा अरावली उपत्यकाओं के मध्य मालवदेश विस्तीर्ण है। अपने अंचल की उर्वरता के कारण ही इसका नाम 'मालवा' पड़ा। मालवा के गेहूँ की प्रशंसा का उल्लेख महाभारत में भी है। 'मालवा' नाम अपनी भू-श्री की संपन्नता के कारण ही इस भू-भाग को मिला है— किसी जाति अथवा व्यक्ति-विशेष के कारण नहीं।

आरंभ में मालवा मध्यदेश माना जाता था। फिर इसे अवंतीप्रदेश की संज्ञा मिली। मध्यदेश के बाद अवंतीप्रदेश नाम ही प्राचीन है। अवंतीप्रदेश अर्थात मालवा की प्राचीन भाषा 'आवंती' नाम से संस्कृत साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। वैसे प्राकृत, अपभ्रंश और पाली की जननी भी यही भूमि है। बाद में, जब इस प्रदेश का नाम मालवा (महाभारत काल के आसपास अर्थात् ई० पू० तीन-चार हज़ार वर्ष के लगभग) पड़ा। किंतु मालवी भाषा का प्रादुर्भाव अवंतीभाषा के बहुत बाद में हुआ है। मालवी भाषा प्राकृत का बदला हुआ रूप है। प्राकृत तथा अपभ्रंश मालव-भू की जन-भाषाएँ थीं, जिनका मिला-जुला विकृतरूप पाली नाम से सामने आया। इसी पाली को अशोक के पुत्र महेश-संघमित्रा ने लंका तक जाकर प्रसारित किया है। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री सुनीति-कुमार चटर्जी का भी यही अभिमत है। पैशाची विंध्यवटिका के मूल (जंगली) निवासियों की (कथा सरित्सागर में जिसका उल्लेख है) और प्राकृत-अपभ्रंश सभ्य-सु-संस्कृत लोगों की व्यावहारिक-भाषाएँ थीं। प्राकृत एवं पैशाची से उद्भूत पाली गौतमबुद्ध के समय तक जन-भाषा के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाकर लोकप्रियता अर्जित कर चुकी थी। यही कारण था कि गौतमबुद्ध ने अपने ज्ञान-प्रचार का माध्यम इसी को बनाया। फिर पाली (दसवीं शताब्दी के आसपास) —जैसा कि प्राय: बहुत से भाषाशास्त्री मानते हैं—डिंगल और पिंगल के प्रवाह में परिवर्तित होकर अनेक अपभ्रंश जन-भाषाओं की जननी बनी। डिंगल राजस्थान में और पिंगल उत्तरप्रदेश तथा बिहार-प्रांतों में पुष्पित एवं पल्लवित हुई। इन दोनों भाषाओं तथा कुछ अन्य आंचलिक भाषाओं (बोलियों) के सम्मिश्रण से मालवी एक नवीन संस्करण के रूप में पैदा हुई। किंतु इसका मूल उद्गम-स्रोत पाली ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ विद्वानों की धारणा है कि मालवा के निवासी मूलभूत मालवा के न होकर पंजाब के हैं, और इस प्रकार मालवी भाषा की जननी का पद पंजाबी भाषा को देते हैं, किंतु यह धारणा नितांत असंगत है। इस स्थान पर पूरी सावधानी के साथ विचार करना होगा कि मालवप्रदेश भारत के दो असंबद्ध भागों (उत्तर-दक्षिण) को मिलाने में संधि का काम करता है। उसकी भाषा और रहन-सहन पर समानरूप से भारत के दोनों भागों का प्रभाव पड़ना एक स्वाभाविक बात है। अस्तु, यदि मालवी में जहाँ एक ओर पंजाब, बिहार और उत्तरप्रदेश की जन-भाषाओं (बोलियों) की छाप है, वहाँ दूसरी ओर उसमें दक्षिण-भारत के मूल शब्दों का सम्मिश्रण होना भी स्वाभाविक और सहज सत्य है। दक्षिण तथा उत्तर का संधि स्थान होने से मालवा प्राचीन काल से ही संस्कृति, शिक्षा, कला, शिल्प एवं विज्ञान के अतिरिक्त राजनीति एवं व्यवसाय-उद्योग का भी प्रतिनिधित्व करता रहा है। इस प्रदेश का मुख्य स्थल उज्जैन इसी लिए भारतीय इतिहास में अत्यंत ही महत्ता एवं विशिष्टता लिए हुए है। किसी भी प्रदेश का प्राचीन इतिहास लिखते समय स्वभावतः उज्जैन एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में अनायास ही जुड़ जाता है। प्राचीनकाल में भारत के चार प्रमुख मार्गों का केंद्र स्थान होने से मालवा के इस मध्य-बिंदु का और अधिक महत्व बढ़ जाता है। प्रतिदिन यहाँ कई सार्थवाह भारत के कोने-कोने से विक्रय-व्यवसाय हेतु आते थे। वे कुछ अपना प्रभाव छोड़ जाते थे और कुछ साथ ले भी जाते थे। इस प्रकार अनेक भाषाओं का संगम इस तीर्थ पर यदि स्वभावतः होता रहा हो, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है कि मूल-मालवी में अनेक भाषाओं के शब्दों का मिश्रण हो गया है। यही बात प्रत्येक भाषा के साथ लागू है।

वैदिकयुग के पूर्व जब आर्य (सिंधु के मैदान के निवासी अथवा अन्य विवाद एवं तर्कों के आधार पर उन्हें अफ्रीकी, एशियाई या अन्य कहीं के मान लें, तो भी) यहाँ आए, तो उनका और द्रविड़ (जो दक्षिण के मूल निवासी माने जाते हैं या उनको भी अन्य कहीं का मान लें, तो भी) आए, तो उनका भी प्रभाव यह की मूल भाषा पर पड़ा होगा। फिर शक, हूण, पल्लव आदि आए, तो उनका भी प्रभाव इस पर अपनी छाप छोड़े बिना न रहा सका होगा, क्योंकि उन्होंने तो इस प्रदेश को अपना वास-स्थल ही बना लिया था। मुग़ल पठानों के आगमन पर उनकी मूल-बोलियों (ज़ुबान अथवा भाषा) की छाया, उनके संपर्क के कारण यहाँ की भाषा पर पड़ी और अनेक शब्द उनके भी जुड़ कर इस प्रकार मिल गए हैं कि द्विभास, महसूस करने पर भी, नहीं होता। यही बात इंगलिश के प्रति भी सिद्ध हो रही है। मालवा के अविकसित गाँवों में भी टेसण (स्टेशन), डागंडर (डाक्टर), रोड़ (रोड), मास्तर (मास्टर) और इस प्रकार के सैकड़ों शब्द, जो इंगलिश से बिगड़कर मालवी में मिश्रित हो गए हैं—प्रायः सुनने में आते हैं।

इस संबंध में भाषाविज्ञों को गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा कि किसी संपर्क एवं प्रभाववश किसी भाषा के कुछ शब्द यदि किसी अन्य भाषा में मिश्रित हो जाते हैं, तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि उस मूल भाषा का अपना व्यक्तिगत अस्तित्व एवं मौलिकता कुछ है ही नहीं—खास कर ऐसे प्रदेश की भाषा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति इस प्रकार की धारणा का निर्धारण करना, जो कि अति प्राचीन समय से ही अपना मौलिक महत्व संस्कृति और सभ्यता पर स्थापित किए हुए हो---उचित नहीं लगता। इस संदर्भ की पुष्टि के लिए हम वर्तमान समय में बोली जाने वाली मालवी में प्रयुक्त हो रहे कुछ व्यवहारिक शब्दों के समान पर्यायवाची प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनमें मूल शब्द भी हैं और मौलिकता पर प्रादेशिक प्रभाव लिए हुए, मूल से विक्रय हुए अन्य शब्द भी हैं। देखिए :---

(हिंदी में) यहाँ-वहाँ, इधर-उधर---

मालवी में---यां-वां, यांग-वांग, झां-भां, अठे-उठे, इनांग-उनांग, अठाड़ी-उठाड़ी, अंयाडी-वंयाडी, अठिने वठिने इत्यादि ।

(हिंदी में) किसको---

मालवी में---कैंए-कंयें, कीएं, कैंकें, कीके (किके), कणें, कुणें, कुनते, कणिएं, का-से, कुण-से, कुन-से, किनसे आदि ।

(हिंदी में) कहाँ से ---

मालवी में---क्यांति, कांति, कां-से, कई-से, कठे-से, किनांग-से, कनांगसे, कईं आड़ीसे, क्यांड़ीसे आदि ।

मालवी में 'तक' के लिए 'लग', 'तौड़ी', 'छैक', 'ते', 'ति' शब्द प्रयुक्त होते हैं नगरक्षेत्रों में 'तक' भी कहा जाता है। इसी प्रकार से (to) को 'छक', 'ति', 'ते' कहा जाता है, जैसे यां-ति, वां-ति, या छेक, वां छेक---आदि।

मालवी में प्राय: 'ण' और 'न' समानरूप से व्यवहार में लाए जाते हैं, किंतु मूल भाषा में 'ण' ही है, जो शुद्ध संस्कृत से आया है, पाली की छाप भी इसमें है। पंजाबी में भी 'ण' का बहुत प्रयोग होता है, और राजस्थान में भी। इसी प्रकार मराठी में प्रयुक्त होने वाला 'ळ' अक्षर भी मालवा के ग्रामीण क्षेत्रों में आमतौर से 'ल' के स्थान पर बोला जाता है। राजस्थान में भी इसका मौलिकरूप से प्रचलन है। डिंगल का शुद्ध उच्चारण 'डिंगल' ही है। 'त' के स्थान पर मालवी में कई स्थान पर 'थ' आता है, जैसे 'थारे' (तुम्हारे, तेरे)। यह 'थ' दक्षिण का प्रभाव लिए हुए है।

गुज़राती, मालवी, मारवाड़ी (राजस्थानी), बुंदेली, अवधी, और अन्य लोक-भाषाएँ परस्पर बहुत-कुछ साम्य लिए हुए हैं। चूँकि ये प्रदेश एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए इनकी जन-भाषाओं में सम-भास होना आश्चर्य का विषय नहीं है। मूल मालवी, राजस्थानी (मारवाड़ी) और गुजराती बहुत अधिक समानता लिए हुए हैं। मारवाड़ी-मिश्रित मालवी नीमाड़, झालावाड़ पाटन, मंदसौर आदि क्षेत्रों में मिलती है और गुजराती-मिश्रित मालवी उज्जैन, इंदौर देवास आदि केंद्र स्थानों में बोली जाती है। गुजरात मालवा का संबंध बहुत प्राचीन रहा है। उज्जैन से एक प्रमुख मार्ग भडैंच तक जाता था। आज भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उज्जैन में एक बाज़ार पटनीबाजार नाम से प्रसिद्ध है, जो पाटन (पत्तन) से आकर बसे हुए प्राचीन गुजरियों की व्यापारिक बस्ती थी, आज भी यह व्यापार का केंद्र ही है। गुजरात का और मालवा का व्यावसायिक संबंध था। इसलिए भाषा में एकरूपता होना असंगत नहीं है। इसी प्रकार बुंदेली का प्रभाव बुंदेलखंड से जुड़े हुए क्षेत्र, विदिशा, भोपाल, सीहोर आदि निकटवर्ती ज़िलों की भाषा में पाया जाता है। मालवा के सभी अंचलों में बोली जाने वाली बोलियों में अरबी फ़ारसी के घुलेमिले शब्द बड़ी आसानी से पकड़ में आ जाते हैं, जिन पर किसी को कोई आरोप नहीं है। इसी प्रकार इंगलिश के शब्द भी अपनी घुसपैठ कर गए हैं, तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि मालवा के निवासी मूलभूत भारत, अरब अथवा इंगलैंड के हो गए हैं। 'मूल' के साथ 'प्रभाव' जुड़ जाना स्वाभाविक है। अस्तु, असंगत एवं अनावश्यक विवाद चलाना तथा मौलिकता को अस्तित्वहीन सिद्ध करना औचित्य नहीं है।

(पृष्ठ 71 का शेष)

यदि हम मंत्रों का यथाक्रम, सभी दृष्टिकोण से, सूत्रबद्ध, क्रमबद्ध ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, पुराण आदि के अनुसार अनुशीलन करें तो अनेक रहस्यों पर प्रकाश मिलने की संभावना है।

हमारे पुरातत्त्वज्ञों का यह अभिमत है कि वेदों में उन्हीं स्थानों का वर्णन है जिन्हें आर्यों ने जाना है। भारत के विभिन्न स्थानों का उन्हें परिचय नहीं था। यदि व्यापक दृष्टि लेकर ऐसे मंत्रों के अंतर्गत रहस्यों का अवलोकन करें तो काशी—अवंती—अयोध्या आदि की तरह अनेक शब्दों और विषयों का व्यापक वर्णन प्राप्त कर सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- संवैधानिक भाषा नीति : हिंदी के प्रति भ्रम
- भारत में भाषा-समस्या
- पंजाबी हिंदी

स्फुट विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ंवैधानिक भाषा नीति : हिंदी के प्रति भ्रम

—सीताराम शास्त्री

आज भारत में भाषा-नीति एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। यह स्वाभाविक ी है। स्वतंत्र राष्ट्र में समस्याएँ उठना और उनके समाधान के निमित्त स्वप्रतिभा ा प्रयोग करना प्रतिभा की समृद्धि के लिए एक उत्तम प्रेरणा है। हाँ, यह सब ुछ बुद्धिमानी से हो तो सोने में सोहागा है। यह बात निश्चित है कि किसी र्वप्रभुत्व संपन्न देश की नीति बाजारू भाषणों या प्रदर्शनों से निर्धारित नहीं होती। कसी ऐसे देश की सरकार वही करेगी जो संविधान उसे आदेश देता है। अतः किसी ी नीति-संचालन के संबंध में संविधान का पहलू देख कर ही साधिकार बात कही जा कती है। विशेष कर प्रजातंत्र शासन में सजग नागरिक वैधानिकता से प्रभावित ोता है। और सुषुप्त नागरिक सभा-मंच के भाषणों से। मैं यहाँ एक समस्या े दो पहलुओं पर प्रकाश डालना चाहता हूँ। प्रथम—संवैधानिक भाषा-नीति का ाँचा, द्वितीय—हिंदी के संवैधानिक स्वरूप एवं क्षेत्र के प्रति भ्रम। एक तेलुगु-भाषी ोते हुए भी मैं केवल तथ्य की बात कहना चाहूँगा, विरोध के निरपेक्ष भाव से।

संवैधानिक भाषा नीति का ढाँचा—संविधान निर्मात्री सभा ने सितंबर 1949 ई० में अपनी भाषा-संबंधी नीति को पारित किया। और यह नीति 26 जनवरी 1950 को इस देश के मौलिक विधान के रूप में परिवर्तित हुई जब कि नवनिर्मित संविधान लागू हुआ। संविधान में भाषा नीति के छः विशेष संदर्भ हैं :—

1. संघीय भाषा (अनु० 343–46, 351)
2. प्रादेशिक भाषाएँ (अनु० 345–47)
3. उच्च एवं उच्चतम न्यायालय की भाषा (348-49)
4. विशेष निदेश (350-51)
5. अष्टम अनुसूची
6. संसद एवं विधान सभाओं की भाषा (120,210)

विशेषता : संविधान ने हमारे देश को सर्व प्रभुत्व संपन्न प्रजातंत्रात्मक संघ राज्य घोषित किया है। भाषा नीति में भी प्रजातंत्रात्मक ढंग अपनाया गया है। भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्नताओं में भी समस्त भारतीय नागरिकों को एक प्रजा के रूप में मान कर समस्त भाषाओं को शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक ऐक्य अभिवृद्धि की ओर अग्रसर किया गया है। विभिन्न व्यवस्थाओं का निदेश करते हुए भी संस्कृत और शिक्षा संबंधी मूल अधिकारों की [29(1-2), 30(1-2)] सर्वथा रक्षा की गई है।

1–2. संघ की भाषा

संघ की भाषा एवं उसके तीन प्रयोग-क्षेत्र इस प्रकार हैं :—

(अ) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी (343)।

(आ) हिंदी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वा भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्य हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी औ अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली अ पदावलि को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: अ भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ क कर्तव्य होगा।

(इ) परंतु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच संचार के लिए राजभाषा हिंदी-भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिए वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी (346)।

(ई) अनुच्छेद 346 और 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में किसी एक या अनेक को या हिंदी को अंगीकार कर सकेगा (345)।

प्रादेशिक भाषाएँ

इन भाषाओं के तीन भाग हैं। प्रादेशिक राज्य भाषाएँ, राज्य द्वारा अभिज्ञात भाषाएँ। राज्य द्वारा अनभिज्ञात अल्पसंख्यक भाषाएँ।

(1) ऊपर अनुच्छेद 345 के अंतर्गत प्रदेशीय भाषाओं का उपबंध लिख दिया गया है।

(2) तद्विषयक माँग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाए कि कि राज्य के जनसमदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वा किसी भाषा का प्रयोग राज्य द्वारा अभिज्ञात किया जाए तो वह निदेश दे सकेगा ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लि जैसा कि वह उल्लिखित करे, राजकीय अभिज्ञा दी जाए (347)।

जैसा कि सभी जानते हैं भारत में असंख्य भाषाएँ हैं। उन सारी भाषाओं को ज भारत प्रदेश से संबंधित हैं संविधान प्रादेशिक भाषा स्वीकार करता है। अष्ट अनुसूची में प्रमाणित 14 भाषाओं के संबंध में पर्याप्त ग़लतफ़हमी हुई है। उस अनुसू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का शीर्षक 'भारत की भाषाएँ' दिया है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि भारत की केवल चौदह भाषाएँ हीं हैं । ये प्रमुख साहित्यिक भाषाएँ हैं । इनके अतिरिक्त मैथिली, भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, डोगरी, लद्दाखी, कोंकणी आदि अनंत भाषाएँ भी प्रादेशिक भाषाएँ मानी गई हैं । और अनुच्छेद 345 के अनसार इनको भी प्रदेश का राजभाषा पद प्राप्त करने का अधिकार है, यदि अनुच्छद 347 के अधीन राष्ट्रपति व्यवस्था करते हैं ।

कहने का सारांश यह है कि केंद्र की एक भाषा हिंदी ही होगी, लिपि देवनागरी । प्रदेश की राज्यकीय भाषा एक या अधिक प्रादेशिक भाषाएँ या हिंदी हो सकती है । अन्य बची हुई असंख्य भाषाएँ अभिज्ञात और अनभिज्ञात प्रादेशिक भाषाएँ बनी रहेंगी । अनुच्छेद 350 (A) के अधीन मातृभाषाओं के रूप में इन सभी प्रादेशिक भाषाओं में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का कर्तव्य होगा । इस संवैधानिक भाषा व्यवस्था से संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी मौलिक अधिकारों के उपयोग में कोई व्यवधान नहीं पड़ता जो अनुच्छेद 29 में उपबंधित है ।

हिंदी के संवैधानिक स्वरूप एवं क्षेत्र के प्रति भ्रम

उपर्युक्त संवैधानिक भाषा नीति लागू हुए कई वर्ष हो चूके हैं । किंतु दुर्भाग्य से अद्यावधि इस नीति से भारत की वह सामान्य जनता परिचित न हो सकी, जो अपने वोटों से सरकार बनाती है और इस नीति को चरितार्थ करती है । परिणामतः आज हिंदी का विरोध यत्रतत्र देखा जाता है । स्वयं एक दक्षिणी होने के नाते मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे दक्षिणी भाई अभी संघीय हिंदी के स्वरूप के संबंध में नितांत अनभिज्ञ हैं । उन का यह समझना सरासर ग़लत है कि हिंदी उत्तर वालों की भाषा है जो हम पर थोपी जा रही है । यह बात सत्य है कि उत्तर के हिंदी प्रांतों की मातृभाषा हिंदी है किंतु इन प्रांतों की भाषा हिंदी वह हिंदी नहीं है जिसको संविधान ने अनुच्छेद 343 में स्वीकार किया है । हिंदी के साहित्य से किंचित् भी परिचय रखने वाला यह जानता है कि खड़ी बोली, राजस्थानी, बुंदेली, अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी आदि भाषा समूह का नाम हिंदी है । अनुच्छेद 343 में लिखित हिंदी का तात्पर्य ये सारी भाषाएँ केंद्र की राजभाषा नहीं हैं । इस अंतर को स्पष्ट करने के लिए संविधान ने हिंदी के दो भिन्न रूपों का उल्लेख अलग-अलग किया है । अनुच्छेद 343 में, और अनुसूची आठ में, यह दो हिंदी की व्यवस्था है । अनुच्छेद 343 की हिंदी तो एक है । उसके स्वरूप, क्षेत्र का उपसंबंध अनु० 351 में व्यवस्थित है । अनुसूची की हिंदी का तात्पर्य प्रांतीय खड़ी बोली, अवधी, राजस्थानी, ब्रज, मैथिली आदि प्रादेशिक भाषा रूपों से है । वस्तुतः हिंदी प्रांतों की अपनी प्रादेशिक भाषाएँ एवं मातृभाषाएँ ये ही हैं । सिद्धांततः और न्यायतः ये ही भाषाएँ प्रदेश की राजभाषा होनी चाहिएँ । किंतु अनुच्छेद 345 के अंतर्गत हिंदी प्रांतों ने खड़ी बोली को (संघ की भाषा) ही राजभाषा स्वीकार किया है । एकता की दृष्टि से फ़िलहाल यह कदम ठीक ही है । किंतु अवधि, राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली आदि भाषाओं का, जिनको बोलने वालों की संख्या करोड़ों में है, क्या भविष्य होगा, इसका अनुमान भी विद्रोहात्मक ही दिखता है । अभी से राजस्थानी, मैथिली आदि को अलग संवैधानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मान्यता देने की पुकार सुनाई दे रही है। मान्यता मिलने पर (मिल ही जानी चाहिए, क्या ये असमिया, उड़िया से घटिया हैं ?) अन्य भाषाओं के समान समृद्धि के अधिकारों के प्रश्न उठेंगे। मेरे अहिंदी भाई (जिनकी भाषाएँ कम से कम सुरक्षित तो हैं) हिंदी वालों की इन उलझनों को समझें और यह भी हृदयंगम करें कि हिंदी वालों ने अपनी अनेक भाषाओं को (तुलसी, सूर, मीरा और विद्यापति की भाषाओं को) तिलांजलि दे कर त्याग और सहिष्णुता का परिचय दिया है। अब अगला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह हिंदी कहाँ की और कैसी है जो कि भारत की राष्ट्रभाषा है। संघ की हिंदी खड़ी बोली का ही विकसित रूप है, जो मूलतः दिल्ली के चतुर्दिक दो-चार सौ मीलों में मातृभाषा के रूप में व्यवहृत होती आ रही है। अहिंदी भाषी इस तथ्य को खूब समझें कि खड़ी बोली तथाकथित हिंदी प्रांतों की मूलतः न प्रादेशिक भाषा है और न मातृ भाषा है। संघीय हिंदी का उत्स भी वही है, जहाँ से निःसृत होकर संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाएँ कभी राष्ट्रभाषाएँ बनी थीं। इतिहास के इस दोहराव को और सांस्कृतिक पुनरावर्तन को मेरे दक्षिणी भाई समझें, मैं यह चाहता हूँ। अहिंदी को जो हिंदी सीखनी है, वह उत्तर प्रदेश, बिहार या राजस्थान की भाषा नहीं है। संघ की भाषा हिंदी तो संघ की अपनी बनी बनाई भाषा है (अनुच्छेद 351)। उसके बनाने में तेलुगु, कन्नड़, तमिल, बँगला का भी वही योगदान रहेगा जो कि हिंदी से अभिहित अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी आदि का रहेगा। अतः राष्ट्र भाषा हिंदी के साथ जो अनुराग हिंदी वालों का है, वही अनुराग अहिंदी वालों का है, यदि नहीं है तो होना चाहिए। मुझे तो यही स्वाभाविक दीखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में भाषा-समस्या

—विद्या मिश्र

"सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते"
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ।। (गीता 18।20)

(हे अर्जुन ! जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक्-पृथक् सब प्राणियों में एक अविनाशी परमात्मभाव को विभाग रहित, समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तू सात्विक ज्ञान) ।

योगिराज कृष्ण की यह उक्ति धर्मप्राण भारत की आदर्श स्वरूपा है, व्यवहारशीला , अनुकरणीया एवं लाभप्रदा है । समत्वयोग के व्यवहारिक पक्ष की साधिका भाषा ी प्रमुख है । हमारा सर्वप्रथम लक्ष्य समग्र देश की सांस्कृतिक एवं कलात्मक एकता ा ज्ञान करना है । इस ज्ञानोपार्जन का प्रमुख साधन एवं माध्यम भाषा है । वाणी वं वाङ्मय दोनों ही देश की एक सूत्रता के प्रमुख साधन हैं । ये ही वे माध्यम हैं जनमें किसी भी राष्ट्र का अतीत एवं संस्कृति रक्षित रहती है । जिनके द्वारा मानवता ा ज्ञान होता है, ज्ञान का अबाध प्रवाह प्रवाहित होकर जन जीवन को प्रेरणा देता । वर्तमान भारत में बाह्य अवरोध की परिस्थितियाँ समाप्त-प्राय: हैं । कण-कण नवीन चेतना एवं आशा का स्पंदन है । निश्चित ही चेतन राष्ट्र में भाषा से संबंधित वीन चेतना का स्फुरण भी अवश्यंभावी है । राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकृत हिंदी वशेष उत्तरदायिनी हो गई है ।

यह प्रश्न विचारणीय और गंभीर है कि भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में कस प्रकार भाषा संतुलन स्थापित हो अथवा भाषा की समस्या का समाधान किस कार किया जाए? इस प्रश्न पर अनेक दृष्टियों से गंभीरतापूर्वक विचार करना ोगा ।

सन् 1950 के विधान में भाषा से संबंधित कई धाराएँ बनीं । 343 से 351 क की धाराओं ने देश के सम्मुख भाषा संबंधी योजना का सुझाव रखा । धारा 43 के अनुसार हिंदी भारत की राजकीय भाषा मानी गई । अन्य 13 भाषाओं ो भी देश की भाषाएँ होने का गौरव प्रदान किया गया । साथ ही साथ धारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

351 के अनुसार सरकार से यह भी अनुरोध किया गया कि हिंदी भारत की मिल जुली संस्कृति का माध्यम बन सके और इसकी वद्धि में यह भी प्रयास किया ज कि हिंदी का स्वभाव और स्वरूप विकृत भी न हो और उसमें अन्य प्रादेशि भाषाओं के शब्द, शैली और रूप भी आत्मसात् कर लिए जाएँ।

पूर्वोक्त 351वीं धारा देश की भाषा समस्या के हेतु प्रमुख सहायिका प्र रिका है।

समय की माँग के अनुसार चलना ही सफलता के रहस्य का मूल है। देश बयालीस करोड़ से भी अधिक की जन-संख्या में लगभग 20 करोड़ से भी अ हिंदी एवं उसकी शाखाओं के बोलने वाले हैं। अँग्रेज़ी और चीनी के बाद विश्व सबसे अधिक भाषा भाषी हिंदी के ही हैं। तत्पश्चात् रूसी का स्थान है। अतः स भारत की यह सदिच्छा होनी ही चाहिए कि जो भाषा लगभग आधा देश बोलत उसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो।

परंतु कितने दुर्भाग्य की बात है कि 1947 तक देशी भाषा के सम्मुख वि भाषा के समर्थन का कोई साहस नहीं करता था और आज स्वतंत्रता संग्राम के सेन भी अँग्रेज़ी का समर्थन कर रहे हैं। बड़े दु:ख का विषय है कि राष्ट्र भाषा हिंदी राजनीति के दल-दल में फंसाया जा रहा है। इसमें केवल राष्ट्रीय सम्मान पर आघात नहीं होता अपितु समस्त भारतीय भाषाओं में पारस्परिक संघर्ष की भय संभावना हो सकती है, जोकि नितांत अवांछनीय है। राज-भाषा आयोग की रि देखने से यही निश्चय होता है कि राष्ट्र के व्यापक जीवन में शिक्षा केंद्रों में, न्य लयों में, प्रशासकीय स्थानों में तथा राष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में हिंदी का अन्य भार भाषाओं से कोई भी संघर्ष नहीं है। जो कमियाँ या कठिनाइयाँ हैं वे सदभावना आदान-प्रदान से दूर की जा सकती हैं। इस लिए यह बहुत आवश्यक है कि भाषाओं के संघर्ष के द्वारा भारतीय जनजीवन विषाक्त न बनने पावे।

गुजरात में सरदार वल्लभ भाई विद्यापीठ में जून 1961 से महाविद्यालय प्रथम कक्षा में हिंदी का शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रवेश हो रहा है और 1 से परीक्षा के माध्यम के रूप में भी।

मध्य प्रदेश के नागपुर विश्वविद्यालय में सर्व प्रथम हिंदी और मराठी को भाषा का सम्मान प्राप्त हुआ था। इन भाषाओं को माध्यमों के रूप में स्वीकार अन्य विश्वविद्यालयों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत कर प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन किया था।

अहिंदी भाषी प्रदेश में हिंदी के प्रति प्रवृत्ति का इससे भी ज्वलंत उदाहरण विश्वविद्यालय के प्रोवाइस चांसलर श्री पणिकर की उक्ति है। एक बार जब विश्वविद्यालय में एक प्राध्यापक ने वहाँ की क्षेत्रीय भाषा मलयालम को उस विद्यालय की शिक्षा के माध्यम का प्रस्ताव किया था तब श्री पणिकर ने कहा 'मलियाली होने के नाते मुझे अपनी मातृ भाषा से प्रेम है पर मैं अपनी भावी को केरल की सीमा में ही सिसकते रहने का अभिशाप नहीं झल सकता। जब राष्ट्रभाषा हिंदी प्रत्येक विषय का माध्यम बनने के योग्य नहीं हो जाती तब तक विश्वविद्यालय का माध्यम अँग्रेज़ी ही रखना उचित होगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तथ्य निरूपक कथन के पश्चात् प्रस्ताव वापस ले लिया गया।

इसी प्रकार उत्कल प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री हरेकृष्ण मेहताब तथा आंध्रराज्य के शिक्षा मंत्री श्री राव ने भी क्षेत्रीय भाषा के माध्यम का विरोध कर हिंदी का ही समर्थन किया था। श्री राव ने तो स्पष्ट यह कहा था कि 'यदि प्रत्येक राज्य में विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा बनाया गया तो भावी पीढ़ी की अपार क्षति होगी। शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड तथा केंद्रीय सरकार पर छोड़ देना चाहिए और समस्य विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम एक ही भाषा होनी चाहिए।'

यह तो स्पष्ट ही है कि अँग्रेज़ी अधिक समय तक शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती। अतः राजभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा इनमें से एक को अवश्य ही माध्यम बनाना होगा। यदि शिक्षा शास्त्री एवं देश के दूरदर्शी नेता सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से समस्त शिक्षा केंद्रों में राज भाषा को हीं शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लें तो देश की भाषा-संबंधी समस्त वर्तमान समस्याओं का अंत हो जाएगा और देश का प्रत्येक भाग एक सूत्र में बंध जाएगा। यद्यपि यह भी स्पष्ट है कि भाषा के अनुसार प्रांत रचना वाली मनोवृत्ति में पूर्वोक्त साधन अव्यावहारिक है, परंतु यह तो संभव हो ही सकता है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ राजभाषा के माध्यम की भी सुविधा प्रदान की जाए जिससे प्रत्येक भारतीय नागरिक अखिल देशीय स्थान भी प्राप्त कर सके।

हिंदी-विरोधी आंदोलन के प्रति भी ध्यान देना आवश्यक है। यद्यपि ऐसे आंदोलनकारी संस्कृत भाषा की उत्तराधिकारिणी हिंदी के विरुद्ध नारे लगाते हैं और हिंदी अक्षरों को डांबर से पोतते हैं परंतु हमारे स्वर्गीय प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू तथा दक्षिण के लोगों ने भी इस वर्ग के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई।

इसी प्रकार हिंदी विरोधी दूसरा वर्ग वो है जो आजीवन अँग्रेजी का भक्त रहा है। ऐसे व्यक्ति एंग्लो इण्डियन आदि भारतीय होते हुए भी अभारतीय हैं, असांस्कृतिक हैं। यद्यपि अँग्रेज़ी से हमारा भी कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं है क्योंकि उसके माध्यम से संसार का साहित्य और विज्ञान सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। परंतु उसका प्रभुत्व अब हमारी देशी भाषाओं पर कदापि नहीं हो सकता।

जिस प्रकार अँग्रेज़ों का साम्राज्यवाद हमें असह्य था उसी प्रकार अँग्रेज़ी समर्थकों को अँग्रेज़ी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव असह्य है। यह वर्ग ही देश में हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में मिथ्या संघर्ष उत्पन्न कराने का उत्तरदायी है।

भारत का इतिहास और साहित्य इस बात का साक्षी है कि शताब्दियों पूर्व का भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक रहा है और वह भी भाषा के माध्यम से ही। दक्षिण के शंकराचार्य, रामानुजाचार्य एवं वल्लभाचार्य आदि ने स्थानीय भाषाओं के माध्यम से देश में निज सिद्धांतों का प्रचार नहीं किया। समय-समय पर संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी ही अंतर्प्रांतीय व्यवहार की भाषाएँ रही हैं। आज भी दक्षिण में संस्कृत की परंपरा के कारण हिंदी अपरिचित भाषा नहीं है क्योंकि नागरी लिपि से वे परिचित हैं। यह स्पष्ट है कि संस्कृत की उत्तराधिकारिणी हिंदी की देश में प्राचीनतम सांस्कृतिक परंपरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न प्रदेशों में प्रचलित भाषा-संबंधी समस्याओं के समाधान के हेतु कुछ निम्नां सुझाव यदि व्यावहारिक रूप में परिणित हो जाएँ तो बहुत कुछ संभव है कि भा के क्षेत्र में संतुलन और सामंजस्य हो सके। यह भाषा-संतुलन की नौका सं बल के सहारे, भारती के प्रति श्रद्धा के आधार पर तथा क्षेत्रीय भाषाओं के प्र उदारता के प्रवेग से ही संक्रमणयुग-सागर में सरलता से प्रवाहित हो सकती यदि ऐसा संभव हो सके तो फिर अन्य विपरीत विचारसरणियों के अवरोध नहीं बिगाड़ सकते ।

(1) भाषा संबंधी सर्वप्रथम सुझाव यह है कि अहिंदी प्रदेशों के अहिंदी भा छात्रों को उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में कुछ समय के लिए स्थान दिया तथैव हिंदी प्रदेशों के उच्चस्तरीय छात्र एवं अध्यापक भी भिन्न प्रदेशों के वि विद्यालयों में भेजे जाएँ जहाँ कि वे स्वेच्छा से परप्रांतीय भाषा सीख कर अ उदारता का परिचय दे सकें। इस प्रकार के प्रयत्नों से अहिंदी भाषी लोगों के हृ का संदेह निवृत्त हो सकता है और भाषा के आदान-प्रदान से भाषा-स्तर में उन्नति होगी तथा भाषा संबंधी जटिल समस्या का समाधान भी हो सकेगा।

(2) विकासशीला भाषा के दो रूप होते हैं। साहित्यिक भाषा के अति दैनंदिन प्रयोग में आने वाली भाषा में अनेक अहिंदी शब्द, मुहावरे और प्रयोग सम्मि होते चलते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि भिन्न प्रयोग उसमें आत्मसात् होते रहें साथ ही साथ उनमें संग्रह-त्याग का विधान भी हो। हिंदी भाषी साहित्यिकों के प्र से ऐसे शब्द-कोषों का निर्माण किया जाए जिनमें स्वीकृत और अस्वीकृत प्रयोगों विवरण हो। ऐसा शब्द-कोष वर्तमान स्थिति में ऐतिहासिक महत्व का होगा।

(3) आज के राजनीतिक एवं भाषा संबंधी समझौते की दृष्टि से हिंदी विद्यार्थी को अपनी मातृ भाषा के अतिरिक्त देश की अन्य क्षेत्रीय भाषा का अध्य अवश्य करना चाहिए। यदि हिंदी भाषा-भाषी विद्यार्थी ऐसा नहीं करता तो उस योग्यता की सुरक्षा अहिंदी भाषा-भाषी विद्यार्थी के सम्मुख न हो सकेगी क्योंकि अपनी मातृ भाषा के अतिरिक्त हिंदी का भी अधिकारी होगा जबकि हिंदी भ केवल अपनी मातृभाषा में ही सिमिट कर रेशम के कीड़े की भाँति संकुचित ही र और अहिंदी भाषा-भाषी के सम्मुख हीन ही होगा। इस हीनता के निवारणार्थ त तुलनात्मक विवेचना शक्ति के विकासार्थ अन्य भारतीय भाषा का अध्ययन पर वश्यक है।

(4) हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्र करने के लिए एक रूप अखिल भारतीय शब्दावली के निर्माण की आवश्यकता विज्ञानादि विषयों की शब्दावली में समस्त भारतीय भाषाओं में एकरूपता परम अ वार्य है अन्यथा अराजकता उत्पन्न होने की आशंका हो सकती है। शब्दावली नि करते समय यह परम अनिवार्य है कि वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द सुनिश्चित अर्थ हो। यद्यपि यह शब्दावली-निर्माण-कार्य भारत सरकार के तत्वाव में हो रहा है परंतु उसमें यदि कुछ प्रचलित अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को भी उसी रूप में आत्म कर लिया जाए तो अनुचित न होगा : जैसे रेडियो, मीटर, लिटर तथा हाईड्रो आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) अँग्रेज़ी के माध्यम से पढ़े हुए शिक्षकों के हेतु प्रशिक्षण, अभ्यास कक्षों तथा ाख्यान-मालाओं आदि की भी आयोजना करनी चाहिए। इसी प्रकार विचार निमय के अनेक साधनों का प्रबंध भी किया जाना चाहिए।

(6) हिंदी के विकास और प्रसार की योजनाओं का समस्त कार्य शिक्षा-मंत्रालय संरक्षण में कराया जाए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भांति केंद्रीय हिंदी नुदान आयोग का भी निर्माण किया जाए जिससे विकेंद्रीकृत प्रादेशिक समितियाँ र्थिक अनुदान प्राप्त कर सकें।

(7) सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपाय एवं साधन देश में वातावरण का निर्माण । भारतीय भाषाओं का उत्कर्ष तभी हो सकता है जबकि हम वातावरण के निर्माण भी योग दे सकें। नित्यप्रति की बातचीत तथा व्यवहार में हम हिंदी को ही उपयोग लाएँ।

अन्य भारतीय भाषा-भाषी की अपेक्षा हिंदी भाषा-भाषियों का उत्तरदायित्व धिक है। उन्हें अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य पर विशेष ध्यान देना है। हिंदी के ति प्रेम परिवर्तित करने के लिए उसकी पात्रता की वृद्धि करनी है। गौरव की रिमा के गर्व में न पड़ कर सेवा की भावना को प्राण-पण से प्रयोग में लाना है। रत की समस्त भाषाओं को हिंदी के समकक्ष मान कर उन की उन्नति में सहयोग ना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी हिंदी

---कृष्णकुमार गुप्त

आज कल दिल्ली में हम जो बोलते हैं, वह कोई भाषा नहीं। 'मेरा साइक गया है', 'मैं आज दफ्तर वास्ते लेट हो गया था', 'मेरी वाइफ़ को डिलीवरी इत्यादि न हिंदी है न अँग्रेज़ी। इसे, यदि एक शब्द दिया जा सकता है, तो हम प हिंदी की संज्ञा दे सकते हैं। पर हम इसके खूब अभ्यस्त होते जा रहे हैं। क्या है कि क्या सही हिंदी है और क्या ग़लत, इसकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जात

पंजाबी हिंदी में महेंद्र, नरेंद्र, सुरेंद्र, कृष्ण को क्रमशः महेंदर, नरेंदर, सुरें कृशन कहते हैं। सीधे-सीधे ये नाम हैं किंतु पंजाबी पर उर्दु का प्रभाव होने के वे इस प्रकार उच्चारित किए जाते हैं। नाम के अंत में वहाँ आकार भी लगाने व है जसे पुकारना हो रमेश तो नाम को धक्का लगाते हुए कहेंगे 'रमेशा'।

राजधानी में एक दूध की दूकान पर मुझे लिखा मिला 'नागपाल की डा मानो डेरी और डायरी में कुछ अंतर ही न हो। यदि मेरी दृष्टि नीचे न ग तो मुझे भ्रम ही हो जाता।

आप यदा कदा सुनते है—'अब श्रीमती——
आपको एक गति देंगी या श्री...... आइटम रखेंगे'। उत्सव तथा गान नृत्य सदैव से होते आए हैं, परंतु ऐसे शब्दों में घोषणाएँ कानों को बड़ी अटपटी लग

यहाँ उत्तर प्रदेश के खत्रियों में पाए जाने वाले मेहरोत्राओं को कोई नहीं जा वे केवल पंजाबी मेहरोत्राओं को ही जानते हैं। उत्तर प्रदेश के निवासी भी मेहरोत्रा बंधुओं को मलहोत्रा ही कहते हैं। वे न उनके नाम पट्ट पर ध्यान दे उनके लैटर पेपर पर छपे हिज्जों पर। उन्हें मेहरोत्रा को मलहोत्रा बनाना सिद इसी प्रकार पंजाबीगण गुजराती पंडया को पांडे ही पुकारते हैं। यह उनके न साथ सरासर अन्याय है। हम किसी का नाम ठीक न लेकर उसके प्रति अपनी अन प्रकट करते हैं। उससे भी अधिक उसका अपमान करते हैं।

पंजाबी- हिंदी पर आश्चर्य तब होता है जब उसमें लिंग का ध्यान नहीं रखा और पुलिंग को स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग को पुलिंग बनाया जाता है। 'यह ताश है', 'मैंने सीमेंट मँगाई', 'बॉल नीचे गिर गया है', 'मेरा साइकल अच्छा है',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र में दर्द हो गई है' इसके उदाहरण हैं। हिंदी में यह वाक्य क्रमशः इस प्रकार होंगे। 'यह ताश अच्छा है,' 'मैंने सीमेंट मंगाया', 'बॉल नीचे गिर गई है', 'मेरी साइकिल अच्छी है', 'उसके पैर में दर्द हो गया है'। ये सही भी हैं।

'मेरे को यहाँ अच्छा नहीं लगता', 'तेरे को क्या है', भी सुनाई पड़ते हैं। ये सुनने में कितने भद्दे लगते हैं। हिंदी में 'मुझको जाना है' नहीं होता 'मुझे जाना है' सही हिंदी है।

जब कोई हिंदी वाला सुनता है 'भैनजी चले गए' वह किंचित आश्चर्य में पड़ जाता है। स्त्री को सम्मानित करने का यह ढंग अद्भुत है। पंजाबी में यह चलता रहे, हिंदी में 'बहिन जी चलीं गईं' युगों से चला आ रहा है और बहिन जी कितनी भी बड़ी हों, चाहे मंत्री या गर्वनर ही क्यों न हों, तब भी यथेष्ट है।

नक़ल में पटु हम हिंदी वाले भी आजकल 'एक सेर दूध' को 'सेर पक्का दूध', 'सब' को 'सारे', 'पास वाले घर' को 'साथ का घर', कहने लगे हैं। पंजाबी में 'मेरी जनानी घर नहीं है', इत्यादि से तो दम घुटने लगता है। पत्नी अथवा स्त्री के लिए यह बड़ा खराब शब्द है।

एक पंजाबी लेखिका ने एक उपन्यास में लिखा है 'दीप ने चाची के कर रोटी खाई'। इनके यहाँ अच्छे से अच्छा भोजन भी रोटी ही होता है। हिंदी लिखते समय हिंदी का वाक्य 'खाना खाया' या 'भोजन किया' प्रयुक्त हो सकता था। इसी प्रकार, मुझे एक उपन्यास में 'वह शाहणी को मिलने से डरता था', 'जगदीप का वहाँ जाने को दिल नहीं था', 'तुझे मैंने कहा था', 'समझ पड़ी' इत्यादि मिले। मुझे एक प्रसिद्ध हिंदी लेखक द्वारा एक लेख में 'उनकी वाणी में मिठास था' के स्थान पर 'मिठास थी' भी मिला। पंजाबी-हिंदी में ये वाक्य ठीक हैं। शुद्ध हिंदी में वे 'वह शाहणी से मिलने में डरता था', 'जगदीप का वहाँ जाने को मन न था, इच्छा न थी', तुमसे मैंने कहा था', 'समझा' इत्यादि होते।

'क्या फर्क पड़ता है', 'गंदा टाइम' और 'की हालचाल हैं', पंजावी-हिंदी के तकिया कलाम हैं। कोई वस्तु खरीदनी है। एक दो रुपए की आती है, दूसरी तीन रुपए की। कहेंगे 'यार कोई ख़रीद लो, क्या फर्क पड़ता है?' यह 'क्या फर्क पड़ता है', आपको अवसर बे अवसर हर समय मिलेगा। आप चलते चले जा रहे हैं। दूसरी ओर से एक सज्जन आ रहे हैं। वे आपसे केवल नमस्ते जी ही नहीं करते। चाहें वे साइकिल पर हों, चाहे आपसे विपरित दिशा में जा रहे हों चाहे, उन्हें उसका उत्तर भी नहीं मिल सकता हो, वे आपसे 'की हालचाल हैं' जरूर पूछेंगे। जब तक आपके पास खड़े होकर बात करने का अवसर न हो, इस 'की हालचाल' का क्या अर्थ हो सकता है। 'क्या बन रहा है', भी बिल्कुल उसी प्रकार का पंजाबी-हिंदी का तकिया कलाम है।

'मैं इंसपैक्टर लगा हूँ' और 'मैं 150 रुपए लेता हूँ', भी यों प्रतिदिन सुनने को मिलते हैं। हिंदी में ये कभी कहीं न थे। ये लोग 'मैं इंसपैक्टर हूँ', और 'मेरी तनख्वाह 150 रु० है या मैं 150 रु० पाता हूँ' क्यों नहीं कह सकते? 'मैं मालूम करूँगा' के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं पता करूँगा' ही कहते हैं। यदि वे हिंदी सीखना चाहते हैं तो थोड़ा प्रयत्न
नहीं करते? उन्हें हिंदी को कृपा करके, इतना विकृत नहीं बनाना चाहिए।

फिर पंजाबी-हिंदी में समाजवाद का प्रभाव कुछ अधिक प्रतीत होता है। इ
'तुसी', तुम और आप दोनों के लिए है। 'आवो जी', 'खाओ जी', ही होते हैं। आ
बैठिये, खाइये, इत्यादि का कहीं नाम नहीं।

जिन्हें अखिल भारतीय आकाशवाणी द्वारा प्रसारित, स्त्रियों के कार्य
सुनने का अवकाश मिला है, उन्होनें अनेक बार हमारी पंजाबी बहिनों को हिंदी
हत्या करते सुना होगा। एक बार एक डाक्टर बहिन कुछ प्रश्नों का उत्तर दे रही
और खूब पंजाबी-हिंदी बोल रही थीं। हम पंजाबियों के हिंदी कार्यक्रमों में भाग
के विरुद्ध नहीं। हमें उनसे केवल शुद्ध हिंदी बुलवानी चाहिए। साथ ही उ
उच्चारण भी सही हो।

'बारिश पड़ गई' न हिंदी में कभी था न कभी होगा। इसी प्रकार 'कुमारियों
प्रेफरेंस दी जाएगी' के स्थान पर 'प्रेफरेंस दिया जायगा', उचित है। 'आप सबेरे
चले जाना', भी पंजाबी-हिंदी का उदाहरण हैं। इसमें भला 'को' की क्या आवश्य
थी? ये पंजाबी-हिंदी वाले 'मैं कह रहा था', को भी 'कहने लगा था', ही कहते

आजकल हिंदी के कुछ दैनिक समाचारपत्रों तथा अन्य पत्रिकाओं में भौंडी
भौंडी भाषा लिखी जाती है। मेरा तात्पर्य समस्त समाचार जगत पर कीचड़ उछाल
नहीं, किंतु हिंदी को सशक्त और समृद्ध बनाने के लिए, उसका विकास करने
लिए, उसे राष्ट्र भाषा के उच्च पद पर आसीन करने के लिए हमें इस दिशा में त
सावधान रहने की आवश्यकता है। हिंदी भाषा के निर्माण में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं
बड़ा महत्वपूर्ण योग है।

हमें एक ओर पंजाबी को उन्नत करना है ओर दूसरी और हिंदी को हिंदी ब
रखना है। अँग्रेज़ी मिश्रित हिंदी भी पंजाबी-हिंदी की भांति अनुचित है। यदि
हिंदी थोड़ी जानते हैं तो आप हिंदी का ज्ञान बढ़ाइए। यदि आप हिंदी पढ़ कर
गए हैं तो अपने ज्ञान को ताज़ा कीजिए। आप स्वयं हिंदी पढ़िए और दूसरों को
हिंदी पढ़ाइए।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी में उच्चारण के अनुसार लेखन की समस्या

कृष्ण विकल

देवनागरी लिपि प्राचीनतम लिपियों में से एक है। इसका महत्त्व केवल प्राचीन होने में ही नहीं, इसके वैज्ञानिक होने में भी है। वस्तुत: संस्कृत में जैसा उच्चारण अभीष्ट था, नागरी लिपि ने सम्यक् प्रकार से उसे वहन किया। परंतु हिंदी में आकर उसके सम्मुख कुछ समस्याएँ उपस्थित हो गईं। हिंदी में अँग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त अन्यान्य भाषाओं के शब्द आते गए, जिनके उच्चारण अलग-अलग एवं विशिष्ट (Specified) थे। इतने विशिष्ट की नागरी में उनको हूबहू लिखने के लिए संकेत न थे। वास्तव में प्रत्येक विकासमान भाषा को किसी भी अन्य भाषा का लिप्यंतरण करने में कठिनाई का सामना करना ही पड़ता है। स्वभावत: नागरी लिपि में नए संकेतों का सृजन होना आवश्यक था। इसलिए हिंदी में अरबी, फारसी शब्दों को उच्चारण के अनुरूप लिखने के लिए नागरी लिपी के 'क', 'ख', 'ग', 'ज', 'फ', आदि वर्णों के नीच बिंदु लगाकर 'क़', 'ख़', 'ग़', 'ज़', 'फ़' आदि वर्ण बना लिए गए। इसी प्रकार 'Doctor' 'not' 'coffee' आदि अँग्रेज़ी शब्दों में 'O' के विशिष्ट उच्चारण को बनाए रखने के लिए नागरी में अर्धचंद्र बिंदु (ॅ) का निर्माण किया गया।

यह तो रही अन्यान्य भाषाओं के उच्चारण के लिपिबद्ध करने की बात। वस्तुत: हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जितने संकेत चिन्ह हम विदेशी भाषाओं के उच्चारण को सम्यक् रूप से बाँधने के लिए बनाते हैं उनका व्यवहार भी हमें उन्हीं भाषाओं के लिप्यंतरण में करना होता है या उन संदर्भों में, जिनमें हम उन-उन भाषाओं के विशिष्ट रूप दिखाना चाहते हैं।

इस सिद्धांत को हिंदी में कई लोग नहीं समझ पा रहे। बहुत-से लोग आज भी सामान्य व्यवहार की भाषा में, 'ख़ास', 'ग़ुलाम', 'साफ़', 'क़दम' आदि शब्दों में, उर्दू के शुद्ध उच्चारण के पक्षपाती हैं। उन्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भाषा व्यवहार का माध्यम है। अधिक जनता जिस शब्द को जिस उच्चारण में बोलती है, हमें उस रूप का स्वागत करना ही होगा। हिंदी में 'साफ' को 'साफ़' कितने लोग बोलते हैं और 'कदम' को 'क़दम' कितने लोग? यद्यपि उर्दू से प्रभावित कुछ लोग अभ्यासवश बोलते हों तो भी हमें बहुसंख्यक जनता के हितों का विचार करना ही होगा। और फिर उन अक्षरों के बिंदुवाले रूपों को हिंदी भाषा में पूर्णत: स्वीकार कर लेने से मुद्रण की दिक्कत जितनी बढ़ेगी, वह तो एक तरफ़ रही। उच्चारण में विविधता हो जाने से अहिंदी-भाषायों को शद्ध स्वरूप-निर्णय में जिननी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, उसका कुछ कुछ अनुमान हम सहज ही लगा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

किंतु साथ ही साथ हमें यह देखना है कि हम सुविधा के लोभ में कहीं वर्णों की
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वास्तविक उच्चारण-क्षमता को तो नजरंदाज नहीं कर रहे? 'ज़' को लीजिए और यह देखिए कि 'ज' और 'ज़' के उच्चारण में कितना अंतर है—दो अलग-अलग वर्ण दीखते हैं जिनके मुख-स्थान[1] का परस्पर कोई तालमेल ही नहीं। 'क़' और 'क' में 'ख़' और 'ख' में, 'ग़' और 'ग' में और 'फ़' और 'फ' में उतना बड़ा अंतर नहीं दीखता जितना 'ज़' और 'ज' में। यदि 'ज़ुकाम', 'ज़रा', 'ज़माना', 'बाज़ार', 'ज़रूर', 'जज़्ब' 'वाइज़', 'प्राइज़' आदि शब्दों को हम 'जुकाम', 'जरा', 'जमाना', 'बाजार' 'जरूर', 'जज्ब' 'वाइज', 'प्राइज' आदि पढ़ते हैं, या पढ़ना पसंद करते हैं तो साधारण प्रयोग की भाषा में से सहर्ष 'ज़' का बहिष्कार किया जा सकता है। भाषा एक एसा प्रवाह है जिसमें समयानुसार जाने-अनजाने विशिष्ट परिवर्तन होते रहते हैं ओर व्याकरण की तो अपनी एक सीमा है, वह तो भाषा की ऐसी सेविका है जो कि समय की आवश्यकता को आग्रह के रूप में प्रस्तुत करती है एवं एक 'युग' तक उस पर आचरण करने के लिए बाध्य करती है।

और देखिए न, 'ड़', 'ढ़'-इन वर्णों का भी कुछ ऐसा ही इतिहास है। संस्कृत में 'ड़', 'ढ़' का कोई अस्तित्व नहीं। किंतु आज हम नागरी में इन वर्णों को देखते हैं। संस्कृत में तो 'पीडा', 'क्रीडा', 'मढ', 'गूढ' आदि शब्द ही आपको सर्वत्र मिलेंगे, किंतु परवर्ती काल में देशीय प्रभाव से कछ शब्दों में 'ड', 'ढ' के स्थान पर 'ड़', 'ढ़' लिखे जाने लगे। फलत: आज हम उन शब्दों को 'पीड़ा', 'क्रीड़ा', 'मूढ़', 'गूढ़' आदि के रूप में जानते-बोलते हैं और इस पर मज़ा यह कि हिंदी व्याकरण में इन्हें तत्सम शब्दों के अंतर्गत गिना जाता है।

सो कहने का तात्पर्य यह है कि 'ज़' वाले अँग्रेज़ी, फारसी आदि भाषाओं के शब्द जो आज हिंदी के अपने बन गए हैं, वे जिस रूप में आज बोले जाते हैं, उसी रूप में लिखे जाने चाहिएँ। इसमें किसी प्रकार के मोह की आवश्यकता नहीं है।

यह तो रही बात विभाषीय हिंदीतर उच्चारण वाले वर्णों के लेखन की/बहरहाल इसमें थोड़ी असमर्थता भी रहे तो सहनीय है। किंतु असली खटक तो वहाँ पैदा होती है जहाँ हम एक ही वर्ण पर उच्चारण के दो-दो प्रकारों का बोझ जाने-अनजाने लादे हुए हैं। इस पर भी भाषाशास्त्री चुप्पी साधे हुए हैं—आश्चर्य है!

हिंदी में ग्यारह स्वर हैं जिनमें अंतिम चार स्वर ये हैं–ए, ए, ओ, औ। पहली पोथी में हिंदी का नन्हा छात्र पढ़ता है–ऐ, औ-और संस्कृत में यही इन स्वरों का शुद्ध उच्चारण है। किंतु हिंदी में इन स्वरों का उच्चारण एकसा नहीं रहता। बच्चा पढ़ता है–ऐ-ऐनक; औ-औरत; अध्यापक महोदय तोतों की तरह रटाए जाती हैं। वही क्या किसी का भी इस पर ध्यान नहीं जाता, या जाता है तो वह सोचता है कि सब चलता है। व्याकरण के चिराग तले अंधेरा। सोचिए न, ऐ-'ऐनक' ('अइनक' की तरह) क्यों नहीं, ऐ-'ऐनक' क्यों, औ-'औरत' ('अऊरत') की तरह क्यों नहीं, औ-औरत क्यों!

कहने को तो हम जैसा लिखते हैं वैसा पढ़ते हैं। फिर 'ऐसा', 'ऐश', 'ऐंठना', 'रैन', 'तैर', 'चैन', 'जैसा' 'खैर' आदि असंख्य तत्समेतर शब्दों में 'ऐ' का उच्चारण, तथा

[1] 'ज' तालव्य है और 'ज़' दन्त्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार 'और', 'गौर', 'बौर', फौज', 'ठौर', 'दौड़', 'लौटना', 'मौत', 'सौंपना', 'औज़ार', 'भौंरा', दौरा आदि [illegible] तत्समेतर शब्दों में 'औ' का उच्चारण, आप किस प्रकार करते हैं ?

किंतु 'ए', और 'औ' स्वर जहाँ तत्सम शब्दों में व्यवहृत होते हैं, वहाँ इनका उच्चारण प्रथम कोटि का (विशुद्ध) हो जाता है, जैसे 'ऐहिक', 'ऐक्य', 'ऐतिहासिक', 'दनिक', 'दत्य', 'धैर्य', 'ऐरावत', 'मतैक्य', आदि ('ऐ' स्वर-युक्त); 'औद्योगिक', 'औत्सुक्य', 'कौरव', 'कौतुक', 'कौतुहल', 'कौमुदी', 'कौशल', 'गौरव', 'दौर्बल्य', 'शौर्य', 'पौत्र', 'बौद्ध', 'भौगोलिक', 'भौतिक', 'मौखिक', 'मौन', 'औपन्यासिक' आदि ('औ' स्वर-यूक्त।) ।

उपर्युक्त तत्समेतर और तत्सम उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि 'ऐ' और 'औ' स्वरों का उच्चारण तत्समेतर शब्दों में अलग प्रकार से होता है । और तत्सम शब्दों में अलग प्रकार से । फलतः इन शब्दों के उच्चारण के लिए वक्ता को या तो हर समय इस बात के लिए संचेत रहनां पड़ता है कि यह तत्सम शब्द है या तत्समेतर । क्योंकि ज्यों हीं उसे संदेह हुआ नहीं, त्यों हीं उच्चारण के अशुद्ध होने की आशंका हुई नहीं । और फिर आप अपने साधारण व्यवहार में देखते होंगे कि कितने लोग इन स्वरों का उच्चारण करते समय सचेत रह पाते हैं । बस वे अभ्यासवश हीं तत्सम शब्दों का अलग प्रकार से, और तद्भव शद्बों का अलग प्रकार से उच्चारण कर लेते हैं । परंतु समस्या का यह तो कोई समाधान नहीं हुआ । नागरी लिपि में स्वर-विशेष का कम से कम एक निश्चित उच्चारण तो होना चाहिए ।

और फिर दूसरी बात यह भी तो है कि बहुत-से पाठक 'ऐ' और 'औ' के उच्चारण के मामले में तत्सम और तत्समेतर शब्दों में परस्पर विभेद ही नहीं कर पाते । वे हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुके होते हैं, तथापि वे 'ऐश्वर्य', 'एक्य', 'दैनिक', 'धैर्य', तथा 'कौरव', 'कौतूहल', 'औद्योगिक', 'शौर्य', आदि शब्दों में, 'ऐ', तथा 'औ' को, क्रमशः 'ऐश', 'ऐब', 'तैरना', 'मैदान', तथा 'और', 'औजार', 'रौंधना', 'मौसी', आदी शब्दों को 'ऐ' तथा 'औ' के उच्चारण के समान बोलते हैं । संस्कृत से परिचित लोग ऐसे हिंदी-भाषियों की अज्ञता पर हँस सकते हैं, किंतु उनकी यह अज्ञता वास्तविक रूप में हिंदी भाषा की गंभीर समस्या है । वस्तुतः यह एक विडंवना है कि एक ही शब्द के तत्सम और तद्भव रूपों में परस्पर उच्चारण का अंतर आ जाए :

तत्सम रूप (पहला उच्चारण)	तद्भव रूप (दूसरा उच्चारण)
वैद्य	वैद
वैजयंती	बैजयंती
वैकुंठ	बैकुंठ
भैरव	भैरो

समझ नहीं आता कि हिंदी के पाठक से यह अपेक्षा क्यों की जाती है कि वह 'ध्यान देना' के अर्थ में आने वाले 'गौर' (गौर शब्द का उच्चारण 'सफेद' के अर्थ में आने वाले (तत्सम शब्द) 'गौर' से भिन्न करे ।

यदि समस्या यहीं तक होती तो हिंदी का स्वतंत्र अस्तित्व मान कर यह सलाह दी जा सकती कि 'ऐ' और 'औ' वाले तत्सम शब्दों का उच्चारण भी तत्समेतर शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह कर दिया जाए और उनमें परस्पर कोई उच्चारण-भेद न रखा जाए। किंतु ऐसा करने से भी काम नहीं चलने का। कारण यह कि तत्समेतर शब्दों में भी जब 'ऐ' के बाद 'य', एवं 'औ' के बाद 'व' अथवा 'अ' आ जाता है उस समय क्रमशः 'ऐ' एवं 'औ' का उच्चारण तत्सम शब्दों में उच्चारित 'ऐ' तथा 'औ' के समान हो जाता है, जैसे :

(क) ऐयारी, तैयार, रैयत, मैया, गैया आदि

(ख) हौवा या हौआ, कौवा या कौआ, पौवा या पौआ आदि

अब यदि हम नागरी में अन्य वर्णों की तरह, इन वर्णों की निश्चित उच्चारण-क्षमता बनाए रखना चाहते हैं तो हमें 'ऐ' और 'औ' के दो-दो प्रकार के उच्चारणों के लिए संकेत-चिन्ह निश्चित करने होंगे। इस के लिए हमें अपनी देशीय भाषाओं को टटोलना चाहिए। मेरे विचार से हम इन रूप स्वरों को इस प्रकार निश्चित कर सकते हैं

(1) पहला उच्चारण (तत्सम तथा तत्समवत उच्चारण) :–

ऐ.............ऐ–रोहिक, भैया आदि

औ..........औ–औपचारिक, हौआ आदि

(2) दूसरा उच्चारण (तत्समेतर उच्चारण) :

ऐ...........ऐ (गुरूमुखी संकेत)–कैसा, वैसा आदि

औ........औ (गुरूमुखी संकेत)–और, मौत आदि

हिंदी को उच्चारणविषयक एक और अव्यवस्था का सामना करना पड़ रहा है। वह है अनुस्वार और अनुनासिक-संबंधी। 'अ', 'उ', 'ऊ' स्वार, तथा इनकी मात्रा वाले 'हँस', ('हुँ', 'हूँ' आदि शब्दों में तो अनुनासिक का सम्यक् प्रयोग किया जा सकता है, किंतु 'ईं', 'ऐं', 'ओं', 'औं)–इन स्वरों पर तथा 'इ', 'ई', 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ' की मात्राओं पर, आवश्यकता होने पर भी मुद्रण की कठिनाई क कारण अनुनासिक नहीं लगाया जा सकता। फलतः सही उच्चारण को समझने में पाठक को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अनुनासिक की इस अधूरी उपयोगिता को देखते हुए इसका बहिष्कार करने का आग्रह किया जाता है। किंतु यदि हमें उच्चारण की सूक्ष्मता (Accuracy) को बनाए रखना है तो इसका भी हल ढूंढ़ना होगा, क्योंकि अनुनासिक के बिना कविता में अत्याधिक कठिनाई होती है। इसका समाधान यों किया जा सकता है :

1. वर्तमान अनुस्वार-चिन्ह को अनुनासिक समझा जाए।
2. जहाँ अनुस्वार-चिह्न लगाना अभीष्ठ हो वहाँ बंगला का अनुस्वार चिन्ह (ং) का प्रयोग किया जाए।

इसके फलस्वरूप अनुनासिक के वे सभी प्रयोग जो आज अनुस्वार को वहन करने पड़ते हैं, स्वयं अनुनासिक पर आ जाएंगे। तब 'खींच', 'खेंच', 'ऐंठ', 'चोंच', 'खरौंच', आदि शब्दों में अनुनासिक का प्रयोग सहज ही समझा जा सकेगा और पाठक अनुनासिक और अनुस्वार के भेद को सपष्ठतः हृदयंगम कर सकेंगे।

इस प्रकार के संकेत-निर्णयों से 'ऐ' और 'औ' एवं अनुस्वार-अनुनासिक के विभिन्न उच्चारणों की साम्यक् रक्षा हो सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और राष्ट्रभाषा (कविता)

मैथिलीशरण गुप्त

नई ताक़त (कहानी)

देवेन गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और राष्ट्रभाषा

—मैथिलीशरण गुप्त

मराठी अनुवाद : प्रभाकर माचवे

शिक्षा

सबसे प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में,
शिक्षा बिना ही पड़ रहे हैं आज हम सब क्लेश में ।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है ।।

जब तक अविद्या का अँधेरा हम मिटावेंगे नहीं,
जब तक समुज्ज्वल ज्ञान का आलोक पावेंगे नहीं,
तब तक भटकना व्यर्थ है सुखसिद्धि के संधान में,
पाए बिना पथ पहुँच सकता कौन इष्टस्थान में ?

वे देश जो हैं आज उन्नत और सब संसार से——
चौंका रहे हैं नित्य सबको नव नवाविष्कार से ।
बस ज्ञान के संचार से ही बढ़ सके हैं वे वहाँ,
विज्ञान-बल से ही गगन में चढ़ सके हैं वे वहाँ ।।

विद्या मधुर सहकार करती सर्वथा कटु निंब को,
विद्या ग्रहण करती कलों से शब्द को, प्रतिबिंब को ।
विद्या जड़ों में भी सहज ही डालती चैतन्य है,
हीरा बनाती कोयले को, धन्य विद्या धन्य है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 76248

शिक्षण और राष्ट्रभाषा

—मैथिलीशरण गुप्त

मराठी अनुवाद : प्रभाकर माचवे

शिक्षण

सर्वात पहिले आपुले कर्तव्य हे देशांत वाढवुं शिक्षण
जे आज शिक्षण-शून्य हे क्लेशांत पडले सर्वजण !
कोणी न बनतो शिक्षणावाचून रे सत्पात्र हा,
आशा कधीं कल्याण होइल शिक्षणावाचून का ?

जोंवर अविद्या-तिमिर हे आम्ही न सारूं तोंवरी
आलोक ज्ञानाचा समुज्ज्वल का मिळेल कधीतरी
तोंवर भटकणें व्यर्थ हे सुखसिद्धि-संधानार्थ रे
जोंवर न मिळतो पंथ, का लाभेल इष्टस्थान ते

ते देश जे आहतें उन्नत आणि जे विश्वांत या
सर्वांस करती चकित नव-अविष्करण शोधें अहा
ते ज्ञान-संचारामुळें तेथे चढू शकले वरी
विज्ञान-बल याच्यामुळें ते पोंचले व्योमीं वहा

विद्या मधुर सहकार करते सवथा कडुलिंब ही
विद्या ग्रहण करते कळांनी शब्द नी प्रतिबिंब भी
विद्या मुळ मध्यें सहज जी टाकते चैतन्य नी
ती कोळशाला हिरकणी बनवी सुविद्या धन्य ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या दिनों का पथ पलों में पार है करवा रही,
विद्या विविध वैचित्र्य के भांडार है भरवा रही।
गति सिद्ध उसकी हो चुकी आकाश में, पाताल में,
है वह मरों को भी जिलाना चाहती कुछ काल में।

पाया हमीं से था कभी जो बीज वर विज्ञान का,
उसको दिया है दूसरों ने रूप रम्योद्यान का।
हम किंतु खो बैठे उसे भी जो हमारे पास था,
हा ! दूसरों की वृद्धि में ही क्या हमारा ह्वास था।

राष्ट्रभाषा

है राष्ट्रभाषा भी अभी तक देश में कोई नहीं,
हम निज विचार जना सकें जिससे परस्पर सब कहीं।
इस योग्य हिंदी है तदपि अब तक न निज पद पा सकी,
भाषा बिना भावैकता अब तक न हममें आ सकी ॥

यों तो स्व-भाषा सिद्धि के सब प्रांत हैं साधक यहाँ,
पर एक उर्दूदां अधिकतर बन रहे बाधक यहाँ।
भगवान जाने देश में कब आएगी अब एकता,
अब छोड़ दो है भाइयो ! अच्छी नहीं अविवेकता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या किती दिन चालणे करते क्षणात सुलभ्य ती
विद्या विविध वैचित्र्यमय भांडार भरते सारखी
गति सिद्ध झाली जी चिभी आकाशि वा पाताळि ही
ती मृतक ही जीवंत करु पाही पहा तत्काल ती

जे बीज शास्त्रांचे कधी अमुच्याकडूनी घेतले
त्याला दुजांनी रूप रम्योद्यान जैसे हे दिले
आम्ही पहा हरबून बसलों जे कधी अमुंचे पहा
हा ! दुजांच्या वृद्धिमध्ये काम अमुचा हवास हा

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा ही नसे देशांत अजुनी एक ही
निज विचार-प्रदर्शनार्थ परस्परां जी लाभळ
या योग्य हिंदी असुन ही निज पद न तिजला का मिळे
भाषेबिना भावैकता अमुच्यांत वाढू का शके ?

प्रांत सारे निज स्वभाषासिद्धि चे साधक तसे
पण एक उर्दू-भक्त येमे बनति हे बाधक कसे
परमेश्वरी ठाउक कधी देशांत येइल एकता
सोडा अहम् हे बंधुनो ! वाईट ही अविवेकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई ताकत

देवेन गुप्त

गुजराती अनुवाद : मनहर चौह

[हिंदी कथा साहित्य के इस दशक में जिन लेखकों ने कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियों द्वारा अपना एक स्थान बना लिया है, उनमें देवेन गुप्त का नाम भी परिगणित होता है। उन्होंने बहुत कम कहानियाँ लिखीं, पर वे बहुचर्चित और साहित्यिकों द्वारा समादृत हुईं। 20 दिसंबर, 1964 को 23 वर्ष की अल्पायु में ही कानपुर में उनका असामयिक निधन हो गया। उन्होंने अपनी छोटी सी उम्र में साहित्य की अन्य विधाओं मे भी कुछ सफल प्रयोग किए।]

जून का महीना और दिल्ली ! मतलब जब दिल्ली में जून का महीना आता है सड़कों का कोलतार पिघलने लगता है। नहा-धोकर आदमी नए कपड़े पहने तप सड़क पर मुश्किल से दस मिनिट भी नहीं चल पाता कि उसका सारा बदन पसीने चिपचिपा जाता है। अच्छे से अच्छे 'एरेस्टोक्रेट' के कपड़े भी मैले नज़र आते हैं फिर वह तो एक मामूली सा क्लर्क है। उसे इस बात का कोई ग़म नहीं कि वह सु धुले कपड़े पहन कर निकला था, और अब उसके कपड़े मैले हो गए हैं।

इतवार की सुबह ! आज के दिन हर नौकरी-पेशा आदमी आराम करता है लेकिन उसे एक बहुत ज़रूरी काम से अपने एक दोस्त के पास 'खैबरपास मेस' जा पड़ा। लौटते समय वह कुछ देर के लिए कश्मीरी गेट पर रुका। दिन के ठीक बा बज हैं, और सड़कों का कोलतार पिघल कर चिपचिपा हो गया है। उसकी चप पहले सड़क से चिपक जाती हैं और फिर एड़ी से लग कर एक अजीब तरह की आव करती हैं। उसने रूमाल से माथे पर आया पसीना पोछा और बस स्टैंड पर लगी त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

નવી તાકાત

મૂળ લેખક : સ્વ૦ દેવેન ગુપ્ત
અનુવાદક : મનહર ચૌહાણ

[હિંદી વાર્તા સાહિત્યના આસુ દશકમાં જે લેખકોએ કેટલીક આગવી કૃતિઓ વડે પોતાની એક ઈલાયદી જગા બનાવી, એમાં દેવેન ગુપ્તનું'ય નામ શામેલ કરવામાં આવે છે. ચેમણે જૂજ વાર્તાઓ લખી, પણ એ બધી પૂરની ચર્ચામાં આવી અને સાહિત્યકરોનો આદર પામી. 20 ડિસેંબર 1964 ના દિવસે ત્રેવીશ વરસની બાલિશ ઉમરમાં કાનપુરમાં એમનું અકાળ મૃત્યુ થયું. આવી નાની ઉમર-માં જ એમણે સાહિત્યની અન્ય શાખાઓમાં પણ કેટલાક સફળ પ્રયોગો કર્યા.]

જૂનનો મહિનો અને દિલ્લી એટલે બસ ! દિલ્લી માં તે ગાળો અવો હોય કે એકેએક સડકનો ડામર ઓગળવા માંડે. નાહી ધોઇને અને નવાં કપડાં પહેરીને ધગધગતા રસ્તા ઉપર બહાર નીકળો અને દશ મિનટ પણ માંડ ચાલો કે થઈ રહ્યું ! આખે શરીરે પરસેવો ને પરસેવો ! ઊંચામાં ઊંચા 'એરિસ્ટોક્રટ' નાંચે કપડાં ઉપર ધૂળ બાએલ દેખાય; એટલે પછી પોતા જેવો સામાન્ય હોય, એને આ બાબત ખાસ વિચારવાનું રહે નહિ. સાચે જ અને એ વાતનું જરાય દુઃખ ન હોતું કે નવાં ધોવાયેલાં જે કપડાં તે આજની સવારે પહેરીને બહાર નીકળ્યો હતો; એ બધાં હવે મેલાંદાડ થયાં છે.

રવિવારની સવાર ! દરેક નોકરિયાત વ્યક્તિ એ વેળાસે જરૂર આરામ કરે, પણ આજ એક અત્યંત આવશ્યક કામ ખાતર તેને પોતાના એક દોસ્તને ત્યાં 'ખૈબરપાસ મેસ' જવું પડયું હતું. પાછા ફરતી વેળા તે જરા વાર માટે કાશ્મીરી ગેટ પર રોકાયો.

બપોરના પૂરેપૂરા બાર વાગ્યા છે અને સડકોનો ડામર ઓગળીને પોચો તથા કયાંક કયાંક સરંકણો બન્યો છે. તેની ચંપલ વારંવાર સડકમાં ચોંટી જાય છે અને ઊખડીને એડી એ વાગતાં ચટાક એવો અવાજ કરે છે.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाइन में जाकर खड़ा हो गया। इतवार को दिल्ली की बसों में बेहद भीड़ हो जाती हर आदमी एक रुपए का टिकट लेकर सुबह से ही घूमने निकल जाता है। उसे ता होता है कि आखिर इतनी गरमी में लोग कैसे घूमने निकलने का साहस करते

उसे रमेशनगर जाना है, और वहाँ से उसका घर पूरे डेढ़ मील दूर पड़ता है। कड़ी धूप में डेढ़ मील दूर पैदल चलना पड़ेगा . . . . सोच सोच कर वह बार हिम्मत हार जाता है। और फिर यहाँ भी बस का इंतजार! बसें ठसाठस भरी आती हैं और बगैर रुके ही चली जाती हैं। उसे अपना गला सूखता हुआ सा म हुआ। बगल में ही रिट्ज़ सिनेमा है। उसने अपनी जेब से पैसे निकाल कर सवा रुपए का टिकट खरीदने के बावजूद उसके पास इतने पैसे बचते हैं कि वह ब बैठकर रमेशनगर तक जा सके। साढ़े तीन बजे तक शो समाप्त होगा और त भी इतनी तेज़ नहीं होगी। आराम से वह रमेशनगर बस-स्टाप पर उतर कर घर डेढ़ मील दूर पैदल जा सकेगा।

. . . . . तो क्यों न दोपहर के तीन घंटे सिनेमा हाल के पंखे के नीचे कर गुज़ार दिए जाएँ। और फिर बगैर ज्यादा सोचे-समझे वह सिनेमा हाल की बढ़ गया। लाइन में लगकर उसने टिकट खरीदा और हाल के अंदर जा कर गया। हाल में भी बेहद गरमी थी। लोगों की घुटी-घुटी साँसें और बीड़ी-सिगरे धुआँ। उसे लगा कि उसका दम घुट रहा है। बात आज से लगभग ढाई साल पुरा जब रिट्ज़ सिनेमा हाल अपनी पुरानी हालत में था। अब तो और सिनेमाहालों तरह रिट्ज़ ने भी अपना रूप बदल लिया है। पिक्चर अच्छी थी, लेकिन उसे बुरी घबराहट महसूस हो रही थी। एक तो तेज़ धूप में पिघलती सड़क पर चलना और बस स्टैंड पर बस का इंतज़ार। उसे अपना गला सूखता हुआ सा मालूम पड़ा। लगा, कि उसे काफ़ी देर से प्यास लगी हुई है। पिक्चर शुरू होने में अभी तीन मिनट बाकी थे। वह उठा और पानी की तलाश में हाल के बाहर आ गया। हा बाईं तरफ कोने में दो नए पैसे फ़ी गिलास ठंडा पानी देने वाली टंकी की तरफ बढ़ ग लकड़ी के खंभों में गिलास रखते हुए पूरबी आदमी से उसने पानी माँगा––एक गि पानी देना भाई!

"पानी खतम हो गया बाबू!" और पूरबी आदमी ठेले को एक तरफ घसीट ले ग

उसने अपनी कलाई-घड़ी की तरफ देखा। पिक्चर शुरू हो गई थी। सामने वाले की दूकान थी, जहाँ सोडा, लेमन, आरेंज, और कोकाकोला की बोतलें सजी उसने अपनी जेब से पैसे निकाल फिर गिने। सिर्फ़ बस के किराए के तीस पैसे उस हथेली पर चमक रहे थे। उसने बेबसी से इधर उधर देखा और फिर हॉल के अंदर जा बैठ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કુર્પાળે આવેલો પરસેવો રુમાલ વતા લૂછીને તે સામેના બસ સ્ટૅંડ પર લાગેલાં લાંબાં ક્યૂમાં શામેલ થયો. રવિવારે દિલ્લીની બસોમાં અનહદની ગીરદી થઈ જાય. એક રૂપિયામાં મળતી 'હોલીડે ટિકટ' ખરીદાને અનેક લોકો સવારથી જ ફરવા નીકળી પડે. આવા ધીકતા તાંપમાંય લોક ફરવા જીર્કજીવાનું સાહસ કેમ કરી શકે, એ વિશે એણે અવારનવાર આશ્ચર્ય અનુભવ્યું છે.

તેણે રમેશનગર જવાનું છે અને ત્યાંથીય એનું ઘર દોઢ માઈલથી ઓછું વેગળું નહિ હોય, આવા સખત તડકાયાં છોઢેક માઈલ પગે ચાલવું પડશે, એ વિચારે તે વારંવાર હિંમત ખોઈ બેસતો. ચાલવાનું તો બાદમાં છે, પણ હમણાં અહીં બસની જે ઇન્તેજારી કરવી છે તે...... બસો ઠસોઠસ ભરાયેલી આવે છે અને થોભ્યા વગર આગળ નીકળી જાય છે. તેણે પોતાનું ગળું સૂકાતું અનુભવ્યું. બગલમાં જ 'રિટ્ઝ' સિનેમા છે. તેણે પોતાનાં ગજવાંમાંથી પૈસા કાઢીને ગણ્યા. સવા રૂપિયાની ટિકટ ખરીદવામાં આવે તો એ પછી પણ એટલા પૈસા બચી રહે કે રમેશનગર સુધી બસમાં જઇ શકાય. બપોરનો આ શો સાડા ત્રણ વાગ્યે પૂરો થશે ત્યારે તડકો જરા નરમ બન્યો હશે. રમેશનગરના બસ-સ્ટૉપ પર ઉતર્યા બાદ ઘેર સુધીનો દોઢેક ચાઇલનો રસ્તો તે આરામથી કાળી શકશે.

......ચાલ ત્યારે, બપોરના આ ત્રણ કલાક સિનેમા-હૉલ ના પંખા નીચે બેસીને જ પસાર કરૂં.

અને વધારે ગડમથલમાં પડયા વગર તે સિનેમા-હૉલ ભણી ચાલવા માંડયો. હારમાં ઊભા થઈ એણે ટિકટ ખરીદી. તે અંદર ગયો ને પોતાના નંબરની સીટમાં ગોઠવાયો.

હોલમાંયે કંઈ ઓછી ગરમી ન હોતી. ગૂંગળાવે એવા લોકોના શ્વાસ ને એ સાથે બીડી-સિગરેટનો ધૂમાડો પણ! તેને લાગ્યું કે કદાચ આ ગૂંગળામણ સહેન નહિ થાય. આ વાત લગભગ અઢી વરસ જૂની છે, જયારે 'રિટ્ઝ' સિનેમા-હોલ ખખડધજ હાલતમા હતો. હવે તો બીજા સિનેમા-હોલની જેમ 'રિટ્ઝ' નું રૂપ પણ અઘતન બન્યું છે. ફિલમ સારી નીકળવાની વકી હતી છતાં તે ઘેરી ગભરામણ અનુભવવા માંડયો હતો. ધીકતા તાપમાં ચાલવા અને સ્ટૅંડ ઉપર બસની ઈંતેજારી કરવામાં કંઈ ઓછી શકિત નહોતી વેડફાઈ! ફરી તેનું ગળું સૂકાવા લાગ્યું. તરસ હમણાં નહિ પણ લાંબા સમયથી લાગેલી હોવી જેઈએ. શો શરૂ જાવામાં હજુ ત્રણ-ચાર મિનટ રહેતી હતી. તે ઊઠયો ને બહાર આવીને પાણી શોધી રહ્યો. હોલની ડાબી બાજૂના ખૂણાંમાં ઠંડાં પાણીનો એક ગલાસ બે પૈસામાં આપવાવાણી ટાંકી મોજૂદ હતી. તે એની તરફ વધ્યો. લાકડીના ખાંચામાં ગલાસ ગોઠવી રહેલા પેલા 'પૂરબિયા' માણુસ પાસેથી એણે પાણી માગ્યું "એક ગલાસ આપજે."

પાણી ખલાસ !" કહીને 'પૂરબિયો'
ટંકી એક તરફ ખેંચી ગયો.
તેણે પોતાનાં કાંડાં-ઘડિયાળમાં જોયું ફિલમ શરૂ જાઈ ગઈ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
परदे पर पहले कुछ स्लाइड्स दिखाए गए जिनमें एक स्लाइड रूह-अफ़ज़ा का भी।
सेहत के लिए गरमियों का शीतल पेय ! उसे और भी ज्यादा प्यास महसूस होने ल
फिर उसके बाद न्यूज़रील और पिक्चर शुरू हो गई। उसे अपनी बेवकूफ़ी पर
बार झुंझलाहट होने लगी। न वह पिक्चर का टिकट खरीदता और न यह परेशानी
सामने आती। आराम से वह बस में बैठकर रमेशनगर चला जाता। वहाँ उतर
एक कोकाकोला की बोतल पीता और घर जा कर आराम करता। डेढ़ मील
ज्यादा दूरी नहीं होती, रोज़ ही तो चलता है। उसने परेशानी से अपनी प्यास
क़ाबू पाने की कोशिश की। लेकिन रिट्ज़ सिनेमा का घुटा घुटा माहौल ! उसे लगा
उसकी प्यास बढ़ती ही जा रही है।

पिक्चर अच्छी होने के बावजूद भी उसे कोई मज़ा नहीं आ रहा था। उसकी इ
हो रही थी कि किसी खुले पार्क में जा कर पेड़ के नीचे लेट जाए। लेकिन वह
रुपए का मोह नहीं छोड़ पा रहा था। वह बार-बार थूक निगल कर अपने गले को
कर रहा था। हर बार वह अपना ध्यान पिक्चर में लगाने की कोशिश कर रहा
लेकिन गले में चुभते काँटे बार-बार उसका ध्यान बढ़ती हुई प्यास की तरफ़ ले
रहे थे।

किसी तरह 'इंटरवल' हुआ और वह सबसे पहले हाल के बाहर निकल आ
वह सिनेमाहाल के पीछे लगे सरकारी नल की तरफ़ चला गया और पानी गरम
के बावजूद उसने भरपेट पी लिया। गला भीगते ही उसे लगा कि उसकी प्यास
गई है। उसकी आँखों के सामने छाता हुआ अँधेरा रोशनी में बदल गया। उसने
से चारमीनार का पैकेट निकाला और सीढ़ियों पर खड़े होकर वह सिगरेट पीने ल
पिक्चर शुरू हुई तो वह सिगरेट फेंक कर वापस हाल के अंदर अपनी सीट पर जा
बैठ गया। वह चाहता तो सिगरेट हाल के अंदर भी पी सकता था। तमाम लो
रहे थे। लेकिन न जाने क्यों उसे यह बात ठीक नहीं लगी। सबसे पहले परदे पर
लाइन आई थी कि हाल के अंदर सिगरेट पीना मना है। लेकिन इसके बावजूद
सिगरेट पी रहे थे।

सिर के ऊपर से जाती पंखे की गरम हवा, पेट के अंदर भरा सरकारी नल का
पानी और फिर ऊपर से चार मी नार सिगरेट का धुँआँ ! पांच मिनट में ही उसका
फिर सूख गया और उसने पहले से कहीं ज्यादा प्यास महसूस की। हाल में बे
आवाज़ लगाता घूम रहा था—कोकाकोला, कैम्पो आरेंज, जे० बी० रोज़। लोग बो
ले लेकर पी रहे थे और उसकी प्यास बढ़ती जा रही थी। उसकी इच्छा हुई कि वह
एक बोतल ले कर पी ले। लेकिन फिर यहाँ से रमेशनगर छह मील दूर पैदल ज
पड़ेगा और इस तेज़ धूप में पिघलती सड़क पर दस कदम पैदल चलना भी उसके लि
दूभर था। लेकिन गला था कि सूखता ही चला जा रहा था। आँखों के आगे फि
अँधेरा छाता जा रहा था। परदे पर उसे अभिनेताओं की सूरतें पहचानना भी मुश्कि
नज़र आ रहा था। एक भी डायलॉग वह नहीं समझ पा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

હતી. સામે એક પાનવાળાની દુકાન હતી. ત્યાં સોડા, લેમન, ઓરેંજ અને કોકાકોલાની બાટલીઓ ગોઠવાયેલી દેખાઈ. એણે ગજવાંમાંથી પૈસા કાઢીને ફરી ગણી જોયા. માત્ર બસનાં ભાડાના ત્રીશ નવા પૈસાએની હથેળી પર ચળકી રહ્યા. લાચાર અને દયામણી દૃષ્ટિએ તેણે આસપાસ જોયું. તે હોલમાં પ્રવેશ્યો અને પોતાની સીટમાં ફસકી પડયો.

પડદા ઉપર સ્લાઈડ્સ દેખાડવામાં આવી રહી હતી. એમાં એક સ્લાઈડ 'રૂહ-આફ્જા'ની હતી.... ગરમીના દિવસોમાં તંદુરસ્ત રહેવા માટે આદર્શ શીતળ પીણું !......અને તેની વધી ચૂકેલી તરસ હજુ વધી રહી...... ન્યૂઝરીલ શરૂ થઈ ને ત્યાર બાદ પિકચર. પોતાની મૂર્ખાઈ ઉપર તે વારંવાર અકળાઈ રહ્યો. સિનેમાની ટિકટ ખરીદવાનું કહ્યું કોણે હતું ? ન ખોટું ખરચ કર્યું હોત, ન આવી મૂંઝવણમાં મૂકાયો હોત......અત્યાર સુધીમાં તો બસ ચોક્કસ મળી જાત ને રમેશનગર ભણી એ રવાનોય થઈ ચૂકયો હોત.... ત્યાંના સ્ટોપ ઉપર આરામથી ઊતરત અને કોકાકોલાની એક ટાઢી બાટલી પણ પી શકયો હોત....દમામથી ઘેર પહોંચીને એણે આરામ ફરમાવ્યો હોત. દોઢ માઈલ બહુ લાંબું ન કહેવાય. રોજ એટલે સુધી અને એટલેથી આવાજવાનું થાય છેસ્તો ! જરા વધારે અકળાઈ રહેતાં એણે પોતાની તરસ ઉપર કાબૂ મેળવવાનો નવેસરથી પ્રયાસ કર્યો. 'રિટ્ઝ'ની અંદરનું આ ગૂંગળાવનારૂં વાતાવરણ પણ સાલ્લું...... ! ફરી તેની તરસ વધવા માંડી.

પિકચર સારી હોવા છતાં એને જરાય રસ પડતો ન હતો. મનમાં આવાન્ડં હતું કે કોઈક ખુલ્લા પાર્કમાં જઈ ઝડની શીતળ છાયામાં સૂઇ જાય, પણ ટિકટ ખરીદવામાં સવા રૂપિયો ખરચાયો હતો, તે વસૂલી લેવાનો મોહ મૂકી શકાય એવો ન હોતો. મોંમાં પેદા થઈ રહ્યું. થૂંક ઉતારીને તે ગળું ભીનું કરી રહયો. વારે ઘડી એ તે ફિલમમાં રસ લેવા મથતો, પણ ગળાંમાં જે કાંટા વાગવા જુવું લાગતું હતું, એને લીધે તેનું ધ્યાન દરેક-વખતે પોતાની વધી રહેલી તરસ તરફ ખેંચાઇ જતું.

જેમ તેમ ઇંટરવલ થયો. હોલમાંથી બહાર નીકળનારાઓમાં કદાચ એ સૌથી આગળ હતો. હોલના પછવાડે જે સરકારી નળ લાગેલ હતો, તે ઝટઝટ એ બાજૂ ગયો. નળમાં પાણી ગરમ આવી રહ્યું હોવા છતાં એંણે પેટ ભરીને પીધું. ગળું તર થતાંની સાથે એમ લાગ્યું જાણે તરસ હવે હેરાન નહિ કરે. આંખે અંધારાં આવતાં હતાં તે દૂર થયાં. બધું ચોખ્ખે ચોખ્ખું દેખાવા માંડયું. ખિસ્સામાંથી 'ચારમીનાર' નું પેકેટ કાઢીને દાદર ઉપર ઊભો રહી એ સિગરેટ પીવા માંડયો. શો શરૂ થયો એટલે તરત એણે સિગરેટ ફેંકી દીધી અને હોલમાં જઈ ફરી પોતાની સીટમાં ગોઠવાયો. એણે ચાહ્યું હોત તો હોલની અંદર પણ સિગરેટ પી શકાય એમ હતું. અનેક વ્યકિતઓ પી રહી હતી. પણ કોણ જાણે કેમ એને એ સારૂં લાગ્યું નહિ. પડદા ઉપર સૌથી પહેલાં જે લીંટી ચળકેલી તે એ જ કે 'હોલની અંદર સિગારેટ-બીડી પીવી નહિ.' એમ છતાં જે પીતા હોય તે ભલે પીધા રાખે !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर जाने कब उसने बेयरे को आवाज़ दी और बेयरा उसके हाथों में को कोला की बोतल पकड़ा गया, उसे नहीं मालूम । एक ही घूंट में आधी से ज्यादा पीने के बाद उसकी आँखे खुलीं । धीरे-धीरे उसके सामने अभिनेताओं की सूरतें होती गईं । डायलॉग उसकी समझ में आने लगे । उसने अपने अंदर एक ता महसूस की । और फिर वह उस आधी बोतल कोकाकोला को आराम से धीरे पीने लगा । बीच में प्यास के दौरान में छूट गई कहानी को समझने की कोशिश लगा । उसे इस बात की चिंता ज़रूर थी कि अब उसे डेढ़ मील पैदल चलना पड़े लेकिन अब कोई चारा नहीं । यहाँ से साढ़े तीन मील दूर उसके एक दोस्त का पड़ता है । उससे पैसे माँग कर फिर बस या स्कूटर से चला जाएगा । चार आ उसकी जेब से निकल ही चुके हैं । लेकिन जो होना था सो हो गया । उसके बा अब ज्यादा सोचने की आवश्यकता नहीं । अब पिक्चर में मज़ा लेना चाहिए । वह सारी बातें भूल कर परदे पर नाचती तस्वीरों को देखने लगा ।

लेकिन बेयरा अभी तक नहीं आया और पिक्चर समाप्त होने की पहली घंटी चुकी है । खैर आता होगा । वह पिक्चर देखता रहा ।

दूसरी घंटी बजी । बेयरा आया और दूसरे लोगों से पैसे इकठ्ठे करके और बो लेकर वापस चला गया । उसने सोचा, शायद थोड़ी देर में आए । अभी पिक्चर सम होने में दो-तीन मिनट बाकी हैं । लेकिन पिक्चर खत्म हो गई और बेयरा नहीं आ वह यह भूल चुका था कि अभी हाल में उसे एक आदमी से बोतल और पैसे लेने

बोतल उसके पैरों के पास रखी हुई थी और लोग अपनी सीटों से उठ चुके अचानक उसके दिल में ख्याल आया, अगर मैं किसी तरह इस बोतल को छुपा कर अ साथ ले जाऊँ तो मेरे चार आने पैसे तो बचेंगे ही साथ ही यह बोतल . . . को कोला की बोतल. . . . . .आसानी से कहीं भी ढाई तीन आने में बिक स हैं । और इस तरह वह धूप में साढ़े तीन मील पैदल चलने से बच सकता है । फिर उसने निर्णय कर लिया कि वह ऐसा ही करेगा । वह अपने आस पास के लो का ज़रा दूर होने तक इंतजार करता रहा । और जब वे लोग थोड़ी दूर चले गए उसने धीरे से उठा कर बोतल अपनी पैंट की जेब में डाल ली । जेब के सिरे पर रूम कुछ इस तरह से रखा कि बोतल का मुँह न दिखाई पड़े ।

और फिर वह भीड़ के पीछे-पीछे हाल से निकल आया ।

लेकिन सड़क पर आते ही उसे ऐसा लगा कि कुछ ग़लत हो गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

માથાં ઉપર ચકરાવો લઈ રહ્યો પંખો ગરમ હવા ફેંકતો હતો. સરકારી નળનું ગરમ પાણી પેટમાં ખદબદતું હતું. એ સાથે વળી ચોમેર ગોટાઈ રહેલો ધૂમ્રપાનનો ધૂમાડો! થોડી મિનટમાં જ એનું ગળું ફરી સૂકાઇ જવા માંડયું.

હૉલમાં એક બૅરો લટાર મારતો બોલી રહ્યો હતો....કોકાકોલા, ફૅન્ટા-ઓરેંજ, જે. બી. રોઝ... દર્શકોમાં બાટલીઓ લેવાઈ અને પીવાઈ રહી હતી. એની તરસ વધી રહી.... મન થતું હતું કે એક બાટલી હું પણ લઈ લઉં, પણ એમ કરવાથી તો રમેશનગર સુધી છ માઈલ પગે ચાલવું પડશે અને તાપમાં ઓગળી રહેલી આવી સડક ઉપર બે ડગલાંય ભરવાં મુશ્કેલ લાગે છે. પણ આ ગળાંનું શું કરવું? એ તો સૂકાતું જ જાય છે....આંખે ફરી અંધારાં આવે છે.... પડદા ઉપર અભિનેતાઓ ના ચહેરા સુદ્ધાં ઓળખવામાં મુશ્કેલી અનુભવાય છે.... એક પણ સંવાદ સમજાય તો ને !

અને.... એણે પેલા બૅરા ને કયારે નજીક બોલાવ્યો અને કયારે બૅરો એના હાથમાં કોકાકોલાની એક બાટલી મૂકી ગયો, કંઈ ખબર ન પડી. એક શ્વાસમાં તેણે અડધી કરતાંય વધારે બાટલી ખાલી કરી, ત્યારે એની આંખો જાણે ફરીથી ઊઘડી રહી ન હોય ! અભિનેતાઓ ના ચહેરા સ્પષ્ટ બન્યા. સંવાદ સમજાવા લાગ્યા. શરીરની અંદર જાણે અનેરી સ્ફૂર્તિનો સંચાર થયો હોય. કોકાકોલાની બાટલી અડધી બાકી રહેલ હતી, તેને એ જરા નચિંત થઈ ને પીવા લાગ્યો. તરસના ફેર દરમ્યાન વાર્તાનો જે દોર તૂટી ગયે લો, તેને સાંધવાનો એ પૂરતો પ્રયાસ કરી રહ્યો. ચિંતા તો અલબત્ત હતી જ કે હવે દોઢને બદલે પૂરેપૂરા સાડા ત્રણ માઇલ પગે ચાલવું પડશે, પણ એનો હવે કંઈ ઉપાય નથી. અહીંથી સાડા ત્રણ માઇલ દૂર એના એક દોસ્તનું ઘર છે. એની પાસેથી પૈસા લઇને આગળ બસ અથવા સ્કૂટરમાં ચાલ્યો જશે. ચાર આના એના ખિસ્સામાંથી નીકળી જ ગયા. જે થયું તે થયું. હવે તો પિકચરની મઝા માણવી જોઇએ.

બધી વાતો ભૂલી જઈને તે સામેના પડદા પર સરકતી તસવીરો જોઈ રહ્યો.

પણ બૅરો હનુ સુધી નથી આવ્યો ને પિકચર પૂરૂં થવાની પહેલી ઘંટડી વાગી ચૂકી છે. હશે ! આવતો હશે. પિકચર જોઈ રહ્યો.

બીજી ઘંટડી વાગી. બૅરો આવ્યો અને આસપાસના લોકો પાસેથી બાટલીઓ તથા પૈસા લઈને વિદાય થયો. એણે વિચાર્યું કે બૅરો થોડી વારમાં કદાચ પાછો આવશે. પિકચર પૂરા થવામાં હવે બે-ચાર મિનટની વાર હતી. પણ પિકચર પૂરા થઈ છતાંય બૅરો આવ્યો નહિ. નક્કી એણે થાપ ખાધી હતી. એક બાટલી ને એના પૈસા લેવા એ ભૂલ્યો હતો.

બાટલી એના પગ પાસે પડી હતી. આજૂબાજૂના લોકો પોત પોતાની સીટ છોડી ચૂકયા હતા. એકાએક એને વિચાર

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरज की गरमी बढ़ती जा रही है। उसे लगा कि उसके मुँह पर कोलतार पु हुआ है। सड़क कोलतार की नदी बन गई है और उसमें बाढ़ आती जा रही है पिघला हुआ कोलतार उसके घुटनों से ऊपर कमर और कमर से ऊपर गले तक आ गय है। और थोड़ी ही देर में वह इस कोलतार की नदी में डूब जाएगा। उसे लगा कि उसकी जेब में कोकाकोला की बोतल नहीं एक बम रखा हुआ है जो दस कदम आ चलते ही फट जाएगा। उसके जिस्म की चिंदी-चिंदी उड़ जाएँगी और उसके अस्ति का कहीं पता भी नहीं चलेगा। उसे लगा कि बेयरे की दो आँखें उसका पीछा क रही हैं जिसे बोतल और कोकाकोला का दाम अपनी जेब से चुकाना पड़ेगा।

उसे लगा, सड़क पर हर चलता आदमी उसकी फूली हुई ज़ेब की तरफ देख रहा है उसे लगा कि उसके पैरों में किसी ने मन-मन भर के पत्थर बाँध दिए हैं। एक कद भी उसके लिए आगे बढ़ना मुश्किल होता जा रहा था और फिर उसे अपने आ से नफ़रत होने लगी।

अचानक वह वापस मुड़ा और सिनेमाहाल की सीढ़ियाँ चढ़ कर मैनेजर के काउंट पर खड़ा हो गया। उसने पैंट की जेब से बोतल निकाली और काउंटर पर रख दी फिर कमीज़ की जेब से चार आने निकाल कर रख दिए। मैनेजर ने उसकी तर हैरत से देखा।

"देखिए! मैंने हाल में बेयरे से यह कोकाकोला की बोतल लेकर पी थी। व बोतल और पैसे ले जाना भूल गया है। आप उसे दे दीजिएगा।"

"ओह, थैंक्यू!" मैनेजर ने कहा।

वह सीढ़ियाँ उतर कर वापस सड़क पर आ गया। उसे जून की तपती धूप दिसंब की धूप-सी लगी। हलकी, प्यारी और कुनमुनी-सी धूप!

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

આવ્યો કે કોઈ પણ રીતે જો આ બાટલી છુપાવીને સાથે લઈ જવાય તો પીણાંના મારા ચાર આના તો બચવાના જ, એ સિવાય આ બાટલી....કોકાકોલાની બાટલી....સહેજમાં આ અઢી-ત્રણ આનાની વેંચાઈ જશે. પછી તડકામાં સાડા ત્રણ માઇલ સુધી પગે ભટકાવાની જરૂર રહેશે નહિ. એણે નિર્ણય લઈ લીધો કે આમ જ કરવું જોઇએ. આસપાસના લોકો જરા દૂર ચાલ્યા જાય, એની ઈન્તેજારીમાં એ ત્યાં ઊભો રહ્યો. સૌના દૂર જવા બાદ એણે ચોકસાઈથી બાટલી ઉપાડી અને પાટલૂનના ગજવામાં સરકાવી. ગજવાના છેડા ઉપર એવી રીતે રૂમાલ રાખ્યો કે બાટલીનું મોં દેખાય નહિ.

ગીરદીની પાછળપાછળ એ હોલમાંથી બહાર નીકળી આવ્યો.

પણ સડક ઉપર આવનાંની સાથે એને એવું લાગ્યું જાણે કયાંક ભૂલ થઈ હોય.

તડકાનું ધીકવું જાણે વધી રહ્યું ન હોય! એણે કઈંક એવું અનુભવ્યું જાણે પોતાના ચહેરા ઉપર ડામર લીપવામાં આવ્યો હોય. સડક ડામરની ખદબદતી નદીમાં ફેરવાઇ ગઈ હોય અને એમાં પૂર ચડી આવતાં હોય. ખદબદતો ડામર ઘૂંટણ કરતાંય ઉપર કમર સુધી અને કમર કરતાંય ઉપર ગળાં સુધી આવી પહોંચ્યો હોય....... બસ, હવે એકાદ મિનટમાં ડામરની નદીનાં પૂર માથાં કરતાંય ઉપર ચડશે....... એણે અનુભવ્યું કે એના ખિસ્સામાં કોકાકોલાની બાટલી નહિ, પણ એક બોંબ રખાયેલો છે, જે દશ-બાર ડગલાં આગળ જતાંજતાંમાં ફાટી જશે. એના શરીરના એવા તો ફુરચે-ફુરચા ઊડી જશે કે અસ્તિત્વનોય પત્તો નહિ લાગે. પેલા બૈરાને એક બાટલી અને કોકાકોલાનું દામ પોતા પાસેથી ભરવું પડશે,.....બૈરાની પેલી બે આંખોએ જાણે એનો પીછો ન પકડ્યો હોય!

સડક પર ચાલતી દરેક વ્યકિત એનાં ઊપસી આવેલાં ગજવા તરફ મીટ માંડી રહી હોય, એમ લાગ્યું.....બેઉ પગમાં જાણે એક એક મણના પથરા બાઝયા હોય......એક પણું ડગલું સહેલાઈથી ભરાતું કેમ નથી?.....પોતા ઉપર આવી નફરત કેમ છૂટે છે?.....

એકાએક તે પાછો ફર્યો અને સિનેમા-હોલનો દાદરો ચડીને મેનેજરના કાઉંટર સામે આવી ઊભો રહ્યો. પાટલૂનના ખિસ્સામાંથી એણે બાટલી બહાર કાઢી કાઉંટર પર ચૂકી એ પછી ખમીસના ખિસ્સામાંથી ચાર આના કાઢી સાથે રાખ્યા, મેનેજરે નવાઈ સાથે એની તરફ જોયું.

"સાહેબ, બૈરા પાસેથી કોકાકોલાની આ બાટલી લઈને મેં હોલમાં પીછેલી. બાટલી અને પૈસા લેતાં બૈરો ભૂલ્યો છે. તમે એને આપી દેશો."

"ઓહ! થૈંકયૂ!" મેનેજર મરકી રહ્યો.

દાદર ઉતરીને તે સડક ઉપર પાછો ફર્યો ત્યારે જૂનનો ધીકતો તડકો ડિસેંબરના તડકા જેવો લાગ્યો — કૂણો, સ્નેહાળ અને આંળખાણ પેડે એવો!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

விபரீதமான முடிவு

பி. சம்பந்த முதலியார் ஹிந்தி மொழி பெயர்ப்பு—ஜமுனா

நாடக பாத்திரங்கள்

ஆத்மாராம் ராவ்	...	டிஸ்டிரிக்ட் முனசீப்பாயிருந்த ஒரு ஹைகோர்ட்டு வக்கீல்.
பாலா	...	அவர் மனைவி.
நாதமுனி	...	அவர் வேலையாள்.
வரதாச்சாரி	...	அவருடைய குமாஸ்தா.
சுப்பைய செட்டி	...	ஒரு கட்சிக்காரன்.
பாக்மல்	...	ஒரு சாவுகார்.
ஜகன்மோஹன நாயுடு		தன் புத்தியைக் கொண்டு ஜீவித்து வரும் ஒரு மனிதன்.
குஞ்சிதபாத ஐயர்	...	இன்கம்டாக்ஸ் இன்ஸ்பெக்டர்.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रत्याशित अंत

--पी० संबंध मुदलियार

हिंदी अनु०--जमुना

नाटक के पात्र

आत्माराम राव .	—हाईकोर्ट के एक वकील जो पहल डिस्ट्रिक्ट मुंसिफ थे।
बाला . .	—उनकी पत्नी
नाथमुनि . .	—उनका सेवक
वरदाचारी . .	—उनका क्लर्क
सुब्बैय चेट्टि . .	—एक वादी
भागमल . .	—एक साहूकार
जगन मोहन नायडू .	—अपनी बुद्धि के बल पर जीने वाला एक व्यक्ति
कुंजिदबाद अय्यर .	—इन्कमटैक्स इंस्पैक्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

இடம்—சென்னை புதுடவுனில் ஹைகோர்ட் வக்கீல்
ஆத்மாராம ராவுடைய ஆபீஸ் அறை.

காலம்—காலை

ஆத்மாராம ராவ் வீட்டு வேலைக்காரன் வைஷ்ணவனான நாதமுனி நாயுடு, ஸ்நானம் செய்துவிட்டு, நெற்றியில் நாமம் அணிந்து, சாமான்களிலுள்ள தூசியெல்லாம் தட்டிக் கொண்டும், காகிதங்களையும் புஸ்தகங்களையும் ஒழுங்காக வைத்துக் கொண்டும் இருக்கிறான்.

நா. எவ்வளவு தூசு! வீதியிலிருந்து இவ்வளவும் வந்திராது. இதில் பெரும்பாகம் நம்முடைய எஜமான் உதைபட்டு எழுப்பியிருக்க வேண்டும்.

[மேஜையின் மீதிருக்கும் காகிதங்களை ஒழுங்காக வைத்துக் கொண்டு]

அதே காகிதங்கள்! —அதே நிருபங்கள்! —உம்! அதே பழய கதை யும்தான் என்று நினைக்கிறேன்.

கொஞ்சம் அலங்கோலமாயும், உறக்கமுடைய முகத்துடனும் ஆத்மா ராவ் வருகிறார்.

ஆ. இன்னுமா தூசு தட்டிக் கொண்டிருக்கிறாய்! நான் கீழே இறங்கி வருவதற்கு முன், தூசியெல்லாம் தட்டியாக வேண்டுமென்று, உனக்கு எத்தனை முறை சொல்வது நான்?

நா. என்றைக்காவது, எப்பொழுது இறங்கி வருவார் எஜமான் என்று யாரால் சொல்ல முடியும்? இப்பொழுதுதான் ஆறு மணியாகிறது; இதற்கு முன்னே என்னால் இங்கு வரமுடியாது!

ஆ. நீ அதனைப் பிரசங்கியாகப் போகிறாய! உனக்கு இரண்டு ரூபாய் அபராதம் போட்டேன்.

நா. அதனால் ஒன்றும் கெட்டுப் போகவில்லை; மூன்று மாசம்தான் சம்பளம் பாக்கி யிருக்கிறதே! சம்பளப்பாக்கி அதிகமாக ஆக, அபராதமும் அதிகமாகிறாற் போலி ருக்கிறது.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : मद्रास के पुदुपाक्कम में हाईकोर्ट वकील आत्माराम राव के कार्यालय का एक कमरा

समय—प्रात:काल

आत्माराम राव का वैष्णव नौकर नाथमुनि नायडू नहा-धोकर, तिलक लगाकर सामान पर पड़ी धूल झाड़ रहा है तथा काग़ज़ातों एवं पुस्तकों को भली प्रकार रख रहा है।

नाथमुनि : कितनी धूल है ! यह सब गली से नहीं आई होगी, इसका अधिकांश भाग हमारे मालिक के चरणों से आया होगा।

(मेज़ पर रखे काग़ज़ातों को अच्छी तरह रखते हुए)

वही काग़ज़ात ! वही पत्र ! हूँ ! मैं सोचता हूँ वही पुरानी कहानी ही होगी। (अस्तव्यस्त दशा में एवं अलसाए हुए चेहरे सहित आत्माराम का प्रवेश)

आत्माराम : अब भी धूल ही झाड़ रहा है। मेरे नीचे आने से पहले सारी धूल झड़ चुकनी चाहिए, मैं कितनी बार तुझसे कहूँ ?

नाथमुनि : किसको पता कि मालिक किस दिन किस समय नीचे आएँगे ? अभी छ: ही बजे हैं, इससे पहले मैं यहाँ नहीं आ सकता !

आत्माराम : तू दिन पर दिन सिर चढ़ता जा रहा है। तुझ पर दो रुपए जुर्माना करता हूँ।

नाथमुनि : इससे मेरा कुछ न बिगड़ेगा। तीन महीने का वेतन अभी बाकी है! लगता है वेतन जमा होने के साथ साथ जुर्माना भी बढ़ता जा रहा है।

आत्माराम : तेरा व्यवहार दिन प्रतिदिन असहनीय होता जा रहा है। बहुत इच्छा होती है कि तुझे निकाल बाहर करूँ।

नाथमुनि : मालिक आप कोई भी काम अधूरा नहीं छोड़ते। मैं क्यों दुर्भाग्य शाली बनूँ ? मेरा पिछला वेतन दे दीजिए, मैं इसी क्षण निकल जाऊँगा।

आत्माराम : मैं जानता था कि तू यह सब करेगा। मैंने और किस कारण से तेरे वेतन को रोक रखा था ? मुझे मूर्ख न समझ ! तू इसी क्षण बाहर जा सकता है।

नाथमुनि : मेरे प्रमाणपत्रों को तो दे दीजिए।

आत्माराम : उन्हें मैं तुझे नहीं दूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ஆ. உன் நடவடிக்கையானது பொறுக்கமுடியாதபடி ஆகிக்கொண்டு வருகிறது. உன்னைத் தள்ளிவிடலாமென்று அரைமனசு இருக்கிறதெனக்கு !

நா. அறைகுறையாக எஜமான் ஒன்றும் செய்வதில்லை. நான் மாத்திரம் ஏன் அதிர்ஷ்ட சாலியாயிருக்க வேண்டும் ? என்னுடைய சம்பளப் பாக்கியைக் கொடுத்து விடுங்கள், இந்த நிமிஷம் வெளியே போய்விடுகிறேன்.

ஆ. நீ செய்வாய் என்று தெரியும் எனக்கு ! வேறு எதற்காக உன் சம்பளத்தை நிறுத்தி வைத்தேன் என்று நினைத்தாய் ? என்னை மடயன் என்று நினைக்காதே ! இந்த நிமிஷம் நீ வெளியே போகணும்.

நா. என்னுடைய ச்ர்டிபிகேட்டுகளையாவது கொடுங்கள்.

ஆ. அவைகளை உனக்கு கொடுக்கமாட்டேன்.

நா. புழுவாயிருந்த போதிலும் காலால மிதித்தால் கடிக்கும் ! எஜமான் அவ்வளவு தூரம் போகவேண்டாம்.

ஆ. நீ இந்த மாதிரி பேசினால், உன்னைப் பிடித்து வெளியே தள்ளுவேன் !

நா. அவ்வளவு வந்துவிட்டதா ? சரி ஆனல் ! உங்கள் கோர்ட்டிலேயே உங்களை அவமானப்படுத்தாவிட்டால் பாருங்கள் !—ஹா ! ஹா !

ஆ. பார்ப்போம், யாரை நம்புகிறார்களென்று !

நா. [போய்க் கொண்டே] ஸ்வாமி பார்த்துக் கொள்வார் !

[போகிறான்.]

ஆ. அவனைக் கூப்பிடலாமா ?—வேண்டாம் ! அது ஒரு பொழுதும் முடியாது ! காலை எழுந்த வேளை நல்ல வேளையாயில்லை ! கண்ணாடியில் என் முகத்தையே நான் முன்பு பார்த்தேன். [உள்ளே தன் மனைவியின் குரலைக் கேட்டு] யார் அங்கே பாலா ?

பாலா வருகிறாள்.

பா. கூப்பிட்டீர்களா ?

ஆ. ஆம், யாருடன் பேசிக் கொண்டிருந்தாய் அங்கே ?

பா. ஏன் ? நாதமுனியோடு பேசிக் கொண்டிருந்தேன்.

ஆ. நான் அவனைத் தள்ளிவிட்டேன். அவன் அதை உன்னிடம் சொல்லவில்லையா ?

பா. அதைத்தான் இப்பொழுது சொல்லிக் கொண்டிருந்தான்.

ஆ. என்ன காரணத்தினால் என்று சொன்னான் ?

பா. ஆமாம் ! சொன்னான் !

ஆ. என்ன சொன்னான் ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथमुनि : कीड़ा भी आघात पहुँचने पर काटता है । मालिक इतना आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं ।

आत्माराम : तू इस तरह बोलेगा तो तुझे पकड़ कर बाहर धकेल दूँगा ।

नाथमुनि : यहाँ तक पहुँच गए ? ठीक ! आपके कोर्ट में ही आपका अपमान न किया तो देख लीजिए ! हा ! हा!

आत्माराम : हाँ हाँ, देख लेंगे कि किस पर विश्वास किया जाता है !

नाथमुनि : (जाते हुए) ईश्वर ही रक्षा करेंगे ! (जाता है)

आत्माराम : उसे बुला लूँ ?—नहीं ! वैसा कभी नहीं होगा ! प्रातः शुभ घड़ी में नहीं उठा । शीशे में अपना मुँह ही तो मैंने सबसे पहले देखा था । (भीतर अपनी पत्नी की आवाज़ सुनकर) कौन है वहाँ ? बाला ?

(बाला आती है)

बाला : मुझे बुलाया ?

आत्माराम : हाँ, वहाँ किससे बातचीत कर रही थी ?

बाला : क्यों ? नाथमुनि से बातचीत कर रही थी ।

आत्माराम : मैंने उसे निकाल दिया । क्या उसने तुझसे नहीं कहा ?

बाला : वह मुझसे यही कह रहा था ।

आत्माराम : क्या उसने कारण भी बताया ?

बाला : हाँ ! बताया !

आत्माराम : क्या कह रहा था ?

बाला : उसने जो कुछ यथार्थ था, बताया ।

आत्माराम : यथार्थ ?

बाला : हाँ, यथार्थ ही ।

आत्माराम : तेरी बात मेरी समझ में नहीं आई ।

बाला : कैसे समझ में आएगी ? नौकर को पिछला वेतन न देकर, उसका सत्यानाश करने के लिए, उसे निकालने वाले को कैसे समझ में आएगी ?

आत्माराम : बिलकुल झूठ ! इसे तूने सच कैसे मान लिया ? क्या तू सोचती है कि मैं निर्धन नौकर को वेतन न देकर उसका सत्यानाश करना चाहता हूँ ? तू नहीं जानती कि आज सुबह उसने कैसी बढ़ चढ़ कर बातें कीं ।

भाग्मार्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

பா. வாஸ்தவத்தைச் சொன்னேன்.

ஆ. வாஸ்தவத்தையா ?

பா. ஆமாம்—வாஸ்தவத்தை !

ஆ. நீ சொல்வது எனக்கு அர்த்தமாகவில்லை.

பா. என்னமாக அர்த்தமாகும் ?—வேலைக்காரனை சம்பளப் பாக்கியைக் கொடுக்காமே மோசம் செய்ய அவனைத் தள்ளிவிடுகிறவருக்கு !

ஆ. என்ன பொய் ! அதை நீ எப்படி நம்புகிறாய் ? ஏழை வேலைக்காரனுடைய ச பளத்தைக் கொடாமல் மோசம் செய்ய விரும்புகிறேன் என்று நினைக்கிறா அவன் இன்று காலை எவ்வளவு அதனப் பிரசங்கித்தனமாய் நடந்தான என உனக்குத் தெரியாது.

பா. ஒரு வேளை இருக்கலாம்—இருந்தாலும் அவனுடைய சம்பளத்தை அவனி கொடுத்து அவனை அனுப்பிவிடுகிறதுதானே ?

ஆ. இப்படிப்பட்ட பயல்களை தண்டிக்க வேணும் பாலா, உனக்கு சிறு வயதா யால் உனக்கு உலக வியவஹாரம் தெரியவில்லை ; அவன் சம்பளத்தை எப் பும் கொடுக்கத்தான் போகிறேன்—கொஞ்சம் பொறுத்து, இப்பொழுது எ கையில் காசில்லை.

பா. காசு இல்லை ! காசு இல்லை ! காலையில் ஒவ்வொருநாளும் ஆபீசு அறையில் சல மாத்திரம் அதிகமாயிருக்கிறது.

ஆ. ஆமாம்—கூச்சல் அதிகமாகத்தான் போடுகிறேன்—ஆயினும் இன்னும் காசு பாதிக்க ஆரம்பிக்கவில்லை.

பா. ஐயோ ! டிஸ்டிரிக்ட் முன்சிப்பாயிருந்த கௌரவமான வேலையை எந்தப்ப வேளையில் ராஜிநாமா கொடுத்தீரோ !

ஆ. அப்படியல்ல—பாலா, நீ எண்ணுவது தவறு !

பா. அப்படியல்ல—நான் எண்ணுவது சரி ! கௌரவமான உத்தியோகம் ! மா நிறைந்த சம்பளம் ! இதைவிட வேறென்ன வேணும் ஒரு மனுஷனுக்கு இதல்லாமல்—இதையோசியும்—மூன்று தவாலி போட்ட இருபது வேலைக்கார காத்திருந்தார்கள் நம்முடைய வீட்டில்—இப்பொழுதோ-இருந்த ஒரு வேலைக்கா னும் சிரித்துவிட்டுப் போய்விட்டானே ! பணம் நிரம்ப சம்பாதித்து விடலாம் என அதையெல்லாம் விட்டீர் ; அந்தப் பணம் என்னவோ உம்மை விட்டு அ தூரமாய்ப் போய்க் கொண்டிருக்கிறது.

ஆ. பாலா, இத்தனை காலம் பொறுத்தாய்—இன்னும் கொஞ்சம் பொறு—சில மா தங்கள்—அல்லது வாரங்கள்—அல்லது சிலமணி நேரம்—யாருக்குத் தெரியும் ?

பா. அதற்கென்ன, நானா காத்துக் கொண்டிருக்கிறேன்—நமக்கு என்ன காத் கொண்டிருக்கிறதோ—யாருக்குத் தெரியும் !

ஆ. ஜெயம் ! செல்வம் !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ाला : ऐसा हो सकता है [परंतु फिर भी उसका वेतन देकर उसे क्यों नहीं भेजा ?

ात्माराम : इस प्रकार के ढीठ व्यक्ति को दंड मिलना चाहिए । बाला तू अल्पायु है, तू लोक व्यवहार नहीं जानती । उसका वेतन मैं किसी न किसी तरह दे ही दूँगा परंतु कुछ समय बाद, इस समय मेरे पास रुपए नहीं हैं ।

ाला : रुपए नहीं हैं । रुपए नहीं हैं ! प्रतिदिन प्रातः आपके कार्यालय में शोर ही अधिक होता है ।

आत्माराम : हाँ शोर तो मैं बहुत करता हूँ—परंतु पैसा कमाना अभी आरंभ नहीं किया ।

ाला : हाय ! कौन सी बुरी घड़ी में आपने डिस्ट्रिक्ट मुंसिफ [के गौरव-पूर्ण पद का त्याग कर दिया ।

आत्माराम : ऐसी बात नहीं है बाला, तू ग़लत सोच रही है ।

ाला : नहीं, मैं ठीक सोच रही हूँ । गौरवपूर्ण नौकरी ! महीना आरंभ होते ही वेतन ! मनुष्य को इससे बढ़ कर और क्या चाहिए ? इतना ही नहीं यह भी सोचिए कि पहले वर्दी पहने बीस सेवक हमारे घर में खड़े रहते थे ! अब देखिए, एक नौकर था वह भी मुँह बिचका कर चल दिया ! खूब धन कमाने की सोच कर आपने उन सबका त्याग कर दिया परंतु वह धन आपसे दूर-दूर होता जा रहा है ।

आत्माराम : बाला इतने समय तक तूने संतोष रक्खा—कुछ और सब्र कर—कुछ महीने या कुछ सप्ताह नहीं तो कुछ घंटे ही—आगे की कौन जाने ?

बाला : मैं क्या प्रतीक्षा करूँगी । कौन जाने हमारे भाग्य में क्या है ?

आत्माराम : विजय ! धन !!

बाला : (हँसते हुए) ठीक ! मेरी भी यही इच्छा है । आइए स्नान करके कॉफ़ी पी लीजिए ।

आत्माराम : आज सुबह कॉफ़ी तूने बनायी थी ?

बाला : हाँ, संदेह क्यों ? क्या आपने नहीं चाहा कि मैं (कॉफ़ी) बनाऊँ ? आइए ! (दोनों भीतर जाते हैं)

(वरदाचारी प्रवेश करता है)

वरदाचारी : (घूमकर) वह दुष्ट नाथमुनि अभी तक नहीं आया—नाथमुनि !

मार्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ப. [நகைப்புடன்] சரி!—அத்தான் என் கோரிக்கையும்! வாருங்கள்—வந்த
னை செய்துவிட்டு காப்பி சாப்பிடுங்கள்.

ஆ. இன்று காலை காப்பி நீயா தயார் செய்தாய்?

ப. ஆம்—சந்தேகமென்ன? நான் செய்யவேண்டுமென்று நீங்கள் விரும்பவில்லை
வாருங்கள்!

[இருவரும் உள்ளே போகின்ற

வரதாச்சாரி வருகிறான்.

வ. [சுற்றிப் பார்த்து] அந்தப்பயல் நாதமுனி இன்னும் வரவில்லை—நாதமுனி

சுப்பைய செட்டி வருகிறான்.

வாருங்கள் செட்டியாரே, இப்பொழுதுதான் உங்களுக்குக் கொஞ்சம் தயவு தாற்போலிருக்கிறது—வாருங்கள் — உட்காருங்கள் செட்டியார—ஏதாவது யுண்டோ?

சு. [தொண்டையை கனைத்துக் கொண்டு]—ஆமாம்—ரொம்ப சின்ன சேதி!—பாரு நான் வெளியூர்ப் போகிறதில்லை என் வியாபாரத்தையும் நிறுத்தி வி இருந்தாலும், எவனோ ஒரு பாவி என்னைக் கோர்ட்டிக்கு இழுத்து, என் இருபத்துநாலு ரூபாய்க்கு சம்மன் பண்ணிவிட்டான். அந்தத் தொகையை அவனுக்கு கட்டளைக்காக கொடுக்க வேண்டுமாம். நான் கிடங்கை நிரப்ப முன்பாகவே காலி செய்துவிட்டேன்.

வ. எப்பொழுது வியாஜ்யம் வருகிறது?

சு. யாரோ புதிதாக முனிசிபல் வக்கீல் இருப்பதாகச் சொன்னீரே எங்கே அவர்?

வ. உள்ளே இருக்கிறார்—இங்கே சீக்கிரம் வருவார்.

சு. அவர் பீசு ரொம்ப அதிகமாகக் கேட்பாரோ? பாருங்கள்—நான் என் வியாபாரத்தை நிறுத்திவிட்டேன்—எனக்கு வயதும் ஆகிவிட்டது

வ. ஏ! அதெல்லாம் ஒன்றும் பயப்படாதீர்கள். உங்களுக்கு எல்லாம் இல றாப்படி செய்கிறேன். ஆயினும், நீங்கள் என்னை மறந்து விடக்கூடாது. வளவு கொண்டு வந்திருக்கிறீர்கள்.

சு. என்னை நம்பமாட்டீர்களோ?

வ. அதற்கென்ன சந்தேகம்? இருந்தாலும், இன்று காலை நீங்கள்தான் போணி—ஆகவே—உங்களுக்குத்தான் தெரியுமே—கையில் காசு விழ வேண்டுமே.

சு. சரி அதில்லை—நீங்கள் என்னை நம்பாமற் போனால் நான் என்ன செய்வது?—

[என்று சொல்லி, குண்மடியிலிருந்து ரூபாயை எடுத்து நன்றாக புறமும் பார்த்துவிட்டு அதை வரதாச்சாரியின் அழுத்துகிறான்.]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुब्बैय चेट्टियार प्रवेश करता है)

वरदाचारी : आइए चेट्टियार जी । लगता है कि आप के मन में भी कुछ दया उमड़ी है । आइए-बैठिए चेट्टियार जी—क्या कुछ काम है ?

सुब्बैय : (खाँस कर गला साफ़ करते हुए) हाँ, कई छोटे मोटे काम हैं । देखिए मैं नौकरी नहीं करता, अपने व्यापार को भी मैंने बंद कर दिया। फिर भी एक दुष्ट मुझे कोर्ट तक खींच कर ले गया, उसने मुझ पर चौबीस रुपए जुर्माना कर दिया । वह किराए के रूप में उस धन की माँग कर रहा है जबकि मैंने उसके गोदाम को बहुत समय पूर्व ही खाली कर दिया था ।

वरदाचारी : अभियोग कब चलेगा ?

सुब्बैय : आपने जिस नए मुंसिफ-वकील की चर्चा की थी वे कहाँ हैं ?

वरदाचारी : अंदर हैं—शीघ्र ही यहाँ आ जाएँगे ।

सुब्बैय : क्या वे अधिक फ़ीस माँगेगे ? देखिए मैंने व्यापार करना छोड़ दिया है, मेरी आयु भी अधिक हो चली है ।

वरदाचारी : अजी उसकी चिंता मत कीजिए । मैं निःशुल्क ही आपके लिये सारा प्रबंध कर दूँगा । आप मुझे भूल न जाइएगा । साथ में कितना लाए हैं ?

सुब्बैय : क्या आप मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे ?

वरदाचारी : इसमें क्या संदेह ? परंतु आज सुबह सबसे पहले आप आए हैं, अतः बोहनी के रूप में हाथ में कुछ पैसे आने चाहिए—इसे आप जानते हैं ।

सुब्बैय : अच्छा, परंतु यदि आप मुझ पर विश्वास न करें तो मैं क्या करूँ ? (ऐसा कहकर, भीतर से एक रुपया निकालकर, चारों तरफ दृष्टि फेर कर, वरदाचारी के हाथ में रख देता है)

वरदाचारी : यह क्या ? क्या यह भी कोई बाज़ार है ?

सुब्बैय : इस समय इसे रख लीजिए ।

(आत्माराम राव दुबारा आते हैं)

आत्माराम : हूँ, वरदाचारी । तू फिर देर से आया । यह चेट्टियार कौन है ?

वरदाचारी : यही हैं, उस कोने की दुकानवाले प्रसिद्ध सुब्बैय चेट्टियार । यह मुत्तुसामी अय्यर के पुराने वादी हैं । इन्हें मैं पिछले पच्चीस वर्षों से जानता हूँ । इनके नाम पर एक मामूली सा अभियोग है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

வ. இது என்ன இது ? கொத்தவால்சாவடியா ?

ச. இந்த சமயம் இதை வைத்துக் கொள்ளுங்களேன்.

ஆத்மாராவ் மறுபடி வருகிறார்.

ஆ. ஏடா !—வரதாச்சாரி !—மறுபடியும் நேரம் பொறுத்து வந்தாய் !—யார் இந்த டியார் ?

வ. இவர்தான் பெயர் பெற்ற தர்மலக்ஷ்மிகண்ட சுப்பைய செட்டியார். முத்துசாமி யைய பழைய கட்சிக்காரர் இவர் ; இந்த நூதனத்துக்கு வருஷம்தோறும் இவனுக்குத் தெரியும், இவர் பேரில் ஏதோ ஒரு சின்ன வியாஜ்யம் இருக்கிறதாம்.

ஆ. எங்கே ?

வ. சின்ன கோர்ட்டில்.

ஆ. இந்த சின்ன கோர்ட்டில் நான் ஒரு வியாஜ்யமும் எடுத்துக் கொள்ள மாட் என்று உனக்கு எத்தனை தரம் சொல்வது ?

வ. அதை செட்டியாருக்கு இப்பொழுதுதான் சொல்லிக் கொண்டிருந்தேன். ஆ னும், இவர் என்னுடைய பழைய சிநேகிதர். ஆனபடியினாலே, நீங்கள் செ அவருக்காக தயவு பண்ண வேண்டும் என்பது என் கோரிக்கை.

ஆ. முடியவே முடியாது !—எனக்கு அவகாசம் ஏது ?

வ. அதெல்லாம் இப்பொழுது சொல்லிப் பிரயோஜனமில்லை. ஆனாலும் யார் மூலமாக நமக்கு அநேக வியாஜ்யங்கள் வரும். அவர் சொந்த வி விஷயமாகக் கூட நிரம்ப வியாஜ்யங்கள் இருக்கிறதாம்.

ஆ. நீ நிரம்பக் கெட்டிக்காரன். ஒவ்வொரு வியாஜ்யத்திற்கும் இப்படி சொல்லுகிறாய்—இதை மாத்திரம் எடுத்துக் கொள்ள வேண்டுமென்று—என னுக்கு விரோதமாய்.

வ. இதை மாத்திரம் நீங்கள் பிரத்தியேகமாய் நினைத்து ஒப்புக்கொள்ளும்படி கேட்டுக் கொள்ளுகிறேன்.

ஆ. சரி, என்ன பீசு கொடுப்பார் ? வியாஜ்யத்தின் தொகை என்ன ?

வ. இது முதல் கேசானபடியினாலே—

ஆ. ஒன்றும் இல்லாமல் ஆஜர் ஆகவேண்டுமா ?

வ. செட்டியார் நான் உங்களுக்குச் சொல்லவில்லையா ?

[சுப்பைய செட்டியார் கடிதம் எடுக்கி -றார்; சுப்பைய செட்டி இரண்டு எடுத்து மேஜையின் பேரில் வைக்கிறார்.

ஆ. என்ன ? இரண்டு ரூபாய்தானா ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कहाँ ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माराम : छोटे कोर्ट में ।

वरदाचारी : मैं कितनी बार तुझसे कहूँ कि मैं छोटे कोर्ट में किसी भी केस को नहीं लूँगा ।

आत्माराम : यही बात मैं चेट्टियार को बता रहा था । वे मेरे पुराने मित्र हैं अतः आप उन पर तनिक दया कीजिए, यही मेरी प्रार्थना है ।

वरदाचारी : बिल्कुल नहीं ! मेरे पास समय ही कहाँ है ?

आत्माराम : इन व्यर्थ की बातों से कुछ लाभ नहीं । चेट्टियार के माध्यम से हमारे हाथ में अनेक केस आएँगे । प्रतिदिन उनके निजी व्यापार संबंधी अभियोग भी होंगे ।

वरदाचारी : तू झंझट उत्पन्न करने वाला है । प्रत्येक अभियोग के विषय में तू ऐसा ही कहता है—केवल इसे ले लीजिए—जो कि मेरे नियम के विरुद्ध है ।

आत्माराम : मैं आपसे विनंती करता हूँ कि आप इस केस विशेष को अपने हाथ में ले लीजिए ।

वरदाचारी : अच्छा, वे फीस कितनी देंगे ? जुर्माने की रकम कितनी है ?

आत्माराम : यह प्रथम केस है अतः . . .

वरदाचारी : बिना कुछ लिए मुझे उपस्थित होना पड़ेगा क्या ?

आत्माराम : चेट्टियार, क्या मैंने आपसे नहीं कहा ?
(सुब्बैय चेट्टियार के कान में कुछ कहता है । सुब्बैय चेट्टियार दो रुपये निकाल कर मेज़ पर रखते हैं) ।

वरदाचारी : यह क्या ? केवल दो रुपए ?

(रुपयों को उठाकर अपनी जेब में डाल लेते हैं)

आत्माराम : यह वस्तुतः नहीं के बराबर है परंतु हमें तो आगे आने वाले पर दृष्टि रखनी चाहिए ।

सुब्बैय : हाँ निस्संदेह—आप इन्हें दो सौ रुपये मान कर मेरे केस की सुनवाई कीजिए ।

आत्माराम : अभियोग कब चलेगा ?

सुब्बैय : अगले मंगलवार के दिन ।

आत्माराम : मंगलवार को मेरे पास समय होगा न ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[பணத்தை எடுத்து தன் ஜேபியில் போட்டுக் கொள்ளுகிறார்.]

வ. இது ஒன்றுமில்லைதான்; ஆயினும் நாம இனிமேல் வருவதையல்லவோ பார்க்க வேண்டும.

சு ஆமாம சந்தேகமென்ன—இந்த நீங்கள இருநூறு ரூபாயை எண்ணி, என் வியாஜ்யத்தை முக்கியமாகக் கவனிக்க வேண்டும.

ஆ. எப்பொழுது வருகிறது விராஜ்யம ?

வ. வருகிற செவ்வாயக் கிழமை.

ஆ. செவ்வாயக்கிழமை எனக்கு சாவகாசமிருக்குமா ?

வ இருக்கும, அதறகுச் சந்தேகமில்லை

சு. நான என சாட்சிகளை எப்பொழுது அழைத்துக் கொண்டு வருவது ?

ஆ கோர்ட்டுக்கு நேராக—அது போதும்.

சு ஆனாலும நீங்கள காகிதங்களையெல்லாம பார்க்கவில்லையே இன்னும் ஐயா, என்ன வியாஜ்யம என்று கூட விசாரிக்கவில்லையே நீங்கள.

ஆ அதெல்லாம சரிதான. காகிதங்களையெல்லாம் என் குமாஸ்தாவிடம கொடுத்துவிட்டேம்; திங்கட்கிழமை காலை என்னை வந்துபாரும்.

சு. சாட்சிகளையும் அழைத்துக் கொண்டு வரவா நான ?

ஆ. ஓ' வேண்டாம்—சாட்சிகளுக்கெல்லாம சொல்லிக் கொடுக்கிற வழக்கமில்லை எனக்கு.

சு. ஆனாலும், சாட்சிகளெல்லாம இன்ன சொல்ல வேண்டுமென்று சொல்ல வேண்டாமா ? பிறகு வக்கீல் என்பவர் எதற்காக ?

ஆ சரி. ஆனால், திங்கட்கிழமை வாரும். இப்பொழுது எனக்கு வேலை அதிகமாக இருக்கிறது

சு நான திங்கட்கிழமை காலை ஆறு மணிக்குள என் சாட்சிகளை எல்லாம அழைத்துக் கொண்டு வருகிறேன

வ செட்டியார் மறந்து போகக் கூடாது

சு. இல்லை இல்லை !—நான மறக்கமாட்டேன

[போகிறான.]

ஆ. இதோ பார் வரதாச்சாரி ! இந்த சின்ன வியாஜ்யங்களையும சில்லரை பீசுகளையும எடுத்துக் கொள்ள எனக்கு இஷ்டமேயில்லை ! இதைப்பற்றி உன்னிடம் நான சொல்லும்பொழுதெல்லாம், நீ எனக்கு ஒரு உபன்யாசம் பண்ண ஆரம்பிக்கிறாய ! ஒரு வக்கீல் என்ன பீஸ் வாங்கிக்கொள்ள ஒப்புக்கொள்ளுகிறானோ அதற்குத்தக்கபடி தான் தன்னைதானே மதித்துவருகிறான் அவனுடைய மதிப்பின் பிரகாரம்

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरदाचारी : हाँ होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं ।

सुब्बैय : मैं अपने साक्षीगणों को कब बुलाकर लाऊँ ?

आत्माराम : सीधे कोर्ट में ले आइए, वहीं पर्याप्त है ।

सुब्बैय : फिर भी आपने केस संबंधी काग़ज़ातों को अभी तक नहीं देखा । केस के विषय में भी आपने पूछताछ नहीं की ।

आत्माराम : वह सब ठीक है । काग़ज़ातों को मेरे क्लर्क के पास छोड़ जाइए । सोमवार की सुबह को मुझसे आकर मिल लीजिए ।

सुब्बैय : क्या मैं अपने साक्षीगणों को भी साथ लेता आऊँ ?

आत्माराम : हाँ । नहीं—साक्षियों को सिखाने पढ़ाने की आदत मुझ में नहीं है ।

सुब्बैय : फिर भी साक्षियों को बता देना चाहिए कि वे क्या कहें, अन्यथा वकील की क्या आवश्यकता ?

आत्माराम : अच्छा, परंतु सोमवार को आइए। इस समय मेरे पास बहुत काम है ।

सुब्बैय : मैं सोमवार के दिन प्रातः छः बजे अपने साक्षियों सहित आ जाऊँगा ।

वरदाचारी : चेट्टियार—भूल न जाइए ।

सुब्बैय : नहीं, नहीं । मैं नहीं भूलूंगा ।

आत्माराम : वरदाचारी ! मैं इन छोटे केसों को तथा इन छोटी मोटी फीसों को बिल्कुल नहीं लेना चाहता । इस संबंध में मैं जब भी तुझसे बातचीत करता हूँ, तू एक व्याख्यान झाड़ देता है । एक वकील जितनी फीस लेता है उसके अनुरूप ही अपने को मान देता है । वह स्वयं अपने को जितना मान देता है, जनता भी उसे उतना ही मान प्रदान करती है । यह बात मैं तुझसे कितनी बार कहूँ ?

वरदाचारी : लोक में सभी कुछ क्रमानुसार चलता है । जब तक पूरे पंख अच्छी तरह न निकलें तब तक ऊँचे उड़ने का प्रयत्न करने से क्या लाभ ?

आत्माराम : तू भी—ज़रा खिड़की से झाँक कर देख । वह जो साहूकार आ रहा है वह भागमल तो नहीं— देख तो !

वरदाचारी : (बाहर की ओर झाँक कर) हाँ . . .वही है !

आत्माराम : कोई बहाना करके उसे टाल दें ! कह दे कि मैं बाहर गया हुआ हूँ !

(जल्दी जल्दी अंदर जाता है)

वरदाचारी : हूँ । कब तक चलेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

தான் உலகமும் அவனை மதிக்கிறது. இதை உனக்கு நான் எத்தனை தர
சொல்லுவது ?

வ. படிப்படியாக, என்பது உலக வியவஹாரத்திற்கு ஏற்ற பழமொழி ; இரக்க
சர்ப்பம் முழுங்கக் காத்தான் முன் உயரம் பார்க்க யத்தனம் செய்வதில் பிரயோஜ
மென்ன ?

ஆ. நீ ஒரு—அதோ ! ஜன்னல் வழியாகப் பார். அதோ வருகிறவன் அந்த கொள்
பாகமல்லா பார் !

வ. [வெளியில் கழுத்தை நீட்டிப் பார்த்து] ஆம்—அவன்தான் !

ஆ. ஏதாவது சாக்கு சொல்லி அனுப்பிவிடு அவனை ! நான் வெளியே போயிரு
றேன் என்று சொல்லிவிடு.

[விரைந்து உள்ளே போகிறான்.

வ. உம் ! எவ்வளவு காலம் ?—

பாக்மல் வருகிறான்.

வாருங்கள் ! சேட்ஜீ விசேஷம் ஏதாவது உண்டா ?

பா. வக்கீல் ஐயா எங்கே ?

வ. ஏன் ?—அவர் இங்கில்லை.

பா. இந்த அறையில் அவர் இல்லை என்று எனக்குத் தெரியும். அவர் உள்
இல்லையோ ?

வ. இல்லை, இல்லை ! அவர் பட்டணத்திலே இல்லை.

பா. நேற்று சாயங்காலந்தான் நான் அவரைப் பார்த்தேனே ! நான் உள்ளே நு
வதற்குமுன் உடனே போனது யார் ?

வ. இன்று காலைதான் போனார்—ஏதாவது அவசரமான வேலையோ ?

பா. ஆம்—இன்றைக்கு ஒரு வியாஜ்யம் இருக்கிறது, அவரைக் கேட்டுக்கொள்ள
என்று நினைத்தேன் ; அந்த பீசையாவது பாக்கியில் கழித்துக் கொள்ள
மென்று பார்த்தேன்

வ. ஒரு வேளை பத்து மணிக்கு திரும்பிவந்தாலும் வந்துவிடுவார்.

பா. அது எப்படி முடியும் ? எங்கே போயிருக்கிறார் ? கோர்ட்டு விஷயமாக போ
வில்லையே அவர் ?

வ. கோர்ட் விஷயமாகத்தான் போயிருக்கிறார், ஆயினும், ஒரு வேளை அந்த வி
யத்திற்கு வாய்தா போடும்படியாக சம்பவிக்காதிருந்தும் சம்பவிக்கலாம் பாருங்கள்

பா. சரி !—அப்படிச் சம்பவிக்குமென்றெண்ணி நடக்க முடியாதென்றால், எனக்கென்ன
லாபம் ? என் கட்சிக்கு பழைய வக்கீலாக இருந்தவரிடம் போகிறேன். அ
இந்த மாதிரி திடீரென்று பட்டணத்தைவிட்டுப் போகிற வழக்கமில்லை.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(भागमल का प्रवेश)

आइए सेठजी ! क्या कोई विशेष समाचार है ?

भागमल : वकील महोदय कहाँ है ?

वरदाचारी : क्यों ? वे यहाँ नहीं हैं ।

भागमल : मैं जानता हूँ कि वे इस कमरे में नहीं हैं । क्या वे भीतर नहीं हैं ?

वरदाचारी : नहीं, नहीं ! वे शहर में नहीं हैं ।

भागमल : कल शाम को ही तो मैंने उन्हें देखा था । मेरे आने के पूर्व भीतर की ओर कौन गया था ?

वरदाचारी : वे आज प्रातः ही गए । क्या आपको उनसे कोई आवश्यक कार्य है ?

भागमल : हाँ, आज एक केस है, उसे वकील के हाथ देना चाहता था । मैं सोच रहा था कि उसकी फ़ीस को मैं बाकी पैसों में से घटा लूँगा ।

वरदाचारी : संभवतः वे दस बजे तक लौट आएँ ।

भागमल : ऐसा कैसे हो सकता है ? वे कहाँ गए हैं ? वे कोर्ट के काम से तो नहीं गए ?

वरदाचारी : वे कोर्ट के काम से ही तो गए हैं । परंतु हो सकता है कि किसी कारणवश अभियोग की सुनवाई स्थगित कर दी जाए ।

भागमल : ठीक ! परंतु ऐसा होगा सोचकर मैं आगे नहीं बढ़ सकता । मुझे कोई कष्ट नहीं । अपनी दुकान के पुराने वकील के पास चला जाऊँगा । वे इस तरह अचानक ही शहर छोड़कर बाहर जाने वाले नहीं हैं ।

वरदाचारी : मुझे दुःख है ।

भागमल : इस संबंध में हम तुम क्या कर सकते हैं ?

वरदाचारी : सच है, हम कुछ नहीं कर सकते ।

भागमल : तू तो सब कुछ देख ही रहा है—वकील से सब कुछ कहना । इस प्रकार यदा कदा शहर से बाहर जाना उनके लिए अच्छा नहीं ।

वरदाचारी : मैं उनसे कह दूँगा ।

भागमल : अच्छा तो मैं चलता हूँ—हूँ?

(चारों ओर देखकर धीरे धीरे जाता है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

வ. எனக்கு வருத்தமாயிருக்கிறது.

பா. நீயும் நானும் இதற்கு என்ன செய்யக்கூடும் ?

வ. ஒன்றும் முடியாது, வாஸ்தவம்தான்.

பா. நீ தான் பார்க்கிருயே எப்படி இருக்கிறதென்று—வக்கீலிடம் எல்லாவற்றையும் சொல். இந்த மாதிரி அடிக்கடி பட்டணத்தை விட்டு அவர் வெளியே போவது நல்லதல்ல.

வ. நான் சொல்லுகிறேன் அவரிடம்.

பா. சரி, நான் போகவேண்டியது தான்.—உம் !

[சுற்றிப் பார்த்துவிட்டு மெல்லப் போகிருன்.]

வ. இந்த சாவுகாரர்கள் என்ன அசாத்தியர்கள் ? இதனுல் தான் அவர்கள் பணத்தை குட்டிப் போடச் செய்து பெருக்குகிருர்கள் ?

ஆத்மா ராவ் நாலு புறமும் பயத்துடனும் கவலையுடனும் சுற்றிப் பார்த்துக் கொண்டு மெல்ல திரும்பவருகிருர்.

ஆ. போய்விட்டான ?

வ. ஆம்—ஆயினும் அவன் ஒரு வியாஜ்யத்திற்காகத்தான் வந்தான்.

ஆ. ஒரு வியாஜ்யத்திற்காகவா ? அதில் ஒரு வார்த்தையையும் நான் நம்பமாட்டேன் திருட்டுக் கழுதைகள் !

வ. கையில் ஏதோ காகிதங்கள் வைத்திருந்தான்.

ஆ. எல்லாம் பத்திரங்களாயிருக்கும் என்பதற்குச் சந்தேகமில்லை !

வ. அவன் ஏதோ வாஸ்தவமாகத்தான் பேசியதுபோல காணப்பட்டான்.

ஆ. யார் அப்படி இல்லை ? அவனுடைய வாஸ்தவத்தைப் பற்றி எனக்குக் கொஞ்சமேனும் சந்தேகமில்லை !

வ. இருந்தபோதிலும், ஸ்பஷ்டமாக அவனுக்குச் சொல்லி கொஞ்சம் பொறுக்கும் படியாக கேட்பது நல்லதல்லவா ?

ஆ. ஆமாம் ! அந்த காலமெல்லாம் அப்பொழுதே போய்விட்டது.

வ ஒருவேளை அவன் சந்தேகப்பட்டால் ?

ஆ. இப்பொழுது அவன் சந்தேகப்படவில்லையா என்ன ? ஆயினும் என்ன செய்ய முடியும் என்றால் ? நீயோ ஒன்றுக்கும் பிரயோஜனமில்லை—மற்ற சமாஸ்தாக்களெல்லாம் அவர்களுடைய வக்கீல்களுக்கே. இனம் எத்தனையோ வியாஜ்யங்களை கொண்டுவந்து தருகிருர்கள் என்று கேள்விப்பட்டேன். அவர்கள் எல்லாம் சுடடம் எடுத்துக் கொள்ளுகிருர்கள், ரெயில் ஸ்டேஷனுக்குப் போகிருர்கள், கடைகளுக்குப் போகிருர்கள், இப்படியெல்லாம் தங்களாலியன்ற அளவு செய்கிருர்கள் ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: साहूकार लोग कितने चालाक होते हैं ? इसी से तो वे अपनी धन संपत्ति को निरंतर बढ़ाते रहते हैं ।

वरदाचारी (आत्माराम चारों ओर भय एवं व्याकुलता से दृष्टि दौड़ाता हुआ धीरे धीरे वापस आता है)

आत्माराम : चला गया ?

वरदाचारी : हाँ, परंतु वह तो एक अभियोग के संबंध में आया था।

आत्माराम : अभियोग के लिए ? उसके एक शब्द पर भी मुझे विश्वास नहीं। चोर, नालायक कहीं का !

वरदाचारी : उसके हाथ में कुछ काग़ज़ात थे ।

आत्माराम : इसमें संदेह नहीं कि सभी वचन-पत्र रहे होंगे ।

वरदाचारी : परंतु वह सच बोलता हुआ प्रतीत हो रहा था ।

आत्माराम : कौन ऐसा नहीं लगता ? उसकी सच्चाई पर मुझे तनिक भी संदेह नहीं ।

वरदाचारी : फिर भी उससे स्पष्ट रूप से सब कुछ कहकर कुछ समय तक ठहर जाने के लिए कहना क्या उचित न होगा ?

आत्माराम : हाँ होगा ! परंतु वह ज़माना तो कभी का चला गया।

वरदाचारी : यदि वह संदेह करे तो ?

आत्माराम : इस समय उसने संदेह नहीं किया क्या ? परंतु मैं क्या कर सकता हूँ ? तू तो बिल्कुल बेकार है। मैंने सुना है कि अन्य क्लर्क अपने वकीलों के लिए प्रतिदिन अनेकों केस ले कर आते हैं। वे नाना कष्ट उठाते हैं, रेलवे स्टेशन जाते हैं, बाज़ार जाते हैं—इस प्रकार यथाशक्ति कार्य करते हैं। तू निरा आलसी है, कुछ काम नहीं करता।

वरदाचारी : श्रीमन् मुझे बहुत दुःख है। यदि आप मेरे कार्य से संतुष्ट नहीं हैं तो मैं इसी क्षण आपके कार्यालय को छोड़कर चला जाऊँगा। आप किसी और क्लर्क को नियुक्त कर लीजिए ।

आत्माराम : नहीं, नहीं ! वरदाचारी तुमने मेरी बात को नहीं समझा। अतृप्ति के बिना मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता ।

वरदाचारी : जो उन्नति नहीं करता वही अतृप्त रहता है न ?

आत्माराम : देखो ! कोई आता हुआ प्रतीत होता है ! कौन है वह ?

वरदाचारी : (बाहर की ओर देखकर) कोई नया व्यक्ति है। मैंने उसे वकीलों के घर जाते हुए पहले भी देखा है। परंतु वह कौन है, यह मैं नहीं जानता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

நீ என்னவென்றால் சோம்பேறியாய் ஒன்றும் கவனிப்பதேயில்லை.

வ. எனக்கு மிகவும் வருத்தமாயிருக்கிறது, ஐயா,—தங்களுக்கு என் வேலை திருப்தி மாயில்லாவிட்டால் உங்களுடைய ஆபீஸை இக்ஷணம் விட்டுப் போகிறேன். நீங்கள் வேறு யாராவது ஒரு குமாஸ்தாவைப் பார்த்துக் கொள்ளலாம்.

ஆ. இல்லை இல்லை! வரதாச்சாரி, நான் சொல்வது உனக்கு அர்த்தமாகவில்லை. அதிருப்திகரமில்லாவிட்டால் ஒருவன் அபிவிருத்தி அடைய முடியாது.

வ. அபிவிருத்தியில்லாதவன்தானே அதிருப்தியுடையவனாக இருக்க வேண்டும்?

ஆ. அதோ!—யாரோ வருகிறார் போலிருக்கிறது! யார் அது?

வ. [வெளியிற் பார்த்து] யாரோ புது ஆசாமி, அவன் வக்கீல்கள் வீடுகளுக்கு போவதை நான் பார்த்திருக்கிறேன் முன்பு, ஆயினும் அவன் யாரோ தெரியாது எனக்கு.

ஜகன்மோஹன நாயுடு வருகிறார்.

ஜ. க்ஷேமம்தானே. எப்படியிருக்கிறீர்கள்—என்ன—என்னை ஞாபகமில்லையா உங்களுக்கு!

[ஒரு நாற்காலியை இழுத்து அதன் மேல் உட்காருகிறான்.]

ஆ. ஓகோ! நீங்களா! எங்கிருந்து வருகிறீர்கள் இப்பொழுது?

ஜ. ஸ்டேஷனிலிருந்து நேராக வருகிறேன். அரை மணி நேரத்துக்கு முன்புதான் பட்டணம் வந்தேன், என்னை உங்களுக்கு ஞாபகம் இருப்பதாகக் காணோமே—நான்தான் லாலூர் ஜமீன்தாருடைய ஏஜண்டு. நீங்கள் அங்கே டிஸ்டிரிக்ட் முன்சீபாயிருந்த போது, ஜில்லா கோர்ட்டில் அவருடைய பெரிய தத்து வியாஜ்யத்தை நடத்திக் கொண்டிருந்தேன்.

ஆ. ஓ! ஆமாம்! அதுதான் ஞாபகப்படுத்திக் கொண்டிருந்தேன். அந்த வியாஜ்யம் என்னவாயிற்று? முடிந்துபோய்விட்டதா இப்பொழுதாவது?

ஜ. கடைசி நிமிஷத்திலே டிஸ்டிரிக்ட் ஜட்ஜ் எங்களுக்கு விரோதமாகத் தீர்மானம் கொடுத்தார். அதிலே ஒரு சங்கதியிருக்கிறது. [சுற்றிப் பார்த்து] அப்புறம் அதை உங்களுக்குச் சொல்லுகிறேன். நேற்று ராத்திரிதான், நீங்கள் சென்னைப்பட்டணத்திலே வக்கீலாயிருப்பது ஜமீன்தாருக்கும் எனக்கும் தெரிந்தது; நான் உடனே உங்கள் மேல் விலாசத்தைத் தெரிந்துகொண்டு புறப்பட்டேன். அப்பீலுக்கு உங்களை வக்கீலாக ஏற்பாடு செய்ய வேண்டுமென்று தீர்மானித்தோம். வழியில் பெரிய ஆபத்து ஒன்று நேர்ந்தது—ஒரு தைரியமான களவு! ஸ்டேஷனில் இறங்கினவுடனே, ஒரு புருஹாம் வண்டியில் ஏறிக்கொண்டு நேராக உங்கள் வீட்டிற்கு ஓட்டச் சொன்னேன். வருகிற வழியில் ஒரு காபி ஹோட்டலில் கொஞ்சம் நிற்கச்சொல்லி, உள்ளே கைகாலலம்பிக் கொண்டு காபி சாப்பிடப் போனேன். வெளியில் வந்து பார்த்தால் வண்டியைக் காணோம்! அதே மாயமானதென்னுடைய வியாஜ்ய காகிதங்கள், நான் பணம் வைத்திருந்த பெட்டி

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगन मोहन : कुशल है न ! आप कैसे हैं—क्या—क्या आप मुझे भूल गए ?

(एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठता है)

आत्माराम : ओह ! आप ! इस समय कहाँ से आ रहे हैं ?

जगन मोहन : स्टेशन से आ रहा हूँ। आधे घंटे पहले ही यहाँ आया था। लगता है कि आप मुझे भूल गए हैं। मैं इल्लावूर ज़मींदार का एजेंट हूँ। जब आप डिस्ट्रिक्ट मुंसिफ थे तब मैं जिला कोर्ट में उनके दत्त संबंधी एक बड़े केस को चला रहा था।

आत्माराम : ओह ! हाँ ! मैं उसी का स्मरण कर रहा था। उस केस का क्या हुआ ? अब भी समाप्त हुआ कि नहीं ?

जगन मोहन : अंत समय पर डिस्ट्रिक्ट जज ने हमारे विरुद्ध निर्णय सुना दिया। उसमें एक रहस्य है। (दृष्टि घुमाकर) वह मैं आपको फिर बताऊँगा। कल रात को ही मुझे तथा ज़मींदार को ज्ञात हुआ कि आप मद्रास में वकील हैं। तुरंत ही मैंने आपका पता ज्ञात किया तथा चल पड़ा। हमने सोच लिया कि अपील के लिए आपको ही अपना वकील नियत करना चाहिए। मार्ग में एक दुर्घटना घटी। एक साहसिक चोरी! स्टेशन पर उतरते ही एक घोड़ागाड़ी में बैठ कर आपके घर की ओर चला। मार्ग में एक रेस्तरां पर कोचवान को ठहरने को कहा। अंदर जा कर, हाथ-मुँह धोकर मैंने काफ़ी पी। बाहर आकर देखा तो गाड़ी नदारद। मैं जान गया कि कोचवान मुझे धोखा देकर दस्तावेज़, पैसों की पेटी आदि ले कर भाग गया है। वस्तुतः होटल-वालों को देने के लिए भी मेरे पास पैसे नहीं थे।

आत्माराम : क्या पेटी में बहुत धन था ?

जगन मोहन : नहीं, अधिक नहीं था। सब मिला कर कोई हज़ार रुपए रहे होंगे। मुझे तो उन दस्तावेज़ों की चिन्ता है।

आत्माराम : आप उस कोचवान को किसी न किसी तरह ढूँढ़ सकते हैं। क्या आपको उसकी गाड़ी का नंबर याद है ?

जगन मोहन : उसे लिख लेना चाहिए था।

आत्माराम : हाँ। अब हम क्या करें ?

जगन मोहन : धन की कोई चिंता नहीं। ज़मींदार को तार दे कर जितना चाहें मँगाया जा सकता है। उन दस्तावेज़ों की नकल (प्रतिलिपि) भी तो मँगानी पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

எல்லாவற்றையும் எடுத்துக் கொண்டு போய் விட்டதைக் கண்டேன்! வா- வத்திலே காரியோட்டக்காரனுக்குக் கொடுக்க பணமில்லை.

சு. பெட்டியில் நிறைய பணம் இருந்ததோ?

ஜ. இல்லை, அதிகமொன்றும் இல்லை. எல்லாம் சேர்த்து ஒரு ஆயிரம் ரூபாய் ஒ- லறை இருக்கும் என் கவலையெல்லாம் அந்தக் காகிதங்களைப் பற்றி- பொழுது

சு. நீங்கள் அந்த கோசாமியை எப்படியும் கண்டுபிடிக்கலாமே. அவன் வண்டி நம்- உங்களுக்கு ஞாபகம் இருக்கிறதா?

ஜ. அதைக் குறித்துக் கொண்டிருக்க வேண்டும்!

சு. ஹா!—நாம் என்ன செய்வதிப்பொழுது?

ஜ. பணத்தைப் பற்றிக் கவலையில்லை. ஜமீன்தாருக்குத் தந்தி கொடுத்து எவ்வள- வேண்டுமென்றாலும் வரவழைத்துக் கொள்வேன். இந்த வியாஜ்யக் காகித- ங்களுக்கெல்லாம் வேறு நகல் வாங்க வேண்டும்.

சு. ஆம் ஆம்—அந்த கஷ்டம் ஒன்று இருக்கிறது.

ஜ. உடனே நான் பணத்துக்காக தந்தி கொடுக்க வேண்டும். போலீசார் உதவி கொண்- இரண்டு மூன்று தினங்களில் அந்தக் காகிதங்களை நாம் கண்டுபிடிக்கலாம்.

சு. அந்த நம்பிக்கை வேண்டாம். உங்களுக்குச் சென்னை பட்டணம் சமாசாரம் ந- றாய்த் தெரியாது.

ஜ. அதென்னமோ நிஜம். காகிதங்களைப் பற்றி தந்தி கொடுப்பது எனக்கு இஷ்ட- மில்லை—அப்படிச் செய்தால் ஜமீன்தார் ஒரு வேளை பயந்து போவார். அப்ப- அவசியமாயிருந்தால் நானே நேராகப்போய் ஒரு வாரத்திற்குள் வேறு நகல்- வாங்கிக்கொண்டு வந்து விடுவேன்.

சு. அதற்குப் போதுமான காலம் இருக்கிறதா?

ஜ. சந்தேகமில்லை, தீர்மானத்தின் நகல் இரண்டு தினங்களுக்கு முன்புதான் கிடை- த்தது எங்களுக்கு.

சு. என்ன ஆச்சரியம்! என்ன தைரியமான திருடன்! அந்தக் கோசாமியைப் பார்- த்தால் இவன்தான் என்று சொல்லமுடியுமா உங்களால்?

ஜ. ஒருவேளை முடிந்தாலும் முடியும்—அவனை உறுதியாய்ச் சொல்ல முடியாது— ஆயினும் போலீசாருக்கு நான் உடனே தெரிவிக்க வேண்டுமென்று நினைக்கிறேன்.

சு. ஆம், அதை உடனே செய்ய வேண்டும் நீங்கள்.

ஜ. ஆம், உடனே செய்கிறேன் அப்படியே; நான் உங்களை இன்றிரவு பார்க்கிறேன். மறுப- யும் வீட்டிற்கு எப்பொழுது வருவீர்?—கட்டுக்கோ?—ஐ—தயவு செய்து ஒரு பத்- ரூபாய் கொடுங்கள் தந்தி கொடுக்கக்கூட என் கையில் பணமில்லை! சென்னைபட்டண- த்தில், ஒரு வீதியில், கையில் ஒரு காசுமின்றி கலவரப்பட நேர்ந்தது என் கதி!

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माराम : हाँ हाँ—वह भी एक समस्या है।

जगन मोहन : मैं तुरंत ही धन के लिए तार देता हूँ। पुलिस की सहायता से हम दो तीन दिन में उन दस्तावेज़ों का पत्ता लगा लेगें।

आत्माराम : इस विचार को छोड़िए। आप मद्रास शहर को अच्छी तरह नहीं जानते।

जगन मोहन : यह ठीक है परंतु मैं दस्तावेज़ों के विषय में तार नहीं देना चाहता—ऐसा करने से संभवतः ज़मींदार घबरा जाए। यदि आवश्यकता हो तो मैं स्वयं जा कर एक सप्ताह के अंदर ही अंदर उसकी प्रतिलिपि ले आऊँगा।

आत्माराम : क्या उसके लिए पर्याप्त समय होगा ?

जगन मोहन : निस्संदेह, निर्णय की प्रति हमें दो दिन पूर्व ही मिली थी।

आत्माराम : कैसा आश्चर्य है। निडरता से की गई चोरी ! उस कोचवान को देखने पर क्या आप उसे पहचान सकेंगे ?

जगन मोहन : शायद पहचान सकूँ परंतु मै निश्चिततया कुछ नहीं कह सकता। इस पर भी में शीघ्र ही पुलिस को खबर देना चाहता हूँ।

आत्माराम : हाँ आपको ऐसा ही करना चाहिए !

जगन मोहन : हाँ शीघ्र ही ऐसा करूँगा। मैं आज रात को आप से मिलुँगा। आप दुबारा घर कब आएँगे ? आठ बजे ? कृपा करके मुझे दस रुपए दे दीजिए। तार देने के लिए भी मेरे पास पैसे नहीं हैं। मुझे मद्रास शहर की एक गली में बिना पैसे के व्याकुल होना पड़ रहा है, हाय रे मेरा दुर्भाग्य।

आत्माराम : बड़े दुःख की बात है ! इस समय मेरे पास नकद नहीं हैं। बात असल में यह है कि मैं अपने खर्च के पैसे चेक में देता हूँ। एक चेक से आपका काम बन जाएगा ?

जगन मोहन : एक चेक ? चेक भुनाने की मुसीबत मुझे न दीजिए। क्या आपके घर में थोड़े से रुपए भी न होंगे ?

आत्माराम : (मेज़ के खाने को खींचकर, अपने बटुए में से पूर्व रखे हुए दो रुपयों को धीरे से निकालते हैं) इस समय मेरे पास इतने ही हैं—इससे आप क्या कर सकेंगे ?

जगन मोहन : हाय रे मेरा दुर्भाग्य! (उनके हाथ से उन दो रुपयों को झपट कर उठा लेते हैं) इसका आधा ही एक घंटे के भीतर ही भीतर मेरे पास हज़ार रुपये ला देगा-अच्छा मैं चलता हूँ। रात को आपसे मिलूँगा। (जाता है)

मार्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ஆ. என்ன கஷ்டம்! என்னிடம் இச்சமயம் ரொக்கம் ஒன்றுமில்லை; வாஸ்தவம் என... வென்றால்—என் செலவிற்கெல்லாம் நான் செக் எழுதிக் கொடுக்கிற வழக்கம். ஒரு செ... கொடுத்தால் போதுமோ இல்லையோ?

ஜ. ஒரு செக்கா?—செக்கை மாற்றுகிற கஷ்டம் எனக்கு வேண்டாம்—உம்முடைய வீட்டி... கொஞ்சமாவது ரூபாய் இல்லாமலா இருக்கும்?

ஆ. [மேஜையின் அறையை இழுத்து, தன் பையை மெல்ல தடவி அதில் தன்... இரண்டு ரூபாய்களை வெளியில் எடுக்கிறார்] இவ்வளவுதான் என்னிடம் இப்பொழு... இருக்கிறது—இதைக் கொண்டு நீங்கள் என்ன செய்யக்கூடும்?

ஜ. என்ன துர் அதிர்ஷ்டம்!—[அவர் கையினின்றும் அந்த இரண்டு ரூபாய்களையும் பி... கொள்வதுபோல் வாங்கி] இதில் பாக்கி ஒரு மணி நேரத்தில் எனக்கு ஆயிரம் ரூபா... கொண்டு வரும்—நான் வருகிறேன் ராத்திரி பார்க்கிறேன் உங்களை.

[போகிறா...

ஆ. எங்கே உங்களுடைய ஜாகை? சாப்பாட்டிற்கு இங்கே வரமாட்டீர்களா நீங்கள்? ... குமாஸ்தாவை உங்களோடு போலீஸ் ஸ்டேஷனுக்கு அனுப்பவா?—நிரம்ப அவசர... யிருக்கிறார் போலிருக்கிறதே அவருக்கு?

வ. ஒரு காலையில் ஆயிரம் ரூபாய் போக்கடித்துக் கொண்டவர், எப்படி நிதானமாயிரு... கூடும்?

ஆ. இந்தப் பயலை எங்கேயோ பார்த்த ஞாபகமாயிருக்கிறதெனக்கு.

வ. ஆனால் எஜமானுக்கு ஆசாமியே தெரியாதோ? அவனைப் பேசியதைப் பார்த்தால் ... ளுக்குப் பெரிய சிநேகிதன் போலிருந்ததே. ஆயினும் அவன் மேலத்து ஆசாமியா... வென்று நினைக்கிறேன்.

ஆ. இப்படிப்பட்ட பயல்கள் எங்கும் திரிகிறார்கள்.

வ. உம்—நேற்று சாயங்காலம்—அதைச் சொல்ல மறந்தேன்—ஆனரபில் முத்துசாமி ஐ... அவர்கள் கிருஷ்ணகிரி அபீல் காகிதங்களை உங்களை வைத்துக்கொண்டு படிக்க வே... மென்று உங்களை வரும்படி சொல்லியனுப்பினார், எஜமான் கிளப்பிலிருந்து வரவி... நான் அவரிடம் போய்ச் சொன்னேன்; அவர் அதிக கோபங்கொண்டு பலவித மா... சொன்னார்.

ஆ. அவர் என்னதான் சொன்னார்? சொல்.

வ. ஜூனியர் வக்கீல்களுக் கெல்லாம் அவர்களுடைய உத்தியோகம் தெரிகிறதில்லை... கௌரவமென்பது கிடையாது, பேராசை மாத்திரம் உண்டு; என்று இப்படி பலவி... மாகக் கண்டபடி வைதார்.

ஆ. அப்படியா சொன்னார்? நான் எப்படிப்பட்டவன் என்பதையும், அவர் மேலிருக்க... முகஸ்துதி செய்யும் கெஞ்சுகிற ஜூனியர்களை அவர் நடத்துவது போல் என்னை... முடியாது என்பதையும், அவருக்கு ஒரு நாள் காண்பிக்கிறேன்! இந்த ஜூனியர்... கெல்லாம் இந்த கர்வமுண்டு—வருகிற பீஸ்களை யெல்லாம் ஜேபியில் போட்டுக்கொண்...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्माराम : आप कहाँ ठहरे हैं ? क्या आप खाना खाने यहाँ नहीं आएँगे ? अपने क्लर्क को आपके साथ पुलिस स्टेशन भेज दूँ ? शायद वह बड़ी जल्दी में है ।

रदाचारी : सुबह सुबह हज़ार रुपए खोकर कोई चैन से कैसे रह सकता है ?

त्माराम : लगता है इस व्यक्ति को कहीं देखा है ।

रदाचारी : मालिक क्या आप उसे नहीं जानते ? उसकी बातचीत से तो वह आपका घनिष्ठ मित्र प्रतीत हो रहा था परंतु मुझे लगता है कि वह सेलम का व्यक्ति नहीं ।

त्माराम : इस प्रकार के व्यक्ति सभी जगह घूमते फिरते हैं ।

रदाचारी : कल शाम को, उसे कहना ही भूल गया, आदरणीय मुत्तुसामि अय्यर चाहते थे कि कृष्णगिरि के अपील संबंधी कागज़ात आपके संमुख पढ़ लिए जाएँ अत: उन्होंने आपको बुला भेजा था । आप क्लब से नहीं लौटे थे । मैंने उनसे जाकर कहा तो वे क्रोध में भला-बुरा कहने लगे ।

त्माराम : उन्होंने क्या कहा ? बता तो ।

रदाचारी : जुनियर वकीलों को अपने कर्त्तव्य का भी ज्ञान नहीं, वे अपनी मान-मर्यादा का ख्याल नहीं रखते, मात्र बड़ी-बड़ी इच्छाएँ रखते हैं– इस प्रकार उन्होंने सब को जी भर कर कोसा ।

त्माराम : उन्होंने ऐसा कहा ? मैं एक दिन उन्हें दिखा दूँगा कि मैं किस प्रकार का व्यक्ति हूँ तथा उनकी प्रशंसा एवं मिन्नतें करते रहने वाले अन्य जूनियर वकीलों के साथ वे जैसा व्यवहार करते हैं वैसा मुझसे नहीं कर सकते । सभी सीनियर घमंडी होते हैं । सारी फीस तो अपनी जेब में डाल लेते हैं और काम सारा जूनियर से करवाते हैं । परंतु मुझ पर उनकी यह चालें नहीं चलेगीं । किसी दिन एक लात से इस परंपरा को छिन्न भिन्न कर दूँगा ।

रदाचारी : अपील करने वाला कहाँ जाएगा ? क्या वह आपको बुरा भला नहीं कहेगा ?

त्माराम : उसे फाँसी लगा कर मर जाने को कह दे ।

(कुंजिदबाद अय्यर धीरे धीरे प्रवेश करते हैं ।)

ुंजिदवाद : श्रीमन्, आप ही आत्माराम राव हैं क्या ?

त्माराम : हाँ श्रीमन् ! मैं ही हूँ । मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

ुंजिदवाद : मैं किसी गोपनीय विषय के सिलसिले में यहाँ आया हूँ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

கிறது, வேலையெல்லாம் ஜூனியர்களைச் செய்யச் சொல்கிறது! இந்தக் கதையெல்லாம் என்னிடம் நடவாது. இந்த வழக்கத்தை யெல்லாம் சின்னபின்னமாய் சிதறு உதைத்தெறிகிறேன்!

வ. அந்த அப்பீல் கட்சிக்காரன் எப்படிப் போவது? அவன் மறையிடமாட்டானா!

ஆ. அவனைத் தூக்குப் போட்டுக்கொண்டு சாகச் சொல்!

குஞ்சிதபாத ஐயர் மெல்ல சாவதானமாய் வருகிறார்.

கு. தாங்கள் தானே ஆத்மாராம் ராவ் ஐயர்?

ஆ. ஆம் ஐயா, நான்தான்; ஏதாவது உங்களுக்கு நான் செய்யக் கூடுமோ?

கு. நான் கொஞ்சம் ரகசியமான வேலையாய் வந்திருக்கிறேன்.

ஆ. அது அவசரமானதாயிருந்தால் இப்பொழுதே உம்முடைய வேலையைக் கவனிக்கிறேன், இல்லாவிட்டால் என் குமாஸ்தாவுக்குச் சொல்ல வேண்டிய வேலையை முடித்துக் கொண்டு பிறகு உம்முடைய வேலையைப் பார்க்கிறேன்.

கு. நான் காக்கக்கூடும். இன்று காலை நான் பார்க்க வேண்டிய வீடுகளில் இதுதான் கடைசி என்று தீர்மானித்திருக்கிறேன்.

ஆ. சந்தோஷம்!—கட்டை அந்த சின்ன மேஜையின் பேரில் வைக்கலாம் நீங்கள்.

கு. பரவாயில்லை, இவைகளைக் கையில் வைத்திருக்கும் வழக்கமாய் விட்டது.

ஆ. சரி—குமாஸ்தா, சீக்கிரம் வாரும், அவர் காத்துக் கொண்டிருக்கிறார்.

வ. அப்படியே ஐயா.

ஆ. ஷார்ட் ஹாண்ட் குமாஸ்தா எங்கே? இன்று காலை என் அவன் இன்னும் இங்கு காணோம்?

வ. எனக்குத் தெரியாது ஐயா.

ஆ. சரி, உன்னால் முடியுமானவரைக்கும் நான் சொல்வதை எழுதிக்கொள்ள வேண்டியதான். ஆரம்பி சீக்கிரம்!

வ. [ஒரு நோட்டு புஸ்தகத்தையும் பென்சிலையும் எடுத்துக் கொண்டு]
இதோ சித்தமாயிருக்கிறேன், ஐயா.

ஆ. உம்—நசிரி ஜமீன்தாரிடம் இருந்து ஏதாவது பதில் தந்தி வந்ததா?

வ. இல்லை—இன்னும் வரவில்லை ஐயா.

ஆ. ஆனால், இதை தந்தி மூலமாக அவருக்கு உடனே தெரிவி!—அர்ஜண்டாக—"நீங்கள் நிர்ப்பந்தம் செய்கிறீர்கள்—ஐயாயிரம் ரூபாய்—ரிடெய்னர்—கொடுப்பதாக சாயங்காலம் ஆறு மணிக்குள்ளாக உங்கள் ரிடெய்னர் வந்து சேராவிட்டால்—எதிர்கட்சியிடம் வக்காலத் ஒப்புக்கொள்ளப்படும். பதில் தந்தி உடனே கொடுக்கவும்"

வ. சரி—ஐயா.

ஆ. கார்வேடிநகர் சமஸ்தான அவிபக்தத்தைப் பற்றி என்னுடைய அபிப்பிராயம்

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माराम : यदि जल्दी हो तो इसी क्षण आपका काम कर दूँ अन्यथा अपने क्लर्क को सारा काम सौंप कर आपका काम करूँगा ।

कुंजिदवाद : मैं ठहर सकता हूँ । आज सुबह जितने घर देखने थे यह उनमें आखिरी है ।

आत्माराम : प्रसन्नता की बात है । आप अपनी गठरी उस मेज पर रख सकते हैं ।

कुंजिदवाद : इसकी कोई चिंता नहीं, इसे हाथ में पकड़े रहने की आदत हो गई है ।

आत्माराम : अच्छा । क्लर्क, जल्दी आओ वे प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

वरदाचारी : अच्छा श्रीमन् !

आत्माराम : शीघ्रलिपिक कहाँ हैं ? वह सुबह से यहाँ क्यों नहीं आया ?

वरदाचारी : श्रीमन् मैं नहीं जानता ।

आत्माराम : अच्छा, जहाँ तक हो सके तू मेरे कहे अनुसार लिखता चल । शीघ्र आरंभ कर !

वरदाचारी : (एक नोटबुक एवं पेंसिल उठाते हुए) श्रीमन् मैं तैयार हूँ ।

आत्माराम : नकिरी के ज़मींदार से क्या कोई जवाबी तार आया है ?

वरदाचारी : नहीं श्रीमन्, अभी तक नहीं आया ।

आत्माराम : अच्छा तो तुरंत ही अर्जेंट तार भेजकर उन्हें सूचना दो कि प्रतिवादी ज़बरदस्ती कर रहे हैं—पाँच हज़ार रुपये रिटेयनर (ठहराव) के रूप में देने के लिए-यदि शाम के छ: बजे तक आपके रिटेयनर की रकम नहीं पहुँची तो प्रतिवादी का पक्ष लड़ने के लिए वचन दे दिया जाएगा । जवाबी तार तुरंत भेजिए ।

वरदाचारी : अच्छा श्रीमन् !

आत्माराम : कारवेड़ि नगर संस्थान के अविभाजन के संबंध में मैंने जो अपनी राय दी थी, उसे भेज दिया ?

वरदाचारी : नहीं श्रीमन्, अभी नहीं भेजा ।

आत्माराम : अच्छा, जब तक मैं न कहूँ तब तक उसे मत भेजना । लगता है कि वे दुष्ट मुझे ठगने की सोच रहे हैं ।

वरदाचारी : अच्छा श्रीमन् ।

आत्माराम : उसे नोट कर ले अन्यथा तू भूल जाएगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

தேனே, அதை அனுப்பிவிட்டாயா ?

வ. இல்லே—இன்னும் அனுப்பவில்லே ஐயா.

ஆ. ஆனுல் நான் உனக்குச் சொல்லுமளவும் அதை அனுப்பாதே. அந்தப் பயல்கள் என்னே ஏமாற்றப் பார்க்கிருர்கள் என்று எண்ணுகிறேன்.

வ. அப்படியே ஆகட்டும் ஐயா.

ஆ. அதை குறித்துக்கொள், இல்லாவிட்டால் அதை மறந்துவிடுவாய்.

வ. அப்படியே செய்கிறேன் ஐயா.

ஆ. நுஸ்வீட அப்பீல் இன்றைய ஜாபிதாவில் போட்டு இருக்கிறதா ?

வ. இல்லே ஐயா, இந்த வாரம் கடைசியில் தான் அதை ஜாபிதாவில் போடுவார்கள் என்று நினைக்கிறேன் ஐயா.

ஆ. நாம் அப்பீல் பிரதிவாதி பக்கமல்லவா ? அவன் பாக்கி பீஸைக் கொடுத்து விட்டானு ?

வ. இல்லே ஐயா

ஆ. எவ்வளவு அது ? சுமார் அறுநூறு ரூபாயல்ல ?—என்ன பசங்கள் ! நீங்கள் எப்பொழுதும் அஜாக்கிரதையாயிருக்கிறீர்கள் ! எத்தனே தரம் உங்களுக்கு அதைப்பற்றி சொல்வது ?

வ பீஸைப்பற்றி சந்தேகமில்லே ஐயா

ஆ. சந்தேகமோ இல்லேயோ—என்னுடைய ஏற்பாடு என்னவென்ருல், ஒரு மஹாராஜனுக்குக்கூட, என் பீஸெல்லாம் பூராவாக வைத்தாலொழிய. ஆஜர் ஆகமாட்டேன் என்று கட்சிக்காரனுக்கு தந்தி அனுப்பு. உம்—எழுதிக்கொள—"அப்பீல் விசாரணைக்கு இவ்வாரம் வருவது நிச்சயம்—பாக்கி பீஸ் இன்னும் கொடுக்கவில்லே—உடனே பாக்கி பூராவாகக் கொடுத்தாலொழிய ஆஜராகமாட்டேன். பதில் தந்தி அனுப்பவும் "

வ. எழுதியாச்சுது ஐயா

ஆ. எந்த பெஞ்சின் முன்பாக அது வரும் போலிருக்கிறது ?

வ இரண்டாவது அப்பெல்லெட் பெஞ்சின் முன்பாக ஐயா . ஜஸ்டிஸ் ஹெட்லஸ்டாக் ஜஸ்டிஸ் ஸ்லோகோச ; முன்பாக.

ஆ. அந்த விஷயத்துக்கு அது தானே மிகவும் சரியான பெஞ்ச் இதையெல்லாம் ஏற்பாடு செய்கிற அந்த கோர்ட் குமாஸ்தாவைப் பார்த்து, வேறே பெஞ்சுக்கு அந்த மாதிரிப்படி அவனுடன் ஏற்பாடு செய், தெரிகிறதா ?

வ. அப்படியே ஆகட்டும் ஐயா.

ஆ. பிறகு—நன்ருய் கவனி—சோமபேரிக கழுதை '—வெங்கடேசா அப்பீல் எப்பொழுது உனக்கு வரும் போலிருக்கிறது ?

வ. இவ்வளவு சீக்கிரத்தில வராது, ஐயா

ஆ. அது ஜஸ்டிஸ் ஸனேடர் முன்பாக வராதபடி. நீ பார்த்துக்கொள்ள வேண்டும். போன வாரம் கவர்ன்மெண்ட் அவுஸ் பார்ட்டியில நம்முடைய கட்சிக்காரனை அவர் பார்த்து கத் தனக்குத் தெரியும் என்றும, அவரைப் பற்றி தனக்கு அதிகமான மதிப்பு ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ऐसा ही करता हूँ श्रीमन् ।

वरदाचारी : नुस्वीट की अपील क्या आज की सूची में है ?

आत्माराम : नहीं श्रीमन् लगता है कि इस सप्ताह के अंत में ही सूचीपत्र में लिखा जाएगा ।

वरदाचारी : हमारी अपील प्रतिवादी की ओर से है न ? उसने बाकी फ़ीस दे दी ?

आत्माराम : नहीं श्रीमन् ।

वरदाचारी : बाकी कितना है ? लगभग छ: सौ रुपये ? कैसे लोग हैं ! आप सदा लापरवाही से रहते हैं ! इस विषय में मैं कितनी बार आपसे कहूँ ?

आत्माराम : फ़ीस के विषय में तनिक भी संदेह नहीं है श्रीमन् ।

वरदाचारी : संदेह हो या नहीं—मेरा निर्णय है कि बिना पूरी फीस लिए एक महाराजा के लिए भी हाज़िर नहीं होऊँगा । वादी को तार भेज दे । अच्छा तो लिख—"इस सप्ताह अपील की सुनवाई अवश्य होगी—बाकी फीस अभी तक नहीं मिली— तुरंत बाकी फीस भेज दीजिए अन्यथा हाज़िर नहीं होऊँगा । जवाबी तार भेजिए ।"

आत्माराम : लिख लिया श्रीमन् ।

वरदाचारी : अपील कौन से बेंच के सामने आ रहा है ?

आत्माराम : अपील संबंधी द्वितीय बेंच के सामने श्रीमन्, न्यायाधीश हेडस्ट्रांग और न्यायाधीश स्लोकोच के संमुख ।

वरदाचारी : इस अभियोग के लिए वही न्यायासन सबसे उपयुक्त है । इन सबकी तैयारी करने वाले कोर्ट - क्लर्क से मिल ले तथा तय करले कि वह इस केस को किसी और न्यायासन के सामने नहीं डालेगा—समझे ?

आत्माराम : ऐसा ही करूँगा श्रीमन् !

वरदाचारी : फिर-अच्छी तरह सुन-गधे कहीं के ! वेंकटगिरि की अपील कब आएगी ।

आत्माराम : इतनी जल्दी नहीं आएगी श्रीमन् ।

वरदाचारी : तू ध्यान रख कि वह न्यायाधीश स्नोटर के सामने न आए । पिछले सप्ताह जब वे एक सरकारी पार्टी पर मिले थे तो उन्होंने मुझे बताया कि वे हमारे वादी को कई वर्षों से जानते हैं और उन्हें उस पर अधिक विश्वास नहीं है । तू प्रयत्न कर कि यह केस उनकी सूची में न आ जाए ।

आत्माराम : अच्छा श्रीमन् ऐसा ही करूँगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

னென்றும் அவர் என்னிடம் சொன்னார். எப்படியாவது அவருடைய ஜாபிதாவில் வரும்படி பிரயத்தனம் பண்ணு.

வ. அப்படியே செய்கிறேன் ஐயா.

ஆ. இன்னும் என்ன? இவருடைய வேலையை நான் பார்க்க வேண்டும் "சர் பிரெட்ரிக் பொலக் ஆன் மிஸ்ரெப்ரிசென்டேஷன் அண்ட் பிராட்" புஸ்தகம் திரும்பி வந்துவிட்டதா? எனக்கு அது அவசியமாக வேண்டும் இன்றைக்கு.

வ. எனக்குத் தெரியாது ஐயா.

ஆ. உனக்கு ஒன்றும் தெரியாது! ஜஸ்டிஸ் கிருஷ்ணசாமி ஐயர் வீட்டிலிருந்து யாரோ வந்து வாங்கிக்கொண்டு போனார்கள் அதைப் போனவாரம். உடனே யாரையாவது அனுப்பி அதை வாங்கிக் கொண்டு வா. இந்த ஜட்ஜுகளெல்லாம் பெரிய தொந்தரவு! இனிமேல் என் உத்தரவில்லாமல் அவர்கள் ஒருவருக்கும் எந்த புஸ்தகத்தையும் அனுப்பாதே.

வ. நான் அனுப்பவில்லை ஐயா.

ஆ. சரி, அவ்வளவுதான்—நீ போகலாம் இனி.

வ. வேறொன்றும் வேலை இல்லையோ ஐயா? நான் வருகிறேன் [போகிறான்.]

ஆ. உம்—என்ன செய்யக்கூடும் உங்களுக்கு நான்?

கு. ஏறக்குறைய ஜூனியர் வக்கீலாயிருந்தும், தங்களுக்கு அதிக வேலையிருப்பதாகக் காணப்படுகிறது எனக்கு நிரம்ப சந்தோஷம்.

ஆ. உம்—ஜூனியர் என்று யாரைச் சொல்லுகிறீரோ என்று எனக்குத் தெரியவில்லை வாஸ்தவமாய். ஜூனியர் என்பதும் ஸீனியர் என்பதும் வக்கீல் ஆகி எத்தனை வருஷமாயது என்று கணக்குப் போட்டுப் பார்க்கக்கூடாது; அது அவர்களுக்கு கோர்ட்டில் எத்தனை வியாஜ்யங்கள் இருக்கின்றன என்பதைப் பொறுத்ததாகும்.

கு. மிகவும் உண்மை—கொஞ்சம் வருஷத்திற்கெல்லாம் மாதத்திற்கு இரண்டாயிரம் ரூபாய் வரும்படி உடைய சில வக்கீல்களை எனக்குத் தெரியும்.

ஆ. உம்—மாதத்திற்கு இரண்டாயிரம் ரூபாய் என்ன ஒரு பெரிய வரும்படியா என்ன? இ பதற்குள் பெரிய படியைக் கொண்டல்லவோ அளக்க வேண்டும் நீங்கள்!

கு. ஆமாம், வேறு எந்த உத்தியோகத்தை விட வக்கீல் வேலைதான் அதிக வரும்படியைத் தருகிறது தற்காலம்.

ஆ. அது சரிதான்; வரும்படி வருகிறது வாஸ்தவமே, ஆயினும் என்னதான் இருந்தபோதிலும், மிகவும் [illegible] உத்யோகம் தற்காலத்திய ஜட்ஜுகளுடையது யார் ம[illegible] கொடுக்கிறது?

கு. ஆயினும் தங்களைப்பற்றி இரண்டு மூன்று ஜட்ஜுகள் மிகவும் நல்ல அபிப்பிராயம் உடையவர்களாயிருப்பதாகக் காணுகிறேன்.

ஆ. உம்!—அதனாலென்ன? இம்மாதிரியான பேச்சு எனக்கு வெறுப்பைத் தருகிறது. அந்த விஷயத்தைப்பற்றி பேசுவதென்றால்—ஜட்ஜுகள் எல்லோரும் என்னை நேராக அ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और क्या चाहिए ? अभी मुझ इनसे भी निपटना है । "सर

आत्माराम : फ्रेडरिक पोलक ऑन मिस् रिप्रेटेशन एंड फ्राड" पुस्तक वापिस आ गई ? मुझे आज वह पुस्तक अवश्य चाहिए ।

वरदाचारी : मुझे नहीं पता श्रीमन् ।

आत्माराम : तू कुछ नहीं जानता ! पिछले सप्ताह न्यायाधीश कृष्णसामी अय्यर के घर से कोई माँग कर ले गया था । शीघ्र ही किसी को भेज कर मँगवा दे । ये जज लोग भी बड़ी बला हैं । अब से मेरी अनुमति के बिना किसी को भी कोई पुस्तक न देना ।

वरदाचारी : मैंने नहीं दिया श्रीमन् ।

आत्माराम : अच्छा, बस अब तू जा सकता है ।

वरदाचारी : श्रीमन् और कुछ काम नहीं है ? मैं चलता हूँ । (जाता है)

आत्माराम : मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूँ ?

कुंजिदबाद : लगता है कि मामूली जूनियर वकील होते हुए भी आपके पास बहुत काम है । मुझे इस बात की प्रसन्नता है ।

आत्माराम : वस्तुत: आप जूनियर किसे कह रहे हैं यह मैं नहीं समझा । जूनियर एवं सीनियर का विभाजन इस बात पर निर्भर नहीं है कि कोई कितने वर्षों से वकालत कर रहा है, परंतु कोर्ट में उसके पास कितने केस हैं, इस बात पर निर्भर है ।

कुंजिदबाद : बिल्कुल ठीक । मैं कुछ वकीलों को जानता हूँ जो कुछ ही वर्षों में दो हज़ार रुपये प्रति महीना कमाने लगे हैं ।

आत्माराम : महीने में दो हज़ार रुपया भी क्या बहुत बड़ी आय है ? आपको सबसे बड़े माप से मापना चाहिए ।

कुंजिदबाद : इस समय वकालत के अतिरिक्त और किसी भी व्यवसाय से अधिक आय नहीं होती ।

आत्माराम : यह ठीक है । आय का आना तो सच है परंतु इस व्यवसाय में बंधन भी बहुत हैं ! आजकल के न्यायाधीशों से कौन बहस करे ?

कुंजिदबाद : फिर भी लगता है कि दो तीन न्यायाधीश आपके प्रति सद्-भावनाएँ रखते हैं ।

आत्माराम : हाँ ! परंतु इससे क्या ? इस प्रकार की बातें मेरे मन में घृणा उत्पन्न करती हैं । इस विषय पर बोलना भी बुरा लगता है । सभी जज मुझे जानते हैं, वे सब मेरे पक्ष में हैं——यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ । परंतु फिर भी और व्यक्तियों के समान केवल उसी बात की चर्चा करते रहना, मैं नहीं चाहता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

வார்கள்; அவர்கள் எல்லோரும் என்மீது பட்சமாயத்தான் இருக்கிறார்கள் என்று நான் உறுதியாய்ச் சொல்வேன். ஆயினும் எல்லோர் எதிரிலும் அதைப் பற்றி எடுத்துப் பேசிக் கொண்டிருக்கிறார்களே சிலர், அவர்களைப்போல நானும் செய்ய எனக்கு இஷ்டமில்லை.

கு. இவ்வளவு நீங்கள் விர்த்திக்கு வந்ததுமல்லாமல், உங்களுடைய நடவடிக்கையில் உத்தமமான நியமங்களுடன் நடப்பதை உலகத்தோருக்கெல்லாம் நீங்கள் தெரிவிப்பது, மிகுந்த சந்தோஷத்தைத் தருகிறது.

ஆ. எங்கள் உத்தியோகத்தில் அபிவிர்த்தியடைதலும் நற்குணமுடையவனாயிருத்தலும் ஒன்றுதான்—எப்படியும் அப்படி இருக்க வேண்டியது நியாயம்.

கு. ஒப்புக்கொண்டேன்—அப்படியிருக்க வேண்டியதுதான்! இன்று காலை என் மனதுக்கு ஒரு பெரும் விருந்து கிடைத்தது போல எண்ணுகிறேன்.

ஆ. ஆம்—நான் மறந்தேன். இனி வேலையைக் கவனிப்போம். தாங்கள் என்னுடைய அபிப்பிராயம் கேட்க வந்தது அசல் வியாஜ்யத்தைப் பற்றியா? அல்லது அப்பீல் வியாஜ்யத்தைப் பற்றியா?

கு. இனி உங்களுக்குக் கஷ்டம் கொடுப்பது எனக்கிஷ்டமில்லை ஐயா!

ஆ. வாஸ்தவாய்—நான்—நான் சொல்வதென்னவென்றால்—உங்களுக்கு ஏதாவது கோபம் உண்டு பண்ணினேனோ?

கு. இல்லவேயில்லை—அதற்கும் எனக்கும் நிரம்ப தூரம்.

ஆ. நீங்கள் சொல்வது எனக்கு அர்த்தமாகவில்லை.

கு. அதனால் பாதகமில்லை, ஐயா.

ஆ. வாஸ்தவமாய்—வியவஹாரத்தைப் பற்றி என்ன?

கு. நான் வந்த வியவஹாரம் விசாரணையற்றே முடிந்துவிட்டது ஐயா.

ஆ. என்ன உம்முடைய மனதில் இருக்கிறது? என்னுடைய காலத்தை இப்படி அனுவசியமாய்ப் போக்க உமக்கு எப்படி தைரியமுண்டாயிற்று? எதற்காக என்னிடம் வந்தீர்?

கு. நான் இங்கு வந்தது சில சமாசாரங்களைத் தெரிந்துகொண்டு போக. அவைகளை அறிந்துகொண்டேன்—ஆகவே இப்பொழுது தயவு செய்து எனக்குப் போக விடை கொடுக்க வேண்டும்.

ஆ. நான் இதுவரையில் பார்த்திராத சாவதானமுடைய அதனப் பிரசங்கியாயிருக்கிறீர் நீர்!—யார் நீர்?

கு. உங்களுக்கு நான் இன்னான் என்று அறிவது சந்தோஷகரமாயிருக்கும்—நான் வரும்படி வரி (இன்கம்டாக்ஸ்) இன்ஸ்பெக்டர்!

ஆ. என்ன!—என்ன?

கு. நான் வருகிறேன். [போகிறார்.]

ஆ. என்ன மடையன் நான்!

[அப்படியே அசந்துபோய் வெட்டவெளியைப் பார்த்தவண்ணம் நிற்கிறார். அவர் மனைவி பாலா பாலா பிரவேசித்து அவரைப் பார்த்து, ஆச்சரியப்பட்டு என்ன நடந்ததோ என்று பிரமித்து நிற்கிறாள். இந்த தோற்றம் காட்சியிலே படுதா மெல்ல இறங்குகிறது.]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंजिदबाद : आपने केवल इतनी उन्नति ही नहीं की अपितु अपने उच्च एवं नियमबद्ध व्यवहार से संसार को भी प्रभावित किया। इस बात की मुझे प्रसन्नता है।

आत्माराम : हमारे व्यवसाय में उन्नति करना एवं अच्छे गुणों से युक्त होना एक ही बात है —यही न्यायसंगत भी है।

कुंजिदबाद : मैं मानता हूँ कि ऐसा होना चाहिए। मैं सोचता हूँ कि आज सुबह सुबह मेरे मन को एक भोज मिल गया।

आत्माराम : हाँ—मैं भूल गया था। अब विषय पर आएँ। आप मेरे विचार जानने के लिए आए थे न? वास्तविक केस के विषय में या अपील के विषय में?

कुंजिदबाद : श्रीमन् मैं आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता।

आत्माराम : वस्तुतः मैं यह पूछ रहा हूँ कि मैंने आपको कष्ट तो नहीं दिया?

कुंजिदबाद : बिल्कुल नहीं—क्रोध मुझसे बहुत दूरी पर रहता है।

आत्माराम : आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई।

कुंजिदबाद : इससे कोई हानि नहीं श्रीमन्।

आत्माराम : वास्तविक केस का क्या हुआ?

कुंजिदबाद : मैंने अपने केस के विषय में पूछताछ कर ली है।

आत्माराम : आपके मन में क्या है? मेरा इतना समय नष्ट करने की हिम्मत आपमें कैसे आ गई? आप किसलिए मेरे पास आए थे?

कुंजिदबाद : मैं कुछ बातें जानने आया था, उन्हें मैंने जान लिया। अतः कृपा करके मुझे जाने की अनुमति दीजिए।

आत्माराम : मैंने आजतक इतना शांत एवं चुप व्यक्ति नहीं देखा। आप कौन हैं?

कुंजिदवाद : मैं कौन हूँ यह जानकर आप प्रसन्न होंगे। मैं इन्कमटैक्स इंस्पैक्टर हूँ।

आत्माराम : क्या! क्या?

कुंजिदवाद : मैं चलता हूँ। (बाहर जाते हैं)

आत्माराम : हाय मैं कैसा मूर्ख हूँ।

(उसी तरह निश्चल खड़ा बाहर की ओर देखता है। उनकी पत्नी बाला प्रवेश करती है तथा उन्हें देखकर चकित होती है। जो कुछ हुआ उसे न जानने के कारण भ्रमित होती है। इसी दशा में पर्दा धीरे धीरे गिरता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाणें

--मंगेश पाडगाँवकर

हिंदी अनु०--दिनकर सोनवलकर

विनाश आहे भरून भवती
इथें तिथें अन्......
घराघरांतुन, मनामनांतुन,
कुठें भरारी पंखामधली ?
कुठें उभारी प्रासांमधली ?
पूजियल्या ज्या मूर्ती
त्यांचे दगडच झाले,
नव्या जगाचे आश्वासन ?
पण युद्धच आले,
सुकलेल्या स्वप्नांना झंकित
सारे जगती, अन् तगमगती,
वसंतांत पण या झाडोंना
येती बघ ना हिरवीं पानें
म्हणुनि तरळतें अजून ही
ओठांवर गाणें
खळखळणाऱ्या लाटांवरती
फेंस खिदळतो
शुभ्र पांढरा—सूक्ष्म तरल
त्यांतील छटा निळसर रंगाची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

मंगेश पाडगाँवकर

हिंदी अनुवाद : दिनकर सोनवलकर

इधर उधर
व्याप रहा है विनाश
सब ओर जगत में।
घर घर में, मन मन में—
कहाँ गई पंखों की उड़ान ?
कहाँ गई प्राणों की उठान ?
पूजा के देव सभी
हो गए पाषाण,
आश्वासन नए जगत के
झूठ हुए,
बदले में मिले युद्ध !
दुनियाँ में रह गए शेष बस
सूखे सपने और असंतोष !
फिर भी देखो, इन वृक्षों पर
हर वसंत में
उग आते हरे पात !
इसीलिए तो ओठों पर
गीत अभी ज़िंदा है।
ऊँची उठती लहरों पर है
फेन उफनता,
शुभ्र स्वच्छ वह—
सूक्ष्म तरल छबियाँ उसमें हैं
नीले रंग की,
पश्चिमी क्षितिज के मस्तक पर
काले बादल की घुँघराली लट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पश्चिम क्षितिजाच्या भाळावर
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रुळे कुरळ बट डौलदार सांवळयाढगाची
मिस्किल चंचल पहा सांवल्या
शांत झोपल्या धुळीस करिती
उगिच गुदगुल्या,
संथ निळया पाण्यामधला
तो सुजाण आशय
कंपन कधि हळुवार तरळतें
होउनि त्यावर नाजुक किसलय
कणाकणांतुन या सृष्टीच्या
नित्य नवे सौंदर्य तराणे
म्हणुनि तरळतें अजून ही ओठांवर गाणें
विनाश आहे भरून भवतीं
तुमच्या अमुच्या जगीं खरें, पण
तुमच्या अमुच्या जगापलिकडे
आहे जीवन-विशाल जीवन
विहरत, खिदळत, नित्य विकासत्
जास्वंदीचीं लाल फुलें तीं
जाइजुईचें कुलीन सुंदर सलज्ज वैभव
झाडें : पक्षी : डोंगर : वारे
नक्षत्रांचे शुभ्र इशारे
फूलहि इवलें या विश्वांतिल
उभें कसें डौलात
पहा ना मरण जिकुंनी
उभा जसा हो कालियाचिया
मस्तकावरी पाय ठेवुनी
तो योगेश्वर : तो बंसीधर
अणुरेणुंतून या सृष्टीच्या
सृजनांचें ऐश्वर्य उधाणे
म्हणुन तरळतें
अजून ही ओठांवर गाणें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
झूल रही है मस्ती से।
शरारती चंचल छायाएँ
देखो, चुप सोती हुई धूल को
यूँ ही लो, गुदगुदा रही हैं
नीले, शांत जल का
वह सार्थक संकेत,
जिसका कंपन
कोमल किसलय बन के तैर रहा है।
इस धरती के कण-कण में
सौंदर्य गीत नित नए गूँजते
इसीलिए ओठों पर
गीत अभी ज़िंदा है!
यह है बिलकुल सही
कि हम सब के आसपास
फैला है विनाश
मेरी और तुम्हारी दुनियाँ में,
लेकिन 'मेरे तेरे' से हटकर भी
बच रहता है जीवन विशाल,
विहँस रहा है, खेल रहा है,
हर पल विकस रहा है!
गुलमोहर के वे लाल फूल
जुही चमेली का कुलीन,
सुंदर, लाजभरा वैभव,
वृक्ष : विहग : पर्वत : पवन,
तारों के नेक इशारे,
देखो वह नन्हा फूल उगा है
जीत मृत्यु को, अजब शान से;
मानों बंसीधर, योगेश्वर,
खड़े हुए हों मस्तक पर
कालिया नाग के,
इस पृथ्वी के कणकण में,
अणु अणु में,
सिरजन का ऐश्वर्य छलकता
इसीलिए ओठों पर
गीत अभी जिंदा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी कामकाज में हिं

इस स्तंभ में सरकारी विज्ञापन, अधिसूचना तथा आदेश के दो-दो नमूने दिए गए हैं । यह अंश अस्वाभाविक, कठिन और बनावटी है यथा

[एक]

भारतीय वायुयान नियम : विमान चालकों के लाइसेंस का नवीकरण

नोट : अनुज्ञापत्र के नवीकरण का उत्तरदायित्व भार संबंधित विमा चालक से संलग्न है । इस उद्देश्य से कि अनुज्ञापत्र के प्रवृत होने में कोई बाधा न आए तो :

'क' अनुज्ञापत्रित विमानचालक अनुज्ञापत्र के समाप्त होने की तिथि से क से कम एक सप्ताह पूर्व नवीकरण प्राधिकारी को आवश्यक लेख प्रेषित कर दे ।

'क' और 'ख' अनुज्ञापत्रित विमानचालक और विमानचालक प्रशिक्ष अनुज्ञापत्र के समाप्त होने की तिथि से 21 दिन पहले चिकित्सा परीक्षा के लिए आवेदन पत्र प्रेषित कर दें, जिससे आवेदक अभिलेख सरकारी चिकित्सा परीक्षक को भेज दिए जाएँ जिसके पा आवेदक को प्रस्तुत होने के लिए कहा जाएगा । निम्नलिखित के लि प्रलेखों की आवश्यकता है :— क, क–1, ख विमान चालकों तथ विमान चालक प्रशिक्षकों के अनुज्ञापत्र के नवीकरण के लिए ।

1. वर्तमान विमान चालकों के लाइसेंस
2. राजकोष रसीद :—

प्रत्येक लाइसेंस के लिए पाँच रु० के पाँच पाँच सि० वि० 5 प्रपत्रों प राजकोष अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए । यह फार्म विमानन रसीदें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी अंश का दूसरा नमूना यहाँ दिया जा रहा है, जो हिंदी की प्रकृति अनुकूल सीधा और सरल है।

प्रशासनिक कार्य के लिए हमें ऐसी भाषा का विकास करना है, जो संतुलित और भावों को सरलता से व्यक्त कर सके।

(एक)

भारतीय वायुयान नियमावली

. . . .

विमान चालक लाइसेंसों का नवीकरण

ध्यान दीजिए :—लाइसेंस को नया करने की जिम्मेदारी संबंधित विमान चालक र ही है। इस उद्देश्य से कि लाइसेंस के जारी रहने में कोई बाधा न आए :—

. . . .

'क' लाइसेंसधारी विमान चालकों को लाइसेंस समाप्त होने की तारीख कम से कम एक सप्ताह पूर्व नवीकरण प्राधिकारी को आवश्यक दस्तावेज़ ज देना चाहिए।

क–1 और 'ख' लाइसेंस धारी विमान चालक और विमान चालक प्रशिक्षक पना लाइसेंस समाप्त होने की तारीख से 21 दिन पहले डाक्टरी परीक्षा के लए आवेदन पत्र दे दें; ताकि आवेदक संबंधी सरकारी अभिलेख उस चिकित्सा रीक्षक को भेज दिए जाएँ, जिसके पास जाने के लिए कहा जाएगा। ऐसा रने से उक्त श्रेणियों के लाइसेंसधारी विमान चालक भी 'क' लाइसेंस धारी विमान चालकों की भाँति नियम का पालन कर सकेंगे।

. . . .

निम्नानुसार दस्तावेजों की आवश्यकता होगी : 'क', क–1, 'ख' विमान ालकों तथा विमान चालन प्रशिक्षकों के लाइसेंस के नवीकरण के लिए :—

1 विमान चालक का वर्तमान लाइसेंस

2 खजाना रसीद : (प्रत्येक लाइसेंस के लिए पाँच रुपए का सि० वि० फार्म 5 जस पर खजाना अधिकारी के हस्ताक्षर हों तथा जिसकी रकम 'विमान-विमानन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

के शीर्षक 33 में जमा कराने चाहिए। शुल्क की अदायगी के लिए
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चेक व टिकट स्वीकार नहीं की जाएगी।

'क' और क–1 अनुज्ञापत्र एक माने जाएँगे, परंतु 'ख' के विमान और प्रशिक्षकों के लाइसेंस दो अलग लाइसेंस माने जाएँगे।

उड़ान अनुभव का प्रमाणपत्र

फार्म सि० वि० 39 विमान प्रमाणपत्र, चालकों की लॉगबुक, किसी के अधिकारी व अनुमत अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए और उनके तिथि का भी उल्लेख करना चाहिए।

चिकित्सा-प्रमाणपत्र : 'क' लाइसेंस के लिए (प्रपत्र सि० वि० 8 क) किसी यो प्रातत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा भरा होना चाहिए और उस पर सहित उसके हस्ताक्षर होने चाहिए। यह उत्तमतर होगा अगर किसी अ अधिकारी द्वारा भरा गया हो। यह फार्म गुप्त रूप से चिकित्सा प द्वारा नवीकरण अधिकारी को भेजा जाना चाहिए। आवेदक को स्व चिकित्सा अधिकारी का शुल्क देना होगा।

'क–1', 'ख' विमान चालन लाइसेंस के लिए:–चिकित्सा अभिलेखों से आवेद प्राप्त करने पर सरकारी चिकित्सा अधिकारियों को भेजे जाएँगे। जिसके आवेदक को प्रस्तुत होने को कहा जाएगा। पहले के चिकित्सा इतिहास के निर्धारण मान्यता प्राप्त नहीं होगा। सि० वि० 35 प्रपत्र चिकित्सा अधिकारी द् भरे जाने के बाद आवेदक की स्वास्थय परीक्षा की समाप्ति पर उसे अनु के तत्काल नवीकरण के लिए नवीकरण अधिकारी को प्रषित करने के वापिस दे दिया जाएगा। नवीकरण अधिकारी को चिकित्सा अभिलेख (फार्म वि० 34) उस चिकित्सा अधिकारी द्वारा सीधे ही प्रेषित किए जाएँगे जिसके द्व आवेदक की परीक्षा हुई थी। आवेदक को 16 रु० चिकित्सा फीस के रू चिकित्सा प्राधिकारी कों देने होंगे।

विमान चालकों के 'क', क-1, 'ख' और प-1 समाप्त हुए अनुज्ञापत्रों का नवीक

प्रत्येक मामले पर योग्यतानुसार कार्रवाई की जाएगी और 'क', क–1, 'ख', प अनुज्ञापत्रों के पहले बार जारी के लिए आवश्यक प्रलेख मँगवाए जा सकते है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'आय' शीर्षक के अंतर्गत जमा कराई जानी चाहिए । शुल्क की अदायगी के लिए नकदी, चेक या टिकटें स्वीकार नहीं की जाएँगी । 'क' और 'क-1' लाइसेंस एक ही लाइसेंस माने जाएँगे, परंतु विमान चालन प्रशिक्षक संबंधी 'ख' लाइसेंस दो अलग लाइसेंस माने जाएँगे ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. **उड़ान अनुभव की प्रमाणपत्र:**—फार्म सि० वि० 39 या विमान चालकों की लॉग बुक किसी क्लब के अधिकारी या किसी अनुमोदित प्राधिकारी द्वारा भरी गई हो तथा हस्ताक्षरित की गई हो एवं उस पर तारीख डाली गई हो।

4. **चिकित्सा प्रमाणपत्र "क" लाइसेंस के लिए:**—(फार्म सि० वि० 8 क) यह फार्म किसी योग्यताप्राप्त चिकित्सा व्यवसायी द्वारा, अधिक अच्छा हो कि किसी अनुमोदित चिकित्सा अधिकारी द्वारा भरा जाना चाहिए, और उस पर तारीख सहित उसके हस्ताक्षर होने चाहिएँ । यह फार्म गुप्त रूप से स्वास्थ्य परीक्षक द्वारा नवीकरण अधिकारी को सीधे ही भेजा जाना चाहिए । आवेदक स्वयं ही चिकित्सा अधिकारी की फीस चुकाएगा ।

"क-1", "ख" और विमान चालन प्रशिक्षक लाइसेंस के लिए: —आवेदन-पत्र प्राप्त होने पर डाक्टरी जाँच संबंधी कागजात उस सरकारी चिकित्सा अधिकारी को भेजे जाएँगे जिसके समक्ष जाने के लिए आवेदक को कहा जाएगा । डाक्टरी जाँच संबंधी पिछले इतिहास के बिना निर्धारण मान्य नहीं होगा । चिकित्सा अधिकारी फार्म सि० वि० 35 भर कर आवेदक की जाँच समाप्त होने पर आवेदक को ही दे देगा ताकि लाइसेंस के तत्काल नवीकरण के लिए नवीकरण प्राधिकारी को उसे भेजा जा सके । डाक्टरी जाँच संबंधी कागज़ात (फार्म सि० वि० 34) नवीकरण प्राधिकारी को उस चिकित्सा अधिकारी द्वारा सीधे ही भेज दिए जाएँगे जिसने आवेदक की डाक्टरी जाँच की हो । आवेदक को चिकित्सा फ़ीस के रूप में चिकित्सा अधिकारी को 16 रु० देने होंगे ।

विमान चालकों के "क", "क-1", "ख" और विमान चालन प्रशिक्षण प्राप्त लाइसेंसों का नवीकरण :—प्रत्येक मामले पर उसके गुण-दोषानुसार कार्रवाई की जाएगी, और "क", "क-1", "ख" विमान चालन लाइसेंसों को पहली बार दिए जाने के समय सभी दस्तावेज़ मँगाए जा सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड्डयन अनुभव के प्रमाणपत्रों के लिए अधोलिखित अनुमोदित प्राधिकारी मान्यता प्राप्त हैं :

(क) उड्डयन क्लब व स्कूल का विमान चालक प्रशिक्षक व उत्तरदायी अधिकारी ।

(ख) वायु परिवहन कार्य में संलग्न कंपनी का उत्तरदायी अधिकारी ।

(ग) नागरिक विमानन के निदेशालय का अधिकारी ।

(घ) किसी भारतीय राज्य का विमानन विभाग का कार्यभारी अधिकारी

(ङ) वायु मंत्रालय का अधिकारी ।

(दो)

वायुयान अनुरक्षण अभियांत्रिकी अनुज्ञापत्र का नवीकरण––सूचना और अनुदेश

1. यह प्रपत्र पूरा भर के दस रु० के नवीकरण शुल्क के हेतु राजकोष रसीद या रेखित पोस्टल ऑर्डर के साथ संबंधित क्षेत्र के वैमानिकी के निरीक्षण अधिकारी को प्रेषित करना चाहिए। यह राशि मनिआर्डर द्वारा भी भेजी जा सकती है। अगर इस तरह के नवीकरण के लिए किसी परीक्षा की आवश्यकता हुई तो आवेदक को इसकी सूचना संबंधित निरीक्षण अधिकारी द्वारा दी जाएगी, और भारतीय वायुसेना नियमों, 1937 के नियम 62 के अंतर्गत इस तरह के अतिरिक्त शुल्क देने को कहा जाएगा। नवीकरण आदि के लिए शुल्क की राजकोष रसीद पर सरकारी राजकोष अधिकारियों के हस्ताक्षर होने चाहिएँ, जिसे "विमानन––विमानन रसीदों के शीर्ष 33" में जमा किया जाना चाहिए।

2. अनुज्ञापत्र तब तक वैध रहेंगे जब तक कि उसमें बताई गई अवधि के लिए ये रद्द व निलंबित न किए जाएँ।

यह अनुज्ञापत्र 12 मास की अवधि तक प्रभावी रहेंगे, और तत्पश्चात् आवेदन पत्र देने पर केंद्रीय सरकार द्वारा उसी अवधि तक के लिए नवीकृत कर दिया जा सकता है, वशर्ते कि अनुज्ञापत्र के नवीकरण के लिए आवेदन पत्र देने के 24 महीने पहले लाइसेंसधारी वैमानिकी इंजीनियरी कार्यों, व्यावहारिक अनुरक्षण, मरम्मत व सफाई व पुनर्कलपन व अधीक्षक की हैसियत पर व वायुयानों के सदस्य रूप में 6 महीने तक काम कर रहा हो और इस अवधि के दौरान उसके पास अनुज्ञापत्र रहा हो। अगर उसके पास अनुज्ञापत्र नहीं रहा हो तो आवेदक को भारतीय वायुयान नियमों, 1937 के नियम 61 के उपनियम (5) में दी गई कुछ व सभी परीक्षाओं में उपस्थित होना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ान-अनुभव का प्रमाणपत्र देने के लिए निम्नलिखित को अनुमोदित प्राधिकारी माना जाएगा :—

(क) विमान चालन प्रशिक्षक या उड़ान क्लब या उड़ान स्कूल का ज़िम्मेदार अधिकारी।

(ख) हवाई परिवहन कार्य में लगी किसी कंपनी का ज़िम्मेदार अधिकारी।

(ग) सिविल विमानन निदेशालय का अधिकारी।

(घ) किसी भारतीय रियासत के विमानन विभाग का कार्यभारी अधिकारी।

(ङ) वायुसेना मंत्रालय का अधिकारी।

(दो)

वायुयान अनुरक्षण इंजीनियर के लाइसेंस का नवीकरण—सूचना और हिदायतें

1. यह फार्म पूरा भर के दस रु० की नवीकरण फ़ीस चुकाने की खज़ाना रसीद या रेखित पोस्टल ऑर्डर के साथ संबंधित क्षेत्र के विमान निरीक्षण अधिकारी को भेजना चाहिए। यह रकम मनीऑर्डर द्वारा भी भेजी जा सकती है। अगर इस तरह के नवीकरण के लिए किसी परीक्षा की आवश्यकता हुई तो आवेदक को इसकी सूचना संबंधित विमान निरीक्षण अधिकारी द्वारा दी जाएगी, और भारतीय वायुसेना नियमावली, 1937 के नियम 62 के अंतर्गत आवश्यकता होने पर अतिरिक्त शुल्क देने को कहा जाएगा। नवीकरण आदि के लिए शुल्क की खज़ाना रसीद पर सरकारी खज़ाना अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए और उसका रुपया "विमानन–विमानन आय–33" शीर्ष के अंतर्गत जमा किया जाना चाहिए।

2. लाइसेंस यदि रद्द या निलंबित नहीं कर दिए जाएँ तो वे उस अवधि तक वैध रहेंगे जिसका उल्लेख उनमें किया गया हो। किंतु यह अवधि अधिक से अधिक 12 मास होगी, और उसके बाद आवेदन पत्र देने पर केंद्रीय सरकार उसी अवधि के लिए उनका नवीकरण कर सकती है, बशर्ते कि लाइसेंस के नवीकरण के लिए आवेदन पत्र देने के पहले के 24 महीनों में लाइसेंसधारी विमान संबंधी इंजीनियरी काम या तो व्यावहारिक अनुरक्षण या मरम्मत या अधीक्षक की हैसियत में या वायुयान चलाने वाले कर्मी दल के एक सदस्य के रूप में कुल मिला कर छह महीने तक काम करता रहा हो और इस अवधि के दौरान उसके पास लाइसेंस भी रहा हो। अगर यह शर्त पूरी नहीं होती है तो आवेदक को भारतीय वायुयान नियमावली, 1937 के नियम 61 के उपनियम (5) में दी गई कुछ व सभी परीक्षाएँ देनी पड़ेंगी।

भाषं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषाविद्

डॉ० मोनियर विलियम्स

—जे० एच० आनंद

हिंदी भाषी विद्वान और लेखक मोनियर विलियम्स को वैदिक संस्कृत के विद्वान, संस्कृत-अँग्रेज़ी के जगत विख्यात कोशकार तथा प्राच्य विद्या विशारद के रूप में जानते हैं। शायद बहुतों को पता भी न हो कि उन्होंने देशीय जनभाषा हिंदुस्तानी में भी एक व्याकरण ग्रंथ की रचना की थी। इस रचना के सृजन का कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे ज्ञात होता है कि मोनियर विलियम्स को भारतीय समाज एवं साहित्य से कितना लगाव था। आपको सन् 1857 के जन आंदोलन में हुए रक्तपात से बड़ी मर्मांतक पीड़ा हुई थी। आपने प्रजा के असंतोष का कारण ढूंढना चाहा, गदर के कारणों पर खोज की, और घोषित किया कि,

'If we do not seek to know the people of India better than we have hitherto done; if instead of respecting them as our fellow-men and fellow-subjects, we persist in dispensing them as a servile and inferior race, we cannot blame them if they also shrink from contact with us, or even if at a future day they should rise up and say, 'we will not have these men to reign over us'. Our material supremacy if not founded on mutual sympathy, confidence, and good will, will be little better than a tower built on sand, which the next storm must sweep away. We may make laws, administer justice, lay down rail-roads, develope the resources of the country; but unless we seek to know and understand the natives, unless we find in them some-thing to respect, unless in our religions and social character we show ourselves worthy of invitation, we can never expect any reciprocity of sentiment or esteem on their part.[1]

[1]An easy introduction to Hindustani—भूमिका, पृष्ठ 8.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब शासक के लिए इस समस्या का निदान क्या है? लेखक का कहना है कि सर्व-प्रथम हमें अर्थात् गौरांग प्रभु को चाहिए कि हम देशीय भाषाओं को शुद्ध व्याकरण के परिवेश में समझें।[1] सर्वसाधारण में प्रचलित हिंदुस्तानी जो एक प्रकार से सम्मिश्रित, संश्लिष्ट भाषा है को समझना अनिवार्य है। लेखक मानता है कि हिंदुस्तानी दिल्ली, अवध और गदर के जिलों (ग्वालियर, झाँसी, कालपी आदि) में सामान्यतः बोली जाती है। वस्तुतः हिंदुस्तानी उत्तर पश्चिम की जनभाषा है, और जैसा कि यूरोप में फ्रांसीसी भाषा का प्रभाव है, वैसे ही इसका प्रभाव बंबई, मद्रास और कलकत्ता में भी व्याप्त है :—

'It is therefore the best general dialect which can be learnt by persons, who about to proceed to a Vast Continent, are ignorant of the particular locality for which they may be destined'.

अतः भारतीय संस्कृति-साहित्य के अनन्य प्रेमी, ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय एवं ईस्ट इंडिया कालेज (हेलेंबरी) के प्रोफेसर मोनियर विलियम्स ने शासक और प्रजा के भेद की दीवार को तोड़ने के लिए हिंदुस्तानी व्याकरण की रचना की। वास्तव में, भाषा माध्यम से जाति-भेद दूर करने की कल्पना अद्भुत और मौलिक थी। ऐसे कितने अंग्रेज अधिकारी हुए हैं जिन्होंने इस ध्येय को सामने रखते हुए देशीय भाषाओं में दिलचस्पी ली हो ?

श्री विलियम्स द्वारा रचित "हिंदुस्तानी : एक अध्ययन"[2] यथार्थतः व्याकरण ग्रंथ है, और इसे इस रीति से लिखा गया है कि हिंदुस्तानी भाषा हर एक व्यक्ति सुगमता से समझ ले। क्रिया और वाक्य विचार के अंतर्गत लेखक ने जितनी स्पष्टता और सूझ बूझ से विषय को प्रतिपादित किया है उतना और उतने सुंदर ढंग से इसके पूर्व नहीं लिखा गया। हरएक विषय को अलग अलग संस्कृत और अरबी व्याकरण के दृष्टिकोण से लिखा गया है, अर्थात् दोनों व्याकरणों के नियम समानांतर दे दिए गए हैं।

आजकल हरएक भाषावैज्ञानिक स्वीकार करता है कि मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं को सीखने का माध्यम मातृभाषा की लिपि और भाषा होनी चाहिए। अंग्रेजी सीखने का सुगम तरीका देशीय भाषाएँ हैं। यदि बालक आरंभ से ही मातृभाषा की लिपि से परिचित न हो तो सयाना होनेपर उस लिपि के माध्यम से भाषा सीखना मुश्किल हो जाता है। भाषाएँ सीखने में लिपि का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। अतएव मोनियर विलियम्स के शब्दों में उनके व्याकरण की मुख्य विशेषता है 'the exclusive employment of English letters to express Hindustani Words'.

---

[1]'The first step, then towards a better understanding between us must be a better and more grammatical acquaintance with the spoken languages'—वही.

[2]An Easy Introduction to Hindustani.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय श्रीरामपुर तथा कलकत्ता मिशनरी की कुछ सोसाइटियाँ नागरी को प्रयुक्त कर रही थीं, फिर भी हिंदी टाइप तब तक नवजात शिशु ही था। और लेखक अपने अँग्रेज़ पाठक को अविकसित नागरी टाइप से डराना भी नहीं था--अपने ग्रंथ को यथासंभव सरल और स्पष्ट करना उसका लक्ष्य था। यह भी कहता है, 'Let it not be supposed that, by adopting method of commanding the study of Hindustani to all Class Englishmen resident or likely to be resident in India, I under the value of a Grammar in the native character. On the contr I look forward to the time when the present work, if succe may be translated into that character for the benefit of scho habituated to its use...................... By confining myself the following pages to our own familiar alphabet, my aim been to compose a book 'for all'—to construct, so to speak public conveyance for the convenience of Hindustani stud generally'.[1]

खैर अँग्रेज़ों के सहायतार्थ रोमन लिपि स्वीकारना अनुचित नहीं कहलाया सकता। फिर भी जब मोनियर विलियम्स कहते हैं कि—'If our simple alpha can be applied to expressive spoken dialects of India, and bo printed in this type can be circulated throughout the land, native may be gradually familiarised. to our system, and adopt it in preference to their own'.[2]

तब हमें उनके साध्य में राजनीति की बू आने लगती है। स्वतंत्र भारत में भा नात्मक एकीकरण को राजनीतिज्ञ स्टंट बनाने वाले प्रायः राष्ट्रभाषा हिंदी की गरि और देवनागरी की वैज्ञानिकता से सर्वथा अपरिचित राजनीतिज्ञों ने भी भारत के लिए विदेशी रोमन लिपि की प्रस्थापना करनी चाही थी। फिर संस्कृत के उद् विद्वान के मुख से रोमन लिपि की वकालत उचित प्रतीत नहीं होती।

'हिंदुस्तानी: एक अध्ययन' की रचना में मोनियर विलियम्स ने इन व्याकरणाचा के ग्रंथों से मदद ली है—केप्टन जार्डन का उर्दू व्याकरण ग्रंथ (क्रिया), डॉ० डं फोरेब्स का हिंदुस्तानी व्याकरण (काल), हिंदुस्तानी पाठ, शब्दावली, कथोपक का संकलन-प्रोफेसर डॉटन माथर।

वैसे, मोनियर विलियम्स का 'हिंदुस्तानी : एक अध्ययन' न तो जान बीम्स 'कंपरेटिव ग्रैमर आव दी मार्डन लैंग्वेजेज आव इंडिया' (1872-1879) की त है, और न ही रूडल्फ हार्नली कृत 'ग्रैमर आव दी ईस्टर्न हिंदी' के स्तर का है 'हिंदुस्तानी : एक अध्ययन' जन समाज में जनभाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए लि

---

[1]भूमिका, पृष्ठ 6.

[2]भूमिका, पृष्ठ 8.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। इस ग्रंथ में लेखक का उद्देश्य अपने ग्रंथ को [illegible]हार बनाना न था। अतएव जहाँ बीम्स, हार्नली हिंदी भाषा के इतिहास में इसलिए स्मरण किए जाते हैं कि उन्होंने हिंदी के स्टैंडर्ड व्याकरण ग्रंथों की रचना की, वहाँ मोनियर विलियम्स हिंदी प्रचार करने वाले विद्वान माने जाएँगे।

इस पुस्तक का आरंभ मोनियर हिंदुस्तानी उच्चारण से करते हैं और अँग्रेज पाठकों को प्रोत्साहित करते हैं, 'The learner of Hindustani need never be in doubt, like the learner of English, as to the pronunciation of the vowels. There sound is unalterably fixed, and never varies'.

(पृष्ठ 1)

हाँ, हिंदी में व्याकरण–संबंधी लिंग-भेद सबसे अधिक दुरूह है और आज भी हिंदी के श्रेष्ठ व्याकरणाचार्य इस संबंध में निश्चित नियम बनाने में हिचकते हैं।[1] हिंदी व्याकरण में नपुंसक लिंग नहीं है, अत: प्रत्येक अचेतन पदार्थ के नाम को पुल्लिग या स्त्रीलिंग के अंतर्गत रखना पड़ता है। साधारणतया हिंदी भाषाभाषी अभ्यास से ही अचेतन पदार्थों में प्रचलित लिंग विशेष के शुद्ध रूपों का व्यवहार करने लगते हैं। पर, विदेशी हिंदी प्रेमी सज्जन हास्यास्पद स्थिति में पड़ जाते हैं। मोनियर विलियम्स ने लिंग भेद के निमित्त नियम प्रतिपादित करते हुए कहा कि वे संज्ञा शब्द जिनके अंत में 'ई', 'त', 'श', लगते हैं प्राय: स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे रोटी, बात, तलाश आदि। और जिन शब्दों के अंत में 'र' और 'न' है वे स्त्रीलिंग हैं, जैसे सरकार, तलवार, खबर, गरदन, दूकान, अस्तीन, आदि। (मोनियर में अच्छे व्याकरण ग्रंथ रचयिता के गुण थे, और उन्होंने हर एक नियम के अपवाद भी टिप्पणी में दे दिए हैं।) पुल्लिग शब्द पहिचानने के लिए लेखक अत्यंत सामान्य नियम बताता है, जिन संज्ञाओं में अंत में 'अ' और 'आ' होता है वे आमतौर पर पुल्लिग होती है। जैसे, बच्चा, बंदा, दरया, मुल्क, पाँव, बाग आदि। लेकिन लेखक स्वीकार करता है कि बहुत से 'र' और 'न' में अंत होने वाले शब्द पुल्लिग होते हैं उदाहरण दर (दरवाजा), घर, अंगूर, दीन, मिहमान। इस नियम के अपवाद में भी शब्दों की सूची दे दी गई। यह तो हुए स्थूल नियम पर लेखक इन्हीं नियमों के माध्यम से संज्ञा परिच्छद में पाठकों को प्रवेश कराता और उसके (संज्ञा) चार विभिन्न विकार रूपों की चर्चा करता है (पृष्ठ 5-10), तत्पश्चात् कारक। The cases are expressed by certain prepositions, more properly called post positions. (संज्ञा के विकृत रूप में कारक चिह्न लगाकर हिंदी विभक्तियों के रूप बनाए जाते है।) जिन विशेषणों के अंत में 'अ' आता है वे अपने प्रयुक्त विशेष्यों के आधार पर परिवर्तित होकर ए, ई हो जाते हैं। जैसे पाक मर्द, पाक-औरत, पाक औरतें, ज़ियादा रौनक। हिंदुस्तानी और फारसी विशेषणों का खास भेद बताते हुए लेखक कहता है कि जहाँ हिंदुस्तानी वाक्य में संज्ञा शब्द के पूर्व विशेषण लगता है, वहाँ फारसी भाषा के वाक्य में संज्ञा और उसका विशेषण स्वर 'इ'

[1]पंडित कामताप्रसाद गुरू ने कुछ विस्तृत नियम बनाए हैं, हिंदी व्याकरण-पृष्ठ 259-266.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा 'ए' (जिन्हें इफाजत कहते हैं) द्वारा जुड़े होते हैं, और विशेषण संज्ञा शब्द के बाद आता है, जैसे 'जुबानइ शिरीन, ख़ियालइख़ाम (निरर्थक विचार), जबान इ खूबसूरत'। 'ए' स्वर उन संज्ञा शब्दों में लगता है जिनके अंत में 'आ' अथवा 'ऊ' आते हैं जैसे 'बला-ए-नागहानी' (आकस्मिक विपत्ति), रू-ए-ज़ेबा (सुंदर मुखड़ा)। पृष्ठ 14–15 में सर्वनामों के एकवचन बहुवचन के चार्ट दिए गए हैं, जिनमें कारक-रचना पर भी विचार किया गया है। वस्तुत: प्रस्तुत व्याकरण ग्रंथ में मोनियर विलियम्स ने 'क्रिया' अध्याय के अंतर्गत अपने मौलिक विचार प्रकट किए हैं।[1] हिंदी में लिंग-संबंधी एक विशेषता यह भी है कि इसकी क्रियाओं में भी लिंग के कारण विकार होता है। लेखक के शब्दों में क्रियाओं का यह परिवर्तन संज्ञा रूपों के प्रभाव के कारण होता है और इसी प्रभाव के कारण जहाँ एकवचन पुल्लिग में 'आ' अधिकतर अंत में प्रयुक्त होता है, वहाँ पुल्लिग बहुवचन में 'ए' अंत में आता है। साथ ही स्त्रीलिंग एकवचन में 'ई' और बहुवचन में 'ईयों' प्रयुक्त किया जाता है। (साथ हीं) क्रियार्थक संज्ञा का अंत 'ना' में होता है—बोल-ना। यह 'ना' 'ने', 'नी', 'नीं', 'नी-हाँ', में परिवर्तनशील है। लेखक हिंदुस्तानी कालों को तीन वर्गों में विभाजित करता है—(क) हिंदुस्तानी के तीन काल मूल धातु से बनते हैं- संभाव्य भविष्यत् (Potential, aorist), अथवा (Future indefinite) भविष्य, मैं होऊँ, मैं होऊँगा और विधि अथवा आज्ञा (Imperative) में होऊँ (ख) हिंदी क्रिया में कृदंत रूपों का व्यवहार बहुत अधिक है। लेखक मानता है कि वर्तमान अनिश्चयार्थ (मैं होता), वर्तमान निश्चयार्थ (मैं होता हूँ), वर्तमान कालिक कृदंत से बनते हैं। (ग) और भूतकालिक कृदंत से निर्मित होने वाले काल हैं—अपूर्ण भूत (मैं हुआ), पूर्ण भूत (मैं हुआ हूँ) और Pluperfect (more than perfect (मैं हुआ था)। वर्तमान कालिक कृदंत से तीन और काल:—वर्तमान अपूर्ण संभावनार्थ—मैं बोलता होऊँ, भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थ—मैं बोलता होऊँगा, भूत अपूर्ण संभावनार्थ—मैं बोलता होता। भूतकालिक कृदंत से बनने वाले शेष तीन हैं:—वर्तमान पूर्ण संभावनार्थ—मैं बोला होऊँ, भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ—मैं बोला होऊँगा, भूतपूर्ण संभावनार्थ—मैं बोला होता। अस्तु।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि मोनियर विलियम्स के काल रचना पर प्रकट किए विचार प्राय: उनकी संस्कृत रुचि पर आधारित हैं। हिंदी में मुख्य काल तीन माने जाते हैं—वर्तमान, भत और भविष्य। निश्चयार्थ, आज्ञार्थ तथा संभावनार्थ इन तीन मुख्य अर्थों तथा व्यापार की सामान्यता, पूर्णता तथा अपूर्णता को ध्यान में रखते हुए समस्त हिंदी कालों की संख्या 16 मानी जाती है।[2]

---

[1]मोनियर विलियम्स स्पष्टत: ही हिंदुस्तानी भाषा में 'इज़ाफत' को मान्यता नहीं देते। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जैसे इतिहासकारों ने 'हिंदुस्तानी' को उर्दू के खेमे में इस कारण से भी डाला है कि 'हिन्दुस्तानी' में 'इज़ाफत' प्रयुक्त होता था।

[2]हिंदी भाषा का इतिहास, पृष्ठ 297-298—डॉ० धीरेंद्र वर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत कालों के अवशेष स्वरूप हिंदी में केवल दो काल हैं : वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा। ग्रियर्सन ने इन कालों के संबंध में विस्तार पूर्वक विचार किया है।[1]

"हिंदुस्तानी शब्दों की व्युत्पत्ति, परिच्छेद लेखक के भाषा अधिकार का परिचायक है। हिंदुस्तानी भाषा का शब्द भंडार एक ओर तो संस्कृत से और दूसरी ओर विदेशी-भाषाओं—अरबी, फारसी, तुर्की आदि से भरा है। यद्यपि आज भाषा विज्ञानी मानते हैं कि अरबी, तुर्की शायद फारसी भाषा के माध्यम से हिंदुस्तानी में प्रविष्ट हुई हैं—क्योंकि फारसी आर्य भाषा है, और उसके प्राचीनतम रूप अवस्ता की भाषा ऋग्वेद की भाषा के बहुत निकट है। अरबी भिन्न कुल (सेमिटिक) की भाषा है जिसका आर्य भाषाओं से अब तक किसी प्रकार का संबध स्थापित नहीं हो सका है। अतएव लेखक का यह कहना कि हिंदुस्तानी भाषा की सुनियोजित रचना प्रक्रिया की जानकारी के लिए अरबी भाषा की मूल धातु का परिचय आवश्यक तथा अनिवार्य है. (पृष्ठ 64), प्रायः अनावश्यक है। विदेशी शब्द भारतीय ध्वनि और उच्चारण के अनुसार देशीय भाषा समाज में प्रवेश पाता है। विद्वान लेखक प्रतिपादित करता है कि हिंदुस्तानी के वे शब्द जो अरबी के हैं, मुख्यतः 'त्रय व्यंजन धातु' के हैं और लेखक इन्हें पाँच वर्गों में बाँध देता है। तलब (तलब तालिब, मतलब आदि); हकम (हुक्म, हाकिम, हकीम); इस्तिहकाम (दृढ़ीकरण, संस्कार, महकमा); हमद (हम्द, तमहमीद, हमीद, मुहम्मद, महमूद); कतब (किताब, कातिब, मकतूब, मकतब); क़तल, (क़त्ल, क़िताल, क़ातिल, मक़तूल)।

हिंदुस्तानी भाषा में देशीय भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ बहुत से संस्कृत प्रत्ययों और उपसर्गों का व्यवहार आरंभ से ही होने लगा था। उपसर्ग अ-चल, अन-जान, प्रत्यय—गाड़ी-वान, दर-वान।

'वाला' और 'हारा' तद्भव और देशी प्रत्यय हैं। हार्नली ने हारा (हार) का संबंध संस्कृत 'अतीय' से जोड़ा है। लेकिन डॉ० धीरेंद्र वर्मा ने इस व्युत्पत्ति को संतोषजनक नहीं माना है (हिंदी भाषा का इतिहास, पृष्ठ 244)। मोनियर विलियम्स लिखते हैं कि प्रत्यय संज्ञा और क्रियार्थक सं ा शब्द में लगत हैं, लकड़-हारा, बस्ती-वाला, दिल्ली-वाला। तत्पश्चात् उन्होंने किसी प्रकार का अधिकार बताने वाले, स्थान से संबंधित भाववाचक संज्ञा बनाने वाले, अल्पार्थ शब्द निर्मित करने वाले, पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने वाले, विशेषण बनाने वाले प्रत्यय शब्दों की सूची दी है। जैसे तंबूर-ची (तबल-ची), जमी-दार, सिपाह-ी (ई), शाहजहाँ-बाद (आबाद), दर-गाह, हस्तिना-पुर, घुड़साल (संस्कृत 'साल'), गऊ-शाला, फूल-वाड़ी, खूब-ी, बनिया-पन, बूढ़ा-पन, [अरबी भाववाचक संज्ञाएँ 'अत' और 'ईयन' प्रत्यय से बनती हैं। जैसे हुकूमत (हुक्म), इंसानियत (इंसान)]।

[1]'रेडिकल ऐंड पार्टिसिपियल टेंसेज'—'जर्नल ऑव दी एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल, 1896, पृष्ठ 352—375.

भाषा मार्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसर्ग पर मोनियर ने अधिक नहीं लिखा। प्रायः ग्यारह उपसर्ग बताकर प[रिच्छेद]
समाप्त कर दिया। अ-चल, अन-जान, बे-वफा, बद-सलूक, गैर-मुनासिब, [बे-]
हिम्मत, ला-चार, ना-हक़्क़, नि-डर, निर-आस (निरास)।

वाक्य विचार, वाक्य रचना अथवा अच्छी हिंदी कैसे लिखें? दूसरे शब्दों में व्या[करण]
सम्मत भाषा लिखने के सिद्धांत प्रायः हमारे व्याकरण-ग्रंथों में नहीं मिलते। पा[श्चात्य]
साहित्य में व्याकरण शास्त्र का एक प्रमुख अंग सिंटेक्स (वाक्य रचना) माना [जाता]
है। अतएव जहाँ विदेशी व्याकरणाचार्यों द्वारा लिखे हिंदी व्याकरण-ग्रंथों में [...]
वाक्य रचना पर विस्तार से विचार किया गया है, वहाँ देशीय लेखकों ने [...]
चलते क़लम वसीटी है।

मोनियर विलियम्स ने निम्न अध्यायों में हिंदुस्तानी वाक्य रचना के विष[य में]
लिखा है—दि आर्टिकल (हिंदी में इसका पर्याय नहीं है), कोलोकेशन ऑफ [...]
(वाक्य में शब्द संस्थापन, अर्थात किस क्रम से क्रिया, कर्ता, कर्म आदि प्रयुक्त [...]
जाएँ।), कर्ता कारक से क्रिया का, संज्ञा से विशेषण का, अपने पूर्ववर्ती से संबंधवा[चक]
सर्वनाम (जो) का स्वर साम्य। कारक चिह्न किस प्रकार और कैसे प्रयुक्त [...]
जाते हैं। कौन सा कारक चिह्न किस संदर्भ में लगाना चाहिए आदि (पृष्ठ
86)। विशेषणों के प्रयोग (सिंटेक्स)(पृष्ठ 86-90), सर्वनाम-प्रयोग [...]
690,95), क्रिया प्रयोग (पृष्ठ 95-111 तक), काल विचार (पृष्ठ 111-11[...]
सहायक क्रियायों पर विचार (पृष्ठ 119-128 तक)। और अंत में पृष्ठ 129-1[...]
में क्रिया विशेषण, उपसर्गात्मक अव्यय, समुच्चय बोधक (अव्यय) पर चर्चा।

हो सकता है वाक्य विचार हिंदी भाषा-भाषी को अनावश्यक प्रतीत हो। [...]
भाषा विज्ञान एवं विदेशी भाषा सीखने में व्याकरण नियमों का जितना महत्त्व [है]
उतना ही वाक्य-विचार का। वस्तुतः व्याकरण के नियम वाक्य-विचार के अं[तर्गत]
कसौटी पर कसे जाते ह। विद्यार्थी सीखे गए व्याकरण नियमों को वाक्य-विचा[र में]
व्यवहृत करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

76248
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य

कबीर की काव्य-भाषा का आधार रूप

रामस्वरूप चतुर्वेदी

कबीर की भाषा के संबंध में हिंदी के आलोचकों और इतिहासकारों ने कई प्रकार के मत व्यक्त किए हैं। संत कवि की भाषा का उग्र और तेजस्वी रूप सबका ध्यान अपनी ओर विशेष रूप से आकृष्ट करने में समर्थ हुआ है। फलतः कबीर की भाषा के संबंध में जितनी चर्चा हुई है उतनी शायद ही किसी अन्य मध्यकालीन कवि के संबंध में हुई हो। पर साथ ही यह स्पष्ट जान पड़ता है कि यह चर्चा अधिकतर व्यक्तिगत प्रतिक्रिया या मत-स्थापन के रूप में अधिक है। काव्यभाषा के तात्विक विश्लेषण का प्रयास अपेक्षाकृत कम हुआ है।

कबीर की भाषा के संबंध में सामान्यतः दो प्रकार की स्थापनाएँ देखने को मिलती हैं। आलोचकों का एक मत कबीर की भाषा को मिश्रित, सधुक्कड़ी कहता है। यह स्थापना मुख्यतः रामचंद्र शुक्ल और हज़ारीप्रसाद द्‌विवेदी की है—'इसकी (साखी की) भाषा सधुक्कडी अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर रमैनी और सबद में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का व्यवहार है—कबीर का यह पद देखिए—हों बलि कब देखौंगी तोहि—सूर के पदों की भी यही भाषा है।[1] संस्कृत के 'कूपजल' को छुड़ा कर उन्होंने भाषा के बहते नीर में सरस्वती को स्नान कराया। उनकी भाषा में बहुत-सी बोलियों का मिश्रण है, क्योंकि भाषा उनका लक्ष्य नहीं था (?) और अनजान में वे भाषा की सृष्टि कर रहे थे।[2] श्यामसुंदरदास का मत भी इसी प्रकार का है। उनके अनुसार—"कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है—क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हैं।[3] ये आलोचक प्रायः कबीर की भाषा को मिश्रित मानते हुए उसमें पश्चिमी बोलियों के तत्वों की प्रधानता स्वीकार करते हैं।

---

[1] रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, 2002 वि०, पृ० 69-70।
[2] हज़ारी प्रसाद द्‌विवेदी : हिंदी साहित्य की भूमिका 1948 ई०, पृ० 98।
[3] श्यामसुंदर दास द्‌वारा संपादित : कबीर ग्रंथावली, 2011 वि०, पृ० 71।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अन्य समीक्षक कबीर की भाषा का रूप पूर्वी (भोजपुरी) मानते हैं। रा-
कुमार वर्मा ने अपने 'संत कबीर' (संक्षिप्त) की प्रस्तावना में लिखा है—"प्रमुख
कबीर की कविता पूर्वी हिंदी का रूप लिए हुए है।[1] कबीर साहित्य के एक अन्य विशे-
परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार– "इसके सर्वप्रथम प्रमुख प्रचारक संत कबीर सा-
थे, जो काशी नगरी के निवासी थे और जिनकी बोली भोजपुरी थी। अपनी बो-
को उन्होंने अपनी एक साखी में 'पूरबी' बतलाया है, जिसका अभिप्राय आध्यात्मि-
समझा जाता है, किंतु जिसका साधारण अर्थ पूरबी बोली है।[2] अपने मत के सम-
में चतुर्वेदी ने उदयनारायण तिवारी का मत भाषा शास्त्रीय पक्ष को पुष्ट करने-
दृष्टि से उद्धृत किया है–'कबीर' की मूलवाणी का बहुत कुछ अंश उनकी मातृभा-
बनारसी बोली में लिखा गया था"।[3]

पिछले दिनों कबीर की रचनाओं का प्रामाणिक और वैज्ञानिक पाठ पारस-
तिवारी द्वारा संपादित होकर हिंदी परिषद्, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। इस -
के आधार पर किए गए भाषिक विश्लेषण से प्राप्त कुछ संकेत-सूत्र यहाँ प्रस्तुत कि-
जा रहे हैं।

काव्य भाषा के विश्लेषण में दो प्रकार की शब्द-सामग्री मिलती है। एक तो सं-
या नाम शब्दावली, और दूसरे विभिन्न प्रकार के व्याकरणिक पद यथा, परसर्ग, स-
नाम, क्रिया-रूप आदि। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से किसी भाषा के स्वरूप निर्धार-
में दूसरे प्रकार की सामग्री अधिक उपयोगी होती है, जब कि काव्य-भाषा के अध्य-
में (प्रतीक और बिंब विधान को समझने के लिए) संज्ञारूपों का अपेक्षया अधि-
महत्त्व होता है, क्योंकि प्रतीकों और बिंबों का गठन मुख्यतः उन्हीं के आधार -
होता है।

यहाँ पहली समस्या है कबीर की आधारभूत भाषा के स्वरूप निर्धारण की, -
अभी तक विवादग्रस्त बनी हुई है। परसर्ग, सर्वनाम, और क्रियारूपों की दृष्टि-
कबीर के पदों, रमैनियों और साखियों का विश्लेषण इस तथ्य को निर्विवाद रूप-
स्थापित करता है कि ये व्याकरणिक रूप निश्चय ही ब्रजभाषा के हैं, न कि भोजपु-
या किसी पूर्वी बोली के। हाँ, ब्रजभाषा के साथ मुख्य रूप से खड़ी बोली के कुछ प्र-
अवश्य मिलते हैं। नीचे कबीर की भाषा में प्रयुक्त परसर्गों, सर्वनामों, संज्ञा -
और क्रियाओं के कुछ प्रतिनिधि रूप दिए जाते हैं, जो ब्रज भाषा के हैं।

परसर्ग:- मिलन के **ताई**(प11), कांमी **कौ** (प13), हरि **सौं**(प13), -
कौ राजा (प25), पढ़न **सौं**(प26), जन **सौं**(प27), ता **कौं** मन(प31), -
कौं(प32), जा **कौं**(प33), देवन **कौं**(प33), साध **सौं**(प35), बुद्धि -

---

[1] रामकुमार वर्मा : संत कबीर (संक्षिप्त), 1950 ई०, पृ० 17।

[2]परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ : 1955 ई-
पृ० 83।

[3]वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प42), तिन कौं(प45), ... कौं(प48), का कौ बाप(प49), ठा सौं(प49), जा कौं(प51), मो कौं(प54), पंखि कौं (प54), मरन तें(प58), तन कौं (प62), जनम कौं(प63), धन राखन कौं दीया(प65), का सौं(प66), काग कौं मक्खिन(प69), अंधे कौं(प72), तिनही कौं(प76), नावनु कौं(प97), पूजन कौं(प97), का कौं(प105), रूप कौं(प119), लौगनि सौं(प167), भगति तैं(प167), औरति कौं (प178), ता तैं हिंदू रहिए(प178), एक कौं (र8), दयाल कौं (चौतीसी र23), देवे कौं (सा1/1), किस कौ(सा1/3), हम सौं(सा1/20), मिलन कौं(सा2/18), जिबा मैं(सा2/36), तिन कौं (सा 3/19), ता के पग(सा4/13), तन कौं चाम(सा4/13), हंसन की(सा 4/18), गंग में (4/29), भी सागर कै ताई(सा6/12), पुहुप बास तें पातरा- (सा7/7), उत तैं(सा10/3), ता कौं(सा21/7), जा कौं(सा32/15)।

परसर्गों के उक्त प्रतिनिधि प्रयोग, जो पारसनाथ तिवारी के संस्करण में से लिए गए हैं, शुद्ध और परिनिष्ठित ब्रज के हैं। क्रमबद्ध रूप में उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :–

की,के,कौं,को,ताईं,तैं,मैं,सौं

इसके अतिरिक्त कबीर की भाषा में यत्र तत्र परसर्गों के संयुक्त प्रयोग भी मिलते हैं, जो ब्रजभाषा की अपनी विशेषता है। कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं:-- **द्वारै** रचि हैं (प33),ज्यों माँखी **सहतै** नहिं बिहुरें(प68), कहि कबीर **रामै** रमि छटहु(प191), बिरह भुवंगम पैठिके, किया **करेजै** घाउ (सा2/2), जाय पूछो उस **घावलै** (सा 14/28), कबीर हरि सौं हेत करि, कूड़े चित्त न लाई(सा15/39), सौ दोस्त **कबीरै** कीन (सा29/3)।

कर्म, संप्रदान और अधिकरण के लिए परसर्गों का भाव व्यक्त करने वाले ये संयुक्त रूप ब्रजभाषा के विशिष्ट परिचायक चिह्न हैं।

सर्वनाम : **मैं**(प11), **मौ** कौं(प15), **तैरौ**(प20), **तेऊ** (प20), **हों**(प27), **मों**(प40), **हौं**(प44), **हौं**(प46), **ता**(प48), **का** कौ(प49), **मो** कौं(प54) **का** सौं(प66), **मो**(प67), **हौं**(प109), **मेरौ**(प121), **जा** कौ(प122), **बा** को(प146), **कौंन**(प181), **जा** (सा10/3), **हौं** सा(11/6), **हौं**(सा11/12) **हौं**(सा14/37), **ता**(सा15/34), **हौं**(सा16/35)।

संज्ञा के औकारांत रूप :-- **बसेरौ**(प55),**अचंयौ**(प110),**जुलाहो**(प200), **चाँदिनौ**(सा1/3), **कांदौ**(सा2/23), **अंदेसौ**(सा2/19), **संदेशौ**(सा2/19), **अचंमों**(सा18/2)।

क्रिया रूप :—(मुख्यत औकारांत; -ह भविष्य, हौ सहायक क्रिया) **खायौ** (प2), **वदौं**(प14), **आवौ**(प15), **दियौ**(प16), **रह्यौ**(प21), **डारयौं** (प23), **मारयौ**(प23), **चढ़्यौ**(प25), **लियौ**(प25), **कोप्यौ**(प26), **प्रगट्यो**(प26), **मारयौ**(प26), **करिहौ**(प36), **भयौ**(प36), **पायौ**(प36),

भावं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डस्यौ(प36), पसर्‌यौ(प38), बांध्यौ(प41), घालौ(प44), ठाढ़ौ(प45), भयौ(प46), कहौ(प53), छांड़ौ(प58), कियौ(प59), बोयौ(प60), लै गयौ (प65), जीतौ(प71), हारौ(प71), बिनसैगौ(प79), गँवायौ(80), गयौ (प83), कह्‌यौ(प83), खोयौ(प83), कियौ(प83), सुमिर्‌यौ(प83), भयौ (प83), आयौ(प83), पहर्‌यौ(प86), जइयौ(प88), आयौ(प101), गयौ (प109), मार्‌यौ(प122), पायौ(प148), पकर्‌यौ(प152), गयौ(प156), भयौ(प158), बिगर्‌यौ(प166), बिगरौ(प166), धरिहौं(प181), जानौं (प195), हौं(प200), सुमिरौ(र/2), मारिहैं(र/12), बंधायौ(र/14), दियौ(र/17), कहौ(चौं०र/4), भाजौ(चौं०र/32), छांडौ(सा1/11), बुडिहौं (सा1/11), गहौं (सा1/11), डसिहै (सा/111), कहौ(सा1/16), जारौं(सा 1/20), करौं (सा1/20), मिलिहै (सा1/28), देखौं(सा9/22), चितवत हौं (सा11/6), पूछौं (सा14/37), जारौंगी(सा16/35), माँगिहै(सा21/5), समझायौ(सा212/8), बोयौ(सा22/7), डारौ(सा22/7), जानौ(सा23/7), परिगौ(सा33/6)।

कृदंत :— राखनहारौ(प26), नाचिबौ(प50), देबे(प1/1), सकेलि के(सा 15/4), घालि(सा15/76), रोवनहारे(सा16/23), मरिबौ(सा19/13), पढ़िबौ(सा33/2)।

अव्यय :— ताई(प11), तऊ(प20), जिनि(प166), मति कहौ(सा2/16), बिन(सा9/37), उत(सा10/3). इत(सा10/3), जौ(सा13/2), तौ(सा 13/2), जिनि जारै मोहि(सा16/35), मति दुख पावै(सा19/11), तम मति बैठे जाई(सा25/9)।

कबीर की भाषा का आधाररूप स्थिर करने के लिए उपर्युक्त साक्ष्य अपने में इतना पर्याप्त है कि समूची स्थिति पर अलग से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। पर समाप्त करने के पूर्व कबीर की उस साखी पर विचार कर लेना भी आवश्यक है, जिस में कवि ने अपनी भाषा के संबंध में अपना मंतव्य व्यक्त किया है। वह बहुचर्चित साखी इस प्रकार है :–

बोली हमरी पूरबी, ताहि न चीन्हें कोइ ।
हमरी बोली सो लखै, जो पूरब का होइ ।। (सा18/11)

इस साखी के आधार पर अनेक विद्वान समीक्षकों ने कबीर की भाषा को भोजपुरी माना है। मैं इस साखी की प्रथम पंक्ति के इस अंश की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा-"ताहि न चीन्हें कोइ" । यदि कबीर अपनी भाषा को पूर्वी घोषित करते हैं तो लोगों द्वारा उसे न पहचानने की बात कहीं नहीं उठती। "चीन्हें" के स्थान पर यदि 'समझने' की बात होती तब तो परंपरागत अर्थसंगति बैठ सकती थी कि हमारी भाषा पूर्वी है और लोग उसे समझ नहीं पाते । दूसरी पंक्ति में भी समझने का भाव न होकर 'लखने" का भाव है। मेरी दृष्टि में इस साखी का सही अर्थ यों होगा--"हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली पूर्वी (रंग लिए) है, पर उसे कोई पहचान नहीं पाता, (क्योंकि वह मूलतः और स्पष्टतः ब्रजभाषा है) हमारी अपनी बोली (के तत्त्व) वही परिलक्षित कर सकता है जो पूरब का हो। इस के अतिरिक्त यहाँ बोली से कबीर का तात्पर्य मातृभाषा से भी हो सकता है, जिसके कुछ प्रयोग (उन के अनुसार) उनकी काव्यभाषा में मिश्रित हो गए हैं, और इस मिश्रण को कोई पूरब का व्यक्ति ही परिलक्षित कर सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सामान्यतः कवियों की तुलना में कबीर की भाषा में मिश्रण का तत्त्व अधिक है। पर यह तथ्य भी उतना ही निर्भ्रांत है कि उनकी भाषा का आधाररूप ब्रज, या कहिए मध्य देश की तत्कालीन परिनिष्ठित काव्य भाषा है। खड़ी बोली का भी काफ़ी पुष्ट प्रयोग कवि ने किया है, पर वह भाषा का मुख्य रूप नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक मिश्रण का संबंध है कबीर की भाषा में पश्चिम की राजस्थानी और पंजाबी के कुछ प्रयोग मिलते हैं और पूरब की अवधी और भोजपुरी के। भोजपुरी का मिश्रण अनुपात की दृष्टि से राजस्थानी और पंजाबी की तुलना में कुछ अधिक होगा। पर इस सारे मिश्रण के बावजूद कबीर की भाषा का ब्रज आधाररूप स्वतः अक्षुण्ण और स्पष्ट बना रहता है।

कबीर की शब्दावली का अध्ययन अपने आप में बड़ा रोचक विषय हो सकता है। यहाँ इतना संकेत पर्याप्त होगा कि कबीर की भाषा में ठेठ शब्दों का प्रयोग उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना संस्कृत (और किसी सीमा तक फ़ारसी) के तत्सम शब्दों का विकृत प्रयोग है। "साकत" (शक्ति), "तत्त" (तत्त्व), "किरिम" (कृमि), "सुन्नि" (शून्य), "मिरिग" (मृग), "क्रिस्न" (कृष्ण), "सुंम्रित (स्मृति), "निसप्रेही" (निस्पृह) जैसे विकृत किए गए शब्द कबीर की शिक्षा के अभाव को उतना व्यक्त नहीं करते जितना संस्कृत भाषा के प्रति उनके विद्रोह और अवमानना के भाव को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार कबीर जब कुरान के लिए "कतेब" शब्द का व्यवहार करते हैं तो इससे उनके मन का तिरस्कार भाव ही व्यंजित होता है। संस्कृत के विरोध में यह अपभ्रष्ट शली संतों के बीच में एक सीमा तक प्रायः अंतर्प्रांतीय स्तर पर प्रतिष्ठित देखी जा सकती है, उनकी जन भाषा के रूप को अधिक खरापन और प्रामाणिकता देने के लिए। इस दृष्टि से कबीर की शब्दावली ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि किसी एक भाषा से संबद्ध नहीं जान पड़ती। भाषा के जनसंस्करण रूप का निर्वाह कवि ने उच्चारण के प्रसंग में भी बड़ी ईमानदारी के साथ किया है। उच्चारण में बढ़ती हुई अनुनासिकता का तत्त्व उन्होंने अपनी भाषा में बराबर प्रदर्शित किया है—"रांम, 'मुकांमां', "वाम्हन," "रहीमां", "रमजांना", "बांना", "नाम", जैसे शब्दों में अनुस्वार का प्रयोग जनसाधारण के उच्चारण के अनुरूप ही है, यद्यपि लिखने में यह अनुनासिकता का तत्त्व आज भी नहीं दिखाया जाता।

काव्य भाषा की सर्जनात्मकता की दृष्टि से कबीर साहित्य में प्रयुक्त नामवाची शब्दावली का अध्ययन एक स्वतंत्र निबंध की अपेक्षा रखता है।

:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पत्र: एक अध्ययन

का० शं० केलकर

पेशवाओं के शासन काल में मराठों की सत्ता का विकास उत्तरी भारत में हुआ। 18वीं शती के अंतिम भाग में पेशवाओं की केंद्रीय सत्ता दुर्बल हुई और मराठी सत्ता के तीन भिन्न केंद्रों का उत्तरी भारत में निर्माण हुआ। ग्वालियर के पास शिंदे, मालवा में होलकर और नागपुर के आसपास भोसला वंश के लोगों ने अपने अपने स्वतंत्र सत्ता केंद्र प्रस्थापित किए।

नागपुर के भोसला वंश के लोगों ने नर्मदा और गोदावरी के मध्य से लेकर पूर्व में बंगाल के सागर तक अपनी सत्ता फैलाई। अपनी सत्ता और शासन कायम करने के प्रयत्न में उनका संबंध स्थानीय छोटे छोटे राजा, सरदार, जागीरदार तथा अन्य जमींदारों से आ गया।

राजनैतिक संबंध स्थापित और कायम करते समय उनके सामने भाषा की समस्या प्रधान समस्या बन कर आई। मराठों के सरदार, सूबेदार तथा अन्य अधिकारियों ने उन प्रांतों की प्रचलित भाषाओं का आश्रय लिया। उन्होंने उन्हीं भाषाओं का प्रयोग अपने राजनैतिक और आर्थिक व्यवहार के लिए किया। इस प्रयत्न तथा प्रयोग में उनकी अपनी भाषा मराठी[1] का प्रभाव जाने अनजाने अन्य भाषाओं पर पड़ा। नागपुर के भोसले राजाओं ने उड़ीसा पर राज्य किया है अत: उड़िया भाषा में तेलुगु और मराठी शब्द बहुतायत में पाए जाते हैं।[2] 18वीं और 19वीं शती में हिंदी भाषी प्रांतों में मराठी सत्ता फैल गई अत: उस समय प्रचलित हिंदी भाषा पर मराठी का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। यह बात मराठों के सरदार, सूबेदार आदि के द्वारा लिखे गए अनेक पत्रों से स्पष्ट होती है। प्राचीन 'हिंदी-पत्र संग्रह'[3] के दो पत्रों का अध्ययन उसकी एक झलक प्रस्तुत कर सकता है।

---

[1] यह अरबी-फारसी ई० भाषा के शब्दों से युक्त प्रचलित मराठी भाषा थी।

[2] हिंदी : भाषा और लिपि, पृ० 39।

[3] संपादक—धीरेंद्र वर्मा : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय; इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रतनपुर (प्रांत छत्तीसगढ़) के मराठा सूबेदार केसो गोविंद के द्वारा लिखे गए दो पत्र हैं। पहला पत्र[1] लाल जगन्नाथ सिंह को लिखा है और दूसरा पत्र[2] अंग्रेज कप्तान ककरेल साहेब को।

पहला पत्र :—

राजश्री जगन्नाथ सींग लाल तर्फ बलभद्रसाय पास श्री केसो गोविंद सुभेदार प्रांत छतिसगढ़ सुर सन् 1212 असाओं ईहा सरकार से हर वाति (बाति) याद व ईनो को कर्नेल साहेब ईन के नजीक सूरगुजा के जवावसाल ठहरावने षातर रवानगि किए नो ईनोने व कर्नेल साहेब मील के **तह** ठहराऐ। जो तुमने बलभद्रसाय के तर्फ के सुरगुजा के कामकाज करने और सरकार से रुजू रहने औसर (सरकार) का अैवज संन् बारा (बारा) सै दस के साल के वाकि (बाकी) व सन **वारा** (बारा) सौ **ग्यारा** प्रांत के वाकि (बाकि) व मयै (बमये) चूकौति सूधा जो है सो प्रविष्ठक ने ऐसा ठहराए सो मालूम हुवा। ईस पर ईहा से लाला दीन दयाल ईन को भेजे है जो सरकार का अैवज **दुसाला** लाला मजकूर के हाथ फर आकर भेज **देने** और प्रांत मजकूर का कामकाज तुम वो लाला मील के येक चीत से **करते जाने**। सरकार से **येकनिष्ठिपना** में रहने। ईस में हिला हरकत होगा तो ठिक नहि। बलभद्रसाय ईहा है। ईनकी पंच की षवर (षबर) **उपर के उपर लेते जाने** और लाला दीन दयाल ईनों की (नेमणूक) (नेभनुक) व मय (बमय) पाहारा येक **सालिना** रुपए पाँच सौ के कर दीए हैं सो **नेभनुक** वमोजिव (बमोजिब) अदा **करने**। जत ने चाल सरकार से येकनिष्ठपना के करौगे उतनै विश्वास **ज्यास्त** होगा (19 दिसंबर 1802 इसवी)।

इस पत्र में (1) तह, (2) नेभनुक (3) ज्यास्त, ये तीन शब्द मराठी के हैं जिनका अर्थ इस प्रकार है :—

(क) तह[3]: अर्थ :—दोन युद्धमान पक्षातील सलोखा समेट, सख्य, एकेय, हिंदी में अर्थ संधि, मेल सुलह।

(ख) नेभनुक[4] (नेभणूक) अर्थ :—लावणें, ठरविणें, मिश्रित करणें, नेमणें, इस सकर्मक क्रिया से बनी भाववाचक संज्ञा की (नेभणूक) हिंदी में अर्थ-नियुक्ति।

(ग) जास्त[5] : (विशेषण) अर्थ :—अधिक, पुष्कळ, हिंदी में अर्थ ज्यादा। इन शब्दों के अलावा मराठी प्रभाव के कारण परिवर्तित शब्द ये हैं : **बारा, ग्यारा, दुसाला, येकनिष्ठपना, सालिना**।

---

[1] पत्र क्र० 25, पृ० 53।
[2] पत्र क्र० 32(ग), पृ० 63।
[3] महाराष्ट्र शब्दकोश विभाग 4, पृ० 1495।
[4] महाराष्ट्र शब्दकोश विभाग 4, पृ० 1879।
[5] महाराष्ट्र शब्दकोश विभाग 3, पृ० 1301।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) ग्यारा और बारा ये संख्या विशेषण आकारांत हैं। इनमें हिंदी के ग्या॰ बारह आदि शब्दों के अंत में होने वाले संघर्षी व्यंजन ह के स्थान में अ आता है। यह मराठी की विशेषता है जो ग्यारह से अठारह तक अंकों में पाई जाती है।[1]

(ङ) **दुसाला** : यह यौगिक शब्द है (हिं० दो+फा० साल) अर्थ दो साल दो वर्ष का पुराना। इस शब्द में होने वाला प्रथम शब्द **दो** (ओकारांत) मराठी में दु (उकारांत) लिखने की प्रवृत्ति है उदा० दोपहर=दुपार दोहरी=दुहेरी; दो सूती=दुसुती इ०।[2]

(च) येकनिष्ठपना (एकनिष्ठ: येकनिष्ठ) इस विशेषण वाचक शब्द यह मराठी परसर्ग जोड़ा गया है। "पण-पणा भाववाचक नाम विण्यासाठी नामास व विशेषणास 'पणा' हा प्रत्यय लावतात।"[3] लहान-लहानपणा, मोठेपणा,[4] चांगलेपणा।

(छ) **सालिना** :—यह फ़ारसी शब्द है सालाना, जो उसी रूप में हिंदी में प्रयुक्त होता है। किंतु मराठी में प्रयुक्त करते समय मध्य (आकारांत) (इकारांत) लि बन जाता है। जैसे **सालिना**। यह शब्द इसी रूप अनेक मराठी ऐतिहासिक पत्रों में पाया जाता है।

(ज) इन शब्दों के अलावा एक विशेष मराठी प्रयोग है 'उपर के उपर' क्रियाविशेषण के अर्थ में प्रयुक्त है। मराठी में उसका अर्थ 'वरचे' जिसका हिंदी में अर्थ होगा 'बार बार'[5], 'बीच बीच में' इन संज्ञा, विशेषण क्रियाविशेषण तथा उनके परिवर्तन के सिवा एक महत्त्वपूर्ण मराठी भाषा शैली का प्रभाव इस पत्र में स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

हिंदी में परोक्ष-विधिकाल की रचना में क्रिया का आकारांत रूप देखा जाता है जैसे—तू पाना, तुम पाना ई०।[6] किंतु मराठी में ये क्रियाएं एकारांत प्रयुक्त होती हैं जैसे तु करणे, तुम्हीं देत जाणे इ०।

(झ) इस पत्र में अनेक क्रियाओं की रचना में यह मराठी प्रभाव लक्षित होता है उदा०—सरकार से रुजू रहने, भेज देने, करते जाने, येकनिष्ठपना रहने, लेते जाने और अदा करने।

---

1 शास्त्रीय मराठी व्याकरण, पृ० 145।

2 शास्त्रीय मराठी व्याकरण, पृ० 145।

3 शास्त्रीय मराठी व्याकरण, पृ० 155।

4 महाराष्ट्र शब्दकोश वि. 5, पृ० 1923।

5 मराठी से हिंदी शब्द संग्रह, पृ० 427।

6 हिंदी व्याकरण, पृ० 298।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा पत्र :—

"मुसफक मेहरवान दोस्तान कपीतान ककरेल साहेब अजतर्फ (अर्ज तर्फ) केसोव गोविंद सुभेदार राम राम आंकी। आपका षएरआफीअत भला चाही। ईहाँ षएर है। दीगर मजकूर आपका षत आया। मजकूर मालूम भया। आप लिष थे की मेजर साहेब को अरजी डांक **बरोबर** भेजे है जसो जवाव आवैंगा वो डाशा (?) करेंगे और इधर से षत मोहर के जलद भेजना। सो षत लीषे है। और संकर साहि वावू (वावू) वी (वी) आपको पत्र **लीहेंगें** सो दरिआफत करके जगनाथ सींघ लाल के वीदा जद **कर** देने। अव (अब) ना **करने**। जगनाथसींघ वाकवकार (वाकबकार) है। उनके वाकवकारी री वावू (बाबू) मजकूर सूरगुजा के वदोवस्त (बंदोबस्त) करेंगे और जो लीषने के सो आगे लीषे**च** है।"

इस पत्र में प्रधान रूप से दो मराठी शब्द हैं—**लीहेंगे, च**।

(ञ) इसमें प्रथम शब्द '**लीहेंगे**' मराठी क्रिया **लिहिणे** हिंदी अर्थ लिखना का भविष्यत् काल का रूप है।

(ट) **च** यह मराठी में निश्चयार्थक अव्यय है। उसका अर्थ हिंदी के **ही** के समान है। यह शब्द (अव्यय) उसी प्रकार दक्खिनी-हिंदी में ही मिलता है।[1]

(ठ) इन दो मराठी शब्दों के सिवा **बरोबर** और **बी** शब्द हैं। पहला शब्द **बरोबर** उसी रूप में मराठी में प्रयुक्त होता है। यह शब्द हिंदी में प्रयुक्त होने वाले फारसी क्रिया-विशेषण **बराबर** के अर्थ में ही यहाँ प्रयुक्त है।

(ड) **बी** :—यह शब्द हिंदी निश्चयवाचक अव्यय **भी** का रूपांतर है। जो मराठी की बोली में प्रयुक्त किया जाता है। दक्खिनी हिंदी में भी यह शब्द उसी रूप और अर्थ में मिलता है।[2]

(ढ) इन शब्दों के अलावा इस पत्र में भी परोक्ष विधिकाल में क्रियाओं के एकारांत रूप मिलते हैं। उदा०, बीदा कर देने, ना करने।

यदि इन पत्रों के समान अनेक पत्र प्राप्त हों और उनका अध्ययन भाषा-विज्ञान की दृष्टि से किया जाए तो राष्ट्रभाषा के अध्ययन में वह कुछ महत्त्वपूर्ण लक्ष्य प्रस्थापित करने में सहायता प्रदान करेगा।

"भाषा के वनने बिगड़ने में विशेष परिस्थितियाँ रहती हैं और वह राजनीतिक केंद्र से, साहित्यिक केंद्र से, अथवा किसी प्रकार के केंद्र से—फैलना आरंभ करती है।"[3] इस कथन की पुष्टि भी इस अल्प अध्ययन से होगी।

[1] दक्खिनी हिंदी, पृ० 53।
[2] दक्खिनी हिंदी का गद्य और पद्य, पृ० 399, 'खुदावूं बी पछानना'।
[3] सामान्य भाषा विज्ञान, पृ० 113।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक असमिया कहानी

—नवा

सभी भारतीय भाषाओं की भाँति असमिया साहित्य में भी कहानी एक महत्त्व मगर आधुनिक साहित्य-विधा मानी जाती है। इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन काल कथा के नाम पर यहाँ अनेक प्रकार की चीज़ें प्रचलित थीं, मगर आधुनिक में जिसे कहानी कह सकते हैं उसका जन्म उन्नीसवीं सदी के अंत और बीस सदी के प्रारंभ में ही हुआ। यंत्र-युग के प्रसार के साथ साथ इसे भी गति मिली।

भारत में अँग्रेज़ी-राज के विस्तार से पराधीनता की श्रृंखला अधिकाधि मज़बूत होती गई। दूसरी ओर आधुनिक भाषाओं में जनचेतना का क्रमवि भी प्रारंभ हुआ, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता। परंतु असमिया साहि के क्षेत्र में इसके विपरीत ही हुआ। क्योंकि बर्मी-युद्ध के फलस्वरूप जब 1826 ई० में असम पर अँग्रेज़ी-प्रभुत्व स्थापित हुआ तो भी असम की जनता बाहरी गोरों का आनुगत्य स्वीकार नहीं किया। अतः यहाँ का शासन-त चलाने के लिए बंगाल से अधिकाधिक कर्मचारियों की नियुक्ति हुई। इसका फ यह हुआ कि प्राचीन साहित्य भंडार से समृद्ध असमिया भाषा को अवहेलि कर बंगला का ही शासन, पठन और सभी क्षेत्रों में प्रयोग होने लगा। आगे च कर आत्म-प्रतिष्ठा के लिए असमिया-भाषा को काफ़ी संघर्ष करना पड़ा औ इसी से आधुनिक साहित्य रचना की दृष्टि से यह काफ़ी पीछे रह गई। असमि कहानी के क्षेत्र में भी यही बात देखने में आती है।

आधुनिक असमिया साहित्य के जिन प्रवर्तकों ने नवीन युग-बोध का द्वा खोला था, उनके साहित्य रथी लक्ष्मीनाथ बरुवा प्रमुख हैं। बेज बरुवा न केव असमिया रोमांटिक भावना की उद्बोधक त्रयी (चंद्रप्रसाद अगरवाला, हेमच गोस्वामी और लक्ष्मीनाथ बुज बरुवा) में सबसे प्रमुख थे बल्कि उनकी प्रति बहुमुखी होकर प्रकट हुई थी। बेज बरुवा उच्चकोटि के नाटककार उपन्यास लेखक थे और मननशील निबंधकार भी थे। परंतु इन सबसे अधि कहानियों की रचना में उन्होंने ही सर्वप्रथम पथ-प्रदर्शन किया। असमि कथाशिल्प के जनक के रूप में बेज बरुवा का नाम श्रद्धा से लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेजबरुवा ने कहानी लेखन के साथ साथ नई शैली और आदर्श की प्रतिष्ठा भी की। कहानी को उन्होंने असमिया समाज जीवन के चित्रण का माध्यम बनाया और अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक बुराइयों की आलोचना भी की। बेज बरुवा पर रवींद्र-प्रभाव अस्वीकार नहीं किया जा सकता परंतु प्रभाव-ग्रहण कर उन्होंने अपनी प्रतिभा से नवीन रूप भी प्रदान किया। उनकी 'बढ़ि आइर साधु' 'कका देवता आरु नाति लटा' 'साधु कलार कुकि' आदि कहानी संग्रहों में असम समाज के जीवन का यथार्थ चित्र मिलता है। वहाँ 'बर बरुवाट भावर बुटबुटनी' में व्यंगात्मक चित्रों में करुणा प्रकट हो उठी है।

बेज बरुवा के बाद असमिया कहानी लेखकों में स्व० शरत्चंद्र गोस्वामी का नाम आता है। गोस्वामी मुख्यत: शिक्षा व्रती थे, इसीलिए उनकी कहानियों में उपदेश प्रवणता के साथ साथ मानव और पशु पक्षियों के प्रति गंभीर स्नेह और सहानुभूति अभिव्यंजित हुई है। 'गल्पांजलि', 'मयना बाजी कर' आदि कहानी संग्रहों में गोस्वामी की यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है।

इस काल के अन्य प्रमुख लेखकों में लक्ष्मीनाथ फुकन ही ऐसे हैं जिनकी लेखनी आजतक कहानियों के सर्जन में रत है। उनके प्रथम कहानी संग्रह 'माला' (1918) और हाल में प्रकाशित कहानी संग्रह में लगभग छियालीस साल का व्यवधान है। फुकन की कहानियों में आधुनिक मध्यवर्ग की वेदना और विवशता का चित्रण बड़ी निपुणता से हुआ है। यों तीसरी दशाब्दी तक असमिया कहानी ने साहित्य क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया और अनेक प्रतिभा-शाली नए लेखकों का आगमन हुआ जिनमें नकुलचंद्र भुत्रा, सूर्यकुमार भुत्रा, मित्रदेव महंत, दंडिनाथ कलिता आदि की कहानियाँ आज भी पाठक वर्ग को आकर्षित करती हैं।

चौथे दशक में असमिया कहानी-क्षेत्र में बड़ा मोड़ आया। सन् 1929 ई० में 'आवाहन' पत्र के प्रकाशन के साथ साथ नवीन विचारों से उद्बुद्ध नए लेखकों का आविर्भाव हुआ। भाव, भाषा तथा शैली आदि में उसी काल में नया युग प्रारंभ हुआ। केवल 'आवाहन' ही नहीं 'जयंती' तथा और भी बहुत से पत्र इसी काल में प्रकाशित हुए और हर एक को केंद्रित कर एक एक लेखक-मंडल भी सामने आया। इन नवीन कहानीकारों पर मोपासाँ, फ्रायड आदि का पूर्ण प्रभाव था जिस कारण विषय-वस्तु के चयन और शैली में भी नाटकीय परिवर्तन दृष्टि-गोचर हुए। इन नवीन लेखकों में नगेंद्र नारायण चौधरी, महीचंद्र बरा, विरिंचि कुमार बरुवा आदि प्रमुख हैं। विरिंचि कुमार बरुवा मुख्यतया सांस्कृतिक गवेषक थे मगर उनके 'पट-परिवर्तन' कहानी संग्रह में मनस्तत्त्व विश्लेषण की गहरी पैठ स्पष्ट है।

इस काल के त्रैलोक गोस्वामी, दीननाथ शर्मा, आदि ने खासकर ग्रामीण और उपेक्षित नगर या बस्ती जीवन का चित्र प्रस्तुत किया। यों दीन नाथ शर्मा में विषय-वस्तु की व्यापकता होने पर भी अपेक्षित गहराई का अभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैयद अब्दुल मलिक का आगमन भी इसी काल में कहानी-क्षेत्र में हुआ। मलिक का क्षेत्र बड़ा विशाल है साथ ही कहानी लिखने की अद्भुत क्षमता भी उनमें है। व्यापक और गहरी जीवन दृष्टि मलिक की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। अनाचार के प्रति तीव्र आक्रोश, राष्ट्रीय जीवन को विनष्ट करने वाले तत्वों से विद्रोह उन्हें प्रगतिशील लेखकों में सबसे पहला स्थान दिला देता है। 'परशमणि', 'एथनी नतुन छोवाली', 'शिल आरु शिखा' आदि कहानी-संग्रहों में मलिक का वैचारिक प्रगतिशील दृष्टिकोण अपूर्व भावना मंडित होकर प्रकट हुआ है।

द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में असमिया कहानी का क्षितिज और व्यापक हो चला। पहले के कहानीकारों के अलावा इस युग में और भी अनेक कहानीकार सामने आए जिनमें वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य और योगेश दास अग्रगण्य हैं। वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य ने अधिक कहानियाँ नहीं लिखीं परंतु उनकी कहानियों का मूल्यांकन संख्या की दृष्टि से नहीं बल्कि गुण-गरिमा की दृष्टि से होना आवश्यक है। मलिक के बाद कहानी-क्षेत्र में भट्टाचार्य का नाम ही आता है। उनका 'कलं भाषिओं बय' कहानी-संग्रह भावनाओं की गंभीरता, अनुभूति की तीव्रता और जनता के दुख दर्द को समेटे हुए है।

योगेश दास की कहानियाँ यथार्थवादी होती है। भाषा की आडंबरहीनता और विषय-वस्तु के प्रांजल चित्रण के लिए योगेश दास प्रसिद्ध हैं।

साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में असमिया कहानी सबसे ज्यादा उभार पर है। यद्यपि इस क्षेत्र में अबतक दिगंतस्पर्शी सर्व व्यापक प्रतिभा का उदय नहीं हो पाया है। प्रेम और कुंठाग्रस्थ मध्यवर्गीय जीवन ही ज्यादातर नवीन लेखकों का उपजीव्य रहा है। नगर जीवन की व्यर्थताएँ कुहरे से मंडित होकर मरीचिकामयी दिखाई पड़ती हैं, फिर भी सौरभ कुमार सलिहा, प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, रोहिणीकांत बरुवा, चंद्रप्रसाद शईकीया, लक्ष्मीनंदन बरा, महिम बरा, होमेन बर गोहाँई आदि ने एक नए क्षितिज का संकेत दिया है। होमेन बर गोहांइ पर फ्रायड का असीम प्रभाव है और उन्होंने मानव चित्त वृत्ति की जटिलता को उभार अवश्य दिया है परंतु सार्थक जनवादी दृष्टिकोण का अभाव उनकी प्रभावशाली शैली को दुर्बल बना देता है।

आधुनिक महिला-कहानी लेखिकाएँ भी आगे आ रही है जिनकी रचनाओं में खास कर नारी जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियाँ, अतृप्ति और वेदना मुखरित होती है। इन लेखिकाओं में भामणि गोस्वामी और अली मुन्निसा पियार ही सर्व श्रेष्ठ हैं।

असमिया-कहानी आज एक संक्रांति काल से गुज़र रही हैं। एक ओर इनमें स्वतंत्रोत्तर काल के जीवन संघर्ष का जलता हुआ चित्र दिखाई पड़ता है दूसरी ओर कुंठाग्रस्थ जीवन की ग्रंथियाँ भी लक्षित हुई हैं। मगर आकाश धीरे धीरे साफ होता जा रहा है, लेखक नवीन जनवादी दृष्टिकोण अपना कर अनुभूति के द्वारा समाज समस्या को रूपायित करने में सचेष्ट दिखाई पड़ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिलीशरण गुप्त : एक श्रद्धांजलि

रामेश्वर गुरु

जिसकी ज़िंदगी राममय और कविता राम रसमय रही है, जिसकी वाणी-राम-नाम की देहरी पर मस्तक टेक स्वरूप लेकर साहित्य मंदिर में प्रविष्ट हुई है और यहाँ तक कि जिसने राज्य सभा की सदस्य अवधि में भी कविता में ही अपने भाषण दिए, अपने उद्गार व्यक्त किए, वह राम भक्ति मय कवि 12 दिसंबर को "राम नाम सत्य है" की सामूहिक सजल ध्वनि के बीच अपना पार्थिव शरीर छोड़ साकेत धाम चला गया। हृदय रोग के आक्रमण के साथ ही उनके मुख से निश्चय ही "हे राम" निकला होगा और भारतेंदु हरिश्चंद्र के अंतिम अस्पष्ट अधूरे दोहे के समान उन्होंने भी कुछ इसी प्रकार कदाचित् कविता में कहना चाहा होगा :

राम नाम गाता रहा कवि जीवन अविराम
. . . . आज तुम्हारे धाम

राज्यसभा में बजट पर बोलते हुए काव्य वाणी के सरल साधक ने कहा था :—

मक्खन लीजे, छाछ छोड़िए, देश भक्ति यह सह लेगी
पारण विना किंतु जनता क्या व्रत करके ही रह लेगी
यह यथार्थ है, यत्न आपके हैं हम लोगों के ही अर्थ
आह कराह न उठने दे जो शल्य वैद्य है वही समर्थ
लोगों को चिंता थी जाने जीवन पर भी कर न लगे
मरकर भी कर, जीकर भी कर, डरकर कोई कहाँ भगे
एक जन्म कर ही ऐसा है जिस पर कुछ कुछ प्यार जगे
और नहीं तो जन-संख्या ही संभले, संयम भाव जगे।

इसी प्रकार 22 दिसंबर 1955 को राज्य पुनर्गठन आयोग की चर्चा पर कविता में मैथिलीशरण गुप्त ने संगठन की बात, एकता की बात, बड़े मार्के के साथ कही थी—"मेरे मन में आया कि बुंदेलखंडी बोली के आधार पर सागर, जबलपुर और ग्वालियर हमें मिल जाए पर आयोग के सदस्यों को न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महोबे के पान के बीड़े लुभा सकते और न पन्ना के हीरे। इस रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया हुई, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मैं कह सकता हूँ :—

अपना सीमायोग बुरा बन गया भला कर
करने बैठा होम, उठा वह हाथ जला कर
सहसा सीमित हुआ हमीं में देश हमारा
कुंचित होगी क्यों न संकुचित मन की धारा
अब तक तो हैं कुशल, राम जाने आगे की
मान रहे सब भली भाँति लंगोटी ही माँगे की
अहा ! पुरानी बात आज फिर नई हुई है।
दिल्ली नहीं परंतु दूर बंबई हुई है
बंधु वैर की नहीं प्रेम की लूट फलेगी
बहुत चल चुकी और नहीं अब फूट चलेगी
बँधे नीर से सड़ें स्वार्थ में सने सने हम
या प्रयाग के मिलन तीर्थ से बड़े बनें हम।

गुप्त जी को कविता का इष्ट था और इस इष्टता के प्रसाद ने उन्हें हर समय संतोष दिया। महात्मा गांधी के निधन पर उनकी दो पंक्तियाँ या नवीन और जवाहरलाल के महाप्रयाण पर रचित चार-चार पंक्तियाँ उनके दुःख स्रोत की अजस्र धारा के वारिकण हैं। उनकी इस काव्य क्षमता की और सफल पद्यीकरण करने की आश्चर्यजनक त्वरा की बात 1916 की है। पं० लल्ली प्रसाद जी पांडेय ने मराठी के कुछ पद्यों का हिंदी अनुवाद चाहा था। मैथिलीशरण गुप्त ने बिना विलंब किए अनुवाद किया और लिख भेजा, "मैंने अनुवाद में स्वच्छंदता से काम लिया है, मैं नहीं कह सकता कि ये पद्य आपके मनोनुकूल होंगे या नहीं, तथापि आप यदि यही जान लें कि मैंने, जैसा मुझसे हो सका, आपकी आज्ञा का पालन किया है, तो मैं इतने ही से संतोष मानूंगा। यदि ये पद्य आपको पसंद आए तो शेष पद्यों के अनुवाद भी लिख भेजूंगा किंतु मैं तो जानता हूँ कि अब आज्ञा देने की आपकी इच्छा न होगी" कुछेक अनुवाद हैं :—

रहता हूँ सर्वत्र ही व्यापक एक समान
पर निज भक्तों के लिए छोटा है भगवान

* * *

गूंगे का गुड़ है भगवान
बाहर भीतर एक समान
किसका ध्यान करूँ सविवेक
जलतरंग से हैं हम एक

* * *

विश्व कारागार है सब जीव बंदी हो रहे
घोर हाहाकार करके मुक्ति के हित रो रहे
वस्तु गुण की बेड़ियों से हैं सभी जकड़े हुए
इधर और सभी उधर आ जा रहे पकड़े हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त जी की पद्य रचना अथवा गति की थी और अलेक्जेंडर पोप के उदाहरण की भाँति ही उनके वचन–आश्वासन सब कविता में निकलते थे। बच्चों के लिए रीडर संकलन पं० कामता प्रसाद गुरु को करना था। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस के लिए रीडर बनाना था। गुरु जी और गुप्त जी में काफी गाढ़ी मैत्री थी। गुरु जी ने आग्रह कर बच्चों के योग्य रचना माँगी "कविता कलाप" के सहयोगी कवि मित्र के लिए असंभव था आग्रह टालना, तत्काल एक सुंदर बड़ी सी रचना "ओले की कहानी" भेज दी—

एक सफेद बड़ा सा ओला, था मानो हीरे का गोला,
हरी घास पर पड़ा हुआ था, वहीं पास मैं खड़ा हुआ था,
मैंने पूछा क्या है भाई, तब उसने यों कथा सुनाई।

इसके बाद ओले की पूरी जीवन कथा इसी सरसता के साथ कही गई है। अपने समय में रीडर की यह कविता विद्यार्थियों को बड़ी प्रिय रही।

* * *

यह तो वैसे विदित है कि मैथिलीशरण विज्ञापन से दूर रहे। सभा भीरुता उन्होंने अपना आवश्यक अंग बनाया। वे जबलपुर 1915–16 में पहिली बार शायद आए थे। पं० कामता प्रसाद गुरु भी सरस्वती-कुटुंब के प्रियजन होकर द्विवेदी जी का स्नेह पा चुके थे। गुप्त जी ने काफ़ी समय गुरुजी के साथ साहित्य चर्चा में और मित्र गोष्ठी में बिताया। कामताप्रसाद गुरु ने गुप्त जी के स्वागत में "कवि स्वागत" नामक कविता की रचना की। गुरुजी का और गुप्त जी का यह मैत्री-कार्य जीवन पर्यंत निभा। बीच में "खड़ी बोली में कविता की भाषा" को लेकर दोनों में मत विभिन्नता की लेखमाला भी निकली, काफी कटुता के साथ, फिर भी दोस्ती में कोई दरार नहीं आई। 12 दिसंबर, 1964 को यह शेष कड़ी समाप्त हुई—गुरुजी 16 नवंबर 1947 को चल दिए थे। इसी गाढ़ी मित्रता का सौभाग्य मुझे भी मिल गया था कि मैं उनकी गोद चढ़कर मदनमहल गया था।

* * *

मैथिलीशरण को काव्य सुलभता जन्म से प्राप्त होने के कारण, वह उनकी चेरी सी बन गई थी। तुकों का प्राचुर्य, छंदों की बहुलता, नए देशज और मीठे शब्दों को अखंड राशि उन्हें सुलभ थी और इन्हीं के आधार पर उनका विशाल काव्य प्रासाद निर्मित हुआ। उनकी कई एक उक्तियाँ जन साधारण की वस्तुएं बन गईं। भारत भारती के रचयिता के रूप में वे जन कवि और जागरण के कवि बने और साधना, त्याग, तपस्या, अध्ययन, चिंतन और प्रतिभा-संपन्नता का आश्रय पाकर उन्हें राष्ट्र कवि की निधि मिली। इस निधि को किसी हद वे संजोकर रख सकने में समर्थ भी हुए। वैसे तो आलोचना की पैनी धार से कदाचित ही कोई सरस्वती साधक बच सका हो और गुप्त जी भी इसके अपवाद नहीं रह सके। ठाकुर श्रीनाथसिंह ने उनके काव्य के अनेक स्थलों की विषाक्त कटु आलोचना की थी। पर इस बात से कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असहमत न होंगे कि उनकी कविता अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक जनप्रिय बनी और लोगों के कंठ तक पहुँची। साकेत की, यशोधरा की, भारत-भारती की कई एक पंक्तियाँ लोगों को कंठ हुईं—आज भी कंठस्थ हैं।

* * *

जबलपुर नगरी में आखिरी बार 1961 में नाट्य समारोह में आए थे। जबलपुर कारपोरेशन में उनका सार्वजनिक अभिनंदन हुआ था, सार्वजनिक सभा इसी दिन महाप्राण निराला के महाप्रयाण के कारण शोक सभा बन गई थी। समाज द्वारा उनका अभिनंदन किया गया। उनके अभिनंदन प्रत्युत्तर संक्षिप्त, सामयिक और उपदेशमय इस अर्थ के थे कि राष्ट्र शक्ति की सर्वोपरिता की अनुभूति प्रत्यक प्राण में होना अनिवार्यरूपेण आवश्यक है। हमारे सभी कार्य, सभी स्वर और सभी संकेत इसी दिशा में होने चाहिए।

* * *

मैथिलीशरण गुप्त पत्र व्यवहार में बड़ी नियमितता बाँधें रहते थे—"श्रीराम" से शुरू होता था पत्र और मुख्तसर में होता था। सारी बातों के उत्तर, मैंने जब भी साहित्यिक कार्यों से अथवा व्यक्तिगत संबंधों से उन्हें पत्र लिखे, आत्मीयता से ओत प्रोत तत्काल आए—जबलपुर के अच्छे लेखक नाथूरामजी शुक्ल ने (अब स्वर्गीय) एडवोकट होने के पूर्व हिंदी में शोधकार्य आरंभ किया था और विषय लिया था "गुप्त जी का अध्ययन"। यह कोई 30 वर्ष पहिले की बात है। उनका इरादा था गुप्त जी के यहाँ चिरगाँव में रह कर अनेक सप्ताह उनका नजदीक से अध्ययन किया जाए और समझा जाए और इसके बाद शोध निबंध तैयार हो। यह विशेष अध्ययन की विचित्र विधि (उन दिनों की स्थिति और दृष्टिकोण को देखते हुए) पं० कामताप्रसाद गुरु को स्वर्गीय नाथुराम शुक्ल ने बतलाई और उनसे पत्र लिखने को कहा। गुरुजी ने पत्र लिखा और गुप्तजी का मनोरंजक उत्तर भी तत्काल आया। पं० कामताप्रसाद गुरु ने इस विषय पर एक छोटा सा लेख भी मनोरंजन की पृष्ठभूमि लेकर लिखा था। गुप्त जी ने मिला कर कई सौ पत्र लिखे होंगे। उनका संकलन, अध्ययन, विश्लेषण, प्रसंग-निर्धारण और विवेचन अपने आप में सच्चा समर्थ शोधकार्य है। स्वस्थ देशों में महाकवियों, मनीषियों और विचारकों के पत्र संग्रह कई भागों में प्रकाशित हुए हैं और होते हैं। कामताप्रसाद गुरु का पत्र व्यवहार साहित्यिक प्रसंग में कई बार हुआ। स्वरचित पुस्तकों की स्नेह भेंट, प्राप्ति, पत्रोत्तर द्वारा स्वीकार तो की ही जाती थी, साहित्यिक संदेहों और भ्रमों के निराकरण के लिए भी पत्र व्यवहार होता था। गुप्त जी के नाटक तिलोत्तमा और चंद्रहास बहुत पहले पाठ्य पुस्तक में थे। गुरुजी शिक्षक थे और व्याकरण संमत शुद्ध हिंदी के कट्टर पक्षपाती होने के कारण उन्हें कई स्थल खटक जाते थे। पत्र व्यवहार का तरीका अपनाया जाता था और तत्काल पत्रोत्तर आता था।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिलीशरण गुप्त अपने जीवन काल में पर्याप्त संमानित हुए हैं। वैसे संमान देने की और लेने की न तो कोई सीमा है और न इंतिहा, जितना भी संमान होता, थोड़ा कहा जाता। डाक्टरेट, पद्भूषण, राज्य सभा-सदस्य आदि उन्हें विश्व विद्यालयीन और शासकीय स्तर पर मिले। आत्मीय जनों का अजस्र स्नेह उन्हें दद्दा के रूप में मिला और जन साधारण का गौरव संमान उन्हें राष्ट्र-कवि की प्रतिष्ठा के रूप में मिला। उनके निधन में राष्ट्रीय क्षति का अहसास हुआ। जगह-जगह शोक सभाओं में उनके प्रति सजल श्रद्धांजलि दी गई। शिक्षण संस्थाएँ, साहित्यिक प्रतिष्ठान बंद हुए, प्रस्ताव किए गए कि उनकी स्मृति में चिरगाँव स्टेशन का नाम मैथिलीशरण रखा जाए। उनकी स्मृति में पुरस्कार की स्थापना हो। दद्दा चले गए 12 दिसंबर को और उनकी रह गई है स्मृति और अटूट साहित्य राशि शेष। कार्लाईल की वीर पूजा की परिधि के भीतर कवि के रूप में वीर पूजा का बड़ा केंद्र स्थान मैथिलीशरण, जागरण, चेतना और उद्बोधन के महान चारण और गायक के रूप में निरंतर प्रतिष्ठित रहें यह अभिलाषा, कामना और इच्छा है। वे वट वृक्ष के समान सच्ची छाया, शांति और निरापदता के साहित्य-प्रतीक थे। सिर्फ एक ही बात ज़रा धीमे से कही जा सकती है वट वृक्ष के सान्निद्ध में अन्य वृक्ष पूर्ण विकसित होने के अबाध साधन नहीं जुटा पाते, महान् प्रतिभा के और साहित्यिक सुंदरता के धनी सियारामशरण गुप्त और मुंशी अजमेरी उनके समकक्ष प्रसिद्धि नहीं पा सकें, वैसे पाने के साधिकार पात्र बड़ी सरलता से अपनी स्वयं की प्रतिष्ठा के आधार पर हो सकते थे।

* * *

काव्य शोकांजलि मैथिलीशरण गुप्त के चरणों में समर्थ कवि-मित्र संभव है, निकट भविष्य में दे सकें, जैसी एक भारतीय आत्मा की कलम ने सिसक सिसक कर माधवराव सप्रे और लोकमान्य तिलक पर लिखी थी। आज तो यह अंकिचन श्रद्धांजलि है कि :—

श्रद्धांजलि

"तुमने खूब राम को साधा और राममय कविता साधी
तुमने जीवन में जनता में जागृति की जाह्नवी बहा दी
तुम साकेत सौंपकर हमको, सहसा ही साकेत सिधारे
राममयी साधना पूर्णकर निर्मल शीतल मुँह अँधियारे
तुम वाणी मंदिर में पैठे समता का करताल बजाते
तुलसी मीरा सूरदास की गैल चले तुम प्रभु को गाते।
जय देव मंदिर देहली,
समभाव से जिस पर चढ़ी
नृप हेम-मुद्रा और रंक बराटिका
पार्थिव देह गई, नश्वर थी, कीर्ति तुम्हारी अनामरण है
हिंदी की भावी उन्नति में बड़ी शक्ति मैथिलीशरण है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष

भाषा और भाषिकी

लखक—डा० देवीशंकर द्विवेदी; प्रकाशक—लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा: मूल्य 5 रुपए।

इधर कुछ वर्षों से भारत में भाषाशास्त्र का एक स्वतंत्र विषय के रूप में अध्ययन-अध्यापन तीव्र गति से बढ़ रहा है और अब लोगों को यह विषय रुचिकर भी लगने लगा है। इस रुचि को जाग्रत करने और आधुनिक भाषाशास्त्र का प्रचार करने का श्रेय निश्चित रूप से 'लिंग्विस्टिक सोसायटी ऑफ इंडिया,' भारतीय विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (और पूर्ववर्ती वर्षों में 'रॉक फ़ेलर फॉउंडेशन' द्वारा मिली सहायता) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित ग्रीष्मकालीन/शरत्कालीन भाषाशास्त्र शिविरों को है। इस विषय पर हिंदी में मिलने वाली पाठ्य-पुस्तकों में आधुनिक भाषाशास्त्र का क्रमशः अधिकाधिक समावेश होता जा रहा है, जिसे ऐतिहासिक कालक्रम में प्रकाशित डा० बाबूराम सक्सेना, डा० भोलानाथ तिवारी और डा० उदयनारायण तिवारी की पुस्तकों में देखा जा सकता है। डा० देवीशंकर द्विवेदी की 'भाषा और भाषिकी' नामक पुस्तक इसकी नवीनतम कड़ी है। विशुद्ध भाषाशास्त्र पर लिखी गई संभवतः यह पहली पुस्तक है।

इस पुस्तक की सामान्य विशेषताओं में विचारों की स्पष्टता, विषयानुरूप अभिव्यक्ति और भाषा की सरलता एवं सुबोधता मुख्य है। यह भी प्रशंसनीय है कि लेखक जहाँ दूसरों के तर्कों को काटकर अपने विचारों को थोपने का अनुचित प्रयत्न नहीं करता, वहाँ अपना मंतव्य प्रकट करने और नवीन व्याख्या प्रस्तुत करने में भी नहीं हिचकिचाता। पारिभाषिक शब्दों के संबंध में कुछ अधिक कहना अपेक्षित है, जो आगे कहा जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले पाँच अध्यायों में 'भाषा' के स्वरूप का विवेचन हुआ है। यों तो सामान्य योग में 'भाषा' शब्द का अर्थ अत्यंत व्यापक है, किंतु भाषाशास्त्र में इसका संकुचित अर्थ ही लिया जाता है। 'भाषा' (The language) और कोई 'एक भाषा' (a language) में पर्याप्त अंतर है और यहाँ उसका अच्छा विवेचन हुआ है। भाषा के वास्तविक स्वरूप को समझने में बाधक लिखित भाषा और उच्च-रित भाषा जैसे प्रचलित प्रयोगों का तर्कपूर्ण खंडन भी श्रेयस्कर है। भाषा की जो परिभाषा दी गई है वह 'ब्लाक एंड ट्रैगर' की अँग्रेज़ी परिभाषा का अनुवाद प्रतीत होती है। द्विवेदी जी ने यदि उक्त लेखक के प्रति कृतज्ञता प्रकट की होती या कम से कम उसका पाद टिप्पणी में उल्लेख भर कर दिया होता तो अधिक अच्छा होता। यों, भाषा की अब तक जितनी परिभाषाएँ की गई हैं, उनमें यह परिभाषा सबसे अधिक संतोषजनक है।

'भाषा का रूप : भाषा की उपव्यवस्थाएँ' नामक अध्याय मुख्यत: हाकेट कृत वर्गीकरण पर आधारित है। अब तक हिंदी की पुस्तकों में ध्वनियों का विवेचन तो किया जाता था किंतु ध्वनिगुणों का उल्लेख मात्र करके छोड़ दिया जाता था। द्विवेदी जी ने पहली बार किसी पाठ्यपुस्तक में ध्वनिगुणों-मात्रा (duration), बल (stress) और सुर (pitch)—पर विस्तार से लिखा है। यही नहीं, उन्होंने तान (tone) और अनुतान (intonation) के तात्त्विक भेद को भी स्पष्टता से समझाया है। अब तक हिंदी व्याकरणों में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि-आदि वाग्भागों (parts of speech) का अर्थ के आधार पर वर्गीकरण किया जाता रहा है। द्विवेदी जी ने इनका निर्धारण संरचनात्मक (structural) स्तर पर भी करने का वैज्ञानिक प्रयत्न किया है। प्राय: लिंग और वचन का विवेचन करते समय क्रमश: प्राकृतिक लिंग (sex) और वस्तुजगत की संख्याओं में भ्रम उत्पन्न हो जाने की संभावना रहती है। इन दोनों का विवेचन शुरू करने से पूर्व ही द्विवेदी जी सचेत कर देते हैं—'लिंग से तात्पर्य यहाँ नर-मादा आदि भेदों से नहीं है, बल्कि एक भाषायी तत्त्व से हैं' (पृ० 68), "वचन भाषा की वस्तु है, वस्तु-जगत की नहीं" (पृ० 71)। संबोधन को कारक कोटि में रखने से मैं असहमति प्रकट करता हूँ। यदि इसे किसी व्याकरणात्मक कोटि में रखना ही है तो वह वाक्य स्तर पर एक अलग 'संबोधन कोटि' ही हो सकती है। इसकी पुष्टि 'कारक' की परिभाषा से हो सकती है (खेद है, द्विवेदी जी ने यहाँ 'कारक' की परिभाषा नहीं दी है)। वाक्यविज्ञान का विवेचन परंपरागत पद्धति से हट कर वेल्स, हॉकेट प्रभृति अमरीकी भाषिकों के अनुसार हुआ है जो समीपी संघटकों (ICS) द्वारा निर्मित रचना (construction) को महत्त्व देते हैं। वाक्य-विज्ञान पर चोम्स्की जैसे अमरीकी और शाउम्येन जैसे रूसी भाषिकों ने भी काम किया है। अच्छा होता, यदि इनकी पद्धतियों से भी हिंदी-पाठकों को परिचित करवाया जाता।

विषय-विवेचन में द्विवेदी जी ने सर्वत्र वस्तु-निष्ठ दृष्टिकोण अपनाया है। इसके अच्छे उदाहरण वहाँ देखने को मिलते हैं जहाँ भाषा की उत्पत्ति, भाषा और लिपि का संबंध, भाषा, उपभाषा और बोली की शुद्धता-अशुद्धता का विवेचन हुआ है। भाषा, उपभाषा और बोली का विभाजन अधिक वैज्ञानिक आधार पर किया जाना चाहिए था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठे अध्याय से लेकर नौवें अध्याय तक भाषाशास्त्र (यहाँ उसे भाषिकी कहा गया है) का एक विषय के रूप में छात्रोपयोगी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन अध्यायों में प्रस्तुतीकरण की मौलिकता के अतिरिक्त और कोई नई बात नहीं है।

जहाँ तक पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न है, द्विवेदी जी ने अनेक नए शब्द गढ़े हैं जैसे Ideolect, velar, whisper, Morph, Luncture, Semantics के लिए क्रमशः अनुली, उत्कंठ्य, जपन, मर्ष, विवृति, सीमांतिकी आदि। उन्होंने अंग्रेज़ी के ICS प्रत्यय के लिए—इकी और—इ दो प्रत्यय अपनाए हैं, किंतु अनेक स्थानों पर विज्ञान का भी प्रयोग हुआ है। जैसे—भाषिकी, मर्षिमी और वाक्यविज्ञान। इसी तरह distribution के लिए वितरण और complimentary के लिए पूरक वंटन का प्रयोग हुआ है। अच्छा होता, यदि सर्वत्र एकरूपता होती। syllable के लिए प्रचलित पर्याय 'अक्षर' है। इस पुस्तक में उसके लिए 'वर्ण' शब्द आया है जो वास्तव में लेटर का पर्याय है। संस्कृत व्याकरण में तो वर्ण का वही स्थान है जो आज के भाषाशास्त्र में 'फोनीम' का है। इस प्रकार के प्रयोग से सदा भ्रम की संभावना बनी रहती है। यों तो कहा जा सकता है कि जब तक शिक्षा मंत्रालय के वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली आयोग द्वारा भाषाशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का निर्धारण नहीं हो जाता तब तक पारिभाषिक शब्दावली संबंधी अराजकता बनी रहेगी। यह अराजकता भी अमरीकी देन है।

परिशिष्ट में लेखक के भाषा संबंधी 6 लेख संकलित हैं। ये लेख भी छात्रोपयोगी हैं।

पुस्तक में नैतिकता विषयक दो बातें खटकने वाली हैं।

(1) भाषिकी के क्षेत्र में लेखक को कदम रखना सिखाने वाले गुरुवर की आशीर्वादात्मक 'भूमिका' लेखक के अपने प्राक्कथन के बाद में संकलित है, जो संभवतः अनुचित है।

(2) पूरी पुस्तक अमरीकी भाषिकों के सिद्धांतों से प्रभावित है। यही नहीं, अनेक पृष्ठ ज्यों के त्यों उक्त भाषिकों के कथनों के छायानुवाद हैं। पर कहीं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं की गई है।

कुल मिला कर पुस्तक विषय-विवेचन और विवेचन-पद्धति की दृष्टि से अच्छी और छात्रोपयोगी है। प्रकाशन-संबंधी बातें भी संतोषजनक हैं।

—बिहारीलाल व्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्यवाद

लेखक—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी; प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; पृष्ठ सं० 201; मूल्य : पाँच रुपए ।

रहस्यवाद का नाम यद्यपि भारतीय अथवा विदेशी वाङमय से अधिक प्राचीन नहीं है, किंतु रहस्य की भावना तो सृष्टि के प्रारंभ से ही विद्यमान रही है । अव्यक्त सत्ता को भली-भाँति व्यक्त कर सकने की सामर्थ्य ही रहस्य भावना के उद्गम का मूल स्रोत मानी जाती है ।

रहस्यवाद, हालाँकि साधना और साहित्य के क्षेत्र में मात्र एक शैली विशेष के रूप में ही समझा जाता है, पर ऐसा सोचना या समझना सर्वथा भ्रांतिमूलक है । सच तो यह है कि रहस्यवाद का क्षेत्र अत्यंत अपरिमित है और उसे दर्शन, धर्म, कर्म एवं मानव जीवन के विविध अंगों से संबद्ध करके देखा परखा जाना चाहिए । संभवतः इस विषय की ओर सर्वप्रथम धार्मिक साधना की विभिन्न प्रणालियों पर विचार करने वाले विद्वानों का ध्यान गया । उन्होंने इसके स्वरूप को निर्धारित करते समय प्रचलित धर्मों अथवा संप्रदायों द्वारा विहित उपासना पद्धतियों तक ही इसे सीमित रखना उचित माना । इसके बाद ही धीरे-धीरे इस विषय का मनन-चिंतन प्रारंभ हुआ ।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रयास है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी इस सशक्त कृति में रहस्यवाद का पांडित्यपूर्ण विवेचन जिस अधिकार, सहजता एवं तर्कपूर्ण ढंग से किया है, वह इस विषय के अध्ययन में एक नई दिशा का निर्माण करता है । विद्वान लेखक के अनुसार रहस्यवाद को केवल किसी अनुभूति मात्र के रूप में स्वीकार कर लेना असंगत है । एक अन्य स्थल पर उन्होंने कहा है कि रहस्यवाद ऐसा जीवन-दर्शन है, जिसका मूल आधार किसी व्यक्ति के लिए उसकी विश्वात्मक सत्ता की अनिर्दिष्ट व निर्विशेष एकता व परमात्मा तत्त्व की प्रत्यक्ष एवं अनिर्वचनीय अनुभूति में निहित रहा करता है । इसके अनुसार किए जाने वाले उसके व्यवहार का स्वरूप स्वभावतः विश्वजनीन एवं विकासोन्मुख भी हो जाता है ।

लेखक की इस मान्यता के अनुसार पाँच बातें सामने आती हैं : (1) साध्य, साधना और सिद्धि, (2) अनुभूति की अनिर्वचनीयता, उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम तथा व्यक्तीकरण की भाषा और शैली, (3) रहस्यवादी पुरुष के लक्षण, उसका सामाजिक व्यवहार तथा रहस्यवाद का मूल्यांकन, (4) रहस्यवाद की सार्वभौमिकता, उसके विभिन्न रूपों का तुलनात्मक अध्ययन, तथा (5) उसका भविष्य । विभिन्न अध्यायों में इनके वैज्ञानिक विवेचन से विषय का पूर्ण स्पष्टीकरण होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट में रहस्यवाद-विषयक कुछ चुने हुए उद्धरण तथा सहायक ग्रं
देने से पुस्तक की उपयोगिता में और भी अभिवृद्धि हुई है । नामानुक्रमणिका एवं
विषयानुक्रमणिका दे देने से पुस्तक का वैज्ञानिक आधार अधिक पुष्ट हुआ है ।
एवं साज-सज्जा परिषद के अन्य प्रकाशनों के अनुकूल सुरुचिपूर्ण है । संतोष की
कि इतनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का मूल्य काफ़ी कम रखा गया है ।

अंत में यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
साहित्य के मर्मज्ञ हैं । रहस्यवाद का संत-साहित्य से विशेष संबंध रहा है । इस पु
में उसके विविध पक्षों को उन्होंने जिस विद्वत्तापूर्ण ढंग से स्पष्ट करने का प्र
किया है, वह भाषा की संस्कृतनिष्ठता एवं दुर्बोधता से बोझिल नहीं बनने
है । फलतः वह प्रत्येक वर्ग के पाठकों के लिए सहज एवं बोधगम्य बन पाया है ।
साहित्य के लिए यह पुस्तक सही अर्थों में एक उपलब्धि मानी जानी चाहिए।

—सुरेश

जन–साहित्य : नेहरू–स्मृति–अंक

संपादक : डॉ० परमानंद; प्रकाशक : हिंदी विभाग, पंजाब, पटियाला
पृष्ठ संख्या–440; मूल्य : एक रुपया।

जन साहित्य का नवंबर-दिसंबर, 1964 का प्रस्तुत अंक श्री जवाहर
नेहरू की स्मृति में प्रकाशित किया गया है और नेहरू जी के जीवन, उनके राज
व्यक्तित्व, उनकी विलक्षण प्रतिभा तथा मानवता के हितचिंतक के रूप में
गए उनके प्रयासों के संबंध में काफी सुपाठ्य सामग्री से परिपूर्ण है ।

प्रस्तुत विशेषांक में श्री गिरिजाकुमार माथुर, श्री के० एम० मुंशी, डॉ०
वि० गाड़गिल, श्री श्री प्रकाश, सुश्री कृष्णा हठीसिंह, डॉ० गोविंद दास, श्री
कृष्ण प्रेमी, श्री यू० एन० ढेबर, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री जैनेंद्रकुमार
यशपाल जैन, डॉ० गोपाल शर्मा आदि के लेख विशेष स्पृहणीय हैं और अं
विविधता तथा विशिष्टता के परिचायक है ।

श्री नेहरू के जीवन के विभिन्न दुर्लभ चित्र भी प्रकाशित किए गए हैं, जो
की श्रीवृद्धि करते हैं । निश्चय ही भाषा विभाग, पंजाब इस सुरुचिपूर्ण प्र
के लिए बधाई का पात्र है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहर : पंजाबी साहित्यांक

संपादक : प्रकाश जैन, स्वर्ण; महात्मा गांधी मार्ग, पो० बा० नं० 82, अजमेर; पृष्ठ संख्या–152; मूल्य : एक रुपया।

इस विशेषांक में आधुनिक पंजाबी साहित्य के विविध अंगों पर सामग्री प्रस्तुत की गई है। अठारह कवियों की कविताओं, ग्यारह कहानीकारों की कहानियों के अलावा पंजाबी कविता, उपन्यास, कहानी तथा नाटक साहित्य के संबंध में चार विद्वतापूर्ण लेख इस विशेषांक की उपादेयता को बढ़ाते हैं। साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से 'समकालीन हिंदी काव्य और पंजाबी कविता' पर संतुलित तथा अध्यवसायपूर्वक लिखा हुआ सतीकुमार का लेख एक अच्छा प्रयास है, जिसके द्वारा हिंदी पाठक तथा लेखक समकालीन पंजाबी काव्य का मूल्यांकन कर सकते हैं। इसी तुलनात्मक अध्ययन का दूसरा बिंदु जगदीश चतुर्वेदी के लेख 'मेरे परिचित, मित्र: पंजाबी के कवि-कथाकार' में दिखाई देता है।

जहाँ तक कहानियों का प्रश्न है कुलवंत सिंह विर्क की कहानी 'साबुन की टिकिया', जसवंत सिंह विरदी की कहानी 'अपनी परछाइयाँ', तथा सरला सूरी की कहानी 'थ्रिल' आधुनिक भाव-बोध का प्रतिनिधित्व करने में सफल हुई हैं। शेष कहानियाँ भर्ती की मालूम होती हैं और अन्य भारतीय भाषाओं के समकक्ष पंजाबी नवलेखन का समर्थ रूप प्रस्तुत नहीं करतीं। इस संबंध में मैं श्री स्वर्ण के इस संपादकीय वक्तव्य को कसौटी माने लेता हूँ, कि 'पंजाबी कहानी अभी तक फार्मूला एवं तकनीकी कहानी के आवर्त में ही घूम रही है।'

किंतु, अठारह कवियों की चौबीस कविताओ में कई कविताएँ आधुनिक जीवन की विद्रूपताओं, जटिलताओं एवं अकेलेपन की भावना को कलात्मक रूप में प्रस्फुटित करती हैं। विशेष रूप से सुखबीर, स्वर्ण, सतीकुमार, तारा सिंह, कृष्ण अशांत, हरनाम तथा मोहन जीत की कविताएं विभिन्न मन:स्थितियों के सजीव तथा बौद्धिक चित्र प्रस्तुत करती हैं।

पंजाबी नाटकों पर लेख के साथ ही यदि दो, तीन एकांकी भी दिए जाते तो पंजाबी साहित्य की प्रत्येक विधा का आकलन संभव हो सकता।

फिर भी, लहर के इस प्रयास की हम सराहना करते हैं। इस प्रकार के प्रयास आधुनिक भारतीय भाषाओं के नैकट्य तथा सद्भावनापूर्ण मैत्री को बढ़ावा देते हैं और हिंदी पाठकों को अपने सहवर्ती साहित्य की प्रगति से परिचित कराते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नटरंग (त्रैमासिक)

संपादक : नेमिचंद्र जैन; कार्यालय : 3–एफ, जंगपुरा एक्सटेंशन, नई दिल्ली–14; पृष्ठ संख्या-120; मूल्य : डेढ़ रुपया।

भारतीय रंगमंच के विभिन्न अंगों पर गंभीर तथा सुरुचिपूर्ण सामग्री प्र करने वाली पत्रिका की आवश्यकता बहुत दिनों से महसूस हो रही थी। हि में कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित 'सूत्रधार' को छोड़कर कदाचित कोई भी सा पत्रिका साहित्य के इस उपेक्षित अंग से संबंधित विचार विमर्श तथा सृजना उपलब्धि से संश्लिष्ट प्रकाशित नहीं हुई। इस दिशा में रंगमंच का प्रवेशांक ऐसा प्रयास है, जिससे यह प्रतिभासित होता है कि भविष्य में भारतीय रंग के विविध प्रयोगों तथा समुचित मूल्यांकन का प्रयास इस पत्रिका के माध्यम संभव हो सकेगा।

प्रस्तुत अंक में संस्कृत नाटक और आधुनिक रंगमंच पर आयोजित परिसं विशेष स्पृहणीय है और प्रसन्नता की बात है कि इसमें व्यर्थ के सैद्धांतिक विश्ले के अतिरिक्त बल इस बात पर दिया गया है कि आज की स्थिति में संस्कृ नाटकों का प्रदर्शन एक विशिष्ट नाट्य-कृति के रूप में किस प्रकार संयोजित कि जाए।

इस परिसंवाद के अतिरिक्त डा० धर्मवीर भारती का अनामिका द्वारा आयो जित अखिल भारतीय हिंदी नाट्य महोत्सव में पठित निबंध 'हिंदी नाट्य लेखन कुछ समस्याएँ' आधुनिक हिंदी नाटकों के रंगमंचीय प्रदर्शन में उत्पन्न कठिनाइ और नाट्य-लेखन में आने वाली तात्कालिक समस्याओं तथा जन-रुचि से उ तादात्म्य के संबंध में समय समय पर उत्पन्न कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का निराक करता है। मैं भारती की इस बात से सहमत हूँ कि 'आधुनिक चेतना और रच त्मक दृष्टि के धरातल पर समानधर्मा नाटककार, निर्देशक और अभिनेता मिलन एक बड़ा संयोग है।'

पुस्तक समीक्षा स्तंभ में प्रकाशित डा० सुरेश अवस्थी तथा वीरेंद्र नाराय के लेख काफी विचारोत्तेजक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। 'एक कंठ विषपायी' वीरेन्द्र नारायण के विचार संतुलित तथा गीतिनाट्य टेकनीक के सूक्ष्म पर्यवे से युक्त हैं। साथ ही कुछ टिप्पणियाँ भी इस पत्रिका में संग्रहीत हैं जिनमें नाट्य लेखन तथा प्रदर्शन की विभिन्न स्थितियों पर वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ विचारों रूप में दी गई हैं। शंभू मित्र तथा केशवचंद्र वर्मा के ये निबंध पुनः परिचर्चा अपेक्षा रखते हैं।

जहाँ तक सज्जा का प्रश्न है, पत्रिका काफी कलात्मक ढंग से प्रकाशित गई है। किंतु मुखपृष्ठ पर लाल रंग का संयोग अच्छा नहीं लगा। साथ ही प्र पृष्ठ पर संपादक, कार्यालय, मूल्य आदि का विवरण इस प्रकार मुद्रित किया है कि वह नटरंग के प्रकाशन उद्देश्य से संबद्ध विशिष्ट टिप्पणी जैसा मालूम होता है यों पत्रिका का प्रवेशांक संग्रहणीय है और नाट्य लेखन पर बौद्धिक त आवश्यक सामग्री से संश्लिष्ट है।

—जगदीश चतुर्वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी पाठ

—नरेंद्र व्यास

The INFINITIVE : its uses

The infinitive form of the verb in Hindi is used in various ways as detailed below :

1. *As a future or a semi polite imperative.* This generally implies advice or mild command :

आगे से यहाँ कभी मत **आना**	Hence forth never come here.
देखो, चाहो सो **करना**, पर झूठ मत बोलना	Mind you, do whatever you like, but do not tell a lie.
कल मेरे साथ बाजार **चलना**	Tomorrow, you may accompany me to the market.

2. *As a noun.* This is called verbal noun (क्रियार्थक संज्ञा) or Gerund. The treatment given to an infinitive is similar to that given to a Noun ending in –आ and is therefore, liable to inflection accordingly. There is no number contrast for an infinitive when used as an Abstract Noun as it is always used in the singular :

प्रतिदिन नहाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है	A daily bath is good for health.
मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो जाओ	Get ready to accompany me.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने की अपेक्षा **करना** कठिन है	It is easier said than done.
पीने का पानी गंदा नहीं होना चाहिए	Drinking water should not be polluted.
अधिक **खेलने** से थक जाओगे	You will get tired by excessive playing.
मेरे **रुकने** का कोई लाभ नहीं हुआ	My stay was of no use.
वाचनालय में शोर **करना** मना है	Making noise is not permitted in the reading room.
मैं रोटी की अपेक्षा चावल **खाना** अधिक पसंद करता हूँ	I prefer eating rice than bread.

In the foregiven sentences, the infinitive has been put to use in direct as well as in oblique cases with different case-endings. The infinitive despite being a noun, retains its verbal character and can be used with or without an object, can, therefore, take an object.

[b] Used as a noun in Neuter the infinitive, does not as a rule, admit को or के लिए. It, however does so to express purpose. But when immediately followed by a verb expressing motion, को and के लिए succeed, the infinitive is usually dropped:

लड़की **नाचना** सीखती है	The girl learns how to dance.
वह खलने (के लिए) आया	He came to play (He came with a view to playing,)
वे मेरे घर राष्ट्रीय रक्षा कोष के लिए चंदा लने आए	They came to my house to collect donation for National Defence Fund
मैं सिनेमा देखने जा रहा था	I was going to see a picture.

[c] The use of **वाला**

For expressing intention or in constructions having 'near to' or 'about to' in English, The inflected infinitive in positive sentences takes को, with or without the use of adverbial particle ही. But when a negative is intended it takes **का की के**:

वह भारत यात्रा **करने को** है	He intends to proceed on an all India tour.
सात **बजने को** हैं	It is about to seven O, clock.
मैं अभी **जाने को** (हीं) था	I was about to leave.
वह यहाँ **आने का** नहीं	He won't come here.
हम वहाँ नहीं **जाने के**	We are (determined) not to go there.
वह अब कुछ **बोलने की** नहीं	She won't say anything now.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(d) The constructions having ‘going to’ or ‘about to’ are also expressed in Hindi by adding **वाला** to the inflected infinitive. वाला agrees in gender and number with the gender and number of the subject. For emphasis, the adverbial particle ही can also be inserted between the inflected infinitive and वाला :

वह जाने वाला है	He is about to go.
प्रधान मंत्री अब **भाषण** देने ही वाले हैं	The Prime Minister is about to deliver a speech.
शाम होने वाली है	It is about to be evening.
बारह बजने वाले हैं	It is about to be twelve O’clock.

वाला Suffixed to the inflected infinitive may also give it the significance of a noun of agency :

दूध बेचने वाला :	One who sells milk: The milk man (दूधिया)
खेलने वाले :	Those who play: The players (खिलाड़ी)
गाने वाली :	One who sings: The songstress (गायिका)
नाचने वाली :	Those who dance: The female dancers (नर्तकियाँ)

The word formed by adding वाला to the infinitive can be used both as a noun and as an adjective,

क्या तुम इस गाने वाली को जानते हो ?	Do you know this songstress?
मैंने गाने वाली चिड़िया को देखा हैं	I have seen the bird that sings.

(i) *As an adjective.* It is called the qualifying or the gerundial infinitive. It is generally used to express necessity, duty, desirability, compulsion etc. Here the infinitive is coupled with the noun subject and agrees with it in gender and number. Special care is required to remember that the grammatical subject takes को (ए in the case of pronoun) :

मुझे कल तक लेख **लिखना** है	I have to write an article by tomorrow.
किसे चाय पीनी है ?	Who has to take tea ?
लड़कों को इतनी पुस्तकें **पढ़नी** पड़ीं	The boys had to read so many books.
तुम्हें अपने पिता को पत्र **लिखना** चाहिए	You should write a letter to your father.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The absolutive is formed by suffixing कर to the conjunctive participle (which is identical to the bare-root) form of the verb: आकर 'having come' ; जाकर 'having gone', पीकर 'having drunk' खाकर 'having eaten'; पढ़कर 'having read'; लिखकर 'having written' etc. In colloquial speech, कर is generally replaced by के (which is an alternative form used with the verb करना 'to do' ; करके 'having done', as कर कर does not sound well.

Being adverbial in nature, The absolutive form is not affected by gender, number and case of the subject or of the object.

Exercises :

A. Translate into English—

1. प्रातःकाल खुली हवा में टहलना लाभदायक है ।
2. बीमार को दिन में तीन बार दवा पीनी पड़ी ।
3. तूफान के बाद गाड़ियों का आना-जाना फिर शुरू हो गया ।
4. बुढ़िया अपने घायल लड़के को देखकर रोने लगी ।
5. मैं खाना खाकर आऊँगा ।
6. मज़दूर काम करके लौट जाएँगे ।
7. मुझे यहाँ उतरना है ।
8. क्या यहाँ अंदर आना मना है ?
9. गाड़ी छूटने वाली है ।
10. मेरी ज़ोर से बोलने की आदत है ।
11. मुझसे झगड़ने में तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा ।
12. लेटकर पुस्तक मत पढ़ो ।
13. लड़की सामान खरीदने दुकान पर गई ।
14. रोगी मरने ही वाला है ।
15. प्रत्येक देशवासी को कम से कम तीन भाषाएँ सीखनी चाहिए ।
16. देखना, कौन आ रहा है ।
17. तुम्हें कल जल्दी उठना है ।
18. अजी ! मैंने कहा, सुनना ।
19. खाते समय अधिक नहीं बोलना चाहिए ।
20. तुम्हें चुप रहना होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

B. Translate into Hindi :

1. I am not going to let myself be insulted.
2. The sun was so hot that it was impossible for me to come out.
3. It is harmful to keep awake till late at night.
4. There is nothing to worry about.
5. It is five minutes to six.
6. Did you come running ?
7. I shall not come back after going there.
8. Smoking is prohibited here.
9. To drink polluted water is not conducive to health.
10. I wish to learn as many languages as possible.
11. My going there was fruitful.
12. Was it not proper to say this ?
13. I shall have to write atleast five letters to-morrow.
14. I was about to come to see you.
15. He ought not to utter such words.
16. He is used to chewing betels.
17. Reading biographies of national leaders is a good hobby.
18. It is our foremost duty to defend our country.
19. We had to discuss something.
20. Who has to come to witness the Republic day parade?

मार्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिभाषिक शब्द-संग्रह

(अँग्रेज़ी-हिंदी)

यह शब्द-संग्रह दस वर्ष के अनुसंधान कार्य का परिणाम है। इसमें विभिन्न विषयों और शास्त्रों के विशेषज्ञों और विद्वानों की सहायता से वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड के तत्त्वावधान में निर्मित शब्दावली संकलित की गई है।

भारत के संविधान के अनुसार हिंदी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि यह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मख्यत: संस्कृत तथा गौणत: भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करने का दायित्व भारत सरकार को सौंपा गया है।

स्ट्रॉबोर्ड कवर

पृष्ठसंख्या : 1370

मूल्य : 12 रुपए

भारत सरकार ने 1950 में हिंदी और प्रमुख भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली तैयार करने के लिए एक वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की थी।

बोर्ड का यही दृष्टिकोण रहा कि जहां तक हो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग किया जाए और जहाँ राष्ट्रीय शब्दावली उपलब्ध न हो सके वहाँ भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया जाए।

कृपया अपना आर्डर नीचे लिखे पते पर भेजें:--
प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, भारत सरकार, सिविल लाईंस दिल्ली-6।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि त्रैमासिक पत्रिका

संस्कृति

(ग्रीष्म, पावस, शरद् और हेमंत में प्रकाशित)

संपादकीय मंडल :

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

डा० नगेंद्र

श्री दु० क० हिंगोरानी

राजेंद्र द्विवेदी (संपादक और पदेन सचिव

संपादक 'संस्कृति'

शिक्षा मंत्रालय

1 ई, 3 करजन रोड, 'ए'-बैरक्स, नई दिल्ली ।

वार्षिक चंदा : चार रुपए

एक प्रति : एक रुपया

भारत-विद्या विशेषांक के मुख्य आकर्षण

विश्व एकता में प्राच्य विद्या का स्थान (हुमायूंन कबिर), भारत विद्या की समस्याएँ और आवश्यकताएँ : एक संगोष्ठी (के० एम० पनिकर, ज्यों फिलियोजा, आर० सी० मजूमदार, वें० राघवन्, रमाप्रसन्न नायक, प्रभाकर माचवे), भारतीय तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान (सी० पी० रामस्वामी अय्यर), भारत में पुरातत्व और इतिहास (के० ए० नीलकंठ शास्त्री), राजकीय शासनलेख (बहादुरचंद्र छाबड़ा), प्राचीन भारतीय नाटक (इंदुशेखर), नृत्य (कपिला वात्स्यायन), संगीत (पी० सांबमूर्ति), मूर्तिकला (सी० शिव-राममूर्ति), चित्रकार का इतिहास (मोतीचंद्र), प्राचीन भारतीय स्थापत्य (द्विजेंद्रनाथ शुक्ला), कला का इतिहास (चार्ल्स फाबरी), संस्कृत साहित्य (रसिकबिहारी जोशी) । राष्ट्रीय पक्षी (ऐ० के० भट्टाचार्य), संस्कृत और तमिल व्याकरण (डब्ल्यू० नोले) प्राचीन भारत में प्रजातंत्र (सी० एन० जुत्शी) ।

स्तंभ : संपादकीय, समीक्षा, चित्रमय समाचार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भाषा' त्रैमासिक का महत्त्वपूर्ण विशेषांक

शांति-रक्षा अंक

● **जय जननी, जय भारती**

सर्वश्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', संजय भट्टाचार्य, नरेंद्र शर्मा, राजीव सक्सेना, सदानंद रेगे, जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चौधरी, स्वदेशरंजन दत्त, जगदीश गुप्त, शांतिलाल आहूजा तथा दिनकर सोनवलकर की कविताएँ।

● **सात कहानियाँ**

कहानीकार : सर्वश्री कमलेश्वर, संतोखसिंह धीर, स्टीपेन जोरयान, शक्तिपाल केवल, नरेंद्रपाल सिंह, शिवकुमार जोशी तथा सूबासिंह।

● **द्वाभा**

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंशराय 'बच्चन' तथा नंद चतुर्वेदी की कविताएँ (अनुवाद सहित)।

● **लेखक का दायित्व**

सर्वश्री बालकृष्ण राव, जनार्दन वाघमारे, भगवतशरण उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, वासुदेवशरण अग्रवाल तथा प्रफुल्लदत्त गोस्वामी के सारगर्भित लेख।

● सुमित्रानंदन पंत का गीतिनाट्य 'ध्वंस-शेष'—गुजराती अनुवाद सहित।

● श्री दिनकर कौशिक का 'आपत्कालीन स्थिति तथा कलाकार' शीर्षक लेख।

● भारतीय कविता के अंतर्गत समस्त भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कविताएँ।

● सुनीतिकुमार चटर्जी, हेम वरुआ तथा प्रेमनाथ धीर के इंटरव्यू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और विशेषांक

भाषा

त्रैमासिक

द्विवेदी स्मृति-अंक

भाषा की गौरवपूर्ण परंपरा में एक नूतन अध्याय

- हिंदी तथा हिंदीतर भाषाओं के विद्वानों की रचनाएँ ।
- द्विवेदी जी के अंतरंग जीवन की झाँकियाँ ।
- द्विवेदी जी के दुर्लभ चित्र ।
- द्विवेदी जी के संस्मरण ।
- द्विवेदी युगीन साहित्य पर सारगर्भित लेख ।
- द्विवेदी जी के संपादक, भाषा सुधारक, काव्य समीक्षक, निबंध लेखक, आलोचक तथा कवि रूपका अधिकारी विद्वानों द्वारा विशद तथा तुलनात्मक अध्ययन ।
- द्विवेदी जी के एक गद्यांश का चौदह भारतीय भाषाओं में अनुवाद ।
- द्विवेदी जी के हाथ से संशोधित की गई प्रसिद्ध रचनाओं की पांडुलिपियों और द्विवेदी जी के पत्रों के चित्र ।
- द्विवेदी शताब्दी समारोह का विस्तृत एवं सचित्र विवरण ।

तथा

श्रद्धांजलियाँ

मार्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नटरंग

भारतीय रंगमंच का त्रैमासिक

संपादक : नेमिचंद्र जैन

आकार 20 × 30 अठपेजी

पृष्ठ संख्या : साधारण अंक 96; विशेषांक 128।

वार्षिक मूल्य 6.00 : एक अंक 1.50

विशेषांक 3.00

पहला अंक जनवरी 1965 में प्रकाशित

3-एफ़, जंगपुरा ऐक्सटैंशन, नई दिल्ली-14

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक-परिचय

- **नंदलाल सिंह** (डॉ०), अध्यक्ष, स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
- **प्रेमप्रकाश सिंह**, अध्यक्ष, पंजाबी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला ।
- **आशानंद वोहरा**, ज़िला भाषा अधिकारी, रोहतक ।
- **वीरेंद्रकुमार श्रीवास्तव**, सी-13/ 33-एफ, औरंगाबाद, वाराणसी ।
- **सोमशेखर 'सोम'**, हिंदी विभाग, दि कम्यूनिटी सेंटर, जयनगर, बंगलौर-11 ।
- **वच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'**, अर्जुनपुरवा, लखीमपुर-खीरी ।
- **अंबाप्रसाद सुमन** (डॉ०), हिंदी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।
- **विश्वनाथ अय्यर** (डॉ०), हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, एरणाकुलम् ।
- **सुरेंद्र शुक्ल**, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ।
- **सूर्यनारायण व्यास**, भारती भवन, उज्जैन ।
- **भोलानाथ तिवारी** (डॉ०), के० एम० कॉलेज, दिल्ली ।
- **अजीतलाल गुलाटी**, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, प्रदर्शनी मैदान, नई दिल्ली ।
- **प्रेमानंद चंदोला**, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।
- **संतोष व्यास**, योगीपुरा, उज्जैन (म० प्र०) ।
- **सीताराम शास्त्री**, 20-3-1020, शाहगंज, हैदराबाद-2 ।
- **विद्या मित्र** (डॉ०), अध्यक्षा, हिंदी विभाग, विद्यांत कॉलेज, लखनऊ ।
- **कृष्णकुमार गुप्त**, डी० जी०-1046, मेन विनय नगर, नई दिल्ली ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- **कृष्ण विकल**, राजपाल एंड संस, पो० बॉ० 1064, दिल्ली।
- **मैथिलीशरण गुप्त (स्व०)**, हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि।
- **प्रभाकर माचवे (डॉ०)**, 120, रवींद्रनगर, नई दिल्ली।
- **देवेन गुप्त (स्व०)**, हिंदी के कथाकार तथा कवि।
- **मनहर चौहान**, आई-154, कीर्तिनगर, नई दिल्ली-15।
- **मंगेश पाडगांवकर**, साई प्रासाद, प्लाट नं० 125-अ, शीव, बंबई-22।
- **दिनकर सोनवलकर**, राजकीय महाविद्यालय, रतलाम।
- **पी० सबंध मुदलियार (स्व०)**, तमिल के सुप्रसिद्ध नाटककार।
- **जमुना**, 38, फैजबाजार रोड, दरियागंज, दिल्ली।
- **जे० एच० आनंद**, 66, नंदी दुर्गा एक्स्टेंशन रोड, बंगलौर।
- **रामस्वरूप चतुर्वेदी**, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- **रामेश्वर गुरु**, दीक्षितपुरा, जबलपुर (म० प्र०)।
- **का० शं० केलकर**, 1629, न्यू सदाशिव, पूना-2।
- **नवारुण**, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी।
- **बिहारीलाल व्यास**, दांता भैरूँ, उदयपुर (राजस्थान)।
- **सुरेश सिन्हा (डॉ०)**, 'कल्पना', 16, पुरुषोत्तम नगर, हिम्मत गंज, इलाहाबाद-3।
- **जगदीश चतुर्वेदी**, 27/23, ईस्ट पटेलनगर, नई दिल्ली-12।
- **नरेंद्र व्यास**, II जी/61-62, लाजपतनगर, नई दिल्ली।

भा० स० मु० नासिक सं० ४---७ सी. एच. डी./६४---20-5-65

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

- भाषा में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध भाषा में होनी चाहिए ।
- लेख आदि सामान्यत: फुलस्केप आकार के पाँच टाइप पृष्ठों से अधिक न होने चाहिएँ और हाशिया छोड़ कर कागज़ के एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिएँ ।
- साधारणतया हस्तलिखित सामग्री स्वीकार करने का नियम नहीं है ।
- अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना आवश्यक है ।
- सामग्री के प्रकाशन के विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा ।
- लेखों की स्वीकृति की सूचना पंद्रह दिन के भीतर दे दी जाती है, अस्वीकृत रचनाओं के संबंध में सूचना देने का नियम नहीं है ।
- अस्वीकृत सामग्री लौटाने का नियम नहीं है ।
- समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजनी चाहिएँ ।
- पत्रिका की बिक्री की व्यवस्था प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, सिविल लाइंस दिल्ली-6 द्वारा की जाती है । सदस्य बनने, विज्ञापन देने और वार्षिक चंदा जमा करने के लिए उन्हीं से पत्र-व्यवहार करना चाहिए ।

भाषा में प्रकाशित विचारों के लिए संपादन-मंडल उत्तरदायी नहीं है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष : चार

अंक : चार

भाषा

त्रैमासिक

जून 1965

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय

शिक्षा–मंत्रालय

भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ED. 395. 2. 65 (N)
1400

उद्देश्य

शिक्षा, कला, विज्ञान, अनुसंधान, कानून और शासन आदि के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण कर हिंदी की समृद्धि करना;

हिंदी को सब प्रकार की अभिव्यक्ति का सशक्त और प्रभावशाली साधन बनाने के उद्देश्य से उसकी प्रकृति के अनुकूल प्रादेशिक भाषाओं का सहयोग लेना;

समस्त भारतीय भाषाओं के बीच समानता की खोज करना और आदान-प्रदान का द्वार मुक्त करना।

मार्च, जून, सितंबर और दिसंबर में प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् - ऋग्वेद ।

भाषा

त्रै मा सि क

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय

शिक्षा-मंत्रालय ● भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य : एक प्रति 1.25 पैसे अथवा 2 शिलिंग 11 पेंस या 45 सें
वार्षिक : 4 रुपये 50 पैसे अथवा 10 शिलिंग 6 पेंस या 1 डालर 62 सें

प्रकाशक : प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, सिविल लाइंस, दिल्ली-8।
मुद्रक : व्यवस्थापक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

संपादकीय 5

हिंदी भाषा की समस्याएँ

- अंग्रेजी भाषा की दरिद्रता और भारतीय भाषाओं की संपन्नता — रघुवीर 9
  अनु० जगमोहनराव भट्ट
- कोश निर्माण में अर्थ-क्रम-योजना — देवेंद्रकुमार वर्मा 17
- अहिंदी भाषी छात्रों द्वारा की जानेवाली भूलें — श्रवण कुमार गोस्वामी 24
- गुजराती भाषाभाषियों से हिंदी में होने वाली भूलें और उनके कारण — सुदर्शन सिंह मजीठिया 29
- भाषा और लिपि — सरोज वर्मा 35

भाषा और व्याकरण

- राजस्थानी लोक-साहित्य — उसका भाषा-शास्त्र संबंधी महत्त्व — मोहनलाल पुरोहित 41
- हिंदी विशेषणों की व्युत्पत्ति प्रक्रिया — विश्वजीत 51
- बस्तर जिले की बोलियाँ — सँपत सिंह ठाकुर 60
- डिंगल का 'आँ' प्रत्यय — कन्हैयालाल सहल 68
- आदिनिवासी खासी और उनका साहित्य — आर० आर० थोमस 71
  अनु० विनोदकांत गौतम

शब्दश्री

- कॉंज अथवा सदर कॉंज — हरिहर प्रसाद गुप्त 75
- लांग और पेरोल — रमानाथ शर्मा 81
- छत्तीसगढ़ की जनपदीय शब्दावली — कांतिकुमार 85
- कुमाऊँनी में प्रचलित रिश्तों से संबंधित शब्दावली — नारायण दत्त पालीवाल 92
- शब्दों का आत्म-परिचय — कृष्ण कुमार 96

सूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुटविचार

- विश्व कवियों के प्रेरणा स्रोत टी० एस० इलियट — हेम बरुआ 10
- अतीत के आलोक में हिंदी की समृद्धि — मुनि नथमल 10
- कर्नाटक म हिंदी का वर्तमान स्थान — सोमशेखर 'सोम' 11
- राष्ट्रभाषा : कुछ सुझाव — शिखर चंद जैन 11

द्वाभा

- ताज (कविता) — सुमित्रानंदन पंत, गुजराती अनु० रामचंद्र दैसाई 12
- आँसू (कविता) — जयशंकर प्रसाद, गुजराती अनु० कृष्णा चतुर्वेदी 12
- पिशाच-संस्कृति (कविता) — कैलाश बाजपेयी, गुजराती अनु० मनमोहनी 125

स्रोतस्विनी

- आसरा (मराठी-कहानी) — ना० सी० फड़के, हिंदी अनु० : शरद मोझरकर 13

सरकारी कामकाज में हिंदी 158

भारतीय भाषाविद्

- महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा — राजेंद्र बिहारी पांडे 166

भारतीय साहित्य

- कविता और उसकी रचना — आलोक सरकार, अनु० रामप्रसाद पाडेय 169
- कविता और सामाजिक आलोचना — संत सिंह सेखों, अनु० शाकिर पुरुषार्थी 172
- वैज्ञानिक पुस्तकों की प्रदर्शनी 177

निकष — नरेन्द्रधीर; प्रयाग शुक्ल; नर्मदा-प्रसाद त्रिपाठी; भगवंतशरण जोहरी; गुरुदत्त शर्मा; कुलदीप 179

हिंदी-पाठ — नरेंद्र व्यास 189

लेखक-परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदीतर भाषा भाषियों की हिंदी-विषयक कठिनाइयाँ

हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार के फलस्वरूप हिंदीतर भाषी हिंदी सीखने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। इस कारण हिंदी सीखने के प्रयास में सामान्यतया आने वाली कठिनाइयों और उनके निराकरण की ओर ध्यान दिया जा रहा है।

जिनकी मातृ-भाषा हिंदी है उनका ध्यान अहिंदी भाषियों की हिंदी सीखने से संबंधित कठिनाइयों की ओर बहुत कम जाता है। हिंदी के प्रयोग, वाचन, पठन और लेखन म आने वाली हिंदीतर भाषियों की कठिनाइयों का यथा-संभव निराकरण और समाधान प्रत्येक हिंदी भाषी का कर्तव्य है।

हिंदीतर भाषियों को हिंदी सीखने में जो कठिनाइयाँ होती हैं वे दो प्रकार की है। एक वे जो हिंदी भाषा की प्रकृति को आत्मसात् न करने के कारण होती हैं और दूसरे वे जो अपनी मातृभाषा के संस्कारों को हिंदी पर आरोपित करने के कारण उत्पन्न होती हैं। इसीलिए जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है वे हिंदी की चौंका देने वाली भूलें अनायास कर जाते हैं।

अहिंदी भाषियों के सामने हिंदी सीखते समय आने वाली कठिनाइयाँ, उनके द्वारा की जाने वाली भूलों के कारण तथा इन भूलों के सुधार के संबंध में विभिन्न विचार समय-समय पर 'भाषा' में प्रकाशित किए जाते रहे हैं। "हिंदी उच्चारण में बंगला भाषियों की कठिनाइयाँ" शीर्षक कुसुमराय का लेख और "हिंदी में होने वाली भूलें" शीर्षक भगवान सिंह का लेख क्रमशः भाषा के सितंबर और दिसंबर 1963 अंक में दृष्टव्य हैं। इनके अतिरिक्त "हिंदी भाषा की समस्याएँ" शीर्षक स्तंभ के अंतर्गत विभिन्न विचार और परामर्श यदा-कदा प्रकाशित किए जाते रहे हैं।

प्रस्तुत अंक में इसी विषय पर दो लेख संकलित हैं। एक में डोरंडा महाविद्यालय, रांची, के प्राध्यापक श्रवणकुमार गोस्वामी ने अपने व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर अहिंदी भाषियों की हिंदी विषयक कुछ प्रमुख भूलों की ओर ध्यान दिलाया है और तद्विषयक उदाहरण भी दिए हैं। अहिंदी भाषी छात्रों की उत्तर-पुस्तिकाएँ जाँचते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए गोस्वामी जी ने अनुभव किया कि अपनी मातृ-भाषा के संस्कारों को हिंदी पर आरोपित करने के फलस्वरूप भी हिंदी विषयक भूलें हो जाती हैं। जैसे बंगला-भाषी छात्र की 'व' और 'ब' विषयक भूलें। बंगला भाषी छात्र अपनी मातृ-भाषा के उच्चारण के कारण 'विभाग', 'विद्या', 'विनती' आदि शब्दों को 'बिभाग', 'बिद्या', 'बिनती' लिखता है। बंगला उच्चारण के अनुसार 'हिसाब' को 'हिसाप' और 'पकड़ाना' को 'पकराना' बोला और लिखा जाता है और यही बंगला भाषी के लिए सुकर भी होता है। अपनी भाषा में 'ब' और 'र' के उच्चारण और लेखन का जो अभ्यास बंगला भाषी छात्र को रहता है उसे हिंदी पर आरोपित करने से हिंदी की भूलें हो जाती हैं। उर्दू भाषी छात्र अधिकतर जिस 'उ' के उच्चारण और लेखन का अभ्यासी होता है उसे हिंदी पर आरोपित करने के फलस्वरूप हिंदी विषयक भूलें हो जाती हैं जैसे 'मुताबिक' के लिए 'मोताबिक'।

गुजराती भाषियों द्वारा हिंदी की जो भूलें होती हैं, उनका उल्लेख सुदर्शनसिंह मजीठिया ने अपने लेख में किया है। मजीठिया जी का विचार है कि गुजराती भाषियों के भाषागत् संस्कार, हिंदी-व्याकरण, हिंदी वर्तनी की अनेकरूपता, गुजराती व्याकरण की अधूरी जानकारी तथा हिंदी में अनेक स्रोतों से प्राप्त शब्द-भंडार का निधड़क प्रयोग ही इन भूलों के प्रमुख कारण होते हैं।

मजीठिया जी ने लिपि संबंधी कठिनाई का ज़िक्र भी किया है। शिरोरेखा विहीन गुजराती लिखने के अभ्यासी शिरोरेखा विहीन देवनागरी लिखते समय 'ध', भ, झ की ध्वनि को स्पष्ट नहीं कर पाते। संभवतः इसी लिए संशोधित देवनागरी लिपि में 'ध', 'भ' 'झ' को क्रमशः ध, भ, झ घुंडी लगाकर लिखा जाने लगा है। छोटी उम्र के बच्चों द्वारा किसी पाठांश को कंठस्थ करते समय 'रख' के स्थान पर 'रव' बांचते देख किसी ने देवनागरी के 'ख' के स्वरूप में संशोधन की सलाह दी थी। फलस्वरूप संशोधित देवनागरी 'ख' में र की पूंछ को व के नोचे जोड़कर लिखा जाता है। यथा 'ख'। देवनागरी लिपि में किए गए इन संशोधनों से समस्या अधिकांशतः सुलझ गई है।

हिंदी की प्रकृति से पूर्णतया परिचित न होने के कारण विविध भाषा-भाषी हिंदी का प्रयोग अपनी इच्छा और सुविधानुसार करते हैं। लगातर प्रयुक्त होते-होते कभी-कभी भाषा के विकृत रूप भी प्रचलित हो जाते हैं। ऐसे मनमाने प्रयोग जब रूढ़ हो जाते हैं तो उनके प्रभाव से बचना मुश्किल होता है तथापि यह स्थिति किसी भी भाषा के लिए श्लाघनीय नहीं मानी जा सकती। इसीलिए यह आवश्यक है कि इस प्रश्न पर विविध भाषा-भाषी विज्ञ लेखकों और पाठकों के विचार संकलित और प्रकाशित किए जाएँ।

विभिन्न प्रदेशवासियों द्वारा की जानेवाली हिंदी की भूलों को प्रकाश में लाने और उनके निराकरण का सम्यक् समाधान प्रस्तुत करने के लिए हम आपको आमंत्रित करते हैं। हिंदी सीखने के इच्छुक हिंदीतर भाषियों की हिंदी विषयक भूलों के समाधान के लिए 'भाषा' के माध्यम को अपनाकर हमें सहयोग दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- अँग्रेजी भाषा की दरिद्रता और भारतीय भाषाओं की संपन्नता
- कोश निर्माण में अर्थ-क्रम-योजना
- अहिंदी भाषी छात्रों द्वारा की जानेवाली भूलें
- गुजराती भाषाभाषियों से हिंदी में होने वाली भूलें और उनके कारण
- भाषा और लिपि

हिंदी भाषा की समस्याएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँग्रेज़ी भाषा की दरिद्रता और भारतीय भाषाओं की संपन्नता

रघुवीर

एक

मध्य-युग में बहुत लोग विश्वास करते थे कि स्त्रियों के दाँत पुरुषों की अपेक्षा कम होते है। स्त्री के मुख में दाँतों को गिनने की और अपने रूढ़िगत विश्वास को परखने की किसी ने भी आवश्यकता नहीं समझी। क्यों? क्या स्त्री एक निम्न श्रेणी की प्राणी है? और क्या यह स्वतः सिद्ध नहीं है कि निम्न श्रेणी वाला उच्च श्रेणी वाले के बराबर दाँत नहीं रख सकता?

न्यूनाधिक इसी तर्क ने आजकल की इस बहु-प्रचलित धारणा को जन्म दिया है कि तुलनात्मक दृष्टि से, शब्दावली एवं अभिव्यक्ति के साधन के रूप में, अँग्रेजी भाषा की अपेक्षा भारतीय भाषाएं निर्धन हैं, क्योंकि क्या हम अँग्रेज़ों की अपेक्षा निम्न स्तर के नहीं हैं? और क्या यह स्वतः सिद्ध नहीं है कि निम्न लोगों की भाषा भी उच्च लोगों की भाषा की अपेक्षा निम्न ही हो?

इन पंक्तियों के लेखक जैसे दृढ़-अविश्वासी को विचार करने का यह ढंग युक्ति-युक्त नहीं दिखाई दिया। अतः उसने इस विचार का संपूर्ण रूप से विश्लेषण करने का यत्न किया। भाषा-प्रश्न से संबद्ध कुछ प्रामाणिक तथ्य पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए जा रहे हैं।..क्योंकि लेखक को संस्कृत, मराठी और हिंदी के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं का ज्ञान नहीं है, इसलिए प्रस्तुत लेख में दिए गए उसके तर्क केवल इन्हीं तीन भाषाओं के सामान्य लक्षणों पर आधारित हैं। अतः ये केवल उन्हीं भारतीय भाषाओं में संगत बैठते हैं जिनमें ये लक्षण हैं।

संस्कृत-शब्दावली :

इन सामान्य लक्षणों में सबसे महत्त्वपूर्ण है शब्दावली। हिंदी और मराठी, दोनों, स्वतंत्रतापूर्वक संस्कृत-शब्दावली ग्रहण करती हैं। अतः संस्कृत-शब्दकोश की सीमा का अनुमान लगा कर हम, इन दोनों भाषाओं—हिंदी और मराठी—के शब्द-संग्रह की सीमा का अनुमान सहज ही लगा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एक मत है कि संस्कृत के सब शब्दों की उत्पत्ति मूल धातुओं से सिद्ध की जा सकती है। सब शब्दों के संबंध में इस मत को चाहे न भी स्वीकार किया जाए, तथापि यह मत, मूल-धातुओं की संख्या और उन प्रत्येक धातुओं से निर्मित होने वाले शब्दों की संख्या से संस्कृत-शब्दों की न्यूनतम-राशि का अनुमान करने में अवश्य सहायता करता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइए, हम धातु 'गम' (जाना, To Go) लें। इस धातु से निम्न शब्दों की भांति अनेक शब्द बनते हैं :

1. गति— Motion.
2. गंतव्य— That which is fit to go.
3. गम्य— The object of the act of going.
4. गमनीय— That which is worth going.
5. गमक— That which carries or leads.
6. जंगम— That which goes frequently or intensively.
7. जिगमिषा— The desire to go.
8. गामक— That which makes others go.
9. गम्यमान— That which is being gone.
10. गमिष्यन— That which will be going.
11. गंत्रिका— A small vehicle.
12. गमय— A path.
13. गत्वर— That which is want to go.
14. गमनिका— An explanatory paraphrase.

'गम' धातु से वन सकने वाले केवल ये ही शब्द नहीं हैं। लेखक ने केवल वे ही शब्द दिए हैं जिन्हें वह तुरंत स्मरण कर सका।

(शब्द-निर्माण करने वाले 80 के लगभग प्रत्यय हैं।)

साथ ही इस वात का भी ध्यान रखा गया है कि केवल उन्हीं रूपों का उल्लेख किया जाए जिनके अँग्रेजी-पर्याय स्वतंत्र-शब्दों के रूप में अँग्रेजी-शब्दकोश में उपलब्ध हों। उदाहरणार्थ, 'गमन' छोड़ दिया गया है क्योंकि इसका अँग्रेज़ी-पर्याय Going शब्दकोश में Go शब्द के अंतर्गत दिखाया गया है। इसी प्रकार वर्तमान-कृदंत रूप 'गच्छत' का उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि अँग्रेज़ी भाषा में भी क्रिया Go का वर्तमान कृदंत है। 'जिगमिषा' (The desire to go) का उल्लेख करने के पश्चात् 'जिगमिषु' (Desirous of going) शब्द का पृथक उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि 'प्यासा' शब्द कई बार अँग्रज़ी-शब्दकोश में 'प्यास' के अंतर्गत मिलता है। 'गम्यमान' (Passive Present Participle) का उल्लेख पृथक रूप से किया गया है क्योंकि इसकी व्याख्या 'निर्दिष्ट स्थान'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(Destination) या 'धम्रकेतु का चक्राकार मार्ग' (Trejectory) जैसे स्वतंत्र शब्दों से अवश्य ही करना पड़ेगा। संक्षेप में, केवल उन्हीं रूपों का वर्णन किया गया है जिनके अँग्रेज़ी-पर्याय स्वतंत्र शब्दों से बनाए जाएँगे। साथ ही, प्रत्येक रूप के अगणित रूप-समूह—जैसे कि 'गमिष्यमाण' ('गम' धातु का Passive Future Participle रूप)—जिसका अर्थ है That which will be being gone—का उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि Active Future Participle अर्थात् 'गमिष्यन' पहिले ही हम लिख चुके हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसर्ग और समस्तपद :

उपरिलिखित सूची में दिए गए प्रत्येक शब्द से, 20 विभिन्न उपसर्गों के संयोग से, 20 विभिन्न शब्दों का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ, 'गति' शब्द से निम्न 20 भिन्नार्थक शब्द प्राप्त होते हैं :

1. प्रगति— Fast Pace.
2. परिगति— Moving Around.
3. प्रतिगति— Counter Motion.
4. अधिगति—Principal Movement.
5. अतिगति—Excessive Going.
6. अवगति— Going Below.
7. उद्गति— Going Up.
8. संगति— Association.
9. निर्गति— Coming Out.
10. दुर्गति— Bad Going.
11. परागति— Moving Back.
12. अनुगति— Going After.
13. अपगति— Going Away.
14. आगति— Coming.
15. उपगति— Going Near.
16. सुगति— Going Well.
17. निगति— Going Into.
18. विगति— Without Motion.
19. अपिगति— Joining.
20. अभिगति— Attack.

लेखक ने 'गम' धातु से बने 14 प्रमुख रूपों का उल्लेख किया है। इन 14 रूपों में से प्रत्येक रूप से 20 और रूप प्राप्त होते हैं जैसा कि ऊपर दिखाया गया है। संस्कृत में मूल-धातुएं 1700 से लेकर 2000 तक हैं। इन से, इस प्रकार 4,76,000 (14×20×1700) शब्दों का निर्माण होता है।

किंतु, यही सब कुछ नहीं है। सामान्य शब्दों के अतिरिक्त समस्त पदों का भी संस्कृत में प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए 'भ्रंश' (Loss), 'भ्रम' (Illusion), 'रोध' (Arrest), 'सातत्य' (Continuity) आदि शब्दों के संयोग से 'गति' शब्द से 'गतिभ्रंश' (Loss of Motion), 'गतिभ्रम' (Illusion of Motion), 'गतिरोध' (Arrest of Motion), 'गतिसातत्य' (Continuity of Motion) आदि अनेक समस्त पद प्राप्त होते हैं। इससे अधिक, इस प्रकार निर्मित शब्दों का क्रम-परिवर्तित कर देने से समस्त पद एवं उनका अर्थ भी बदल जाता है।

नून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उदाहरणार्थ 'हस्तसिद्ध' का अर्थ है। 'हाथ से बना हुआ' किंतु 'सिद्धहस्त' का अर्थ है 'कुशल हाथ का'। इस प्रकार 1700 धातुओं से प्राप्त 34000 मूल-शब्दों से, संधि तथा क्रम-परिवर्तन द्वारा 84,96,24000 (अर्थात् 84 करोड़ शब्दों से अधिक) शब्द हमें प्राप्त होते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन, इस सब से मूल-समस्या का हल नहीं होता। अधोलिखित विचारों से यह स्पष्ट है :

(1) समस्त पदों में दो से अधिक शब्दों का संयोग हो सकता है। समस्तपद यथा 'सारासार विचार'—अनिवार्य का परिहार्य से अंतर का विवेक (Discrimination of the essential from non-essential), 'सुख-दु:ख-विवेक'—सुख दु:ख की जाँच पड़ताल करना (Enquiry into pleasure and pain) में तीन-तीन शब्द हैं। कुछ पाठक कह सकते हैं कि ये समस्त पद तो इतने लंबे हैं कि इन्हें शब्दों की अपेक्षा वाक्यांश कहना उचित होगा। लेखक उन पाठकों को अँग्रेज़ी-भाषा के क्रांतिकारी-प्रतिरोधी (Counter-revolutionary), कल्पनातीत (Hyper-sensivity), आत्म-अभ्युदय (Self-aggraindisement) आदि शब्दों का स्मरण ही दिलाता है—ये अँग्रेज़ी शब्द हिंदी के तीन शब्दों से निर्मित समस्त पदों से छोटे नहीं हैं। वैसे, अनुमान के अंतर्गत ऐसे समस्त पदों की गणना नहीं की गई है।

(2) एक शब्द में केवल मात्र एक ही उपसर्ग होना भी आवश्यक नहीं। 'अतिरेक' (Excess) में अति उपसर्ग है, 'व्यतिरेक' (Contravity, प्रतिकूलता) में 'वि' और 'अति' दो उपसर्ग हैं, और 'अनु', 'वि' और 'अव' तीन उपसर्ग हैं। डा० रघुवीर के 'बृहत अँग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश' (Comprehensive English Hindi Dictionary) में ऐसी 107 उपसर्ग-संधियों का उल्लेख है जो धातु 'इ' (To Go जाना) से प्राप्त रूपों के साथ लगाई जा सकती हैं। तथापि, अपने अनुमान से हमने केवल एक उपसर्गयुक्त शब्दों की ही गणना की है।

(3) समस्त पदों में उपसर्गों के संयोग से भी शब्द-रचना हो सकती है। अपने अनुमान में ऐसे शब्दों की भी गणना होनी चाहिए।

शब्दकोश और शब्दावली की सीमा :

अनुमान में विद्यमान समस्त अथवा अधिकांश शब्द व्याकरण की दृष्टि से सही हैं या सार्थक हैं—इस संबंध में कुछ पाठक संदेह कर सकते हैं। इस संदेह-निवारण के लिए उनको मूल-धातुओं में से किसी एक धातु की, उसकी उपशाखाओं सहित, जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, पड़ताल करनी पड़ेगी। वे पाएँगे कि संस्कृत की असीम शब्द-राशि में व्याकरण-विहीन या निरर्थक-शब्द बहुत अधिक नहीं हैं।

भारतीय भाषाओं का शब्द-समूह अँग्रेज़ी-भाषा की अपेक्षा कम है—इस प्रचलित विश्वास का एक कारण यह है कि इन भाषाओं के शब्दकोशों में अँग्रेज़ी के शब्दकोशों की तुलना में कम शब्द संग्रहीत होते हैं। किंतु, इन कोशों में अनेक शब्दों का उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए नहीं होता क्योंकि इन शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है, और सुविधापूर्वक इन शब्दों के विश्लेषण योग्य खंडों की ही सूची बनाने में कोशकार तुष्टि मान लेते हैं। इस प्रकार, संस्कृत और अँग्रेज़ी-भाषा की शब्दावली की पारस्परिक संपन्नता की तुलना शब्दकोशों में व्यवहृत शब्द-संख्या की तुलना पर आधारित करना भ्रमोत्पादक है।

अग्रत:, इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि अँग्रेज़ी-भाषा के पाँच लाख शब्दों में से बहुत से अप्रचलित हैं। आधुनिक अँग्रज़ी में वे प्रयुक्त नहीं होते, और आधुनिक अँग्रेज़ी का प्रवीण विद्वान भी थोड़े से ऐसे शब्द-युक्त-संभाषण को ठीक प्रकार समझने में सफल नहीं होगा। यह संदेहास्पद है कि अँग्रेज़ी में प्रचलित और प्रभावशाली शब्दों का समूह एक लाख शब्दों से अधिक हो। इसके विपरीत, सुविधापूर्वक संस्कृत समझ सकने वाला कोई भी व्यक्ति संस्कृत-शब्दों का समस्त समुदाय समझ सकता है क्योंकि उनको अलग से स्मरण नही करना होता। 1700 मूल-धातुओं की छोटी सी नींव पर वे आधारित हैं और गणित-नियमों की भांति विधि-द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। वास्तव में, यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संस्कृत की प्रभावशाली शब्दावली और सत्यत: उससे उत्पन्न तथा उससे जीवन-रस प्राप्त करने वाली भारतीय भाषाओं की शब्द-संख्या अद्वितीय-रूप से अँग्रेज़ी-शब्दों की संख्या से कहीं अधिक है।

*

दो

भाषा की संपन्नता मापने में शब्दावली का परिमाण पहला मापदंड है। 'संक्षेप' दूसरा मापदंड कहा जा सकता है। संस्कृत-शब्दों और पूर्व लेख में लिखे उनके अँग्रेज़ी-पर्यायों पर स्थूल दृष्टिपात से भी यह स्पष्ट है कि संक्षेप और शब्दों की बाहुल्यता में संस्कृत की स्पर्धा अँग्रेज़ी बिल्कुल नहीं कर सकती। प्राय: सब उदाहरणों में संस्कृत-शब्द अनुपातत: अपने अँग्रेज़ी-पर्यायों से पर्याप्त छोटे हैं। इच्छार्थक यङन्त रूपों आदि तथा समस्तपदों के ढंग के कारण संक्षेप का जो गुण संस्कृत में है, वह अँग्रेज़ी की सामर्थ्य से बाहर है। उदाहरणार्थ, समस्तपद 'गुणज्ञ' (गुण जानने-समझने वाला) को अँग्रेज़ी में निम्न प्रकार ही लिखना पड़ेगा — 'One who recognises merit' एवं Future Passive Participle 'योत्स्मान, को लिखना पड़ेगा—One who will be engaged in fighting initiated by the opponent.

संक्षेप और यथार्थता :

भारतीय भाषाओं के 'संक्षेप' की सिद्धि संस्कृत भाषा की शब्द-निरूपणता से ही करनी ठीक नहीं। हिंदी टंकन-कला में हुए आद्यतन-अनुभावों ने सिद्ध किया है कि अँग्रेज़ी में लिखा हुआ पूरा पृष्ठ हिंदी में केवल तीन-चौथाई भाग में ही आ जाता है।

'संक्षेप' को भाषा का गुण समझा जा सकता है यदि भाषा में इससे कम यथार्थता नहीं आए। भाषा में यथार्थता का अर्थ है प्रत्येक बोध के लिए पृथक शब्द का होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे उनका परस्पर अंतर कितना भी सूक्ष्म हो । निम्न उदाहरणों से प्रकट होगा कि भारतीय-भाषाओं में अँग्रेज़ी की अपेक्षा अधिक यथार्थता है । 'यू वैन्ट' (You went) वाक्य चार अर्थ बोध कराता है—यू (You) एक वचन है या बहुवचन, पुल्लिग है या स्त्रीलिंग । संस्कृत और हिंदी में इन्हीं बोध क्रियाओं के लिए पृथक्-पृथक् निम्न वाक्य हैं :

संस्कृत	हिंदी
त्वम् गतः	तू गया
यूयम् गताः	तुम गए
त्वम् गता	तू गई
यूयम् गतवत्यः	तुम गईं

'सिस्टर इन लॉ' (Sister-in-law) का अर्थ है भाई की पत्नी—भ्रातृजाया—भाभी या पत्नी की बहिन—श्यालिका—साली । 'टाइम' (Time) ऐहिक काल का द्योतक है—प्रतिदिन के क्रियाकलाप की अवधि में अंतर—समय—का मापक है, या एक निश्चित वेला है । 'ब्रोकन' (Broken) के दोनों अर्थ हैं—अपने आप फूट गया भी, और किसी अन्य द्वारा फोड़ा (भंजित) भी । यह अकेला उदाहरण नहीं है । अँग्रजी में हेतुक के अभाव के कारण ऐसे सब प्रसंगों में अस्पष्टता होती है। इसी प्रकार, स्वयं प्रेरणा से लिखे गए और किसी अन्य के द्वारा प्रवृत्त करने पर लिख गए के लिए अँग्रेज़ी में विभिन्न शब्द नहीं हैं जैसे कि संस्कृत में 'लिखित' और 'लेखित' शब्द हैं ।

समक्षेत्र प्राकृतिक भूमि स्थली और मनुष्य-निर्मित भूमि स्थला, दोनों के लिए एक ही 'प्लेन'(Plane) शब्द प्रयुक्त होता है ।

बालों का जूड़ा, बालों की लट, सिर के बाल, और जटाजूट के लिए हेयर (Hair) शब्द ही है न कि कबरी, कैश्य, मूर्धज और जटा आदि शब्द ।

इस प्रकार के उदाहरण कई गुना हो सकते हैं ।

कई बार यथार्थता की दृष्टि से विभिन्न अनुभवों के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों के स्थान पर एक ही सामान्य शब्द होता है, कारण—किसी की इच्छा उस का विशेष उल्लेख करने की न हो । चारों समकोण और समभुजाओं वाली आकृति को 'वर्ग' कहते हैं, और, दो समानांतर भूजाओं वाली को 'समचतुर्भुज' कहते हैं । किसी कहने वाले की इच्छा न 'वर्ग' की और न 'सम-चतुर्भुज' कहने की है ; अपितु उस आकृति का उल्लेख करने की है जिसमें इन दोनों के सामान्य लक्षण हों । ऐसे प्रसंग में 'चतुर्भुज' कहना निश्चित रूप से अधिक उपयुक्त है, क्योंकि यह शब्द चतुर्भुज आकृति का प्रकार वर्णन नहीं करता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यायता के इस रूप में भी संस्कृत-शब्द अँग्रेज़ी-शब्दों से बढ़कर हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई यह नहीं कहना चाहता कि कोई वस्तु अपने आप फूट गई या किसी ने तोड़ी है तो वह 'खंडित' शब्द का प्रयोग कर सकता है। इसी प्रकार 'स्थल' शब्द अधिक उचित है यदि हमें प्राकृतिक या अप्राकृतिक भूमि का उल्लेख नहीं करता है 'व्यवसाय–बंधु' के सदृश 'विवाह–बंधु "भी है जो ब्रदर इन लॉ (Brother-in-law) के भाव का द्योतक हैं—चाहे पत्नी का भाई हो, चाहे बहिन का पति।

ऐसे उदाहरण अनगिनत हैं।

एक-पक्षीय उदाहरण देने का आरोप :

अब तक दिए गऐ तर्कों के आधार पर कोई पाठक आपत्ति कर सकता है कि लेखक ने जान-बूझ कर वे उदाहरण चुने हैं जो भारतीय भाषाओं की उत्कृष्टता सिद्ध करने के पक्ष में हैं—और—इस प्रकार का एक पक्षीय उदाहरण कुछ सिद्ध नहीं करता।

इसके उत्तर में लेखक यह स्पष्ट कर देना चाहता है कि अँग्रेज़ी के समर्थन में उदाहरणों के प्रति वह सचेत है। लेकिन उसका आशय तो तब पूर्ण हो जाता है जब पाठक अनुभव करने लगता है कि संस्कृत के पक्ष में दिए जाने वाले उदाहरण लाखों की संख्या में हैं, चाहे उन्हें जानबूझ कर या अनजाने में चुना गया हो। उसके विचार से, यह इस बात से सिद्ध हो जाता है कि अब तक लिखे गए शब्दों के उपयुक्त पर्याय अंग्रेज़ी में नहीं हैं।

बहु चर्चित अँग्रेज़ी-भाषा का श्रेष्ठताधिकार लोगों के मन में अनेक कारणों से विश्वास प्राप्त करता है। उनमें एक है कि समाचार-पत्रों के प्रकाशक-संपादक तथा गंभीर-वृत्ति के लेखकों को उन विचारों की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है जो वे मूलतः अंग्रेज़ी के माध्यम से ग्रहण करते हैं। अतः वे निरंतर अँग्रेज़ी के पर्याय भारतीय भाषाओं में खोजने में लगे रहते हैं। जैसा कि प्रत्येक अनुवादक जानता है, एक भाषा के पर्याय दूसरी भाषा में ढूंढ़ना एक दुःसाध्य कार्य है, चाहे कोई भी भाषा क्यों न हो। लेकिन, यह साधारण तथ्य विस्मृत कर दिया जाता है, और विचार कर लिया जाता है कि यह दुःसाध्यता भारतीय-भाषाओं की परंपरागत निर्धनता के कारण है। इस भावना से छुटकारा पाने के लिए अनुवादक को भारतीय-भाषा में प्राप्त मूल-सामग्री का अंग्रेज़ी में अनुवाद करने भर की देर है—उसे अँग्रेज़ी भाषा की दरिद्रता का निश्चित रूप से दर्शन होगा।

अंग्रेज़ी के समर्थन में उदाहरण :

एक पक्षीय उदाहरण चुन लेने के आरोप का निराकरण करने के लिए अब हम अंग्रेज़ी के पक्ष के उदाहरण लेंगे। ऐसे उदाहरण प्रायः तीन निम्नवर्गों में आते हैं :—
(1) विज्ञान के—जिनका अधिकतर विकास यूरोप में हुआ—तकनीकी या पारिभाषिक शब्द। वैज्ञानिकों ने ऐसे शब्दों की कृत्रिम रूप से रचना कर ली थी। उनके संस्कृत समानार्थक शब्द आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं। वास्तव में, संस्कृत की उत्पादकता एवं शब्द-निरूपण में लचीलापन होने के कारण संस्कृत पर्याय अधिक

जून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त, यथार्थ और समझने में सुगम हैं। इस कथन की पुष्टि एवं प्रशंसा के लिए केवल निम्न उदाहरणों पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है :

(1) Entomology	कीट-शास्त्र
(2) Differential calculus	शून्य-लब्धि
(3) The Centre of Gravity	गुरुत्व-मध्य
(4) Statistics	सांख्यिकी गण-शास्त्र

कौन सी भाषा में जिह्वा को अधिक श्रम पड़ता है :

इन उदाहरणों का चुनाव जान-बुझ कर नहीं किया गया। यह प्राय: सुना गया है कि संस्कृत शब्द जिह्वा को ऐंठने वाले हैं, और यह बात वे लोग कहते हैं जिन्होंने सारे जीवन अँग्रेज़ी के शब्दों का सही उच्चारण करने के असफल प्रयत्नों में जिह्वा को ऐंठन प्रदान की है। जो इस स्थिति के वास्तविक तथ्य जानना चाहते हैं वे केवल—

(1) अँग्रेज़ी के 'प्रोनीम्स' (Pronemes) की संख्या और उनके संस्कृत-पर्याय गिन लें।

(2) और स्वयं से पूछें कि अँग्रेज़ी और संस्कृत तथा अपनी मातृभाषा के अध्ययन में समान समय व्यतीत करने पर, अँग्रेज़ी और संस्कृत शब्दों को प्रथम बार देखने पर, वे, दोनों शब्दों में से किन को सुगमतापूर्वक समझते हैं।

उन्हें मालूम पड़ जाएगा कि इन दोनों प्रश्नों के उत्तर का वहुमत संस्कृत के पक्ष में होगा।

स्टेटिस्टिक्स (Statistics) शब्द उच्चारण की दृष्टि से, सांख्यिकी की अपेक्षा न तो लघु है न ही सुगम——इतना ही नहीं, यह पूर्णत: समझने के अयोग्य है——इस शब्द, की व्युत्पत्ति का कोई संबंध इसकी विषय वस्तु से नहीं। इसके विपरीत 'सांख्यिकी' शब्द स्पष्ट अर्थ बतलाता है कि यह संख्या के विज्ञान का पर्याय है—और 'गणशास्त्र' शब्द अपने आशयपूर्ण संक्षेप में स्पष्ट करता है कि इस का अर्थ है समुदाय के संख्या सूचक गुणों का विज्ञान। ('गण' का अर्थ है समुदाय (A group) धातु 'गण' गिनती क्रिया के लिए है।

(3) अँग्रेज़ी के दूसरी श्रेणी के शब्द जिनका भाषाओं में रूपांतर किया जाना कठिन है—वे हैं 'बॉल, विग' (Ball, Wig) आदि—अर्थात् वे शब्द जो अँग्रेज़ों के या यूरोपीय समाज के रीति-रिवाजों के द्योतक हैं। लेकिन ऐसे शब्द प्रत्येक भाषा में मिल सकते हैं। 'धोती', 'फुगड़ी' आदि शब्दों का अँग्रेज़ी में रूपांतरित किया जाना उतना ही कठिन है जितना बॉल, विग आदि का भारतीय भाषाओं में किया जाना।

(4) तीसरी और परमावश्यक श्रेणी है। स्नॉब, सिनिक, फ्लरटिंग और सुपर सिलिअस (Snob, Cynic, Flirting, Supercilious) आदि अनेक शब्दों की। इन शब्दों ने अर्थ ग्रहण किया है व्यवहार-प्रयोग से—न कि व्युत्पत्ति से। उनकी

[शेष पृष्ठ 38 पर]

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोश-निर्माण में अर्थ-क्रम-योजना

देवेंद्रकुमार वर्मा

कोश के दो पक्ष होते है : शब्द और अर्थ। शब्द-क्रम का निर्धारण शब्द-कोश में नितांत आवश्यक है। शब्दों का संग्रह मात्र कोश नहीं कहला सकता। शब्द-क्रम का निर्धारण एक विशेष पद्धति के अनुसार एक निश्चित ढंग से वैज्ञानिक आधार पर किया जाता है। शब्द-क्रम का संयोजन करने के लिए सामान्यतः जिस पद्धति को व्यवहार में लाया जाता है, वह है 'अकारादि-क्रम पद्धति'। एक शब्द को सर्वप्रथम एक स्लिप पर लिख लिया जाता है और पेटिका में उस अक्षर के खाने में डाल दिया जाता है। इसके उपरांत जब यह कार्य पूर्ण हो जाता है, तो उस अक्षर के शब्दों को क्रमानुसार संकलित कर लिया जाता है।[1]

कोश-निर्माण में शब्द-क्रम-संयोजन का जितना महत्व है, उससे कहीं अधिक महत्तव 'अर्थ-क्रम-संयोजन' का है। शब्द तो स्थूल रूप है, अर्थ उसका सूक्ष्म एवं महत्तवपूर्ण अंग है। शब्द-क्रम-संयोजन का उद्देश्य भी अर्थों की व्याख्या करना ही होता है। इसी संदर्भ में श्री रामचंद्र वर्मा ने अपनी पुस्तक 'कोश-कला' में लिखा है—"शब्द-कोश का वास्तविक महत्तव उसमें दिए हुए अर्थों और व्याख्याओं पर आश्रित है, क्योंकि उसका मुख्य उपयोग अर्थ और परिभाषा या व्याख्या जानने के लिए ही होता है। कभी-कभी लोग शब्दों के शुद्ध रूप, अक्षरी, निरुक्ति, लिंग, शब्द भेद आदि जानने के लिए भी कोशों का सहारा लेते हैं, पर कोश का यह उपयोग अर्थों वाले उपयोग की तुलना में गौण ही होता है। अतः हम कह सकते है कि शब्द वस्तुतः शब्द-कोश के शरीर मात्र के रूप में होते हैं, उसके प्राण या आत्मा का स्थान अर्थों और व्याख्याओं को ही प्राप्त है।"[2] इसी संदर्भ में दूसरा मत भी दृष्टव्य है। प्रो० विजय-कुमार शुक्ल ने अपने शोध-निबंध "कोश-निर्माण की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि" में शब्द और अर्थ के संबंध को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"शब्द की स्थूलता में अर्थ उसी प्रकार सूक्ष्म रूप से सिमटा रहता है, जिस प्रकार शरीर से आत्मा। इसीलिए शब्द

---

[1] इस विषय का विस्तृत विवेचन लेखक ने अपने शोध-निबंध 'कोश-निर्माण में शब्द-क्रम-योजना' में किया है। देखिए 'भाषा' त्रैमासिक, अंक मार्च' 64।

[2] देखिए रामचंद्र वर्मा कृत 'कोश-कला', पृष्ठ 113।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के गर्भ से नए अर्थ को साहित्यकार जन्म देता है और कोशकार नए अर्थ रूपी वा… को कोश में स्थान देकर मान्यता प्रदान करता हैं। शब्द अनेक अर्थों की इकाइयों… समष्टि है। शब्द की समष्टि में अर्थ की सत्ता को अभिव्यंजित करने की क्ष… कलात्मक तत्वों से संपन्न कोशकार में होना आवश्यक है।"[1] श्री रामचंद्र… और प्रो० विजयकुमार शुक्ल के मतों से सहमति व्यक्त करते हुए मैं भी यही कह… चाहूँगा कि अर्थ-उद्घाटन के निमित्त ही कोश की उपयोगिता है। कोई भी जिज्ञा… व्यक्ति कोश की सहायता प्राय: किसी शब्द का अर्थ जानने के लिए ही लेता है। … यदि किसी कोश में शब्द-क्रम का निर्धारण तो निश्चित ढंग से विशेष पद्धति… अनुसार किया जाए लेकिन अर्थ-क्रम का संयोजन न किया जाकर उसे सुनिश्चि… पद्धति-रूप में न रखा जाए तो कोशकार की अल्पज्ञता का ही परिचय मिलेग… अत: एक कोशकार को इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि शब्द के अ… भी अकारादि क्रम में संयोजित हों।

अर्थ स्वयं कोई विशेष और अलग अस्तित्व नहीं रखता। वह कोश में ही अन्य स्था… पर शब्द रूप में रहता है। अत: हम कह सकते हैं कि अर्थ शब्द का ही एक रूप है… अर्थों का निश्चित स्वरूप होता है। शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। शाब्दिक अ… पर्यायवाची, लाक्षणिक अर्थ। इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रो० विजय कुमा… शुक्ल के विचार भी दिए जा रहे हैं। उनके शब्दों में "अर्थ के बिना शब्द महत्तवशू… एवं अस्तित्वहीन है। कहने के लिए अर्थ भी शब्द ही है। जब एक शब्द अलग-अल… किसी दूसरे शब्द के व्यक्तित्व को बोधगम्य बनाने में समर्थ होता है तो वह अर्थ प… में स्थान पाकर समानार्थक कहा जाता है, और जब अनेक शब्द किसी शब्द विशेष की… व्याख्या मात्र करने में समर्थ होते हैं तो वे अर्थप्रधान शब्द समूह हो जाते हैं। इस… लिए अर्थ-पक्ष को विज्ञान की दृष्टि से न देखकर कलात्मक दृष्टि से देखना चाहिए… एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं और अनेक अर्थों में अनेक भाव, विचार, दृष्टिको… बोध हो सकते है।"[2]

शब्द-कोश में जिस प्रकार शब्द-क्रम आवश्यक है, उसी प्रकार व्यवस्था की दृष्टि… से या कोश को विज्ञान सम्मत बनाने की दृष्टि से अर्थ-क्रम भी आवश्यक है, अर्थ… को अकारादि-क्रम में संयोजित करने का एक लाभ यह भी होगा कि जिज्ञासुओं को… अर्थों की जानकारी भी अकारादि क्रम से हो जाएगी और शब्दों का अर्थ भी आसानी… से मालूम हो जाएगा। अर्थों को अकारादि क्रम में न संयोजित करने पर कोश की… सहायता लेने वाले को अर्थ जानने में कतिपय कठिनाइयाँ महसूस होंगी। इस अभाव… के अनेक दुष्परिणाम हुआ करते हैं। कोश अनेक दृष्टियों से अपूर्ण रह जाते हैं। … किन्हीं-किन्हीं कोशों में कहीं-कहीं पर्याय पहले दे दिए जाते हैं और उसकी व्याख्या… बाद में की जाती है। किन्हीं-किन्हीं कोशों में पहले व्याख्या दे दी जाती है और पर्याय… बाद में दिए जाते हैं। इससे शब्द-कोशों के निर्माण में एक रूपता नहीं आ पाती।

[1] देखिए सम्मेलन-पत्रिका : वर्ष 47, संख्या तीन, आषाढ़-भाद्रपद 1883 शक, पृष्ठ 113।

[2] सम्मेलन पत्रिका : संख्या 3, आषाढ़-भाद्रपद, 1883 शक, पृष्ठ 111।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोश में शब्दों की भांति अर्थों की व्यवस्था भी अकारादि क्रम से न होने पर अनेक अर्थ स्वयं में संदिग्ध अवस्था प्राप्त कर लेते हैं। कोशकार की असावधानी से इस प्रकार की त्रुटियाँ कतिपय कोशों में देखी जा सकती हैं। श्री रामचंद्र वर्मा ने इसी संदर्भ में अपनी पुस्तक में लिखा है—"जिन कोशों में शब्दों के अर्थ और व्याख्याएँ बिल्कुल ठीक, शुद्ध और स्पष्ट न हों और जिनके उपयोग से पाठकों की आशंकाओं का निवारण तथा ज्ञान की वृद्धि न हो, वे कोश बहुत कुछ निर्जीव या अल्पप्राण शरीर के समान होते हैं।"[1]

अर्थ-क्रम-व्यवस्था या योजना अकारादि-क्रम से ही की जाती है। कोश में सबसे पहले समानार्थक या पर्यायवाची शब्दों को स्थान दिया जाना चाहिए। समानार्थकों को भी अकारादि क्रम में संयोजित करना अधिक उपयुक्त होगा। समानार्थक या पर्यायवाची शब्दों को अकारादि-क्रम में रखने के उपरांत उनके संदर्भ में उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जानी चाहिए। व्याख्या अधिक स्पष्ट, सरल और व्यापक होनी चाहिए जिससे उसका अर्थ जिज्ञासु को स्पष्ट हो सके। उदाहरण के लिए यदि मनुष्य शब्द का अर्थ कोशकार को स्पष्ट करना है तो उसे इस प्रकार देना अधिक संगत होगा।

मनुष्य : आदमी (वह प्राणी जिसका संबंध सूत्र आदम से है), इंसान (वह प्राणी जिसमें मानव एवं सामाजिक मूल्य हों)—इत्यादि।

इसके विपरीत यदि मनुष्य का अर्थ देते समय कोशकार सिर्फ आदमी या इंसान लिख देता है तो वह कोशकार के कर्तव्यों को पूरा नहीं करता। वह कोश की सहायता लेने वाले जिज्ञासुओं के साथ अन्याय करता है। इसी संदर्भ में यह उल्लेख कर देना भी सामयिक है कि अर्थ-उद्घाटन में व्याकरण की भी सहायता लेनी चाहिए। जहाँ तक संभव हो, शब्द जिस 'शब्द-भेद' के अंतर्गत आता हो, उसके समानार्थक या पर्यायवाची भी उसी 'भेद' के अंतर्गत आएँ। उदाहरण के लिए—"(1) उन्मादक (वि०) उन्मत्त, उन्माद-ग्रस्त करने वाला, (2) उन्नयन (वि०) जिसकी आंखें ऊपर उठी हों (पु०) उठाना, उन्नति की ओर ले जाना, निकालना, खींचना।" प्रथम अर्थ तो ठीक है लेकिन दूसरे उदाहरण के लिए अर्थ-पक्ष के व्याकरण के संबंध में मेरा सुझाव है—"उन्नयन (वि०) ऊपर को उठी हुई, उन्नत (आँखे) (पु०), उठाने का कार्य, उन्नति की ओर ले जाने का कार्य, निकालने का कार्य, खींचने का कार्य।"[2] अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए यथास्थान सुविधानुसार चित्रादि (Illustration) भी देने से उसके सही स्वरूप का ज्ञान हो सकेगा। उदाहरण के लिए 'मयूर' शब्द के पर्यायवाची या समानार्थक देने के साथ ही साथ उसका एक रेखाचित्र देना भी अधिक आकर्षक होगा। इसी प्रकार 'गाय' का अर्थ-उद्घाटन करते समय मात्र 'एक चौपाया' लिख देने से उसका स्वरूप उभर कर हमारे समक्ष नहीं आता और हमें कुछ कमी सी (अधूरापन) महसूस होती है। इस पद्धति को आंग्ल भाषा के कोशकारों ने अपनाया है लेकिन हिंदी भाषा कोशकारों की दृष्टि इस ओर कम हो गई है। पर्यायवाची या समानार्थकों की व्याख्या करने के उपरांत कोशकार को उस शब्द से

---

[1] देखिए रामचंद्र वर्मा कृत 'कोश-कला', पृष्ठ 113।

[2] सम्मेलन पत्रिका, संख्या 3, आषाढ़-भाद्रपद, 1883 शक, पृष्ठ 113।

सून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधित मुहावरों को भी देना चाहिए। जो मुहावरे बहुत अधिक समय से प्रचलन में हों, उनका दिया जाना तो नितांत आवश्यक है। मुहावरों का शीर्षक संक्षिप्त मुहा० के द्वारा प्रस्तुत कर समस्त मुहावरों के क्रम को अकारादि-क्रम में व्यवस्थित कर उनके भिन्न-भिन्न अर्थों का संदर्भ भी अकारादि क्रम से देना चाहिए। इस पद्धति का अनुशीलन कहावतों को कोश में देते समय भी करना चाहिए। कहावतों के लिए संक्षिप्त शीर्षक कहा० दिया जाना ठीक होगा।

"संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर" से कुछ शब्द और उनके अर्थों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है—

बैर=संज्ञा पु० (सं० वैर) (1) शत्रुता। विरोध। अदावत। दुश्मनी।
(2) वैमनस्य। द्वेष।

मुहा० **बैर काढ़ना या निकालना**=बदला लेना।
उ० यह विधि सब नवीन पायो व्रज काढ़त बैर दुरासी।—सूर०
बैर ठानना=दुश्मनी मान लेना। दुर्भाव रखना। आरंभ करना।
उ० सिर करि धाय कंचुकी मारी,
अब तो मेरो नांव भयो।
कालि नहीं यहि मारग सेंहों,
ऐसो मोसों बैर ठयो।—सूर०
बर पड़ना=शत्रु होकर कष्ट पहुँचाना।
बैर विसाहना या मोल लेना=किसी से दुश्मनी पैदा करना।
बैर लेना=बदला लेना। कसर निकालना।
उ० लेहों बैर पिता तेरे को, जैहे कहाँ पराई? सूर०[1]

ऊपर दिए गए उदाहरण में अर्थों को अकारादि-क्रम में संयोजित करने की दिशा में ध्यान नहीं दिया गया है। इसीलिए अकारादि-क्रम को दृष्टि से देखने पर यह संपादकार की भूल कही जाएगी। इसे सही रूप में निम्नानुसार दिया जाना चाहिए।

बैर—संज्ञा पु० (सं० वैर) 1. अदावत। दुश्मनी। विरोध। शत्रुता।
2. द्वेष। वैमनस्य।

मुहा०—**बैर काढना या निकालना**=बदला लेना।
उ० यह विधि सब नवीन पायो ब्रज काढ़त बैर दुरासी। —सूर०
बैर ठानना=दुर्भाव रखना-आरंभ करना। दुश्मनी मान लेना।
उ० सिर करि धाय कंचुकी भारी, अब तो मेरो नांव भयो।
कालि नहीं यही मारग एहों,
ऐसो मोसों बैर ठयो।—सूर०

[1] देखिए 'संक्षिप्त हिंदी शब्द-सागर', पृष्ठ 639।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैर पड़ना=शत्रु होकर कष्ट पहुँचाना।

बैर बिसाहना या मोल लेना=किसी से दुश्मनी पैदा करना।

बैर लेना—कसर निकालना। बदला लेना।

उ० लेहौं बैर पिता तेरे को, जैहें कहाँ पिराई ?—सूर०

संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर' से ही एक और शब्द को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया रहा है। जिससे कहावतों और मुहावरों को कोश में देने के महत्व का प्रतिपादन हो सके—

साँस=संज्ञा स्त्री० (सं० श्वास) 1. नाक या मुँह के द्वारा बाहर से हवा खींचकर अंदर फेफड़ों तक पहुँचाने और उसे फिर बाहर निकालने की क्रिया। श्वास। दम।

मुहा०—**साँस उखड़ना**=मरने के समय रोगी का बड़े कष्ट से साँस लेना साँस टूटना।

साँस उपर नीचे होना=साँस का ठीक तरह से ऊपर नीचे न आना। साँस रुकना।

साँस चढ़ना=बहुत परिश्रम करने के कारण सांस का जल्दी-जल्दी आना और जाना।

साँस टूटना=दे० 'सांस उखड़ना'।

साँस तक न होना=बिल्कुल चुपचाप रहना। कुछ न बोलना।

साँस फूलना=बार-बार सांस आना और जाना। सांस चढ़ना।

साँस रहते=जीते जी।

उल्टी साँस लेना=(क) दे० 'गहरी सांस लेना'।

(ख) मरने के समय रोगी का बड़े कष्ट से अंतिम साँस लेना।

गहरी, ठंडी या लंबी साँस लेना=बहुत अधिक दुख आदि के कारण बहुत देर तक अंदर की ओर वायु खींचते रहना और उसे कुछ देर तक रोक कर बाहर निकालना।

2. फुरसत।

मुहा० **साँस लेना**=विश्राम लेना। ठहरना।

3. गुंजाइश। दम।

4. संधि या दराज जिसमें से हवा आ जा सकती हो।

5. किसी अवकाश के अंदर भरी हुई हवा।

मुहा० **साँस भरना**=किसी चीज के अंदर हवा भरना।

6. दम फूलने का रोग। श्वास। दमा।[1]

---

[1]देखिए 'संक्षिप्त हिंदी शब्द-सागर', पृष्ठ 969।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उपर्युक्त उदाहरण में भी अर्थ-क्रम का निर्धारण अकारादि-क्रम से नहीं गया है। इसमें इस दृष्टि से कई गलतियाँ हैं। दूसरा अर्थ पहले और पहला में होना चाहिए था। पाँचवा अर्थ, क्रमानुसार दूसरा, और छठवाँ चौथे क्रम पर होना चाहिए था। भविष्य में कोई-निर्माण करते समय कोशकारों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोश-निर्माण के संदर्भ में अर्थ-क्रम-योजना का संक्षिप्त विवेचन कर मुझे उपरांत उसके प्रस्तावित रूप को इस विषय के विद्वानों के सम्मुख रखकर इस निबंध को परिसमाप्ति करना चाहूँगा। मेरे विचारानुसार किसी शब्द के अर्थ का उद्घाटन करते समय हमें सबसे पहले उसका समानार्थक या पर्यायवाची देना चाहिए। इसके उपरांत उस समानार्थी या पर्यायवाची की व्याख्या करनी चाहिए। केवल समानार्थक देने मात्र से काम नहीं चलेगा। समानार्थक की व्याख्या करने के उपरांत उस शब्द का लाक्षणिक अर्थ देना चाहिए। लाक्षणिक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण देते चलना अधिक अच्छा होगा। यदि किसी शब्द विशेष का किसी प्रसंग विशेष में कोई विशेष अर्थ हो तो उसे भी इसी समय दे देना चाहिए। कभी-कभी कई कारणों से अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए पहले 'पत्र' शब्द का प्रयोग केवल किसी पत्ते पर लिखे गए पत्र के लिए ही होता था लेकिन आज चाँदी और सोने के पतले टुकड़े भी पत्र कहलाते हैं और उसके अर्थ का विस्तार हो गया है। इसी प्रकार 'मृग' शब्द का प्रयोग पहले पशुमात्र के लिए होता था। यह एक जातिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता था लेकिन अब एक पशु विशेष 'हरिण' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। अतः कोशकार को अर्थ-उद्घाटन करते समय उसके बदले हुए अर्थ को देते हुए पूर्व समय में प्रचलित अर्थ को भी देकर इस बात को स्पष्ट करना चाहिए कि पहले यह शब्द दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होता था, लेकिन अर्थ परिवर्तन होने के उपरांत वर्तमान समय में यह बदले हुए अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इससे यह लाभ होगा कि कोश की सहायता लेने वाला उसके दोनों अर्थों से परिचित हो जाएगा और प्रसंगानुसार उसका अर्थ लगा लेगा। समानार्थकों और लाक्षणिक अर्थों को देने के उपरांत उस शब्द से संबंधित मुहावरों और कहावतों को भी क्रम से देना चाहिए। शब्द से बने हुए मुहावरों और कहावतों को भी उदाहरण देकर समझाने से वे अधिक स्पष्ट हो जाएँगे। मुहावरों और कहावतों को भी क्रम से अकारादि क्रम में संयोजित क उचित होगा। मेरे विचारानुसार यथास्थान, प्रसंगानुसार शब्द के आकार-प्रक को स्पष्ट करने के लिए चित्रादि (Illustıation) भी दिए जाने चाहिए। इस ओर हिंदी भाषा के कोशकारों का ध्यान बहुत कम गया है जबकि इस ओर ध्यान दिया जाना अत्यंत आवश्यक है। वे शायद इसलिए इस झंझट में नहीं पड़ना चाहते क्योंकि उनको उन समस्त वस्तुओं के आकार-प्रकार का ज्ञान नहीं रहता और वे मात्र दूसरे कोशों की सहायता लेकर नया कोश तैयार कर यश प्राप्ति करना चाहते हैं। लेकिन अज्ञान को दूर करने के बदले उसमें ही लिपटे रहने की प्रवृत्ति न प्रशंसनीय कही जा सकती है और न शोभनीय ही। आंग्ल भाषा के कोशों में यथास्थान चित्रादि देने की परंपरा दिखलाई पड़ती है जो कि हमारे लिए अनुकरणीय है।

अपने प्रस्तावित रूप को स्पष्ट करने के लिए मैं एक उदाहरण देना चाहूँगा—
साफ़—वि० (अ०) 1. उज्जवल (जिसमें दीप्ति हो)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. पवित्र (जो गंदा, मैला या खराब न हो) ।
3. निर्मल (जिसमें किसी प्रकार का मैल न हो, मल-रहित) ।
4. निष्कपट (जिसमें किसी प्रकार का छल न हो) ।
5. शुद्ध (जिसमें किसी प्रकार की मिलावट न हो) ।
6. समतल (जिसकी सतह बराबर हो) ।
7. सादा, कोरा (जिसके ऊपर कुछ अंकित न हो) ।
8. स्वच्छ (जिसमें किसी प्रकार की गंदगी न हो) ।

मुहा० **काम की सफाई**=अच्छी तरह से काम करना । स्वच्छतापूर्वक कार्य करना ।

उ० काम की सफ़ाई पर ध्यान देना चाहिए ।

साफ़ करना=(1) मार डालना । हत्या करना ।
(2) नष्ट करना । बरबाद करना ।

उ० लक्ष्मीबाई ने देखते ही देखते अँग्रेज़ों को साफ़ कर दिया ।

साफ़ बोलना=स्पष्ट कहना ।

उ० मनुष्य को हमेशा साफ़ बोलना चाहिए । साफ़ बोलना, सदा खुश रहना ।

हाथ साफ़ करना=जेब काटना । पैसे चुरा लेना ।

उ० जेब कतरे ने देखते ही देखते उसकी जेब पर हाथ साफ़ कर दिया ।

उपर्युक्त उदाहरण में समानार्थकों एवं मुहावरों को भी अकारादि-क्रम में नियोजित करने की चेष्टा की गई है । मुहावरों को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या दी गई है और साथ ही साथ उदाहरण भी दिए गए हैं । रेखाचित्र भाववाचक संज्ञाओं आदि के दिए ही नहीं जा सकते, अतएव अन्य संज्ञा प्रकारों को यदि संभव हो तो अवश्य ही चित्रांकित करना चाहिए तब अन्य भाषा-भाषी लोगों के लिए कोश उपादेय होगा ।

हिंदी भाषा को अंग्रेज़ी भाषा के समकक्ष पहुँचानेके लिए इसमें अच्छे शब्दकोशों का होना अनिवार्य है । अभी तक जिस तीव्रगति से हिंदी भाषा में कोशों का निर्माण कार्य संपन्न हो रहा है, उसके लिए कोश-निर्माण के सिद्धांतों का प्रतिपादन वैज्ञानिक रूप में नहीं हुआ । कोश-निर्माण के व्यावहारिक क्षेत्र में होने वाली प्रगति में कोश-निर्माण संबंधी सिद्धांतों का भी वैज्ञानिक विवेचन होना अनिवार्य है अन्यथा भविष्य में इस संबंध में अनेक भ्रांतियाँ फैल सकती हैं । इस दिशा में जो कुछ भी कार्य संपन्न हुआ है, वह पर्याप्त नहीं है । इस निबंध के लेखक के मतानुसार कोश-निर्माण के सैद्धांतिक पक्ष के संदर्भ में ही कोश-निर्माण की ऐतिहासिक प्रगति का मूल्यांकन किया जाना चाहिए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंदी-भाषी छात्रों द्वारा की जानेवाली भूलें

श्रवण कुमार गोस्वामी

अँग्रेज़ी के संबंध में ऐसा कहा जाता है कि यह एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि अँग्रेज़ी का प्रयोग सर्वत्र एक ही रूप में होता है, परंतु सत्य इसके विपरीत है। अमरीका की अँग्रेज़ी ग्रेट ब्रिटेन जैसी नहीं। यदि भारत को ही लें, तो बंगाल और दक्षिण भारत की अँग्रेज़ी में ही उच्चारण देखा जा सकता है। ऐसी ही स्थिति हिंदी की भी है। जो हिंदी उत्तर प्रदेश में बोली जाती है, वह बिहार में नहीं और बिहार की हिंदी राजपूताने में नहीं। जब दूसरी भाषा के छात्र हिंदी लिखना या बोलना प्रारंभ करते हैं, तो अपनी भाषा एवं संस्कार के अनुरूप ही वे शब्दों का प्रयोग करते हैं। नवंबर, 1962 में प्राक्-विश्वविद्यालय के अहिंदी-भाषी छात्रों की 43 उत्तर-पुस्तिकाएँ मुझे परीक्षार्थ दी गईं, जिनमें उत्तर-पुस्तिकाएँ उर्दू भाषी, 12 उत्तर-पुस्तिकाएँ बंगाली-भाषी तथा तीन उत्तर-पुस्तिकाएँ दक्षिण भारत के छात्रों की थीं। इन छात्रों ने हिंदी लिखने में अलग-अलग ढंग से भूलें कीं। इनके वाक्यों की रचना भी एक-दूसरे से भिन्न थी। हिंदी शब्दों को इन छात्रों ने जो नूतन रूप प्रदान किया, उस पर मैं विचार करना चाहूँगा। तो इनकी वाक्य-रचना पर भी अलग से विचार किया जा सकता है और वह भी मनोरंजक अध्ययन होगा। नीचे क्रमशः छात्रों द्वारा की गई भूलों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

बंगाली-भाषी छात्रों द्वारा की गई भूले

1. बंगाली-भाषी छात्र 'व' तथा 'ब' के अंतर पर ध्यान नहीं देते, फलस्वरूप 'व' तथा 'ब' का मनमाना प्रयोग करते हैं, यथा :

अशुद्ध	शुद्ध
बिभाग	विभाग
बिद्या	विद्या
बिनती	विनती
जव	जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घात्र	घाव
ठहराब	ठहराव

2. 'ब' के स्थान पर 'प' का प्रयोग :

हिसाप	हिसाब
पेशाप	पेशाब
खराप	खराब

3. 'ड़' के स्थान पर 'र' का प्रयोग :

परता	पड़ता
चपड़ासी	चपरासी
पकराना	पकड़ाना
दौराना	दौड़ाना
छोरना	छोड़ना

4. 'ा' का अतिरिक्त प्रयोग :

राखा	रखा
राखी	रखी
चापड़ासी	चपरासी
मरामत	मरम्मत
पाढ़ना	पढ़ना

5. 'े' का अतिरिक्त प्रयोग :

मेरामत	मरम्मत
सेकता	सकता
हेमरा	हमारा
नेई	नहीं

6. 'ई' का अनावश्यक प्रयोग :

ईस	इस
ईदर, ईधर	इधर

7. कभी-कभी 'ई' के स्थान पर 'य' का प्रयोग :

कई	कय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. बंगला की बोलचाल में प्रयुक्त शब्दों का हिंदी में हूबहू प्रयोग, जो वांछनीय नहीं :

हय	है
नेई	नहीं
एकला	अकेला
पोचोन्दो	पसन्द
गिया	गया
गिई	गई
देखाई	दिखाई
पुथी	पोथी
अज्जुन	अर्जुन
एई	यही
हमेसाई	हमेशा ही
डाकना	बुलाना

'माफिक' शब्द का प्रयोग बंगाली छात्र धड़ल्ले से करते हैं।

दक्षिण भारत के छात्रों द्वारा की गई भूल

1. 'ो' के स्थान पर 'ु' का प्रयोग :

जिसकु	जिसको
उसकु	उसको
आपकु	आपको
तुमकु	तुमको
रामकु	राम को

2. 'ख' के स्थान पर 'क' का प्रयोग :

रका	रखा
देका	देखा
कोला	खोला

3. 'ग' के स्थान पर 'क' का प्रयोग

बेकार	बेगार
दिमाक	दिमाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. 'छ' के स्थान पर 'च' का प्रयोग :

कुच	कुछ
पूचना	पूछना

5. 'ध' के स्थान पर 'द' का प्रयोग :

उदर	उधर
उदार	उधार
किदर	किधर
जिदर	जिधर

उर्दू-भाषी छात्रों द्वारा की गई भूलें

1. 'ु' के स्थान पर 'ो' का प्रयोग (जो उर्दू के अनुसार उचित ही है) :

मोताबिक़	मुताबिक़
होए	हुए
मोक़ाबला	मुक़ाबला
ग़ोस्सा	ग़ुस्सा
सोहाना	सुहाना
नोकीली	नुकीली (या नोकीली भी)
ख़ोदा	ख़ुदा
मोसाफ़िर	मुसाफ़िर
चोराई	चुराई
भोलाना	भुलाना

2. 'ि' के स्थान पर 'े' तथा 'ै' का प्रयोग :

जबके	जबकि
बलके	बल्कि
खैंची	खिंची
सेवा	सिवा
नेयम	नियम

3. 'ि' का लोप :

अपरचित	अपरिचित
परचित	परिचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलीप	दिलीप
मुखया	मुखिया
दवाली	दिवाली

4. 'इ' के स्थान पर 'ए' का प्रयोग :

एकट्ठे	इकट्ठे
एकावन	इक्यावन
एनामात	इनामात
एतवार	इतवार
एलाही	इलाही

5. 'ह' का अतिरिक्त प्रयोग :

ताज़ह	ताज़ा
ज्यादह	ज्यादा

6. 'ह' का लोप :

सुब	सुबह

7. अन्य उदाहरण :

तरब-तहवार	पर्व-त्यौहार
खआल	ख्याल
इलावा	अलावा
इसकूल	स्कूल
असथान	स्थान
भारत-बरस	भारतवर्ष
करम-संख्या	क्रम-संख्या
सरस्टा	स्रष्टा
सीरीमान्	श्रीमान्
पराचारया	प्राचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती भाषाभाषियों से हिंदी में होने वाली भूलें और उनके कारण

सुदर्शन सिंह मजीठिया

भारत में हिंदी के प्रचार, प्रसार के पश्चात् उदित हुई सामान्यत: कई समस्याओं में से यह भी एक समस्या है कि विभिन्न प्रांतीय भाषाभाषी जब हिंदी का प्रयोग पठन, पाठन, वाचन या लेखन में करते हैं तो उनके समक्ष कई कठिनाइयाँ आती हैं जिनका निदान न जान सकने के कारण वे भूलें करते हैं। इन भूलों का कारण उनके अपने भाषागत संस्कार तथा हिंदी के प्रति अज्ञान ही है। ये भूलें इसलिए भी होती है कि वे हिंदी भाषा के व्याकरण के माध्यम से अपने आशय को स्पष्ट नहीं कर पाते। हिंदी की प्रवृत्ति भी ऐसी है कि उसमें प्रादेशिक भाषाओं के प्रचलित या अप्रचलित शब्दों को प्रयोग में लाया जा रहा है। उसके कारण वे 'बाबा हिंदी' (विकृत हिंदी) बोलकर ही अपना काम चलाते रहते हैं। इन भूलों का एक कारण यह भी है कि वे हिंदी को सुगमता और सुबोधता से सीख लेते हैं जिससे उनका कार्य किसी न किसी प्रकार निकल जाता है। अपना आशय निकल जाने के पश्चात् उन्हें प्रयुक्त भाषा के सही या बिगड़े रूप की चिंता नहीं रह जाती। इतना ही नहीं बल्कि वह दोष या भूल एक परंपरा बन जाती है जिसका व्यवहार गलतरूप से वह व्यक्ति-विशेष हर समय करता रहता है। चूंकि अपना आशय प्रगट करने में उन्हें कठिनाई नहीं होती इसलिए अपनी भूलों को वे जान भी नहीं पाते। अन्य शब्दों में, ये भूलें गुजराती भाषाभाषियों के अपने भाषागत संस्कार, हिंदी व्याकरण तथा वर्तनी आदि की अनेकरूपता, गुजराती व्याकरण की अपूर्ण जानकारी, तथा हिंदी में अनेक स्रोतों से आए हुए शब्द भंडार के कारण होती है।

प्रथम कठिनाई तो लिपि संबंधी है। गुजराती शिरोरेखा विहीन लिपि है। देवनागरी लिपि का व्यवहार करते समय सामान्य गुजराती भाषाभाषी यही सोचने में व्यस्त रहता है कि क्या शिरोरेखा विहीन देवनागरी लिपि लिखी जा सकती है? यह कठिनाई उनके सामने अनेक रूप में आती है। शिरोरेखा विहीन देवनागरी लिखते समय उन्हें, ध, घ, म और भ का ध्यान रखना पड़ता है। हालाँकि यह समस्या नवीन देवनागरी लिपि में, ध और भ में घुंडियाँ लगा देने से सरल हो गई है। देवनागरी लिपि लिखते समय गुजराती लिपि की सहज गति की आदत उसमें अवरोध उपस्थित करती है। गुजराती लिपि की तुलना में देवनागरी लिपि की गति धीमी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती में हिंदी के ड़ और ढ़ वर्ण नहीं हैं। केवल ड और ढ ही है। ड़ और ढ़ के वर्ण हिंदी में कैसे आए और उनके प्रयोग के क्या निश्चित नियम हैं, एक दुर्बोध विषय है। गुजराती में ड़ और ढ़ की ध्वनि तो है जैसे, कापड़ या कढ़ी परंतु उनके लिए वर्ण नहीं। इसलिए लड़ाई, गड़बड़ी, पढ़ाई, अढ़ाई आदि को भूल से लडाई, गडबडी, पढाई और अढाई लिखा जाएगा तथा वैसे ही उसका उच्चारण भी होगा।

गुजराती के अनुनासिक और अनुस्वार के लिए पूर्ण चंद्र या बिंदु का ही प्रयोग होता है। अर्धचंद्रकार का प्रयोग लिखित रूप में गुजराती में नहीं होता। वैसे गुजराती भाषा में अनुनासिक और अनुस्वार ध्वनियों का व्यवहार बराबर होता है। गुजराती में अनुनासिक के लिए केवल ं चिह्न ही है। इस कारण हिंदी में हँसना, खाँसना आदि को हंसना, खांसना आदि लिखना स्वाभाविक है। इसके उचारण में भी कभी-कभी भूल से अनुस्वार का उच्चारण हो जाता है। हिंदी में अनुनासिक के प्रयोग के लिए निश्चित नियम या बंधन नहीं है। हिंदी शब्दों में कई स्थानों पर अनुस्वार लिखित रूप में नहीं लगाया जाता किंतु उसका उच्चारण होता है। यह गलती गुजराती भाषाभाषियों में भी देखी जा सकती है जैसे तू, कीमत, हमेशा को वे भूल से तूं, किंमत और हँमेशा लिखेंगे। नहीं, तुम्हें, आदि को गलती से नही और तुम्हे लिखेंगे।

लिपि संबंधी भूलों का कारण तो देवनागरी लिपि में एकरूपता का अभाव भी रहा है। भारत सरकार द्वारा देवनागरी का जो रूप स्थिर कर दिया गया है, अब उसका व्यवहार होना चाहिए। इससे गुजरातियों द्वारा किसी हद तक लिपि संबंधी भूलें कम होने की संभावना है। नवीन देवनागरी लिपि में गुजराती एवं अन्य कई भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होने वाली ळ ध्वनि को भी स्वीकार लिया गया है।

कई गलतियाँ वर्तनी संबंधी इसलिए भी होती हैं, क्योंकि एक ही शब्द दोनों भाषाओं में पाया जाता है किंतु अलग-अलग ढंग से लिखा जाता है। इस प्रकार अलग-अलग लिखने पर भी दोनों भाषाओं में उसका अर्थ समान ही रहता है। जैसे गुजराती में गुरु को गुरु लिखा जाएगा। इसलिए हिंदी में भी इस प्रकार लिखा जाना स्वाभाविक ही है।

गुजराती भाषा में म वर्ण के पश्चात् जहाँ भी ह वर्ण का व्यवहार हुआ है वहाँ े की मात्रा ह पर ही लगी है इसलिए मेहमान, मेहरबान, मेहतर आदि गुजराती में महेमान, महेरबानी और महेतर लिखे जाएँगे। जब इन शब्दोंको गुजराती भाषाभाषी हिंदी में लिखते हैं तो भूलें करते हैं।

गुजराती में ह्रस्व एवं दीर्घ 'ई' की ध्वनियाँ तो हैं किंतु प्रयोग में बहुधा दीर्घ 'ई' का ही प्रयोग होता है। गुजराती भाषा में तो कहीं-कहीं केवल एक ही 'ई' के व्यवहार की भी माँग की जा रही है। इसलिए हिंदी लिखते समय ह्रस्व ई की जगह दीर्घ ई का ही प्रयोग हो जाता है। जैसे हिंदी, प्रतिनिधि या व्यक्ति को हींदी, व्यक्ती या प्रतीनीधी लिखा जाएगा।

हिंदी की तरह फ़ारसी की कई ध्वनियों को गुजराती ने भी आत्मसात कर लिया है। उन ध्वनियों का व्यवहार तो होता है किंतु लिखित रूप में उनके लिए नुक्ते का प्रयोग नहीं होता। जैसे क़त्ल, ग़ालिब, खां आदि का कत्ल, गालिब और खां ही लिखा जाएगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु पढ़ने में उनका शुद्ध रूप उच्चरित होगा । हिंदी लिखते समय गुजराती भाषा-भाषी नुकते का प्रयोग नहीं करेगा । वैसे भी किसी भी वर्ण के नीचे नुकते का प्रयोग गुजराती भाषा में है ही नहीं चाहे वह ड़ हो या क़ या ज़ ।

'झ' ध्वनि भी गुजराती में नहीं है । गुजराती में झ ध्वनि है जो न तो वर्त्स्य ही है और न ही तालव्य । यह ध्वनि ज़ और झ की मध्यस्थ ध्वनि है । इसलिए मुझे, तुझे को मुजे, तुजे लिखा जाएगा । इसके ठीक विपरीत भी उदाहरण पाए जाते हैं जैसे आजादी को आझादी लिखा जाना । सज़ा को सझा लिखा जाना ।

अँग्रेजी की ध्वनियों को गुजराती में तत्सम् रूप में ही स्वीकार कर लिया गया है इसलिए जिन अँग्रेज़ी शब्दों का हिंदीकरण हो गया है उन्हें विशुद्ध रूप में लिखा जाना स्वाभाविक है जैसे जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जुलाई, अगस्त, सितंबर, अक्तूबर, नवंबर या दिसंबर को जैनुअरी, फ़ैबुअरी, एप्रिल, मे, ऑगस्ट, सैप्टंबर, ऑक्टोबर, नवेंबर या डिसेंबर लिखा जाना ।

लघु ओ की ध्वनि हिंदी में अँग्रेज़ी से आई है । यह ध्वनि हिंदी की अपेक्षा उसकी दो एक बोलियों में पाई जाती है । आधुनिक गुजराती में लघु ओ के लिए ॅ का प्रयोग किया जाता है किंतु सामान्यत: कालेज, नालेज, लॉज, हॉकी आदि को कोलेज, नोलेज, लोज या होकी ही लिखा जाता है । नवीन गुजराती में ही इस ध्वनि को आत्मसात् करने के लिए व्यवस्था की गई है ।

गुजराती भाषाभाषियों को हिंदी के कई शब्द नवीन या अप्राकृतिक लगते हैं जैसे ढांचा ।

कई बार ईकारांत शब्दों के बहुवचन में वर्तनी की भूलें पाई जाती हैं, जैसे

कहानी	कहानीयो
रानी	रानीयो
गलती	गलतीयो
गुजराती	गुजरातीयो
जीवनी	जीवनीयो

गुजराती में इसके लिए नियम है । जसे तत्सम शब्दों को बहुवचन में या प्रत्यय लगाते समय नहीं बदला जाता । तत्सम शब्द में किसी भी मात्रा का हेरफेर नहीं किया जाता । जैसे नदी का बहुवचन नदीयो ही होगा । सळी (सलाख) का बहुवचन सळीयो होगा । यदि शब्द तद्भव है तो उसके बहुवचन में मल शब्द की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है ।

हिंदी में संस्कृत के तत्सम शब्द या कई अन्य शब्द बहुवचन में भी एक वचन की तरह ही लिखे जाते हैं, ऐसे शब्दों को लिखते समय गुजराती भाषाभाषियों का भूल करना स्वाभाविक है जैसे नेता, मामा, घर, कवि, साधु आदि के लिए बहुवचन में नेते, मामे, कवियों, साधुओं आदि लिखा जाना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी की कई आकारांत संज्ञाओं में जब प्रत्यय लगता है तो आ का परिवर्तन ए में हो जाता है जैसे लड़के ने, चूल्हे पर आदि। इसे भूल से लड़काने और चूल्हा पर लिखा जाना स्वाभाविक है। वही स्थिति कई विशेषणों में देखी जा सकती है जैसे यदि विशेष्य में प्रत्यय लगे तो उससे पहले आने वाले आकारांत विशेषण के अंत में वाक्य में प्रयोग के समय 'ए' हो जाता है। यथा छोटे मार्ग में, काले घोड़े से को गुजराती भूल से छोटा मार्ग में या काला घोड़े से लिखेंगे। हिंदी में कई शब्द ऐसे हैं जो वर्तनी में दो-दो या अधिक रूपों में लिखे जाते हैं जैसे नये और नए, लिये और लिए आदि। ऐसे शब्दों का कोई एक रूप प्रचलित होना चाहिए।

हिंदी में अनेक स्रोतों से आए हुए विदेशी शब्दों की संख्या अत्यधिक मात्रा में है। इन शब्दों को किसी एक नियम के अंतर्गत रखना मुश्किल है। इससे व्याकरण की अनेकरूपता पैदा होती है। हिंदी की भूलें हिंदी की स्वतंत्र प्रकृति से उत्पन्न हुए परिवर्तनों पर उचित सावधानी न बरतने के कारण भी होती है।

गुजराती भाषाभाषी जब एक निश्चित सीमा तक हिंदी में गुजराती शब्दों को खपा लेते हैं तो लगातार व्यवहार के कारण उन्हें यह भ्रम हो जाता है कि वे उन व्यवहृत शब्दों का शुद्ध प्रयोग ही कर रहे हैं। जैसे गतिविधियाँ, व्यवहार, परिभाषा के लिए प्रवृत्ति, प्रयोग और व्याख्या शब्दों का उपयोग होना।

हिंदी	अशुद्ध
आजकल आपकी क्या गतिविधियाँ हैं ?	आजकल आपकी क्या प्रवृत्तियाँ हैं।
हिंदी में इसका व्यवहार कसे होता है ?	हिंदी में इसका प्रयोग कैसे होता है ?
इसकी परिभाषा क्या है?	इसकी व्याख्या क्या है ?

कई भूलें या भ्रम इससे भी उत्पन्न होते हैं कि एक ही शब्द दोनों भाषाओं में भिन्न अर्थों में वर्तमान होता है। जैसे रेल दुर्घटना का आशय गुजराती में बाढ़ के उत्पात से उत्पन्न हुई दुर्घटना होगा। जातीयगुण का मतलब यौन संबंधी गुण होंगे। उसी प्रकार अकस्मात का मतलब, दुर्घटना होगा। इसलिए ऐसे शब्दों का व्यवहार करते समय गुजराती भाषाभाषियों को खास सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

हर भाषा को अपनी स्वतंत्र प्रकृति या प्रवृत्ति होती है, अपनी वर्ण-माला, उच्चारण-तंत्र और अपनी शब्दावली होती है। इस कारण गुजराती की उस स्वतंत्र प्रकृति या प्रवृत्ति का प्रभाव हिंदी सीखते समय अवश्य होता है। गुजराती में कहीं विशेष प्रकार का बलाघात प्रचलित है तो कहीं वर्णों की दीर्घता आदि का अपना प्रचलित रूप है। इसका प्रभाव हिंदी सीखते समय किसी भूल या विकृति के रूप में अवश्य प्रकट होता है।

हिंदी में प्रत्यय संज्ञा या सर्वनामों के साथ कहीं मिलाकर लिखे जाते हैं तो कहीं अलग। गुजराती में प्रत्यय शब्दों के साथ मिलाकर ही लिखे जाते हैं। इसके लिए हिंदी में भी किसी एक नियम का होना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी में जो नवीन पारिभाषिक शब्दावली आ रही है उसमें एकरूपता लाकर रूढ़ बनाने की आवश्यकता है। ताकि गुजराती भाषाभाषी इसका उपयोग करते समय या अनुवाद करते समय भ्रम से बच सकें।

'ऋ' का उच्चारण हिंदी में 'रि' ही होता है जैसे कृष्ण को क्रिष्ण ही कहा जाएगा। किंतु गुजराती में उसे क्रुष्ण कहा जाएगा। संस्कृत, प्राकृत आदि को संस्कुत, प्राकुत आदि कहा जाना स्वाभाविक होगा। हृदय का उच्चारण गुजराती भाषाभाषी हृदय करेगा।

अधिकतर भूलें व्याकरण संबंधी ही होती है। इसका कारण किसी हद तक हिंदी की व्याकरण की कई स्थलों पर अस्पष्टता और अपूर्णता भी है। हिंदी व्याकरण के कई नियम अभी तक निश्चित होकर दृढ़ नहीं हो पाए हैं। दूसरी ओर यह कठिनाई किसी हद तक गुजराती व्याकरण के लिए भी है। गुजराती भाषा का जो भाग अपूर्ण है या जिससे गुजराती भाषाभाषी परिचित नहीं हैं वह भी भूल का कारण बनता है। मातृभाषा होने के कारण गुजराती भाषाभाषी अपने व्याकरण के प्रति उदासीन से रहते हैं।

हिंदी व्याकरण में सबसे बड़ी अराजकता लिंग संबंधी है। प्राचीन वैयाकरणों को भी लिंग की व्याख्या करना अबोध्य ही लगा था। बौद्ध लेखकों द्वारा व्यवहृत संस्कृत में लिंग परिवर्तन बहुतायत से मिलते हैं। हेमचंद्र ने भी प्राकृत व्याकरण में लिखा है कि "लिंगम् अतंत्रम्"।

हिंदी में दो ही लिंग होते हैं जब कि गुजराती में तीन होते हैं। हिंदी, पंजाबी और सिंधी भाषाओं में नपुंसक लिंग टिका तो नहीं किंतु उसका बोझ क्रियापदों पर अवश्य आ गया। लिंग के कारण गुजराती में भी क्रिया, विशेषण और क्रियाविशेषणों में परिवर्तन पाए जाते हैं। इसलिए हिंदी सीखते समय लिंग के अनसार क्रियापद और विशेषण के उचित व्यवहार की समस्या बनी रहती है।

संस्कृत और हिंदी में कृदंत में लिंगभेद होने के कारण कृदंत से उत्पन्न हिंदी क्रियाओं में लिंगभेद आ गया है। हिंदी में लिंग संबंधी नियम स्पष्ट नहीं है। एक ही नियम के कितने ही अपवाद मिलते हैं। इस कारण गुजराती भाषाभाषी उन्हें ठीक तरह से समझ नहीं पाता। गुजराती के नपुंसकलिंगी शब्द अधिकतर गुजराती द्वारा पुल्लिंग में ही लिखे जाते हैं। जैसे कपास, शपथ, उमंग, शराब आदि का व्यवहार भूल से पुल्लिग में ही होगा। इसी प्रकार गुजराती स्त्रीलिंग शब्द हिंदी में पुल्लिग होते हुए भी स्त्रीलिंग में ही लिखे जाएँगे जैसे व्यक्ति, बाज़ार, मज़ा, मिनिट, मतलब आदि।

प्राणिसमूह तथा जड़ पदार्थों को गुजराती भाषा में नपुंसकलिंग स्वीकारा गया है। इस कारण हिंदी का व्यवहार करते समय प्राणिसमूह या जड़ पदार्थों के लिंग निर्धारण में कठिनाई आना स्वाभाविक है। अहिंदी भाषियों को किसी केंद्रित नियम के अभाव में हिंदी क्रियाओं का लिगानुसार परिवर्तन समझ में नहीं आता। लिंग निर्धारण भी वस्तु के नाम के अनुसार ही होता है। कई बार एक ही वस्तु के अनेक नाम होने से तदनुसार लिंग परिवर्तन भी होता है। गुजराती भाषा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

अंग्रेजी भाषा में तृतीय पुरुष के सर्वनाम से लिंगभेद होता है। हिंदी के कई स्त्रीलिंगी शब्द गुजराती में पुल्लिग और हिंदी के कई पुल्लिग शब्द हिंदी में स्त्रीलिंग में व्यवहृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं । ऐसे शब्दों के व्यवहार से गुजराती भाषाभाषियों द्वारा गलती या भूल होना स्वाभाविक है ।

हिंदी सर्वनामों के व्यवहार में भी अक्सर भूलें देखी जाती हैं । गुजराती में जैसे हमको जाना है, तुमको जाना है, कहने की प्रवृत्ति है । 'हूँ' म्हारुँ काम करूँ छुं जिसे वे हिंदी में लिखेंगे मैं मेरा काम करता हूँ । मैं, तू, यह, वह, ये, वे, जो, कौन, कोई सर्वनामों के साथ जब प्रत्यय लगते हैं तो इन सर्वनामों का प्रयुक्त विकारी रूप गुजराती भाषाभाषी ठीक याद नहीं रख पाते । जैसें उपर्युक्त सर्वनामों को प्रत्यय के साथ बहुधा मैं को, तू, येने, जोमे, कोइ को, यह, यहने, वहमें, वे के लिए कौन का रूप में भ्रम से लिखा जाएगा । उसी प्रकार जब तृतीय पुरुष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है तो उनके परिवर्तित रूप को गुजराती भाषाभाषी समझ नहीं सकते । जैसे 'उस मनुष्य में' को 'वह मनुष्य में' लिखा जाएगा तथा 'उन बच्चों से' को 'वे बच्चों से'। इस प्रकार सर्वनामों के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं जहाँ भूलें होती हैं ।

हरेक भाषा का अपना-अपना वाक्यविन्यास होता है । गुजराती और हिंदी के वाक्यविन्यास में भी कहीं-कही अंतर है जिसका ध्यान हिंदी सीखते समय रखना आवश्यक है ।

फिर भी गुजराती छात्र दक्षिणी भाषाओं के छात्रों की अपेक्षा कम भूलें करते हैं । हिंदी की सरलता और सुबोधता जहाँ एक ओर उसका गुण है वहाँ उसकी कमी भी । भूलों की यह कठिनाई तथा समस्या विशेष कर छात्रों के सामने आती है । किंतु थोड़े से प्रयास के पश्चात् इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है । उपर्युक्त भूलें अत्यंत साधारण हैं । हिंदी के प्रति गुजरात प्रदेश की सेवा का एक दीर्घ कालीन इतिहास रहा है । प्राचीन गुजराती कवियों ने ब्रजभाषा में रचनाएँ की हैं । काठियावाड़ी नरेश ब्रजभाषा के अच्छे जानकार होते थे । मीरा तो हिंदी और गुजराती में समान रूप से समादृत है । महात्मा गांधी और दयानंद की हिंदी सेवा को कौन भुला सकता है ? हिंदी और गुजराती को निकट लाने के कई प्रयास हो रहे हैं । हिंदी गुजराती संबंधी कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें हैं : हिंदी गुजराती शिक्षा––पद्मसिंह शर्मा, हिंदी गुजराती शिक्षक––एन० जी० मेहता, भारत भारती सीरीज़––राष्ट्रभाषा प्रचार सभा । ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा और लिपि

सरोज वर्मा

भाषा और लिपि के संबंध में दो बातें विचारणीय हैं। क्या भाषा और लिपि में अनिवार्य संबंध है? और क्या प्रत्येक भाषा की अपनी ही लिपि होती है? गत कुछ शताब्दियों से प्रकाशन की सुलभता से लिखित साहित्य का विकास इस प्रकार हुआ कि भाषा और लिपि में अनिवार्य संबंध प्रतीत होता है। लेकिन भाषा शास्त्री इसे नहीं मानते। भाषा और लिपि में अनिवार्य संबंध न मानते हुए आनंद कुमार स्वामी अमरीका से निकलने वाली 'एशिया' नामक पत्रिका में लिखते हैं, "बेपढ़े लिखे लोगों पर साक्षरता लादना उनकी शिक्षा नष्ट करना है"। प्राकृतिक शिक्षा में लिपि को महत्त्व नहीं दिया जाता। प्रोफेसर किटरिज के अनुसार "सैकड़ों वर्ष से प्रवाहित मौखिक साहित्य का शत्रु एक मात्र साक्षरता रही है।" "न्यू हेब्रेडीज़" नामक द्वीप में असभ्य जातियाँ रहती हैं उनके संबंध में प्राप्त अनुभव के आधार पर टाम हेरिसन लिखता है कि "लड़कों को केवल शब्द और दर्शन से शिक्षा दी जाती है। स्मृति इतनी तीव्र है कि ज्ञान की परंपरा अविच्छिन्न चलती रही। अंग्रेज़ों के पहुँचने पर लिखित शिक्षा का क्रम चला। इस पर वहाँ के निवासी हँसते और कहते हैं क्या मनुष्य याद करके नहीं बोल नहीं सकता। वे अँग्रेज़ों को पागल समझते हैं।"

इन विद्वानों के विचार इस पक्ष की पुष्टि करते हैं कि भाषा के लिए लिपि अनिवार्य नहीं है। लिपि के बिना भी साहित्य-सर्जना हो सकती है और उत्कृष्ट रूप में भाषा और लिपि के संबंध निर्धारण में यद्यपि यह स्थिति अत्यंत प्रारंभ की हो सकती है किंतु सैद्धांतिक विवेचन के लिए इस प्रारंभिक स्थिति का अध्ययन आवश्यक है। इस प्रारंभिक स्थिति के अध्ययन से स्पष्ट है कि भाषा और लिपि में अनिवार्य संबंध नहीं है।

भाषा की संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि "भावों एवं विचार के अभिव्यक्तीकरण के सार्थक ध्वनिसमह को भाषा कहते हैं।" भाषा की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि इसमें लिपि की आवश्यकता नहीं है। लिपि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अपेक्षा भाषा के लिए उच्चारण और श्रवण के प्रत्यक्ष संबंध पर अधिक बल दिया जाता है यदि भाषा भावों एवं विचारों के अभिव्यक्तीकरण का ध्वनि-समूह है तो इसमें भाव एवं विचार के साथ सार्थक ध्वनि समूह का होना पर्याप्त होगा। इसमें श्रोता-वक्ता के परस्पर संबंध में भाषा की सृष्टि हो जाती है। फलत: बिना लिपि के भी भाषा का प्रसार होने लगता है।

इस प्रश्न के स्पष्टीकरण के लिए लिपि के स्वरूप पर भी ध्यान देना आवश्यक है। विभिन्न परिभाषाओं के निष्कर्ष पर कहा जा सकता है कि लिपि एक प्रतीक है, उसकी उत्पत्ति भाषा की गतिशीलता में योग देने एवं उसकी स्थिरता के लिए हुई। स्पष्ट है कि लिपि की उत्पत्ति भाषा की उत्पत्ति के बाद हुई। लिपि एवं भाषा के संबंध में दैवी सिद्धांतवादी मानते हैं कि लिपि एवं भाषा की उत्पत्ति शाश्वत है अतएव दोनों में संबंध अन्योन्य है। लेकिन यह विचाराधारा भाषा विज्ञान अस्वीकार कर चुका है। भाषा विज्ञान ने मान लिया है लिपि की उत्पत्ति भाषा के बाद हुई और दोनों में अन्योन्य संबंध नहीं है।

परिभाषाओं को देखते हुए दोनों के संबंध में कहा जा सकता है कि लिपि भाषा के संरक्षण का माध्यम है। विश्व में अधिकतम ऐसी आदिम जातियाँ हैं जिनकी भाषा तो है किंतु लिपि नहीं है। पश्चिम में ऐसी जातियों में रोमन लिपि का प्रसार हुआ। यदि भाषा और लिपि में अन्योन्य संबंध होता तो इस प्रकार की असंगति नहीं आती।

लिपि के विकास का इतिहास इस तथ्य को स्वीकार करता है कि विभिन्न सभ्यताओं में लिपि का विकास एक समान नहीं है। लिपि विकास की प्रकृति भाषाओं के साथ अनिवार्य रूप में बद्ध नहीं है। भाषा का विकास समाज के माध्यम से होता है और लिपि का विकास भाषा के माध्यम से। समाज की गतिशीलता का प्रभाव भाषा पर पड़ता है। समाज में परिवर्तन तीव्र गति से होता है अतएव भाषा के विकास की क्रिया द्रुतगामी होती है। लिपि की विकास पद्धति भाषा सापेक्ष होने से भाषा के समान गतिशील नहीं होती। भाषा के विकास में गतिशीलता के अतिरिक्त उसके स्वरूप में भी भिन्नता होती है। सभी सभ्यताओं में भाषा के विकास में समानता पाई जाती है किंतु लिपि में ऐसी वात नहीं है।

सामान्यतया मूल लिपि चित्र लिपि है। उसका संक्षिप्त रूप भावात्मक लिपि है। भावात्मक लिपि चित्र लिपि की परिवर्तित स्थिति है, फलत: लिपि ध्वनि का प्रतीक प्रस्तुत करती है। चित्रात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक एवं अक्षर लिपि तक जो लिपि का विकास हुआ है उसके मूल में यह धारणा क्रियाशील रही है कि वह ध्वनि को अभिव्यक्त करती है। चित्र लिपि से भाव लिपि में जो विकास हुआ उसका कारण यह है कि चित्र लिपि ध्वनि को अभिव्यक्ति देने में असमर्थ थी। इसी प्रकार अक्षर लिपि तक का विकास भी ध्वनियों को अभिव्यक्ति देने की सुगमता के लिए हुआ। किंतु इस विकास परंपरा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई लिपि ध्वनियों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति नहीं कर पाई। स्पष्ट है कि भाषा के समान लिपि में समर्थता नहीं आई।

कोई भी भाषा किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है। यदि भाषा के साथ लिपि का विकास अनिवार्य होता तो एक भाषा की एक ही लिपि होती और भाषा लिपि के स्वरूप में बद्ध होती। वास्तविकता यह है कि लिपि का संबंध प्रतीक से होता है और प्रतीक कभी समग्र नहीं होते। वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि प्रतीक भाषा का यथातथ्य प्रतिनिधित्व नहीं करते। अतएव कोई भी लिपि किसी भी भाषा का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती। लिपि भाषा की समग्र ध्वनियों का प्रतिनिधित्व या अभिव्यक्तीकरण करने में असमर्थ होती है। इसके दो कारण हैं। पहला कारण है ध्वनियों के अभिव्यक्तीकरण में प्रतीकों की असमर्थता। दूसरा कारण यह है कि लिपि प्रतीक अपने उत्पत्ति काल में जिस भाषा के लिए अभिप्रेत थे, उनका प्रयोग जब दूसरी भाषा के लिए हुआ तो उसका प्रतिनिधित्व सर्वथा असंभव हो गया। प्रमाण के लिए रोमन लिपि लैटिन के लिए तो उपयुक्त थी किंतु अँग्रेज़ी के लिए उपयुक्त न हो सकी।

भाषा एवं लिपि के क्रमबद्ध विकास की मुख्य बातें इस प्रकार हैं :—

1. भाषा के विकास में उच्चारण स्थानों के परिवर्तन हो जाने के बाद उन्हें अभिव्यक्त करने वाले लिपि-प्रतीक जहाँ के तहाँ रह जाते हैं।
2. लिपि भाषा का अनुगमन करती है।
3. विकास पद्धति में भाषा विकसनशील और सामाजिक प्रयासों से युक्त है। भाषा के समान लिपि में विकसनशीलता नहीं है।
4. लिपि की विकास परंपरा पर रूढ़ियों एवं परंपरा का अधिक प्रभाव रहा है। भाषा विकास पर इनका प्रभाव अपेक्षाकृत कम रहता है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं जिनकी भाषा तो है, किंतु लिपि नहीं। निवारी जाति की अपनी भाषा है किंतु अपनी लिपि नहीं है। भारत में मुंडा जाति की भी भाषा अपनी लिपि से विहीन है। भारत में सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि यहाँ भाषा के अनेक परिवार हैं किंतु लिपि का एक ही परिवार है। ब्राहमी लिपि से गुप्त काल की सीम लांघकर कुटिल लिपि का विकास दक्षिण की भाषाओं में होता है।

ध्यान देने की बात है कि अभी तक कोई लिपि पूर्ण रूप में विकसित नहीं हो सकी। उर्दू को जिस लिपि में व्यक्त किया जाता है वह स्वर विहीन है। उसके स्वरों का ज्ञान परिस्थिति सापेक्ष है। उसके उच्चारण संकेत अरबी में आवश्यक थे। किंतु उर्दू में उनकी कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन लिपि में परिवर्तनशीलता रुढ़िवादी होने से वे चिह्न अभी तक ज्यों के त्यों स्थिर हैं। 'सकार' को व्यक्त करने के लिए चार प्रतीक हैं, जो अरबी के लिए आवश्यक थे। उर्दू में उनकी आवश्यकता न होते हुए भी वे अभी तक व्यवहार में

नून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रहे हैं। सबसे वैज्ञानिक देवनागरी लिपि कही जाती है। लेकिन यह भी भाषा को समग्र रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाती। इकार, ऐकार, ओकार और औकार के उच्चारण में परंपरा एवं परिस्थिति का योग स्वीकार करना पड़ता है। परंपरा एवं परिस्थिति से अनभिज्ञ इनका उच्चारण ग़लत होगा। अजंत शब्दों का भी उच्चारण हलंत जैसा किया जाता है। ख को ख भी पढ़ा जाता है और र व भी। तात्पर्य यह कि सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि भी भाषा को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि भाषा और लिपि में अनिवार्य संबंध नहीं है। यह भी आवश्यक नहीं कि प्रत्येक भाषा की अपनी स्वतंत्र लिपि हो। इस दृष्टि से यदि हम भारतीय भाषाओं की लिपि के संबंध में कुछ सोचें तो व्यवहार एवं परंपरा के आधार पर समूचे देश की एक लिपि हो सकती है। इससे दक्षिण और उत्तर के लिपि परिवारों में भी एकता आएगी। लिपि की एकता भाषा को सन्निकट ले आने में सहायक तो होगी ही साथ ही समग्र देश के भाव भी परस्पर घुलमिल पाएँगे।

[पृष्ठ 16 का शेष]

विभिन्न अर्थ छायाओं के द्योतक—भारतीय-पर्याय ढूँढने कठिन होंगे। लेकिन, यदि कोई इन्हीं शब्दों के भरोसे अँग्रेज़ी की श्रेष्ठता मान ले, तो उसे चुप किया जा सकता है (संस्कृत के वे शब्द कहकर जिनने समुचित पर्याय अंग्रेज़ी में नहीं मिल सकते। 'मान' (प्रेम के कारण छोटे साथी का झूठा क्रोध—नायक के किसी अपराध से नायिका का रूठना), 'संसार' (नित्य-परिवर्तनशील क्रम, नियम-बद्ध संसार), 'रसिक' (जीवन के आनंद और सौंदर्य में रुचि रखने वाला व्यक्ति), 'श्रृगांर' (कामप्रिय प्रेम), 'प्रामाण्य' (न्याय्य-साधनों से उत्पन्न होने वाले ज्ञान का विलक्षण गुण), 'उच्छिष्ट' (किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा चखा हुआ, अतः खाने के अयोग्य भोजन) आदि तथा अन्य सैंकड़ों (भारतीय) शब्दों के सही और संक्षिप्त पर्याय अँग्रेज़ी में नहीं हैं।

सारांश में कोई भी कह सकता है कि अँग्रेज़ी-भाषा को भारतीय भाषा की अपेक्षा अभिव्यक्तिसूचक प्रदर्शित करने वाली वाक्य-शैलियां प्रायः व्यवहार-प्रयोगजन्य हैं न कि अँग्रेज़ी भाषा की व्याकरण और बनावट संबंधी विशेषताओं के कारण। इसके विपरीत, संस्कृत की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने वाला उदाहरण व्यवहार-जन्य शक्ति से व्युत्पन्न वाम्य-शैलियों के साथ-साथ संस्कृत के व्याकरण और रचनात्मक विशेषता से निर्मित असंख्य रूपों में से हैं। 'ज्ञेय' (ज्ञान का लक्ष्य), 'ज्ञानगम्य' (जानने योग्य), 'ज्ञानजन्य' (ज्ञान से उत्पन्न), ज्ञानसाध्य' (ज्ञान से सधने वाला) आदि शब्द सुगमता से व्युतपन्न होते हैं संस्कृत भाषा की बहुफलदायिनी रचना से—न कि प्रयोगजन्य विशेषताओं के कारण।

—अनु० जगमोहन राव भट्ट

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा और व्याकरण

- राजस्थानी लोक-साहित्य—उसका भाषा-शास्त्र संबंधी महत्त्व
- हिंदी विशेषणों की व्युत्पत्ति प्रक्रिया
- बस्तर जिले की बोलियाँ
- डिंगल का 'आँ' प्रत्यय
- आदिनिवासी खासी और उनका साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राजस्थानी लोक-साहित्य' उसका भाषा-शास्त्र संबंधी महत्त्व

मोहनलाल पुरोहित

लोक-साहित्य की महत्ता एवं उसकी उपयोगिता आज 'स्वयं-सिद्ध' सी हो गई है। किसी देश अथवा राष्ट्र के जीवन का अध्ययन आज तत्संबंधी लोक-साहित्य के अत्याधिक-महत्त्व पर ही आँका जा सकता है। यह मौखिक-साहित्य जहाँ का भी होता है—उस देश अथवा राष्ट्र के धर्म, समाज और आचार पर तो प्रकाश डालता ही है, साथ ही स्थानीय विशेषताएँ, स्थानीय-इतिहास और स्थानीय-भूगोल संबधी तथ्यों पर भी ठोस सामग्री प्रस्तुत करता है। भाषा-शास्त्री के लिए तो लोक-साहित्य एक बहुत बड़ा साधन है—यह एक ऐसा साहित्य-सागर है जिसमें गोता लगाने पर अनायास गोताखोर को अनेकों अनमोल मोती हाथ लग सकते हैं।

प्रस्तुत विषय राजस्थानी-लोक-साहित्य और उसके भाषा-शास्त्र-संबंधी महत्त्व को लेकर है। राजस्थान—भारत का एक बहुत बड़ा प्रदेश है। इस प्रदेश की राज्य-सीमाएँ पंजाब, सिंध, गुजरात, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश से मिलती हैं। अतः यहाँ की भाषा की छाप इन सीमाओं के प्रदेशों पर पड़ी। यहाँ की भाषा अपने में पूर्ण है। यह हिंदी की एक शाखा न होकर एक स्वतंत्र भाषा है, अथवा सीमा देशों की भाषाओं का न्यूनाधिक प्रभाव इस प्रदेश की भाषा पर पड़ा। आदि-आदि इन जटिल विवादों को यहाँ स्थान देना उचित नहीं समझा गया है। यहां तो केवल यही मान कर कि 'राजस्थानी' स्वयं में पूर्ण एक भाषा है और तत्संबंधी जो विशेषताएँ लोकसाहित्य के माध्यम से हमें दृष्टिगत हो सकती हैं इसी तथ्य को हम यहाँ निरूपण करने का प्रयास करेंगे।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से—जैसा कि हम पूर्व उल्लेख कर चुके है, लोक-साहित्य अपना एक महत्त्व, अपना एक विशेष स्थान रखता है। साथ ही यह अध्ययन हमारी राष्ट्र-भाषा 'हिंदी' के लिए भी कम महत्त्व का नहीं हो सकता। राजस्थानी-लोक-साहित्य में प्रचलित शब्दों द्वारा राष्ट्र-भाषा के अनेक शब्दों की विकास-परंपरा को बल मिल सकता है—एवं इस विकास परंपरा को वैदिक-संस्कृति से संबंधित किया जा सकता है। ऐसे बहुत से शब्द हैं जो वेदों में तो पाए जाते हैं, लेकिन वे संस्कृत-भाषा, प्राकृत-भाषा एवं हिंदी

चूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में नहीं पाए जाते हैं। पाठक ताज्जुब करेंगे कि वे समान-अर्थ [illegible] अथवा अपभ्रंश रूप में राजस्थानी-भाषा में एक बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं।

उदाहरण के लिए हिंदी में उस प्राणी को 'भेड़' कहते हैं, जिसे संस्कृत [illegible] 'मेष' कहते हैं। यह 'भेड़' शब्द कैसे बना—यह निरुक्त का विषय है। लेकि[illegible] संस्कृत के 'गड्डलिका' शब्द से 'गादर' बना है जो 'हिंदी' में चलता नहीं है [illegible] हाँ, कहीं कोई कविता में अनुप्रास आदि के लिए दे दे–यह अलग बात [illegible] परंतु ऐसे प्रयोग प्राय: नहीं हैं। हिंदी ने 'भेड़-पालने वाले' के लिए ए[illegible] शब्द बनाया है। पर 'भेड़' से नही—'गाडर' से 'गडरिया'। राजस्थानी में [illegible] 'गाडर' शब्द आम तौर से प्रचलित है।

*(1) गाडर तो ए धारीए,
हे के चिड़ियल रांणी ताजै सुखनै–
भोळी रे उलटी रे चढ़ै रे कपास।

इसी प्रकार हम यहाँ थोड़े से शब्द पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। निश्च[illegible] ही ये शब्द राष्ट्र-भाषा के गौरव को बढ़ाएँगे एवं उसके कोश की अभिवृद्धि करेंगे।

*(2) बाड़ी=बगेचा।
सं० बाटिका>वाड़िअ>बाड़ी।

*(3) नाठौ=नष्ट।
सं० नष्ट>नठ्ट>नाठ।

(4) औधान=गर्भाधान।
सं० आधान>औवधाण>औधान।

*(5) पाळ=पाल, ताल का बाँध या ऊँचा किनारा।
सं० पालि।

(6) विषहर=साँप।
सं० विषधर।

---

(1) 'जैसलमेर के लोक गीत' (हमारा अप्रकाशित संग्रह) सं० मोहन ला[illegible] पुरोहित गीत—'चिड़ियलरांणी'।
(2) हौरे मींजा दल्ल, तूं तो बाड़ी हल्ल—'जैसलमेर की लोरियाँ' (ले० का[illegible] अप्रकाशित संग्रह)।
(3) 'साठै बुधि नाठै—राजस्थानी कहावत।
(5) 'पाळ चडतै गधो बतायौ—राजस्थानी लोक कथा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*(7) फुलल=सुगंधित तेल।

फुल्ल एल>फुलाएल>फुलेल।

*(8) भंडारी=कोषाध्यक्ष, भंडार का प्रबंध करने वाला।

सं० भाडा गारिका>भडारिय>भंडारी।

(9) ढूकंणा=पहुँचना, उपस्थित होना।

सं० ढौक प्रा० ढुक्क।

*(10) थका=स्थित, होते हुए।

सं० स्थित प्रा० थक्क=रहा हुआ।

उ० थां थका मनै कठै बारी।

—आपके होते हुए हमारी बारी कहाँ?

*(11) छाजै=शोभित होता है।

सं० शोभ् धातु का प्रा० धात्वादेश छज्ज>छज्जइ>छाजै> छाजना।

*(12) संधाती=साथी, दोस्त।

*(13) वैसर=नाक का लटकन, एक आभूषण विशेष।

*(14) अणवट=अंगूठे में पहिना जाने वाला छल्ला, आभूषण विशेष।

---

(7) 'चुपड्यौ तेल फुलेल'—(जैसलमेर के लोक गीत ले० का अप्रकाशित संग्रह, गीत—'चिड़ियलरांणी')।

(8) 'दाता दै, भंडारी रो पेट बळै'——राजस्थानी कहावत।

(10) 'पाइअ–सद्द–महण्णवो' पृ० 550।

(11) '(मोतिड़ा थांरी रांणियांनै छाजै रे'—'राजस्थानी-घूमरें (ले० कानिजी संग्रह प्रेस में)।

(12) 'जीवरो संधाती राणाजी कोई नहीं'—रा० लोक-गीत-मीरा।

(13) 'घड़ लाए रे यार सोनाट, बेसर सोने की'—जैसलमेर के लोकगीत। 'सींठणा'—ले० का संग्रह प्रेस में।

(14) 'अणवट घडियौ मेंड़ते घडियौ जैसलमेर'—जैसलमेर के लोकगीत। ले० का संग्रह प्रेस में)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*(15) बिछियो=अंगुलियों (पैरों में) में पहिनी जाने वाला छल्ला—आभूषण विशेष।

वस्तुतः अनवट और बिछिया विवाह के उपरांत ही स्त्रियों द्वारा पहिने जाते हैं।

*(16) साध=इच्छा।

सं० श्रद्धा>सद्धा>साध।

*(17) पंखेरु=पक्षी।

सं० पक्षिरूप>पक्खिरूव>पखइरूअ>पखेरू।

*(18) माय=माता, माँ।

सं० मातृ>माय।

(19) टांका=पानी रखने के लिए कुंड, हौज, हौद।
(जैसलमेर में आम प्रयोग)।

(20) सीऊ=सरहद, सीमा।

सं० सीमा>सीव>सीऊ।

---

(15) नयै रै नगर सूं रे सोनीडो आयौ,
आयौ आयौ म्हाराजा रै देस रसीया,
रे लीजौ रे नादान **बिछियो**।
'राजस्थान की घूमरें'—(ले० का संग्रह, प्रेस में)।

(16) राजस्थान में स्त्री के पेट में बच्चा होने के समय से उसे नाना प्रकार के भोजन आदि खिलाए जाते हैं—उसे 'साध' कहते हैं। उ० बेटे री बहू **साध** पुरावणी है

और भी—

'वेरौ साहवजी **साध** पूराय, धतूरे में गुण घणौ ए ॥17॥
'रा० संगीत'-पहला भाग—श्री सागरमल गोपा पृ० 110।

(17) 'बैठो **पंखेरू** ईये सखरयेरी पाळ'—रा० सं० भाग 1, पृ० 85।

(18) '**माय** खटरे कमाय घर आविया,
माय किथी ये सैणोरी धीय'—रा० सं० भाग 1, पृ० 98।

और भी—मीठा बोली लोकड़ा,
खारा बोली **माय**—राजस्थानी (जैसलमेरी) कहावत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक, प्रसिद्ध।

*(21) छावा=बच्चा, बालक, प्रसिद्ध।
सं० शावक>प्रा० छा व अ>छावा।

*(22) सरिसि=जैसी।
सं० सदृशी>सरिसी, सरसी।

*(23) घाइ=चोट, प्रहार।
सं० घात>प्रा० घाय।

*(24) ऊभ=ऊँचा होना।
सं० ऊर्ध्वित>प्रा० उम्भिय (पास 60209)।

*(25) साल=काँटा, कष्ट, दुष्ट।
सं० शल्य>प्रा० सल्ल>साल।

---

(21) 'थे किण जीरा छावा हो'—(बीकानेर के लोकगीत (ले० का निजी संग्रह)।
और भी—ईयेरे चूनड़ ली रौ म्हारी सरला बाई नै कोऊ,
ला दोनी बिरमैजी रा **छावा** चूनड़ली।

(22) 'मत दे गवरा दे तूं खातीड़ै न गाळ हो,
थांई नैरे **सरिसी** खातीड़ै रै गोरड़ी—म्होरा राज'—रा० सं० प्र० भाग, पृ० 84।

(23) जैसलमेर में दुर्गा-पूजा के अवसर पर एक बहुत बड़ा नगारा बजा करता था, उसे वहाँ 'घाई' कहते हैं। 'घाई'—जब वहाँ राजा मर जाता और उसके स्थान पर दूसरा राजा सिंहसनारूढ़ होता तो उस समय जो ढोल बजा करता उसे भी घाई ही कहा जाता था। लेखक का निजी अनुभव है—इस प्रकार का नगारा बहुत बड़ा और एक विशेष प्रकार का बना होता है। इस पर चोट भी देने की अपनी विशेषता—एक कला है। युद्ध-काल में भी वहाँ 'घाई' बजाई जाती रही है।

(24) 'ऊभा भूतै जिकौंरै टौंगै रेळा आवै'—जैसलमेरी (राजस्थानी) कहावत।

(25) **साल सालेरे** नणदश बीर,
कांटो **सालै** रे।
सुसरा जी वेद तेड़ाव,
कांटो **सालै** रे। —जैसलमेर के लोकगीत (सींठणा), (ले०का संग्रह प्रेस में)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*(26) सीउ=शरदी।

सं० शीत।

*(27) दाइजो=दहेज।

सं० दातव्य>दायज्ज, दाइज।

*(28) पायल=पैरों में पहिनने का एक आभूषण।"

सं० पादपाल>पाय पाल>पायाल>पायल।

*(29) साजन=आत्मीय, पति।

सं० स्वजन, प्रा० सजण।

*(30) चौबारा=ऊपरी तल्ले का खुला मंडल,

सं० चतुर्द्वारक>चउबारउ>चौबारा।

*(31) माँहुट=माघ महीने का मेह।

सं० माघ वृष्टि० प्रा० माह वुट्टि>माहउट>माहुट।

*(32) कँध=स्कंध, कंधा, खे, सहारा।

---

(26) **सीउ** पड़ै डाढ़ौ,
कूड़ी रौ घी काढ़ौ—जैसलमेरी कहावत।

(27) दोनी सैठौं म्हारी गवरलजै,
दाइजो, भोळावो दीजै—जैसलमेरी लोकगीत (लें० का संग्रह प्रेस में)।

(28) 'आं णौ रे सोनो, आंणौरे रूपो,
पायलड़ी घडावौं बै'—जैसलमेर के लोकगीत (ले० का संग्रह प्रेस में)

(29) 'गुड़ा **साजन** आया, क्या-क्या सौदा लाया बै'—जैसलमेर के लोकगीत (ले० का संग्रह प्रेस में)।
और भी—
साजन रारे सूवारे, हेठै उतरै तो लेऊं गोद में—(राजस्थानी लोकगीत (सं० ले० स्वयं विचाराधीन)

(30) '**चौबारे** सूं ऊतरी सासू रे लागी पांव'—जैसलमेर के लोकगीत (हमारा निजी संग्रह)।

(31) पोहुटा—**माहुटा** पड़ै है—राजस्थानी (जैसलमेर, बीकानेर) कहावत।

(32) 'उठ धोळ तूं **कंध** दे'—(राजस्थानी—दोहा (लोक प्रचलित)।
और भी—सिर नह सींगी संचरी, पंगा न ठेटर बंध।
दूध पियंतै बाछडू, दियो महा-भड़ **कंध**॥
—वीर रस रा दूहा (सं० श्री नरोत्तमदासस्वामी) पृ० 18।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*(33) झुर=स्मरण करना, याद करना।
सं० स्मृ>प्रा० झुर।

*(34) कसै=खींचता है।
सं० कर्षाति>प्रा० कस्सइ।

*(35) बीरा=भाई।

*(36) सियाळा=शीतकाल।
इसका उल्टा उन्हाला होता है।

---

(33) माता तो सुणत वीरा मतक है,
झुरसे बरसाळै री रात,
मेहों झड़ मोंडियौ ॥ 17 ॥ (रा० सं० प्र० भाग, पृ० 100)
और भी—रस कस तो तैं लियौ,
अब क्यों झुरै गुंवारे ॥ –प्रसिद्ध राजस्थानी प्रेम-कथा।

(34) भूखौ वामण सोवै,
भूखौ जाट रोच।
भूखौ वौंणियो हसै,
भूखौ रजपूत **कसै**। —राजस्थानी लोक प्रचलित कहावत।

(35) 'बीरा थे आई जो, भल आई जो' —बीकानेर के लोकगीत (ले० का निजी संग्रह)।

(36) वाजै म्होरै **सीया ळै** रों ठंडो वाव रे,
हे बायरिया तूं, धीमी मघरो बाज। —जैसलमेर के लोकगीत (ले० का संग्रह)।
और भी—सीयाळै में सी पड़ै,
उन्हालै में लूवां।
राघव कवियों कहै,
ओ दुख जासी मूवां ॥ —राजस्थानी लोक प्रचलित दोहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*(37) पाहुणौ=अतिथि

सं० प्राधुणक>प्रा० पाहुण।

*(38) बधावा=बधाई।

सं० वर्धापक>बद्धावय>बधावा।

*(39) साख=प्रमाण, प्रतिष्ठा।

सं० साक्ष्य>प्रा० सक्ख>साख।

*(40) पगार=प्रकार, प्राचीर, पहार दीवारी।

सं० प्राकार>प्रा० पाआर>अपभ्रंश--पागार, पगार।

*(41) राय=एक प्रकार का खिताब।

---

(37) एक दिन रौ **पाहुणौ**,
बीजै दिन अणखावणौ--जैसलमेरी लोक प्रचलित कहावत।

और भी--

अपणै घरै **पाहुणौ** आसी,
अपां कर सौ ठेक।
पाहुणौ जासी धरे आपरै,
अपा एकरा एक।। --जैसलमेरी की लोक प्रचलित कहावत।

(38) 'माळी ड़ै नै **बधावौ** ए सइयों--जैसलमेर के लोकगीत (ले० का निजी संग्रह)।

(39) 'तू आंबा **साख** भरै'--राजस्थानी प्रेम कथा।

(40) आगा बीच **पगार**,
जे में सोनलिया लखचार हजार--जसलमेर के अस्तबल पर एक प्राचीन शिलालेख, उसके आधार पर।

(41) मुसलमानी इतिहासों के अनुसार उस समय हिंदु राजाओं का यही खिताब था। अमीर खुसरु कृत 'अशोक का इतिहास' में गुजरात, रनथंभौर मांडु, तिलंग, देवगिरी के हिंदु राजाओं को राय कहा गया है। इन्हीं में से बड़े-बड़े राय-रायन कहलाते थे। जैसे, देवगिरी के रा-रायन रामदेव। हिंदी में संभवतः इसी से रायाराय बना।

और भी--

'आई रे मारू सावंणियैरी तीज,
राय सइयों नै क सूंबौ रे मौजा गाढ़ा मारु ओढ़ियौ- रे'--राजस्थानी संगीत भाग 1, पृ० 89।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*(42) अंबारी=हाथी का हौदा।
(अं० अंभारी)

(43) गाढ़ी=दृढ़ मजबूत।

(44) बार=द्वार।
सं० द्वार=वार>बार।

*(45) जोई=स्त्री
सं० युवति>जुवइ>जुअई>जोइ, जोय।

*(46) पातर=स० पात्र नर्तकी, पतुरिया।

*(47) जुझार=विशेष रूप से युद्ध करने वाला, सूरया।
सं० युद्ध कार>जुज्भआर>जुझार।

*(48) वादना=मुकाबिले में डटकर बोलना या होड़ लगा कर कोई कार्य करना।

---

(42) प्राचीन नाम इसका मंजूषा था। बाद में अंभारा शब्द चल पड़ा।
उ० 'थांरै हाथिडांरी लाल **अंबारी** हो,
भाभजीरा जाया हो म्होराराज'—जैसलमेर के लोकगीत (ले० संपादित)।

(45) **जोइ** नै संभाळ रे,
जोइ नै संभाळ।—बीकानेर के टप्पे (लोकगीत)।

(46) होएँ आग्या नाचै, हो आग्या नाचै,
हे **पातरियों** रौ साथ।—जैसलमेर के लोकगीत (हमारा निजी संग्रह)।

(47) वैसे तो युद्ध भूमि में सभी योद्धा लड़ा ही करते हैं, लेकिन 'जुझार' शब्द विशेष सूरमा या रण बांकुरे योद्धाओं के लिए प्रयुक्त होता था। मध्यकाल की परंपरा में इस प्रकार के वीर को सहस्रभट सामंत या सहस्रवीर कहते थे। वह एक ऐसा अनोखा वीर होता था, जिसमें हजार आदमियों से युद्ध करने की असीम शक्ति रहती थी। 'जुझार जी' के लोकगीत राजस्थान में एक बड़ी ही संख्या में पाए जाते हैं। गाँव-गाँव में जुझार जी के मंदिर देखने को मिलते हैं।

(48) पाकेटों सूं **बादिया** टूट पडया तै वांण—जैसलमेरी कहावत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*(49) बेली=साथी, संगी, यार, दोस्त।

*(50) भारथ=युद्ध, महाभारत।

*(51) माट=घड़ा।

हमारे इन कतिपय उदाहरणों से विज्ञ-पाठक सहज ही में अनुमान लगा सकते हैं, किस प्रकार 'लोक-साहित्य' हमारे शब्द-भंडार को अक्षुण्ण रखने में सहायक सिद्ध हो सका है। आज के इस सभ्य कहलाने वाले 'युग' में न तो लोक-गीत हमारे घरों में गाए ही जाते हैं और न हमारी माताओं एवं बहनों ने इन्हें याद रखने की कोई आवश्यकता ही समझी है। तभी तो 'लाउड स्पीकर' पर 'रेकार्ड' रख कर सस्ते-सौदे में हम अपना आमोद-प्रमोद कर लेते हैं! और इस किफ़ायतशाली-युग में ऐसा करना कुछ अनुचित भी नहीं समझा जा सकता। लेकिन इस सारे के पीछे हमारी परंपरागत संस्कृति, सभ्यता और उसके साथ ही साथ न मालूम कितनी अमूल्य निधियाँ नष्ट होती जा रही हैं—यह एक बहुत बड़ा विचारणीय एवं गंभीर विषय है, जिसे आज का हर मनीषी साहित्यकार एवं विद्वान सोचने-समझने का कष्ट अवश्य करेगा—ऐसा हमारा नम्र निवेदन है।

लोक साहित्य जनता जनार्दन की संपत्ति है—यह हमारी संस्कृति की अमूल्य निधि है। आवश्यकता है, इनके संग्रह की, इनको नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाने की, इनके तुलनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन की, इनके प्रकाशन की। इनके सही मूल्यांकन एवं रक्षण का प्रश्न हमारी संस्कृति और साहित्य के रक्षण का प्रश्न है।

---

(49) जैसलमेर के लोकगीतों में एवं वहाँ की बोली में 'बेली' शब्द का प्रयोग राजस्थान भर में सबसे अधिक देखा गया है।

उ० 'बेलिडौंने घेवर जीमा वौं रसीया'—जैसलमेर की घूमरें (ले० का संग्रह)।

(50) 'ऊंदरै ऊदरी रै लगी लड़ाई,

'भारत म चियौ भारी'—जैसलमेर के लोकगीत (ले० का संग्रह)।

(51) 'मौंजी भरी रै माट उखणांव'—जैसलमेर के लोकगीत (ले०का संग्रह)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी विशेषणों की व्युत्पत्ति-प्रक्रिया

—विश्वजीत

हिंदी विशेषण भी अन्य हिंदी रूप वर्गों (Form classes) की भांति सरल तथा जटिल रूप (complex form) में मिलते हैं। सरल रूप के अंतर्गत वे एकाकी शब्द आते हैं जो मुक्त रूप में मिलते हैं, जैसे सुंदर, अच्छा आदि। जटिल रूपों के अंतर्गत मुक्त रूप और आबद्ध रूप के संयोजन आते हैं जैसे कलूटा, घरेलू आदि। प्रस्तुत लेख में जटिल रूपों की संयोजन प्रक्रिया अर्थात् किस प्रकार सरल एवं मुक्त रूप, मुक्तरूप अथवा आबद्ध रूप से संयोजित होकर जटिल रूप बनते हैं, इस पर विचार किया जाएगा। इसे व्युत्पत्तीय प्रक्रिया[1] भी कहा जाता है।

हिंदी में शब्द स्तर पर जटिल रूप तीन प्रकार से बनते हैं :—

(1) **प्रत्यय प्रक्रिया** (Affixation) जहाँ संयोजन में एक सदस्य मुक्त रूप है और अन्य आबद्ध रूप। हिंदी में पूर्व प्रत्यय (उपसर्ग) तथा पर-प्रत्यय दोनों ही मिलते हैं—जैसे निडर, डरावना आदि।

(2) **समास प्रक्रिया** (compounding) जहाँ एक से अधिक मुक्त रूप संयोजित होते हैं—जैसे प्रभावपूर्ण, पराधीन आदि।

(3) **द्वित्वीकरण** (Interation) जहाँ पहला मुक्त अथवा आबद्ध रूप दोबारा ठीक उसी रूप में (पूर्ण द्वित्वीकरण) अथवा कुछ आंशिक परिवर्तनों के साथ (आंशिक द्वित्वीकरण) आता है—जैसे ठीक ठीक, ठीक ठाक।

हिंदी विशेषणों में प्रथम दो प्रक्रिया व्यापक रूप से व्यवहृत हुई हैं। तीसरे के केवल कुछेक शब्द हैं। प्रायः द्वित्वीकरण वाक्यांशस्तर[2] पर है। आगे इन प्रक्रियाओं पर विस्तार से विचार किया जा रहा है।

---

1 Derivational process of Hindi Adjectives.

2 **बड़े-बड़े आदमियों को देख लिया। छोटे-छोटे को सभी सताते हैं।** इन स्थलोंपर विभक्ति युक्त शब्दों की आवृत्ति हुई है, जिन्हें वाक्यांश मानना अधिक उचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न विशेषण शब्द रूपों में प्रत्यय के अतिरिक्त मूल प्रकृति (Base-form) होती है। मूल प्रकृति में ही प्रत्यय का संयोग होता है। स्थान के अनुसार प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं–(क) पर-प्रत्यय (suffix) और (ख) पूर्व-प्रत्यय (prefix)।

हिंदी में पर-प्रत्ययों का संयोग पूर्व-प्रत्ययों की अपेक्षा अधिक होता है। विशेषण-व्युत्पादक पर-प्रत्ययों का संयोग, शब्द वर्ग (word-class) के आधार पर, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, धातु तथा क्रिया-विशेषण के साथ होता है। प्रत्येक की स्थिति पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(क) संज्ञा+पर-प्रत्यय

—आ[1] :	गेरू	गेरूआ	—ई:	[1]सनक्	सनकी
	गेहूँ	गेहूँआ		रोग्	रोगी
—आ[2] :	प्यास	प्यासा		योग्	योगी
	भूख्	भूखा		क्षय्	क्षयी
—आऊ :	पंडित	पंडिताऊ	ई[2]	देश्	देशी
—आना :	साल	सालाना		अमेरिका-अमेरिक्	अमेरिकी
	हिंदू-हिंदु	हिंदुआना	—इन :	रंग्	रंगीन
—आनी :	जिस्म	जिस्मानी	नमक्	नमक्	नमकीन
	रूह	.रूहानी	ईय:	पाणिनी	पाणिनीय
आर[1] :	दूध-दुध	दुधार		भारत्	भारतीय
आर[2] :	गाँव-गँव	गँवारा		प्रांत्	प्रांतीय
—आलू-लु :	दया	दयालु	—ईला :	चमक्	चमकीला
	कृपा	कृपालू		रंग्	रंगीला
	ईर्ष्या	ईर्ष्यालु	—ऊ :	पेट्	पेटू
—आवर :	दस्त्	दस्तावर		बाजार्	बाजारू
×इक :	वेद-वैद्	वैदिक	—एरा :	मामा-मम्	ममेरा
	लोक-लौक्	लौकिक		चाचा-चच्	चचेरा
—इत :	पुष्प्	पुष्पित	—एला :	सौत्	सौतेला
	कुसुम्	कुसुमित	—एलू:	घर	घरेलू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—इल:	घूम्	घूमिल
	पंक्	पंकिल
	बोझ	बोझिल
—दार:	फल	फलदार
—नुमा:	टोपी	टोपीनुमा
—मंद:	दौलत	दौलतमंद
—मती:	मधु	मधुमती
	बाँस	बाँसमती
—कार:	सलाह	सलाहकार
	पैरवी	पैरवीकार
—गार:	मदद	मददगार
—वंत:	शील	शीलवंत
	गुण	गुणवंत
—वती:	कला	कलावती
	सत्य	सत्यवती
—वान:	धन्	धनवान
	बल्	बल्वान
—वार:	उम्मीद	उम्मीदवार
—शाली:	बल	बलशाली
	भाग्य	भाग्यशाली

संज्ञा शब्द रूपों में पर-प्रत्यय संयोग से व्युत्पन्न विशेषणों को, अर्थ के आधार पर निम्न कोटियों में रख सकते हैं:—

(1) वे विशेषण रूप जिनसे सादृश्य अर्थ बोध होता है। इस कोटि के सूचक प्रत्यय हैं —

(1) -आ: गेरू गेरुआ तथा (2) आऊ: पंडित् पंडिताऊ

(2) वे विशेषण रूप जिनसे 'वाला' के अर्थ का बोध होता है (मत्वर्थीय) जैसे :—

-आ :	भूखा	—ऊ:	पेटू
-आर :	दुधार	—मंद :	दौलतमंद
-आलु :	दयालु	—मती :	मधुमती
-इत :	कुसुमित	—वंत :	शीलवंत
-इल :	धूमिल	—वती :	कलावती
-ई :	सनकी	—वान :	धनवान
-ईन :	रंगीन	—वार :	उम्मीदवार
-ईला :	रंगीला	—शाली :	भाग्यशाली

(3) वे विशेषण रूप जिनसे स्वामित्व का अर्थ बोध होता है तथा जिनमें 'का' 'की', 'के' का अर्थ निहित रहता है। (संबंधार्थ)। इस वर्ग के अंतर्गत आने वाले प्रत्यय निम्नलिखित हैं :

—आवर :	दस्तावार	—गार :	मददगार
—कार :	सलाहकार	—दार :	फलदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(ख) सर्वनाम + पर-प्रत्यय Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐ + सा : . यह~य् + ऐ + सा यसा > ऐसा
वह~व् + ऐ + सा वैसा
जो~ज् + ऐ + सा जैसा
कोन~क् + ऐ + सा कैसा

एरा~आरा : . मैं~म् मेरा
तू~त् तेरा
तुम~तुम्हें तुम्हारा
हम् हमारा

अर्थ के आधार पर –ऐ + सा के योग से व्युत्पन्न विशेषण शब्द सादृश्यसूचक तथा –एरा,—आरा के योग से व्युत्पन्न विशेषण स्वामित्वसूचक (मत्वथीर्य) के अंतर्गत आते हैं।

(ग) विशेषण + पर-प्रत्यय

—आई : तीन~तिह तिहाई
—ऊ : गँवार् गँवारू
—ऊटा : काला~कल् कलूटा
—एरा : बहुत् बहुतेरा
—गुना : चार~चौ चौगुना
—तर[1] : कुशल कुशलतर
—तम[2] : कुशल कुशलतम

वाँ था ठाँ सरा : पाँच पाँचवाँ
चार~चौ चौथा
छ छठा
दो~दू दूसरा
—हरा : एक-इक इकहरा
दो~दु दुहरा

---

1 संस्कृत में– तर और – तम का संयोग किसी भी विशेषण के साथ होता था। हिंदी में इन प्रत्ययों का संयोग केवल गुणवाचक विशेषणों के साथ होता है और वह भी केवल तत्सम मूल प्रकृति के साथ। हिंदी में तुलना का भाव विशेषण के किसी विशिष्ट रूप से नहीं करके वाक्यांशों द्वारा किया जाता है।

तुलनात्मक भाव प्रकट करने वाले प्रत्यय संयोगों पर व्युत्पत्ति प्रकरण के अंतर्गत विचार होना चाहिए किंतु सामान्यत: वैयाकरण इन रूपों पर रूप विकार (inflection) के अंतर्गत विचार करते हैं।

2 ज्येष्ठ, कनिष्ठ, श्रेयान्, शब्द संस्कृत में—धातु रूपों में––ईयस् तथा-इष्ठ के संयोग से व्युत्पन्न होते हैं। हिंदी में उन शब्द रूपों से तुलना का भाव लुप्त हो गया है और ये मूल विशेषण की भांति प्रयुक्त होते हैं। यही कारण है कि हम 'वह सबसे श्रेष्ठ है', अथवा 'श्रेष्ठतम विद्यार्थी' आदि वाक्यांशों का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार 'ईयस्' और 'इष्ठन्' को हिंदी में प्रकृति रूप से भिन्न प्रत्यय-रूप-में नहीं ले सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषण शब्द-रूपों में पर-प्रत्यय के संयोग से जो विशेषण-रूप बनते हैं उन्हें निम्न वर्गों में रखा जा सकता है :—

1. अपूर्णता बोधक विशेषण—जैसे—आई : तिहाई
2. आधिक्य अथवा गुण विशेष की अतिशयता सूचक विशेषण :
   ऊटा : कलूटा,— ऊ : गँवारू, – एरा : घनेरा
3. निश्चित बोधक विशेषण : वाँ पाँचवाँ
4. आवृत्तिबोधक विशेषण : गुना : चौगुना,—हरा : इकहरा

(ब) धातु + पर-प्रत्यय

अक्कड़ :	घूम〜घुम्	घुमक्कड़	—आड़ी	:	खेल-खिल्	खिलाड़ी
	पी〜पि	पिअक्कड़	—आवना	:	लभ्	लुभावना
	भूल्-भुल	भुलक्कड़			डर्	डरावना
अती-ती-अता-ता :		इयल :			सड़्	सड़ियल
	लौट्	लौटती			अड़	अड़ियल
	हँस्	हँसती	—ईला	:	खर्च	खर्चीला
	चल्	चलती	—ऊ	:	चल—चाल्	चालू
-अंत :	पढ़्	पढ़ंत	—उआ	:	बाँध—बँध	बधुआ
	गढ़्	गढ़ंत	—एतर	:	माँग—मँग्	मँगेतर्
-आ-ई :	चल्	चला	—एरा	:	लूट〜लुट्	लुटेरा
	हँस्	हँसी	—ऐत	:	लड़	लड़ैत
-आऊ :	टिक्	टिकाऊ	—ऐल	:	गड़	बिगड़ैल
	बिक्	बिकाऊ	—ओर	:	चाट〜चट्	चटोर
	चल्	चलाऊ	—ओड़	:	भाग〜भग्	भगोड़
-आक-आका :	लड़्	लड़ाका	—रूक	:	जाग	जागरूक
	तैर्	तैराक	—य	:	आराध	आराध्य

धातु रूपों में पर-प्रत्यय के संयोग से व्युत्पन्न विशेषणों को अर्थ के आधार पर निम्न वर्गों में रख सकते हैं :

1—स्वभावसूचक :	—आऊ	: टिकाऊ	—ईला	: खर्चीला
	—क्कड़	: घुमक्कड़	—एरा	: लुटेरा
	—आक आका	: लड़ाका	—ऐत	: लठैत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

–आड़ी	: खिलाड़ी	–ऐल	: बिगड़ैल
–आदना	: लुभावना	–ओर	: चटोर
–इयल	: अड़ियल	–ओड़	: भगोड़

2–वे विशेषण जिनसे किसी प्रक्रिया की समाप्ति का बोध होता है :

–अंत	: गढ़ंत	–एतर	: मंगेतर
–आ	: चला	–रूक	: जागरूक
–उआ	: बंधुआ		

3–वे विशेषण जिनसे किसी प्रक्रिया की असमाप्ति का बोध होता है :

–अता–अती, ता–ती : लौटती

4–वे विशेषण जो प्रक्रिया विशेष के कर्म रूप में आते हैं :

–ऊ : चालू

–य : आराध्य

(ड) क्रिया-विशेषण + पर-प्रत्यय

–इम	: अंतर्	अंतरिम	–बाज	: जल्द	जल्दबाज़
–ई	: ऊपर्	ऊपरी	–ला	: आगे⁀अग्	अगला
	बाहर्	बाहरी		नीचे⁀निच्	निचला
	भीतर्	भीतरी		पीछे⁀पिछ्	पिछला

क्रिया-विशेषण में विशेषण-व्युत्पादक पर-प्रत्ययों का संयोग अपेक्षतया कम होता है : अर्थ के आधार पर हम इन्हें निम्न दो वर्गों में रख सकते हैं :

1– –का, –की के अर्थ वाले विशेषण

–इम : अंतरिम, –ई : ऊपरी, –ला : अगला

2– क्रिया को विशेष रूप में करने के अर्थ में

–बाज़ : जल्दबाज़

1. पूर्व-प्रत्यय संयोग

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पूर्व-प्रत्यय के संयोग से व्युत्पन्न विशेषण रूपों की संख्या कम है। सामान्यतः पूर्व-प्रत्यय के संयोग से किसी गुण – विशेष का अभाव अथवा विरोध सूचित किया जाता है–जैसे–

अ– : शुभ अशुभ, –कु : रूप कुरूप

पूर्व-प्रत्यय से व्युत्पन्न ये विशेषण रूप अंतर्केंद्रित रचना (Endocentric) के अंतर्गत आएँगे। इनमें मूल-प्रकृति (Base form) विशेषण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व-प्रत्यय के संयोग से व्युत्पन्न कुछ बहिर्केंद्रित संरचनाएँ (Exocentric Construction) भी मिलती हैं। इनमें मूल प्रकृति संज्ञा है। जैसे–

नि–	: डर	निडर	बे–	:	चैन	बेचैन
निर–	: भय	निर्भय	ला–	:	वारिस	लावारिस

संरचना के आधार पर इन्हें दो निम्न कोष्टकों में रखा जा सकता है –

पूर्व-प्रत्यय+विशेषण	अंतर्केंद्रित	पूर्व-प्रत्यय संज्ञा	बहिर्केंद्रित
अ : शुभ	अशुभ	नि– : डर	निडर
व्यवस्थित	अव्यवस्थित	निर् : भय	निर्भय
साधारण	असाधारण	बल	निर्बल
अन- : आवश्यक	अनावश्यक	बे– : चैन	बेचैन
		जान	बेजान
कु : रूप	कुरूप		
ना : बालिग़	नाबालिग़	ला– : पता	लापता
		वारिस	लावारिस

2–समास-प्रक्रिया (Compounding)

समास के अंतर्गत हम उन शब्द-रूपों पर विचार करते हैं जो दो या दो से अधिक मूल प्रकृति-रूपों के संयोग से व्युत्पन्न होते हैं। कहीं-कहीं मूल प्रकृति के अतिरिक्त प्रत्ययों का भी संयोग हुआ है –जैसे सतखंडा में सत+खंड और–आ प्रत्यय।

सुविधा के लिए सामासिक संरचना का अध्ययन दो वर्गों (अ) अंतर्केंद्रित (Endocentric) और (आ) बहिर्केंद्रित (Exocentric) के अंतर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है। बहिर्केंद्रित सामासिक संरचना के अंतर्गत उन संरचनाओं को भी रखा गया है जिनका एक अंश विशेषण होते हुए भी केंद्र बाहर की ओर है। जैसे : दीर्घकाय।

अर्थ के आधार पर दोनों वर्गों के विशेषण गुणवाचक विशेषण के अंतर्गत आते हैं।

(अ) अंतर्केंद्रित

संज्ञा+विशेषण : जन्मांध, नराधम – –
कलाकुशल, कर्मपटु –
जलपिपासु, प्रेमातुर – –
ज्ञानशून्य – –
कष्टसाध्य – –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. संज्ञा+समाप्तिसूचक विशेषण

संदेहपूर्ण, प्रभावपूर्ण – –

जीविका–विहीन – –

धूल धूसरित, जल प्लावित – –

मदमत्त, रससिक्त भयभीत – –

मनचला, दिलजला, मुँहमाँगा – –

3. संज्ञा+धातु+अक् (प्रत्यय) संदेहजनक, उपदेशमूलक– –

4. संज्ञा+धातु+0(वाला) : दिलफेंक,

मुँहतोड़, मक्खीचूस –

5. संज्ञा+धातु+ई0 : जीवधारी, दूरदर्शी, मर्मभेदी – –

6. संज्ञा+धातु+इनी : प्राणदायिनी

7. संज्ञा+धातु+वा : जानलेवा – –

8. सर्वनाम+विशेषण : स्वाधीन, पराधीन – –

9. सर्व+समाप्तिसूचक विशेषण : आपबीती – –

10. संख्यावाचक विशेषण+संज्ञा+आ (प्रत्यय)

सतखंडा, चौमुँहा, सतमंज़िला – –

11. संज्ञा विशेषण+समाप्तिसूचक विशेषण : अधपका, अधमरा – –

12. गुणवाचक विशेषण+समाप्तिसूचक विशेषण : मिठबोला – –

13. अव्यय+समाप्तिसूचक विशेषण : चिरपरिचित – –

14. अव्यय+समाप्तिसूचक विशेषण : बिनदेखा, बिनकहा – –

15. अव्यय+धातु+ऊ : पिछलग्गू, काम चलाऊ

(आ) बहिर्केंद्रित (Exocentric)

1. ंज्ञा+संज्ञा : पाषाणहृदय, दुधमुँहा – –

2. बिशेषण+संज्ञा : दीर्घकाय, विशाल काय – –

3. समाप्तिसूचक विशेषण+संज्ञा : नतमस्तक, दत्तचित्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. द्विवित्व :

द्विवित्व में मूल प्रकृति की पूरी अथवा आंशिक आवृति होती है। इस प्रकार द्विवित्व के दो वर्ग बन जाते हैं –

1. पूर्ण द्विवित्व : कुछ कुछ, एक एक, बड़े बड़े, मीठा मीठा – –
2. अपूर्ण द्विवित्व : थोड़ा बहुत, लाल पीला – –

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, द्विवित्व वाले विशेषणों का अध्ययन वाक्यांश के अंतर्गत होना चाहिए और प्रस्तुत लेख का विषय भी विशेषण शब्द रूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्तर ज़िले की बोलियाँ

संपत सिंह ठाकुर

बस्तर ज़िला छत्तीसगढ जनपद के छै ज़िलों में से एक है। यह मध्य प्रदे राज्य के दक्षिणी-पूर्वी भाग में स्थित है। देशी रियासतों के विलीनीकरण के पहले बस्त पृथक राज्य था और काँकेर पृथक, किंतु विलीनीकरण के उपरांत बस्तर ए काँकेर को मिलाकर एक ज़िला बना दिया गया है जिसका नाम बस्तर है औ जिसका मुख्य कार्यालय जगदलपुर में है। बस्तर ज़िला उत्तर में मध्य प्रदेश ही दो अन्य ज़िलों--दुर्ग तथा रायपुर से घिरा है। किंतु इसकी अन्य सीमाएं पर हिंदीतर राज्य हैं, जसे दक्षिण में तेलुगु-भाषी आंध्र राज्य, पश्चिम में मराठी-भाषी महाराष्ट्र एवं पूर्व में उड़िया-भाषी उड़ीसा प्रदेश। इसका परिणाम य हुआ है कि बस्तर की बोलियों पर उड़िया, मराठी एवं तेलुगु का अत्यंत गहरा एवं व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सच तो यह है कि बस्तर ज़िले के सीमावर्ती क्षेत्रों में हिंदीतर उपर्युक्त भाषाओं का ही प्राधान्य है। बस्तर में रहने वाली अधि-कांश जनसंख्या आदिवासियों की है। ये जातियाँ आर्य एवं अनार्य कुलों की अनेक भाषाओं एवं बोलियों का प्रयोग करती हैं। 1961 की जनगणना के आधार पर बस्तर ज़िले की जनसंख्या 16,67,810 है एवं क्षेत्रफल 15,12 वर्ग मील। बस्तर का अधिकांश भूभाग वनाच्छादित है और इसमें निवास करने वाली जन-जातियाँ जिनमें हल्बी, धाकड़, मुरिया, भतरा, गदबा, परजा, चंडा कुंबुचिया, जोगी, मुंडा, मिरगान, माड़िया आदि प्रमुख हैं अपनी जाति के लोगों में अपनी-अपनी विशिष्ट बोली में विचारों का आदान-प्रदान करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्तर में विभिन्न बोलियाँ बोलने वालों की तुलनात्मक स्थिति का परिचय निम्न तालिका से मिलेगा —

क्र० सं०	बोलियाँ	बोलने वालों की संख्या 1951 की गणना के आधार पर
1.	हल्बी	2,60,780
2.	गोंडी	2,48,761
3.	माड़ी	1,13,054
4.	छत्तीसगढ़ी	90,570
5.	हिंदी	71,004
6.	भतरी	62,583
7.	परजी	19,847
8.	तेलुगु	17,327
9.	दोरली	9,278
10.	मराठी	5,571
11.	उड़िया	5,213
12.	बंजारी	2,292
13.	उर्दू	1,348
14.	मारवाड़ी	1,322
15.	अडकारी	603
16.	गुजराती	585
17.	बंगाली	408
18.	सिंधी	345
19.	पंजाबी	266
20.	मिरगानी	260
21.	नहारी	128
22.	शेष	201
	कुल संख्या	9,13,746

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त तालिका में हिंदी, उर्दू, मारवाड़ी, गुजराती, बंगाली, सिंधी और पंजाबी का भी समावेश कर लिया गया है। इन भाषाओं को बोलने वाले लोग हैं जो व्यापार अथवा नौकरी के सिलसिले में बस्तर में आए थे और स्थायी अथवा अस्थाई रूप से वहाँ रहने लगे हैं। ये भाषाएँ बस्तर की भाषाएं नहीं कही जा सकती। बस्तर की भाषाएँ अथवा बोलियाँ वे हैं जिन्हें यहां के मूल निवासी बोलते हैं। अपनी प्रकृति और रूप में ये बोलियाँ इतनी भिन्न हैं कि अनु-संधानकर्ता का साहस सहसा डिग जाता है। अभी तक ग्रियर्सन, मिकेल, एलनि, ग्रीगसन आदि भाषा-वैज्ञानिकों और भाषा-प्रेमियों के अध्ययन के फलस्वरूप बस्तर की कतिपय विशिष्ट बोलियाँ ही प्रकाश में आई हैं। उपर्युक्त तालिका में गदवा, कुंबुचिया, जोगी, सोनझरिया, नाहर (कंडरा), सवँरा, पनारा आदि जातियों की कई बोलियों का उल्लेख नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि बस्तर के अधिकांश निवासी दो बोलियों का व्यवहार करते हैं—आपसी जातीय लोकाचार में अपनी जातीय बोली का और जात्येतर लोगों से काम पड़ने पर हल्बी अथवा गोंडी का। ऐसी स्थिती में जनगणना के समय इन जातियों द्वारा अपनी मातृभाषा के स्थान पर हल्बी अथवा गोंडी लिखवाए जाने की संभावना बराबर बनी रहती है। जनगणना-प्रतिवेदन में जिन बोलियों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है वे प्रकृति में अत्यंत दुरूह एवं प्रयोग में अत्यंत क्लिष्ट हैं। साथ ही उनके बोलने वालों की संख्या अत्यंत सीमित—कहीं-कहीं तो 100 से भी कम है। ऐसी परिस्थिति में उन अनुसंधानकर्त्ताओं को जो, महीने-दो महीने अथवा वर्ष-दो वर्ष के लिए बस्तर में आते हैं, इन अज्ञातप्राय: बोलियों का परिचय नहीं मिल सकता। इन बोलियों की जानकारी तो वही प्राप्त कर सकता है जो बस्तर के संपूर्ण जनजीवन से अत्यंत घनिष्ट रूप से परिचित हो। मैंने अपना समग्र जीवन बस्तर में ही बिताया है। बस्तर की अदालतों से संबंद्ध होने के कारण बस्तर ज़िले की सभी जातियों की समस्याओं एवं दैनिक जीवन से परिचित होने का मुझे अवसर मिला है। यही नहीं, विदेशी अथवा स्थानीय बोलियों से अनभिज्ञ भारतीय न्यायाधीशों एवं हल्बा, पराजा आदि जातियों के अभियुक्तों की बात एक-दूसरे को समझाने के लिए मुझे दुभाषिए (इंटरप्रेटर) का काम भी करना पड़ा है। मिकेल, ग्रीगसन, एलनि आदि महाशयों को भी बस्तर की बोलियों का व्यावहारिक ज्ञान देने का उत्तरदायित्व भूतपूर्व शासक की ओर से मुझे सौंपा गया था। इन सब सुअवसरों के परिणामस्वरूप बस्तर ज़िले की सभी बोलियों की प्रकृति, उनका शब्द-भंडार, उनका रूप-विन्यास एवं उनका उच्चारण वैशिष्ट्य मुझे अनायास प्राप्त हो गया है। अपने इसी ज्ञान के आधार पर मैं बस्तर जैसे जटिल भाषा स्थिति वाले ज़िले की बोलियों का सर्वेक्षण करने का साहस कर रहा हूँ।

बस्तर ज़िले के स्थानीय स्थाई निवासियों द्वारा जिन बोलियों का प्रयोग किया जाता है वे निम्न लिखित हैं :

1. हल्बी, 2. मुरिया, 3. दंडामी माड़िया, 4. अबूझ माड़िया, 5. घोटुल मुरिया, 6. दोरली, 7. भतरी, 8. छत्तीसगढ़ी, 9. राजगोंडी, 10. गदबा, 11. धुरवा-परजा, 12. मुंडा, 13. जोगी, 14. मिरगान, 15. चंडार, 16. कुंबुचिया, 17. तेलुगु, 18. मराठी एवं 19. उड़िया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले उन बोलियों का परिचय दिया जा रहा है जो अविज्ञात, अप्रख्यात अथवा सीमित क्षेत्रों की बोलियाँ हैं।

गदबा : गदबा बोली केवल गदबा जाति के लोगों द्वारा बोली जाती है।

गदबा लोग बस्तर के मुख्यालय जगदलपुर से दो-तीन मील दक्षिण संरगीपाल एवं नयानार नामक गाँवों में ही सीमित हैं। गदबा बोलने वालों के केवल 50-60 घर हैं। सब मिलाकर गदबा जाति के लोग 100 से अधिक नहीं होंगे। ये लोग आपने दैनिक व्यवहार में गाँव से बाहर आने पर हल्बी का प्रयोग करते हैं।

कुंबुचिया : कुंबुचिया जाति के लोग खेती भी करते हैं और व्यापार भी। इनकी एक विशिष्ट पहिचान यह है कि वे गेरुवा वस्त्र पहनते हैं। कुंबुचिया बोली बस्तर की पूर्वी सीमा में अवस्थित तारापुर, बजावंड एवं नलपावंड गाँवों में बोली जाती है। कुंबुचिया बोलने वाले भी सौ से कम ही हैं। उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्र की बोली होने के कारण कुंबुचिया पर उड़ीया का पर्याप्त प्रभाव है। इस पर बस्तर जिले की अन्य बोली भतरी का भी बहुत प्रभाव है।

धुरवा परजा : 1951 की जनगणना के अनुसार परजा बोलने वालों की कुल संख्या 19,847 थी। परजा बोलने वाले नेतानार और चितापुर परगना के गाँवों में एवं माचकोट गाँव के आठ-दस घरों में ही पाए जाते हैं। ये लोग यायावर हैं, किंतु इनकी विशेषता यह है कि ये कभी 3-4 मील से अधिक अपना नया निवास नहीं बनाएंगे और ये लोग जगदलपुर के उत्तरी-पश्चिमी भाग में अपने नए निवास स्थान की खोज में नहीं आते। यही कारण है कि परजा बोली चितापुर एवं नेतानार के निकटवर्ती क्षेत्रों में ही सीमित है।

मिरगानी: 1951 की जनगणना के अनुसार मिरगानी बोलने वालों की संख्या 260 थी। मिरगान मुख्यत: रूई का काम करते हैं, सूत निकालते हैं और बुनते भी हैं। दीवाली के समय दियों के लिए बत्ती बेचने वाले यही मिरगान हैं। कुंबुचिया की भाँति मिरगानी भी बस्तर ज़िले के पूर्वी भाग में उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्रों के तारापुर और बजावंड गाँवों में बोली जाती हैं। कुछ मिरगान जगदलपुर के गंगामुंडा मुहल्ले में स्थाई रूप से बस गए हैं। वे अभी भी मिरगानी ही बोलते हैं। मिरगानों में 'बत्ती' को 'सीड़ी' कहते हैं और 'रवालिया क्या?' को 'बाल लास'। कुंबुचिया के विपरीत मिरगानी पर उड़िया का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है।

चंडार : चंडार जाति भी मिरगानी एवं कुंबुचिया जाति की तरह बस्तर के पूर्वी क्षेत्र में धनपुंजी नामक गाँव के निकट रहती है। चंडार जाति के लोगों की बड़ी संख्या उड़ीसा में रहती है। चंडार जाति के लोग जिस बोली का प्रयोग करते हैं वह चंडार ही कहलाती है। यह भतरी से बहुत मिलती है। इसके बोलने वाले भी अधिक नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोगी और मुंडा : जोगी एक विशिष्ट जाति होती है जिसका प्रतिनिधि विजया-दशमी के अवसर पर राजकुल के एक विशिष्ट अनुष्ठान के रूप में सीरासार में समाधि लगाकर बैठता है। मुंडा जाति के लोग रथयात्रा आदि के अवसर पर मुंडा बाजा बजा-बजाकर नाचतें हैं। ये लोग अपनी-अपनी विशिष्ट बोली, जिन्हें क्रमशः जोगी और मुंडा कहते हैं, बोलते हैं । ये दोनों बोलियाँ हल्बी से अत्यधिक प्रभावित हैं।

गोंडी : बस्तर ज़िले के मध्य, पश्चिम एवं दक्षिण भागों में निवास करने वाले मुरिया, दंडामी माड़िया, अबूझ माड़िया एवं घोटुल मुरिया नामक जातियों द्वारा व्यवहृत बोलियों का सामूहिक नाम गोंडी है, किंतु इन सभी जातियों की बोलियाँ परस्पर इतनी पृथक हैं कि लोग अबूझ माड़िया, दंडामी माड़िया लोगों की बोली सुगमतापूर्वक नहीं समझ पाते। 1951 की जनगणना के अनुसार गोंडी बोलने वालों की संख्या 2,49,761 थी जो ज़िले की समस्त जनसंख्या का 27.34 प्रतिशत है। इसमें माड़िया बोलने वालों की 1,13,054 संख्या नहीं जुड़ी है। मुरिया पर हल्बी का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट लक्षित होता है। दंडामी माड़िया पश्चिमी जगदलपुर, दंतेवाड़ा तहसील, कोंटा तहसील के उत्तरी भाग में और बीजापुर तहसील के कुछ भागों में बोली जाती है। अबूझ माड़िया पहाड़ पर रहने वालों की बोली है। घोटुल मुरिया जगदलपुर तहसील के उत्तरी भाग, कोंडागाँव एवं नारायनपुर में बोली जाती है। इस पर छत्तीसगढ़ी का प्रभाव परिलक्षित होता है। राजगोंड स्वयं को सामान्य गोंडोंसे, ऊँचा समझते हैं। ये बस्तर के भोपाल-पटनम (ख़ास), कुटरू, तोयनार, फरसेगढ़, पासेवाड़ा और दूड़ेपल्ली क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इनकी संख्या लगभग 1000 होगी। राजगोंडों की बोली माड़िया-गोंडों से भिन्न उच्चारण वाली होती है, जैसे :

हिंदी	माड़ियागोंडी	राजगोंडी
कौन है ?	बेनोर्रा	बोर्रा
क्या करते हो ?	बाताकिन्तिन	बारा किन्तिन

दोरली : दोरली बोलने वालों की कुल संख्या लगभग 10 हज़ार है। दोरली का क्षेत्र भोपालपटनम, पामेर, गोलापल्ली और कोंटा का दक्षिणी भाग है। दोरली का भूभाग आंध्र के संनिकट है, अतः इस पर तेलुगु का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। इसे गोंडी का तेलुगु रूप कह सकते हैं।

भतरी : ज़िले की प्रमुख बोली है इसके बोलने वाले भतरा जाति के लोगों की संख्या 1951 की जनगणना के अनुसार 62,583 थी । इस पर एक ओर हल्बी का प्रभाव है, दूसरी ओर उड़िया का। उसके बोलने वाले जगदलपुर तहसील के पूर्वोत्तर में रहते हैं।

छत्तीसगढ़ी : काँकेर, भानुप्रतापपुर, कोंडागांव के कतिपय भागों और जगदलपुर खास के एक विशिष्ट समुदाय की बोली है। यह रायपुर, बिलासपुर, सरगुजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...अथवा रायगढ़ की बोली से थोड़ी भिन्न है। इसके बोलने वाले लगभग एक ...होंगे। छत्तीसगढ़ी का प्रभाव हल्बी पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। हल्बी बोली ...बहुवचन में लगने वाला मन प्रत्यक्षतः छत्तीसगढ़ी का ही है।

हल्बी : बस्तर ज़िले की सर्व प्रमुख बोली हल्बी है। इसे ज़िले की 'लिंग्वा फ्रेंका' ...कह सकते हैं। प्रायः प्रत्येक जाति का व्यक्ति हल्बी जानता है और हाटबाज़ार, ...स्पताल, अदालत में इसी का प्रयोग करता है। यह बात दूसरी है कि विशिष्ट जातियों ...द्वारा प्रयुक्त होने पर हल्बी के मूल रूप में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो जाए। मातृभाषा ...के रूप में हल्बी का प्रयोग करने वालों की संख्या 1951 की जनगणना के अनुसार ...,60,780 थी जो समस्त जन संख्या का 28.54 प्रतिशत है। हल्बी बोलने वाले ...हल्बा लोग हैं। ये समस्त जिले में फैले हुए हैं। हल्बा जाति के लोग प्राचीन शासकों ...की सेना में थे। बस्तर में जहाँ-जहाँ प्राचीन राजाओं ने अपने गढ़ अथवा ज़मींदारियाँ ...स्थापित कीं, हल्बा लोग वहाँ-वहाँ बस गए। हल्बा जाति के लोग मूलतः चाँदा और ...भंडारा ज़िलों से आए थे, अतः आज भी हल्बी पर मराठी का प्रभाव देखा जा सकता है। कुछ दिनों पहले तक हल्बा मराठी भाषा की एक बोली मानी जाती थी, पर अब ...निश्चित रूप से प्रमाणित हो चुका है कि वह हिंदी की ही एक बोली है। नीचे हल्बी के कतिपय शब्द, व्याकरण-रूप एवं एक उदाहरण दिया जा रहा है—

हल्बी के शब्द

हिंदी	हल्बी	हिंदी	हल्बी
माता	आया	पिता	बाबा
खेत	बेड़ा	बैल	बैला, बयला
पेड़	रूख	पक्षी	चिड़इ, चड़ई
कौआ	कावा, कावड़ा	योग्य	गुन
तोड़ना	टुटातोर	फोड़ा	उपकान
मांगना	परातो	खराब	अडरा
अचानक	गरहा	हिसाब	गिनतो
कौन	कोन	क्या	काय
कब	केबे	हल्ला	कोल्हार, कलकल
नहीं	नाँजुन	मुँह	थोमना
मज़बूत	जमखम	झाँकना	उन्हारतो
घी	घिनघिना	तक़लीफ़	डंड बेबस्ता
लोमड़ी	कोलिहा	गाड़ी	गाड़ा
बिस्तर	डसना	बाल	केंस, रंवा
अंगुली	अंडखी, अंगठी	बिही	वेलोती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी	हल्बी
मैं जाता हूँ	मंय जायेंसे
मैं जाती हूँ	मयं जायेंसे
हम जाते हैं	हामी जाऊँसे
तुम जाते हो	तुय जासीस
तुम लोग जाते हो	तुमीमन (तुमनमन) जाहासीस
आप जाते हैं	तुमी जाहासीस
वह जाता है	हून जायसें (जायेंसे)
वे जाते हैं	हूनमन जासत
मैं गया	मंय गेले
हम गए	हामी गेलू
मैं जाऊँगा	मंय जायेंदे
तुम जाओगे	तुय जासें
वह जायगा	हून जायेंदे
यह मेरा घर है	ये मोचो घर आय
वह भी हमारा धर है	हुन वले हामन मनचो घर आय
मैं सीता की माँहूँ	मंय सीताचो आया आँय
राम की माँ कहाँ है ?	रामचो आया कोन बाटे आसे ?

हल्बी की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि 2 से 19 तक की संख्याओं का उच्चारण तो छत्तीसगढ़ी से मिलते हैं, पर एक के लिए गोटोक शब्द है जो हल्बी का अपना शब्द है। 20 के लिए गोटोक कोरी का प्रयोग किया जाता है।

हल्बी का उदाहरण

हिंदी

मेरी माँ बहुत वृद्धा हुई। अब उसके हाथ-पैर नहीं चलते। हम लोग एक बार बड़े माई के पास बैलाडीला जाएँगे। अब हमारा मन यहाँ नहीं लगता। वहाँ भाभी है और उसके बच्चे।

हल्बी

आया तो खूबे डोकरी होंली। ऐबे हुंचो हात पायँ नी चले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमनमन एक खेप दादा [illegible] बैलाडीला ने जाउँदे । एबे हमचो मत
इथा नी लागे । हूता भवजी आसे आउर हुनचो पीला पिचका ।

उपर्युक्त बोलियों के अतिरिक्त बस्तर ज़िले के कोटा एवं बीजापुर तहसील के सीमावर्ती क्षेत्र में द्रविड़ कुल की भाषा तेलुगु जिसे बस्तर निवासी तेलंगी कहते हैं बोली जाती है। पूर्व में जगदलपुर तहसील के पूर्वी क्षेत्र में उड़िया बोली का व्यवहार होता है। वैसे उड़िया लोग बस्तर के अंतर्वर्ती क्षेत्रों में भी मिल जाएँगे। बस्तर में बोली जाने वाली उड़िया पर निकटवर्ती क्षेत्रों की बोलियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। पश्चिम में महाराष्ट्र का चाँदा ज़िला है। बस्तर की पश्चिमी सीमा पर स्थित डुंडरा, पासेवाड़ा, माटोली, मुरझर आदि गाँवों में मराठी बोली जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डिंगल का 'आँ' प्रत्यय

कन्हैयालाल सहल

स्वर्गीय श्री सूर्यकरण जी पारीक ने 'बेलि क्रिसन रुक्मणी री' की भूमिका के पृष्ठ 112 पर लिखा है "डिंगल में करण व संबंध का 'आँ' प्रत्यय केवल बहुवचन-वाची शब्द के आगे आता है।" इससे स्पष्ट है कि श्री पारीक जी ने 'आँ' प्रत्यय को केवल करण व संबंध का प्रत्यय माना है। किंतु वास्तव में देखा जाए तो यह प्रत्यय डिंगल के सभी कारकों में व्यवहृत है जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरणों से प्रकट है :—

कर्त्ता

1. धनि धनि कहे **सूराँ** मुष धाए। (राम रासो)
   (मुख से धन्य धन्य कह कर देवता दौड़े।)
2. **सूराँ** आलस एस में अकज गुमायो आव। (बीर सतसई)
   (शूरवीरों ने आलस्य और ऐश में व्यर्थ ही आयु गँवाई।)
3. ढोल सुणंता मंगली मूंछाँ भूंह चढंत। (वीर सतसई)
   (विवाह के समय का मांगलिक ढोल सुन कर मूंछें भौहों से जा लगती हैं।)

उक्त तीनों उदाहरणों में 'सुराँ', 'सूराँ' और 'मूंछाँ' का 'आँ' प्रत्यय कर्त्ता कारक का प्रत्यय है।

कर्म

1. मयंद धपावै मोतियाँ, हंसाँ लांघणियांह। (बाँकीदास)
   (लंघन करने वाले हंसों को मृगेंद्र (हाथियों का वध कर) मोतियों से तृप्त कर देता है।) यहाँ 'हंसाँ' का 'आँ' प्रत्यय कर्म कारक का प्रत्यय है।

करण

1. के सूरा धर कज्ज है, के सूरा पर कज्ज।
   सुरपुर दोहू संचरै, रूकाँ हवै रज रज्ज॥ (बाँकीदास)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कुछ शूरवीर तो ऐसे होते हैं जो पृथ्वी के लिए तलवारों से टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और कुछ शूरवीर ऐसे हैं जो दूसरों के लिए असि-धारा में स्नान करते हैं। दोनों ही प्रकार के शूरवीर स्वर्ग में विहार करते हैं। यहाँ 'रूकाँ' का 'आँ' प्रत्यय करण कारक का 'आँ' प्रत्यय है।

2. "मयंद धपावै मोतियाँ" अर्थात् सिंह मोतियों से तृप्त कर देता है। यहाँ 'मोतियाँ' का 'आँ' प्रत्यय करणसूचक है।)

संप्रदान

सीहाँ देस विदेस सम, सीहाँ किसा उतन्न। (बाँकीदास)

(सिंहों के लिए देश और विदेश समान हैं, उनके लिए वतन कैसा? यहाँ 'सीहाँ' का 'आँ' प्रत्यय संप्रदान का प्रत्यय है।

अपादान

तिण वार गुलालां मूंठ तीर।
उड़ झड़ै बूर खागाँ अबीर।। (बिड़द सिणगार)

(बाणों का चलना गुलाल की मुट्ठी फेंकने के समान और तलवार की धार से जो बुरादा झड़ता है, वही अबीर है।) यहाँ 'खागाँ' का 'आँ' प्रत्यय अपादान सूचक है। तलवारों से बुरादा झड़ने में अलग होने का भाव प्रकट होता है।

संबंध

सादूलो वन संचरै, करण गयंदाँ नास। (बाँकीदास)

(हाथियों का नाश करने के लिए शार्दूल वन में विचरण करता है।) यहाँ 'गयंदाँ' का 'आँ' प्रत्यय संबंध कारक का प्रत्यय है।

अधिकरण

नथी रजोगुण ज्याँ नराँ। (महाकवि सूर्यमल्ल)

(जिन मनुष्यों में रजोगुण नहीं है।) यहाँ 'नराँ' का 'आँ' प्रत्यय अधिकरण-सूचक है।

संबोधन

बाघ तणौ जस बीदगाँ। कंठ करौ कहियाँह। (बाँकीदास)

(हे कवियो! बाघा का जो यश हमने कहा है, उसे कंठस्थ कर लो।) यहाँ 'बीदगाँ' का 'आँ' प्रत्यय संबोधन सूचक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थानी भाषा के विशेषज्ञ एल० पी० तैस्सितोरी ने उक्त 'आँ' प्रत्यय के अपादान और संबंध कारकों में निम्नलिखित उदाहरण दिए हैं :—

अपादान

सुणी सिंह कोपाँ जलि थयँ = (यह) सुन कर सिंह कोप से जल गया।

संबंध

करहाँ – कंठि=करहों (ऊँटों के कंठ पर)

बाहलाँ – ना वियोग=बल्लभों (प्रियजनों) का वियोग

पगलाँ – ऊपरी=पग-चिह्नों के ऊपर

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्री सूर्यकरण जी पारीक और तैस्सितोरी में से किसी ने भी 'आँ' प्रत्यय को सब कारकों में प्रयुक्त नहीं माना है किंतु मैंने जो डिंगल के प्रसिद्ध कवियों से उदाहरण दिए हैं, उनसे 'आँ' प्रत्यय की व्यापकता सिद्ध है। डिंगल को छोड़ कर भारत में शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसमें एक ही प्रत्यय सभी कारकों में प्रयुक्त होता हो।

'आँ' का मूल स्रोत

आपाततः ऐसा लगता है कि संस्कृत में अकारांत शब्दों के द्वितीया बहुवचन के 'आन्' से 'आँ' उद्भूत हुआ है किंतु भाषा-विकास की परंपरा में सीधे संस्कृत से 'आँ' का प्रादुर्भाव होना संभव नहीं। इसलिए 'आँ' के स्रोत-संधान के लिए अपभ्रंश का ही सहारा लेना चाहिए। "अपभ्रंश के अकारांत प्रातिपदिकों के संबंध-कारक बहुवचन में 'अहँ' और 'आहँ' दो प्रकार के अंत वाले रूप होते थे। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में व्यंजनांत प्रातिपदिक सामान्यतः—'हँ' को छोड़ देते हैं और स्वरांत प्रातिपदिक अहँ या आहँ को संकुचित करके 'आँ' कर लेते हैं।"—तैस्सितोरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिनिवासी खासी और उनका साहित्य

आर०आर०थोमस

आसाम की पहाड़ियों में रहने वाली लगभग दो लाख जनसंख्या की जाति 'खासी' नाम से पुकारी जाती है। ये मूलतः मंगोलिया के निवासी हैं, जो कि मातृसत्तात्मक रीतियों के आधार पर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। खासी लोग 'मौन्खमर' भाषा बोलते हैं, जो कि तिब्बती-ब्रह्मी भाषा के समुद्र के मध्य एक टापू के समान अवशिष्ट रह गई है। इस भाषा को उन मिशनरियों के द्वारा साहित्य प्रदत्त किया गया है, जो कि इस भाषा के बोलने वालों के मध्य कार्य करती हैं। यह भाषा जो कि लगभग एक शताब्दी पूर्व भद्दी, असभ्य और अलिखित रूप में थी, अब भारतवर्ष की भाषाओं में अपना प्रमुख स्थान रखती है।

उन्नीसवीं शती तक खासी भाषा की कोई अपनी लिपि न थी और न ही कोई पुस्तक थी। एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'उसने अपनी पुस्तक खो दी, जब कि वह नदी पार कर रहा था'। सर्व प्रथम, सन् 1824 ई० और 1833 ई० के मध्य 'सैरेम्पोर क्रिश्चियन मिशन' ने बाइबिल के कतिपय अंशों का खासी भाषा में अनुवाद किया और बंगाली लिपि में उसको छापा। सन् 1842 ई० में दो खासी भाषा की पुस्तकें रोमन लिपि में छापी गईं, जिनमें एक थी 'खासी पाठक' एवं दूसरी थी 'मदर्स-गिफ्ट' का अनुवाद। दोनों ही 'वेल्श-मिशन' के एक सदस्य की कृतियाँ थीं।

सन् 1843 ई० से 1889 ई० तक रचित कृतियाँ केवल प्राथमिक-शिक्षा, साधारण पाठकों एवं धार्मिक-पुस्तकों तक ही सीमित रहीं। इसी समय प्रथम–खासी-पीरियॉडिकल 'यू नोंगकिट खुबोर' के नाम से सामने आया।

सन् 1891 ई० के पश्चात् साहित्य की वृद्धि के लिए प्रयत्न किए गए। सर्व प्रथम 'उपनिषदों' का अनुवाद, चाणक्य कृत 'नीतिदर्पण' एवं 'रामायण' का अनुवाद और अनेक 'पीरियोडिकल्स' व 'समाचार-पत्रों' का प्रचार किया गया। जे० वेंचिया रेंले कृत 'की डिजात जोंग की लोंग्श्वा', एवं टी० काजी, बी० एल०, जी कोस्टा व एच० इलियस कृत 'का जिगरोय का री खासी'; आधुनिक शैली में लिखित पुस्तकें हैं, जो खासी लोगों के जीवन, विश्वास एवं विकास के संबंध में हमें पर्याप्त जानकारी प्रदान करती हैं। श्री सिक्वारा रोय ने भी अपने पिता श्री जीवन रोय की भाँति, खासी-साहित्य की श्री-वृद्धि में यथेष्ट सहयोग प्रदान किया। उनकी 'का नियाम टिप्पली ट्रिपन्रियू' एक अत्यंत विचारपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कृति है। श्री प्रिमरोज गेटफोर्म कृत 'सोदोंग का लिंगक्यिर दियें' और 'को खाना तांग बाद यू सीयर लापालांग'; खासी-गद्य की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं।

लेखक, जिसके परामर्श ने मुझे सहायता दी, अत्यंत प्रसिद्ध खासी-लेखक श्री सोसो-थाम का पुत्र है। रेबन सिंग कृत 'का किताब जिंगफावर' कविताओं और पद्यों की पुस्तक है, जो कि विशेषतया विजय, शोक, विवाह, नृत्यादि के अवसरों पर गाई जाती है। खासी-गद्य-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति 'का किताब नियाम खीन किथ खासी' है जो सन् 1911 ई० में लिखी गई, और जिसमें खासी-भाषा का वास्तविक सौंदर्य और संगीत साकार हो उठा। यह अध्यात्म सत्ता की ओर ध्यान लगाने के नियमों का वर्णन करती है और साथ ही खासी-परंपराओं के नियमों के विषय में भी अमूल्य सूचनाएँ देती है और इसी की सहायता से हमें प्राचीन खासी-शासन, जो कि दूसरे अथवा भिन्न साधारण नियमों में था, के बारे में जानकारी होती है। सोसो थाम कृत 'ऐसप्स फेबल्स' का अनुवाद सौंदर्य और भावमयता का सुंदर उदाहरण है। राधोन सिंग कृत 'का जिंगन्नेम तैमेन' खासी लोगों की पद्य में लिखी 'चारित्रिक-पुस्तक' है। डॉ० एच० लिंगदोह ने, बीसवीं शती की शैली में, अपनी पुस्तक 'नियाम-खासी' के अंतर्गत हमें खासी लोगों की उत्पत्ति तथा उनके विश्वासों, धार्मिक-कृत्यों, उत्सवों एवं चमत्कारपूर्ण कविताओं में आनंद लेने के सुव्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किए हैं। उनकी 'सईम खासी बाद सिफेंग' नामक पुस्तक खासी और जैंतिया जातियों के मुखियों के पौराणिक एवं परंपरागत इतिहास का पूर्ण विवरण प्रदान करती है। अनुसंधित्सुओं के लिए उनकी 'का पोंबलंग नोंगक्रेम बाद का थांग सीम सोहरा' एक अत्यंत मूल्यवान कृति है। यह खासी लोगों के उच्च व प्रमुख रीतिरिवाजों और प्रमुख नोंगक्रेम नृत्य के संबंध में, सईम्स ऑव छेरा को जलाने की क्रिया के बारे में जानकारी कराती है। उनकी 'खासी-हाइजीन' (की अइन का जिंगकोंड जिंगखियाह) नामक पुस्तक हमें यह बतलाती है कि वैज्ञानिक विषय के लिए खासी भाषा को किस प्रकार अपनाया जा सकता है। मैं इस तथ्य को क्रमिक विवरणात्मक रूप में यहाँ दे सका, इसके लिए प्रमुख रूप से ऋणी हूँ।

सोसो थाम गद्य की अपेक्षा पद्य के लिए (सन् 1936-37 में) अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। उनकी 'का दिनतारा किसयार' अर्थात् 'दि गोल्डन हार्प' (1939) एक बड़ी रंगीन पुस्तक है, परंतु उनकी 'कि स्नगी बरीम यू' या 'हाइन्यू ट्रे' प्रमुखतया खासी-पद्य रचना है। इसमें यह अंकित किया गया है कि किस प्रकार जाति शुद्ध रूप से उत्पन्न हुई और किस प्रकार उसका क्रमशः पतन होता गया और सद्भावना कितने दिन और रह सकती है या रहेगी। खासी लोगों का जीवन-रक्त इस कविता पुस्तक में खोजा जा सकता है। कविता की भावना और शैली खासी लोगों के परिश्रम, प्रसन्नता, विचारशीलता और इन सबसे भी ऊपर स्वतंत्रता की भावना पर प्रकाश डालती है।

सोसो थाम आज के खासी निवासियों की आशाओं और आदर्शों को शीघ्र ही पकड़ लेने में समर्थ हैं और वह उन उन्नत मार्गों का निर्देशन करते हैं, जो कि उनके साहित्य और संस्कृति को चरमोत्कर्ष प्रदान करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

—अनु० विनोदकांत गौतम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द-श्री

● काँज अथवा सदर काँज

● लाँग और पैरोल

● छत्तीसगढ़ की जनपदीय शब्दावली

● कुमाउंनी में प्रचलित रिश्तों से संबंधित शब्दावली

● शब्दों का आत्म परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काॅज़ अथवा सदर काँज़

हरिहर प्रसाद गुप्त

काश्मीरी भोजन का काॅज़ एक मुख्य अंग है। शायद ही कोई परिवार हो जो इस संधान का प्रयोग न करता हो। हाँ, प्राचीन आहार-विहार में परिवर्तन के साथ इसका भी लोप होता जा रहा है। परंतु, काश्मीर का अथवा भारत की संस्कृति को समझने के लिए हमारे रहन-सहन के एक-एक ढंग का महत्व है। भोजन सामग्री तो निश्चित ही देश की सामाजिक, भौगोलिक एवं आर्थिक स्थितियों पर प्रकाश डालती है।

काॅज के स्वरूप एवं इतिहास तथा काश्मीर में उसके महत्व पर प्रकाश डालना इस निवंध का उद्‌देश्य है।

काॅज शब्द संस्कृत कांजिक से संबंधित है। आयुर्वेद के ग्रंथ 'भाव प्रकाश' में कांजिक की परिभाषा इस प्रकार है—**"संधितं धान्यमंडादि कांजिकं कथ्यते बुधैः।"** अर्थात् धान्यादिकों के मंड (हि० मांड) को कुछ दिनों रखा रहने देवे तो उसकी संज्ञा कांजी (सं० कोजिका) होती है।

उपर्युक्त परिभाषा को सम्यक् रूप से समझने के निमित्त हम उसके प्रत्येक शब्द पर विचार करेंगे। **संधित** का अर्थ है जोड़ा हुआ, मिलाया हुआ, अर्थात् तैयार किया हुआ। इसके अंतर्गत निघंटु के अनुसार कांजिक, मदिरा, अरिष्ट, आसव, अचार आदि सभी आते हैं। सुश्रुत ने मध्यमवर्ग के अंतर्गत मद्य, सुरा, सीधु, आसव, शुक्त (सिरका) को रखा है और कांजिक या धान्याम को शुक्त की श्रेणी में ही गिना है। सुश्रुत ने वस्तुतः इस वर्गीकरण को चरक से लिया है—चरक ने मद्य वर्ग के अंतर्गत मद्य, सुरा, मदिरा, जगल, अरिष्ट, आसव, मैरेय, मधु, सौवीर, तुषोदक, अम्रकांजिक पर विचार किया है। शुक्त को उन्होंने कृतांत (वनाया हुआ खाद्य पदार्थ) के अंतर्गत रख कर विचार किया है।

धान्य शब्द अन्न के पर्याय-रूप में साधारणतः आता है। पाणिनि के अष्टाध्यायी (5/2/1) में व्रीहि, शालि, यव, तिल, माघ, अणु, षष्टिका आदि धान्य के अंतर्गत हैं। चरक के सूत्र स्थान, अन्नपान विधि, अध्याय 27 में धान्य को दो वर्गों में रखा है (1) शूकधान्य—जिन पर शूक (बारीक मूँछों ऐसी

जून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नोकें) निकलती है यथा, शालि के समस्त भेद, यव, **कोरदूब** (कोदों) तथा नीवार। (2) शमीधान्य=सेम आदि फली की जाति वाले। सुश्रुत ने शालि और ब्रीहि (धान के भेद) को शालिवर्ग के अंतर्गत रखा है तथा जौ, गेहूं, तथा फली के धान्य को कुधान्य वर्ग के अंतर्गत रख कर विवेचन किया है। इस प्रकार धान्य शब्द अपने विस्तृत अर्थ में सभी अन्न या फली वाले बीजों के लिए प्रयुक्त हुआ है। किंतु उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शालि के अतिरिक्त अन्य धान्यों को सुश्रुत के समय कुधान्य के रूप में माना जाने लगा। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि धान्य का अर्थ शालि या तंडुल के अर्थ में सीमित हो गया। काश्मीरी में दान्य का अर्थ हि० धान सें ही है और ये दोनों टी सं० धान्य से संबं-धित हैं।

संधित और धान्य पर विचार करने के उपरांत 'मंड' शब्द पर विचार करें। सुश्रुत के कृतान्नवर्ग में इस पर इस प्रकार विचार किया गया है।

"सिक्थैर्विरहितो मंडः" अर्थात् पके तंडुलादि के घनभाग में से ऊपर का द्रवभाग पृथक दान कर यदि निकाला जाए तो वह मंड (हि० माँड) कहलाता है।

इसी प्रकरण में लाजमंड का भी वर्णन है—लाजमंडो "विशुद्धानां पथ्यः पाचन दीपनः।" अर्थात् लाजमंड धन की खीलों का मांड विरेचन से शुद्ध किए हुए मनुष्य के लिए पथ्य है, पाचन है, तथा दीपन है।

चरक ने भी (सूत्र स्थान 27/251) लाजमंड का उल्लेख किया है और इसे मंदाग्नि के रोगी के लिए विरोध हितकर बतलाया है। यह तृष्णा और अतीसार को शांत करता है।

मंड को काश्मीरी में **अग्निम** कहते हैं।

अब रहा कांजिक शब्द। जैसा ऊपर निर्देश किया गया है चरक ने कांजिक को मद्य के अंतर्गत रखा है। मद्य की विरोधता वे इस प्रकार बतलाते हैं— "सुरा श्रमहराणां" अर्थात् थकावट को हरने के लिए सुरा सर्वश्रेष्ठ है (सूत्र स्था० 25/39)।

यह सुरा आसव का एक भेद है। चरक ने इसी अध्याय में 84 आसव बताए हैं और धान्यासव के निम्न भेद बतलाए हैं—सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्यासव। वस्तुतः चरक के समय, लगता है, मद्य निर्माण की कला अपनी पराकाष्ठा पर थी और इसी से इसके इतने भेद-प्रभेद मिलते है। पर धीरे-धीरे ये सारे शब्द पर्याय के रूप में प्रचलित हो गए क्योंकि इनमें अर्थ की अस्पष्टता थी। यही कारण है कि आगे के आयुर्वेद के ग्रंथों में सौवीर, धान्याम्ल, तुषोदक ये सभी पर्याय रूप में व्यवहृत हुए हैं (दे० शालिग्राम निघंटु०, पृ० 109, प्रका० क्षेमराज श्रीकृष्ण दास, बंबई)।

चरक में उपर्युक्त धान्याम्लों की परिभाषा नहीं दी गई है। इसलिए यह कहना कठिन है कि चरक के सुरा, सौवीर, तुषोदक, धान्याम्ल आदि का क्या स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। पर यह निश्चित है कि ये संधान इतने प्रचलित रहे होंगे कि इनकी व्याख्या की आवश्यकता ही नहीं थी। हाँ मद्यवर्ग सूत्र स्थान अ० 27 में मंड युक्त जौ की मद्य, सौवीरक, तुषोदक, अप्रथांजिक के गुण बतलाए गए हैं।

सुश्रुत ने भी उनके गुणों को ही बतलाया है उनके बताने के ढंग पर प्रकाश नहीं डाला है यथा,

"तुषाम्बु दीपनं हृदयं हृत्पांडुक्रमिरोगनुत् ॥
ग्रहणवर्शो विकारघ्नं भेदि **सौवीरकं** तथा ॥
धान्याम्ल धान्ययोनित्वाद्दीपनं दाहनाशनम् ॥
स्पर्शात्पानात्तु पवनकफ तृष्णा हरं लघु ॥

अर्थात् **तुषांबु** (कांजी का भेद) दीपन है, हृदय है, हृदय का रोग, पांडुरोग, कृमिरोग को नाश करता है। ग्रहणी, बवासीर का विकारनाशक और भेदी ऐसा सौवीर संज्ञक (कांजी) होता है। धान्याल्म (कांजी) धान्यजन्य होने से दीपन है, दाहनाशक है। स्पर्श से और पीने से वायु, कफ, तृषा का हर्ता और हलका है।

"माषादरेनुपानं तु धान्याल्म दधिमस्तु वा ॥ सु. मृ. अनुपानवर्ग 46/9 अर्थात् माषा (का० माह) आदि पर धान्याम्ल (कांजी) अथवा दही का पानी अनुपान है।

मद्य मधोलितानां तु सर्वमांसेषु पूजितम् ॥

अर्थात मदिरा पीने वालों को सर्व प्रकार के मांसों पर मद्य (कांजी भी एक मद्य है) ही अनुपान है। तथा 'सुराकृशानां (सु० 46/19) अर्थात् दुर्वल के लिए सुरा अनुपान है तथा "तत्र पूर्व शस्यजातीनां वदराल्म वैदलानां, धान्याल्मं जंघालानां धन्वजानां च पिप्पलयासव:" । सू० 46, अनुपान वर्ग 15) अर्थात् शस्यजाति पर वदराम्ल (बेरों की कांजी) का अनुपान श्रेष्ठ है और विदल धान्यों पर **धान्याम्ल** तथा जंघाल (चतुष्पद) पशुओं के मांस पर और मरुस्थली के पशुओं के मांस पर पिप्पली का **आसव** पीना चाहिए। तथा

"मधुराणां चिकुटकयुक्त कंदासव:। नात्र फलादीनां धान्याम्लम्।" सू० 46 46/18।

अर्थात् मीठे फलों पर चिकुट सहित कंदों का आसव और ताड के फल आदि पर **धान्याम्ल** श्रेष्ठ है।

चरक और सुश्रुत सौवीर एवं धान्याम्ल की परिभाषा समझने के लिए भाव प्रकाश का सहारा लेना पड़ता है। **सौवीर** की परिभाषा इस प्रकार है—

"सौवीरं तुषवैरामैः पववैंवा निस्तुषैः कृतम्।
गोधमैरपि सौवीर माचार्याः केचिदुर्यिरे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् कच्चे पकाए हुए निस्तुष जौ को संधित करने से सौवीर तैयार होता है तथा कई आचार्य गेहूँ से भी सौवीर तैयार होता है ऐसा कहते हैं।

तुषोदक में कच्चे सतुष जौ को अधकुटा करके संधित करते हैं। "तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः।"

धान्याम्ल का वर्णन इस प्रकार है—

धान्याम्लं शालिचूर्णाच्च कोद्रवादि कृतं भवेत् ॥

अर्थात् शालिधान्य के चूर्ण और कोदों आदि के संधान से धान्याम्ल तैयार होता है।

इस प्रकार धान्याम्ल शालिधान्य से और सौवीर यव से बनाया जाता है। कांजिक तो धान्यमंड से बनता ही है। कांजिक के जितने भी रूप हैं उनमें कांजिक ही जीवित रह गया है।

मराठी में कांजी और पेज एतदर्थ दो शब्द प्रचलित हैं। पेज का अर्थ है भात से निकाला हुआ पानी। यह पेज सं० पेय से विकसित है।

चरक ने **पेया** के गुण इस प्रकार लिए हैं—

क्षुतृष्णा ग्लानि दौबर्ल्य कुक्षिरोगज्वरापहा।
स्वेदाग्निजननी **पेया** वात वर्चोनुलोमनी ॥ सु० 27/247 ॥

अर्थात् पेया भूख-प्यास को बुझाने वाली ग्लानि, दुर्बलता, कुक्षिरोग, ज्वरनाशक, स्वेद और अग्नि को उत्पन्न करने वाली तथा वात एवं पुरीध की अनुलोमक होती है।

सुश्रुत **पेया** का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"सिक्थैर्विरहितो मंडःपेया सिक्थ समन्विता ॥
विलेयी बहुसिक्था स्याधवागूर्विरलद्रटा

अर्थात् पके तंडुलादि के घनभाग में से ऊपर का प्रवभाग मंड (मांड) कहलाता हैं जो घन भाग घुल कर द्रव भाग में मिल जाए वह **पेया** और जिसमें गाढ़ा भाग अधिक हो वह **विलेयी** और यदि घनभाग अधिक हो तो उसे **यवागू** कहते हैं। इस प्रकार मंड, पेया, विलेयी और यवागू सभी तंडुलादि के मंड हैं केवल घनता के अनुपात से उनके नाम में भिन्नता है।"

कश्मीरी में 'कॉंजि' दही के तोड़ (दही का पानी) को कहते हैं। इस प्रकार कोजिक शब्द में भी अर्थ विकास हुआ है। ब्रज में राई डाल कर खट्टा किया हुआ पानी कॉंजी कहाता है। गाजर और राई की काँजी बनती है। मूली को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राई (का० आसुरी) के पानी में एक सप्ताह रखने से उसकी भी काँजी बन जाती है।

मूली की काँजी बनाने का प्राचीन विधान इस प्रकार है :—

"आशुधान्यं क्षोदितञ्ज बाचमूलन्तु खंडशः।
कृतं प्रस्थमितं पाचे जलं तत्राढकं क्षिपेत् ॥
तावत्संधाय संरक्षेधावदम्लत्वभागतम्।
कांजिकं तत्तु विज्ञेय मेतत्सर्वत्र पूजितम् ॥

अर्थात् पात्र में सतुष धान्य को कूट कर एक प्रस्थ और कुछ टुकड़े मूली के डाल कर दो आढक जल डाल दे। मुख बंद करके रख दे। जब खट्टा हो जाए तब निकाल ले इसे काँजी कहते हैं।

मूली की काँजी को **शिंडाकी** भी कहते हैं : "शिंडाकी राजिकायुक्तै : स्थात्-मूलकदलद्रवैः अर्थात् मूली के पत्तों के रस में राई डाल कर बनाई जाने वाली काँजी शिंडाकी कहलाती है। अथवा "सर्षप स्वरसैर्वाडपि शालि पिष्टक संयुतैः" अर्थात् सरसों के रस में शालिधान्य का चूना डाल कर बनाई जाने वाली काँजी भी शिंडाकी है।

'निघंटु रत्नाकर' में **कांजिक** के बनाने का विज्ञान इस प्रकार है—

"नूतन मृण्ययं कुम्भं कटुतैलेन लेपयेत्।
निर्मलं च जलं तस्मिन्राजिका, जाजि सैंधवम्।
हिंगु विश्वानिशा चैव ओदनं वंशपल्लवा :।
ओदनस्य कुलित्थानां जलं वटकरवांडवम।
सर्वं तस्मिन्निधायाथ मद्रां दत्तवा दिनत्रयम।
रक्षयित्वा ततो वस्त्रेगालित कांजिक मतम्।

अर्थात् प्रथम कोरा मिट्टी का घड़ा लेकर उसके भीतर तथा उपर तेल का लेप कर दे। फिर उसमें निर्मल स्वच्छ जल भर देवे। उस जल में राई (का० आसुर) जीरा, सेंधानमक हींग, सोंठ, हलदी, भात, बाँस का कोमल पल्लव, कुलथी के भात का जल और बड़ों (सं०वटक) के टुकड़े ये सब पदार्थ डाल कर मुख-बंद करके तीन दिन तक बंद किया रखा रहने दे। इसके उपरांत उसको खोल कर वस्त्र से छानकर प्रयोग करे। इसे कांजिक (काँजी) कहते हैं।

इसके गुण ग्रंथकार इस प्रकार लिखता है—

"तद्भेदकं वस्ति शुद्धि करमुष्णं च तीक्ष्णकम्।
रुच्यमम्लं पाचकं च लघु लेपे च दाहकम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ज्वरनाशकरं प्रोक्तं तत्पीतं कफवातहम् ।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
शूलं शोथं भ्रमं दाहं मूर्च्छा पित्त ज्वरं तथा ।।

अजीर्णाध्मानविट्स्तम्भानाम नाश करं मतम् ।
कांजिका संस्थिता श्लैव वटका रुचिदा मताः ।।

शीताः कफकरा दाह शूला जीर्ण विनाशकाः ।
नेत्ररोगे हिता नोक्ता ऋषिभिः पाककोविदैः ।।

अर्थात् यह काँजी भेदक, वस्तिशोधक, गरम, तीक्ष्ण, रुचिकारक, खट्टी, पाचक, हलकी होती है और इसका लेप करने से दाह और ज्वर दूर होता है। पीने से कफ, वात, शूल, सूजन, भ्रम, दाह, मूर्च्छा पित्तज्वर, अजीर्ण, आध्मान और मलस्तंभ दूर होता है। काजी के वड़े रुचिकारक, शीतल, कफकारी, दाह, शूल और अजीर्णनाशक हैं और नेत्ररोग में हितकर हैं। काँजी का मुख्य गुण उसका अमलत्व है।

काश्मीर में काँज बनाने की विधि लगभग प्राचीन ही है। किसी बड़े मटके में जिसे न्योट कहते हैं चावल के मंड(को०अजिम्)को दो तीन दिन में एकत्र करते हैं। नए घड़े को पहले दो तीन दिन पानी भरकर रखते हैं ताकि वह काँजी को सोखे नहीं। यहाँ चावल ही मुख्य भोजन है और पसा कर या मंड निकाल कर ही खाने की प्रथा है इसलिए दो-चार दिन में ही काफ़ी मांड एकत्र हो जाता हैं। इसमें कोई-कोई चावल के धोवन को भी जिसे कश्मीरी में छलिन वोन्य -- धोया पानी कहते हैं डालते हैं। इससे काँजी पतली पड़ जाती है। काँजी तैयार होने पर पीते समय भी उसे हलका करने के लिए थोड़ा सादा पानी मिला सकते हैं। इसमें एक घास, जिसमें अजवाइन की भांति सुगंध होती है, भी डालते हैं। इस घास को 'अजविद्' कहते हैं। या 'जानिद' कहते हैं। नमक के अतिरिक्त कोई कोई राई (सं० राजिका) भी जिसे कश्मीरी में **आसुर** (सं० आसुरी) कहते हैं डालते हैं। थोड़ा सा खड़ा सतुष--छिलके सहित जौ भी डाल देते हैं। ध्यान रहे कि ऊपर जो की कॉजी को तुषोदक या तुषाँबु या सौवीर बतलाया गया है।

यह काँज मुख्यतः यहाँ गर्मियों में अर्थात् जुलाई से सितंबर तक प्रयोग में आती है--जाड़ों या बर्फ़ के दिनों में नहीं। इसे पेय के रूप में पीते हैं।

[शेष पृष्ठ 84 पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लांग और पेरोल

--रमानाथ शर्मा

सुप्रसिद्ध फ्रेंच-स्विस भाषा वैज्ञानिक एफ० डी० सस्यूर ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'कोर्स डी लिंग्विस्टिक जेनरेल' में आधुनिक भाषा विज्ञान से संबद्ध कतिपय विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों में लांग (Langue) और पेरोल (Parole) को तर्क की कसौटी पर कसने का प्रयास बहुतेरे परवर्ती भाषा वैज्ञानिकों ने किया। इन भाषा-वैज्ञानिकों में सस्यूर के शिष्य चार्ल्स बेली, प्रसिद्ध अँग्रेज़ी ध्वनिविद् पामर और जेस्पर्सन का नाम उल्लेखनीय है। 'लांग' और 'पेरोल' को स्पष्ट करते हुए मारिओ पेई ने अपने शब्दकोष में निम्न वक्तव्य दिया है :—

"एफ० डी० सस्यूर द्वारा प्रवर्तित भाषा वैज्ञानिक शब्दावली के अनुसार पेरोल (प्रायः अंग्रेज़ी 'स्पीच' के रूप में अनूदित) की स्थिति व्यक्ति विशेष द्वारा किसी विशिष्ट अवसर पर प्रयुक्त भाषा में होती है। इसके विपरीतार्थ में 'लांग' का प्रयोग होता है। जिसकी विशिष्टता पूर्ण तथा एकरूपीय व्याकरणिक व्यवस्था में लक्षित होती है और जिसका समर्थन तथा प्रयोग एक समुदाय या वर्ग द्वारा होता है।[1]

हिंदी में 'लांग' और 'पेरोल' के लिए हम क्रमशः 'भाषा' और 'वाक्' का प्रयोग कर सकते हैं। सस्यूर की 'भाषा' एवं 'वाक्' संबंधी स्थापनाओं को विवेच्य होने का अवसर यथेष्ट मिला किंतु उन्हें अपनी समग्रता में समर्थन कभी नहीं मिल पाया। इतना अवश्य है कि परवर्ती व्याख्याताओं (बेली, पामर, जेस्पर्सन) आदि ने आंशिक परिष्कार के साथ उन्हें स्वीकार कर लिया।

सस्यूर के अनुसार 'वाक्' (Parole) वैयक्तिक संपत्ति है और व्यक्ति उसका अधिपति (King) नियंता और निर्माता है। इसके विपरीत भाषा (Langue) मानव मष्तिष्क में शब्दरूपों का ऐसा संचित कोष है जिसकी प्रत्येक इकाई का मूल्य (अर्थवत्ता) सामाजिक स्वीकृति द्वारा पूर्व निर्धारित है। इस प्रकार भाषा प्रयोक्ता (व्यक्ति विशेष) की संपत्ति नहीं है

[1] मरिओ ए० पेई तथा फ़्रैंक गैतर—डिक्शनरी ऑव लिंग्विस्टक्स, पीटर ओवेन लिमिटेड, लंदन। पृ० 160।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपितु उसका अस्तित्व सार्वजनिक है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उसका अस्तित्व समूचे वर्ग या समुदाय की समन्वित इकाई में है। प्रयोक्ता समाज की व्यवहार प्रक्रिया में प्रकीर्ण भाषीय रूपों को अनुकरण और अभ्यास द्वारा ज्यों का त्यों अर्जित करता है, उनमें अपनी ओर से कोई परिवर्तन नहीं करता। इस प्रकार भाषा समूचे समुदाय की स्वीकृति द्वारा निर्मित व्यवस्था है। इसका अध्ययन वाक् की अपेक्षा किए बिना भी हो सकता है। पर सस्यूर का यह कथन तर्क की कसौटी पर पूर्णतया खरा नहीं उतर सकता क्योंकि भाषा में जो परिवर्तन होते हैं वे वाक् के माध्यम से ही आते हैं और इस प्रकार वे पूर्णत: वैयक्तिक हुआ करते हैं। अतएव भाषा परिवर्तन का अध्ययन करते समय वाक् को उपेक्षित छोड़ देना असंगत होगा। य प्रयोग सफल और असफल दोनों ही हो सकते हैं। इन्हें सफलता तभी मिल सकती हैं जब ये उस समुदाय के बोलने वाले लोगों की सामान्य स्वीकृति प्राप्त कर लें।

भाषा और वाक् के संबंधों को हम संकेत (Code) और संदेश (Message) के माध्यम से और भी स्पष्टतया समझ सकते हैं। वस्तुत: जो संबंध संकेत का संदेश से होता है वहाँ संबंध भाषा और वाक् का होता है। जिस तरह संकेतों की सहायता के बिना किसी संदेश का सम्यक् बोध असंभव है ठीक उसी प्रकार किसी भाषा को तब तक समझ पाना कठिन है जब तक उस भाषा के बोलने वाले वर्ग के वाक् पक्ष का व्यवस्थित ज्ञान न प्राप्त कर लिया जाए। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि भाषा का अस्तित्व वाक् की पृष्ठभूमि पर अवस्थित होता है।

सस्यूर ने भाषा को संकलित मेध (Collective Wisdom) की उपज माना है। इस स्थापना का तीव्रतापूर्ण खडन उसके शिष्य चार्ल्स बेली ने ही किया। उन्होंने भाषा को इसके विपरीत संवेगों (Emotions) की उपज माना अधिक युक्तिपरक समझा। समर्थन में उन्होंने कहा कि (व्यवस्थित) भाषा और (व्यक्तिगत) वाक् में निरंतर संघर्ष लक्षित होता है। वाक् मानवीय संवेगों, अनुभूतियों, इच्छाओं और कार्य-व्यापारों को व्यक्त करने का सबल माध्यम है। फलत: यह व्यक्तिपरक तत्त्व के रूप में स्वीकार्य होना चाहिए। दूसरी ओर (व्यवस्थित) भाषा सामाजिक व्यवहार की वाहिका और व्यक्त विचारों को ग्रहण कराने का माध्यम है अस्तु यह वस्तुपरक है, पर वाक् का संवेगात्मक पहलू ही इसकी उपज के रूप में स्वीकार्य होना चाहिए। बेली ने इन दोनों के पार्थक्य को स्पष्ट करने के लिए 'ला लांग' और 'ला पेरोल' शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें से प्रथम परंपरा प्राप्त अथच् व्यवस्थित (भाषा) है तो दूसरा स्वतंत्र जीवन की अपेक्षाकृत निरंकुश प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है।

पामर भी इस पार्थक्य का समर्थन करते हैं पर उनका समर्थन कुछ भिन्न कोटि का है। वे वाक् को व्यावहारिक आदान प्रदान में व्यस्त दो व्यक्तियों की शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं का संकलन मानते हैं। उनके अनुसार भाषा किसी समुदाय के वाक् प्रयोक्ताओं द्वारा परंपरा प्राप्त वह संकलन है जो उस समुदाय में एक दूसरे को समझ पाने की सुविधा की दृष्टि से व्यवस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस प्रकार सक्रियता (Activity) संकेत (Code) से पूर्णतया भिन्न
वितर्क के संदर्भ में यह विवेच्य होती है।

जेस्पर्सन ने इन तीनों विचारकों पर दिग्भ्रमित होने का आरोप लगाया है। उनके अनुसार सस्यूर का प्रस्तुत सादृश्य विज्ञान मात्र इस तथ्य की अभिव्यक्ति करता है कि भाषा के लिए सार्वजनिक स्वीकृति प्राप्त करने की दिशा में किसी व्यक्ति विशेष द्वारा वाक् के रूप में प्रयुक्त होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह लोक मस्तिष्क (Folk mind) या संकलित मेधा विपरीत वैयक्तिक मष्तिष्क की अभिव्यक्ति का प्रारूप है। किसी विशिष्ट परिस्थिति में समाज का प्रत्येक सदस्य प्रायः एक तरह की ही प्रतिक्रिया व्यक्त करता है यद्यपि इतना होने से ही लोक मष्तिष्क या संकलित मेधा की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि इन विविध मष्तिष्कों में एक दूसरे से कई अर्थों में समानता है। साथ ही साथ भाषा और वाक् में कोई मूलभूत पार्थक्य भी नहीं प्राप्त किया जा सकता। पुनश्च जेस्पर्सन ने सस्यूर की इस उक्ति को भी अतिशयोक्ति माना कि व्यक्ति वाक् का नियंता, अधिपति और निर्माता हुआ करता है और वह भाषा में कोई परिवर्तन नहीं ला सकता। किन्तु सत्य तो यह है कि व्यक्ति भी भाषा परिवर्तन में कारण बन सकता है (यथा कोई वड़ा साहित्यकार अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति)। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को वाक् नियंता भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि घोर वैयक्तिक 'वाक्' भी समाज द्वारा प्रभावित हुआ करती है। वह नियंता और निर्माता मात्र स्वगत भाषण की स्थिति में ही कहा जा सकता है। वस्तुतः उसके पास कई वाक् का संकलन है, न कि मात्र उसके स्वयं का वाक्। इस प्रकार भाषा को वाक् की बहुवचनीय स्थिति से संबोधित किया जा सकता है यद्यपि सभी वाक् एक दूसरे के पूरक हैं, समान नहीं। अतएव इन विविध वाक् ईकाइयों की अन्विति ही भाषा है। इस तथ्य के प्रकाश में देखने पर सस्यूर की स्थापना एक ही समस्या के दो पक्ष उद्घाटित करती है। दोनों ही मानसिक सक्रियता के परिणाम हैं और दोनों ही पर सामाजिकता का रंग चढ़ा हुआ है। सरलता के लिए हम इन्हें व्यक्ति भाषा और सामूहिक भाषा का नाम दे सकते हैं।

जहां सस्यूर ने वाक् को नितांत वैयक्तिक सक्रियता कहा है वहाँ उनके सामने व्यक्ति विशेष की विशिष्ट परिस्थिति जन्य प्रतिक्रिया ही आधार भूत है। उस प्रतिक्रिया के मूल में स्थित सामाजिक अनुभवों को उन्होंने उपेक्षित छोड़ दिया है। वह दृष्टि उपयुक्त नही कही जा सकती क्योंकि प्रत्येक व्यावहारिक सक्रियता के पीछे वैयक्तिक अनुभव और सामाजिक पर्यवेक्षण की दृष्टि संचित होती है जिसका प्रतिफलन आवश्यकतानुसार भाषीय अभिव्यक्ति के रूप में हुआ करता है।

इस विवेचन से विचार की एक दूसरी दिशा भी मिलती है। प्रत्येक भाषीय उच्चार (Linguistic Utterance) अर्थवत्ता की दष्टि से शब्द के रूप में ग्रहीत होता है। यदि उच्चार की स्नायविक प्रक्रियाओं को दृष्टि में रख कर शब्द पर विचार करें तो उसके दो रूप होंगे - एक मूर्त (Actual) शब्द तथा दूसरा अमूर्त (Potential) शब्द। मस्तिष्क में संचित अमूर्त को ही हम अपनी व्यावहारिक सक्रियता में मूर्त शब्द का रूप देते हैं। इसके लिए आवश्यकता इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात की है कि इस क्रिया को बाँटने वाले काम कम से कम दो व्यक्ति—एक वक्ता और दूसरा श्रोता—हों। इस प्रकार अमूर्त शब्द को हम मस्तिष्क में संचित चिंतन की ऐसी इकाई कह सकते हैं जो अप्रयुक्त पड़ी रहती है। मूर्त शब्द इसकी प्रयोग स्थिति है। एतदर्थ दोनों ही सामाजिकता से नियंत्रित हैं यद्यपि दोनों का ही निर्माता व्यक्ति है।

अभ्यास और अनुकरण के द्वारा समाज का प्रत्येक सदस्य वाक् और भाषा का संतुलन प्राप्त करता है। ये दोनों ही उसके व्यक्तित्व के अंग हैं। यह बता पाना भी कठिन है कि एक व्यक्ति औरों से कितना ग्रहण करता है और उसकी अपनी उद्भावनाएँ क्या हैं? उद्भावनाएँ और आदान दोनों ही सामान्य भाषा की सक्रियता में बह जाते हैं यद्यपि वाक् की सक्रियता परोक्ष रूप से भाषा में परिवर्तन लाती है जिसे लक्षित कर पाने की अवधि निश्चित नहीं। 'भाषा' और वाक् के मध्य सीमा रेखा भी खींच पाना आसान नहीं। इन दोनों की सक्रियता समानांतर है और दोनों में ही घनिष्ट आदान प्रदान चलता रहता है।

कहा भी जाता है कि कोई भी दो व्यक्ति, चाहे वे समान भाषा भाषी ही क्यों न हो, पूर्णतया समान भाषा का प्रयोग नहीं करते। यहाँ तक कि एक व्यक्ति भी विभिन्न अवसरों पर समाज भाषा का प्रयोग नहीं करता। उसके भाषा प्रयोग तथा उच्चारण दोनों में ही नित नूतनता होती है। इसी आधार पर हाकेट ने बोलीगत विभेदों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इडिओलेक्ट, डायलेक्ट तथा लैंग्वेज की कल्पना की है।

[पृष्ठ 80 का शेष]

तरकारी के रसा की तरह काँज को किसी कढ़ाई या पतीली में छौंक या बघार लगा कर रख लेते हैं फिर इसे भी भात के साथ खाते हैं। मूली की सब्जी के साथ भी इसका प्रयोग है। बेरी-बेरी रोग के निवारणार्थ डाक्टर लोग इसे पीने की सलाह देते हैं।

गाँव में यदि किसी के यहाँ काँज़ भरी गई तो उसके यहाँ से माँग कर लोग प्रयोग में लाते हैं। जिसके यहाँ लगेन (दूध देती हुई) गाय हो वे काँज नहीं बनाते हैं।

जल्दी तैयार करने के लिए इसका मटका या घड़ा धूप में भी रखते हैं। साधारणतः एक सप्ताह में अच्छी काँज तैयार हो जाती है।

कश्मीरी में इसे सदर काँज भी कहते हैं। काँज तो कांजिक का ही विकसित रूप है पर सदर कहाँ से और क्यों? क्या सदर का संबंध उपर्युक्त सौवीर से हो सकता है?

अम्लकांजिक अथवा शुक्त (सिरका), धुक्र (चूक) जिस प्रकार जोड़े शब्द चल पड़े उसी प्रकार संभव है सौवीर कांजिक भी रहा हो और उसी से सदर काँज विकसित हो। कश्मीरी में सदर का प्रयोग समुद्र के अर्थ में मिलता है। कश्मीरी विद्वानों का अनुमान है कि काँज को सदर काँज इसलिए कहा जाता होगा कि यह भी समुद्र की भांति समाप्त नहीं होता क्योंकि काँज जितना ही व्यय होता है उतना ही उसमें नया मंड डालकर उसको भरते जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छत्तीसगढ़ की जनपदीय शब्दावली

[गाड़ी से सँबद्ध शब्द]

कांतिकुमार

छत्तीसगढ़ की जनपदीय बोली में गाड़ी का उच्चारण गाड़ी ही होता है। कुछ लोग, मुख्यतः बिलासपुर जिले के चमरा, इसका उच्चारण गाड़ी भी करते हैं। यदि गाड़ी में बैल जुते हों तो वह बइलागाड़ी और भैंसे जुते हों तो भइंसागाड़ी कहलाती है।

गाड़ी के दो भेद होते हैं :

1—सवारी गाड़ी

2—भरती गाड़ी

सवारी गाड़ी का उपयोग यात्रादि के लिए किया जाता है और भरती गाड़ी का खाद, गल्ला आदि ढोने के लिए। सवारी गाड़ी हल्की होती है—उससे भारी काम नहीं लिया जाता। भरती गाड़ी अपेक्षाकृत मजबूत होती है और वह गाँव के कच्चे रास्तों, वनबीहड़ और खेतखार सबमें समान भाव से जा सकती है।

विभिन्न वस्तुओं के संवहन के संदर्भ में भरती गाडी को विशिष्ट नामों से पुकारा जाता है। भरती गाड़ी का अर्थ होता है ऐसी गाड़ी जिसमें भरकर माल ढोया जाए। जब इस गाड़ी का उपयोग फ़सल ढोने के लिए किया जाता है तो इसे लाँक गाड़ी कहते हैं। फ़सल काटने के बाद धान को इक्ट्ठा बाँधकर जो बीड़े बनाए जाते हैं उन्हें रायगढ़ की ओर लाँक कहते है एवं दुर्ग तथा रायपुर की ओर भारा। अतः भरती गाड़ी को भारा गाड़ी भी कहते हैं। जब गाड़ी में खाद या रेत या मिट्टी भरकर ढोने की आवश्यकता पड़ती है तो गाड़ी के अगल-बगल बाँस की बुनी हुई चटाई लगाई जाती है। इस चटाई को कोरल (बस्तर), कोल्लर (दुर्ग) या गोलर (रायगढ़) कहते हैं। गोलर के प्रयोग से माल गिरता नहीं है। गोलर लगी हुई गाड़ी गोलर गाड़ी कहलाती है। गोलर बाँस की चटाई के अतिरिक्त लकड़ी के पटियों का भी होता है। कभी-कभी बाँस या सूखी अरहर के डंठलों को पानी में भिगोकर झिपारी बाँधकर उसका भी गोलर बनाते हैं। लकड़ी ढोते समय गोलर निकाल दिया जाता है और केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ी का ठाठ रह जाता है । लकड़ी ढोने वाली गाड़ी लकड़ी या लकरी या लखड़ी गाड़ी कहलाती है । इसी प्रकार पयाल ढोने वाली गाड़ी की संज्ञा पैरा या पयरा गाड़ी, खाद ढोने वाली गाड़ी की खातु गाडी, मिट्टी ढोने वाली गाड़ी की माटी गाड़ी और बालू ढोने वाली गाड़ी की संज्ञा कुधुर (बस्तर), कुधरू (रायगढ़) या कुधरिल (दुर्ग) गाड़ी समझना चाहिए ।

भरती गाड़ी को रायपुर, दुर्ग आदि की ओर गाड़ा भी कहते हैं । इसमें दोनों ओर के बाँस सामने की ओर निकले होते हैं । कभी-कभी बैलों के अभाव में आदमी ही गाड़ा खीचते हैं । ऐसा प्रायः तभी होता है जब माल ढोकर बहुत दूर न ले जाना पड़े ।

दुर्ग ज़िले के कुछ भागों में सवारी के लिए छकड़ा काम में आता है । छकड़े में छोटे चक्कों का प्रयोग होता है । इसमें दो ही लोग बैठते हैं । गाड़ी हाँकने वाले का मुँह सामने होता है और दूसरे यात्री का मुंह पीछे । दोनों की पीठ सटी हुई रहती हैं । बाज़ार से सामान लाने पर यात्री उस सामान पर बैठता है । उसे जिसमें दो घोड़े जुते हों रेंड कहते हैं । इसका प्रचलन बिलासपुर ज़िले में अधिक है । गौटिया आदि संपन्न व्यक्तियों द्वारा ही प्रायः इसका प्रयोग किया जाता है ।

व्यापारियों द्वारा गोदाम से दूकान तक अथवा दूकान से बाज़ार तक माल ढोने के लिए एक ऐसी गाड़ी का प्रयोग किया जाता है जो आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ से चमूंद रहती है । चारों ओर से घिरी होने के कारण पीपा आदि माल सुरक्षित रहा आता है । एसी गाड़ी को डिब्बा गाड़ी कहते हैं ।

गाड़ी के विभिन्न भाग :

गाड़ी किसी भी प्रकार की हो—उसके तीन भाग होते हैं :

1—बाट

2—खासर

3—जूड़ा

चक्कों से संबंद्ध सारे अवयवों का मिला-जुला नाम बाट है । गाड़ी का ढांचा खासर कहलाता है और सामने की ओर का वह भाग जिसमें बैल फाँदे जाते हैं जूड़ा कहलाता है ।

अब इन तीनों भागों के विभिन्न अवयवों का विवरण दिया जा रहा है ।

1 बाट : बाट का सर्वप्रमुख अवयव चक्का होता है । छत्तीसगढ़ी बोली में चक्का का उच्चारण चक्का ही होता है । यह प्रायः सरई, बीजा, भिरहा या बबूल की लकड़ी का बनाया जाता है । कुछ किसान कलमी या सिरसवाँ की लकड़ी का भी चक्का बनाते हैं । चक्के को रायगढ़ के कुछ भागों में सीली भी कहते हैं किंतु दुर्ग एवं रायपुर के किसान चम्का और सीली में अंतर करते हैं । सीली में चक्के की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...वीव में तीलियाँ नहीं होतीं। वह काठ का संपूर्ण गोलाकार घेरा होता है। यह ...गोलाकृति घेरा जिन टुकड़ों के संयोग से बनता है उन्हें पूठा, पूठी, पुट्ठा कहते हैं। ...चक्का बनाने के लिए लकड़ी को विशेष प्रकार से गोलाकार काटना पूठी काटना कहलाता है। चक्के की पूठी को दोनों किनारों से खोल देते हैं--एक ओर खाँचा और एक ओर दाँता। दाँता को खाँचा में घुसेडकर ठोक देते हैं।

चक्रनाभि या पहिए का मध्य भाग दुर्ग में मूड़, बस्तर में बुदला, रायगढ़ में माँदली और कहीं-कहीं तूमी कहलाता है। माँदली में जो छेद होता से उसे घरुआ या सामा कहते हैं। पहिए में लकड़ी की जो तीलियाँ लगी होती हैं उन्हें आरा या आरी कहते हैं। आरी का एक भाग माँदली से जुड़ा होती है और दूसरा पूठियों से।

जब चक्के पर लोहे का पट्टा नहीं चढ़ा होता तो वह नंगराबाट कहलाता है। नंगराबाट को घिसने से बचाने के लिए लोहे की एक पट्टी चढ़ाई जाती है जिसे ताबा, ...ट, पट्टा, बाट या गाड़ी बाट कहते हैं। आजकल छत्तीसगढ़ के गाँवों में मध्य प्रदेश शासन की ओर से उत्पादन संघ खोले गए हैं। ये संघ किसानों को पट्टे पर पट्टे देते हैं। गाड़ियों के चक्कों की मूड़ पर चढ़ाने के लिएबाज़ार में बना बनाया माँदी पट्टा या मूड़ पट्टा मिलता है। चक्के के ऊपर ताबा या पुट्टा चढ़ाने की क्रिया ताबा या पट्टा चढ़ाना कहलाती है। इसे बाट चढ़ाना भी कहते हैं। पट्टा चढ़ाने के पहिले लुहार गाड़ी-लोहा को जो माँदी पट्टा अथवा मूड़ पट्टा का ही पर्याय है चक्के के माप का काटकर गुलया लेता है।

गर्मी के दिनों में लोहा फैलने से पट्टा ढीला हो जाता है इसे पट्टा या ताबा या बाट उसलना कहते हैं। इससे बचने के लिए किसान दो उपाय करता है :

(अ) यात्रा प्रारंभ करने के या भरती गाड़ी में माल भरने के पहले किसान गोबर, पानी और वरन मिट्टी को घोलकर चक्के को पिलाता है। इसे पानी पिलाना कहते हैं। इससे पट्टा चबंद हो जाता है। पानी डालने से धातु सिकुड़ जाती है। यदि बीच यात्रा में चक्के को पानी पिलाने की आवश्यकता पड़ती है तो डबरा देखकर गाड़ी उसमें उतार देते हैं।

(आ) इतना करने पर भी यदि अधबीच में पट्टा उसल जाए तो बाँस का ठेंस या निलका या पाँचा या फाँचर या चीपा ठोक देते हैं। कभी-कभी चक्के के घर्षण से पाँचर निकल जाता है। अच्छा किसान चक्के में पाँचर ठोकना अच्छा नहीं समझता। इससे पूठी टूट जाती है। पाँचर के निकल जाने पर दुर्घटना भी हो सकती है।

माँदली के बीच में छेदकर धुरी के लिए जोर या जोरू या गुरदा बैठाया जाता है। माँदली में जोरू बैठाने के लिए माँदली का छेद थोड़ा सांकुर रखते हैं। लोहे के जोरू को तिपो लेते हैं और उसे माँदली के छेद में पीट देते हैं। इससे लकड़ी का कुछ भाग जल जाता है पर जोरू माँदली में चबंद हो जाती है। लकड़ी ज्यादा न जलने पाए इसलिए किसान पानी, गोवर और बरन मिट्टी का घोल डाल देता है। यही प्रक्रिया पट्टा चढाते समय भी की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों चक्कों के जारूओं में जो धुरी बैठाई जाती है उसे अछाँव या अछाँड़ कहते हैं। दुर्ग में इसी का पर्याय अस्कुड़ होता है। यह कुछ वर्षों पूर्व तक केवल लकड़ी की होती थी किंतु अब लोहे की भी होने लगी है। सरकार इसके लिए किसानों को प्रोत्साहित करती है। बस्तर में अभी तक लकड़ी की ही धुरी का प्रचलन है। अछाँड़ से विशेषतया लकड़ी की ही धुरी का बोध होता है।

अछाँड़ और खासर को जोड़ने वाला खोला रायगढ़ में पोंद खीला और दुर्ग में अस्कुड़ खीला कहलाता है। अस्कुड़ और खोल को एक दूसरे के कसा हुआ रखने के लिए पोटिया का प्रयोग होता है। पोटिया लोहे की एक कील होती है जिसे लुहार बनाता है।

अछाँड़ के संघर्षण से जोरू घिस न जाए इसलिए जोरू को चिकना बनाए रखने के लिए ओंगन तेल या गाड़ी तेल या अंडी तेल डाला जाता है। ओंगन तेल से वही कार्य सिद्ध होता है जो 'मोबिल आयल' से होता है। ओंगल तेल डालने से लकड़ी का अछाँड़ जोरू में आराम से घूमता है और गाड़ी वाइल चलती है तथा मवेशी को ताकत नहीं पड़ती। ओंगन तेल डालने से चरमर या किटकिट या किटकोंय की आवाज़ नहीं होती।

ओंगन तेल एक प्रकार का गाढ़ा, चिकना, काला तेल होता है। ओंगन तेल न मिलने पर मूंगफली के बीज को भूनकर पीस डालते हैं और उसमें डोरी जिसे बस्तर में टारा कहते हैं या जड़ा (रेंडी) का तेल डाल देते हैं। केले की पत्ती, पैरा आदि का भी ओंगन तेल बनाया जाता है।

ओंगन तेल रखने का पात्र ओंगन कहलाता है। ओंगन बनाने के लिए एक बड़ा मोटा पोला बाँस जिसे कटंग बाँस कहते हैं लिया जाता है। बाँस को गाँठ से जिसे पोग या गंठ कहते हैं काट लेते हैं ताकि वह शीशीनुमा बन जाए। ओंगन के ऊपरी हिस्से को तिरछा काट लेते हैं जिसमें ओंगन तेल डालने में सुभीता हो। आजकल ओंगन के स्थान पर कहीं-कहीं डालडा आदि डब्बों में भी ओंगन तेल रखा जाता है। तब इसे ओंगन डिब्बा कहते हैं। भैंसे के लंबे सींग का ओंगन ठोंढा कहलाता है।

जोरू में ओंगन तेल लेप करने की क्रिया ओंगना कहलाती है। इसके लिए एक तार में एक सिरे पर चेंदरी या चिदरा बाँधकर ओंगन में डाल देते हैं। एक सिरे को मोड़ देते हैं ताकि वह हाथ से आसानी से पकड़ा जा सके और तार ओंगन में डूबने न पाए।

अक्षकील या धुरी की कील को काड़ी कहते हैं। बस्तर में इसे कानखीला, और दुर्ग में खीला या कीली भी कहते हैं। भरती गाड़ी का खीला बड़ा होता है, सवारी गाड़ी का छोटा। सवारी गाड़ी में खीली लगाई जाती है।

कीली की रगड़ से गुरदे को हानि न पहुँचने पाए इससे मांदली और कीली के बीच में लकड़ी का एक चौकोन मोटा टुकड़ा लगाया जाता है। इसे लकड़ी पाट कहते हैं।

कभी-कभी गुरदा और खोल के बीच में पैरे की रस्सी गोल बँट कर लगा दी जाती है जिससे गुरदा से खोल को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। डोंगी (बस्तर) अछाँड़ के ऊपर लगाई जाने वाली वह लकड़ी है जिस पर खासर स्थापित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2-खासर : जसा कहा जा चुका है बांट और जूड़े को छोड़कर गाड़ी का शेष खासर कहलाता है। गाड़ी ठाठ (बस्तर) या खासर का सबसे पिछला भाग पिछौदी या पछाटी या पछांड़ कहलाता है और अगला धुर डाँडी। इसी पर पैर रखकर गाड़ी में चढ़ा जाता है।

बगल की वह लकड़ी जो चक्कों के ऊपर से होती हुई पीछे पिछौदी के थोड़ा आगे और सामने धुरडाँडी में जाकर समाप्त होती है डाँडी कहलाती है। डाँडी बाँस की होती है और लकड़ी की भी। सवारी गाड़ी में प्रायः हल्केपन के विचार से बाँस की डाँडी लगाई जाती है। भरती गाड़ी में डाँडी बीजा आदि किसी मजबूत लकड़ी की लगाई जाती है।

उस लकड़ी को जिस पर बैठ कर गड़वान या खेदवैया गाड़ी चलाता है पठिया या पटिया कहते हैं। पछौदी एवं पटिया के बीच में जो लकड़ी के पट्टे लगे रहते हैं—उन्हें पाटी या गाड़ी फारा कहते हैं। पाटी लगाने की क्रिया पाटी पीटना कहलाती है। सवारी गाड़ी में यात्रियों के बैठने का स्थान पलिया या मचौली कहलाता है। बस्तर में सवारी गाड़ी में बैठने के लिए खटिया रखने की प्रथा है।

खासर के ऊपर सवारी गाड़ी में छाया के लिए जिन डंडों के सहारे ऊपर का टट्टर टंगा रहता है उन्हें खूंटी कहते हैं। गाड़ा में लगाया जाने वाला डंडा खूंटा कहलाता है। खूंटी या खूंटा ठोकने के लिए पाटी और डाँडी में एक से छेद किए जाते हैं। सामान को गिरने से रोकने के लिये भरती गाड़ी में दोनों तरफ़ गाड़ी खूंटा लगाए जाते हैं। इनके ऊपर की लकड़ी सटट्म कहलाती है। टट्टर या टट्टा या चटाई बाँस की बनाई जाती है।

3-जूड़ा : गाड़ी में जूड़े की सहायता से बैल फाँदे जाते हैं। जूड़े में बैलों को बाँधना जोड़ी नहना या बइला फाँदना कहलाता है। जूड़े में दोनों ओर छेद होते हैं। ये छेद सियोटी कहलाते हैं। इन छेदों में लोहे या लकड़ी का सिंघौला या सुमेला डाला जाता है। जिस रस्सी से बैलों को फाँदा जाता है वह जोता या जोतार या पताड़ी या पेटारी कहलाती है। पेटारी सन की गुँथी हुई रस्सी होती है जो बीच में चौड़ी और किनारे संकरी होती है।

जूड़े को नहना की सहायता से धुरकीला के सहारे कसा जाता है। खासर की एक ओर की डांडी छोटी रहती है और एक ओर की बड़ी। दोनों को तिरछा काटकर जोड़ते हैं और बीच में छेदकर खीला डाल देते हैं जिसे धुरकीला कहते हैं। इसी धुरकीला के सहारे जूड़े को नहना या बरही से बाँधते हैं।

गाड़ी को फाँदने के पहिले जूड़े को घुरा या टेकनी के सहारे खड़ा किया जाता है। टेकनी प्रायः जखनादार लकड़ी की बनाई जाती है। इसके तीन पैर होते हैं। लकड़ी के डंडे गोड़ कहलाते हैं। आज कल टेकनी प्रायः दो पैरों वाली होती है। दोनों पैरों के बीच में यदि टेकनी जखनादार न हुई तो लोहे की पट्टी, सुतली या सन या ताँत बाँध देते है। टकनी और धुरा में थोड़ा भेद होता है। टेकनी धुरा की अपेक्षा लंबी होती है। इसका प्रयोग बैल फाँदने के समय किया जाता है। धुरा भरती गाड़ी में माल भरने के समय काम आता है। कुट्टन वह डंडा होता है जिसे गाड़ी की पिछौदी के नीचे टेक दिया जाता है ताकि बैलों को ढीलते समय गाड़ी उलट न जाए।

-1 CHD/65

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जूड़ा को डाँडी से बरही, बरई या नाड़ी द्वारा बाँधते हैं। बरही को नहना भी कहते हैं। प्राय: बरही सन की रस्सी की होती है। जब यह चमड़े की होती है तो इसकी अभिधा नहना या अनाड़ी हो जाती है। गाँव का चमार साल में एक बार सभी प्रमुख किसानों को एक नहना, एक जोता और एक जोड़ी जूता देता है, नाड़ी-जोता या नहना-जोता ये दोनों शब्द उसी प्रकार साथ-साथ बोले जाते हैं जैसे चोलीदामन।

छकड़ा या सवारी गाड़ी में प्राय: नहना काम में नहीं लाया जाता। नहना चमार बनाता है—इस कारण उससे छूत मानते हैं। नहना बड़ा टिकाऊ होता है। आसानी से एक नहना तीन या चार साल तक चलाजाता है।

प्रत्येक गाड़ी में प्रत्येक बल नही बाँधा जा सकता। यदि बैल लंबे हुए तो जूआ टीप या धुरकील में बाँधते हैं और बैलों को आधू कर मुलका में फाँदते हैं। यदि बैल लंबाई में छोटे हुए यानी आँखुर हुए तो उन्हें पीछूकर भुलका में बाँधना होता है।

गाड़ी बैलों की लंबाई के अनुसार बनाई जाती है। छोटी गाड़ी में छोटे बैल फाँदे जाते हैं।

बैलों की नाक से निकाली जाने वाली रस्सी नाथ कहलाती है। ऐसे बैल नथा वइला कहलाते हैं। जो बैल बाईं ओर फाँदा जाता है वह भितरहा या भितरया और जो दाहिनी ओर फाँदा जाता है वह बइरहा या बाहिरी कहलाता है। बैलों के गले में बांधी जाने वाली घंटी घाटी कहलाती हैं। यदि घाटी में घुंघरू भी लगे हों तो वह घाँगर कहलाता है।

वह रस्सी जिससे बैलों को संभालते हैं नाकडोर कहलाती है। इसे काँसड़ा या कासरा भी कहते हैं। गाड़ी चलाने वाला जिसे खेदवैया या खिदवैया या खेदया या खिदैया कहते हैं दाहिने हाथ में कोड़ा जिसे कोर्रा कहते हैं रखता है। कभी-कभी बैलों को तेज चलाने के लिये तुतारी का भी प्रयोग किया जाता है। उसके बांएँ हाथ में काँसड़ा रहता है। काँसड़ा खींचने और कोर्रा से बैलों को मारने से गाड़ी तेज़ भागती है। बलों को बहुत तेज़ दौड़ाने की क्रिया पल्ला कुदाना या भगाना कहलाती है। इससे बलों के अगले पैर एक साथ और पिछले एक साथ उठते हैं। इस कार्य में गाड़ीवान कोर्रा और तुतारी का मनमाना उपयोग करता है। कोर्रा चमड़े का होता है। कोड़े की मार से बैल के पुट्ठों पर जो चिह्न पड़ जाते हैं उन्हें लोर कहते हैं और चिह्न पड़ने को लोर उपटना कहते हैं। तुतारी के चिह्न को दादरा कहते हैं।

किसान एक बार चाहे तो अपने बैलों को कोड़े से इतना मार ले कि लोर उपट जाए पर गौंटिया या मालगुज़ार का नौकर गाड़ीवान कोड़े से अधिक सुरक्षित तुतारी के प्रयोग को मानता है। कोड़े का चिह्न देखकर मालिक बिगड़ सकता है जब कि तुतारी का प्रयोग कितना किया गया है या किया भी गया है अथवा नहीं, यह जानने का मालिक के पास कोई उपाय नहीं होता। जूड़ के संघर्षण से बैलों के कंधों की चमड़ी मोटी पड़ जाती है जिसे घाटा कहते हैं। घाटा पड़ने से बैलों के कंधे मजबूत हो जाते हैं। कभी-कभी बलों के कंधे जुआड़ी से छिल जाते हैं और उन पर घाव पड़ जाते हैं जिन्हें कँदकँदा घाव कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस मार्ग पर गाड़ी चलती है उसे गाड़ी रवन या रावन कहते हैं।

रावन कटते-कटते गहरा हो जाता है और बीच का भाग उँचा रह जाने से गाड़ी ...ने की संभावना रहती है अत: गाड़ी रावन को सम करने की आवश्यकता पड़ती है। ...रावन के बीच में खेत की मेड़ आ जाए तो मेड़ को क़ाटकर गाड़ी के चक्कों के ...ने लायक रास्ता बनाना पड़ता है। इसे मेड़ फोरना या रावन फोरना ...ते हैं।

...ब गाड़ी में पीछे की ओर वज़न ज्यादा हो तो गाड़ी ओरला या उरली या उलार ...ती है। ओरलाना को दुर्ग की ओर उरहाना कहा जाता है। गाड़ी के ओरला ...जाने पर बइला टँग जाते हैं तब खेदवैया को माल को आगे सरकाना पड़ता है या ...रियों से कहना पड़ता है—ये बाट खसक आ। जब वज़न आगे की ओर अधिक ...और भार बैलों पर पड़े तो गाड़ी घुरहा या घुरा जाती है। गाड़ी कभी-कभी ...संतुलनावश उलट जाती है। इसे गाड़ी लहुटना कहते हैं।

...ब गाड़ी उठान पर पीछे की ओर खिसकने लगती है तो चक्कों के नीचे पत्थर या ...ड़ी के कुंदे लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इसे ढाँक या टेंक या टेका लगाना ...ते हैं। जब गाड़ी पर बोझ अधिक हो जाए तो बैल सीधे नहीं चल पाते और एक ...सरे को ढकेलते हुए चलते हैं इसे मसका-मसकी कहते हैं।

...ब बैल के पिछले पैरों में गाड़ी के चलते समय चक्का लगता है तो उसे चक्का ...ना या चक्का लगना कहते हैं। बस्तर में इसे चक्का रोखली कहते हैं। इससे बैल ...पिछले पर छिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में धुरा को आगे कसना चाहिए। जब बैलों ...को तेज चलाने के लिए गाड़ीवान मारते मारते परेशान हो जाता है तब वह बैल की ...पूँछ मरोड़ता है इसे बस्तर में 'लेंगड़ी अलटा' कहते हैं।

...गाड़ी बनाने का काम बढ़ई करता है। उस बढ़ई की जो अच्छी गाड़ी बना सकता ...बड़ी मांग रहती है। संपन्न किसान दो एक ऐसे मजदूर भी रखता है जो पेशे से बढ़ई ...नहीं हैं और गाड़ी बना सकते हैं। गाड़ी बनाना अत्यंत जटिल कार्य है। इसे बनाने के ...लिए बड़ा अनुभव और बड़ा कौशल अपेक्षित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमाऊँनी में प्रचलित रिश्तों से संबंधित शब्दावली

नारायण दत्त पालीवाल

उत्तर प्रदेश में कुमाऊँ के अंतर्गत प्रशासनिक दृष्टिकोण से अल्मोड़ा, गढ़वा नैनीताल, टेहरी गढ़वाल, पिठौरागढ़, उत्तरकाशी और चमोली जिले आते हैं।[1] इन सभी जिलों म कुमाऊँनी भाषा का प्रयोग किसी न किसी रूप में थो बहुत होता ही है किंतु भाषा की दृष्टि से अल्मोड़ा, पिठौरागढ़ और नैनीताल जिले पश्चिमी भाग ही कुमाऊँ का क्षत्र माना जाता है। ग्रियर्सन के अनुसार कुमाऊँनी भा बोलने वालों की संख्या 4,36,788 थी।[2] यह संख्या 1951 की जनगणना 5,70,008 हो गई।[3] कुमाऊँनी का अपना साहित्य भी है। इसकी तेरह बोलि हैं।[4] शब्द भंडार अपार है। किंतु अभी तक कुमाऊँनी की शब्दावली पर भा वैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र में विशेष कार्य नहीं हुआ है। दो एक कार्य इस दिशा अवश्य हुए हैं।[5] आधुनिक युग में जब हम आंचलिक साहित्य की ओर दृष्टि डा हैं तो विभिन्न प्रादेशिक तथा क्षेत्रीय भाषाओं की शब्दावली के भाषा-वैज्ञानि अध्ययन का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अत: भाषा विज्ञानियों का ध्यान आकर्षि करने के लिए कुमाउँनी में प्रचलित पारिवारिक रिश्ते संबंधी तथा इसी प्रकार के कु अन्य शब्द प्रस्तुत किए जा रहे हैं:—

सर्वप्रथम 'पिता' शब्द को लीजिए। कुमाऊँनी की विभिन्न बोलियों में इस लिए बौज्यू, बाज्यू, बाबज्य, बा, बबा, बाबु शब्द प्रचलित हैं किंतु परि कुमाऊँनी में 'बौज्यू' शब्द ही माना जाता है। हिंदी के प्रभाव से अब कहीं-क

---

[1]—अंतिम तीन जिले अभी हाल ही में सीमांत जिले बने हैं।

[2]—भारत का भाषा सर्वेक्षण।

[3]—परिषद्-पत्रिका (जुलाई 1961)—कुमाऊँ-क्षेत्र की भाषा (डा० त्रिलोच पांडे)।

[4]—भारत का भाषा सर्वेक्षण-ग्रियर्सन।

[5]—डा० गुणानंद जुयाल के शोध प्रबंध में गढ़वाली कुमाऊँनी का तुलना अध्ययन और डा० त्रिलोचन पांडे के शोध प्रबंध में कुमाऊँनी लो साहित्य का अध्ययन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...भी चलने लगा है। बाबू का ... और '...' का '...' ... पठित ...लोगों ने अपनाना उचित समझा है। कुमाउँनी की पंछाई बोली का 'बा' शब्द ...भाषा की मध्यवर्ती शाखा को ओरांव बोली के 'बा' शब्द से मिलता है।[1] इसी ...'माता' के लिए मै, माँ और इज शब्द हैं। संबोधन में इज का इजा या इजो ...हो जाता है। इजू और इजी कहने में शब्द की मिठास अधिक बढ़ जाती है। ...में इजू और महेड़ि शब्दों को माँ के लिए प्रयोग में अधिक लाया जाता है।[2] ...शब्द का सीधा संबंध माई से जान पड़ता है। अँग्रेज़ी के शब्द पेरेंद्स के लिए ...के अलावा एक सूदर शब्द 'मैबू' का चलन है।

...के लिए अमा या आमा और दादा के लिए 'बुबू' शब्द हैं। दादा को कहीं-कहीं ...'बौज्यू' भी कहते हैं। बुबू शब्द ब्राह्मणों में कहीं-कहीं पिता की बहिन (बुआ) ...लिए भी आता है।[3] वैसे बुआ को पुश्यांण कहते हैं। चाचा को कुमाऊँनी में भी ...मराठी, गुजराती की तरह काका ही कहते हैं।[4] यह शब्द कहीं काक और कहीं ...का बन जाता है। चाची के लिए काकी या काखि शब्द हैं। ताऊ को ठुल बौज्यू ...ताई को ठुलीज जेठजा या जेठिया कहा जाता है।[5]

...भाई के लिए 'भै', 'भया' और 'भाई' शब्दों का प्रचलन है। बहिन को बेण, बैंणि ...बैंणि (पालि पछाऊँ में) कहते हैं। बड़ी बहिन दिज्यू, दीदि, या दीदी ...जाती है। छोटी बहिन या छोटे भाई दोनों के लिए भुलि का प्रयोग होता है। ...भाई दादा, दाज्यू या दादि कहलाता है। संक्षेप में इनके लिए कभी-कभी दा ...भाई) और दी (बड़ी बहिन) का भी प्रचलन है जैसे 'रामदा' या 'शांतिदी' ...भाई—ज्यठ भै, मझला भाई—माजिल या मझल भै, छोटा भाई—कांस भै या ...भै कहा जाता है। ममेरे भाई बहिन 'माम पुशी भै बैंणि और चचेरे भाई बहिन ...बड़ांक चेलचेलि' कहलाए जाते हैं।

...लड़की और लड़के के लिए क्रमशः नानि और नान शब्द हैं।[6] बेटे के लिए च्यल और ...के लिए 'चेलि' शब्द चलते हैं। चेलि को कहीं-कहीं धीया भी कहा जाता है।[7]

1—हिंदी अनुशीलन—धीरेंद्र वर्मा विशेषांक में—ओरांव शब्दावली (श्री० विनय मोहन शर्मा) में—बा=पिता (पृ० 72)।

2—"बवाज्यू को दुःख गोयो इजू मेरि रोली" (पिता जी का दुःख का तो अंत हुआ पर मेरी इजू (माँ) रोएंगी)—गोपी-गीत शिवदत्त सती)।

3—शैलेश मटियानी (हौलदार-पृष्ठ 200)।

4—शिक्षा मंत्रालय द्वारा तैयार शब्द सूचियों में बंगला, मराठी, गुजराती का ...शब्द 'काका' दिया गया है।

5—जेठि (बड़ी)+इजा (मा)=जेठजा; ठुलि (बड़ी)+इजा (मां)= ...। इनके पुल्लिग रूप हैं ज्यठ और ठुल—दोनों का अर्थ है—बड़ा।

6—गढ़वाली में भी नौनि (लड़की) और नौना (लड़का) शब्द हैं।

7—"और अरि लोको पंडित लोको, मेरि घीया दुःख झन दीया"—[बेटी की ...के समय माँ निवेदन करती है कि उसकी धीया (बेटी) को दुःख न दें]—...परिषद पत्रिका (जुलाई 1961)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशु 'भौ' या 'भाउ' कहलाता है। सद्य:जात शिशु को 'लैटु भौं' कहते हैं। आपके कितने बाल-बच्चे हैं के लिए कुमाऊँनी में 'आपण कतू नानतिन छैं' या 'आपण कतू बाल-वच्च छै' या 'आपण कतू चेलचेलि छै' कहा जाएगा। औलाद का अपभ्रंश औलाद है। भतीजा और भतीजी शब्द उसी तरह हैं केवल कुमाऊँनी की प्रकृति के अनुसार इनमें दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है और ये क्रमश: भतिज तथा भतिजी रूपों में बदल जाते हैं। पोता कुमाउँनी में नाती कहलाता है और उसका बेटा झड़नाती। य शब्द आमतौर से नाति और झड़ंनाति के रूप में ही अधिक प्रचलित हैं। झड़नाती का वेटा 'पड़नाति' कहलाता है। पोती 'नात्याँणि' कहलाती है।

स्त्री को सैंणि कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द गुसैंणि से बना होगा। गुसैंणि का प्रयोग मालकिन या गृहस्वामिनी के अर्थ में किया जाता है। शैलेश मटियानी ने अपने आंचलिक उपन्यास में इस शब्द का अर्थ मालकिन दिया है। और इसका संबंध गोसाई या गोसांइनी शब्दों से जोड़ा है। कहीं-कहीं गुसैंणि शब्द भी कुमाऊँनी में 'गुस्यांण' का रूप भी मिल जाता है। तब इसका अर्थ जोगन (जोग्यांण) हो जाता है। योगिन के लिए वहाँ माइ (माता) शब्द भी है।[1] 'पुरुष' के लिए बैक का प्रचलन है। यह शब्द कुमाउँनी के दूसरे शब्द चैक (भड़ या बहादुर) से बना प्रतीत होता है। कुमाऊँ के दो पैकों की नामी कथा ग्रियर्सन ने भी दी है।[2] पत्नी के लिए 'ज्वें', 'मुए' या दुल्हैंणि[3] शब्दों का चलन है। 'राम की पत्नी' को इस प्रकार कहा जा सकता है—रामकिज्वें ; रामकि मुए: रामकि दुल्हैंणि, रामकि सैंणि या रामकि घरवाई (घरवाली)। हिंदी का 'ल' शब्द अंत में कुमाऊँनी में 'व' में वदल जाता है। वर के लिए वर या व्यौल शब्द तथा वधू के लिए 'व्योली' या 'बहुलि' का प्रचलन है। अविवाहित के लिए अणव्याव और विवाहित के लिए व्यवाई शब्द चलते हैं। पति को मालक, मालिक या स्वामि कहते हैं। खसम शब्द का प्रयोग अच्छा नहीं समझा जाता। कहीं कहीं 'दुल्हौव' शब्द भी चलता है जो 'दूल्हा' के निकट है।

पुरुष के दूसरा शादी करने पर जव नई स्त्री घर मे आती है तो उसे 'नौलि' (नौली)[4] कहा जाता है जो 'नवेली' शब्द के निकट है। दोनों स्त्रियाँ परस्पर सौत

---

[1]—'गोविंदी माइ गुस्याणा, वे, तीले थारो बोला'—लोकगीत।

[2]—भारत का भाषा सर्वेक्षण।

[3]—दुल्हैंणि शब्द का प्रचलन कहीं-कहीं बहू (ब्वारि) के लिए भी किया जाता है।

[4]—(क) 'रूका हुआ रास्ता' कहानी, (सारिका, अप्रैल 1962) में पृष्ठ 40 पर इसका प्रयोग हुआ है।

(ख) 'केलै' मेरि नौलि देखि उना उभां जानि, की हनलि पौर पन काकज्यू की छानि। ('दीवानी-विनोद' में दो विवाह वाला पुरुष अपनी 'नौलि' के विषय में पूछ रहा है कि क्या किसी ने उसे इधर उधर कहीं जाते देखा है? वह रूठकर चाचाजी की छानी (गाय, भैंस बांधने का स्थान) तो नहीं चली गई?)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहलाती हैं। विमाता के लिए 'सौति माँ', शब्द प्रचलित है। सौति माँ को कैंज या कैंजा भी कहा जाता है।

मामा के लिए 'माम' या मामा या ममा तथा मामा के घर के लिए मकोट या ममकोट शब्दों का चलन है। मामी को 'मामि' कहा जाता है। भानजा भाणज और भानजी भाण्जि कहलाती है। पीहर के लिए मैत व ससुराल के लिए सौरास या सौरास शब्द हैं। सास को सासु और ससुर को सौरज्यू, बुबज्यू, बुज्यू या बड़ बौज्यू कहा जाता है। कहीं-कहीं सास के लिए केवल 'ज्यू' शब्द है। रिश्ते म सास लगने वाली प्रत्येक औरत को ज्यू और ससुर लगने वाले प्रत्येक पुरुष को सौरज्यू कहा जाता है।[2] ऐसा मालूम होता है कि सासुज्यू (सास जी) शब्द में धीरे-धीरे सास का लोप होता आया और केवल 'ज्यू' (आदर सूचक शब्द) रह गया। जामाता के लिए जवैं और जवाईं दोनों शब्द हैं। बहू को ब्वारि या बौड़ि कहा जाता है। इसके लिए दुल्हैंणि शब्द भी है यह पहले कहा ही जा चुका है।

बहनोई के लिए भिन (भिनज्यू) शब्द हैं। साली और साला क्रमशः शालि या सात कहलाते हैं। कुमाऊँनी में दंत्य 'स' का उच्चारण भी तालव्य 'श' की तरह ही होता है। शालि और शाल शब्दों का रूप कुमाऊँनी की प्रकृति के अनुसार क्रमशः शाइ और शाव हो जाता है।

जेठ के लिए जिठांण या ज्याठज्यू शब्द हैं। गढ़वाल की सरहद पर यह शब्द 'ज्याड़ज्यू' हो जाता है। जिठानी को जिठांण या जिठानी तथा देवरानी को द्यौरांण कहा जाता है। देवर के लिए द्योर या देवर का ही प्रचलन है। भाभी को 'भौंजी' या 'बोजि' कहते हैं। ननद के लिये नंद या नणद कहते हैं। पाली पछाऊँ में नंद को पुस्यांणि भी कहा जाता है। पति की बड़ी बहिन कहीं पौंणि और कहीं पहौंणि कहलाती है। अल्मोड़े में (खसपरजिया बोली में) नंद को लली भी कहा जाता है और देवर को लला कहते हैं।

इस प्रकार कुमाऊँनी भाषा के शब्द भंडार से कुछ शब्द यहाँ दिए गए हैं जिनका संबंध आपसी रिश्तों से है। कुमाऊँनी में समीपवर्ती भाषाओं (तिब्बती, नैपाली, गढ़वाली, आदि) के शब्दों का चलन तो है ही, साथ ही हिंदी, संस्कृत तथा अँग्रेज़ी के अलावा प्रादेशिक भाषाओं के कई शब्द भी ज्यों के त्यों प्रचलित हैं। इस दिशा में योग तथा कुमाऊँनी शब्दावली के तुलनात्मक व भाषावैज्ञानिक अध्ययन की नितांत आवश्यकता है।

1—कैंजा या कैंज माँ की छोटी बहिन (मौसी) के लिए भी प्रयोग में आता है। ज्ञात होता है कि यह शब्द 'कांसि इज' (कनिष्ठ माँ) (छोटी माँ) से धीरे धीरे इस रूप में बदल गया होगा।

2—शैलेश मिटियानी (हौलदार पृष्ठ 131)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों का आत्म-परिचय

कृष्ण कुमार

अभी उस दिन की बात है कि सबेरे-सबेरे-पुस्तकालय में जाकर भाषाविज्ञान संबंधी एक पुस्तक जो देखने लगा तो किसी के बोलने की आवाज सुनाई पड़ी। मैं एक कोने में बैठा था और आसपास खुली अल्मारियों में हिंदी, अँग्रेज़ी व अन्य दूसरी भाषाओं के कोश पड़े थे और मेरे निकट भाषाविज्ञान की छोटी बड़ी अनेक पुस्तकें पड़ी थीं। परंतु इधर-उधर देखातो कोई भी वहाँ दिखाई न पड़ा। पुस्तकालय अभी-अभी खुला था और मैं ही पहले वहाँ पहुँचा था। मेरे व पुस्तकाध्यक्ष के सिवाय वहाँ कोई अन्य व्यक्ति भी न था। सो फिर पढ़ने में तल्लीन हो गया।

परंतु फिर किसी के धीमे-धीमे बोलने का स्वर कानों में पड़ा। और फिर इधर-उधर देखने पर भी कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर न हुआ। अचंभा हुआ कि आखिर यह स्वर किधर से आ रहा है। और अब किसी के लगातार परंतु धीमे स्वर में बोलने का आभास हो रहा था। इस एकांत स्थान में अदृश्य हो कर भी कौन बोल रहा है, यह जानने की उत्सुकता हुई। ध्यान से सुनने पर पता चला कि आवाज़ कोशों की ओर से आ रही है। सो दबे पाँव उस अल्मारी के पास पहुँचा और सुनने लगा। आवाज़ यद्यपि अब भी धीमी थी परंतु स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

उन बातों के सुनने से बहुत अचंभा हुआ। क्योंकि यह स्वर किसी व्यक्ति या पशु का न था बल्कि स्वयं शब्दों का था जो आपस में वार्तालाप कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि हिंदी अँग्रेज़ी आदि कोशों में शब्द कोई साहित्यिक गोष्ठी कर रहे हैं। उनके वार्तालाप से यही ज्ञात हुआ कि भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्द प्रायः साहित्यिक गोष्ठी करते हैं और उस दिन जो नए शब्द गोष्ठी में आए थे, अपना आत्म-परिचय दे रहे थे। एक शब्द महोदय जो अपने बोलने के ढंग से गोष्ठी के संयोजक प्रतीत होते थे, कह रहे थे कि आप सब को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि कई नए शब्द आज हमारी गोष्ठी में पधारे हैं। आज का कार्यक्रम तो समाप्त हो गया है परंतु इससे पहले कि सभा विसर्जित हो, मैं चाहूँगा कि हमारे नए मित्रों का परिचय हो जाए। और मेरे विचार में बजाए इसके कि कोई अन्य शब्द दूसरे शब्दों का परिचय दे, सभी नए मित्र अपना आत्म-परिचय स्वयं दें, तो अधिक सुविधाजनक होगा। चारों ओर से हाँ, हाँ का स्वर सुनाई पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो संयोजक महोदय ने नवागंतुकों को बारी-बारी आत्म-परिचय देने की प्रार्थना करते हुए कहा कि क्योंकि यह साहित्यिक गोष्ठी है, इसलिए आत्म-परिचय भी यदि साहित्यिक शैली में दिया जाए, तो सभी को आनंद आएगा। सर्वप्रथम 'मिस' शब्द ने अपना आत्म-परिचय देना आरंभ किया। उसने कहा कि मेरा नाम 'मिस' है। मेरा नामकरण क्यों हुआ, कह नहीं सकता। आपको शायद 'सकता' सुन कर अचंभा हुआ होगा क्योंकि आप 'मिस' के साथ प्रायः 'सकती' का प्रयोग ही सुनते आए होंगे। पर सर्वप्रथम मैं तो इस बात को कदापि अच्छा नहीं समझता कि संज्ञा के साथ क्रिया का लिंग भी बदल दिया जाए। संस्कृत व अँग्रेज़ी में तो ऐसा नहीं होता, तो फिर हिंदी में ही क्यों हो। हिंदी वाले तो संज्ञा व क्रिया में पति-पत्नी का संबंध स्थापित करना चाहते हैं। जिधर को पति मुड़े, उधर को उनकी श्रीमती क्रियादेवी जी भी मुड़ गई। खैर किसी समय तो यह उचित होगा और इसलिए शायद ऐसा माना भी गया होगा। परंतु इस प्रगतिशील युग में जब स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के बराबर समझे जाते हैं, और स्त्रियाँ पतियों के आश्रय पर न रह कर आत्म-निर्भर हो रही हैं तो क्रिया को, पुरातनवादी नारियों की तरह, अपने पति संज्ञा के पद-चिह्नों का अनुकरण करने को बाध्य करना बिल्कुल अनुचित है।

और फिर इस लिंग समस्या में भी उलझन है। अब हम सब शब्द एक बराबर हैं, न कोई छोटा है और न बड़ा है। हर एक अपने-अपने स्थान पर उचित व सुंदर लगता है और सभी भ्रातृभाव से मिलजुल कर रहते हैं। तो फिर किसी शब्द को पुल्लिग या स्त्रीलिंग कहना सर्वथा अनुचित है और नपुंसक लिंग कहना तो बहुत ही हास्यास्पद है। मेरे विचार में यह सब मनुष्यों की देन है। उन्होंने ही हम में फूट डालने के लिए यह लिंगों की उलझन डाल दी है। हमें चाहिए कि इसका शीघ्रातिशीघ्र बहिष्कार करें।

अब इन पुरुषों ने जो लिंग-समस्या खड़ी कर रखी है, तो इन्हें स्वयं कौन-सा लाभ हो रहा है। इस समस्या से वे दूसरी समस्या पर पहुँचते हैं और इसके परिणामस्वरूप फ्रायड के सिद्धांत हमारे सामने हैं। अब फ्रायडवाद में तो सैक्स-भावना ही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त संसार में कुछ है ही नहीं। जहाँ तक मेरा विचार है कि कोई भी सभ्य शब्द मनुष्यों की इस स्वेच्छाचारिता को पसंद नहीं करता। इसलिए मेरा तो यही विचार है कि शब्द-समाज में लिंगों का एकदम बहिष्कार किया जाना चाहिए। परंतु मैं तो अपना आत्म-परिचय दे रहा था और उलझ गया इस लिंग समस्या में।

खैर आप यह जानना चाहेंगे कि मेरा नाम 'मिस' क्यों पड़ा ? अब बात यह है कि हिंदी में मिस शब्द बहाना के अर्थ में प्रयुक्त होता था। और यह तो आप जानते ही हैं कि लड़कियाँ बहाना बनाने में बहुत ही पटु होती हैं। जिस कुशलता से वह आज बहाने बनाती हैं, उसी प्रकार वह पहले भी बहाने बनाती रही हैं। यह कार्य-बहानेबाज़ी का—किसी देश या जाति विशेष तक सीमित नहीं था (और न है) बल्कि सभी देशों, जातियों, रंगों वा आयु की लड़कियाँ अनादि काल से बहाने बनाती आई हैं। कहते हैं कि इंग्लैंड में अविवाहित लड़कियाँ क्योंकि अपनी अन्य बहिनों से बहाने बनाने में अधिक पटु थीं, इसलिए उन्हें 'बहाने' यानि 'मिस' के नाम से पुकारा जाने लगा। अतः अब अँग्रेज़ी में हर अविवाहित लड़की को मिस कहते हैं (चाहे वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहाने [illegible] । परंतु प्रजातंत्रवाद के युग में [illegible]मत की ही चलती है और लड़कियों का बहुमत तो निस्संदेह बहाने बनाने में पटु होता है । इसलिए मिस नाम उचित ही प्रतीत होता है । अंत में मैं आप सब भाईयों से क्षमा माँगता हूँ कि मैंने आपका बहुत समय नष्ट किया । परंतु बात असल में यह है कि सदा से लड़कियों के साथ और उनके नामों के तो बिल्कुल ही साथ रहने के कारण मुझ में भी उनकी कुछ आदतें पड़ गई हैं । और यह अधिक बोलने की आदत भी उन्हीं में से एक है । अब क्या करूँ आदत से मजबूर हूँ ।

इसके वाद 'गरल' जी ने बोलना आरंभ किया । उन्होंने कहा कि नाम तो मेरा गरल है और मैं विषजी का छोटा भाई हूँ । हम दोनों में इतना अधिक साम्य है कि प्राय: लोग धोखा खा जाते हैं और मुझे भी विष ही समझने लगते हैं । वैसे हम दोनों के स्वभाव भी एक जैसे हैं । यदि कोई भद्र पुरूष इस संसार के मायाजाल से तंग हुआ हो, तो हम दोनों भाई उसको इन बंधनों से छुटकारा दिलाने तथा दूसरे संसार में भेजने का भरसक प्रयत्न करते हैं । वैसे हमें कोई व्यक्तिगत लाभ तो नहीं होता, परंतु क्या करें परोपकार की भावना हमारे परिवार के सभी सदस्यों में कूट-कूट कर भरी हुई है । इसलिए दूसरे संसार में जाने के इच्छुक भद्र पुरुषों को जब तक हम उनके नियत स्थान पर पहुँचा न दें, हमें चैन नहीं पड़ता ।

परंतु क्या कहें, भारतीय साधु संतों ने नारी को भी माया और विष की उपमा दी है । अब सर्वसाधारण विष और गरल में भेद तो समझते नहीं । इसलिए कइयों ने नारी को गरल समझ लिया । अँग्रेज़ी में उच्चारण भेद के कारण इसका रूप गर्ल हो गया । अब वैसे तो मुझ (गरल) में और गर्ल (लड़की) में बहुत भेद है । सबसे वड़ा भेद तो यही है कि मैं कभी लिपस्टिक, नेलपालिश नहीं लगाता और माडर्न गर्ल (आधुनिक लड़की) का इसके बिना निर्वाह ही नहीं । परंतु मेरा और लड़कियों का स्वभाव भी एक जैसा है या नहीं, कह नहीं सकता क्योंकि मेरा लड़कियों से जरा कम ही परिचय रहा है ।

इसके बाद 'काफी' महोदय ने कहा कि मुझे 'काफी' कहा जाता है । क्यों कहा जाता है इसकी कहानी काफ़ी लंबी है परंतु समयाभाव के कारण इस समय वह सुनाई नहीं जा सकती । संक्षेप में कह दूं तो बात यह है कि पहले-पहले मेरा नाम कुछ और था । परंतु मेरा स्वरूप और स्वभाव विल्कुल वैसा ही था जैसा कि आज की काफी का है । उस समय भी लोग मुझे पीते थे और काफ़ी मात्रा में पीते थे । इसलिए जब भी लोग किसी को मुझे (काफ़ी) पीने के लिए कहते तो प्राय: दूसरा यही उत्तर देता कि मैंने तो पहले ही पी ली है । दूसरा प्रश्न होता थोड़ी और पी लो तो उत्तर मिलता, नहीं मैंने काफ़ी पी ली है । क्योंकि सभी लोग काफ़ी मात्रा में (मुझे) पीते थे, इसलिए धीरे-धीरे लोग मेरा असली नाम तो भूल गए और मुझे 'काफी' ही कहा जाने लगा ।

इसके बाद श्री 'टक' की बारी थी । आपने कहा मुझे लोग टक के नाम से पुकारते हैं और जब भी पुकारते हैं तो उन्हें कुछ पीड़ा भी होती है । वैसे मेरा नाइयों से निकट का संबंध है । (इस पर सभी शब्द मुस्कराने लगे) । बात यह है कि जब किसी नाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस्तरा किसी बाल को पकड़ने के लिए भागता है और रास्ते में कोई बाधा आ जाए तो प्रायः खून निकलने लगता है और वहीं मेरा जन्म होता है।

एक बार की बात है कि एक बच्चे ने अपने पिता के हजामत बनाने के ब्लेड से पेंसिल घड़नी चाही और इसके फलस्वरूप ब्लेड हाथ में लग गया और उसके हाथ से खून बहने लगा। खून बहत देख मैं भी वहाँ पहुँच गया। इस पर उसके पिता ने उसके हाथ पर पट्टी बाँध दी और बच्चा थोड़ी ही देर में मुझे भूल गया और अपने अन्य साथियों से मिल कर खेलने लगा व उल्टबाज़ियाँ मारने लगा। उधर से एक अँग्रेज जा रहा था, उसने पूछा कि बच्चे के हाथ पर पट्टी क्यों बंधी है? बच्चे के पिता ने उत्तर दिया कि उसे टक लग गया था। क्योंकि बच्चा उस समय उल्टबाज़ी मार रहा था और उसके साथ मैं भी अपने आप उल्टबाजियाँ खा रहा था, तो उस अँग्रेज ने मुझे उल्टबाजी की दशा में ही देखा।

इस पर उस अँग्रेज़ ने मेरे नाम को भी उल्टबाजी दी और मैं हिंदी में टक से अँग्रेज़ी का कट हो गया। और आज तक मैं अँग्रेज़ी में उसी उल्टबाज़ी की दशा में हूँ। परंतु मैं इस स्थायी शीर्षासिन से तंग आ गया हूँ और अँग्रेज़ी में भी अपने पाँव पर खड़ा होना चाहता हूँ। परंतु मजबूर हूँ।

इसके बाद सुश्री 'महिला' की बारी थी। उन्होंने तनिक बनावटी व लजीली आवाज़ में कहा मैं कहा मैं 'महिला' हूँ। मेरी व्युत्पत्ति के बारे में एक साहित्यकार की बात सुन लीजिए। उनके अनुसार महिला—महीम (धरती को) (जो) हिलाए इति महिला। इस व्युत्पत्ति की सार्थकता के प्रमाण में हास्यरस के एक अँग्रेज़ लेखक की उक्ति भी सुन लीजिए। वह कहते हैं कि ईश्वर ने पहले मनुष्य को बनाया और फिर विश्राम किया। उसके बाद ईश्वर ने महिला (नारी) बनाई और तब से आज तक मनुष्य और न ईश्वर ही विश्राम ले सका है। मैं अधिक बोलने में असमर्थ हूँ क्योंकि अधिक बोलने से मेरी जिह्वा में मोच आने का भय है।

इसके बाद कामरेड 'बस' की बारी थी। वह कहने लगे कि वैसे तो मेरा नाम ट्रक था और मुझ पर केवल सामान ही लादा जाता था। परंतु जब मनुष्य ने पूंजीवादी विचारों को अपनाना आरंभ किया और ट्रकों पर सवारियों को बैठाने की प्रथा चली, तब से मेरा जीवन ही बदल गया है। और क्योंकि पहले पहल ट्रक बहुत ही कम थे और चढ़ने वाले बहुत अधिक रहा करते थे, तो कंडक्टर निश्चित सवारियाँ बैठाने के बाद कहते 'बस बस'। इससे कुछ लोग तो कंडक्टर को 'बस बस' कहने लगे। लोग कंडक्टरों को देख कर प्रायः कहते थे, वह देखो 'बस बस' जा रहा है। परंतु मुसाफिर भी अपने गंतव्य स्थान पर ट्रक रोकने के लिए 'बस बस' चिल्लाते थे। इससे धीरे-धीरे लोगों ने कंडक्टरों को 'बस बस' कहना तो छोड़ दिया और मुझे (ट्रक को) ही बस कहना आरंभ कर दिया। अपने संबंध में मुझे बस इतना ही कहना था।

तद्उपरांत श्री 'साहस' की बारी थी। वह कहने लगे मेरा नाम 'साहस' है। संस्कृत में मैं चोरी या डाका डालने के साहस के अर्थ में प्रयोग किया जाता था। परंतु आजकल साहसी होना बड़े गौरव की बात मानी जाती है। और देखा जाए तो यह उचित ही प्रतीत होता है। क्योंकि आजकल हर कोई दूसरे के अधिकारों, वस्तुओं व धन आदि

बून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर डाका मारना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। लेखकगण दूसरों की रचनाओं पर डाका डालने से नहीं चूकते, तो संपादकगण लेखकों की रचनाओं पर डाका डालने में पटु हैं, प्रूफरीडर शब्दों पर डाका डालने के आदी हैं—वित्त का पित्त, मीत का मति, प्रेम का प्रेत और भगिनी का भंगिनी बनाना तो इनके बाएँ हाथ का खेल है—तो पाठकगण पड़ौसी के समाचारपत्र पर डाका डालने के लिए उत्सुक रहते हैं।

समय ऐसा आ गया है कि धर्म-ईमान, मान-प्रतिष्ठा, धन-यश और साईकल या कोट की पाकेट पर भी हर समय डाका डालने का भय रहता है। जब सभी डाका डालने के लिए प्रयत्नशील हों तो साहस को समादृत करना और पराक्रम या पर्यायवाची बनाना अनुचित नहीं जान पड़ता। मैं क्षमा याचना करता हूँ कि मैंने आपका इतना समय लेने का साहस किया है। शायद कोई भाई समझे कि मैंने उनके समय पर डाका डाला। परंतु मैं इतना ही कह कर कि यह भी समयानुकुल प्रवृत्ति है (क्योंकि आजकल के वक्ता एक बार बोलना आरंभ कर प्रायः अपनी बात को समाप्त करना ही भूल जाते हैं) यहीं समाप्त करता हूँ।

साहस जी के आत्म-परिचय के बाद सभा विसर्जित हो गई। और सब शब्द भिन्न-भिन्न कोशों में अपने अपने स्थान पर चले गए। परंतु शब्दों के आत्मपरिचय ने हमें बहुत प्रभावित किया। आज तक हम इन शब्दों को केवल काले अक्षरों (जो एक मुहावरे के अनुसार तो भैंस बराबर होते हैं, यद्यपि आजकल की पुस्तकों के अक्षरों को देखा जाए तो वह भस के बराबर तो नहीं अलबत्ता मक्खी या चींटी के बराबार अवश्य होते हैं) का समूह मात्र और निर्जीव व अचेतन समझते रहे हैं। परंतु अब हमें पता चला कि शब्द भी प्राणीमात्र के एक जीवित अंग हैं। हमें आशा है कि भविष्य में भाषावैज्ञानिक शब्दों की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए उनकी (शब्दों की) भावनाओं को ध्यान में रखेंगे। और नए शब्द भी शब्दों की अपनी रुचि को ध्यान में रखते हुए ही घड़े जाएँगे। कोई भी भाषावैज्ञानिक उपर्युक्त शब्दों के विचारों का बेखटके प्रयोग कर सकता है क्योंकि उसके सर्वाधिकार बिल्कुल असुरक्षित हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- विश्व कवियों के प्रेरणा स्रोत—टी० एस० इलियट

- अतीत के आलोक में हिंदी की समृद्धि

- कर्नाटक में हिंदी का वर्तमान स्थान

- राष्ट्रभाषा; कुछ सुझाव

स्फुट विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 76248

विश्व कवियों के प्रेरणा स्रोत
टी० एस० इलियट

हेम बरुआ

आधुनिक कविता में जिस आवाज ने "नई चेतना" को जन्म दिया था, इसे कराल काल ने आज अपने गहवर में समाहित कर लिया है। टी० एस० इलियट का पार्थिव शरीर अब नहीं रहा। प्रसिद्ध कवि, लेखक और समीक्षक इलियट ने समकालीन साहित्यक रंग-मंच पर पर्याप्त सहजता और विशिष्टता से शासन किया। उनके द्वारा अँग्रेज़ी कविता को स्फूर्तिजनक पुनर्जन्म मिला।

वर्तमान अँग्रेजी कविता का प्रमुख प्रवाह भावना प्रधान होने की अपेक्षा बौद्धिक अधिक है। आधुनिक कविता में सृजन काल के समय कवि सम सामायिक भावनाओं की अपेक्षा विवेकशीलता को अधिक मान्यता देता है। इसी कारण आज की कविता "व्याख्यात्मक" मानी जाती है। युगानुयुग से प्रचलित गीतात्मकता इस धारा के कारण पतनोन्मुखी हुई है। केवल विषय वस्तु ही विस्तृत नहीं हुई अथवा उसके निर्वाह और दृष्टि में ही अंतर नहीं आया वरन् वह अंतर्मुखी और प्रतिबिंबात्मक भी हुई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि समकालीन कविता मुख्यत: गीतात्मकता से रहित है। टी० एस० इलियट का वर्गीकरण गीताकारों में नहीं किया जा सकता। उनकी कविता बिंबात्मक होने के साथ-साथ आवेगों से बद्ध नहीं होती। इलियट के लिए यह स्वाभाविक ही था क्योंकि उन की कविता अंतदृष्टिपूर्ण प्रेरणाओं से परि-पूरित थी।

आधुनिक कविता की अभिनवता इजरा पाउंड और टी० एस० इलियट द्वारा दृष्टि और दिशा पा रही थी। इनके कृतित्व के संबंध में एक प्रश्न प्रमुखत: उठता रहा है कि अध्ययनशीलता अथवा बौद्धिकता काव्य के तत्त्व में ग्रहण की जा सकती है अथवा नहीं? सामान्य व्यक्ति की दृष्टि में ये दोनों विरोधी प्रतीत होंगी। टी० एस० इलियट की संकेत सीमा भले ही आरोपित हो अथवा आनारोपित, पर वह विस्तृत तथा गहन थी जिसका विस्तार भगवद्गीता से अत्याधुनिक मानव विज्ञान तक है। "फ्रोम रिचुअल टू रोमांस" व "गोल्डन बो" जैसे मानव विज्ञान के अध्ययन ने इलियट पर गहरा प्रभाव डाला था।

आधुनिक कवि सुपाठी होता है और जीवन के प्रति उसका अपना विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। यही कारण है कि वह कवि होने के साथ-साथ अध्ययनशील विचारक भी

जून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है और विश्लेषणात्मक समीक्षक भी। टी० एस० इलियट के लिए यह अक्षरशः सत्य है। अपनी अध्ययनशीलता और विचारों की गहनता के साथ-साथ इलियट कविता की वेदी पर पूर्ण रूपेण आत्मीय रूप से समर्पित थे। यही उन्होंने लिखा भी है "कलाकार की प्रगति उस के निरंतर आत्म बलिदान पर आधारित है, यह व्यक्तित्व का निरंतर निर्वाण है।" यह ऐसा आत्म समर्पण है जो कविता को अमरत्व तथा काव्य को सौष्ठव प्रदान करता है। मानव विज्ञान और धार्मिक दर्शन ने इलियट को "प्रतिकात्मक संदर्भ" प्रदान किए। टी० एस० इलियट की निम्नलिखित पंक्तियाँ गहन दार्शनिक विचार तत्वों की ही देन हो सकती हैं —

"वर्तमान और अतीत–
संभवत:
दोनों ही, भविष्य में
तिरोहित हैं,
और भविष्य,
अतीत के गर्भ में।"

यह कहना कि टी० एस० इलियट सर्वोपरि थे, नितांत भ्रांतिपूर्ण है। वे न तो सर्वोत्कृष्ट थे और न ही लार्ड वायरन की भांति आडंबरपूर्ण। टी० एस० इलियट ने अपने मूल्यों का एक विशिष्ट बिंब बनाया था, जैसा कि उन्होंने अपने निबंधों में भी स्पष्ट किया है। अपने अध्ययन तथा दृष्टि को ही उन्होंने इन में समाहित करने का निरंतर प्रयत्न किया है। उनकी लेखनी से ज्ञात होता है कि जिस युग को वे भोग रहे थे उस युग के अध्यात्मिक संक्षोभ तथा खोखली भावुकता ने उन्हें सदैव ही विक्षिप्त रखा। सच तो यह है कि "प्रफ्रौक का विश्व" ही आधुनिक विश्व है जिसका कि कवि व्यवच्छेदन कर रहा है। संभवत: अँग्रेज़ी साहित्य में लिखी गई "नगर मानव" संबंधी यह सर्व प्रथम कविता है। उन्होंने और कुछ नहीं किया वरन् कवि "आडेन" ने "सच्चे कवि" की जो व्याख्या की थी, उसे ही चरितार्थ किया है :—

"वर्तमान में कवि
चेतावनी दे सकता है,
इसी कारण
सच्चे कवि को
सच्चा होना चाहिए।"

"इजरा पाउंड" की अपेक्षा टी० एस० इलियट की संवेदना शांत और शीतल है।

टी० एस० इलियट ने अपनी कविता और नाटकों को शास्त्रीय संतुलन प्रदान किया था। "थयोडोर स्पेंसर" के अनुसार इलियट मितशब्दी कवि थे। जिस परंपरात्मक कविता से हम चिरपरिचित हैं उसमें उन की यह कुशलता दोषपूर्ण प्रतीत होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलियट अपनी अभिनव काव्य शैली में सर्वप्रिय बनने के लिए, अपने युग और जीवन के असंश्लिष्ट और असंतुलित अवयवों को संश्लेष और संतुलन प्रदान करने के लिए, अपने काव्य में कई बार विचित्र संकेत प्रस्तुत किया करते थे जिन की सीमा उपनिषदों से शेक्सपियर और गोल्डस्मिथ तक विस्तृत थी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उनका मस्तिष्क और उनकी बौद्धिकता इतने विस्तृत संकेतों और संदर्भों में तिरोहित थी कि उनमें विश्व कोशीय भव्यता और सहजता सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होती थी और यही कारण है कि उनकी काव्य कृतियाँ हमारी बौद्धिकता के गहनतम स्तरों का स्पर्श कर पाती हैं।

स्वाभाविक है कि इस प्रकार का विखंडन कार्य यदि किसी अनभ्यस्त व्यक्ति द्वारा होता तो वह भ्रष्ट हो जाता, जबकि इलियट की अद्वितीय काव्य शैली ने उसे विशिष्ट सौष्ठव प्रदान किया। इस दृष्टि से "दि वेस्ट लेंड" एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। श्री आई० ए० रिचड्र्स ने इस शैली को "निजी शैली" कहा है। इसके अतिरिक्त टी० एस० इलियट ने स्वयं कहा है और इस धारणा का औचित्य घोषित किया है। "विमुक्त कविता समझने के पूर्व ही संचारित हो जाती है।"

दी वेस्ट लैंड : इलियट की सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक उपलब्धि "दि वेस्ट लैंड" आधुनिक जीवन की कटु आलोचना है। जीवन जो प्रणयोन्माद से विमुक्त है, जीवन जो शुद्ध उन्मादों से विकृत है, जीवन जिसे "आत्मोसर्ग और धर्मगत भावनाओं के आश्चर्य में भ्रष्ट बना कर इतना निकृष्ट कर दिया है कि वह मात्र भाग्य द्रष्टा बन कर रह गया है।" उन्होंने जिस शैली का उपयोग किया है उसे "एक प्रकार की संबद्ध लघ. लिपि" कहा जाता है। इलियट की वैराग्य प्रवृत्ति में वक्रोक्तिपूर्ण आभास है जो कवि के दृष्टिकोण और विचारों का द्योतक है। "दि वेस्ट लैण्ड" के प्रारंभ की पंक्तियों में "उत्साहित प्रणयोन्माद" का सजीव वर्णन हैं जिसमें "मदाम ससोत्रिस" का सुंदर शब्द चित्र प्रस्तुत किया गया है—

"जुकाम हो गया था,
तथापि
यूरोप भर में
विज्ञतम महिला यही थी,
ताश के धूर्त पत्तों के सहित।"

"मदाम सोसोत्रिस" भ्रष्टता अथवा सस्ती अश्लीलता की द्योतक अथवा प्रतीक हैं।

उनकी दूसरी कविता "दि गेम आफ़ चेस" (शतरंज का खेल) में दो चित्र एक साथ प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न कवि ने किया है जिसमें भावुक और आध्यात्मिक खोखलेपन का सजीव चित्र अंकित किया गया है, एक में अत्याधुनिक साज सज्जापूर्ण वातावरण है दूसरे में सस्ते से चंडूखाने का चित्रण है। इस प्रकार के वैषम्यतापूर्ण किन्तु तुलनात्मक चित्रों के प्रस्तुतीकरण के पीछे कवि का मंतव्य आधुनिक समाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक खोखलेपन को [illegible] किया था । जिस प्रकार की [illegible]ताओं के चित्रण और उससे संबद्ध प्रश्न इलियट ने "दि वेस्ट लैंड" में चित्रित किए हैं और एक प्राचीन गाथा को प्रतीकात्मक रूप से प्रयुक्त किया है उसी प्रकार जेम्स जायस ने "यलीसीज में "ओडिसी" कथा का उपयोग किया है । एक समीक्षक की भाषा में कहा जा सकता है कि "पुराण गाथा पृष्ठ भूमि और प्रतीक समूह के रूप में विशिष्ट प्रकार से उपयोगी होती है और यह कविता को भव्यता भी प्रदान करती है जो कि अतिरिक्त रूप से उस में आनी कठिन होती है ।"

"टेनिसन" के युग की अँग्रेज़ी कविता "शाब्दिक रक्तहीनता की परिचायक और यही प्रवृत्ति इसके बाद की पीढ़ी में थी । इलियट की कविता इस रक्तहीनता की प्रवृत्ति के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया थी । इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए उसने सामान्य शब्दों का उपयोग किया जो नित्य प्रति की बोलचाल की भाषा के थे क्योंकि ऐसे शब्दों में जीवन स्पंदित प्रतीत होता है । यद्यपि यह भी सत्य है कि इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग केवल इलियट ने ही नहीं किया अपितु उसके समकालीन अन्य कवियों ने भी प्रचुर मात्रा में किया । किंतु इलियट इन शब्दों का उपयोग करके अपनी कविता में दोहरा प्रभाव प्रस्तुत करने में अत्यधिक सफल था । "ये शब्द प्रायः कविता से संबद्ध नहीं थे ।"

यह कहना नितांत भ्रांतिपूर्ण है कि इलियट भौतिकतावादी विश्व से अथवा उसके उत्पीड़न से स्वयं त्रस्त था । सच तो यह है कि उसने इस भौतिक शब्दावली का उपयोग आंतरिक विवेक का संकेत करने और उसे चित्रित करने के लिए किया था । जिससे कि आंतरिक सत्य प्रस्तुत किया जा सके । इसे हम दूसरे शब्दों में कवि का "अंतद्वालक अनुभव" भी कह सकते हैं । ये भौतिक वस्तुएँ जिन्हें इलियट ने प्रस्तुत किया किसी अंश तक ही अनात्म थीं । अन्यथा वे आत्मदर्शनात्मक थीं ।

ओडेन और स्पेंडर में व्यथित परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार प्रतिक्रिया करता है जो कि उसमें आत्मनिष्ठ हैं और प्रगति की द्योतक हैं । किंतु इलियट इन दोनों से भिन्न है, इसका व्यक्ति अपने विश्वासों और अनुभवों के अनुसार वातावरण और परिस्थितियों के साथ-साथ परिवर्तित होता है, जैसा कि वह वर्तमान में अनुभव करता रहता है । यह सत्य ही है कि :—

"यह है
मरु भूमि,
कैक्टसों की भूमि
पत्थर के बुत यहाँ स्थापित,
डूबते तारे की ज्योतिकिरण में—
यहाँ,
इन्हें मिलती है—
भिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मृत मानव के भरे हाथ की ।

किंतु समाधान कहाँ है ?

यदि डा० रिचर्ड्स के शब्दों में कहा जाए तो कवि सच में अपने युग के अति विवेकी ...ों को जी रहा है। यह उसका दुर्भाग्य है और असह्य भी कि वह अपने युग की इन ...नाओं से पीछा छुड़ा सके और पलायन कर सके क्योंकि वह अपने युग से और उसकी समस्याओं से पूर्णतया संबद्ध है। और इनके प्रति इलियट की ...ा और संवेदना उनके अपने विश्वासों और धारणाओं पर ही आधारित है। ...स्वाभाविक भी है।

इन समस्याओं के प्रति व्यक्ति विशेष की प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक ढंग से दो दिशाओं ...रित हो सकती है—(1) स्वयं को परिवर्तित करने का प्रयत्न और (2) बाह्य ...र को परिवर्तित करने का प्रयत्न। दोनों प्रतिक्रियाएँ ही अपनी-अपनी जगह ...वितीय हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि टी० एस० इलियट और डब्ल्यू० ...० यीट्स दोनों ही प्रथम कोटि के कवि एवं विचारक हैं और आडेन, डेलेविस और ...डर आदि कुछ सीमा तक द्वितीय कोटि के। क्योंकि वातावरण, परिस्थितियों और उसकी विभिन्न समस्याओं को परिवर्तित करने की प्रवृत्ति में पर्याप्त अंतर है। ...र के कवि-समूह के पीछे कुछ राजनीतिक भावनाएँ भी कार्य करती हैं जबकि इलियट ...ह लेशमात्र भी नहीं थीं।

यदि इलियट के शब्दों में ही कहा जाए तो यह कितना सत्य है कि —

"बाँझ वृक्ष छाया नहीं देता

और झींगुर में

उन्माद कहाँ ?"

किंतु टी० एस० इलियट के कवि में यही बात भिन्न थी कि वे "छाया" भी देते हैं और "उन्माद भी"। अपने देशवासियों अथवा कवियों को ही नहीं अपितु समस्त संसार के समकालीन तथा आने वाली पीढ़ी के समस्त कवियों, पाठकों को भी। टी० एस० इलियट समकालीन काव्य के प्रेरणा स्रोत बने रहे और मुझे विश्वास है कि ...य में अपनी मृत्यु के पश्चात् भी वे युगानुयुग तक प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतीत के आलोक में हिंदी की समृद्धि

मुनि नथमल

जीवन के आदि-क्षणों में हमें छह पर्याप्तियाँ उपलब्ध होती हैं । उनमें अंतिम दो हैं—भाषा-पर्याप्ति और मन:पर्याप्ति । हमारा सारा कर्मचक्र इन्हीं के बल पर चलता है । 'हम बोलते हैं और चिंतन करते हैं इसलिए हम अणु युग तक पहुँच पाए हैं । लगता है, भाषा और मन दो हैं । पर निश्चयनय में वे दो नहीं हैं । चिन्तन का बाह्य रूप भाषा है और भाषा का आंतरिक रूप चिंतन है । जीव-शास्त्र के अनुसार ऐसे प्राणी होते हैं, जिनमें भाषा होती है पर चिंतन का विकास नहीं होता । ऐसे जीव नहीं होते, जिनमें चिंतन का विकास हो और भाषा न हो । भाषा के माध्यम के बिना चिंतन का विकास नहीं होता और चिंतन-विकास के बिना भाषा का विकास नहीं होता । इस प्रकार दोनों संश्लिष्ट हैं । हिंदी के विकास के लिए यह अपेक्षित है कि हिंदी भाषियों का चिंतन विकासशील हो, ज्ञान गंभीर हो, अतीत के अनुसंधान और वर्तमान के स्पर्श में क्षम हो । जिनमें भावों को भाषा का परिधान देने की क्षमता हो, उनमें शब्दों की उत्पत्ति का परिज्ञान भी होना चाहिए । आज के अनेक हिंदी लेखक पर्याय-शब्दों के प्रयोग में सफल नहीं हैं । साहित्य की चर्चा भाषा से भिन्न नहीं है । अच्छे-अच्छे लेखक भी ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है । अशुद्ध प्रयोग भी चलते हैं । 'परिणत' को 'परिणित' लिखना तो आज साधारण हो गया । 'राष्ट्रिय शब्द को मैं ह्रस्व इकार के रूप में लिखता पर जब वह प्रकाशित होकर आता तो 'राष्ट्रीय' बनकर आता । संभवतः प्रकाशक इसलिए उसे बदल देते हैं कि वह शुद्ध नहीं है । 'राष्ट्रिय' शब्द देश्य नहीं है । संस्कृत में वह ह्रस्व इकार वाला ही होता है । नव-निर्माण में हमने अवश्य ही गति की है । पर अतीत से हमारा संपर्क कम है । इसलिए कुछ खामियाँ रह जाती हैं । 'सक्षम' शब्द जितना क्षमासहित के अर्थ में उपयुक्त है उतना समर्थ के अर्थ में नहीं । फिर भी आज कल समर्थ के अर्थ में 'सक्षम' अधिक प्रयुक्त होता है, जबकि उसके अर्थ में 'क्षम' शब्द स्वयं व्युत्पन्न है ।

अतीत के संपर्क की एक छोटी सी कहानी है—आचार्य श्री तुलसी के निर्देशानुसार हम लोग 'जैन आगम शब्दकोश' का कार्य कर रहे थे । उस समय हमारे सामने 'ऊरु' शब्द था । हमने सोचा इसका हिंदी-पर्याय क्या दिया जाए? हिंदी शब्द-कोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा तो उसमें ऊरु का अर्थ मिला—जाँघ, रान । फिर जंघा शब्द को देखा तो उसका अर्थ मिला—जाँघ, पिंडली । पिंडली का अर्थ मिला—टाँग के पीछे की ओर का मांसल भाग । फिर संस्कृत शब्द-कोश देखा तो 'ऊरु' और 'जंघा' का अर्थ भिन्न पाया । सक्थि ऊरु ये दो जानु के ऊपरी भाग के नाम हैं । 'जंघा' और 'पिंडिका' जानु के निचले भाग के नाम हैं । कवच-स्तोत्रों से यह प्रमाणित भी हो गया । मंत्र-साधना के समय साधक अपनी सुरक्षा के लिए कवच-स्त्रोत्र पढ़ते थे । उसमें समूचे शरीर की रक्षा का विधान होता था । एक जैन-रक्षा-स्त्रोत्र में है–

"मल्लिः कटी सक्थिनी च रक्षातान् मुनि सुव्रतः ।
नमि जांनुद्वयं पायान् नेमिर्जङ्घा । द्वयं पुनः ॥

सर्वांग सुरक्षा का प्रकरण शिर से चलता है और पैरों तक पहुँच जाता है । वहाँ स्पष्टतः आया है—मल्लि भगवान् मेरे कटि प्रदेशों की रक्षा करे । मुनि सुव्रत मेरे सक्थि प्रदेशों की रक्षा करें । नमि भगवान् मेरे जानु घुटनों की सुरक्षा करे और नेमि भगवान् मेरी जंङघाओं की रक्षा करें ।" इस क्रम में सक्थि (ऊरु) के पश्चात् जानु और जानु के पश्चात् जंघा का उल्लेख है । इससे स्पष्ट है कि सक्थि या ऊरु जानु के ऊपरि भाग का नाम है और जंघा उसके निचले भाग का । फिर उसके लिए हिंदी-पर्याय ढूंढा तो कोई शब्द नहीं मिला । फिर हमने राजस्थानी शब्द से काम लिया । उनमें जंघा के लिए 'जांघ' और 'ऊरु' के लिए 'साथल' शब्द है । जो सक्थि का ही अपभ्रंश रूप है । सार्थिक और सक्थिक इन दोनों का प्राकृत रूप सत्थिप बनता है । सक्थिक-सत्थल्ल-साथल (इसी प्रकार दूसरा शब्द हिंदू है । हिंदू शब्द फारसी माना जाता है । सिंधु का उच्चारण हिंदू हुआ ऐसा अभिमत है । पर यह भारतीय क्यों नहीं हो सकता ? जैन आगम भगवती सूत्र (20/2) में जीव के तेईस नाम बताए हैं । उनमें एक नाम है 'हिंडुअ' । जीव संसार के पर्यटन करता है, इसलिए उसे 'हिंडुअ' कहा जाता है । हिंदू अर्थात् पर्यटक । आर्य लोग भारत में आए । उनका पर्यटन-परक नाम ही प्रधान बन गया और धीरे-धीरे वह समूची जाति और देश का वाचक बन गया ।

हिंदी की समृद्धि के लिए अतीत का आलोक बहुत अपेक्षित है । वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्र (5/1/13) में लिखा है–जो संस्कृत शब्द बहुत व्यापृत हो उसे संस्कृत काव्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है । ऐसा ही उदार दृष्टिकोण आज चाहिए । दर्शन-शास्त्र व अन्यान्य शास्त्रों से एक-एक विषय की समृद्ध शब्द-सूची मिलती है । दार्शनिक व अन्यान्य शास्त्रविद् उसे जन सुलभ बनाएँ तो एकात्मकता और विकास दोनों का द्वार खुल जाता है । आचार्य हेमचंद्र ने देशी नाममाला बनाई । उसका उद्देश्य यही था कि विभिन्न देशों के व्याकरण सिद्ध- प्रमूख शब्दों का संग्रह किया जाय । देशी शब्द की व्याख्या भी यही की है —

"देश विसेस पसिद्धीई, भण्णमाणा अणंतया हुंति
तम्हा अणाई पाइआ, पयइ भासा विसेसओ देसी"

आज हिंदी को भी संभवतः ऐसे शब्दकोश की अपेक्षा है । अभी-अभी एक सर्व-भाषा-कोश प्रकाशित हुआ है । परंतु वह भिन्न उद्देश्य की पूर्ति करता है । उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों की तुलनात्मक जानकारी मिल सकती है पर हिंदी की समृद्धि में विशेष योग नहीं मिल सकता । हिंदी को ऐसे शब्दकोश की अपेक्षा है, जिसमें प्राचीन साहित्य व प्रांतीय भाषाओं के उन शब्दों का संग्रह हो, जिनकी तुलना करने वाले शब्द अभी हिंदी में प्रयुक्त नहीं हैं और जिनके अभाव में उसकी वाचक-शक्ति अभी अपूर्व है।

जीव-विज्ञान, पुद्गल या परमाणु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, मनोविज्ञान, भूगर्भ, रसायन-शास्त्र, वास्तु-कला आदि विभिन्न शाखाओं की पर्याप्त शब्द-संपदा होने पर ही हिंदी प्रदान का माध्यम बन सकती हैं । आज तो हिंदी के शब्दकोशों में 'पोतज' जैसा साधारण शब्द नहीं मिलता है । जीव-विज्ञान के विद्यार्थी को उससे कितनी निराशा होती है ? जीव-शास्त्र के अनुसार जन्म की विविध प्रक्रियाएँ हैं । उनमें एक प्रक्रिया का नाम 'पोतज' है । जो जीव न अंडे से उत्पन्न होते हैं और न जरायु-वेष्टित होते हैं, वे 'पोतज' कहलाते हैं । व्हेल आदि मछलियाँ अंडज नहीं होती । वे सीधी बच्चे के रूप में ही उत्पन्न होती है । हिंदी में उन्हें 'पोतज मत्स्य' कहा जा सकता है ।

भारत में पहले 'कुत्रिकापण' नाम की दूकानें होती थी । उनमें तीन पृथ्वियों में प्राप्य सर्व वस्तुओं का संग्रह होता था । सम्राट श्रेणिक के समय राजगृह में 'कुत्रिकापण' था । उसी समय चंड प्रद्योत की राजधानी उज्जयिनी में नौ 'कुत्रिकापण' थे । यह जनरल स्टोर्स का पर्याय शब्द है । इसका प्राकृत रूप 'कुत्तिपावण' है । इसी प्रकार विविध वाणिज्यों के संग्राहक शब्द भी बहुत उपयोगी हैं । उदाहरण रूप में—

अंगार-कर्म—कोयले बनाने, कुंभार, लोहार, सुनार, भड़भूंजे, ईंट पकाने, चूना बनाने आदि का व्यापार ।

वन-कर्म—पत्र, फल, काष्ठ, लकड़ी, धान्य आदि वस्तुओं को वेचकर वृत्ति चलाना ।

स्फोट-कर्म—जलाशय-निर्माण, कृषिकरण, खनिज-कार्य, प्रस्तर-घटन, धान्य-पोषण, दलने आदि के द्वारा जीविका चलाना ।

शकट-कर्म—वाहन-निर्माण, वाहन-परिचालन, वाहन-विक्रिय आदि ।

भाटक-कर्म—अपने वाहनों से भाड़ा कमाना, मकान भाड़े देना आदि ।

ये ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं, जिनसे न केवल हिंदी की शाब्दिक समृद्धि होती है अपितु प्राचीन भारत के जीवन-क्रम का परिचय भी मिलता है । इनके आधार पर नए शब्दों की योजना भी सहज हो जाती है । बिजली के उत्पादन और वितरण को 'विद्युत्कर्म' कहा जा सकता है । बिजली घर में जो अर्थाभिव्यक्ति नहीं है, वह 'विद्युत्कर्मांत' में है ।

हिंदी के शब्दकोशों में "एक प्रकार का पौधा, एक प्रकार का जंतु, एक प्रकार का आसन"—यह पद्धति नहीं होनी चाहिए । इसके लिए अन्वेषण स्वयं प्राप्त होता है । वैदिक और बौद्य साहित्य के शब्द फिर भी कुछ प्रचलित बने हैं । किंतु जैन-साहित्य लगभग अस्पष्ट सा रहा है । उसमें जीव-विज्ञान, पुद्गल-विज्ञान, मनो-विज्ञान आदि विभिन्न शाखाओं की अकल्पित शब्द-सामग्री भरी पड़ी है । शब्दकोश या वर्गीय शब्दकोश बनाने वालों को इस विषय से अपरिचित नहीं रहना चाहिए । हम अतीत के संपर्क से बहुत लाभान्वित हो सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्नाटक में हिंदी का वर्तमान स्थान

सोमशेखर 'सोम'

जब हम कर्नाटक में हिंदी की प्रगति पर विचार करते हैं, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिंदी की प्रगति की कर्नाटक में जितनी अपेक्षा थी, उससे बढ़कर हुई है––इसमें कोई संदेह नहीं है। कर्नाटक भारत का एक प्रबुद्ध एवं समृद्धशाली प्रांत है। कर्नाटक में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार के लिए काम करने वाली संस्थाएँ दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा, मद्रास; राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग आदि प्रमुख हैं, जो कई वर्षों से निःस्वार्थ भावना से निरंतर कार्य कर रही हैं।

दक्षिण में प्रमुखतः चार भाषाएँ बोली एवं लिखी जाती हैं जिनका साहित्य भी उन्नतर है। कुछ पंडितों का कहना है कि तमिल, मलियालम, तेलगु एवं कन्नड़ भाषाओं में तमिल का साहित्य प्राचीन एवं समृद्ध साहित्य है, किंतु कर्नाटक की प्रादेशिक भाषा कन्नड़ का साहित्य, चौथी सदी से भी पूर्व का है। ऐसी स्थिति में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कन्नड़ भाषा संस्कृत के कितनी निकट है। अस्तु !

प्रश्न यह है कि कर्नाटक में हिंदी का प्रचार कैसे हुआ ? पिछले 15–20 वर्षों का–कर्नाटक का– इतिहास देखने पर पता चलता है कि दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा का हाथ प्रचार कार्य में अधिक है। इस सभा की परीक्षाएँ कर्नाटक के कोने-कोने में चलाई जाती हैं एवं छात्र तथा छात्राएँ बड़े चाव से हिंदी का अध्ययन करते हैं। धारवाड़ में इस सभा की प्रांतीय सभा स्थित है, जो कर्नाटक के हिंदी परीक्षा-केन्द्रों की देखभाल करती है। इस सभा की परीक्षाएँ सरल हैं। इस सभा से प्रकाशित पुस्तकों में उर्दू-शब्दों का प्रयोग अधिक होता है, जब कि वर्धा समिति से प्रकाशित पुस्तकों में संस्कृत शब्दों के प्रयोग अधिक हैं, जो शुद्ध एवं परिमार्जित हिंदी मानी जाती है 1937 में महात्मा गांधी ने जिस हिंदी की नींव डाली, उसी का प्रयोग कर्नाटक में हो रहा है। यह बात अलग है कि कर्नाटक में हिंदी का अध्ययन बड़ी गहराई के साथ करने वाले विरले ही हैं। बुरा न मानें, तो यहाँ तक कहूँगा कि आजकल कर्नाटक में हिंदी परीक्षाएँ जो हो रही हैं, वे केवल प्रमाण-पत्र पाने तथा देने के लिए हो रही हैं। परीक्षा-केंद्रों में अनुशासन नहीं है। प्रचारक तथा केंद्र-व्यवस्थापकों का ध्यान इस ओर न जाना ही इसका एकमात्र एवं मुख्य कारण बना हुआ है। वर्धा-समिति की प्रांतीय समिति हुबली में है, जो सन् 1947 से कार्य कर रही है तथा गत सात वर्षों से इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
संचालक श्री वासुदेव चिंतामणि बस्ती हैं, जो हिंदी की सेवा बड़ी निष्ठा से कर रहे हैं। दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा के परीक्षा-कद्रों के अपेक्षाकृत वर्धा-समिति के परीक्षा-केंद्र कम हैं, किंतु जहाँ हैं वहाँ परीक्षाएँ बड़े अनुशासन से चलती हैं। इस संबंध में मेरा अपना मत है कि छोटे-छोटे गांवों में परीक्षा-केंद्र न हों तथा जहाँ हों वे कालेजों या हाईस्कूलों में हों। योग्य तथा निःस्वार्थ अध्यापक, प्राध्यापक ही प्रचारक एवं केंद्र-व्यवस्थापक हों।

यह रही बंबई-कर्नाटक की स्थिति। हैदराबाद-कर्नाटक की ओर भी हिंदी का प्रचार एवं प्रसार खूब हो रहा है। वहाँ हैदराबाद हिंदी-प्रचार-सभा कार्य करती है। इस समिति की परीक्षाएँ ही इस तरफ़ अधिक चलती हैं। हैदराबाद-कर्नाटक भाग में उर्दू का प्रभाव अधिक है। हैदराबाद के इस प्रदेश से निकट होने के कारण उर्दू तथा दक्खिन हिंदी का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। 'मेरेकु', 'तेरेकु', 'हमारेकु' आदि सर्वनामों का प्रचलन इस तरफ़ अधिक है, जब कि बंबई-कर्नाटक की तरफ़ ऐसे प्रयोग अपेक्षाकृत कम देखने में आते हैं। मुझ एक ऐसे हिंदी-प्राध्यापक से पत्र प्राप्त हुआ था, जिसमें व्याकरण-संबंधी अनेक त्रुटियाँ थीं। हो सकता है इनका अध्ययन हैदराबाद में हुआ हो तथा वहाँ की बोली का प्रभाव पड़ा हो। इस पत्र का यहाँ उल्लेख करने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि हैदराबाद-कर्नाटक में अध्ययन करने वाले छात्र-छात्राओं पर अधिकतर प्रभाव दक्खिन हिंदी का ही है। निष्कर्ष यह है कि व्याकरण-सम्मत वाक्यों के प्रयोग नहीं हो पाते, जैसे 'मेरेकु हिंदी नहीं आती', 'मैं कहा हूँ', 'मैं उनको यहाँ से जाने कु कहा हूँ' आदि के प्रयोग बहुत होते हैं। मेरी दृष्टि में ऐसी त्रुटियाँ होने के कारण यहाँ कार्यरत अध्यापक-वर्गों का ठीक ढंग से हिंदी न जानना, व्याकरण का अध्ययन न करना, केवल परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के लिए हिंदी का अध्ययन करना अथवा हिंदी-ग्रंथालयों की कमी आदि प्रतीत होते हैं। इन त्रुटियों के निवारण के लिए केंद्रीय सरकार ने कर्नाटक में अधिक काम किया है। फिलहाल प्रति जिले में एक-दो स्थान पर निःशुल्क हिंदी-वर्ग चला रही है। जिससे सरकार से संबंधित कार्यालयों के कार्यकर्त्ता एवं कर्मचारियों को हिंदी सीखने में बड़ी सुविधा हो रही है। ऐसे निःशुल्क हिंदी-वर्ग में अध्यापन-कार्य के लिए योग्य हिंदी-अध्यापकों की नियुक्तियाँ हुई हैं। यदि यह कार्य ठीक चला तो इसमें संदेह नहीं कि कर्नाटक के प्रत्येक घर-घर में हिंदी का उपयोग शीघ्रातिशीघ्र हो पाएगा।

कर्नाटक विश्वविद्यालय में हिंदी का स्थान

कर्नाटक में दो विश्वविद्यालय हैं–(1) मैसूर विश्वविद्यालय और (2) कर्नाटक विश्वविद्यालय। यद्यपि कर्नाटक विश्वविद्यालय से भी पूर्व मैसूर विश्वविद्यालय प्रारंभ हुआ है, तो भी कर्नाटक विश्वविद्यालय में हिंदी को बहुत बड़ा स्थान मिला है। गत वर्ष से एम० ए० के लिए भी पढ़ाई शुरू हो गई है। पी० यू० सी० कला (Arts), विज्ञान, (Science) तथा कामर्स (Commerce) तथा इंटर कामर्स (Inter Commerce) विद्यार्थियों के लिए 'हिंदी आवश्यक विषय' है। कर्नाटक विश्वविद्यालय में हिंदी-विभाग अपने उन्नति पथ पर अग्रसर है। इसी वर्ष से पी० एच० डी० की पढ़ाई के लिए भी व्यवस्था की गई है। किंतु मैसूर विश्वविद्यालय में हिंदी आवश्यक विषय नहीं है, मैट्रिक में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…जब कि उत्तर कर्नाटक में मैट्रिक वालों के लिए हिंदी आवश्यक विषय है। इसमें संदेह नहीं कि कर्नाटक विश्वविद्यालय अवश्य ही हिंदी के प्रचार एवं प्रसार-…में अपना हाथ बटाएगा। फ़िलहाल इन उभय विश्वविद्यालयों में हिंदी-माध्यम …द्वारा अध्ययन नहीं हो पाएगा, परंतु कर्नाटक विश्वविद्यालय में छात्र चाहे तो हिंदी …म द्वारा परीक्षा में उत्तर लिख सकता है। इतनी सुविधा कर्नाटक विश्व-विद्यालय ने दे रखी है।

ग्रामांतर विद्या-निलय में हिंदी का स्थान

यह सर्वविदित है कि भारत सरकार ने विद्या की प्रगति के लिए और एक कदम …उठाया है अपने नेतृत्व में अब तक 13 ग्रामांतर विद्या-निलय खोले हैं, जो …के प्रत्येक प्रांत में एक दो हैं तथा ग्रामीण विषयों-संबंधी शिक्षा देते हैं। ऐसा ही …विद्यालय कर्नाटक में भी है। यह धारवाड़ जिले के हनुमन भट्टी नामक ग्राम में …है, जो पूर्ण ग्रामीण प्रदेश है तथा इस विद्यालय के लिए उपयुक्त स्थान है। …विद्यालय श्री के० एफ० पाटील भूतपूर्व मिनिस्टर फ़ॉर फोरस्ट्स, मैसूर सरकार …नेतृत्व में कार्य कर रहा है। केंद्रीय सरकार ने ऐसे विद्यालयों में पढ़ने वाले …द्यार्थियों के लिए हिंदी को आवश्यक विषय बना रखा है। प्रिपेटरी कोर्स के …प्रादेशिक भाषा कन्नड़ के साथ हिंदी विषय लेना आवश्यक है, जिसके लिए 50 …नियत हैं। इस प्रकार यहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए हिंदी का अध्ययन …वश्यक है और इस प्रकार हिंदी की प्रगति हो रही है।

कुछ गणमान्य व्यक्ति यह कहते नज़र आते हैं कि हिंदी का विरोध दक्षिण में ही …है, किंतु यह धारणा ग़लत है। यह मेरा दावा है कि दक्षिण वाले जितनी शुद्ध, …, सरस एवं प्रवाहमयी हिंदी लिखते हैं, उतने उत्तर वाले नहीं। इसके लिए …रे दक्षिण के डॉ० रांगेय राघव एवं श्री मोटूरी सत्यनारायण प्रज्ज्वलित उदाहरण हैं।

शोध-प्रबंध

हिंदी में शोध-प्रबंध लिखने वालों की संख्या कर्नाटक में बहुत कम है। मैसूर विश्व-विद्यालय में हिंदी-विभाग के प्राध्यापक श्री हिरण्मय का नाम यहाँ उल्लेखनीय है, …न्होंने हिंदी एवं कन्नड़-भक्ति-आंदोलन के तुलनात्मक अध्ययन पर काशी हिंदू विश्वविद्यालय से पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त की है। यह शोध-प्रबंध विषय …की दृष्टि से परिपूर्ण है। कर्नाटक में ऐसा तुलनात्मक अध्ययन हिंदी में अब तक प्रथम …व अंतिम है। कन्नड़ तथा हिंदी-भक्ति-साहित्य का परिचय प्रस्तुत ग्रंथ से हो पाता है। लिंगराज कालेज बेलगांव के हिंदी-विभाग के प्राध्यापक श्री बलवंत लक्ष्मण …तिमिरे का शोध-प्रबंध "हिंदी गद्य के विविध रूपों के उद्भव तथा विकास" यहाँ उल्लेखनीय है। श्री अरविंद कुलश्रेष्ठ के शब्दों में "उन्होंने निबंध-साहित्य के उद्भव तथा विकास पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं"। कर्नाटक में हिंदी का शोध-कार्य …बाल्यावस्था में ही है। मेरा "कवि श्री निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" पर शोध-कार्य चल रहा है। अनुमान है यह कार्य चार-पाँच वर्षों के भीतर ही समाप्त हो जाएगा। कर्नाटक विश्वविद्यालय में शोध-कार्य करने के लिए निर्देशक की नियुक्ति …अभी तक नहीं हो पाई है। इस अभाव की पूर्ति भी शीघ्र हो जाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अलावा आगरा में स्थित केंद्रीय हिंदी शिक्षालय में पढ़ने के लिए मैसूर सरकार अध्यापकों को भेज चुकी है तथा भेज रही है।

इस प्रकार कर्नाटक में हिंदी की प्रगति पल-प्रतिपल बढ़ती जा रही है। यदि यह प्रगति नैतिक रीति से पूर्ण हो, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ वर्षों के भीतर ही कर्नाटक में घर-घर में हिंदी बोली जाएगी एवं लिखी जाएगी तथा उत्तर वालों की जो अब तक ग़लत धारणा बनी हुई है कि हिंदी का विरोध दक्षिण में ही अधिक है— मिट जाएगी तथा "एक हृदय हो भारत जननी" वाला सिद्धांत शीघ्र ही सफल एवं पूर्ण होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रभाषा : कुछ सुझाव

शिखर चंद जैन

आज प्रगति का युग है । प्रगति में सबसे बड़ी देन विज्ञान की है । इस वैज्ञानिक प्रगति के कारण प्रगति के साथ-साथ हमारे जीवन की, व्यक्ति की एवं आध्यात्म की मान्यताएँ विकसित किंवा बदलती जा रही हैं । पुराने समय में पड़ोसी का अर्थ जहाँ हम पर पैदल अथवा बैलगाड़ी से चल कर जा सकें कहा जाता था परंतु आज तो चंद मिनटों में मनुष्य अनंत की तारिकाओं से सानिध्य प्राप्त करने के प्रयास में सफलता प्राप्त कर रहा है और इसीलिए हमारे पड़ोसी चंद्र, शुक्र, मंगल आदि हो गए हैं । परंतु आश्चर्य का विषय है कि जहाँ इतना परिवर्तन है वहीं अपरिवर्तनशीलता भी । उन्मुक्त वातावरण के संपर्क में आकर व्यक्ति का मस्तिष्क अपनी पार्शिवक परिधियों से ऊपर उठ जाता है परंतु दुर्भाग्य का विषय है कि हम अंतर्राष्ट्रीय तो क्या राष्ट्रीय स्तर पर भी अपने स्थानीय किंवा क्षेत्रीय स्वार्थों को तिलांजलि देने के लिए प्रस्तुत: नहीं हैं । राजनैतिक दलों ने भी व्यक्ति की इस दर्बलता से पूरा लाभ उठाया है और भिन्न-भिन्न, नानाप्रकार के वक्तव्यों से उनका मनोवैज्ञानिक चिंतन इतना रंग दिया है कि वे उससे अपने को छुड़ा नहीं पा रहे हैं । आज के राजनैतिक दलों ने भाषा के क्षेत्र में दो रंगमंच तैयार किए हैं जहाँ पर अत्यंत भावावेश में आकर वे कहते हैं कि अँग्रेज़ी भाषा अंतर्राष्ट्रीय भाषा का स्थान ग्रहण कर रही है इसलिए वह मातृभाषा से ऊपर स्थान ग्रहण करेगी, वहाँ दूसरी ओर मातृभाषा के अंतर्गत जो उपभाषाएँ या बोलियाँ प्रचलित हैं उनको प्रश्रय देकर मातृभाषा के रूप में स्थान देने का प्रयास किया जा रहा है । साथ ही साथ कुछ हिंदी भाषा-भाषी इतने जोश-खरोश में आ गए हैं कि वे हिंदी भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनाने के उपकरणों के संबंध में अपना सहयोग देने के लिए तत्पर नहीं हैं ।

हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त करती आई है आज से नहीं परंतु भारत के इतिहास से और यदि देखा जाए कि इतना बड़ा स्थान इस भाषा ने क्यों प्राप्त किया तो हम पाएँगे कि हिंदी विशाल हृदया थी और जिस युग में जिस भाषा ने राष्ट्रीय स्थान लिया उस भाषा में तथा अपनी उपमातृभाषा (बोलियों) में साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं को माँजा । साथ ही साथ उन्होंने और दूसरी बोलियों में अपनी वाणी का प्रचार किया है । हिंदी सधुक्कड़ी भाषा कही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाती है और उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक हिंदी भाषा के माध्यम से ही धर्म-प्रचार किया गया। जिस समय राष्ट्रभाषा को वैज्ञानिक रूप देने का प्रश्न आया उस समय भी हिंदी का विरोध यदि किसी भाषा ने किया तो वह थी उर्दू और वह भी राजनैतिक एवं धार्मिक कारणों से।

अतएव यदि हिंदी को राष्ट्रभाषा का वैज्ञानिक रूप ही नहीं, राज्य भाषा का रूप ही नहीं वरन् वास्तविक प्रजातांत्रिक रूप देना हो तो उसमें निम्नलिखित सुझावों की मीमांसा कर विद्वत् मंडली हिंदी के विकास में सहयोग दे :—

(1) जहाँ राष्ट्रभाषा हमारे राष्ट्रीय भाव विनिमय का साधन है उसी प्रकार एक हमारा राष्ट्रीय स्तर होना चाहिए जिस राष्ट्रीय स्तर पर हम राष्ट्रीय भावों को ग्रहण करें और वहाँ पर क्षेत्रीय भावों को स्थान न दें। उदाहरण के लिए अब जहाँ तक (Numericals) का प्रश्न है वहाँ पर अभी हाल के केंद्रीय बोर्ड, माध्यमिक शिक्षा Central Board of Secondary Education; तथा विश्वाविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) एवं शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन (Ministers of Education Conference) में सर्व सम्मति से निर्णय किया गया कि हम सब अंतर्राष्ट्रीय अंको (Numerals) का व्यवहार करें उसी प्रकार क्या यह संभव नहीं है कि हम एक राष्ट्रीय स्तर निर्मित करें जहाँ पर उच्चशिक्षा तथा विज्ञान के लिए एक राष्ट्रीय शब्दावली तैयार करें। जिसका अभाव केवल हिंदी भाषा में ही नहीं परंतु सभी प्रांतीय भाषाओं में है। उच्च शिक्षा एवं विज्ञान का अध्ययन मातृभाषा किंवा राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से तभी सफल हो सकेगा जब हम ऐसे राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनाएँ। जब तक हम इस दृष्टिकोण को न अपनाएँगे तब तक आंग्ल भाषा के राजत्व को न स्वीकार करते हुए भी वह हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू पर हावी रहेगी और हमारी समस्या का भी समाधान नहीं हो सकेगा। हम कपोल कल्पित कल्पनाएँ चाहे जितनी कर लें, चाहे जितने रंग-मंच से भाषण क्यों न दे दें चाहे जितनी शपथ हम क्यों न खा लें हम अपने राष्ट्रीय स्वप्न को कभी साकार नहीं कर सकेंगे। केंद्रीय हिंदी निदेशालय का मैं विशेषतया ध्यान इधर आकर्षित करूँगा कि जो शब्दावली तैयार की गई है उसका संशोधन एवं परिवर्धन एक राष्ट्रीय मंडली को दे दिया जाए जिसमें प्रत्येक स्वीकृत भाषा का प्रतिनिधित्व हो और वे सर्वसम्मति से एक शब्दावली प्रस्तुत करें जो सर्व भाषाओं के लिए मान्य हो। अवैधानिक रूप से संस्कृत भाषा राष्ट्रीय शब्दावली की पूर्ति करती चली आ रही है। यही कारण है कि आज भारतीय भाषाओं में शब्दावली की इतनी एकरूपता है। सामान्य उच्चारणिक विभिन्नताओं को छोड़ कर, कुछ क्रियापदों के अंतर को छोड़ कर तथा लिपि की विभिन्नता के अतिरिक्त और कोई विशेष अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः राष्ट्रीय शब्दावली के निर्माण में संस्कृत से हमें अधिक सहायता मिल सकती है।

(2) राष्ट्रीय भाषा राष्ट्र का यथार्थ प्रतिनिधित्व तभी कर सकेगी जब उसमें राष्ट्रीय साहित्य का समावेश हो। आज हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उन सभी साहित्यों में संचित वाणियों को मूल रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा अनूदित रूप में स्थान देना पड़ेगा साथ ही साथ प्रत्येक अहिंदी भाषा-भाषी साहित्यिक लेखक एवं वैज्ञानिक से अनुरोध किया जाए कि वे अपनी कृतियाँ अपनी मातृभाषा में या अंग्रेज़ी में नहीं, वरन् राष्ट्रभाषा हिंदी में भी प्रकाशित करें। आज राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी केवल हिंदी भाषियों की ही नहीं वरन् 43 कोटि देवताओं की भाषा है और यही अपनत्व हमारे राष्ट्रीय एकता के विकास का साधन होगा । गंगा-यमुना के संगम पर गंगा और यमुना ने अपना अपना अस्तित्व निमज्जित कर दिया है उस पवित्र धारा में जो गंगा जैसे पवित्र नाम से संबोधित होती है उसी प्रकार राष्ट्रीय एकता के पुण्य तीर्थ पर सभी देशीय भाषाओं की धारा प्रवाहित होकर राष्ट्र-भाषा रूपी संगम पर अपने व्यक्तित्व को डुबो दे जिससे कि जो पवित्र धारा इस समन्वय से प्रवाहित हो वह आंतरिक द्वेषों के कलुषरूपी पाप को अपनी पतित पावनी धारा से धो दे ।

(3) ब्रिटिश कालीन परतंत्रता के युग में आंग्लभाषा ने अपनी प्रधानता स्थापित करने के लिए देशीय भाषाओं को हेय कर दिया था एवं उनकी सक्षमता आज भी कुंठित दिखाई पड़ती है । आज स्वतंत्रता के युग में सभी देशीय भाषाओं के नवपल्लव विकसित हो रहे हैं और हमें सतर्क रहना चाहिए कि हिंदी भाषा अँग्रेज़ी भाषा की तरह तुषारापात न करे जिससे कि वे कोपलें विकास से वंचित हो जाएँ । इसके विपरीत हिंदी उनके विकास में अधिक योगदान करे जिससे कि उनका विकास पूर्ण हो सके और उन्हीं के विकास का योगफल हिंदी हो । व्यक्ति की पूर्णता के बिना ब्रह्म की पूर्णता असंभव है उसी प्रकार देशीय भाषा के पूर्ण विकास के बिना राष्ट्रीय भाषा का विकास अधूरा है ।

(4) आंग्ल भाषा राष्ट्रभाषा का स्थान तो लाखों प्रलोभनों के उपरांत भी न ग्रहण कर सकी । वह केवल कुछ सीमित वर्ग तक अपना प्रवेश कर सकी है । अतएव मेरा सुझाव है कि किसी भी प्रकार से कोई दबाव या प्रलोभन राज्य भाषा के सिखलाने का न किया जाए अन्यथा यह एक घृणा उत्पन्न कर देगा । राज्य-भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग सर्व प्रथम हिंदी भाषा-भाषी अंचलों में हो एवं अहिंदी भाषा-भाषी अंचलों में वहाँ की स्थानीय भाषा राज्य भाषा का स्थान ग्रहण करे और जब हमारा सब वैधानिक कार्य इन भाषाओं के माध्यम से होने लगे और आंग्ल भाषा को इस अधिकार से वंचित किया जा सके उस समय राष्ट्रीय स्तर पर अंतर्स्थानीय वैज्ञानिक कार्यों के लिए राष्ट्रभाषा हिंदी का राज्य भाषा के मृदुल थपेड़ों से पालित हो । अन्यथा जितनी भी घृणा लोगों के हृदय में आंग्ल भाषा के प्रति थी और राजनैतिक आन्दोलन में जिनका विकास अंतरित था वह सब घृणा स्थानांतरित हो जाएगी यदि हिंदी को उसी रूप में अंग्रेज़ी के स्थान पर राज्य भाषा का रूप दिया गया ।

(5) प्राय: यह प्रश्न उठता है कि अहिंदी भाषा-भाषी प्रदेश के बालक जब हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में सीखें तो हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश के बालक क्यों न एक दूसरी देशीय भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सीखें । यदि यह बदले की भावना (Barter System) पर/आधारित हो तो हेय है अन्यथा आपसी प्रेम के कारण केवल एक ही क्यों जितनी भी भाषाएँ द्वितीय भाषा के रूप में हमारे बालक सीख सकें और मौलिक रूप में उन भाषाओं के पियूष का पान कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सकें उतना ही हमारे बालकों का मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सामंजस्य पूर्ण व्यक्तित्व विकसित हो सकेगा। साहित्य हमारे दुःख सुख के अनुभवों की सुष्ठ शैली में निधि है। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि जहाँ भारत में अंग्रेज़ी को द्वितीय भाषा के रूप में सिखलाने के लिए इंस्टिट्यूट आँफ इंग्लिश टीचिंग (Institute of English Teaching) हैं उसी प्रकार प्रत्यक भारतीय भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सिखलाने के लिए गवेषणा केंद्र स्थापित किए जाएँ। जिससे भारतीय भाषाओं को द्वितीय भाषा के रूप में सिखलाने में कम प्रयास एवं कम समय लगे।

(6) आज देशी भाषाओं की जननी ही हमारे सामने एक समस्या के रूप में अवतीर्ण हुई है। माता एवं पुत्रियों का एक निगूढ़ प्रेम है और उनमें प्रतिद्वंद्विता असंभावित है। प्रत्येक माता अपनी पुत्री को अपने से अधिक पल्लवित होते देखना चाहती है और उसके विकास में ही माता को आनंद मिलता है। संस्कृत भाषा शताब्दियों से ही नहीं सहस्रों वर्षों से विकसित होकर अपने को स्थानीय देशीय भाषाओं में आबद्ध किए हुए हैं। छोटा सा बीज विशाल वृक्ष में परिणत होकर अपने व्यक्तित्व को प्रत्यक पत्र में पा रहा है। पत्र का परिचय बीज है देशीय भाषाओं का परिचय संस्कृत है और उसी परिचय के रूप में यदि संस्कृत माता का स्थान निर्धारित हो तो यह संभव है अन्यथा केवल भावावेश में आकर संस्कृत को राष्ट्रभाषा का स्थान देने का प्रयास माता का पुत्रियों के प्रति विद्वेष इंगित करना है। संस्कृत भाषा का अध्ययन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होना चाहिए। बालकों के लिए उनकी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा के अध्ययन के समय संस्कृत का ज्ञान देना वांछनीय है और संस्कृत माता बन कर दोनों पुत्रियों को पालित करेगी चाहे उनमें विभिन्नताएं क्यों न हों।

निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि यदि हमारा राष्ट्रीय, जातीय, आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक ऐक्य स्थापित हो सके तो भाषा की समस्या कोई स्थान नहीं रखती। भाषा हमारी मूकवाणी की अभिव्यक्ति है और एकता के लिए हमने अपने दुःख और सुख को समझने के लिए इंगितों से भाषा को जन्म दिया है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' मूल तत्त्व है। भाषा की राष्ट्रीय एकता उसकी कसौटी है। दुःख का विषय है कि हम एक ही संस्कार में पालित हैं, एक ही आध्यात्मिक धारा हमारी धमनियों में प्रवाहित हो रही है, एक ही नैतिकता का हमारे पास बल है फिर भी शैतान के चक्र में आकर आज भाई-भाई के खून का प्यासा है और भाषा संबंधी नारे लगा रहा है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- ताज (कविता) सुमित्रानंदन पंत

- आँसू (कविता) जयशंकर प्रसाद

- पिशाच-संस्कृति (कविता) कैलाश बाजपयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताज

सुमित्रानंदन पंत

गुजराती अनुवादक: रामचंद्र देसाई

हाय, मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन,
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन,
स्फटिक सौध म हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वास-विहीन रहे जीवित जन।

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत औंर छाया से रति ?
प्रेम अर्चना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर कंगाल, भरें जीवन का प्रांगण ?

शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव का,
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?
युग युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर,
मानव के मोहांध हृदय में किए हुए घर।

भूल गए हम जीवन का संदेश अनश्वर
मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

તાજ

સુમિત્રાનંદન પંત

ગુજરાતી અનુવાદ—રામચંદ્ર દેસાઈ

અરે! મૃત્યુ કેરું કેવું આ તે અમર અપાર્થિવ પૂજન!
જ્યાં વિષણ્ણ અને નિર્જીવ બન્યાં છે જગનાં જીવન,
સ્ફટિક મઠયા આ શારે શૃંગાર મૃત્યુનાં શોભન,
નગ્ન ક્ષુધાતુર વાસ-વિહીન જ્યાં જીવી રહયાં આ જગજન!

માનવ, આવી તે શી જીવન પ્રતિ વિરક્તિ!
આત્મા કેરું અપમાન, પ્રેત અને પડછાયા કેવી શી પ્રીતિ!
પ્રેમ-અર્ચના આ શી! મૃત્થુ કેરાં શાં આ બહુમાન!
બનાવી કૈંકને કંગાલ ભર્યાં શાં જીવન-પ્રાંગણ!

શબને દીધાં રૂપ, રંગ અને આદર માનવનાં
માનવને આપણ કરતાં કુત્સિત ચિત્ર બનાવ્યાં શબનાં?
યુગયુગ કેરા મૃત આદર્શોના તાજ મનોહર
માનવ કેરા મોહાંધ હૃદે કીધા શા આ વાસ?

ભૂલી ગયાં ત્અમે, જીવનના સંદેશ અનશ્વર,
મૃતકના હે મૃતક, જીવિતના હે ઈશ્વર!

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँसू

जयशंकर प्रसाद

गुजराती अनुवाद: कृष्णा चतुर्वेदी

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

मानस सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें
कल-कल ध्वनि से हैं कहतीं
कुछ विस्मृत बीती बातें ?

बस गई एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न है केवल
मेरे उस महामिलन के।

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल-चलकर
करती है काम अनिल का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'આંસૂ'

જયશંકર પ્રસાદ

ગુજરાતી અનુવાદ—કૃષ્ણા ચતુર્વેદી

આ વેદનાવ્યથિત હૃદયમાં,
અવ વિકલ રાગિણી વાજે,
શું હાહાકાર સ્વરોથી,
કાંઈ અસીમ વેદના ગાજે.

માનસસાગરના તટપર,
શું લોલલહર આઘાતો,
કલકલધ્વનિથી શું કહે છે,
રે ગઈગૂજરી કંઈ વાતો.

છે વસી ગૈ એક વસ્તી,
સ્મૃતિઓની કૈં હૃદયમાં,
નક્ષત્રલોક છે પ્રસર્યો,
મણે ઉરનીલ નિલયમાં.

આ સર્વ સ્ફુલિંગો તો છે,
મુજ જવાલાપૂર્ણ જલનના,
છે શેષ ચિહ્ન કૈં કેવળ,
મારા તે મહામિલનના.

શીતલ જવાલા સળગંતી,
ઈંધણ થાયે દગજલનું,
આ વ્યર્થ શ્વાસ વહી જૈ,
સાધે છે કાર્ય અનિલનું.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाड़वज्वाला सोती थी
इस प्रणय-सिंधु के तल में
प्यासी मछली-सी आँखें
थीं विकल रूप के जल में।

बुलबुले सिंधु के फूटे
नक्षत्रमालिका टूटी
नभ-मुक्त-कुंतला धरणी
दिखलाई देती लूटी।

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिंचन।
बेसुध चैतन्य हमारा।

मादक थी मोह मयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

सुख आहत शांत उमंगें
बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है
रोती करुणा कोने में।

चातक की चकित पुकारें
श्यामा-ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र-कथा की
टुकड़ी आँसू से गीली।

बेसुध जो अपने सुख से
जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
વડવાગ્નિઓ સૂતા શા,
આ પ્રણયસિંધુના તલમાં,
તૃષિત મીન શાં નયનો,
થયાં વિકલરૂપના જલમાં.

બુદબુદા સિંધુના ફૂટે,
નક્ષત્રમાલિકા તૂટી,
નભમુકત કુન્તલા ધરણી,
દેખાય શું હોયે લૂંટી,

આ વિકલવેદના લૈને,
કોણે છેડયું સુખ મારૂં ?
આ એક અબોધ અકિંચન,
મૂર્છિત ચૈતન્ય અમારૂં.

હતી મોહમયી ને માદક,
એ મનરંજનની ક્રીડા,
અવ હૃદય હલાવી નાખે રે,
તે મધુર પ્રેમની પીડા.

સૂખ ઘાયલ શાંત ઉમંગો,
નિષ્ફલ શ્વાસો વ્હેવામાં,
આ હૃદય સમાધિ થયું શું,
રડતી કરૂણા ખૂણામાં.

ચાતકના ચકિત પુકારો,
કોયલ જુ રસ ઉદ્ગારો,
પણ મારી કરૂણ કથાના,
રે શોકાર્દ્ર સહુ ટૂકડાઓ.

મૂર્છિત જે નિજના સુખમાં,
જેની છે સુપ્ત વ્યથાઓ,
નવરાશ ભલા છે કોને,
સુણવા આ કરૂણ કથાઓ. ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जीवन की जटिल समस्या
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है बढ़ी जटा-सी कैसी
उड़ती है धूल हृदय में
किसकी विभूति है ऐसी ।

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई ।

रो-रो कर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोंचते सुनते
करते जानी-अनजानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

જીવનની જટિલ સમસ્યા,
છે વધી જટા શી કેવી ?
ઉડે જે ધૂલિ હૃદયમાં,
કોની વિભૂતિ રે એવી ?

જે ઘનીભૂત પીડા હતી,
મસ્તકમાં સ્મૃતિ શી છાઈ,
દુર્દિનમાં આંસુ બની,
તે આજ વરસવા આવી.

રડતો ને ડૂસકાં ભરતો,
કથતો હું કરૂણ કથાને,
તમે સુમનપીંખી તોડતાં,
સુણતા જાણિઅણજાણે.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशाच-संस्कृति

कैलाश बाजपेयी

गुजराती अनुवाद : मनमोहिनी

कितना अच्छा है, अब सभी झूठ बोलते हैं
कितना अच्छा है अब सभी घृणा करते हैं
अपरिचय के माध्यम से जुड़ते हैं
अपरिचित बिछडते हैं ।

कितना अच्छा है अब सब धोका देते हैं
अविश्वास करते हैं
कुएँ से निकल कर
कितना अच्छा है सब खाई में गिरते हैं ।

न कोई रोता है, न कोई हँसता है
कितना अच्छा है अब हर कोई हँसता है ।

कितना अच्छा है सब सिक्का पकड़ते हैं
भूखे कुत्तों की तरह लड़ते हैं ।

कितना अच्छा है सब काँटे उगाते हैं
एक ही अक्षर को क्रोध में गाते हैं ।

कितना अच्छा है सब परकीया करते हैं
सिर्फ़ 'आदमी' से डरते हैं ।

और चाहे कुछ भी नहीं दिया सभ्यता ने
कम से कम यह तो किया है :
सभी को बराबर अमानव बना दिया है ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

પિશાચ-સંસ્કૃતિ

કૈલાશ વાજપેયી

ગુજરાતી અનુવાદ—મનમોહિની

કેટલું સારૂં છે હવે સૌ જુઠું બોલે છે.
કેટલું સારૂં છે હવે સૌ ઘૃણા કરે છે.
અપરિચયના માધ્યમ થી જોડાય છે
અપરિચિત જૂદાં થાય છે.

કેટલું સારૂં છે હવે સૌ કપટ કરે છે.
અવિશ્વાસ કરે છે,
કુવા માંથી નીકળી ને
કેટલું સારૂં છે કે સૌ ખાડ માં પડે છે.

ના તો કોઈ રડે છે. ના તો કોઈ હસે છે.
કેટલુ સારૂં છે કે હવે સૌ બધાં ને ડસે છે.
કેટલુ સારૂં છે બધાં સિક્કાઓ ને વળગે છે.
ભૂખા કુતરાઓની જેમ ઝગડે છે.

કેટલુ સારૂં છે બધાં કાંટા વાવે છે.
એકજ અક્ષર ને ક્રોધે ભરી ગાયે છે.
કેટલુ સારૂં છે બધાં પરકીયા કરે છે.
માત્ર આદમી થીજ ડરે છે.

ભલે પછી કાંઈ ન દીધું સભ્યતાએ
ઓછાં માં ઓછું એટલુ તો કર્યું છે
બધાં ને બરાબર અમાનવ બનાવી દીધાં

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आडोसा

ना. सी. फडके

हिंदी अनु० : शरद मोझरकर

डब्याच्या खिडकीजवळची जागा मुद्दामच टाळून शालिनी दूर बसली होती, गंगाधरच्या रुंद पाठीचा आडोसा करून. परंतु डब्यांतल्या गर्दीत एकमेकांना खेटून बसलेल्या माणसांच्या अंगाखांद्यांच्या फटींतून खिडकीबाहेर नजर टाकली की प्लॅटफॉर्मवरचें मोठें घड्याळ तिला नेमकें दिसत होतें, आणि तें दिसतें असें एकदां माहित झाल्यामुळें शालिनीची नजर पुन्हां पुन्हां त्या घड्याळाकडे जात होती...एकेक घर खाली खाली ढळणारा मिनिटकाटा तिच्या दृष्टीस पडत होता...मनांतल्या मनांत ती गाडी सुटायला राहिलेला अवकाश मोजीत होती.... अठरा मिनिटें उरलीं. सतरा उरली. सोळा. पंधरा...एवढीं पंधरा मिनिटें सरलीं की गाडी शिटी फुकून हालणार होती. गंगाधराला आणि तिला घेऊन जाणार होती.... ज्या घराला ती कंटाळली होती तें घर कायमचें मागें पडणार होतें...जें कुठें आहे कसें आहे, याची तिला कल्पना नव्हती अशा नव्या घरांत--अफाट मुंबई शहरांतल्या कुठल्यातरी चाळींतल्या एका खोलींत—ती पाऊल टाकणार होती! ... त्याच्या आधीं अर्थातच तिचें आणि गंगाधरचें लग्न होणार होतें. एकदां तें झालें आणि गंगाधरचा संसार तिनें थाटला कीं आजपर्यंत तिनें जें दु:ख सोसलें, कष्ट काढले त्यांतून तिची सुटका होणार होती! . . .

परंतु खरोखरच सुटका होणार होती काय ?

कीं तो तिचा भ्रम होता ?

जें साहस तिनें केलें होतें तें सार्थकी लागणार होतें कीं व्यर्थ ठरणार होतें? माहेर सोडलें, सासर जोडलें, पण दु:ख सरायला हवें तें कांहीं सरलें नाहीं असें, म्हणायची तर पाळी तिच्यावर येणार नव्हती ? ज्या गंगाधराच्या आडोशाला ती या क्षणीं बसली होती तो आडोसा भरंवशाचा ठरणार होता कीं खोटा ठरणार होता ? पाण्याचा झरा दिसला होता म्हणून ती धांवली होती, परंतु तें पाणीच होतें की मृगजळ होतें ? ती फसली तर नव्हती ? आगींतून बाहेर पडून फुफाट्यांत तर पडत नव्हती ?...

एकेक घर खालीं ढळणाऱ्या मिनिटकाट्याकडे बघतां बघतां शालिनी या एकाच प्रश्नाचा निकाल लावण्याचा प्रयत्न करीत होती. तिचें बरोबर होतें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसरा

ना० सी० फडके

हिंदी अनुवाद : शरद मोझरकर

कंपार्टमेंट में जानबूझ कर खिड़की के पास की जगह छोड़कर शालिनी दूर बैठी थी, गंगाधर की चौड़ी पीठ की आड़ लेकर, फिर भी डिब्बे में भीड़ के कारण एक दूसरे से सटकर बैठे हुए लोगों के बीच-बीच से बाहर नज़र डालने पर उसे प्लेटफार्म पर लगी बड़ी घड़ी दिखाई दे रही थी और फिर उसके दिखने पर बार-बार उसकी नज़र वहीं जाती...क्रमश: एक-एक अंक नीचे उतरने वाला मिनिट का काँटा उसे देख रहा था...मन ही मन वह ट्रेन छूटने का समय गिन रही थी...अठारह मिनिट थे...अब सतरह, सोलह, अब पंद्रह...बस ये पंद्रह मिनिट बीतें और गाड़ी सीटी देकर चलने वाली थी। उसे और गंगाधर को ले जाने वाली थी...जिस घर से वह जुड़ गई थी अब वह हमेशा के लिए छूटने वाला था––अब वह बंबई की खोली वाले ऐसे नए घर में जा रही थी जिसके बारे में उसे यह भी न मालूम था कि वह कहाँ है? कैसा है? उस नए घर में प्रवेश के पूर्व ही उसका गंगाधर से विवाह होने वाला था। एक बार विवाह हो जाने पर और गंगाधर की गृहस्थी संभाल लेने पर उसके आज तक के दुखों का अंत होने वाला था, उसे उनसे छुटकारा मिलने वाला था।......

परंतु सच में छुटकारा मिलने वाला था? या यह उसका भ्रम था!

जो साहस उसने किया था वह सार्थक होगा या व्यर्थ जाएगा? मायका छोड़ ससुराल से नाता जोड़ने पर भी कहीं ऐसा तो न होगा कि उसके दुखों का अंत न हो। जिस गंगाधर की आड़ और आसरे पर वह इस समय बैठी थी वह आसरा कहीं टूट तो नहीं जाएगा? पानी की धारा देख वह दौड़ पड़ी थी, लेकिन वह पानी की धारा ही थी या मृगजल? वह धोखे में तो नहीं है? आग से निकल गर्म राख में तो नहीं आ गई थी?.....

क्रमश: सरकने वाले मिनिट–काँटे की ओर देखती शालिनी केवल एक ही बात सोच रही थी—उसने जो किया वह ठीक है या ग़लत?––पराए पुरुषों के साथ घर छोड़ कर भाग जाने वाली लड़कियों के किस्से उसने सुन रखे थे, उनकी याद इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कीं चुकलें होतें? कुणातरी पुरुषाच्या नादीं लागून घर सोडून पळून गेलेल्या
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मुलींच्या हकीगती तिनें एकल्या होत्या, त्यांच्या आठवणी तिच्या मनांत गर्दी करीत होत्या. त्या मुलींपैकीं कांहींच्या वांटयाला सुखाचा संसार आला होता, उलट कांहींजणी होरपळून निघाल्या होत्या. . .तिच्या वांटयाला काय येणार होतें? सुख कीं दुःख? . . .दान टाकण्यासाठीं तिनें फासें जुळवून हातांत घतले होते. तिला जें हवें तें दान पडणार होतें कीं फासे दगा देणार होते? . . .

शालिनीला चमत्कार वाटत होता तो या गोष्टीचा कीं ज्या शंका कुशंका हे साहस करण्याचें ठरवितांना तिला कधीं देखील आल्या नव्हत्या त्या तिला आतां सुचत होत्या. पाऊल टाकल्यावर! पाऊल परत घेऊन माघारीं परत फिरणें अशक्य झाल्यावर. . .ठरलेल्या बेताप्रमाणें ती स्टेशनावर हजर झाली होती. गंगाधर तिला भेटला होता. त्यानें दोन तिकिटें काढलीं होतीं. तिला म्हटलें होतें, "चल". त्याच्या मागोमाग घाईनें पावलें टाकीत ती जिने चढली होती, उतरली होती, लांबलचक फलाटावरून गेली होती, एका डब्यांत चढली होती, कुणी आपल्याला पाहूं नये, ओळखूं नये म्हणून खिडकीपासून दूरच्या जागीं गंगाधराच्या आडोश्याला बसली होती, हें करीपर्यंत तिचें मन सर्वस्वी निःशंक होतें. जें करण्याचें आपण गंगाधराच्या मसलतीवरून ठरविलें आहे तें अगदीं बरोबर आहे असेंच तिला वाटलें होतें. यांत कांहीं धोका आहे असें तिच्या मनांत एकदांहि आलें नव्हतें. गंगाधरानें दाखविलेल्या ज्या वाटेनें आपण निघालों आहोंत त्या वाटेनें आपण सुखाच्या मुक्कामाला पोंचणार आहोंत अशी तिच्या मनाची खात्री होती. गंगाधर म्हणजे परमेश्वरानें आपल्याला दुःखांतून आणि कष्टांतून सोडविण्यासाठीं पाठविलेला आपला हितकर्ता आहे, कुणाचें कुणावर नसेल इतकें त्याचें आपल्यावर प्रेम आहे, त्याचें आणि आपलें लग्न होण्याचा अवकाश कधीं नव्हे अशी सुखाची बरसात सुरू होईल आणि दुःखाच्या वाळवंटांतला आपला प्रवास संपेल, या साऱ्या गोष्टी तिला निर्विवाद वाटल्या होत्या. . .

"घर सोडून माझ्याबरोबर चल, आपण लग्न करूं" असे गंगाधरनें तिला म्हटलें होतें. तिनें काडीमात्र अनमान न करतां 'येते' म्हटलें होतें. . .

"मी गरीब आहें. बेकार आहें."

"असेनास–"

"तुला नोकरी करावी लागेल."

"करीन.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...उसे आ रही थी। उन लड़कियों में से किसी को तो सुख मिला था और कोई ...र्भाग्य के चक्कर में फँस गई थी। उसके हिस्से में क्या आने वाला था? सुख या ...ख? बाज़ी फेंकने के लिए उसने पासा हाथ में ले लिया था अब वह उसके अनुकूल ...ड़ेगा या धोखा दे जाएगा ?......

...शालिनी को आश्चर्य इस बात का हो रहा था कि जो शंकाएँ उसके मन में यह काम ...रने के पहिले उत्पन्न न हुई थीं वे अब आज क़दम उठाने के बाद उसके मन में आ ...रही हैं जब वापिस क़दम नहीं ले जाए जा सकते। तय हुए प्रोग्राम के अनुसार वह ...ठीक समय पर स्टेशन आ गई थी। गंगाधर उसे वहाँ मिला और उसने दो टिकिट ...निकाल लिए थे बाद में कहा था 'चलो'—यह सुन वह उसके पीछे चली सीढ़ियाँ चढ़ी, ...उतरी, एक लंबे प्लेटफार्म पर आकर एक डिब्बे में चढ़ गई। कोई देखे नहीं, पहि-...चाने नहीं, अत: गंगाधर की आड़ में आकर बैठी। यहाँ तक उसका मन बेफिकर-सा ...था और वह सोचती थी कि गंगाधर के आसरे पर मैं जो कुछ करने जा रही हूँ वह ...क़दम ठीक है। उसके मन में एक बार भी यह विचार न आया कि यह धोखा हो ...सकता है। जो राह गंगाधर ने बताई और चलने को कहा उस पर चलकर मैं ...निश्चित ही सुख की मंजिल पर पहुँचूंगी——ऐसा उसे विश्वास था। उसे गंगाधर ...दुखों से छुड़ाने वाला, कष्टों से उबारने वाला एक देवदूत ही लगा। वह मुझ पर ...अपार प्रेम करता है हमारा विवाह होते ही सुख की वर्षा होकर यह दुख भरी ...मरुस्थली यात्रा समाप्त होगी, ये सारी बातें सत्य हैं, निर्विवाद हैं ......

"घर छोड़कर मेरे साथ चलो, हम दोनों शादी करेंगे"——गंगाधर ने उससे कहा था। जिस पर उसने ज़रा भी आनाकानी न कर कहा था——

"अच्छा चलती हूँ"

"मैं ग़रीब हूँ, बेकार हूँ"

"रहने दो"

"तुम्हें नौकरी करना पड़ेगी"

"करूँगी".

"घर से खाली हाथ बाहर निकलने में कोई सार नहीं। तुमने मुझे बतलाया था कि तुम्हारी माँ ने तुम्हारे लिए गहने बना रखे है जिन पर केवल तुम्हारा अधिकार है, तुम्हारी सौतेले माँ का ज़रा भी नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

“घरांतून निघतांना रिकाम्या हातानें निघालीस तर कांहीं उपयोग नाहीं. तुझ्या आईनें तुझ्यासाठीं दागिने ठेवले आहेत, ते तुझ्या मालकीचे आहेत, तुझ्या सावत्र आईचा त्यावर कांहीं हक्क नाहीं असें तूं मला सांगितलें आहेस-”

“होय, तें खरें आहे.”

“ते सारे दागिने घेऊन निघशील ? ”

“निघेन.”

“मंगळवारीं तुझा पगार होईल. तो घेऊन कचेरींतून घरीं न जातां परस्पर स्टेशनावर येशील ? ”

“येईन.”

अशाप्रकारें जें जें त्यानें तिला सुचविलें होतें तें तें करण्याचें तिनें बेशक कबूल केलें होतें. त्याच्या प्रत्येक प्रश्नाला तिनें ताडकन् उत्तर दिलें होतें. . . तिला कसली देखील भीति वाटत नव्हती. कसली देखील शंका सुचली नव्हती. . .

ती अवघी बारा बर्षांची होती तेव्हां तिच्या आईचा मृत्यु घडला होता, तेव्हांपासून ती सुखाला पारखी झाली होती. तिच्या बापानं दुसरं लग्न केलं होतं. त्याचं अपत्यप्रेम झपाट्यानं ओसरलं होतं. दुसऱ्या लग्नाच्या तरुण बायकोच्या तालावर तो नाचूं लागला होता. सावत्र आईच्या राज्यांत तिला मोलकरिणीची अवस्था आली होती. तशांतही तिनें शाळा-कॉलेज केलें होतें, पदवी मिळविली होती, नोकरीही मिळविली होती. पगाराचे पैसे तिला बापाच्या स्वाधीन करावे लागत. परंतु त्यांतूनही थोडेफार पैसे चोरून मारून स्वत:जवळ तिला ठेवतां येऊं लागले होते. आणि मुख्य म्हणजे तिची मोलकरिणीची भूमिका सुटली होती. बापानें ‘किंवा सावत्र आईनें कधीं छेडलें तर तिला उलट उत्तर करतां येऊं लागलें होतें, ‘तुम्ही नाहीं जेवू घालीत मला. महिन्याकाठीं शंभर रुपये घरांत आणतें आहें मी. . .

परंतु घरांतला अपमान आणि पाणउतारा संपला होता तरी शालिनीचें दु:ख संपलें नव्हतें. केवळ स्वतंत्रपणानें नोकरी केल्यानें तें संपण्यासारखें नव्हतें. बापाचें घर तें आपलें घर असें तिला म्हणतां येत नव्हतें. ह्या घरांत तिला अन्न मिळत होतें एवढेंच. तिची सत्ता कशावरही नव्हती. तिच्यावर कुणाची ममता नव्हती. तिला कुणावर माया करतां येत नव्हती. तिला स्वत:चें घर हवें होतें. मायेचें माणूस हवें होतें. या गोष्टी तिचें लग्न झाल्यावाचून तिला मिळण्यासारख्या नव्हत्या. . .आणि तिचें लग्न होणें सोपें नव्हतें. . .

कारण तिचें रूप तर सामान्य होतेंच, पण शिवाय ती एका पायानें लंगडी होती. कुणाचें प्रेम बसणार होतें तिच्यावर ? कोण लग्न करणार होतें तिच्याशीं ? . . .कचेरींतल्या पुरुषांपैकीं जे अविवाहित होते ते तिच्या खर्चानें कँटीनवर चहा पीत, दहींवडा खात, क्वचित् सिनेमाला देखील तिच्याबरोबर जात. परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ ये सब सच है।"

"वे सारे गहने लेकर आना होगा"

"आऊँगी"

"मंगलवार को तुम्हारी तनख्वाह मिलेगी उस दिन तनख्वाह ले ऑफिस से घर न जाकर सीधे स्टेशन पर ही आना पड़ेगा।"

"आऊँगी"

इस प्रकार जो भी बातें गंगाधर ने उससे कहीं थी, उसने सब मंजूर कर ली थी। उनके प्रत्येक प्रश्न का शालिनी ने तुरंत उत्तर दिया था। उसे किसी बात का डर न लगा...कोई भी शंका मन में न उठी......

वह केवल बारह साल की थी तभी उसकी माँ की मृत्यु हो गई थी, तभी से उसे सुख न मिला। उसके पिता ने दूसरी शादी की। नई पत्नि के प्रेम के पीछे पागल होकर उनका लड़की पर स्नेह कम होता गया। सौतेली माँ के शासन में उसे नौकरानी की जगह संभालना पड़ी, ऐसी स्थिति में भी उसने स्कूल, कालेज में अध्ययन किया, डिग्री प्राप्त की और फिर नौकरी भी प्राप्त की। तनख्वाह के रुपए उसे पिताजी को देना पड़ते थे। फिर भी उसमें से थोड़ा बहुत चुरा कर वह अपने लिए रख लेती थी। विशेष बात यह कि अब उसे नौकरानी समान काम न करना पड़ता था। पिता या सौतेली मा के कभी कुछ उल्टा सीधा कहने पर अब वह कह सकती थी कि 'तुम मुझे नहीं पालते हो, सौ रुपए महिने लाकर देती हूँ'— यद्यपि इस प्रकार घर में होने वाली अपमान की स्थिति बदल गई थी फिर भी शालिनी का दुख कम नहीं हुआ था। केवल स्वतंत्र रूप से नौकरी कर उसका अंत भी न होने वाला था। पिता का घर उसे अपना घर न लगता था। उस घर में उसे खाना मिलता था बस यही समझो। उसका किसी बात पर अधिकार न था। उस पर किसी की माया, ममता न थी, और न वह किसी पर अपनी ममता जता सकती थी उसे एक अपना घर चाहिए था, स्नेही व्यक्ति चाहिए थे, ये सब बातें बग़ैर उसकी शादी के उसे कैसे मिलतीं? और उसकी शादी होना सरल न था...

क्योंकि एक तो उसका रूप सामान्य ही था, दूसरे वह एक पैर से लंगड़ी थी! कौन प्रेम करता उसके साथ? कौन उसके संग विवाह करेगा? ऑफिस में अविवाहित पुरुष उसके पैसों पर कैंटीन में चाय पीते, दही बड़ा खाते, और कभी पिक्चर भी देख लेते उसके साथ, लेकिन वह जानती थी समझती थी कि ये सारे लोग स्वार्थी हैं, कहने हैं, वे कहते—'स्त्री के शारीरिक सौंदर्य में क्या रखा है उसका आंतरिक सौंदर्य देखो'—उनमें से एक कवि था वह इसी प्रकार की कविताएँ करता, कवि सम्मेलनों में अपनी पूरी आवाज़ से वे गीत गाता, तालियाँ पिटवाता, लेकिन उसे भी पत्नि एक इंद्रलोक की परी ही चाहिए थी। क्षण भर की मौज सभी को चाहिए थी खासकर ऑफिस में जो विवाहित पुरुष थे उन्हें और भी ज्यादा! परंतु शालिनी जानती थी कि उसकी कुरूपता उसमें सुख की सबसे बड़ी बाधा है प्रेम तो दूर, उससे कोई विवाह भी शायद न करेगा, उसे पूरी तरह विश्वास हो गया था कि पिताजी

जून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिला समजत असे कीं हे सारे लोक स्वार्थी आहेत, लुच्चे आहेत. "स्त्रीचें रूप घेऊन काय करतां, तिच्या मनाचें सौंदर्य बघायला हवें," अशा प्रकारच्या उदात्त वाक्यांची बडबड हीं माणसें करीत असत. त्यांच्यांतला एकजण कवि होता. तो असलीं काव्यें रचीत असे. काव्यगायनाच्या मफलींत भसाडा आवाज काढून गाऊन दाखवीत असे. टाळ्या मिळवीत असे. पण त्याला देखील लग्नाची बायको म्हणून हवी होती इंद्रलोकीची अप्सराच! घटकाभराचा चघळपणा सगळ्यांनाच हवा होता. कचेरींतल्या पुरुषांत जे विवाहित होते, मुलावाळांचे धनी होते, त्यांना तर जास्तच हवा होता. परंतु आपल्या रूपांतलें व्यंग म्हणजे आपल्या सुखावर पडलेली मोठी कीड आहे हें शालिनीनें ओळखलें होतें. . .प्रेम तर राहोच, परंतु प्रेमावांचूनचें लग्नदेखील आपल्या नशीबांत नाहीं, याची तिनें मनाशी खूणगांठ बांधली होती. . .बापाचें घर कितीही नकोसें झालें तरी त्या घरांतच सारी हयात आपल्याला घालवावी लागणार अशीं तिची खात्री झाली होती...

आणि मग एक चमत्कार घडला होता!

एक पुरुष तिच्या प्रेमांत पडला होता!

ज्या प्रेमाचीं वर्णनें तिनें कथाकादंबऱ्यांतून वाचलीं होतीं, ज्या प्रेमाची आणि आपली भेट कधीं प्रत्यक्ष होण्यासारखी नाहीं असा उमज तिनें घेतला होता, आणि तो घेतल्यामुळेंच ज्या प्रेमाचा लटकाच उपभोग घेतां येईल तितका घ्यावा म्हणून तिनें अधिकच अधाशीपणानें कादंबऱ्या वाचल्या होत्या, तें प्रेम तिच्यापुढें आकस्मात् प्रगट झालें होतें!

प्रथम तिला वाटलें होतें, छे! छे! हे खरें नव्हे, मला भास होत आहे. . . पण मग हळूहळू तिची खात्री पटली होती कीं, गंगाधर खरोखर तिच्या प्रेमांत सांपडला होता! . . . ती स्वतः पूर्वीं दुसऱ्या कोणत्याही पुरुषावर भाळली नव्हती इतकी गंगाधरावर भाळली होती म्हणून त्याचेंहि आपल्यावर प्रेम आहे असें तिला कदाचित् वाटत असेल. परंतु ही गोष्ट उमजण्याच्या अवस्थेंत शालिनी नव्हती!...

शालिनीनें गंगाधराला प्रथम पाहिलें तेंव्हां कचेरींतल्या तिच्या टेबलापुढें तो येऊन उभा राहिला, आणि एक लिफाफा त्यानें तिच्यापुढें धरला तेंव्हां.

साहेबांनीं कांहीं जादा कामासाठीं तिला सकाळीं लवकर बोलावलें होतें म्हणून ती आली होती. इतर कुणीच कारकून आलेले नव्हते. आंतल्या खोलींत साहेब होते. बाहेरच्या दालनांत ती एकटीच होती. . .गंगाधरनें पुढें केलेल्या लिफाफ्यावरचा कंपनीचा पत्ता तिनें वाचला, आणि तिनें गंगाधरला सांगितलें, "या जागेंत ही कंपनी होती. परंतु चालू महिन्यापासून आमची कंपनी इथें आली आहे. ते लोक जागा सोडून गेले आहेत.'

हें सांगतांना तिला हंसू आलें. आपल्याला हंसू यावें याचा तिला चमत्कार वाटला, आणि दुसऱ्याच क्षणीं जेव्हां तिच्या लक्षांत आलें कीं, समोर उभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भले ही कितना भी बुरा क्यों न लगता हो फिर भी उसे सारी जिंदगी उसी में काटनी पड़ेगी...

और ऐसे समय में एक विचित्र बात हुई। एक पुरुष को उससे प्रेम हो गया।

जिस प्रेम के बारे में उसने कहानी उपन्यासों में पढ़ा था जिस प्रेम को उसने सोचा कि उसके भाग्य में है ही नहीं और इसके अप्राप्य प्रेम के पूर्ति हेतु उसने ढेर से उपन्यास पढ़ डाले थे वही प्रेम अकस्मात् उसे प्राप्त हुआ था।

पहले तो उसे लगा कि यह सत्य नहीं है। केवल आभास मात्र है। कल्पना है। लेकिन बाद में धीरे-धीरे उसे विश्वास होता गया कि गंगाधर सच में उससे प्रेम करने लगा था...वह स्वयं पहले कभी कभी किसी पुरुष की ओर इतनी आर्कषित नहीं हुई थी जितनी गंगाधर की ओर हुई। हो सकता है इसी कारण वह सोचती हो कि गंगाधर भी उससे उतना ही प्रेम करता है परंतु अब यह सब सोचने समझने की स्थिति में वह नहीं थी...

शालिनी नें गंगाधर को पहली बार तभी देखा जब उसने ऑफिस में उसके ही टेबिल पर आकर उसके सामने एक लिफ़ाफा दिया था।

कुछ अतिरिक्त काम के लिए साहब ने शालिनी को सुबह ही ऑफिस बुलाया था। अतः वह अकेली ही आई थी और कोई क्लर्क न थे साहब अपने केबिन में थे। बाहर के हाल में वह अकेली ही थी---गंगाधर के सामने किए हुए लिफ़ाफे का पता उसने पढ़ा और उससे कहा---"इसी जगह पर अभी तक यह कंपनी थी। लेकिन इसी माह में हमारी कंपनी यहाँ पर आ गई है। और वे लोग यह जगह छोड़कर चले गए हैं।"

यह कहते हुए उसके मुँह पर हँसी आ गई और स्वयं के हँसने पर उसे आश्चर्य भी हुआ। परंतु दूसरे ही क्षण जब उसने देखा कि सामने खड़ा हुआ युवक उसे पहली ही नज़र में अच्छा लगा और उसी खुशी में वह हँसी है तो वह लजा गई। युवक ने कुछ पूछा जो उसे सुनाई न पड़ने के कारण उसके मुँह से एकदम निकला...'ऐं'!.

उसका वह शब्द सुन गंगाधर हँसा, और बोला---"जी मैंने कहा ये कंपनी अब कहाँ चली गई है आप बता सकेंगी?"

"जी, हाँऽऽ"

इस प्रकार उसकी बोलने की आदत न थी 'हाँ ऽऽ' कहते समय वह ज़रा लाड़ में आ गई थी---अतः उसे फिर हँसी आ गई और फिर वह भी हँस पड़ा।

उसने सोचा ये यह क्या हो रहा है ?---इतने लाड़ से तो वह कभी किसी अपने परिचित पुरुष के साथ नहीं बोली थी। इस प्रकार एकदम से उसे कभी हँसी भी न आई थी---सामने खड़ा युवक तो उसकी पहिचान का भी न था। फिर भी वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राहिलेला तरुण पहिल्या दृष्टिक्षेपांतच आपल्याला आवडला म्हणून आपण खुशीनें हसत आहोंत तेव्हां तिला एकदम लाजल्यासारखें झालें. . .त्यानें कांहींसे विचारलें तें तिला नीट एकूं आलें नाहीं, म्हणून तिनें उद्गार काढला, "आं ?'

तो तिचा उद्गार ऐकतांच गंगाधर हसला. तो म्हणाला, "नाहीं म्हटलें, ही कंपनी आतां कुठें गेली आहे तें सांगाल का मला ?'

"हो ऽ!"

हेल काढून बोलण्याची तिची लकब नव्हती आणि तरी 'हो' म्हणतांना तिनें लाडिक हेल काढला होता. . .तिला पुन्हां हंसू आलें होतें. . .तोही हसला होता.

तिला वाटलें होतें, कधीं नव्हे तें हें काय घडत आहे ? . . .ओळखीच्या कोणत्याही पुरुषाशीं ती असें लाडिकपणानें कधीं बोलली नव्हती. असें अनावर खुदकन् हसूही तिला कधीं आलें नव्हतें. . . समोर उभा राहिलेला तरुण पुरुष तर तिच्या ओळखीचा देखील नव्हता. आणि तरी कधीं न केलेल्या गोष्टी ती करीत होती. छ ! छे ! हें कांहीं बरें नव्हे ! . . .तिला वाटलें, त्याला ओरडून सांगावें, "जा ! तुम्ही जा ! . . ."

परंतु प्रत्यक्षांत तसें सांगण्याऐवजीं अगदीं निराळीच गोष्ट तिनें केली. ज्या जागेत ती कंपनी गेली होती तिचा संपूर्ण पत्ता तिनें विस्तारानें सांगितला. आणि सांगता सांगता ती आपल्या जागीं अर्धवट उठून उभीसुद्धां राहिली. जणु त्यानें म्हटलें असतें तर त्याला पत्ता शोधण्याचा त्रास पडूं नये म्हणून ती त्याच्यावरोबर जाणार होती.

तिनें सकाळीं येऊन जादा काम केलें होतें म्हणून साहेबांनी तिला लवकर सुटी दिली. ती कँटीनमध्यें गेली, एका टेबलापुढें बसली. लंचची वेळ व्हायला अवकाश होता. कँटीनच्या जागेंत ती एकटीच होती. तिनें टेबलावरचें इंग्रजी वर्तमानपत्र उचललें, आणि तें वाचण्याच्या विचारांत ती होती, इतक्यांत तो तिच्याकडे येत असलेला तिला दिसला. ओळख द्यावी न द्यावी अशा विचारानें तिचें मन द्विधा झालें. वर्तमानपत्र तोंडाआड धरण्याच्या बेतांत ती होती.

पण तो घाईनें पावलें टाकीत तिच्याजवळ आला. समोरच्या खुर्चीत बसतां बसतां तो म्हणाला, "वर कचेरींत गेलों तर तुम्ही आपल्या जागीं नव्हतां. कुणी म्हणालें, त्यांचें काम आटपलें म्हणून त्या घरीं गेल्या. पण एकानें सांगितलें कँटीनमध्यें असतील, बघा. तुम्ही घरीं गेलां असतां तर माझी निराशा झाली असती. कारण तुमचें घर मला माहीत नाहीं. तुम्हाला भेटून तुमचे आभार मानण्याची तर फार इच्छा होती."

तिनें विचारलें, "माझे आभार ? ते कशाबद्दल ?"

"किती आपलेपणानें तुम्ही कंपनीचा पत्ता मला सांगितला, आणि माझी आपली वेडी भावना म्हणा, परंतु मला वाटतें कीं, तुमची आधीं भेट झाल्यामुळें माझें काम झालें."

"होय ? काम झालें ? नोकरी लागली तुम्हांला ?"

"लागली नाहीं. परंतु नकारहि मिळाला नाहीं. गेल्या कांहीं दिवसांत नोकरीसाठीं इतक्या ठिकाणीं हेलपाटे घातले आहेत—आणि स्वच्छ नकार ऐकून परतावें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी न करने वाली हरकतें कर रही थी। छी: छी: यह अच्छा नहीं ! उसे चिल्लाकर कहना चाहिए—"जाओ तुम जाओ यहाँ से ......"

लेकिन वास्तव में हुआ दूसरा ही। जिस जगह वह कंपनी चली गई थी उस जगह का पूरा पता उसने उसे बताया और कहते-कहते वह अपनी कुर्सी से आधी उठ भी गई, मानो, यदि वह कहता तो उसके साथ ही वह वहाँ तक जाने को तैयार थी जिससे उसे ढूंढने में कोई तकलीफ़ न हो।

उसने सुबह जल्दी आकर काम किया था इस कारण साहब ने उसे जल्दी ही छुट्टी भी दे दी। वह कैंटीन में एक टेबिल पर जाकर बैठी। अभी लंच होने में समय था। कैंटीन में वह अकेली ही थी उसने इंग्लिश पेपर उठाया और वह पढ़ने ही वाली थी कि इतने में ही सामने से वह आता दिखाई दिया। उसे अपना परिचय दे या नहीं यह सोच वह मूँह पर पेपर लगाने वाली थी कि तभी .....

वह तेजी से क़दम बढ़ाता उसके ही पास आ गया और सामने की कुर्सी पर बठता हुआ बोला--"ऊपर आफिस में गया लेकिन आप वहाँ न थीं किसी ने कहा उनका काम समाप्त हो गया है अत: वे घर गई होंगी। परंतु एक ने कहा शायद कैंटीन में होंगी जाकर वहाँ देखिए। आप यदि घर चली गई होतीं तो मुझे बड़ी निराशा होती क्योंकि आपका घर मुझे मालूम नहीं। आपसे मिलकर आपके प्रति आभार प्रदर्शित करने की मेरी बहुत इच्छा थी।"

उसने पूछा---"मेरा आभार ? किस बाबत ?"

"कितनी आत्मीयता से आपने मुझे कंपनी का पता दिया और मेरा अपना ऐसा ख्याल है कि आपसे पहले मुलाकात हो जाने से ही मेरा काम सफल हुआ।"

"अच्छा, काम हो गया ? नौकरी मिल गई आपको ?"

"मिली तो नहीं लेकिन नाहीं भी नहीं की। पिछले दिनों कई जगहों पर भटका हूँ और हर जगह नाहीं ही मिली लेकिन आज यहाँ कहा गया--आठ दिन बाद फिर से मिलिए—इसीलिए इतना खुश हूँ।"

शालिनी को मालूम था कि फिर से आठ दिन बाद मिलिए--याने नाहीं ही होती--शायद गंगाधर को भी यह मालूम होगा। फिर भी उसने उस उत्तर में ही आनंद मनाने का सोचा था—अत: शालिनी ने सोचा उसके इस काल्पनिक सुख में क्यों बेकार में कटुता उत्पन्न करूँ !

अत: वह हँसकर बोली---आइए आपकी खुशी की खबर को हम मिलकर सेलिब्रेट करें। उसने चुटकी बजा कर वटर को बलाया और उसके पास आते ही गंगाधर से पूछा—आप मीठा पसंद करते हैं या नमकीन ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लागलें आहे कीं 'पुन्हां आठ दिवसांनीं या' असें उत्तर आज मिळालेंय त्याचीच धन्यता वाटते आहे."

'पुन्हां आठ दिवसांनीं या' असें सांगणें म्हणजे नकार देण्याचाच एक पर्याय होता हें शालिनीला ऐकून ठाऊक होतें. . . कदाचित् गंगाधरालादेखील तें माहीत असावें. परंतु त्या उत्तराचा आनंद मानण्याचें त्यानें ठरविलेलें असावें. . . त्याच्या त्या खोट्या पण दुर्मिळ आनंदावर विरजण घालण्याचा कठोरपणा करूं नयेसें तिला वाटलें. . . .

ती हसली आणि म्हणाली, "तुमची आनंदाची बातमी साजरी करूंया आपण." तिनें चुटकी वाजवून नोकराला बोलावलें आणि तो जवळ आला तेव्हां गंगाधराला विचारलें, "तुम्हाला गोड आवडतें कीं तिखट ?"

तो हंसून म्हणाला, "दोन्ही. पण हें बघा, तुम्ही खर्च करणार असाल तर कांहींच आवडणार नाहीं मला. बिल मी देणार."

"वा ! असें कसें ?"

"तुमचें तरी असें कसें ?"

या उलटसुलट प्रश्नांचें दोघांनाहि एकदमच हसूं आलें. बिल कुणी द्यायचें या प्रश्नाचा निकाल लावण्याची दोघांचीहि इच्छा त्या एकत्र हंसण्यानें जणु संपविली.

शालिनीच्या आयुष्याचें एक नवेंच पर्व त्या कँटीनमध्ये त्या घटकेला सुरू झालें! . . .दोन घटकांपूर्वीं प्रथमच भेटलेल्या गंगाधराच्या प्रेमांत ती सापडली!

आजपर्यंत कोणताहि पुरुष तिला आवडला नव्हता इतका गंगाधर सातपुते शालिनीला आवडला होता. तो कोण ते तिला माहित नव्हतें. कुठें असतो, काय करतो, याची तिला माहिती नव्हती. नोकरी शोधायसाठी तो मुंबईहून आला आहे एवढेंच तिला कळलें होतें. आणि तरी तिला तो हवासा वाटूं लागला होता. त्याच्यावर खूप खूप प्रेम करावे अशा एका विचित्र इच्छेनं झपाटल्यासारखी ती झाली होती. . . त्याचें आपल्यावर प्रेम बसायला हवें अशी तिच्या मनाला ओढ लागली, आणि त्या ओढीमुळें त्याला खूष करण्याचे स्त्रीसुलभ सगळे डाव ती खेळूं लागली. त्याचेंहि आपल्यावर प्रेम जडत आहे अशी स्वतःची समजूत तिनें करून घेतली.

ज्या नोकरीचा प्रयत्न करण्यासाठीं गंगाधर आला ती त्याला मिळाली नाहीं. आठ दिवसांनीं पुन्हा या सांगण्याचा अर्थ नकारच होता. . . परंतु शालिनीनें त्याला परत मुंबईस जाऊं दिलें नाहीं... त्याच्यासाठीं नोकरीचा शोध ती करूं लागली. अमुक ठिकाणीं जागा आहे असं कळल्याबरोबर त्याला तिकडे पाठवूं लागली.

त्याला कुणीदेखील नोकरीवर घेत नव्हतें याचें दुःख तिला होत नव्हतें. मुंबईस परत न जातां राहण्याचा तिचा आग्रह त्यानें मानला होता या गोष्टीच्या आनंदांत ती होती. त्याचा सहवास तिला मिळत होता. तिला त्याच्याबरोबर हिंडतां फिरतां येत होतें. अशी ती कधीं कुणाबरोबर हिंडली नव्हती. हॉटेलांत किंवा सिनेमाला गेली नव्हती. कितीतरी दिवस अपूर्ण राहिलेली एक भूक ती भागवून घेत होती... त्यानें म्हणावें "तुझे पैसे खर्च होतात. मला संकोच वाटतो." तिनें म्हणावें "अरे माझे आणि तुझे पैसे काय निरनिराळे आहेत ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हँसकर बोला—दोनों ही। लेकिन देखिए यदि आप खर्च करने वाली होंगी तो मुझे कुछ भी पसंद नहीं है फिर बिल म चुकाऊँगा।

"वाह! ऐसा कसे होगा ?"

"आप भी ऐसा कह रही हैं ?"

इन प्रश्नों से दोनों ही एकदम हँस पड़े। उनके एक साथ हसने से मानों बिल चुकाने की समस्या हल हो गई।

शालिनी के जीवन का एक नया अध्याय उस दिन, उस केंटीन, उस समय से आरंभ हुआ।......दो घंटे पूर्व मिले हुए गंगाधर के प्रेम में उसने अपने आपको डूबा हुआ पाया।

आज तक उसे कोई भी व्यक्ति इतना पसंद न आया था जितना कि गंगाधर सात-वे। वह कौन है? क्या करता है? कहाँ रहता है? उसे कुछ मालूम न था। नौकरी की तलाश में वह बंबई से आया है इतना ही वह जानती थी फिर भी उसके प्रति उसका आकर्षण बहुत था। गंगाधर से खूब प्रेम करने की उसकी इच्छा हो रही थी। साथ ही उसने सोचा कि गंगाधर को भी उसे उतना ही चाहना चाहिए। अतः उसके लिए वह सारे स्त्रीसुलभ दाँव-पेंच खेलने लगी। उसने ऐसा विश्वास कर लिया था कि गंगाधर का भी उससे प्रेम बढ़ता जा रहा है।

जिस नौकरी की तलाश में गंगाधर आया था वह उसे मिली नहीं। 'आठ दिन बाद आइए' का तात्पर्य ही नकारात्मक था फिर भी शालिनी ने उसे वापिस बंबई जाने नहीं दिया। उसकी नौकरी के लिए वह भी खोज करने लगी और पता लगने पर जगह-जगह उसे भेजने लगी। उसे इसका दुख न था कि कोई उसे नौकरी पर नहीं लेता। गंगाधर ने उसकी बात मानकर बंबई वापिस जाने का इरादा छोड़ दिया था। शालिनी इस आनंद में मग्न थी। उसके साथ वह घूमती फिरती थी। इस प्रकार वह आज तक न किसी के पास घूमी थी और न पिक्चर गई थी कितने दिनों की अपूर्ण इच्छाएँ वह अब पूरी कर रही थी...

वह कहता—तुम्हारे पैसे खर्च होते हैं इसमें मुझे बेहद संकोच होता है। जिस पर वह कहती—अरे तो क्या मेरे और तुम्हारे पैसे अलग-अलग हैं।

एक बार गंगाधर ने पूछा—"इस प्रकार क्या तुम मुझे जिंदगी भर खिलाओगी ?"

शालिनी ने तुरंत कहा—"क्यों नहीं, मेरे साथ शादी करो और फिर देखो, ले लो मेरी परीक्षा!"

अकस्मात् ही मुँह से निकल गए शब्दों का बाद में दोनों ने गंभीरता से विचार किया।

"घर छोड़कर मेरे साथ भाग चलोगी क्या ?" उसने पूछा

"जरूर चलूंगी"—उसने तुरंत उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकदा त्यानें सहज म्हटलें, "तूं साथ जन्माची पुरणार आहेस मला ?"

तिनें चटकन म्हटलें, "कां नाहीं पुरणार ? माझ्याशीं लग्न कर, आणि बघ माझी परीक्षा."

अकस्मात उच्चारल्या गेलेल्या या कल्पनेचा नंतर दोघांनीं गंभीरपणानें विचार केला होता... 'घर सोडून पळून येशील माझ्याबरोबर ?' असें त्यानें विचारल्यावरोबर तिनें ताडकन सांगितलें होतें 'येईन.'

पगाराच्या आदल्या दिवशीं एका छोटचा सूटकेसमध्यें तिनें थोडे कपडे भरले होते, दागिन्यांचा डबा घातला होता, तिचा बाप आणि तिची आई सिनेमा बघायला गेली होती त्याचा फायदा घेऊन ती सुटकेस तिनें आपल्या एका मैत्रिणीकडे नेऊन ठेवली होती. दुसऱ्या दिवशीं नित्याप्रमाणें ती कचेरींत गेली होती. कचेरी सुटल्यावर मैत्रिणीकडची सूटकेस घेऊन ती स्टेशनावर दाखल झाली होती...

या साऱ्या गोष्टी करतांना तिचें मन किंचित् देखील कचरलें नव्हतें, पाऊल अडखळलें नव्हतें. तिला कोणतीहि शंका सुचली नव्हती. कसलेंदेखील भय वाटलें नव्हतें... आणि आतां डब्यांतल्या गर्दींत गंगाधराच्या आडोश्याला बसून एकेक घर ढळणाऱ्या मिनिटकाटयाकडे बघतांना मात्र तिच्या अंतःकरणाचा थरकाप उडाला होता. तिला भीति वाटत होती. नाहीं नाहीं त्या शंका तिच्या मनांत घिरटया घालीत होत्या... पूर्वीं जें जें सोपें आणि उघड वाटलें होतें तें तें अवघड आणि चमत्कारिक वाटूं लागलें...

वास्तविक तिच्या बापाचें आणि आईचें तिच्यावर प्रेम नसलें तरीदेखील जो पुरुष तिला आवडला त्याच्याशीं लग्न करण्यासाठीं तिला घर सोडून पळून जाण्याची आवश्यकता नव्हती. ती नोकरी करीत होती, दर महिन्याला घरांत शंभर रुपये आणीत होती, यामुळें तिच्या बापाला तिच्या लग्नाची उत्सुकता नव्हती. तिची सावत्र आई हेटाळणीनें म्हणत असे, कोण करतो या लंगडचा मुलीशीं लग्न ? शालिनी संसाराला लागावी आणि सुखी व्हावी अशी तिची इच्छा साहजिकच नव्हती. परंतु हें सारें खरें असलें तरी तिनें जर स्वतःसाठीं एखादा नवरा बघितला आणि लग्न करतें म्हटलें तर तिच्या बापाचा आणि सावत्र आईचा विरोध होण्याचें कांहींच कारण नव्हतें. जनलज्जेस्तव कां होईना, तिचा बाप कन्यादान करण्यासाठीं उभा राहिलाच असता... पण शालिनीनें जेव्हां गंगाधराला म्हटलें कीं आमच्या घरीं या, तुमची ओळख करून देतें, आपल्या लग्नाला घरच्या माणसांची संमति मिळवायला हवी, तेव्हां गंगाधरानें साफ सांगितलें होतें तुझ्या घरीं मी येणार नाहीं. तिनें त्याला पुन्हा पुन्हा आग्रह केला होता, परंतु त्याचा नकार कायम राहिला होता. चमत्कार असा कीं त्याचा तो हट्ट पाहून तिला राग आला नव्हता, किंवा तिला आश्चर्यहि वाटलें नव्हतें. ती अशा कांहीं पूर्णत्वानें त्याच्यावर भाळली होती कीं त्याचें कोणतेंहि कृत्य चुकीचें म्हणायला ती तयार नव्हती... आपण मुंबईला जाऊं, तिथें लग्न करूं असं तो म्हणाला होता. तिनें तें ताबडतोब मान्य केलें होतें. दागिने घे आपल्या-बरोबर असं त्यानें सुचविलें होतें. ती होय म्हणाली होती. पगार घे असें तो म्हणाला होता. तिनें त्याप्रमाणें केलें होतें...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनख्वाह मिलने के एक दिन पहले उसने सूटकेस में कपड़े रखे, गहनों का डिब्बा
...और चूंकि उसके माँ-बाप पिक्चर गए थे अतः उसका फ़ायदा उठा उसने वह
...केस अपनी एक सहेली के घर लाकर रख दिया था। दूसरे दिन हमेशा के अनु-
...र वह ऑफिस गई और ऑफिस छूटने पर सहेली के घर से सूटकेस उठा
...धी स्टेशन आ गई थी ——

ये सब बातें करते समय उसका मन ज़रा भी न घबराया था, पैर न लड़खड़ाए
थे। उसके मन में कोई भी शंका उत्पन्न न हुई थी और न किसी बात का डर लगा
था...और अब कम्पार्टमेंट की भीड़ में गंगाधर की पीठ की आड़ में वठ मिनिट
के कांटे की ओर देख उसका दिल काँप रहा था। उसे डर लग रहा था। ज़माने
भर की आशंकाएँ मन में उठ रही थीं...पहले जो बातें सरल एवं सहज लगती थी
वे अब कठिन और विचित्र लगने लगी थीं।

सच पूछो तो यद्यपि उसके माँ-बाप उसे चाहते न थे फिर भी उसे अपने अच्छे
लगने वाले युवक के साथ विवाह करने के लिए घर से भाग जाने की आवश्यकता
नहीं थी। वह नौकरी करती थी, हर महिने घर में सौ रुपए लाकर देती थी अतः
उसके पिता को उसके विवाह की उत्सुकता न थी। उसकी सौतेली माँ कहती रहती—,
कौन करेगा इस लंगड़ी लड़की से शादी? अर्थात् माँ की भी इच्छा न थी कि
शालिनी सुख से गृहस्थी का आनंद उठाए। यह सब होने पर यदि वह कोई लड़का ढूँढ
उससे शादी करने की वात कहती तो उसके माँ-बाप उसका विरोध न कर सकते थे।
लोक-लाज की खातिर उसका बाप कन्यादान के लिए तो उपस्थित रहता ही . . .

लेकिन जब शालिनी ने गंगाधर से अपने घर चलने, माँ-बाप से परिचय करा देने
और उनसे भी अनुमति प्राप्त करने के लिए कहा तो गंगाधर ने शालिनी के घर चलने
से साफ़ ही इंकार कर दिया। शालिनी ने कई बार कहा परंतु हर बार ही उसने
नहीं कर दी। आश्चर्य की बात यह कि उसका यह रवैया देखकर भी शालिनी
को न तो गुस्सा आया और न उसे ताज्जुब ही हुआ। वह उस पर इस बुरी तरह से
समर्पित थी कि उसके किसी भी बुरे काम को वह बुरा मानने को तैयार न थी . . .
उसने कहा था हम बंबई चलेंगे और वहाँ शादी करेंगे...शालिनी ने फौरन इस बात
को मान लिया था। उसने कहा था कि साथ गहने ले लेना और वह तैयार हो गई
उसके लिए। उसके लिए उसने तनख्वाह साथ रखने को कहा और शालिनी ने उसे
भी मान लिया था . . .

परंतु अब जब उसे गाड़ी के डिब्बे में चोरों के समान बैठना पड़ा तब उसे लगा
कि कब ट्रेन चालू हो और वह यहाँ से दूर भाग जाने के काम में सफल हो। अब उसके
मन में उसके प्रत्येक कार्य के प्रति आशंका घर करने लगी...मेरे पिताजी से मिलने
की बात को गंगाधर ने क्यों टाला? उसे कौन सा डर लगा उसमें? . . . गंगाधर
ने कहा था मेरे पिता उससे पूछेंगे...'आप कहाँ सर्विस करते हैं? क्या वेतन है तब
उनसे क्या कहूँगा? कि मैं बेकार हूँ। उसे ऐसा कहने में शर्म लगेगी...शालिनी
को उस समय गंगाधर के तर्क मान्य थे। लेकिन अब वे ही बातें जम नहीं रही थीं।
बेकार हूँ यह कहने में काहे की शर्म। आखिर बहुत से आदमी बेकार रहते हैं फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण आतां मात्र जेव्हां गाडीच्या डब्याच्या गर्दीत तिला चोरटेपणानें बसावें लागलें, केव्हां एकदां गाडी हालते आणि पळून जाण्याचें आपलें धाडस पार पडतें अशा विचारानें तिचें मन दुबळें झालें, त्याबरोबर जें जें तिनें निःशंकपणानें केलें होतें त्याची त्याची तिला शंका येऊं लागली...आपल्या बापाची भेट घेण्याचें गंगाधरानें कां टाळलें होतें? त्याला कसलें भय वाटलें होतें?...गंगाधर म्हणाला होता तुझा बाप मला विचारील कुठें नोकरी करतां? किती पगार मिळतो? त्यांना काय सागूं? मी बेकार आहें म्हणून सांगूं? मला लाज वाटेल...त्याचें हें बोलणें त्या वेळेस तिला पटलें होतें...पण आतां तें पटेना...बेकार आहें म्हणून सांगण्यांत काय लाज होती? पुष्कळ पुरुष बेकार असतात. लोक त्यांना आपल्या मुली देतात. आणि बेकार आहे म्हणून सांगितलेंच पाहिजे असं कोठें होतें? नोकरीची खोटी थाप देतां आली असती...मग गंगाधरानें तिच्या बापाची भेट कां टाळली होती?...या शंकेनें जेव्हां तिचा विश्वास आतां ढासळला तेव्हां तिला असेंही आठवलें कीं गंगाधर सामान्यतः सगळ्यांच्याच भेटी टाळीत असे. तिच्याबरोबर तो हवा तितका हिंडत असे, पण इतर कुणाचा संपर्क वाढूं नये अशा धोरणानें तो वागत असे. तिनें कोणाची ओळख करून दिली तर तो नी नमस्कार चमत्कारावरच संपवीत असे... असें कां? त्याला जगापासून कांहीं लपवायचें होतें कीं काय?

आतां तिच्या लक्षांत आलें कीं गंगाधराचा आणि तिचा इतका सहवास घडला होता तरी तिला त्याची माहिती फार थोडी होती. तिनें कधीं खोलांत शिरून विचारलें नव्हतें. त्यानें आपणहून कांहीं सांगितलें नव्हतें. तो कोण, कुठला, त्याच्या घरांत कोणकोण होतें, तो नक्की किती शिकलेला होता, यापैकीं कोणत्याच प्रश्नाचें उत्तर तिला देतां आलें नसतें... मुंबईंत कुठेंतरी त्याची खोली आहे एवढीच माहिती तीला पुरेशी वाटली होती. त्या खोलींत आपल्याला संसार थाटतां येईल, त्या खोलीला माझें घर म्हणतां येईल, एवढ्या अपेक्षेवर ती संतुष्ट होती...पण आतां मात्र परोपरीच्या शंकांनीं तिला घेरलें...गंगाधराची खोली तरी खरोखरच आहे कीं नाहीं याचा संशय तिला वाटूं लागला...हा कितीक दिवस बेकार आहे मग हा कुठून भरणार खोलीचें भाडें? कसली खोली आणि कसलें काय?...

गाडीची सुटण्याची वेळ टळून गेली तरी गाडी सुटली नव्हती. ती एकदांची हालल्याखेरीज आपली सुटका होणार नाहीं या विचारानें घाबरून गेलेल्या शालिनीच्या मनाचा ठाव अधिकाधिक सुटत होता. शंका वाढत होत्या. भीति अधिकाधिक ग्रासीत होती...नको तें घड्याळाकडे पहाणें असें तिला झालें होतें. आणि तरी माणसांच्या अंगाखांद्यांच्या फटींतून ती घड्याळाकडे पहातच राहिली होती. नाहीं नाहीं ते विचार तिच्या मनांत येत राहिलेच होते...साऱ्या विचारांतून एकाच प्रश्नाचा धागा निघत होता आणि अधिकाधिक बळकट होत होता. मी फसलें तर नाहीं? मी आपला घात तर करून घेतला नाहीं? ...घर सोडलें, दागिने घेऊन आलें, पगार आणला! हा साराच भलता भोळेपणा तर ठरणार नाहीं?...

ज्याच्या रुंद खांद्यांच्या आडोश्याला ती बसली होती तो खरोखरच भरवंशाचा आडोसा होता काय?...ज्या माणसावर भरिभार टाकून ती पळून चालली होती, ज्याच्याशीं ती लग्न करणार होती, जन्माची गांठ पडूं देणार होती त्याची काय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...उनको अपनी बेटियाँ ब्याहते हैं और ... बेकार ... झूठ भी तो कह सकते थे कि कहीं भी नौकरी में है...फिर गंगाधर ने आखिर ... पिताजी से मिलने की बात को टाला क्यों ? इस प्रकार की शंकाओं से जब ... विश्वास डगमगाया तभी उसे यह भी याद आया कि गंगाधर अक्सर सभी ... मिलना टालता था। शालिनी के साथ वह घूमता फिरता था फिर भी अन्य व्यक्ति ... संपर्क न बढ़े इसकी वह सतर्कता रखता था। शालिनी जब कभी किसी से ... परिचय कराती थी तो वह उस मुलाकात को केवल नमस्ते तक ही सीमित रखता ...ऐसा आखिर क्यों ? वह दुनिया से कुछ छिपा रहा था क्या ? . . . . .

अब उसे याद आ रहा था कि गंगाधर से उसका इतना संबंध स्थापित हो जाने ... भी उसे गंगाधर के बारे में बहुत कम ही जानकारी थी। उसने भी कभी गहराई ... उन बाबत पूछताछ नहीं की थी और गंगाधर ने स्वयं कभी बताया नहीं। ... कौन है, कहाँ का है, उसके घर में कौन है। वह कहाँ तक पढ़ा है––इनमें से किसी ... प्रश्न का उत्तर शालिनी को मालूम न था––उसने इसी में संतोष कर लिया था ... बंबई में कहीं पर उसका कमरा है। उसी कमरे में अपनी गृहस्थी जमा लूंगी, ... ही अपना घर कहूँगी. . इसी में वह संतुष्ट थी। लेकिन अब रह-रह कर उसे ... शंकाएँ घेर रही थीं. . उसे यह भी शक होने लगा था कि गंगाधर का वहाँ कोई कमरा ... है भी या नहीं। वह कितने दिन से बेकार है, फिर कमरे का किराया कहाँ से चुकाएगा ? ... कहाँ का कमरा ? और कहाँ का क्या ? . . . .

ट्रेन छूटने का समय हो गया फिर भी वह न छूटी। शालिनी सोच रही थी जब तक ... गाड़ी न छूटेगी उसका छुटकारा न होगा। उसकी शंकाएँ बढ़ रही थीं। डर अधिक ... लगने लगा था. . . उससे घड़ी की ओर देखा न जा रहा था। फिर भी वह लोगों ... के बीच-बीच से घड़ी की ओर देखती ही जा रही थी। और ज़माने भर के विचार ... उसके मन में आते जा रहे थे––सारे विचार बस एक ही बात पर केंद्रित हो रहे थे ... 'मैं कहीं धोखे में तो नहीं पड़ गई' ? कहीं जाल में फँस तो नहीं गई ? मैं अपना नुकसान ... तो नहीं कर रही ? . . . घर छोड़ा, गहने ले आई, वेतन ले आई। यह सब कहीं भोला- ... पन तो सिद्ध न होगा।

जिसके चौड़े कंधों की आड़ एवं आसरा लेकर वह बैठी थी वह क्या सच में भरोसे ... का आसरा था ? . . . जिस इंसान का विश्वास कर वह उसके साथ भाग रही थी, ... उसके साथ शादी करने वाली थी, जिंदगी भर का नाता जोड़ने वाली थी, उसके बारे ... में उसे क्या जानकारी थी ? . . . वह बहुत मीठा बोलता, खूब हँसाता था, कई बार ... उसने शालिनी का हाथ पकड़ा था। उसे एकांत में चूमा था। और हर बार शालिनी ... ने एक अजीब से सुख का अनुभव किया था। उसे जो कभी जीवन में न मिला था ... वह मानों मिल गया था। यही स्पर्श-सुख पूरी तरह से जीवन भर मिलने के उसने ... सपने बनाए थे जिन्हें सोच वह आनंद से पुलकित हो जाती। उसके मन में केवल एक ... ही बात घूमती रहती और वह थी...गंगाधर से विवाह। . . . लेकिन वह अब सोच ... रही थी कि सही अर्थों में यह व्यक्ति मेरे लिए अपरिचित है। ये कौन है ? कहाँ का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
माहिती होती तिला ?...तो खूप गोड गोड बोलला होता. त्यानें तिला खूप हसविलें होतें. कितीकदां तरी तिचा हात धरला होता. एकांतांत तिचा मुका घेतला होता. प्रत्येक वेळेस सुखाचे शहारे तिनें अनुभवविले होते. जें कधीं मिळालें नव्हतें तें मिळाल्यासारखें तिला वाटलें होतें. हेंच स्पर्शसुख पूर्णत्वानें मिळालें तर कशाप्रकारचें असेल याच्या कल्पना तिनें केल्या होत्या. तिचें शरीर थरथरलें होतें. तिचें मन हरखून गेलें होतें. गंगाधराशीं लग्न करण्याची एकच ओढ तिच्या ठिकाणीं उरली होती. बाकी कोणत्याहि विचाराला जागाच राहिली नव्हती...पण आतां तिच्या लक्षांत येत होतें कीं हा माणूस खरं पहातां मला अपरिचित आहे. हा कोण ? कुठला ? आणि मी खुशाल त्याच्याबरोबर पळून जातें आहे ! यानें मला फसवलें तर ? याचा आडोसा खोटा ठरला तर ?...

धक्का बसला. सारेच डबे पुढें सरकले, मागें झाले, पुन्हां पुढें सरकले. सबंध गाडी हिंदकळल्यासारखी झाली...पण लगेच नीट निघाली...फलाटावरचीं माणसें मागें मागें सरकलीं. फलाट सरला. गाडीचा वेग वाढला. गाडी पुलावरून जाऊं लागली. दोन्हीं बाजूच्या खिडकींतून पाणी दिसूं लागलें.

सुटलें एकदांची ! अशा विचाराचा भपकारा थंड सुगंधी वाऱ्याच्या झोतासारखा शालिनीच्या अंगाला स्पर्श करून गेला.

डब्यांतली माणसें आपापल्या जागीं अधिक सरसावून बसलीं. उंच आवाजांत बोलूं लागलीं. विडी-सिगारेटच्या धुरानें डबा भरून गेला.

गंगाधरानें शालिनीकडे बघितलें. हास्य केलें.

तिच्या मनांतला सारा काळोख एकदम नाहींसा झाला. प्रकाश पडल्यासारखें झालें...ती उलट हसली...आतां तिला कोणी ओळखील, हटकील, रोखील, असा संभव उरला नव्हता, तिनें केलेलें साहस तडीला गेलें होतें. तिच्या मनावरचें दडपण नाहींसें झालें होतें. अंतःकरण हलकें झालें होतें. त्या हलकेपणाच्या लहरींत तिनें गंगाधराच्या खांद्यावर डोकें टेकलें. त्याचा हात आपल्या डाव्या खांद्याभोंवती लपेटून घेतला, आपल्या वक्षस्थळावर त्याचा पंजा दाबून धरल्यासारखा धरला आणि तिनें डोळे मिटले...

किती वेळ ती त्या सुखांत पडली होती कुणास ठाऊक.

ती भानावर आली ती गंगाधर आपल्याला कांहींतरी विचारीत आहे असं तिला वाटलें म्हणून.

तिनें डोळे अर्धवट उघडले आणि म्हटलें, "आं ?"

त्याच्या आणि तिच्या अगदीं पहिल्या भेटींत 'आं ?' असें तिनें विचारल्याबरोबर त्याला हसूं आलें होतें. तिचा तो उद्‌गार त्याला आवडल्याचें तिला कळलें होतें. नंतरच्या सहवासांत तिनें मुद्दामच 'आं ?' असा उद्‌गार काढावा, आणि तो ऐकला कीं त्यानें खुषीनें हसावें, असें अनेक वेळां झालें होतें.

हें तिला आठवलें, आणि तिला वाटलें आतांहि तो हसेल.

पण तो हसला नाहीं...गंभीर चर्या करून तिच्या कानाजवळ तोंड लावून त्यानें हलक्या आवाजांत विचारलें, "मी सांगितल्याप्रमाणें दागिने आणलेस ना ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं और फिर भी मैं उसके साथ भागी जा रही हूँ, कहीं उसने मुझे धोखा तो नहीं दिया, फँसाया तो नहीं। कहीं इसका आसरा झूठा तो न होगा ?.....

धक्का लगा और सभी डिब्बे आगे सरके, पीछे गए और फिर आगे सरके। सारी ट्रेन हिल गई और तुरंत ठीक से चल पड़ी। प्लेटफार्म के व्यक्ति पीछे छूट गए, प्लेटफार्म खत्म हुआ, ट्रेन की गति बढ़ी। गाड़ी पुल पर से गुज़रने लगी। खिड़की से पानी दिखने लगा।

छूटे एक बार...इस प्रकार का सुखद विचार शालिनी के मन में आया। डिब्बे के आदमी धीरे-धीरे और पसरकर बैठने लगे, ज़ोर-ज़ोर से बातचीत करने लगे। सिगरेट के धुँए से सारा डिब्बा भर गया। गंगाधर शालिनी की ओर देख मुस्कराया।

शालिनी के मन का अंधेरा एकदम दूर हो गया। वहाँ प्रकाश की ज्योति चमकी मुँह पर भी हँसी। अब उसे यह डर न था कि कोई उसे पहचानेगा, रोकेगा। उसका मन प्रसन्न हो रहा था उसका मन अब हल्का पड़ रहा था। उसी खुशी में उसने अपना सिर गंगाधर के कंधे पर रखा, उसका हाथ अपने बांएँ कंधे के ऊपर से लाकर अपने आप को उस में लपेट उसका पंजा अपने वक्षस्थल पर दवा रखा और उसने अपनी आँखें वंद कर लीं ——

न जाने कितने समय तक वह उसी सुख में डूबी रही। वह उस तंद्री से तभी जागी जब उसे ऐसा लगा मानो गंगाधर उससे कुछ पूछ रहा है। उसने उनींदे स्वर में पूछा—"ऐं!"

उनकी पहली मुलाकात में ही शालिनी के 'ऐं' कहने पर गंगाधर को हंसी आ गई थी। बाद में उसे पता चला कि गंगाधर को उसका वह उद्गार प्रिय था अतः बाद के दिनों में कई बार उसने जानबूझकर 'ऐं' किया और हर बार गंगाधर खुशी से मुस्कराया था। यह सब याद आने पर उसने सोचा था कि गंगाधर इस बार भी हँसेगा परंतु वह हँसा नहीं—उल्टे गंभीर चेहरा कर उसके कानों के पास चेहरा ले जाकर धीरे से बोला—"गहिने लाई हो ना ?"

उसने इशारे से बताया कि हाँ लाई हूँ।

"कहाँ रखे हैं ?"

"सूटकेस में।"

"सूटकेस कहाँ है ?"

"क्या मतलब है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तिनें खुणेनें उत्तर दिलें. आणले आहेत.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुठें ठेवले आहेस ?

"सूटकेसमध्यें.

"सूटकेस कुठें आहे ?.'

"म्हणजे काय ?"

"कुठें दिसत नाहीं म्हणून विचारतों. तुझ्या हातांत नव्हती काय ?"

"पहिल्यांदा होती. पण मग एका हमालाजवळ दिली होती. आपण डब्यांत चढलों तेव्हां तूं हमालाकडे लक्ष ठेवशील, त्यानें सूटकेस ठेवली कीं नाहीं बघशील असं मला साहजिक वाटलें"

"दीडशहाणे ! महागाढव आहेस तूं !"

असं अत्यंत विचित्र आवाजांत बोलून त्यानें तिला एकदम धसकन दूर लोटून दिलें. तो उभा राहिला, आणि वरच्या रेकवर, खालीं बाकाखालीं, इकडे तिकडे सूटकेस कुठें आढळते का तें तो बघूं लागला.

त्यानें तिला इतक्या जोरांत ढकलून दिले होतें कीं ती आडवी झाली होती आणि तिचा पदर ढळून तिचें अंग उघडें पडलें होतें. ती कशीबशी सावरून बसली. पदर पुन्हा नीट अंगावरून ओढून घेऊं लागली. तिच्या शरीराला धक्का बसला होता. आणि त्याहिपेक्षां मोठा धक्का बसला होता तिच्या मनाला. गंगाधराचा हा नवाच अवतार ती बघत होती !...

सूटकेस सापडत नव्हती म्हणून तो आजूबाजूच्या उतारूंना सरकायला लावीत होता, उठायला सांगत होता, त्यांच्या सामानाची चिवडाचिवड करीत होता, ओढाओढ करीत होता, त्या माणसांनीं हटकलें कीं त्यांच्यावर रागानें खेकसत होता...पुन्हां पुन्हां शालिनी कडे डोळे वटारून बघत होता, दांतओंठ खात गांवठी शिव्या देत होता...जणू सूटकेस सापडली नाहीं तर त्याचा एक फार मोठा बुरूज ढासळणार होता... जणु ती त्याच्याबरोबर घर सोडून निघाली होती या गोष्टीला कांहीं महत्त्व नव्हतेंच.. जणु त्याला ती नको होती, तिचे दागिने हवे होते !

गंगाधरानें डब्यांतल्या साऱ्या माणसांना सरकायला लावलें, उठायला लावलें, शिव्या खाल्लया, उलट शिव्या दिल्या, भांडणें केलीं, सामान फराफरा ओढलें, पुन्हा फराफरा सरकविलें, आणि सारी शोधाशोध वाया गेली तेव्हां परत जागेवर येऊन तो तिच्यापुढें उभा राहिला आणि साऱ्या लोकांच्या देखत तिच्यावर हात उगारून तो खेकसला, "देऊं का चार मुस्काटांत ?

तो घामानें निथळला होता. त्याचे केस पिंजारले होते. डोळे दारूनें झिंगल्या-सारखे लाल झाले होते.

तिला वाटलें हा पिसाळलेला माणूस आतां खरोखर आपल्या थोबाडींत देणार. तिनें दोन्ही हातांनीं तोंड झाकून घेतलें... ती मोठाले हुंदके देऊन रडूं लागली. "रडते आहे गाढवीची !" असे त्याचे शब्द तिला ऐकूं आले.

दुसऱ्याच क्षणीं तो धपकन् तिच्या शेजारीं बसला. त्याच वेळेस गाडी थांबली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...हीं दिख नहीं रहा, अतः पूछ रहा हूँ तुम्हारे हाथ में नहीं था क्या ?"

...ते तो था फिर एक कुली को दिया था जब हम डिब्बे में चढ़ रहे थे मैंने सोचा ...की तरफ़ नज़र रखोगे और देखोगे कि उसने उसे चढ़ाया या नहीं ।"

...कूफ़ ! महान मूर्ख हो तुम ।"

...ड़ी ही विचित्र आवाज़ में कह गंगाधर ने उसे झटके से अपने से दूर कर दिया । ...होकर ऊपर के रैक पर, बर्थ के नीचे इधर उधर चारों ओर सूटकेस की खोज ...गा ।

...ने शालिनी को इतने ज़ोर से धक्का दिया था कि वह वहीं बर्थ पर आड़ी हो गई ...उसका पल्ला सरक सारे अंग स्पष्ट दिखने लगे थे । उसने झट से पल्ला ठीक ...और संभल कर बैठी । उसके शरीर को तो धक्का लगा ही था उससे ज़बरदस्त ...लगा था उसके मन को । गंगाधर का यह नवीन रूप वह पहली बार देख ...ही ।

...केस की खोज में वह यात्रियों को यहाँ से वहाँ कर रहा था । उन्हें कभी खड़ा ...को कहता, उनके सामान की खींचतान करता । उनके मना करने पर उन लोगों ...गरम हो रहा था—बार-बार क्रोधी नज़रों से शालिनी की ओर देखता, ओंठ ...कर उसे गंदी गालियाँ दे रहा था—मानों सूटकेस न मिलने पर उसका सारा ...व्यूह ही नष्ट होने वाला था । मानों शालिनी के उसके साथ भाग चलने का कोई ...ही न था—शालिनी का कोई महत्त्व ही न था मानों गहने ही सब कुछ थे उसे !

...गाधर ने सारे यात्रियों को सरकाया, उठाया, गाली दी, गाली खाई, बार-बार ...का सामान यहाँ से वहाँ किया और इतने पर भी जब उसे सूटकेस न मिला तो वह ...लिनी के पास वापिस आकर सभी यात्रियों के सामने ही उस पर हाथ उठाता ...ा—

"...दूँ क्या चार हाथ तेरे मुँह पर ?"

...ह पसीने से तर था, बाल बिखरे, आँखें शराबी के समान लाल हो रही थीं। ...लिनी ने सोचा अब यह जंगली आदमी कहीं सच में न मार दे । उसने दोनों हाथों ...से अपना चेहरा ढाँक लिया और वह ज़ोर से रोने लगी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिनें तोंडावरचे हात काढले नाहींत... कोणतें स्टेशन आल ते पहाण्याची किंचीतहि इच्छा तिला नव्हती...असेल कुठलेंहि स्टेशन...आतां कशांतच कांहीं अर्थ उरला नव्हता...ती कुणाबरोबर जात होती, कुठें जात होती, कां जात होती या साऱ्याच गोष्टी आतां अर्थशून्य झाल्या होत्या. या दुनियेकडे डोळे उघडून पहाण्याची उत्सुकता तिला वाटतच नव्हती...

माणसें डब्यांतून उतरलीं, चढलीं, कलकलाट झाला, ट्रंका, पेट्या, वाहणारे अशा वस्तूंचे आवाज झाले...तिच्या दुसऱ्या बाजूला कुणी उतारू येऊन बसला...या साऱ्या गोष्टी डोळे न उघडतांच तिला समजल्या...गाडी त्या स्टेशनांतून हालली, वेगानें धावूं लागली...चाकांचा खडखडाट तिच्या डोक्यांत भरला तरी तिनें तोंडावरचे हात काढले नाहींत...

तिच्या डाव्या बाजूला येऊन बसलेल्या माणसाने एकदम मोठ्यांदा म्हटलें "अरे भाई सुलेमान ना तूं? तुला मी नीट पाहिलेंच नव्हतें! कुठें गेला होतास? कुठें निघालास?"

"कांहीं कामासाठीं पुण्याला गेलों होतों. आतां परत मुंबईला चाललोंय."

हें उत्तर देणारा आवाज गंगाधराचा असल्याचे शालिनीनें ओळखलें. आणि ती आश्चर्यानें थक्कच झाली!

सुलेमान नांवाच्या माणसाला विचारलेल्या प्रश्नाचें उत्तर गंगाधरानें द्यावें हा काय चमत्कार होता?——त्या आश्चर्याच्या आवेगांत तोंडावरचे हात दूर करण्याची जोराची इच्छा तिला झाली. परंतु ती स्वतःशीं म्हणाली मला भास होत असेल. तोंड झाकलेले ठेवून ती ऐकत राहिली...

"तुम्हाला सगळ्यांना सव्वा वर्षाची शिक्षा झाली होती, नव्हे? तुझी सुटण्याची वेळ केव्हां झाली त्याकडे आमचे लक्षच नव्हते. केव्हां सुटलास तूं?"

"सुमारें महिना झाला."

या उत्तराचाहि आवाज गंगाधराचाच होता खास!

शालिनीला कळेना या विचित्र प्रकाराचा अर्थ!

तरी तोंडावरचे हात तसेच ठेवून ती पुढें ऐकत राहिली.

"भाई सुलेमान, माझें ऐक. झुबेदाला नांदवायसाठीं घेऊन ये आणि नीट मार्गाला लाग. संसार कर. किती दिवस ठेवणार तूं तिला तिच्या बापाच्या घरीं? झुबेदाचा मी आतेभाऊ म्हणून माझा जीव तिळतिळ तुटतो. खरें कीं खोटें! क्यूं? अरे भाई बोल ना कांहींतरी बोल.'

"झुबेदाचा आतेभाऊ असलास म्हणून मला शहाणपणा शिकविण्याचा हक्क आहे तुला? उगाच चोंबडेपणा करूं नकोस. मला हवा तसा वागेन मी."

हाहि आवाज गंगाधराचाच होता!"

"या बाई अशा रडताहेत का? तुझ्याबरोबरच आहेत काय त्या?"

"होय, त्यांचे वडील ओळखीचे निघाले. म्हणाले मुंबईपर्यंत सोबत कराल काय? मुंबईच्या स्टेशनावर त्यांना उतरवून घेण्यासाठीं त्यांचा नवरा येणार आहे."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोती है ऊपर से [illegible]क ।" इतना कह वह धप्प से उसके पास फिर से बैठ
[illegible] और तभी ट्रेन रुकी ।

उसने चेहरे पर से हाथ न उठाया——उसकी यह देखने की इच्छा न थी कि कौन सा
[illegible] आया—होगा कोई भी स्टेशन । अब क्या लेना ? अब उसे ये सारी बातें
[illegible] लग रही थीं कि वह किसके साथ जा रही है । कहाँ जा रही थी आदि । इस
[illegible] को अब उसे आँखें खोल देखने की इच्छी ही न रही थी——

[illegible] यात्री उतरे-चढ़े, ट्रंक, पेटी, बाल्टी आदि की आवाज़ें आईं । उसके दूसरी ओर
[illegible] अन्य यात्री आकर बैठा । बगैर आँखें खोले उसने यह सब अनुभव किया——
[illegible] उस स्टेशन से आगे चली, पहियों की घरघराहट उसके दिमाग में घूम रही थी
[illegible] भी उसने चेहरे पर से हाथ न उठाया——

उसके बाईं ओर बैठे मुसाफिर ने अचानक ही कहा "अरे भाई तुम हो सुलेमान ?
[illegible] तो तुम्हें ठीक से देख भी न पाया था ? कहाँ गए थे ? कहाँ जा रहे हो ?"

"कुछ काम से पूना गया था अब वापिस बंबई जा रहा हूँ ।"

यह उत्तर देने वाली आवाज़ तो गंगाधर की थी । शालिनी आश्चर्य से चकित
हो गई ।

सुलेमान नामक व्यक्ति से पूछे गए प्रश्न का उत्तर गंगाधर ने दिया । ये क्या
[illegible] है ? उसे जानने की उत्कट इच्छा से उसने हाथ हटाने की सोची परंतु दूसरे
ही क्षण सोचा मैंने शायद सुनने में गलती की हो अतः वह फिर सुनने लगी——

"तुम सभी को सवा-सवा साल की सज़ा हुई थी ठीक है ना ? तुम्हारे छूटने के समय
[illegible] ख्याल ही न रहा । कब छूटे तुम जेल से ?"

"करीब महिना भर हो गया ।"

इस उत्तर की आवाज़ भी गंगाधर की ही थी । शालिनी को इस विचित्रता का
अंदाज़ ही न लग रहा था । वह फिर से मुँह पर हाथ रखे ही सुनती रही——

"देखो भाई सुलेमान मेरी बात मानों तो जुबेदा को वापिस ले आओ, अच्छे धंधे
में लगो, उसके साथ प्रेम से गृहस्थी करो, आखिर कितने दिन उसे उसके बाप के घर
रखोगे ?

जुबेदा का फूफी जाद भाई होने से मुझे यह अच्छा नहीं लगता, सच कहूँ तो, अरे
भाई बोलो ना ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकीकडे शालिनीला वाटत होतें हात दूर करावे आणि जें विचित्र सत्य तिला नव्यानें कळत होतें त्या सत्याकडे धैर्यानें, निर्धारानें बघावें. पण दुसरीकडे तिला वाटत होतें, नको ! तिच्या हातांत तोंडावरून दूर होण्याचीदेखील शक्ति उरली नव्हती.

तितक्यांत रुळांवर चाकांचा खडाड् खडाड् आवाज झाला. गाडीचा वेग कमी झाला. गाडी थांबली, स्टेशन आलें असावें.

तिच्या डाव्या अंगाला बसलेल्या झुबेदाचा आतेभाऊ का कोण होता तो माणूस उठला. "अच्छा भाई सुलेमान, इथें दापोडीला असतों मी. भेटलास वरें वाटलें. झुबेदाला नांदवायला आण म्हटलें मी तें लक्षांत ठेव.

गाडी सुटली. जोरांत धावूं लागली.

तोंडावरचे हात दूर करून गंगाधराकडे बघावें कीं न बघावें त्याचा निर्णय शालिनीला करता येईना.

ती तशीच तोंड झाकून बसली. . . मनाची अशी कांहीं तोडमोड झाली होती कीं विचाराची क्रियाच संपली होती. स्वतःच्या अवस्थेचें आकलनच तिला करता येत नव्हतें. तिला हुंदकेंदेखील आतां येत नव्हते. जणु दुःखाच्या आघातांत ती थिजून गोठून गेली होती. एखाद्या निश्चेष्ट पुतळीसारखी ती बसून राहिली. . .

शेवटीं डब्याला असा कांहीं जोराचा हादरा बसला कीं तिचा तोल पार गेला . . . तोंडावरचे तिचे हात दूर झाले . . . तिनें बघितलें तो गंगाधर तिच्या शेजारीं तिला दिसेना ! . . . तिला चमत्कार वाटला . . . पण दुसऱ्याच क्षणीं तो तिच्या दृष्टीस पडला. तो संडासांत शिरत होता . . .

शालिनीची सारी जाणीवच मेल्यासारखी झाली होती. अर्थात् वेळेची शुद्ध तिला नव्हती. परंतु तरी देखील तिच्या लक्षांत आलें कीं, फार वेळ झाला तरी गंगाधर संडासांतून बाहेर आला नव्हता . . . गाडीचा वेग मंदावला. कोणत्या तरी स्टेशनाच्या यार्डांत गाडी शिरली. उभी राहिली . . .

विद्युत् प्रवाहावर चालणारें एखादें यंत्र बराच वेळ बंद पडलेलें असावें, आणि प्रवाह पुन्हां सुरू झाल्यामुळें तें एकदम सुरू व्हावें त्याप्रमाणें बराच वेळ बंद पडलेलें तिचें विचारचक्र एकदम चालू झालें. चालु झालें याचा अर्थ उलट सुलट विचार ती करूं लागली असा नव्हे. फक्त एकाच विचाराचा झोत पाण्याच्या तोटींतून एकदम सुटल्याप्रमाणें सुटला . . . आणि त्या विचाराच्या आहारीं ती अगदीं पूर्णपणें गेलीं . . .

आपली पर्स हातीं घेऊन ती जागेवरून उठली. ओचे पदर सावरीत दाराकडे गेली. उतरली. फलाटावरून झपाझप चालूं लागली . . . ज्या दिशेला स्टेशनाची छोटी इमारत होती त्या दिशेनें नव्हे. उलट दिशेनें . . . बोट दाखविणाऱ्या बाईचें रंगीत चित्र एका कळकट भिंतीवर तिला दिसलें. ती झटकन पुढें झाली आणि त्या भिंतीच्या आडोश्याला उभी राहिली . . .

गाडी निघून गेली . . . गंगाधर खाली उतरला नव्हता याची खात्री करून घतल्यावर शालिनी भिंतीचा आडोसा सोडून फलाटावर आली. स्टेशनाच्या पाटीवरचीं 'तळेगांव', अशीं अक्षरें तिनें वाचलीं. स्टेशनाच्या मुख्य इमारतीकडे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ तो बोलो तुम भी ?"

जुबेदा के भाई होने से बेकार मेरे ऊपर अधिकार मत जताओ, समझे। मुझे जैसा लगेगा वैसा करूंगा।"

आवाज भी गंगाधर की ही थी।

"बाई यूं रो क्यों रही है ? तुम्हारे ही साथ है ना ?"

"हां, उनके पिताजी पहचान के निकले, कहने लगे बंबई तक आपका साथ रहेगा। स्टेशन पर इन्हें लेने उनके पति आने वाले हैं।

एक ओर शालिनी सोचती कि चेहरे पर से हाथ दूर कर इन नवीन एवं विचित्र ... दूसरी ओर धैर्य एवं साहस से देखे परंतु दूसरी ओर उसका मन कहता, नहीं-नहीं। ... हाथों में अब दूर करने लायक ताकत भी शेष न रही थी।

इतने में ही रेल के पहियों की घरघराहट कम हुई गति कम होकर गाड़ी ठहर गई। ... कोई स्टेशन होगा। उसके बाईं ओर बैठा जुबेदा का भाई उठा।

"अच्छा भाई सुलेमान यहीं दापोड़ी में उतरूंगा। तुम मिले बड़ी खुशी हुई। जुबेदा ... वापिस लाने की बात पर गौर करना।"

गाड़ी छूटी और तेज़ी से भागने लगी। शालिनी यह निर्णय न कर पा रही थी कि ... उजागर किए जाएं या नहीं ? वह उसी प्रकार चेहरा ढांक कर बैठी रही। उसका ... इतना उदास हो गया था कि सारी चेष्टाएं ही बंद हो गई थीं। स्वयं की अवस्था ... समझ न पा रही थी। अब तो उसका सिसकना भी बंद था। दुख के आघात से ... जड़-सी होकर एक पुतले समान बैठी रही——————

—आखिर डिब्बे में अचानक एक ऐसा झटका लगा कि वह अपना शरीर न ... पाई—उस के हाथ अपने आप ही दूर हो गए —उसने देखा लेकिन गंगाधर ... कहीं नजर न आया। वह आश्चर्य कर ही रही थी कि तभी उसने गंगाधर को ... में प्रवेश करते देखा।

शालिनी की सारी चेतना ही मृतप्राय सी हो रही थी, समय का उसे भान न था ... भी उसने देखा कि बहुत समय बीत जाने पर भी गंगाधर संडास से बाहर न निकला ... ट्रेन की गति कम होकर उसने किसी स्टेशन के यार्ड में प्रवेश किया।

जिस प्रकार कोई बिजली का यंत्र प्रवाह बंद पड़ने पर बंद हो जाता है और फिर ... आने पर एकदम चालू हो जाता है उसी प्रकार शालिनी का विचार चक्र फिर ... हो गया वह उल्टे सीधे विचार न कर बस एक ही विचार कर रही थी और उसी में ... तरह डूब गई——————

हाथ में अपना पर्स लेकर वह अपनी जगह से उठकर पल्ला ठीक करती दरवाज़े की ... बढ़ी। नीचे उतर प्लेटफार्म पर तेज़ी से चलने लगी, स्टेशन पर एक बाई का ... उंगली बताते दिखा और वह झट से उसी दीवाल के पीछे जा खड़ी हुई——————

गाड़ी चली गई। उसने जब यह अच्छी तरह से देख लिया कि गंगाधर वहाँ उतरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ती पावलें टाकूं लागली. . .आतां तिच्या चालण्यांत घाई नव्हती. मनानें ठरवून चालल्याप्रमाणें तिचीं पावलें पडत नव्हतींच.. केवळ शरिराची संवय. म्हणून उजवें डावें पाऊल आळीपाळीनें उचललें जात होतें. . .परंतु तशाहि हेतुशून्य मंद चालीनें ती फलाटाच्या ज्या भागावर छप्पर होतें त्या भागांत पोंचलीच. . . एक बाक तिच्या नजरेस पडलें, त्यावर ती कोसळल्यासारखी बसली. . .तिच्या अंगांतलें सारें त्राण संपलें होतें. ज्या संकटांतून ती सुटली होती त्याच्या भयंकर-पणाचा एवढा धसका तिच्या मनाला बसाला होता कीं, सुटकेच्या आनंदानें नवा उत्साह वाटण्याऐवजीं संपलेल्या भीतीचाच पगडा तिच्यां मनावर आणि शरीरावरहि अजूनसुद्धां होता. . .कोसळल्याप्रमाणें बांकावर बसण्याच्या क्षणीं तिला असें देखील वाटलें कीं या बेहोशींतच आपल्याला मरण येणार. . . समाधानाचें हसूं तिच्या चेहऱ्यावर फुटलें होतें. ती स्वतःशीं म्हणाली होती, विटंबना न होतां मला मरण येत आहे केवढें माझें भाग्य ! . . .

तिच्या पुढून तीन चार माणसें इकडून तिकडे गेलीं. . .एका पोर्टरानें तिच्यापुढे थबकून विचारलें, "पुण्याहून आलां काय ? का पुण्याला जायचेंय ? "

.. तिनें त्या माणसाकडे बघितलें. कांहीं उत्तर न देतां ती बघतच राहिली. त्या माणसाला आश्चर्य वाटले. पण तो निघून गेला. . .त्यानें विचारलेल्या प्रश्नांचे प्रतिध्वनी शालिनीच्या मनांत उठले. . .मी कोठून आलें ? मला कुठें जायचेंय?..

देवळाच्या गाभाऱ्यांत उठलेल्या आवाजाप्रमाणें ते प्रश्न तिला ऐकूं आले, परंतु त्या प्रश्नांना उत्तरें नव्हतीं. . .ती कोठून आली होती ? कुठें जाणार होती ? . . .तिला कळत नव्हतें. मागें काय राहिलें होतें, आणि ज्याकडें जायचें अ पुढें काय होतें याची त्या क्षणीं तिला जाणीव नव्हती. पुढें, मागें, इकडे, तिकडे, अशा दिशाच तिच्या जीवनाला त्या क्षणीं उरल्या नव्हत्या. . .

मग किती वेळानें कुणास ठाऊक, तिच्या मनांत आलें पुण्याकडे जाणारी एखादी गाडी येणार असेल, त्या गाडीनें पुण्यास जावें, जावें नव्हे, जायलाच हवें. या बांकावर तर बसून रहातां येणार नाहीं, आपल्याला जन्मभर ? पुण्यास, जायला हवें. बापाच्या घरीं. हो काय हरकत आहे ? . . .आपली शोधाशोध लगेच सुरू होऊं नये म्हणून तिनें सकाळीं कचेरीस जातांना आपल्या सावत्र आईला सांगितलें होतें, परत यायला उशीर होईल मला, कचेरींतल्या लोकांचें स्नेहसंमेलन आहे. . .ती रात्रीं घरीं पोंचली तरी कांहींच विघडणार नव्हतें. पळून जाण्याचा बेत तिनें केला होता याचा संशय कुणाला येण्याचा संभव नव्हता.. तिचा बाप आणि तिची सावत्र आई सिनेमाला गेलीं होती त्याचा फायदा घेऊन तिनें दागिने काढून घेतले होते, आणि ते दागिने आतां ती गमावून बसली होती. परंतु हा प्रकार आजच्या आज उघडकीला आला असेल असा संभव नव्हता. जेव्हां तो उघडकीला येईल तेव्हां काय होतें तें पहातां येईल. . .कदाचित् असें देखील होईल कीं, फक्त तिच्यांवाटचाचें दागिनेच नाहींसे झालेले आढळतील तेव्हां तिचा बाप किंवा तिची सावत्र आई कांहीं बोभाटा न करतां स्वस्थ बसतील. फार तर तिला विचारतील तूं घेतलेस काय ? आणि तिला कानावर हांत ठेवून म्हणता येईल, मी कोठून घेणार हो ? तुम्हीं बंदोबस्तांत ठेवले आणि मला विचारतां ?" इतकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वह दीवाल की आड़ छोड़ प्लेटफार्म पर आ गई। स्टेशन की इमारत पर "...गांव" नाम उसने पढ़ा और वह इमारत की ही ओर बढ़ी। अब उसके चलने में ...न थी फिर भी कदम ठीक न पड़ रहे थे मशीन के समान दायाँ-बायाँ पड़ रहा था। ...स्थिति में वह प्लेटफार्म के मध्य पहुँची और वह एक बेंच पर एकदम से आकर गिरी ...के शरीर की सारी शक्ति समाप्त हो गई थी। जिस महान संकट में से वह छूटी ...उसकी भयंकरता के सामने उसे अपने इस छुटकारे की आनंद की खुशी न हो पा ...थी। उसके मन एवं शरीर पर अभी भी उस संकट की छाप थी। बेंच पर गिरते ... उसे लगा कि वह इसी बेहोशी की-सी स्थिति में ही मर जाएगी——— ...की झलक चेहरे पर आई, वह स्वयं से बुदबुदाई———बगैर कष्ट के मुझे ...आ रही है। यह मेरा कितना अच्छा भाग्य ———

उसके सामने से तीन-चार व्यक्ति यहाँ से वहाँ गए। एक पोर्टर ने उसके सामने ...पूछा———"पूना से आ रही हैं ?" या फिर पूना जाना है ? उसने उस व्यक्ति की ओर देखा और बगैर कुछ कहे देखती ही रही। उस व्यक्ति को बड़ा आश्चर्य ...लेकिन वह फिर चला गया। उसके पूछे हुए प्रश्नों की प्रतिध्वनि शालिनी के ...में उठ रही थी———मैं कहाँ से आई ? मुझे कहाँ जाना है ?———

मंदिर के गुंबज़ में गूँजती ध्वनि के समान उसे ये प्रश्न बार-बार सुनाई पड़ते परंतु ...प्रश्नों के उत्तर न थे। वह कहाँ से आई ? कहाँ जाने वाली थी ? उसे स्वयं पता ...था वह पीछे क्या छोड़ आई और आगे जहाँ जाना वहाँ क्या था उसे कुछ भी समझ में ...आ रहा था। इस समय उसके जीवन में आगे, पीछे इधर-उधर ऐसा कोई भी दिशा ...थी———

. .

फिर काफी देर बाद उसने सोचा कि कोई पूना की तरफ जाने वाली गाड़ी आती ...। उससे पूना जाऊँ या यूँ कहो जाना ही चाहिए। क्योंकि जिंदगी भर इस बेंच ...तो बैठी नहीं रह सकती हूँ। पूना जाना ही होगा पिता के घर ?———हाँ हाँ, ...क्या है। मेरे भागते ही मेरे खोजबीन न होने लगे अतः उसने सुबह अपनी सौतेली ...से कह दिया था कि आज रात वह देर से घर आएगी क्योंकि आफिस में लोगों का ...सम्मेलन है आज———इस प्रकार यदि वह देर से भी घर पहुँचेगी तो कोई ...नहीं। उसके भाग जाने की शंका किसी को हो नहीं सकती थी। उसने माँ-बाप ...बाहर जाने का फायदा उठा अपने गहने निकाल लिए थे जो वह अब गंवा बैठी ...। परंतु गहने की बात आज के ही आज पता न चलेगी जब वह सामने आएगी उस समय ...क्या करना उचित होगा———यह भी तो संभव है कि उसके माँ-बाप यह ...कि केवल उसके गहने नहीं हैं शायद चुप ही बैठें और बहुत होगा तो पूछेंगे कि क्या ...ने निकाल लिए हैं ? और वह तुरंत कान पर हाथ रख कर कह देगी—"मैं ...कहाँ से निकालूंगी ?" आप लोगों ने ताले चाबी में बंद रखे और पूछते मुझ से ...? इतना ही क्यों वह यह भी तो कह सकती है कि आप लोगों को मेरे गहने देना नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काय. असें देखील कुभांड घेता येईल की, कुठेंदेखील गेले नाहींत दागिने. तुम्ही जवळच आहेत. ते मला द्यायचे नाहींत म्हणून ते चोरीला गेल्याची खोटी हूल तुम्ही उठवीत आहां. . .बापाच्या घरीं परत जाण्याचा तिचा मार्ग बिनधोक होता. . .

थोड्या वेळापूर्वी ज्या पोर्टरानें तिला विचारलें होतें तोच तिच्यापुढून आतां चाललेला दिसला तेंव्हां तिनें विचारलें, "पुण्याकडे जाणारी गाडी केंव्हां येईल हो ?"

तो तिच्याकडें बघून विचित्र हसला आणि म्हणाला, "आतां जाग्या झालां होय तुम्ही ? मघाशी मी काय तुम्हाला कानडींत विचारलें होतें ? काय एकेक तऱ्हेवाईक माणसें असतात. पुण्याची गाडी आतां इतक्यांत येईलच बघा. तिकीट काढलेंय का ? काढलें नसेल तर तिकडे जाऊन काढा बघूं आधीं. आवरा बिगी बिगी."

असें सांगून जातां जातां फलाटाच्या कडेला जाऊन त्यानें आपल्या हाताची दोन बोटें ओठावर उभीं दाबलीं, तंबाकूची भली मोठी पिचकारी रुळावर टाकली, आणि चंचीभोवती दोरी गुंडाळीत तो निघून गेला. . .

पुण्याला गाडी दाखल होत असल्याची वर्दी देणारा घंटेचा टोला पडला तेंव्हां पांचपंचवीस माणसांच्या गर्दीत शालिनी तिकीट काढून तयार होऊन उभी राहिली होती,. . .तिच्या मनांत सारखें येत होतें, दहन भूमीवरून परतलेल्या माणसांत आणि आपल्यांत काय फरक आहे? . . .ती घरीं जात होती खरी. तिच्या बापाला किंवा आईला कसलीच शंका येण्यासारखी नव्हती खरी, पण आपल्या प्रीतीचा आणि संसारसुखाचा दहनविधी आटोपून ती परतत होती. ती सुतकांत होती. . .दुःखांतही सुख होतें तें एवढेंच कीं तिच्या जन्माचें वाटोळें झालें असतें तें टळल होतें. तिनें खाईंतच उडी घेतली होती, परंतु ती बचावली होती. तिचा मूर्खपणा, भोळेपणा आंधळेपणा, विटंबना घरांत कुणाला कळणार नव्हती, जगाला समजणार नव्हती. . .

परंतु त्या क्षणीं शालिनीला अशी एक विचित्र इच्छा झाली कीं, आपली विटंबना गुप्त ठेवूं नये. . .वयानं वाढलेल्या, लग्नावाचून राहिलेल्या, पुरुषाच्या प्रेमासाठीं भुकेलेल्या किती तरी साध्या भोळ्या तरुण मुली घरोघरीं होत्या. कचेऱ्यांतून कामें करीत होत्या. संसारसुखाची आणि आपली चुकामूक तर होणार नाहीं, अशा शंकेनें या तरुण मुली बावरलेल्या होत्या. लबाड पुरुषांच्या कट-जालांत पाऊल टाकणार होत्या. आपल्या आवडीचा कुणी तरी पुरुष भेटेल, त्याच्यावर आपलें प्रेम जडेल, त्याला आपण वश करूं, त्याच्या प्रीतीचा आडोसा आपल्याला मिळेल, अशा वेड्या आशेला गुंतलेल्या तरुण मुली जिकडे तिकडे होत्या. . .त्यांना सर्वांना ओरडून सांगावें कीं, बायांनो, जपून पाऊल टाका! दवबिंदूनीं भिजलेली हिरवळ पाहून पाय ठेवाल, परंतु तिथें सर्प असेल! चकाकतें म्हणून हातीं घ्याल, परंतु तें सोन्याऐवजीं पितळ असेल! . . .शालिनीला वाटलें आवाज शक्य तितका उंच करून हें सारें सांगावें! . . .

तितक्यांत पुढें पुढें सरकत येणाऱ्या एंजिनाचें धूड तिला दिसलें. फलाटावरचा कलकलाट वाढला. धाड् धाड् आवाज करीत गाडीचे डबे अंगावरून गेले. गाडी थांबली. कुणीतरी तिला लोटलें. कुणाच्या तरी मागोमाग दाराची पायरी चढून ती डब्यांत शिरली!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः चोरी चले जाने का बहाना कर रहे हैं———याने पिता के घर वापिस जाने खतरा न था———

कुछ देर पूर्व जिस पोर्टर ने उससे पूछा था अब उसे ही सामने से जाता देख शालिनी पूछा———"पूना की ओर जाने वाली ट्रेन कब आएगी ?"

वह उसकी ओर देख अजीब तरह से मुस्करा कर बोला "अब आपकी नींद खुली है ? समय मैंने क्या आपसे कन्नड़ में पूछा था ? क्या एक से सब लोग होते हैं। पूना ट्रेन बस अब आने ही वाली है, टिकिट तो निकाल लिया है ना ? और यदि न निकाला हो पहले जल्दी से वहाँ जाकर टिकिट ले लो––चलो जल्दी चलो।

इतना कह जाते-जाते उसने प्लेटफार्म के किनारे पर जाकर तंबाकू की पीक थूकी और अपने बटुए को बंद करता वह आगे चला गया———

जब पूना की गाड़ी स्टेशन पर आकर रुकी तब भीड़ के साथ शालिनी भी अपना टिकिट खरीद कर तैयार खड़ी थी––बारबार वह सोचती कि उसमें और श्मशान भूमि से लौटने वाले में क्या भेद ?———यह सच था कि वह घर जा रही थी उसके माँ-बाप को किसी बात का शक न होता फिर भी वह अपने प्रेम का, काल्पनिक सुख-संसार का अंतिम संस्कार कर लौट रही थी। वह अशुद्ध थी। दुख में भी सुख कहने को इतना ही था कि उसका सर्वनाश होते-होते बच गया। उसने खाई में ही छलांग लगाई थी परंतु वह बच गई थी उसकी मूर्खता, भोलापन, अंधापन, आदि किसी को भी घर में न मालूम पड़ सकता था और न दुनिया को ही उसका पता था।

परंतु उसी क्षण शालिनी ने सोचा अपनी घटना गुप्त रखना ठीक नहीं——— इतनी उम्र की, बगैर विवाह की पुरुष के प्रेम की प्यासी न जाने कितनी भोली युवतियाँ घर-घर में हैं, आफिसों में काम करती हैं, वे सोचती हैं मानों उनके भाग्य में संसारका सुख नहीं है। वे इन्हीं भावों से प्रेरित हो लुच्चे कपटी पुरुषों के कपटजाल में फँसने को सोच रही हैं। जिधर देखो उधर ही इस प्रकार की लड़कियाँ मिलेंगी जो यह सोचती हैं कि हमारा मनपसंद कोई पुरुष मिलेगा। उससे प्रेम होगा उसे वे वश में करेंगी। उसके प्यार का उन्हें आसरा मिलेगा, इस प्रकार की झूठी आशाएँ पाने वाली लड़कियों से शालिनी जोर से कहना चाहती है––ज़रा संभलो, सोचो, विचार कर कदम उठाना। ओस बिंदु से तर सुंदर हरी घास देख कदम रखोगी लेकिन वहीं पर साँप होगा। चमक-दमक समझ हाथ में लोगी लेकिन वह सोने के बदले पीतल निकलेगा।———शालिनी ने सोचा चीख कर चिल्ला कर वह ये सब बातें कहे———

इतने में धीरे-धीरे सामने से आता रंगसेन उसे दिखा। प्लेटफार्म पर भागदौड़ मची, धड़-धड़ करती ट्रेन आ पहुँची। शालिनी को किसी का धक्का लगा यात्रियों के पीछे-पीछे वह भी पायदान पर से डिब्बे के अंदर हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी कामकाज में हिंदी

इस स्तंभ में रक्षा-मंत्रालय की नियम–पुस्तिकाओं से उद्धरण लेकर उनके अनुवाद के दो-दो नमूने दिए गए हैं : पहला अस्वाभाविक, कठिन और बनावटी है :

गड़बड़ भत्ता

दरें और शर्तें जिन पर देय है

अगले नियम 105 से 113 की अवस्थाओं के अधीन विवाहित अधिकारी 135 रुपए तक गड़बड़ भत्ता पाने के अधिकारी हैं। पर यह तभी मिलेगा जब वे आदेशपत्र पर यात्रा कर रहे हों, और भारतीय सीमांतों में एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन पर उनका स्थानांतरण हो जाए या उनके छुट्टी/अस्थायी कार्यभार से लौटने पर उनका स्थानांतरण उन स्टेशनों पर न होकर कहीं और हो जाता है जहाँ से उन्होंने छुट्टी/अस्थायी कार्यभार पर प्रस्थान किया था और इस संबंध में उन्हें प्रासंगिक खर्च करने पड़े हों।

(क) इस भत्ते के प्रयोजन के लिए अधिकारी को 25 वर्ष से अधिक का होना चाहिए। गड़बड़ भत्ते के विनियमन के लिए "विवाहित अफसर" पारिभाषिक शब्द की परिभाषा वही होगी जो नियम 91 वें में विवाहित दरों पर महंगाई भत्ते के विनियमन के लिए बनाई गई है।

अधिकारी को जहाँ जाने का आदेश मिला है यदि उसे वहाँ छः महीने से अधिक मुमकिन रह जाना हो, जाहे वह वहाँ कितने दिन रहे, तो यह भत्ता अनुमत्य होगा और उस अधिकारी के लिए भी अनुमत्य होगा जिसका वहाँ छः महीने से रहना मुमकिन न था पर उसे छः महीने से अधिक रहना पड़ा।

यह भत्ता इस शर्त पर भी देय होगा कि अधिकारी के जाने की तारीख के छः महीने तक परिवार को अधिकारी के नए कार्यभार स्टेशन पर उसके साथ रहने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी अंश का दूसरा नमूना यहाँ दिया जा रहा है, जो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल सीधा और सरल है।

यदि शब्दानुवाद की शैली अपनाई जाए, तो भाषा अस्वाभाविक और दुर्बोध हो जाएगी, हिंदी के मुहावरों का ध्यान रखते हुए भावानुवाद किया जाए तो भाषा सुबोध और स्वाभाविक होगी।

प्रशासनिक कार्य के लिए हमें ऐसी भाषा का विकास करना है, जो संतुलित हो और भावों को सरलता से व्यक्त कर सके। दूसरे उदाहरणों में ऐसी ही भाषा लिखने का प्रयत्न किया गया है।

अशांति भत्ता

भत्ते की दरें और शर्तें

विवाहित अफ़सर इन स्थितियों में किए गए सफ़र में हुए प्रासंगिक खर्चे को पूरा करने के लिए आगे नियम 105 से 113 में दी गई शर्तों के अधीन 135 रुपए का अशांति भत्ता पाने के हकदार होंगे। वारंट पर यात्रा करने पर भारतीय सीमाओं में एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन पर तबादला हो जाने या छुट्टी/अस्थायी ड्यूटी से वापस आने पर उसे स्टशन से भिन्न अन्य स्टेशन पर तबादला हो जाने पर जहाँ से वह छुट्टी/अस्थायी ड्यूटी पर गए थे।

यह भत्ता 25 वर्ष से अधिक आयु वाले अफ़सरों को दिया जाएगा। अशांति भत्ते के लिए "विवाहित अफसर" की परिभाषा वही होगी जो विवाहित दरों पर महँगाई भत्ते के लिए नियम 91 में दी गई है।

यदि अफ़सर के उस स्टेशन पर जहाँ कि उसे जाने का आदेश मिला है, छः महीने से अधिक ठहरने की संभावना हो तो उसे यह भत्ता मिल सकता है, उसके वहाँ रहने की अवधि चाहे कितनी भी हो। यह भत्ता उन मामलों में भी दिया जाएगा जहाँ नए स्टेशन पर जाते समय वहाँ छः महीने से अधिक ठहरने की संभावना न हो परंतु उसके वहाँ ठहरने की वास्तविक अवधि छः महीने से बढ़ जाए।

यह भत्ता तभी दिया जाएगा जब अफ़सर के जाने की तारीख से छः महीने के भीतर अफ़सर का परिवार उसके साथ रहने के लिए नए ड्यटी स्टेशन पर चला जाए, या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

या भारत में किसी चुने हुए निवास पर जाना पड़े और अधिकारी की नियुक्ति अपरिवार स्टेशन, युद्ध क्षेत्र सेवा में या रियायती क्षेत्र में हो गई हो। विशेष अवस्थाओं में समुचित पदाधिकारी अर्थात् भारत सरकार द्वारा यह अवधि छः महीने से एक वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एक)

वायुयान छाता वेतन

शर्तें और दरें जिन पर देय होगा

वायुयान छाते से कूदने वाले प्रशिक्षकों के रूप में नौकरी दिए गए और उसकी स्थापना की प्राधिकार पूर्ण सूची में लिए गए शासन अनुभाग के किसी भी अर्हता प्राप्त अधिकारी को उसके अनुभाग और पद के वेतन भत्तों के साथ 100 रुपया प्रत्येक मास के हिसाब से वायुयान छाता वेतन मिल सकता है।

जबकि वह वायुयान छाते से कूदने का कर्तव्य नहीं करता क्योंकि उड़ते समय या वायुयान छाते से कूदने वाले प्रशिक्षक का कर्तव्य करते समय तो उस अधिकारी को कर्तव्य न करने की तारीख से 91 वें दिन तक वेतन मिलता रहेगा और शर्त यह होगी कि :—

(क) उसे चोट अपनी असावधानी या दुराचार से नहीं लगी।

(ख) (i) किसी भी समय यदि स्पष्ट हो जाए कि वायुयान छाते से कूदने वाले प्रशिक्षक के कर्तव्य पर उसे नहीं लगाया जाए तो उसका वायुयान छाता वेतन बंद कर दिया जाएगा।

(ii) बीमारीवश सेवा में कर्तव्य न करने के 12 वें दिन बंद कर दिए गए वायुयान छाता वेतन के संबंध में उपर्युक्त धारा (i) के अंतर्गत उन मामलों में उस दिन से मिलने लगेगा जिस दिन उसे कर्तव्य पर जाने के लिए सही घोषित कर दिया जाए और छुट्टी खतम कर वह कर्तव्य पर लौट जाए।

वायुयान छाता वेतन 21 दिन तक मिलता रहेगा, कि वह बीमार हो गया या उसे चोट लग गई है और उसके इस सामान्य मामले का अवकाश वार्षिक अवकाश से अलग है। वार्षिक अवकास के दौरान उसे यह वेतन मिलता रहेगा।

वायुयान छाते से कूदने वाले प्रशिक्षक को प्रशिक्षण समय में वायुयान छाता वेतन नहीं दिया जाएगा।

प्राधिकार पूर्ण गैरहाजिरी जिसमें अस्थायी कर्तव्य/वियोग भी सम्मिलित है, कमान अधिकारी यदि चाहे तो वायुयान छाता वेतन दे सकता है।

भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...अफ़सर की नियुक्ति गैर परिवार स्टेशन अथवा युद्ध क्षेत्रीय सेवा या ऐसे क्षेत्र में ...जाने पर जहाँ के लिए रियायतें दी जाती हैं, भारत में निवास के लिए चुने गए स्थान ...बदला जाए। विशेष परिस्थितियों में सक्षम प्राधिकारी यानी भारत सरकार द्वारा ...महीने की अवधि बढ़ा कर एक वर्ष तक की जा सकती है।

(एक)

पैराशूट वेतन

इस वतन की शर्तें और दरें

पैराशूट जंप इंस्ट्रक्टर नियुक्त किए गए और पैराशूट जंप इंस्ट्रक्टरों की प्राधि-...स्थापना में ले लिए गए प्रशासन शाखा के किसी भी योग्यता प्राप्त अफ़सर ...को अपनी शाखा और रैंक के वेतन और भत्तों के अलावा 100 रु० प्रतिमास पैराशूट-वेतन पाने का हक होगा।

उड़ान करते समय या पराशूट जंप इंस्ट्रक्टर की ड्यूटी करते समय चोट लग जाने के कारण यदि कोई अफसर हवाई छाते से कूदने की ड्यूटी नहीं कर सकता तो उस अफ़सर को ड्यूटी बंद करने की तारीख से 91 दिन तक इन शर्तों पर पैराशूट वेतन मिलता रहेगा :—

(क) उसे चोट अपनी असावधानी या अवचार से न लगी हो।

(ख) यदि और जब यह स्पष्ट हो जाए कि अफसर को जंप इंस्ट्रक्टर की ड्यूटी पर फिर नहीं लगाया जा सकेगा तो उस दिन से पैराशूट वेतन मिलना बंद हो जाएगा।

(ii) सनिक सेवा के कारण बीमार पड़ जाने से ड्यूटी समाप्ति के 92वें दिन उपर्युक्त धारा (i) के अधीन रोका गया पैराशूट वेतन उस दिन से दुबारा मिलने लगेगा जिस दिन से उसे ड्यूटी पर वापस जाने के लिए योग्य घोषित कर दिया जाएगा और वह वास्तव में ड्यूटी पर लौट भी जाए।

सामान्य मामलों में बीमार होने, चोट लगने और वार्षिक छुट्टी से भिन्न अन्य छुट्टी पर होने की अवस्था में पराशूट वेतन 21 दिन तक मिलता रहेगा। वार्षिक छुट्टी में यह वेतन पूरी अवधि तक मिलता रहेगा।

पराशूट जंप इंस्ट्रक्टर की प्रशिक्षण-अवधि में पैराशूट वेतन नहीं दिया जाएगा।

प्राधिकृत अनुपस्थिति में जिसमें अस्थायी ड्यूटी/विलग्नता के कारण अनुपस्थिति भी शामिल है, कमान अफ़सर के निर्णयानुसार पैराशूट वेतन मिलता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दस हफ्ते या अधिक समय के लिए प्रशिक्षण पर जाने वाले किसी भी अधिकारी को वायुयान छाता वेतन मिल सकता है और उसकी शर्त यह होगी :—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) किसी एकक में वायुयान छाता वेतन पाने का प्राधिकार दिए गए अधिकारियों की संख्या, मिला कर वायुयान छाते से कूदने वाले प्रशिक्षकों की प्राधिकार पूर्ण सूची से नहीं बढ़ती है ।

(ख) पाठ्यक्रम पूरा हो जाने पर अधिकारी एकक में लौट कर आ जाता है

(दो)

विशेष-विशेष सैनिक रेलगाड़ियों और सुरक्षित सैनिक वाहनों के लिए सैनिक फार्म निर्गम करना

(1) सैनिक फार्म 'सी" (भा० सें० फा० टी० 1707 ए) आमतौर पर सवारी गाड़ियों या माल-गाड़ियों के साथ लगे सुरक्षित सैनिक वाहनों के लिए निर्गत किया जाता है । यदि निर्गम पदाधिकारी के पास सैनिक आदेश फार्म "ज" न हो तो सैनिक भंडारों को भेजने के लिए, सैनिक प्रत्यय पत्र (भा० सें० फा० टी० 1711) निर्गत किया जा सकता है । सभी विशेष सनिक गाड़ियों की अभियाचना सैनिक आदेश फार्म "ग" पर की जाए, वे गाड़ियाँ कार्मिकों अथवा भंडारों के लिए हों या दोनों के लिए ।

(2) जब सैनिक पदाधिकारियों की अधिसूचना पर सुरक्षित सैनिक वाहनों को रास्ते में विशेष सैनिक गाड़ी से जोड़ना या अलग करना हो तो सैनिक आदेश आदि को निम्न प्रकार से निर्गत किया जाएगा :

(क) वास्तव में चलने वाले स्टेशन पर जितने वाहनों की व्यवस्था की गई हो उतने वाहनों में से रास्ते में अलग किए जाने वाले वाहनों को कम करके सारी यात्रा के लिए चलने वाले स्टेशन पर एक सैनिक फार्म "ग" या सैनिक जमा-पत्र निर्गत किया जाए बशर्ते कि कम से कम चार पहियों वाले 16 वाहन हों ।

(ख) किसी समय यात्रा के दौरान कम से कम चार पहियों वाले 16 से कम वाहन न हों तो चलने वाले स्टेशन से पहुँचने वाले स्टेशन तक, जहाँ पर वाहन अलग किए जाएँगे, के लिए अलग आदेश निर्गत किए जाएंगे। इस अलग वारंट की संख्या विशेष गाड़ी के लिए निर्गत किए गए अलग वारंट भेजे जाएँगे । इस अलग वारंट की संख्या विशेष गाड़ी के लिए निर्गत किए गए मूल वारंट पर पृष्ठांकित की जाए ।

(ग) निर्गम पदाधिकारी समस्त गाड़ी के आदेश प्रत्यय पत्र पर गाड़ी आदेश की संख्या और तारीख पृष्ठांकित करे और साथ ही रास्ते में विशेष सैनिक गाड़ियों में साथ जोड़े जाने वाले वाहनों की अतिरिक्त संख्या के संबंध में भी कैफियत दे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस सप्ताह या इससे अधिक के लिए प्रशिक्षण कोर्स पर जाने वाले किसी भी अफ़सर को पैराशूट-वेतन इस शर्त पर मिलता रहेगा कि (क) किसी यूनिट में पैराशूट वेतन पाने के हकदार घोषित किए गए अफ़सरों की कुल संख्या पैराशूट जंप इंस्ट्रक्टरों की प्राधिकृत स्थापना से अधिक न हो, और (ख) कोर्स पूरा हो जाने पर अफ़सर यूनिट में वापस आ जाए।

(दो)

विशेष सैनिक रेल गाडियों और आरक्षित सैनिक वैगनों के लिए सैनिक फार्म जारी करना—(1) सैनिक फार्म "ग" (मा० सें० फा० टी० 1707ए) आमतौर पर सवारी या माल-गाड़ियों के साथ लगे आरक्षित सैनिक वैगनों के लिए जारी किया जाता है। यदि जारी करने वाले प्राधिकारी के पास सैनिक वारंट फार्म "ज" न हो तो सैनिक सामान को भेजने के लिए, सैनिक जमा पत्र (भा० सें० फा० टी० 171) जारी किया जा सकता है। सभी विशेष सैनिक गाड़ियों की माँग सैनिक वारंट फार्म "ग" पर की जाए चाहे वे गाड़ियाँ कार्मिकों अथवा सामान के लिए हों या दोनों के लिए।

(2) जब सैनिक प्राधिकारियों की हिदायतों के अनुसार आरक्षित सैनिक वैगनों को रास्ते में विशेष सैनिक गाड़ी से जोड़ना या अलग करना हो तो सैनिक वारंट आदि जारी किए जाएँ :—

(क) वास्तव में रवानगी-स्टेशन पर जितने वगनों की व्यवस्था की गई हो, उतने वैगनों में से रास्ते में अलग किए जाने वाले वैगनों को कम करके सारी यात्रा के लिए रवानगी-स्टेशन पर एक सैनिक फार्म "ग" या सैनिक जमा पत्र जारी किया जाए, बशर्ते कि कम से कम चार पहियों वाले 16 वैगन हों।

(ख) किसी समय यात्रा के दौरान कम से कम चार पहियों वाले 16 से कम वैगन न हों तो रवानगी स्टेशन से गंतव्य स्टेशन तक के लिए जहाँ पर वैगन अलग किए जाने हों, अलग वारंट जारी किया जाए। इस अलग वारंट की संख्या विशेष गाड़ी के लिए जारी किए गए मूल वारंट पर लिख दी जाए।

(ग) जारी करने वाला प्राधिकारी पूरी गाड़ी के वारंट जमा-पत्र पर गाड़ी आदेश की संख्या और तारीख लिख दें और साथ ही रास्ते में विशेष सैनिक गाड़ियों के साथ जोड़े जाने वाले वैगनों की अतिरिक्त संख्या के संबंध में भी टिप्पणी दे दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) जिस स्टेशन से अतिरिक्त वाहनों को जोड़ना है, यदि वह उसी रास्ते पर हो जिससे कि विशेष सैनिक गाड़ी जा रही है, तो उस स्टेशन पर अंतिम पहुँचने वाले स्थान तक के लिए अतिरिक्त वाहनों के लिए एक और सैनिक आदेश फार्म "ग" या सैनिक प्रत्यय पत्र निर्गत किया जाए । निर्गम प्राधिकारी इस मंतव्य की कैफियत भी फार्म पर पृष्ठांकित कर दे कि अतिरिक्त वाहनों को संबंधित विशेष गाड़ी के साथ जोड़ना है ।

(3) जिस स्टेशन से अतिरिक्त वाहनों को जोड़ना है, यदि वह विशेष सैनिक गाड़ी के रास्ते से परे हो, तो निर्गम पदाधिकारी अतिरिक्त वाहनों के लिए प्रेषणीय स्टेशन पर दो सैनिक आदेशफार्म "ग" या सैनिक प्रत्यय पत्र निम्न प्रकार से निर्गत करेगा :—

(क) एक फार्म प्रेषणीय स्टेशन से उस स्टेशन तक के लिए, जहाँ विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वाहन जोड़े जाते हैं । यदि सैनिक प्रत्यय पत्र निर्गत किया जाता है तो अतिरिक्त वाहन वाले स्टेशन के स्टेशनपति को भेजे जाएँ और रेलवे प्राप्ति पत्र भी उसको भेज दिया जाएगा ।

(ख) एक फार्म उस स्टेशन से, जहाँ से विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वाहन जोड़े जाते हैं, अंतिम पहुँचने वाले स्टेशन तक के लिए । निर्गम पदाधिकारी पहले ही इस फार्म को पहले वाले स्टेशन के स्टेशनपति को इन अधिसूचनाओं के साथ भेज देगा कि संबंधित विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वाहन जोड़ दिए जाएँ ।

ऊपर (क) और (ख) में दी गई परिस्थितियों में, निर्गम पदाधिकारी फार्म पर एक कैफियत भी लिख देगा कि संबंधित विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वाहन विशिष्ट स्टेशन पर जोड़े जाएँ ।

[मैनुअल अनुवाद शाखा द्वारा प्रस्तुत]

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) जिस स्टेशन से अतिरिक्त वैगनों को जोड़ना है, यदि वह उसी रास्ते पर जिससे कि विशेष सैनिक गाड़ी जा रही है, तो उस स्टेशन पर अंतिम गंतव्य स्टेशन तक के लिए अतिरिक्त वैगनों का एक और सनिक वारंट फार्म "ग" या सैनिक जमा पत्र जारी किया जाए। जारी करने वाला प्राधिकारी इस आशय की टिप्पणी उस फार्म पर दे दे कि अतिरिक्त वैगनों को संबंधित विशेष गाड़ी के साथ जोड़ना है।

(3) जिस स्टेशन से अतिरिक्त वगनों को जोड़ना है, यदि वह रास्ता विशेष सैनिक गाड़ी के रास्ते से हट कर हो, तो जारी करने वाला प्राधिकारी अतिरिक्त वैगनों के लिए प्रेषण-स्टेशन पर दो सैनिक वारंट फार्म "ग" या सैनिक जमा-पत्र निम्न प्रकार जारी करें :—

(क) एक फार्म प्रेषण-स्टेशन से उस स्टेशन तक के लिए, जहाँ विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वगन जोड़े जाने हैं। यदि सैनिक जमापत्र जारी किया जाए तो अतिरिक्त वैगन बाद वाले स्टेशन के स्टेशन मास्टर को भेजे जाएँ और रेलवे रसीद भी उसी को भेज दी जाए।

(ख) एक फार्म उस स्टेशन से, जहाँ से विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वैगन जोड़े जाने हैं, अंतिम गंतव्य स्टेशन तक के लिए जारी करने वाला प्राधिकारी पहले ही इस फार्म को मूल स्टेशन के स्टेशन मास्टर को इन हिदायतों के साथ भेज दें कि संबंधित विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वैगन जोड़ दिए जाएँ।

ऊपर (क) और (ख) में दी गई स्थितियों में, जारी करने वाला प्राधिकारी फार्मों पर एक टिप्पणी भी लिख देगा कि संबंधित विशेष सैनिक गाड़ी के साथ अतिरिक्त वैगन किस-किस स्टेशन पर जोड़े जाएँ।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषाविद्

महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा

राजेंद्रबिहार पांडेय

पं० रामावतार शर्मा का जन्म छपरा में एक साधारण स्थिति के ब्राह्मण परिवार में 6 मार्च सन् 1877 ई० में हुआ। उनके पिता पं० देवनारायण शर्मा कथावाचक के रूप में अपना जीवनयापन करते थे। रामावतार जी बालक ही थे कि उन पर से पिता का साया हट गया। माता गोविंद देवी ने उनका लालन पालन किया।

बचपन से ही अध्ययन के प्रति उनकी रुचि बहुत अधिक थी। स्थानीय पाठशाला में लघु-सिद्धांत कौमुदी समाप्त करने के उपरांत वह विद्याध्ययन के लिए काशी चले गए। वहाँ पं० गंगाधर शास्त्री का शिष्य बनकर उन्होंने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया। 19 वर्ष की आयु में (सन् 1896) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस से उन्हें साहित्याचार्य की उपाधि मिली। जहाँ उन्होंने व्याकरण का भी पर्याप्त अध्ययन किया। उक्त कालेज के प्रिंसिपल डा० वेनिस के आग्रह पर रामावतार जी ने अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन प्रारंभ किया, किंतु अर्थ संकट में पड़कर 1898 ई० में उन्हें छपरा के एक स्कूल में अध्यापन कार्य संभालना पड़ा। अतः एंट्रेंस, एफ़० ए० तथा बी० ए० की परीक्षाएँ व्यक्तिगत (प्राइवेट) रूप में ही उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् एम० ए० की परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से की। उसके बाद सेंट्रल हिंदू कालेज बनारस में उन्हें अध्यापन कार्य मिल गया। काम करते हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि उनकी नियुक्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर हो गई। यहाँ पर उनकी ख्याति इतनी अधिक बढ़ी कि उन्हें पटना कालेज में आने के लिए बाध्य किया गया। 1906 ई० से 1918 ई० तक शर्मा जी यहीं अध्यापन कार्य में रत रहे। 1918 से 1922 तक वे हिंदू विश्वविद्यालय के ओरियंटल कालेज के प्रिंसिपल रहे। वहाँ पर उनका बहुत अधिक सम्मान था। शिष्य उन्हें पिता तुल्य मानते थे। इस पद पर रहते हुए ही उन्होंने आर्टस कालेज के एम० ए० के छात्रों को भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ना प्रारंभ कर दिया। स्वतंत्र विचारक होने के कारण उनकी मालवीय जी से ...न हो गई। परिणाम यह हुआ कि उन्हें विश्वविद्यालय का कार्य छोड़ना ...। पर आप बनारस में ही रहे और 1929 के मार्च में उन्हें महामहोपाध्याय ...उपाधि प्राप्त हुई।

...र्मा जी का व्यक्तित्व विलक्षण तथा उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनके ...एवं निष्कलुष हृदय में विद्याध्ययन का स्थान सर्वोपरि था। उनके संपर्क ...ने वाले उनका अनेक विषयों में ज्ञान तथा उनकी अद्भुत स्मरण शक्ति ...देखकर चकित रह जाते थे। उपनिषद् तथा अनेक दार्शनिक ग्रंथ उन्हें कंठस्थ ...अध्यापन कार्य में उन्हें अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। दर्शन उनका सर्वाधिक ...विषय था। देश के ही नहीं वरन् विदेशी विद्वान भी दार्शनिक समस्याओं ...संबंध में शर्मा जी से विचार-विमर्श करते थे। उनके अभूतपूर्व-दर्शनग्रंथ 'परमार्थ ...' का प्रकाशन सर्वप्रथम 1911–12 में काशी में हुआ। यह कृति अनूठी है। ...ग्रंथ के कारण उनकी ख्याति इतनी बढ़ी कि 1908 में कलकत्ता विश्वविद्या-...ने 'वेदांत' के विषय पर भाषण देने के लिए उन्हें सादर आमंत्रित किया। ...व्याख्यानों का प्रकाशन पुस्तक रूप में हो चुका है। संस्कृत साहित्य पर शर्मा ...का पूर्ण अधिकार था। वह उसे ही अपनी मातृभाषा मानते थे। वीस ...तक 'संस्कृत' वृहत्कोश के निर्माण में व्यस्त रहे परंतु दुर्भाग्यवश वह 'कोश' ...न हो सका। यह कोश प्राचीन एवं नवीन शैली का सम्मिश्रण था। संस्कृत ...हित्य में शर्मा जी को पंडित राज जगन्नाथ तथा महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री ...ही कोटि में रक्खा जाना अत्युक्ति न होगी। संस्कृत के साथ-साथ हिंदी भाषा ...उन्नति के लिए भी शर्मा जी सदैव सचेष्ट रहे। हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद ...पहुँचाने के लिए शर्मा जी ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1916 ई० ...जबलपुर में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सातवें ...र्षिक अधिवेशन में शर्मा जी ही अध्यक्ष थे। 1905 ई० में जब भाषाविज्ञान ...कोई भी ग्रंथ उपलब्ध न था, रामावतार जी ने काशी नागरी प्रचारिणी ...सभा के तत्वावधान में इस विषय पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया था। भाषाविज्ञान ...आधार पर उन्होंने एक ग्रंथ 'अभिनव हिंदी व्याकरण' की रचना की जोकि 1910 ई० में 'हिंदी ट्रांसलेटिंग कंपनी,' कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हुई। हिंदी ...उन्नति के लिए जितनी भी समितियाँ बनाई गईं, शर्मा जी सभी के मान्य ...सदस्य थे। शर्मा जी ने हिंदी में 'योरोपीय दर्शन' नामक पुस्तक लिखी थी। यह ...योरोपीय दर्शन पर हिंदी में प्रथम पुस्तक थी। हिंदी में वे काव्य रचना भी करते थे।

समाज सुधार की उन्हें सदैव आकांक्षा रही। पटना में आल इंडिया सोशल ...रिफार्म कांफ्रेंस के वह सभापति बने थे। दहेज प्रथा तथा पर्दा प्रथा के वह कट्टर ...विरोधी थे। परंतु धार्मिक इतने थे कि अँग्रेजों से हाथ मिलाने के उपरांत वे बिना ...स्नान किए नहीं रह सकते थे।

अपनी अमर कृतियों के कारण शर्मा जी अमर हो गए। उनके प्रकाशित तथा ...अप्रकाशित अमर ग्रंथ निम्नलिखीत हैं—'संस्कृत वृहत्कोश' जिसकी रचना में ...जीवन पर्यंत व्यस्त रहे परंतु दुर्भाग्यवश जो पूरा न हो सका। दूसरा ग्रंथरत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—'भारतीय नीति वृत्तम्' इसमें संस्कृत के श्लोकों में भारत का इतिहास वर्णित है। तीसरे ग्रंथ 'इतिहासार्णव' में संसार का इतिहास श्लोंको में बद्ध है। किंतु यह ग्रंथ अभी अप्रकाशित है। 'प्रियदर्शिप्तिस्तप:' चौथा ग्रंथ है। इसमें अशोक के शिलालेख पाली भाषा में संग्रहीत हैं। जिनका शर्मा जी ने अंग्रेज़ी तथा संस्कृत में अनुवाद किया है। पाँचवाँ ग्रंथ 'कल्पद्रमकोश' संपादित कोश ग्रंथ है। यह बड़ोदा संस्कृत सिरीज से प्रकाशित हुआ है। 'सदुक्तिकर्णामृत' छठा ग्रंथ है। इसके संपादन के बीच में ही शर्मा जी की मृत्यु हो गई। अत: यह अधूरा ही रह गया। इसमें सुभाषित पद संग्रहीत हैं। सातवाँ ग्रंथ हिंदी में 'योरोपीय दर्शन' तथा आठवां ग्रंथ 'हिंदी व्याकरण' है।

पं० रामावतार शर्मा जी जीवनपर्यंत साहित्य सेवा में संलग्न रहे। जीवन के संध्याकाल में वह निमोनिया ग्रसित हो गए। पहले पटना में उपचार व्यवस्था हुई। तत्पश्चात् काशी में अच्छे से अच्छे डाक्टरों का उपचार हुआ। गर्मी अधिक पड़ने लगी तो शर्मा जी पटना वापस लौट गए। केवल 52 वर्ष की ही अवस्था में साहित्य के महान पुजारी महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा जी 3 अप्रैल की मध्याह्न में परलोक सिधार गए। वे अपने पीछे तीन भाई, तीन पुत्र, सात पुत्रियाँ तथा विधवा पत्नी छोड़ गए।

हम इस सामग्री के लिए पं० रामावतार शर्मा जी के जामातृ पं० कृष्ण देव तिवारी, भूतपूर्व रजिस्ट्रार लखनऊ विश्वविद्यालय के ऋणी हैं जिनके घर से उनके भतीजे पं० कुमुदरंजन तिवारी के द्वारा यह प्राप्त हो सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता और उसकी रचना

आलोक सरकार

काव्य-रचना की प्रथम शर्त सरलता है। दुर्बोधता महत् कविता में अत्यंत प्रत्याशित है। दो उक्तियों के बीच स्पष्टतः विरोधाभास है, किंतु कविता के समग्र अभिव्यंजना में कोई विरोध नहीं होता। सरलता और दुर्बोधता परस्पर विरोधी शब्द नहीं हैं, अंततः कविता में जो कुछ सरल होता है, वही रहस्यमय है।

सामाजिक अस्तित्व नियम-नियंत्रित है, व्यक्तिगत अस्तित्व, अनेक समय आवेग-प्रवण हो जाता है। नियम बाहर की चीज़ है, आवेग खंडित मुहूर्त है ; नियम और आवेग सत्य नहीं, सरल नहीं होते—एक में अभियोजना, अपर में अधीनता होती है। सुंदर मनुष्य की जो सरलता कविता में आकांक्षित है वह सामाजिक अस्तित्व में नहीं, व्यक्तिगत अस्तित्व में सब समय आकांक्षित नहीं है, उसका क्षेत्र एकाकी, निर्जन होता है।

विविध अभिज्ञता के सचेतन विन्यास में व्यक्तित्व है, वह व्यक्तित्व कवित्व रचना करता है। एक अभिज्ञता में दूसरी अभिज्ञता की छाया पड़ती है। एक मुहूर्त के पीछे हजारों मुहूर्त के संकल्प रहते हैं। कविता में कोई विशेष मुहूर्त अपेक्षित नहीं है, उसके लिए अखंड समय है। कविता की सरलता अर्थात् वही अखंड समय—वहाँ विचित्र वर्ण का समन्वय, विविध ध्वनि की एकतान होता है—कभी खंडहर की निर्जनता, सूर्योदय, सिवार से भरी गड़ही में सर्प का रेंगना।

यह सम्मिलित चेतना रहस्यमय होती है। उसकी सरलता भीतर-बाहर के प्रकाश में अतल, सुदूर होती है, ज्योत्स्ना में उज्ज्वल अंधकार का रहस्य बन जाती है। एक परिचित सोपान, ऊपर उठते अपरिचित मनुष्य परिचित कंठ से आलाप करने लगता है। एक फूल की प्रत्यक्ष सरलता कविता में नहीं मिलती; फूल को गमले में सजाया गया, उसके कोमल दल को देख किसी अधर की कोमलता याद आ गई। एक दिवस, नील पर्दे पर बैठा पक्षी की सफेदी-इन्हीं सब अनुभवों की सरलता कविता में मिलती है।

अन्य तरीके से भी विषय बोधगम्य है। शिल्प का अर्थ ही होता है अमूर्त शिल्प। शिल्प के लिए अमूर्त विस्मय अथवा द्वितीय सृष्टि ही सरलता है। जो कुछ भी उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते हैं सब अवक्षयी है, मृत्यु चेतना सीमाहीन विरह वेदना के अतिक्रमण करने का आलोकित मंत्र शिल्प है। इसलिए कविता प्रकृति के कार्यव्यापार की पुनरावृत्ति नहीं करती, जो कुछ भी है उसके मार्जित विन्यास में एक और संपूर्णता लाती है—शांति, शांति के मुहुर्त में आवेग की स्मृति को रूप देती ह, आरोपित नियम के गांभीर्य में जो स्वच्छ गतिमय प्रवाह है उसको देखती है। प्रकृति अर्थात् नियम एवं आवेग के निर्देश में जो अनिवार्य अवलुप्ति और विस्मरण है, प्रति मुहूर्त जो विच्छेद उसके अतिक्रमण की प्रेरणा में सहायक होता है; आवेग के अंतर्लीन जो ध्यानमग्नता, नियम के अंतराल में जो स्वच्छ प्रवाह है, वह स्वाभाविक, सत्य अथवा सरल है।

इस सरलता के उपकरण में कविता द्वितीय प्रकृति की रचना करती है।

प्रकृति की अमोघ यांत्रिकता, निर्ममता के अतिक्रमण में कविता द्वितीय प्रकृति में ढल जाती है, एक ओर मत्यु का प्रतिपक्ष बन खड़ी होती है, दूसरी ओर वह द्वितीय प्रकृति अथवा अखंड समय का आलौकिक विमुग्ध सम्मोहन उसको क्रमशः सुदूर में ले जाता है, वहाँ वह अकेली होती है, विच्छिन्न होती है, अपरिचित विभास में जलती है।

इस आनंदमय यंत्रणा की साधना शिल्पी की साधना होती है। व्यावहारिक अर्थ में हम जिसे दुख कहते हैं—वेदना और निराशा कहते हैं—उस तरह का कोई दुख, वेदना, निराशा शिल्पी में नहीं मिलती। अमूर्त शिल्प, अमूर्त सौंदर्य के सिमाहीन रहस्यावगुंठन में जो वेदना पलती है, वह वेदना कलाकार की वेदना होती है। पार्थिव दुख एक प्रेरणामात्र होता है। शरआहत क्रौंच की वेदना से अभिभूत वाल्मीकि ने प्रथम बार श्लोक उच्चारण किया था, परवर्ती श्लोक ही क्रौंच की वेदना को उत्तीर्ण कर उसके अभिभाव के रहस्य में निमग्न हुआ।

कविता का रहस्य, संपूर्ण सरल मानव की आकृति है, अर्थ के उस पार जो सुर, विषय के अंतर्लीन जो रंग है वही उसकी आंतरिक निविष्टता होती है।

आदि मानव के शिल्प प्रयास में प्राथमिक प्रेरणा, मृदुचेतना और असत्य निर्जनता थी। आदिम मानव की अभिज्ञंता मृत्यु की अभिज्ञता थी, असहाय अवलुप्ति की उपलब्धि, कल्पना की मुक्ति आकाश की अनिकेत विस्तीर्णता में थी। विस्मित आनंद नवजातक के रोमांच में, मृत्यु के अतिक्रमण करने के रहस्य में प्लावित होता। आदिम मानव मृत्यु को एक करुण नियम समझना, उसका भगवान आकाश की विविक्त आवेगाश्रित पटभूमि में अवस्थित था, साथ ही साथ वह जान पाया था जीवन को जो मृत्यु का प्रतिपक्ष बन खड़ा होता है।

आदिम मानव का शिल्प इसी से जन्म-केंद्रित अथवा जीवन केंद्रित होता था। जन्म जीवन सृष्टि के सोपान से मृत्यु और निर्जनता का अतिक्रमण किया जाता। वही सोपान शेष पर्यंत शिल्पी को ऐसी एक तन्मयता में बाँध रखता जहाँ मृत्यु नहीं, पार्थिव अर्थ में जीवन भी नहीं होता। जीवन की गंभीरतम उपलब्धि रहती, संपूर्ण सरल मानव होता—द्वितीय पृथ्वी, अपार आनंदघन विच्छिन्नता, आलोकित निसंगता

भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ती। दूसरे अर्थ में कह सकते हैं, अमूर्त शिल्प का [illegible] में रहता। ... अमूर्त हो सकता है किंतु भाषा अमूर्त नहीं हो सकती, ऐसा क्या, विषय भी अमूर्त ... हो सकता। कविता का विन्यास सरल होता है, काव्य रचना की प्रथम शर्त ...ता होता है। भाषा स्पष्ट, कोमल, गद्य के अनुरूप, विषय प्रत्यक्ष अभिज्ञता ...थ संबद्ध इंगितवह हो।

प्रत्येक अनुभव ही परस्पर संपर्कित होता है, कविता युक्तिवह पारस्पर्य को स्वीकार ...ती है। एक अभिज्ञता के साथ दूसरी अभिज्ञता संबंधित, रहती है। किंतु ...योग का एक चिन्मय सूत्र रहता है, इस चिन्मय सूत्र की अनुपस्थिति में कविता की ...ता, सरलता व्याहत होती है। सोपान परिचित ईंट से निर्मित, अमित सहनशील ...ता है। अमूर्त सौंदर्य की साधना में शब्द के व्यावहारिक आवेदन के उर्ध्व उसके ...तम तात्पर्य का अन्वेषण आवश्यक है। शब्द को केवल अर्थवह हिसाब से ...ना ठीक नहीं होता, उसकी ध्वनि महत्त्वपूर्ण विषय के लावण्य में शिक्षित होती है। ..., भाषा, विषय की इच्छाकृत विकृति नहीं होती, निविष्ट प्रसाधन प्रयोजनीय ...ता है। कविता की दुर्बोधता स्वाभाविक है। जो [दुर्बोधता आरोपित होती है ...ह कविता की तन्मयता के विपक्ष जाती है।

अनु० रामप्रसाद पांडेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता और सामाजिक-आलोचना

संत सिंह सेखों

कविता का यदि, जाति अथवा समाज की परंपरा, संस्कृति और अतीत से अविच्छिन्न संबंध है, तो यह सीधी-सी बात है, कि इसका समाज के भविष्य से भी कुछ, ऐसा ही संबंध होगा। किंतु इस विषय पर आकर, प्रायः आदर्शवादी, उदारवादी और पूंजीवादी समीक्षक इस काव्य-सिद्धांत की अवहेलना करते हैं, और कविता को समाज की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि से निकाल कर उसे एकाकी-मानव अर्थात् व्यक्ति-मानव से संबंधित कला मान बैठते हैं। कविता के समूचे संबंधों की गहराई और व्यापकता में न जाते हुए, वे इसे केवल मानवीय-भावों एवं संवेदनाओं की आत्म-पूरक प्रवृत्तियों की संकीर्ण-परिधियों में सीमित कर देते हैं। अपनी इसी आत्मलीन धुन में वे प्रायः यहाँ तक आगे बढ़ जाते हैं कि कविता में व्यक्त सामाजिक विषयों की आलोचना को प्रचार अथवा प्रापेगेण्डा आदि संज्ञाएँ देकर, उसकी भर्त्सना करते हैं।

इतना तो स्पष्ट है कि जिस संस्कृति पर कोई काव्य रचना आधारित होती है, उसका प्रचार भी वह अवश्य करती है। किंतु ऐसे प्रचार की भर्त्सना, हमारे वे आदर्शवादी समीक्षक नहीं कर पाते। इसका अंतर्निहित आशय यह हुआ कि उनके मतानुसार कविता, केवल प्रचलित अथवा युग-सापेक्ष मतवादों और सांस्कृतिक-विचारों की पुष्टि करे--उसका विरोध न करे। या फिर, इसमें अधिक क्रांतिकारी अथवा युगांतकारी परिवर्तन लाने का प्रयास न करे। इस प्रकार कविता में प्रचार का विरोध वास्तव में परंपरागत मतवादों और विचारों की पुष्टि करने वाला प्रचार बन कर रहा जाता है।

आदर्शवादी समीक्षक, कविता में सामाजिक प्रचार का विरोध संभवतः इस कारण करते हैं कि उनके विचारानुसार कविता, यथार्थवादी वैज्ञानिक युग की और भौतिक अर्थों वाली कला नहीं है। वे इसे एक आध्यात्मिक कला मानते हैं। परंतु कुछ कुछ तो पूंजीवाद के विकास से, और अधिकांशतः समाजवाद के आविर्भाव से मानवीय चिंतन यथार्थवादी और भौतिकवादी बनता जा रहा है। परिणाम स्वरूप, इस युग के प्रतिनिधि-कवि, काव्य-सृजन को अपनी रुचियों और प्रवृत्तियों के अनुकूल, वस्तुवादी भावधारा की अभिव्यक्ति के हेतु, माध्यम बनाते हैं। यह बात आदर्शवादी-चिंतकों एवं समीक्षकों के लिए क्षोभजनक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलचस्प बात यह है कि जिन प्रवृत्तियों के कारण पूंजीवाद के प्रारंभिक काल में सामंतवाद के समर्थकों और हितैषियों ने पूंजीवादी-चिंतन एवं कलाभाव, को वस्तुवादी कहकर त्याज्य घोषित किया, उन्हीं के कारण, आज ह्रासोन्मुख पूंजीवाद के समर्थक समाजवादी-चिंतन और कलाभावों की भर्त्सना करते हैं। अस्तु।

आज के कलाकारों, चिंतकों, कला-समीक्षकों का कर्तव्य है कि वे इस प्रतिक्रियावादी विरोध के अंतरंग-कारणों को समझाते हुए इस विरोध का भरपूर सामना करें और आधुनिक युग में कला एवं कविता के अतीत और भविष्य के साथ जो संबंध हैं––उन्हें स्पष्ट करने के प्रयत्न करें, ताकि वे संबंध जनसाधारण के लिए भी बोधगम्य बन सकें।

कविता (अथवा कला) केवल राष्ट्र की संस्कृति पर ही आधारित नहीं रहती, अपितु इसके विकास में यथोचित योग भी देती है। यदि यह कथन मान्य न हो, तो निष्कर्ष यह निकलता है कि आदि-ग्रंथ, रामायण, महाभारत, गीता तथा अन्य भारतीय भाषाओं की काव्य-कृतियों का भारत के सांस्कृतिक-निर्माण में कोई योगदान नहीं है। किंतु यह बात सर्वतः हास्यास्पद है और यदि यह मान लिया जाय कि कविता का राष्ट्र की संस्कृति के निर्माण में पर्याप्त योगदान रहता है तो सहज ही सिद्ध हो जाता है कि यह योगदान न तो एकांगी हो सकता है और न ही किसी ऐतिहासिक-स्थल पर आकर जड़-रूप ही धारण कर लेता है। हम यह भी नहीं कह सकते कि रामायण, महाभारत, तथा अन्य काव्य-ग्रंथों का भारत के सांस्कृतिक-निर्माण में योग––केवल समष्टि रूप से अथवा आदर्शवादी पक्ष से ही रहा है––सामाजिक, ऐतिहासिक एवं भौतिक पक्षों से नहीं। और न ही यह दावा किया जा सकता है कि भारतीय काव्य ने एक हज़ार सन् ईसवी के बाद भारत के सांस्कृतिक विकास में अपना प्रभाव डालना बंद कर दिया है।

कविता का सांस्कृतिक निर्माण के साथ एक अटूट संबंध है––यह तो एक विदित सत्य है। इसका अर्थ यह है कि साहित्य, कला अथवा कविता, संस्कृति के कई जीर्ण-विगलित अंगों को नगण्य जानकर उनका विघटन भी करती है और कई नूतन ऐतिहासिक अनिवार्यताओं के अंशों का परिवेश स्वीकारती है। जिस प्रकार यह असंभव है कि एक व्यक्ति द्वारा निर्मित मकान में उसके पुत्र-पौत्र, वृद्धियाँ ही करते रहें––मकान के किसी भाग को गिराए बिना––उसी प्रकार यह भी असंभव है कि नई पीढी किसी प्रकार का संस्कृतिक विघटन न होने दे, और न ही कोई नूतन परिवर्तन करे। परंतु नूतन परिवर्तन लाने के इन प्रयासों को पुरातनवादी, आदर्शवादी और उदारवादी समीक्षक, प्रायः प्रचार अथवा प्रोपेगण्डा कहकर विरोधात्मक ढंग से इसी की निंदा करते हैं।

बहुधा, उपर्युक्त आदर्शवादी, नवीन के प्रति अपने पूर्वाग्रह और विरोध को स्पष्ट शब्दों में प्रकट नहीं करते। इतना भर तो मानने को वे बाध्य हो जाते हैं कि सामाजिक आलोचना निःसंदेह, साहित्य का एक अभिनव अंग है। अब आपत्ति यह रह जाती है कि ऐसी आलोचना काव्य के माध्यम से प्रचार रूप में अभिव्यक्त नहीं होनी चाहिए। कविता के भाव-व्यापार की एक साधारण उपलब्धि तो यह भले ही रहे परंतु काव्य सृजन की मूलभूत प्रेरित वस्तु नहीं होनी चाहिए। दूसरे अर्थों में काव्य सृजन में इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राथमिकता न मिले, क्योंकि यदि सामाजिक आलोचना या प्रचार ही कविता में प्रमुखता प्राप्त कर लेते है, तो कविता एक साधारण गद्य से भिन्न क्या रह जाती है। बात है तो ठीक, परंतु इसे, इस प्रकार शब्दजाल में उलझाना भी एक भूल है क्योंकि प्रश्न यह नहीं है कि सामाजिक आलोचना अथवा प्रचार, कविता का मूलभूत आधार है अथवा केवल एक उपलब्धि-मात्र। इस प्रकार हम कविता के वस्तु-तत्व को सीमित बना लेते हैं। वास्तव में यह कहना ही असंगत है कि कविता का क्या कुछ वस्तु-तत्व हो सकता है और क्या कुछ नहीं। साहित्य में एक साधारण रचना और एक साहित्यिक रचना के अंतर का दायित्व रचना के वस्तुतत्व पर इतना नहीं, जितना कि अभिव्यंजना के ढंग पर है। साहित्यिक-अभिव्यंजना असाहित्यिक-अभिव्यंजना से नितांत भिन्न है और फिर काव्याभिव्यंजना तो उपन्यास और नाटक की शैली से भिन्न है ही। इसके अतिरिक्त यह भी ठीक है कि अभिव्यंजनाशैली के भेद के कारण, साहित्य की अन्य विधाओं तथा कविता, और साहित्यिक एवं असाहित्यिक रचना के वस्तुतत्व में भी भेद उत्पन्न हो जाता है, परंतु यह भेद स्वतः कुछ भी नहीं है, यह तो अभिव्यंजना शैली के भेदों का परिणाम रूप है।

कहा जा सकता है कि यह वस्तुभेद यद्यपि स्वतः एक मूलभूत प्रेरक अथवा प्रमुख तत्व नहीं, केवल अभिव्यंजना भेद का एक परिणाम रूप है, तो भी यह बात तो सिद्ध है कि साहित्यिक तथा असाहित्यिक रचना में और कविता तथा अन्य साहित्यिक विधाओं में वस्तुतत्व का भेद आवश्यक है और इसी आवश्यकता का ही एक फल यह है कि सामाजिक-आलोचना अथवा प्रचार, साहित्य या कला के अवस्तुतत्व का स्थान ग्रहण न करे।

परंतु अभिव्यंजना भेद के परिणाम से उद्भूत वस्तुभेद को मूल वस्तुभेद समझ लेना एक आधारभूत सैद्धांतिक गलती है। इस गलती का सबसे बड़ा परिणाम यह है कि सामाजिक आलोचना या प्रचार सारे महान-साहित्य का एक अभिन्न अंग रहा है। और जिन साहित्यकारों ने अपनी कृतियों को इस तथ्य से असंपृक्त रखने का आयास किया है, उनकी कृतियां, महान साहित्य की कोटि में स्थानापन्न नहीं हो पाईं। यदि यह ठीक है कि बहुत सी ऐसी रचनाएँ जिनका उद्देश्य केवल सामाजिक-प्रचार मात्र रहा था, साहित्य की कोटि में नहीं आ सकतीं, तो यह भी ठीक है कि ऐसा साहित्य जिस में सामाजिक-प्रचार की अभिव्यक्ति से संकोच किया गया, उच्च कोटि का साहित्य नहीं बन पाया। दूसरे तर्क से यह भी सिद्ध हो जाता है कि सामाजिक आलोचना और प्रचार की अभिव्यक्ति ही साहित्य को महान बनाने के उपकरण जुटाती है।

प्रश्न, वास्तव में यह नहीं कि सामाजिक आलोचना, साहित्य का अंग बने, अथवा नहीं। साहित्य में प्रमुखता अभिव्यंजना शैली की हो अथवा वस्तुतत्व की साहित्य की प्रधान समस्या वस्तुतत्व की महानता को अभिव्यंजना के सौंदर्य और प्रभाव से आरोपित करना है। बात संभवतः यहीं अशेष नहीं होती क्योंकि सत्य तो यह है कि जैसे शारीरिक सौंदर्य, शारीरिक स्वास्थ्य के बिना असंभव है उसी प्रकार सुष्ठु वस्तुतत्व के बिना काव्याभिव्यंजना सुंदर और प्रभावात्मक नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी साहित्यिककृति में वस्तुतत्व के मौलिक और अभिव्यंजना के प्रभावात्मक सौंदर्य के संबंध में मतभेद सदा बनेंगे और अलग अलग पक्षों में प्रकट होते रहेंगे।

बहुधा कोई पाठक अथवा समीक्षक जब किसी कृति को प्रचार कह कर उसकी निंदा करता है तब उसका अंतरंग भाव यह नहीं होता कि साहित्यिक कृति में प्रचार का आवेश नहीं होना चाहिए, उसका आंतरिक भाव, जिससे वह चेतन रूप से भिज्ञ नहीं होता—यह है कि उसे उस कृति का वस्तुतत्व, रोचक नहीं लगा। वह उस वस्तुतत्व के प्रति उदासीन होता है। सच तो यह है कि हमारे अपने मत का प्रचार प्रापेगंडा न होकर, विरोधी मत का प्रचार प्रापेगंडा बन जाता है। प्राय: आदर्शवादी समीक्षक अथवा पाठक को, भौतिक वस्तुतत्व सुष्ठ प्रतीत नहीं होता और न ही भौतिकवादी आलोचकों और पाठकों को आदर्शवादी भावप्रधान वस्तुतत्व। किंतु आज चूंकि आदर्शवादी मतवादों की नीति आक्षेप प्रधान न होकर प्रतिरक्षा प्रधान है, इसलिए भौतिक वस्तुतत्व से मुक्ति प्राप्त करने के हेतु आदर्शवादी आलोचक, साहित्य में से सामाजिक आलोचना को सर्वथा बहिष्कृत कर देना चाहते हैं। दूसरी ओर, चूंकि भौतिकवादी विचारधारा आजकल विकासोन्मुख है, इसलिए उनकी स्थिति आक्षेपप्रधान है, और वे साहित्य में से वस्तुतत्व को गौण बनाने के पक्ष में नहीं हैं। सारांश बिल्कुल अंतर्राष्ट्रीय नि:शस्त्रीकरण की समस्या के समान है। जो पक्ष शस्त्रीकरण के लिए क्षेत्र में अपने विपक्षी से कमज़ोर है, वह ऐसे क्षेत्र पर प्रतिबंध लगाने के सुझाव प्रस्तुत करता है। क्योंकि आदर्शवादी समीक्षकों या कलाकारों के पास कोई महान वस्तुतत्व प्रेषणीयता के लिए नहीं है, इसलिए वे विषयवस्तु को साहित्य से बहिष्कृत करने पर तुले हुए हैं।

यह भी ठीक है कि बहुत से भौतिकवादी, विशेषत: समाजवादी साहित्यकार अपने विषय वस्तु के दंभ में अभिव्यंजना शैली के प्रभावात्मक सौंदर्य के साथ सामंजस्य रखने की अनिवार्यता को महत्त्व नहीं देते और इसके प्रति उदासीन रहते हैं। आज समाजवादी विचारों की सार्वभौमिकता के कारण कुछ संकीर्णवृत्ति लेखक, इन विचारों के टुटपूंजिए प्रतिनिधि बन बैठे हैं, जिससे आदर्शवादी और पूंजीवादी आलोचकों को अवसर मिला है कि वे अपने विरोधों और आक्षेपों के औचित्य का उद्घोषण कर सकें। वास्तव में समाजवाद के इन तथाकथित एवं टुटपूंजिए अग्रदूतों की विषय-वस्तु बिल्कुल अधकचरा होता है, जिसके ऊपर समाजवाद का मुलम्मा चढ़ा रहता है और दिलचस्प बात तो यह है कि कई बार ये बहुरूपिए ही समाजवादी आंदोलन के सच्चे प्रतिनिधि बनने में सफल हो जाते हैं।

आदर्शवादी समीक्षकों की भाँति, समाजवादी समीक्षकों का भी एक गुट बन गयी है जो नई प्रतिभाओं को देखता ही नहीं, और उस ओर से सर्वथा उदासीन बना रहता है। इन समीक्षकों के कुछ पूर्वनिश्चित, संकुचित मानदंड हैं, जिनके आधार पर प्रत्येक कलाकृति का मूल्यांकन किया जाता है। यदि कोई कलाकृति उन मानदंडों पर पूरी नहीं उतरती तो वे अपने मानदंडों के दोषों को समझने और बदलने के बजाए उस नवीन और मौलिक कलाकृति को निकृष्ट साहित्य की कोटि में रख देते हैं। इससे कितनी ही नई प्रतिभाएँ, मूल्यांकन के संकुचित मानदंडों और पूर्वाग्रहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ग्रास बन जाती है जो किसी समाजवादी समाजव्यवस्था एवं साहित्य के लिए एक अभिशाप के समान है। सच्चा समाजवादी लेखक सदैव नवीन विषय-वस्तु का स्वागत करता है।

आज यह समझने की आवश्यकता है कि कला, साहित्य और कविता-सामाजिक व्यापार है। उनकी विषय वस्तु सामाजिक आलोचना और सामाजिक विचारों के विघटन-संघटन के बिना, सारहीन रहेगा। यह ठीक है कि साहित्य के द्वारा यह विघटन संघटन और निर्माण साहित्यकार की बौद्धिक ईमानदारी और सजगता के साथ होना चाहिए वरन् इसका नकारात्मक और अकल्याणकारी पक्ष ही सामने आएगा। इस कारण, सामाजिक विघटन ही संभव हो पाएगा। निर्माण और सृजन तो होने से रहा। परंतु इस सजगता को तनिक श्रमसाध्य और महंगा समझ कर कविता में सामाजिक-संसार और निर्माण की समस्या की उपेक्षा न की जाए, और न ही इस दिशा में परंपरागत एवं प्राचीन परिपाटी को अपनाया जाए जिसकी आवश्यकता तो बहुत कम है—परंतु जो है सुगम और सरल।

—अनु० शाकिर पुरुषार्थी

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

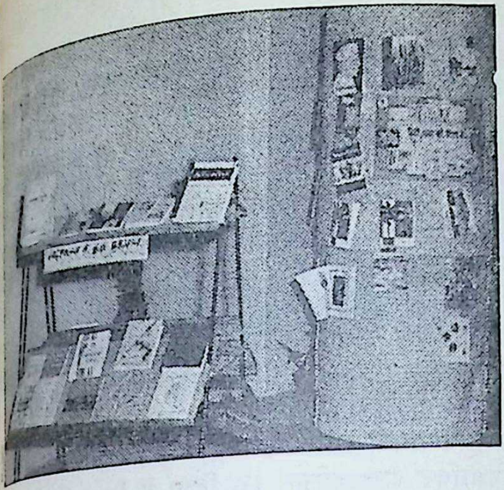

वैज्ञानिक पुस्तकों की प्रदर्शनी

पिछले कई वर्षों से केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी के प्रचार और प्रसार के लिए अनेक प्रकार की योजनाओं पर काम कर रहा है । इन योजनाओं में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण योजना है समय समय पर वैज्ञानिक पुस्तकों की प्रदर्शनियों का आयोजन ।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली के स्थायी सलाहकार बोर्ड की तीसरी बैठक के अवसर पर बंगलौर में हिंदी तथा दक्षिण को चारों भाषाओं-तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम-की वैज्ञानिक व तकनीकी पुस्तकों की एक ऐसी ही प्रदर्शनी आयोजित की गई। बंगलौर विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में तारीख 10-10-64 को केंद्रीय शिक्षा मंत्री माननीय श्री एम०सी०चागला ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया । प्रदर्शनी 10 तारीख से 13 तारीख तक दर्शकों के लिए खुली रही ।

इस प्रदर्शनी में जिन विषयों की पुस्तकें प्रदर्शित की गईं वे हैं :—

1-गणित, 2-भौतिकी, 3-रसायन, 4-प्राणि विज्ञान, 5-वनस्पति विज्ञान, 6-मानव विज्ञान, 7-औद्योगिकी और इंजीनियरी, 8-शिक्षा और मनोविज्ञान, 9-कोश, विश्वकोश तथा संदर्भ ग्रंथ आदि । इनके अलावा कुछ वैज्ञानिक विषयों की पत्र-पत्रिकाएँभी प्रदर्शित की गईं ।

इस प्रकार प्रदर्शनी ने हिंदी तथा अन्य भाषाओं में विकासशील वैज्ञानिक साहित्य की एक झाँकी प्रस्तुत की । दर्शकों के मन में वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण की प्रगति देखकर बहुत उत्साह हुआ । प्रधान मंत्री माननीय लालबहादुर शास्त्री द्वारा अनूदित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक 'श्रीमती यथूरी' और स्वर्गीय रवींद्रनाथ ठाकुर की बंगला पुस्तक 'विश्व परिचय' और उसका हिंदी अनुवाद दर्शकों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र रहीं।

इस प्रदर्शनी में हाल ही में प्रकाशित हुए हिंदी के अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक विषयों के ग्रंथ प्रदर्शित किए गए। वैज्ञानिक विषयों की इन प्रदर्शित पुस्तकों में से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :– डा० निहालकरण सेठी लिखित 'चुंबकत्व और विद्युत', 'सापेक्षिकता का अभिप्राय', और 'तारा भौतिकी', डा० आर०सी० कपूर लिखित 'परमाणु विखंडन', श्री० आर०बी० सिंह कृत 'इलेक्ट्रान विवर्तन', श्री वी०पी० श्रीवास्तव कृत 'प्रकाश वर्ण', श्री शिवनाथ प्रसाद लिखित 'भूमि रसायन' आदि। सामाजिक विज्ञानों पर प्रकाशित अनेक महत्त्वपूर्ण मौलिक और अनूदित ग्रंथों में भी दर्शकों ने वैज्ञानिक साहित्य के निरंतर उन्नतिशील स्तर को देखा।

कोश-निर्माण की परंपरा इस देश में काफ़ी पुरानी है। हिंदी में भी काफ़ी पहले से कोश निर्माण का कार्य प्रारंभ हो गया था। वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों के कोश हिंदी में यद्यपि उतने प्राचीन नहीं हैं, फिर भी वर्तमान शती के प्रारंभ से ही ऐसे कोशों की परंपरा रही है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रस्तुत विभिन्न वैज्ञानिक विषयों की पारिभाषिक शब्दावलियाँ इस दिशा में किए गए उल्लेखनीय प्रयास हैं। 'हिंदी विश्वकोश' (प्रस्तावित दस खंड) और 'हिंद विश्व-भारती' पिछले कुछ वर्षों के उल्लेखनीय ग्रंथ हैं।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने पिछले आठ-दस वर्षों में विभिन्न वैज्ञानिक विषयों की पारिभाषिक शब्दावलियाँ अलग-अलग प्रकाशित की थीं। इन सबको संकलित करके अब सभी वैज्ञानिक विषयों की शब्दावली 'पारिभाषिक शब्द संग्रह' के नाम से प्रकाशित की जा चुकी हैं। अब वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग के अनुमोदन से सात मूल वैज्ञानिक विषयों की शब्दावली 'विज्ञान शब्दावली' नाम से प्रकाशित की गई है। इस ग्रंथ में दर्शकों ने विशेष रुचि दिखाई। हिंदी के अनेक द्विभाषी और बहुभाषी कोशों तथा संदर्भ ग्रंथों को दर्शकों ने बड़े चाव से देखा।

निदेशालय ने मानक-ग्रंथों की योजना के अधीन विभिन्न विषयों पर मानक ग्रंथों के प्रणयन, अनुवाद और प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया है। विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं के सहयोग से भी इस योजना के अंतर्गत मानक-ग्रंथ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इस योजना के अंतर्गत भौतिकी, रसायन, मनोविज्ञान, मानव-विज्ञान, राजनीति-शास्त्र, नीतिशास्त्र, आदि विभिन्न मूल वैज्ञानिक तथा समाज-विज्ञान के विषयों पर प्रकाशित मानक-ग्रंथों को भी प्रदर्शित किया गया। शिक्षा-शास्त्र, गणित, रसायन, कृषि-विज्ञान आदि विषयों पर निदेशालय द्वारा तैयार किए गए मानक-ग्रंथों को दर्शकों ने सराहनापूर्वक देखा।

दक्षिण भारतीय भाषाओं की प्रदर्शित पुस्तकों से भी इन भाषाओं के विकासशील वैज्ञानिक साहित्य का आभास मिला। इन भाषाओं में पिछले कुछ वर्षों में कोश और संदर्भ साहित्य विशेष रूप से समुन्नत हुआ है ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

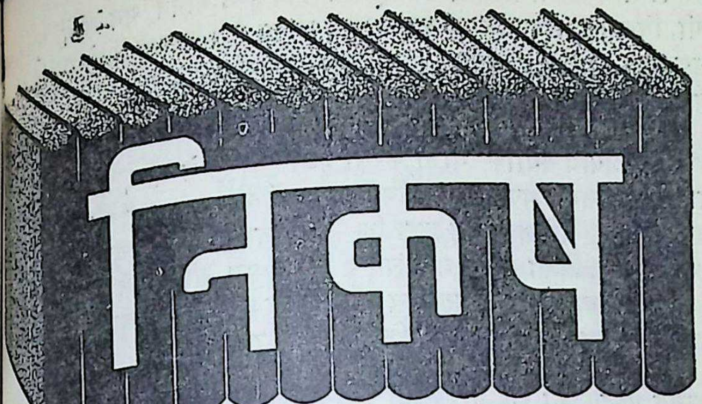

ध्यान संप्रदाय—लेखक:— डॉ० भरतसिंह उपाध्याय; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6; पृष्ठ संख्या 232, मूल्य 10 रुपए

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा होने जा रही है। उसमें अभी विभिन्न प्रकार के साहित्य की अत्यधिक कमी है। हिंदी साहित्य के भांडार को हर दृष्टि से संपन्न करना इस युग में अत्यावश्यक है। हिंदी लेखक और प्रकाशकगण इस दिशा में कितने प्रयत्नशील हैं यह वे भलीभांति जानते हैं और अनुभव भी करते हैं। यह पुस्तक इस दृष्टि से हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि करती है।

वर्तमान युग से प्रायः तेरह सौ वर्ष पूर्व छठी शताब्दी के लगभग भारत में "ध्यान संप्रदाय" का पर्याप्त प्रचलन था। बौद्ध धर्म की महायान शाखा से इस संप्रदाय की उत्पत्ति मानी जाती है। बौद्ध धर्म के अन्य संप्रदायों की भांति इसकी उत्पत्ति भी भगवान बुद्ध की बोधि से हुई। भले ही इसकी नींव बौद्धधर्म में थी किंतु इसके संस्थापक योगी बोधिधर्म को ही माना जाता है जो दक्षिण भारत के माने जाते हैं (प्रस्तुत पुस्तक में इस योगीराज का एक चित्र भी दिया गया है जिसके चित्रकार हैं श्री सेश्शू जो जापानी कलाकार थे।)

ध्यान संप्रदाय के प्रसार के हेतु श्री बोधिधर्म चीन चले गए जहाँ उन्होंने इसकी स्थापना की। भारत से चीन और चीन से जापान और कोरिया की यात्रा इस संप्रदाय ने पूरी की और जापान तथा कोरिया में तो यह संप्रदाय "ज़ेन" नाम से वर्तमान काल में भी प्रचलित है।

बौद्धधर्म से निसृत यह संप्रदाय इतना भिन्न, विलक्षण और कुछ बातों में तो इतना औघड़ और अनगढ़ है कि धर्म और दर्शन की समस्त रूढ़ियों, परंपराओं, विवेचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्धतियों और तर्क प्रणालियों से ऊबा और थका हुआ मानव मन इसमें एक विशिष्ट ताज़गी, विश्रांति और सांत्वना का अनुभव करता है। वास्तव में तो "ध्यान संप्रदाय" अनुभवमूलक साधना-पद्धति है। इसी कारण साहित्य और विचार परंपरा के संदर्भ में भी इसका विशिष्ट महत्त्व है।

ध्यान संप्रदाय क्योंकि यात्रा करता हुआ भारत से चीन, जापान और कोरिया पहुँचा, अतएव उसने अपने आप में विभिन्न मतों और संप्रदायों को भी समाहित कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इसमें ताओमत, कन्फ्यूशसवाद और शिंतो धर्म भी किसी न किसी रूप में समा गए। केवल इस संप्रदाय ने बाह्य मत ही ग्रहण किए हों, यह बात नहीं अपितु मूल बौद्धों की महायान शाखा और भारतीयता के सिद्धांतों को यह अपने से कदापि विलग नहीं कर पाया।

प्रस्तुत पुस्तक को छह परिच्छेदों में विभक्त किया गया है। ध्यान संप्रदाय के संस्थापक योगीराज बोधिधर्म की जीवनी, उनकी विचारधारा, ध्यान संप्रदाय का विस्तृत इतिहास, साहित्य, साधना पद्धति, तत्वज्ञान आदि पर विस्तार से विवेचना की गई है। अंत में विद्वान लेखक ने ध्यान संप्रदाय और भारतीय साधना पद्धति का तुलनात्मक विवेचन भी किया है। पाठकों और विद्वानों की सुविधा के लिए "ध्यान संप्रदाय" के पठनीय ग्रंथों की सूची और अनुक्रमणिका देना भी लेखक भूला नहीं है।

छपाई सफाई सुंदर है। ग्रंथ पठनीय और संग्रहणीय है। लेखक और प्रकाशक दोनों ही ऐसे ग्रंथ के प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

—नरेंद्र धीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साहित्यिक की डायरी—लेखक: गजानन माधव मुक्तिबोध; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ संख्या: 116 मूल्य : ढाई रुपए

'एक साहित्यिक की डायरी' को पढ़ते हुए बराबर यह लगता रहा है कि यह 'चीज़ों की अंतिम और निचली परत तक की खोज है। और वहां तक पहुँचने के लिए न तो किसी तरह की जल्दबाज़ी की जरूरत है और न ही किन्हीं विशिष्ट और अद्वितीय उपकरणों की। रोज़मर्रा के जीवन के अभावों-प्रभावों, सुखों-दुखों के माध्यम से मुक्तिबोध को चीज़ों के 'काव्य-सत्य' की खोज प्रिय और ठीक लगती है। यों उनके लिए 'अंतिम' कुछ नहीं बन पाता और यही उनकी खोज की ईमानदारी भी है। 'पता नहीं क्यों, लोग स्वयं-कृत विश्लेषण पर जितनी दृढ़ आस्था और निष्ठा रखते हैं, वह मुझे बड़ी ही अविवेकपूर्ण मालूम होती है। इसके विपरीत में स्वयं भी जो 'वैज्ञानिक तात्विक-विश्लेषण' किए रखता हूँ, वह मुझे समाधान और संतोष नहीं देता। कीजिए न!' (पृष्ठ 69)

वह अपने और दूसरे के लिए अंतिम रूप से कुछ निर्धारित करना इसलिए भी नहीं चाहते क्योंकि वैसा करना उन्हें 'रुक' जाना लग सकता है। उन्होंने एक जगह लिखा है कि (यहाँ) 'संक्षेप में (हाँ इस शब्द का प्रयोग मुझे ज़रूर करना चाहिए क्योंकि मैं सार रूप में कोई बात नहीं कह सकता)........' सार रूप में बात न कहना इस बात का प्रमाण है कि मुक्तिबोध को चीज़ों की छान-बीन बहुत जरूरी लगती है और वह इसे—कोई अंतिम रूप नहीं देना चाहते कि इस छान-बीन का सिलसिला ही, स्वयं उनके लिए भी और पाठक के लिए भी, बंद हो जाए। लेकिन इस छान-बीन में किसी चीज़ को जान-बूझकर बचा जाने की बात कतई नहीं है। इसीलिए 'एक साहित्यिक की डायरी' पढ़ते हुए इस छान-बीन का पूरा आनंद आता है, स्थितियों की पीड़ा और उनके दुःखद रूप के बावजूद।

'पीड़ा भरा विवेक' मुक्तिबोध के लेखन में प्रमुख है। वह किसी भी स्थिति से इसलिए कभी नहीं बचना चाहते कि उसका सामना करने पर दुःख हो सकता है या उनके निजी सुख में बाधा उत्पन्न हो सकती है। किसी भी स्थिति को ठीक-ठीक जान लेना ही, मुक्तिबोध के लिए निजी सुख है।

'मैं कहता हूँ कि मन का तत्व भी वस्तु हो सकता है। और यह मान लिया जाए कि मन का तत्व भी एक वस्तु है तो ऐसे तत्व के साथ तदाकारिता या तादात्म्य का कोई मतलब नहीं होता क्योंकि वह तत्त्व मन ही का एक भाग है। हाँ, मैं इस मन के तत्त्व के साथ तटस्थता के रुख की कल्पना कर सकता हू, तदाकारिता की नहीं......' (पृष्ठ 9) यानी जान-बूझ कर किसी चीज़ को मन से निकाल फेंकना या उससे बचना मुक्तिबोध के स्वभाव में नहीं है। हर चीज़-से उन्हें अपना, व्यक्ति का, संबंध बहुत गहरा जान पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सारा वन्य प्रदेश श्वास में भर लिया। सारी पृथ्वी वक्ष में छिपा ली।' जीने की और सब कुछ को जानकर जीने की गहरी इच्छा मुक्तिबोध के इन निबंधों में पंक्ति-पंक्ति में बसी हुई है। जीवन और लेखन को अलग करके वह नहीं देखते। 'विशिष्ट और अद्वितीय' शीर्षक निबंध में उन्होंने उन स्थूल कारणों की भी छानबीन की है जो आज के लेखन के एक बड़े भाग की प्रवृत्ति के मूल में उन्हें मालूम पड़े। मुक्ति-बोध में एक सौंदर्य-भाव की खोज भी बराबर मिलती है। हम बहुत बार सौंदर्य-भाव और उसकी खोज का अर्थ सिर्फ सौंदर्य के ऐसे उपकरणों से लगाते हैं जो सुंदर माने ही जाते हैं। उनसे सौंदर्य-भाव नहीं जागता यह कहना नितांत गलत होगा। लेकिन उन्हें ही बराबर या सिर्फ, सौंदर्य मान लेना और भी गलत होगा। मुक्तिबोध का सौंदर्य भाव जीवन की उन तहों और परतों से आता है, उन 'अनदेखे' लेकिन गहरे, संबंधों से आता है, जिन्हें अक्सर एक 'ऊपरी' सौंदर्य की प्राप्ति के लिए ओझल कर दिया जाता है।

मुक्तिबोध, चाहे वह ऊपरी सौंदर्य-भाव हो या दिखावटी-बनावटी, जीवन-दर्शन दोनों के प्रति ही एक पीड़ा भरे विवेक के साथ अपनी 'उपेक्षा' जाहिर करते हैं। 'एक साहित्यिक की डायरी' में उनका पीड़ा भरा विवेक, उनकी गहरी संवेदनात्मक माननीय दृष्टि, ऊपरी और दिखावटी चीज़ों के प्रति उनका उपेक्षा-भाव, सभी काफी स्पष्ट हैं। और यह पुस्तक किसी भी स्थिति – चीजों के काव्य-सत्य से विमुख न होने वालों की अपनी एक निजी संपत्ति बन सकती है।

——प्रयाग शुक्ल

रेडियो-नाट्य-शिल्प—लेखक:—सिद्धनाथ कुमार; प्रकाशक:- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ 176; मूल्य:- तीन रुपए।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी-साहित्य का भंडार आशातीत स्तर पर संपन्न हुआ है। अब हिंदी में ऐसे अनेक विषयों पर उपयुक्त ग्रंथ उपलब्ध होने लगे हैं, जिनका पहले नितांत अभाव था। 'रेडियो-नाट्य-शिल्प' पुस्तक इस संबंध में अनुभव किए जाने वाले अभाव की पूर्ति करती है। जब से आकाशवाणी में नाटकों का प्रसारण आरंभ हुआ है, इस विधा ने श्रोताओं को एक बहुत बड़े पैमाने पर आर्कषित किया है। हिंदी में रंगमंच का अभाव तो एक अरसे से रहा है, और अभी भी रंगमंच की स्थिति शोचनीय ही बनी हुई है।

इसी तरह, रंगमंच के अभाव में अगर हिंदी में चंद नाटककारों ने नाटक लिखे भी, तो उनकी उपयोगिता केवल पढ़ने तक ही सीमित रही। स्पष्ट है कि नाटक पठन एक अरुचिकर कार्य है, जब तक उसकी कोई विशेष उपयोगिता न हो। यही कारण है कि जयशंकर प्रसाद के भी अनेक नाटक साहित्य की कसौटी पर श्रेष्ठ होने के बावजूद भी उपयोगिता की दृष्टि से अनुपयोगी सिद्ध हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडियो के माध्यम से नाटक को जनता तक सीधे पहुँचने का एक सशक्त मार्ग प्राप्त हो रहा है। यों हमारे बहुत से अच्छे नाटककारों को भी इस बात का भ्रम है कि रंगमंचीय या साहित्यिक एकांकी एवं रेडियो नाटक में कोई अंतर नहीं है। थोड़े फेर बदल के बाद उन्हें रेडियों पर भी खेला जा सकता है। लेकिन वस्तुतः में ये बात सही नहीं है। रेडियो-नाटक की अपनी एक स्वतंत्र विद्या है, जिसे अध्ययन एवं अनुभव से ही जाना-समझा जा सकता है। अतः रेडियो के लिए नाटक लिखने तथा रेडियो में नाटक-लेखक एवं नाटक नियोजक के रूप में नए-नए प्रवेश करने वाले व्यक्तियों के सामने पहले एक बड़ी समस्या यही थी कि उन्हें इस संबंध में उचित मार्गदर्शन कराने वाली कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है।

श्री सिद्धनाथ कुमार ने 'रेडियो-नाट्य-शिल्प' लिखकर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। अंग्रेज़ी में तो इस विद्या पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, लेकिन हिंदी में प्रयास अपने ढंग का पहला है। श्री सिद्धनाथ कुमार स्वयं रेडियो में वर्षों तक रह कर नाटक-लेखन एवं नियोजन का काम कर चुके हैं, अतः अपने व्यावहारिक अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर उनकी लिखी ये पुस्तक सर्वथा उपदेय सिद्ध होगी, इसमें किंचित भी संदेह नहीं।

लेखक ने अपनी इस पुस्तक में रेडियो-नाटक की सीमा और संभावनाओं, रेडियो नाटक की विभिन्न शैलियों तथा बहुत सी ऐसी बारीक बातों पर प्रकाश डाला है। पुस्तक में न केवल नाटक की शैलियों तथा संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है, वरन्, नाटक-नियोजन के विभिन्न व्यावहारिक पहलुओं पर भी विचार किया गया है। पुस्तक के अंत में लेखक ने उदाहरण स्वरूप एक संगीतिका तथा एक रेडियो-नाटक दे कर और भी उपकार किया है। इससे रेडियो-नाटक लिखने वाले लोगों को आकाशवाणी की यथार्थ शैली जानने में सहायता मिल सकेगी।

पुस्तक की उपयोगिता तो इसी से सिद्ध हो चुकी है कि इसका पहला संस्करण बहुत शीघ्र समाप्त हो गया।

—नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी

सरदार भगतसिंह (महाकाव्य) लेखक : श्रीकृष्ण 'सरल'; प्रकाशक : जन कल्याण प्रकाशन; गोपाल भवन, माधवनगर, उज्जैन; मूल्य : ग्यारह रुपए; पृष्ठ संख्या : 576

हिंदी के महाकाव्यों की परंपरा में मध्यप्रदेश के सुविख्यात कवि श्रीकृष्ण "सरल" ने सरदार भगतसिंह महाकाव्य लिख कर एक नया अध्याय जोड़ा है। भूमिका से स्पष्ट है कि सरलजी ने फीरोजपुर जाकर भगतसिंह की समाधि के दर्शन किए। 'गोली मार दूंगा' जैसी चुनौती स्वीकार की। भगतसिंह के परिवार के सदस्यों तथा साथियों से भेंट की। संभवतः ये पहले कवि हैं जिन्होंने अपने चरित-नायक के हेतु इतना कष्ट उठाया, खोज की। सरलजी ने इस महाकाव्य को 23 मार्च 1963 को भगतसिंह की समाधि पर सतलज के किनारे प्रारंभ किया और 14 नवंबर 1963 को क्षिप्रा के पावन तट पर उज्जैन में समाप्त किया। उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रक्खा है कि ऐतिहासिकता का गला न घुट जाए। शहीद के बचपन की सभी घटनाएँ-कुटुंबियों, सहपाठियों तथा संबंधियों से तथा क्रांतिकारी जीवन की घटनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवशिष्ट क्रांतिकारियों तथा अधिकृत व्यक्तियों से प्राप्त की है । प्रत्येक घटना की सत्यता का प्रमाण भी कवि के पास सुरक्षित है । प्रबंधकार ने चरितनायक से तादात्म्य स्थापित करने के लिए उस सभी साहित्य को पढ़ने का प्रयत्न किया है जो शहीद ने स्वयं पढ़ा था ।

इस ग्रंथ की कथावस्तु को तेईस सर्गों में विभाजित करने का रहस्य यह है कि सरदार भगतसिंह को केवल तेईस वर्ष की अवस्था में ही फाँसी लगी थी । प्रथम सर्ग में सितंबर सन् 1907 ई० से अगस्त सन् 1908 तक की घटनाओं का वर्णन है । यह क्रम इसी प्रकार आगे चलता गया है । अंतिम सर्ग में अगस्त सन् 1930 से मार्च 1931 तक की घटनाओं का वर्णन है । भगतसिंह को पूर्वजों से क्रांति की धरोहर मिली थी । साथ ही बचपन से ही उनको क्रांतिकारी वातावरण भी प्राप्त हुआ । भगतसिंह में अदम्य शारीरिक बल तो था ही वे प्रतिभा के भी धनी थे । श्री यशपाल ने "सिंहावलोकन" में हिंदी सा० सम्मेलन की निबंध प्रतियोगिता में उनको प्रथम पुरस्कार मिलने का उल्लेख किया है । विनोदप्रियता व चरित्रबल उनकी महान पूंजी थी । उनके जीवन में कभी कोई औरत नहीं आई । शसस्त्र क्रांति को भगतसिंह की देन अद्वितीय थी । सुभाष बोस तो भगतसिंह पर लट्टू थे । भगतसिंह की चितवन में संमोहन था ।

भगतसिंह ने जीवन की नहीं वरन् मौत की योजना बनाई थी । छात्र जीवन में ही उन्होंने विश्व क्रांतियों का अध्ययन कर डाला था । देश की पुकार पर अध्ययन को तिलांजलि दे वह असहयोग के अखाड़े में उतर पड़े । अकालियों के गुरुद्वारा आंदोलन में भी वह कूद पड़े । जीवन के प्रश्नों के उन्होंने कई उत्तर खोजे । खेती की, दूध की डेरी चलाई, अखबार संपादन किया और जीवन अंतर्धारा की तरह सर्वत्र क्रांति की भट्टी भी दहकाई । भगतसिंह के पास सार्थक मृत्यु की सुनिश्चित योजना थी । जलयानवाला बाग के हत्याकांड के पश्चात् बारह वर्ष की आयु में शहीदों के खून से सनी मट्टी भर लाए । एक दिन अपने पिता से उन्होंने सगर्व कहा था—

"एक दिन आएगा जब आप मेरा नाम लेकर चलेंगे, फिरेंगे और लोग आपको भगतसिंह के पिता के नाम से जानेंगे ।

भगतसिंह जैसा क्रांतिदर्शी तथा मृत्यंजयी बलिदानी युवक किसी भी महाकाव्य का सहज ही चरितनायक हो सकता है । सरलजी ने अपने नायक को पूरी सहानुभूति व श्रद्धा प्रदान की है। और ऐसा ग्रंथ लिखकर उन्होंने स्वयं को कृतकृत्य किया है। प्रथम सर्ग "सिंह जननी" में कवि मानों भविष्यवाणी करता है :—

अल्प वय, इतनी विनय, इतना पराक्रम ओज,
सिंह-शावक सी गठनि, ये नयन रक्तंभोज,
देह सुगठित, विक्रमी चितवन, समुन्नत भाल,
शत्रुओं का शत्रु होगा यह कठोर कराल ।

दूसरे सर्ग में बाल भगत तमंचा बोने का उपक्रम करता है और उसे बंदूक का वृक्ष उगने का आभास होता है जिन्हें वह अंग्रेज़ों से लड़ने अपने साथियों को बाँटेगा। एक दिन चाची से कहता है :—

मैं मज़ा चखा दूंगा,
इस अत्याचारी शासन को ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…न, पद और यश के प्रलोभनों को शहीद सदा तिनके सा ठुकराते रहे––

बड़ा आदमी नहीं, देश का बनना मुझे सिपाही,
जो ढा रहे देश पर, उन पर ढाना मुझे तबाही ।

…देशी सत्ता के प्रति क्षोभ और प्रतिशोध भगतसिंह की शिराओं में उत्तेजित …हा था :—

…पापा ! तुम मुझसे कहते पर गोरे हैं शैतान,
…खाते अन्न हमारा भजते रहते इंग्लिस्तान ।

…त होते हुए भी काव्य-तत्व के दर्शन यत्र-तत्र होते हैं यथा––

…वेणियाँ, नागिनें क्यों हों ? नागिनें सदा डसती हैं,
ये तो दर्शक की आँखों–उनके मन में बसतीं हैं ।

…की तरुणाई, यौवन के उद्रेक को बलिदान की लपटों में बंधवाकर ही चैन लेती …अन्याय, अत्याचार व शोषण को यह एक क्षण भी नहीं सह सकती ।

यौवन का अपमान, अगर हम चुप रह अपमानों को झेलें,
यौवन का अपमान, अगर हम नहीं आग पानी से खेले,
यौवन का अपमान, अगर हम नहीं शत्रु को चढ़कर मारें,
यौवन का अपमान, दया के लिए अगर हम हाथ पसारें ।

…भाष और गांधी में हिंसा तथा अहिंसा पर कई बार विवाद हुआ था। पर …में सुभाष बाबू ने समन्वय उपस्थित किया था कि 'बापू, मुझ लड़ कर आज़ादी ले …आने दो, फिर आप उसे अहिंसा से चलाते रहना।' इसी प्रकार सुभाष के चरण …नों पर भगतसिंह भी चलते रहे––गीता का उपदेश यही है, मारो या मरो …। गृद्ध-सिंधु के तीर बैठकर आहें नहीं भरो तुम ।'

"जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी" के अनुसार सरलजी ने ओजपूर्ण उद्घोष किया …।

जीवन की आशा ही कैसी, जब रक्षक भक्षक बन जाए,
फसल कहाँ से लहराए जब बागड़ स्वयं खेत को खाये ।

…र हड़पनीति के विरोध में––

'नाम न्याय का ले बंदर सब की रोटी हड़प रहा था'।

प्रकृति वर्णन के प्रति भी कवि यथेष्ट जागरूक है :––

…घुमड़ घन घोर शोर कर, गरज गरज घहराते,
…जय पताका विद्युत की है, बादल-दल फहराते ।
…रहीं झर-झर झर-झर-झर क्रोधित मूसलधारें ।
…सा रहा क्रुद्ध घन-मंडल विध्वंसक बौछारें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः पचास चित्रों व प्रतीकात्मक आवरण से ग्रंथ सुज्जित हैं। भाषा मा... सुथरी है। तत्सम शब्दों का प्रयोग भी श्लाघनीय है। एक बार हर भारतीय ... महाकाव्य को पढ़ना चाहेगा।

—भगवतशरण जौह...

पंजाब का हिंदी साहित्य लेखक: सत्यपाल गुप्त; भूमिका लेखक—आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक—पे... प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन।

प्रस्तुत पुस्तक सम्मेलन की प्रकाशन-माला का दूसरा पुष्प है। इससे पहले सम्मेलन 'पेप्सु में हिंदी की प्रगति' नामक शोध-पूर्ण पुस्तक प्रकाशित कर चुका है। ... पुस्तक की धुरंधर विद्वानों एवं शोधकर्ताओं ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी ... उन्हीं की प्रेरणा से विद्वान लेखक ने यह बड़ा एवं श्लाघ्य प्रयास किया है।

पुस्तक में दी गई सामग्री को दस अध्यायों में बाँटा गया है। इसमें पंजाब ... हुई हिंदी की प्रगति का दिग्दर्शन है। हिंदी साहित्य के इतिहास की परंपरा पर ... पंजाब के साहित्य का भी काल-विभाजन किया गया है। इसमें प्राचीन ... नाथ और सिद्ध काल, वीरकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, तथा आधुनिक काल ... में पंजाब के साहित्यकारों ने हिंदी की अभिवृद्धी में क्या योगदान दिया है, इस... बड़ा युक्तियुक्त वर्णन है।

इस पुस्तक से कुछ लोगों की यह भ्राँत धारणा निर्मूल हो जाती है कि पंजाब हिं... साहित्य के लिए उर्वर नहीं रहा। इसके पढ़ने से पता लगता है कि 'संत रेणु' ने रीतिकाल ... में भी 'गुरुनानक विजय' नामक वृहदाकार महाकाव्य की रचना की थी। जब ... ग्रंथ आलोक में आएगा तो ज्ञात होगा कि पंजाब ने भी हिंदी साहित्य को कई 'मानस' और 'पद्मावत' दिए हैं। शोधकर्ताओं के लिए तो यह पुस्तक चिंतामणि के समान है। इसमें उन महान् साहित्यकारों का उल्लेख है जो गुरुमुखी लिपि में लिखने के कारण हिंदी साहित्य के इतिहासकारों की दृष्टि से ओझल रहे। यदि 'भाई संतो... सिंह' आदि कुछ और प्रसिद्ध लेखकों का इसमें समावेश हो जाता तो इसकी उप... योगिता और भी बढ़ जाती।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में यह पुस्तक अधिक व्यवस्थित अध्ययन के लिए विशाल क्षेत्र प्रस्तुत करती है। गण्यमान्य नेताओं, लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों एवं अग्रगण्य साहित्यकारों ने इस पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

प्रस्तुत पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण की कुछ अशुद्धियाँ अवश्य रह गई हैं। जि... उच्चकोटि के साहित्य का इन पृष्ठों में समावेश किया गया है, विद्वज्जनों में ... तभी आदर प्राप्त कर सकेगा जब कि आगामी संस्करण में ऐसी त्रुटियों का निवारण कर दिया जाए।

—गुरुदत्त श...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...धार: सचेतन कहानी विशेषांक; संपादक: डा० महीप सिंह;
...शक : हिंदी भवन, 370 रानी मंडी, इलाहाबाद;
मूल्य ढाई रुपए।

...के सामने 'आधार' का सचेतन कहानी विशेषांक है। कोमल रंगों में अलमेलकर ...त्र मुख-पृष्ठ पर अंकित है। अंदर के पृष्ठों में विनोदराय पटेल और टी० के० ...नी की कृतियों के फोटो ब्लाक हैं। जतीनदास की कृति 'विकच कैक्टस' भी ...त है। चित्रकला का स्पर्श अंक को जिस तरह उभार देता है उसी तरह अन्य ...में संकलित सामग्री 'सचेतन' कहानी के संभावित आयामों को उद्घाटित करती ...आधार' का यह विशेषांक इस माने में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि ठीक ...दिनों 'ज्ञानोदय' और 'माया' के विशेषांक भी हिंदी कहानी के संबंध में विशिष्ट ...नों को लेकर प्रकाशित हुए। 'सचेतन' कहानी की चर्चा वैसे '64 की उपज ...और जो पार्थक्य इस चर्चा ने 'नई कहानी' के संदर्भ में स्पष्ट किया है, उसी का ...न 'माया' के विशेषांक में भी मिला। अतः यह जाहिर हो गया कि कहानी के ...र में चंद लोगों नें जो दलबंदी खड़ी कर रखी थी, उसको न केवल 'सचेतन' ...नी के सामाजिक दर्शन द्वारा महसूस किया गया बल्कि उन कथाकारों ने भी ...व किया कि जिनको रचनाएं एवं जिनका समूचा कृतित्व दलबंदी के कारण ...र दिया गया।

...आधार' का सचेतन कथा-विशेषांक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है क्योंकि इसके ...मन् '64 में उभरी कथादृष्टि के लिए ठोस आधार प्राप्त हो रहा है। ...र खंड में डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजीव सक्सेना, उपेंद्रनाथ अश्क, डा० ...र माचवे, वीरेंद्रकुमार गुप्त और डा० श्याम परमार के लेख उल्लेखनीय हैं। ...स श्री जैनेंद्रकुमार के साथ डा० श्याम परमार और जगदीश चतुर्वेदी की ...परिचर्चा इसलिए पठनीय है कि अन्य विचारकों के साथ स्वयं जैनेंद्रकुमार ने ...में 'सचेतन' दृष्टि का स्वागत किया है। डा० महीप सिंह ने संपादकीय में ...धारभूमि' के अतंर्गत इस बात का आग्रह किया है कि सचेतन दृष्टि आधुनिकता ...दृष्टि है—यह सामूहिक संचेतना का परिणाम है। डा० वार्ष्णेय ने वस्तुतः कहानी ...तन की बारीक तराशी में कोई निश्चित बात नहीं कही। राजीव सक्सेना ने ...विचारों की पुष्टि की और आधुनिकता के नाम पर विकृतियों में रस लेने की ...ति को उचित न समझा। उपेंद्रनाथ अश्क ने, लगता है, जबर्दस्ती ...स होने की कोशिश की जबकि डा० माचवे ने नई संवेदना का स्वागत करते हुए ...कि हिंदी कहानी का क्षेत्र अभी श्मशान-घाट नहीं हुआ है। डा० परमार ने 'सचेतन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी के वैचारिक आधार को 'एक्टीविस्टों' के अनुरूप बताया, क्योंकि यह दृष्टि परिष्कृत चिंतन का फल है। निश्चय ही आज तक लिखी जाने वाली कहानी कतिपय विषयों और अभिव्यक्तियों के निश्चित रूपों में भटकती रही है, जबकि सही नज़रिए इस फार्मूले से बाहर आने की ओर लगनी चाहिए। उसे नया ट्रीटमेंट चाहिए। लेखक की निर्वैयक्तिता चाहिए। अतः कहानी चाहे नाम के लिए 'सचेतन' हो या न हो—उसे 'नई कहानी' के नाम से प्रचारित कहानियों के पैटर्न से बाहर आना ही होगा।

'आधार' के कथा विशेषांक में बीस कहानियाँ संकलित हैं। निश्चय ही कुछ कहानियों को छोड़कर अधिकांश कहानियाँ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। कमल जोशी (ढलान), आनंदप्रकाश जैन (आटे का सिपाही), धर्मेंद्र गुप्त (मोड़ से पहले), जगदीश चतुर्वेदी (अधखिले गुलाब), महीप सिंह (स्वराघात), रामकुमार भ्रमर (कानून की बात) श्याम परमार (जीप की दोगली नजर) और योगेश गुप्त (एन्क्लोजर) की कहानियाँ विषय और ट्रीटमेंट की दृष्टि से अच्छी रचनाएँ हैं। नई कहानी के मिथ को तोड़ने के लिए जिस तरह का शालीन तरीका अपेक्षित था, वहीं इस अंक की सामग्री द्वारा अपनाया गया। 'नई कहानी' के नाम पर जो हल्के दर्जे के तरीके काम में लाए गए उनसे भिन्न वैचारिक स्तर का द्योतक आधार का यह विशेषांक है। अंक बहुत अच्छी तरह से छपा है। इन ढ़ाई सौ पृष्ठों में पर्याप्त रूप से पठनीय सामग्री निहित है। इस प्रयास के लिए संपादक प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

—कुलदीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरेंद्र व्यास

COMPOUND VERBS

In the previous lessons, dealing with verbs, we have observed that Hindi verbs consist not only of one verb-element but of two or more verb-elements also. These verb-elements are constituent of a compound verb, and are so combined that while the first constituent retains its primary status, the other constituent/constituents are used as subsidiaries. Certain verbs are also at times combined with nouns or adjectives and in their compound forms, denote a single verbal idea. The following examples would clearly indicate such combinations :

मैं गाड़ी में **सो गया** ।	I fell asleep in the train.
क्या आप मुझे यह पुस्तक **पढ़ने दगे** ?	Will you (kindly) allow me to read this book ?
तुम्हें यह काम **करना पड़ेगा** ।	You will have to do this work.
चोर सामान उठाकर **चलता बना** ।	The thief went away with the luggage.
रोज़ रात को कुछ पढ़कर **सोया करो** ।	Go to bed after reading a while.
मैं अपनी ग़लती **स्वीकार करता** हूँ ।	I admit my mistake.
पिछले कुछ महीनों से भाव लगातार **बढ़ते चले जा रहे हैं** ।	There has been an upward trend in prices for the past few months.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Taking the form of the first constituent into account, the compound verbs may be divided into four groups :

1. Main verb in the form of a conjunctive participle.
2. Main verb in the form of an infinitive.
3. Main verb in the form of present and past participles.
4. Noun or adjective combined with a verb.

The second constituent of a compound-verb is always that verb which either helps in modifying or intensifying the meaning of the main verb or, combining with a noun or an adjective, in conveying a single verbal idea. It may be noted that most of the verbs, used as subsidiary are not so by nature. They are main verbs and can take other verbs as their subsidiaries. But when used as subsidiary verbs, they lose, in most cases, their primary meaning or retain it so insignificantly as to be hardly perceptible. In the sentence मैं गया (I went) 'गया' (जाना to go) is a main verb; but in the sentence मैं भाग गया (I ran away) 'गया' is used as a subsidiary verb and hence loses its primary meaning.

In English, some adverbs or prepositions used adverbially are compounded with certain verbs to give them a slightly modified meaning or to intensify it, *e. g.* throw: throw away, went: went away, fell: fell down, come: come back etc. In Hindi, subsidiary verbs are compounded with main verbs for a similar purpose. Here is a list of verbs with their intended meaning, most commonly used as subsidiary verbs:

देना (Separation from an agent or performance to completion or permission to act.)

डालना (completion of an act, vigour or violence)

छोड़ना (abandoning)

लेना (Suggestive of a connection with an agent; to manage to do a thing)

जाना (Suddenness, completion or steady progress of an act.)

जाना (ability, continuity from a point of time in the past or to be about to)

पड़ना (Suddenness in action, obligation, duty)

उठना (Sudden or unexpected action)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ना (Priority or precedence in time)
...ना (Thoughtlessness)
...ना (Ability to act; permission)
...ना (Desire, obligation, duty)
...ना (Meeting)
...ना (Habitual act)

बैठना (Haste, force, regret or insistence in the action)
रहना (Continuance of an act)
मरना (Unwanted act)
सकना (Ability to act)
चुकना (Completion of an act)
चलना (Beginning)
लगना (Beginning)
होना (Obligation or duty)
बनना (possibility)

In compound verbs, the conjunctive participle, which is identical with the bare root of the verb, does not change at all : बच्चे ने ...े तोड़ डाली The child broke the slate (to pieces). The infinitive remains unmodified when compounded with the subsidiary verbs चाहना (to desire, to want, चाहिए should ought), पड़ना (to ...down) or होना (to be, become), of course when intransitive. With लगना (to touch, to come in contact), देना (to give) etc. as subsidiary verbs, the oblique form of the infinitive is used :

मैं गर्मियों में कश्मीर **जाना चाहता** हूँ।	I want to go to Kashmir in summer.
हमें प्रात: काल जल्दी **उठना चाहिए।**	We should get up early in the morning.
इन बच्चों को स्कूल **जाना होगा**	These children shall have to go to school.
कल्याणकारी राज्य में छात्रों को निःशुल्क शिक्षा **मिलनी चाहिए।**	Students in a welfare state must get free education.

In compound verbs, participles used as main verbs undergo change according to the number and gender of the subject, or of the object, as the case may be :

पंचवर्षीय योजनाओं की सफल कार्यान्विति के साथ साथ हमारा देश उन्नति **करता जाता है।**	Our country progresses with the successful inplementation of the Five Year Plans.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तुम्हारी पुस्तक मेज़ पर खुली पड़ी रहती है।	Your book is always lying open on the table.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Except the above mentioned modifications, the main verb remains uninflected. All changes relating to voice, mood, tense and construction affect only the subsidiary verb :

बैठ **जाओ**	Sit down
वह बैठ **गया**	He sat down
मैं चाहता हूँ कि आप बैठ **जाएँ**	I want you to sit down.
लगता है तुम थोड़ी देर बाद बैठ **जाओगे**	It appears that you would sit after sometime.
देखें, कौन पहिले बैठ **जाता है** ?	Let us see, who sits earlier.

Some subsidiary verbs are also added to change an active voice into a passive voice :

उसने मुझे बुलाया	He called me.
मैं उसके द्वारा बुलाया **गया**	I was called by him.

We now revert to the above mentioned classification of compound verbs :

1. Main Verb in the form of Conjunctive Participle + Subsidiary Verbs

Subsidiary verbs are compounded both with transitive and intransitive verbs. They are numerous *viz*. आना, जाना, उठना, बैठना, लेना, देना, पड़ना, डालना, रहना, निकलना, सकना, चुकना, मरना, मारना, मिलना, पाना, चलना, रखना। The compounds are :—जा आना (to return after having gone somewhere), कर आना (to return after completion), थक जाना (to get tired), आ जाना (to arrive), बोल उठना (to speak up), जाग उठना (to get up suddenly), मार बैठना (to strike), खो बैठना (to lose), ले लेना (to take away), सुन लेना (to listen), कह देना (to say out), फेंक देना (to throw away), रो देना (to start crying), हँस पड़ना (to burst out laughing), गिर पड़ना (to fall down), मार डालना (to kill away), तोड़ डालना (to break to pieces), बैठ रहना (to sit still), चल निकलना (to come into circulation), तैर सकना (to be able to swim), जा सकना (to be able to go), पढ़ चुकना (to finish reading), आ मरना (to come unwantedly), लिख मारना (to write something nonsensical), जा मिलना (to join hands with or to shift to), कर पाना (to be able to do), बढ़ चलना (to increase or proceed further).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. Main Verb in the form of Infinitive + Subsidiary Verbs

The most common subsidiary verbs compounded with the [inf]initive form of the main verbs are : चाहना, पड़ना, लगना, होना, [..], पाना। Examples of uninflected infinitives combined with [sub]sidiary verbs are : कहना, चाहना (desire to say)——When the [sub]sidiary is चाहिए, it expresses obligation or duty : जाना चाहिए ([ou]ght to go)——, करना होना or करना पड़ना (have to do). The [ob]lique infinitive compounded with subsidiary verbs are : रोने [लग]ना (begin to weep), बोलने लगना (start talking), पढ़ने देना (Let [stu]dy), नहीं हँसने पाना (not be able to laugh)—usually in negative [se]ntences.

3. Main Verb in the Form of Present and Past Participles+Subsidiary Verbs.

रहना, आना, जाना are most frequently used with the present [an]d past participle forms of the main verb : खेलते रहना (keep on [pla]ying), पड़ा रहना (keep lying), रहते आना (have been living), [..]ला आना (come away), बढ़ते जाना (go on advancing or increasing), [..]ता जाना (dying-figuratively).

4. Noun or Adjective+Subsidiary Verbs

In Hindi a very large number of compound verbs are formed by combining various nouns or adjectives with verbs like करना, [हो]ना, आना, रहना, पड़ना, लगना, देना, मारना, खाना, लेना, पाना etc. In such cases, nouns or adjectives forgo their independent existence and become a part of the verb, conveying a single verbal idea. They are not treated as compound verbs in other cases *e. g.*

1. मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए (kindly accept my hearty congratulations) and 2. हमने भोजन किया (we had our meals). In this example भोजन is obviously the object of करना and hence it cannot be treated as an example of compound verb.

The noun in the compound verb remains un-inflected and is preceded, if necessary, by different case endings. Some examples of these compounds are as follows :

With करना : स्वीकार करना (to accept, to admit), आदर करना (to respect), वर्णन करना (to describe), याद करना (to recall). All these are transitive verbs.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With होना, आना, लगना, रहना, खाना : These verbs form intransitive compounds : दुःख होना (to feel sorry or unhappy), ज्वर होना (to have fever), दया आना (to feel pity), हँसी आना (to laugh), प्यास लगना (to feel thirsty), याद रहना (to remember), ठोकर खाना (to stumble), धोका खाना (to be deceived).

With देना and पड़ना : These are combined with certain abstract nouns : दिखाई देना, दिखाई पड़ना (to be seen), सुनाई देना, सुनाई पड़ना (to be heard).

With मारना, देना, लेना : डींग मारना (to boast), छलाँग मारना (to jump), धोखा देना (to deceive), उधार देना (to lend); उधार लेना (to borrow).

The adjective is generally compounded with लगना : अच्छा लगना (to like), बुरा लगना (to dislike).

Summary

1. While using compound verbs, one has to bear in mind the rules given is the previous lessons *e. g.* (a) The use of the auxiliary verb होना, (b) The inflection of both the auxiliary and the participle of the main verb according to gender, number and person of the subject, (c) all the three constructions, (d) The use of ने in the case of transitive verbs in the past tenses. This ने is not used when one number of the compound verb is an intransitive verb, (e) The use of the accusative and dative cases in the case of transitive verbs which take two objects.

2. The subsidiary verb alone is conjugated and it loses its primary meaning.

3. In English, adverbs or prepositions are compounded with verbs to give them intensified meaning. Subsidiary verbs for this purpose are used in Hindi.

4. Compound verbs are not generally used in negative sentences. Wherever their use is possible, नहीं, न, मत are interposed between the two constituents.

As already seen, Hindi has a large number of compound verbs. In order to enrich the expression, one must use them repeatedly. Some illustrative sentences have been given to show the use of compound verbs, full grasp and significance of which can only be achieved through constant use and practice.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...एक और विशेषांक

भाषा

त्रैमासिक

द्विवेदी स्मृति-अंक

- हिंदी तथा हिंदीतर भाषाओं के विद्वानों की रचनाएँ ।
- द्विवेदी जी के अंतरंग जीवन की झाँकियाँ ।
- द्विवेदी जी के दुर्लभ चित्र ।
- द्विवेदी जी के संस्मरण ।
- द्विवेदी युगीन साहित्य पर सारगर्भित लेख ।
- द्विवेदी जी के संपादक, भाषा सुधारक, काव्य समीक्षक, निबंध लेखक, आलोचक तथा कवि रूप का अधिकारी विद्वानों द्वारा विषद् तथा तुलनात्मक अध्ययन ।
- द्विवेदी जी के एक गद्यांश का चौदह भारतीय भाषाओं में अनुवाद ।
- द्विवेदी जी के हाथ से संशोधित की गई प्रसिद्ध रचनाओं की पांडुलिपियों और द्विवेदी जी के पत्रों के चित्र ।
- द्विवेदी शताब्दी समारोह का विस्तृत एवं सचित्र विवरण

तथा

श्रद्धांजलियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भाषा' त्रैमासिक का महत्त्वपूर्ण विशेषांक

शांति-रक्षा अंक

●जय जननी, जय भारती

सर्वश्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', संजय भट्टाचार्य, नरेंद्र शर्मा, राजीव सक्सेना, सदानंद रेगे, जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चोधरी, स्वदेशरंजन दत्त, जगदीश गुप्त, शांतिलाल आहूजा तथा दिनकर सोनवलकर की कविताएँ।

●सात कहानियाँ

कहानीकार : सवश्री कमलेश्वर, संतोखसिंह धीर, स्टीपेन ज़ोरयान, शक्तिपाल केवल, नरेंद्रपाल सिंह, शिवकुमार जोशी तथा सुबासिंह।

●द्वाभा

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंशराय 'बच्चन' तथा नंद चतुर्वेदी की कविताएँ (अनुवाद सहित)।

●लेखक का दायित्व

●सर्वश्री बालकृष्ण राव, जनार्दन वाघमारे, भगवतशरण उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, वासुदेवशरण अग्रवाल तथा प्रफुल्लदत्त गोस्वामी के सारगर्भित लेख।

●सुमित्रानंदन पंत का गीतिनाट्य 'ध्वंस-शेष'—गुजरा ी अनुवाद सहित।

●श्री दिनकर कौशिक का 'आपत्कालीन स्थिति तथा कलाकार' शीर्षक लेख।

●**भारतीय कविता** के अंतर्गत समस्त भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कविताएँ।

●सुनीतिकुमार चटर्जी, हेम बरुआ तथा प्रेमनाथ धीर के इंटरव्यू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिभाषिक शब्द-संग्रह
(अंग्रेज़ी-हिंदी)

यह शब्द-संग्रह दस वर्ष के अनुसंधान कार्य का परिणाम है। इसमें विभिन्न विषयों और शास्त्रों के विशेषज्ञों और विद्वानों की सहायता से वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड के तत्वाधान में निर्मित शब्दावली संकलित की गई है।

भारत के संविधान के अनुसार हिंदी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि यह भारत की सामसिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता म हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची म उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत तथा गौणत: भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करने का दायित्व भारत सरकार को सौंपा गया है।

स्ट्राबोर्ड कवर

पृष्ठसंख्या : 1370

मूल्य 12 : रुपए

भारत सरकार ने 1950 में हिंदी और प्रमुख भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली तैयार करने के लिए एक वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की थी।

बोर्ड का यही दृष्टिकोण रहा कि जहाँ तक हो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग किया जाए और जहाँ राष्ट्रीय शब्दावली उपलब्ध न हो सके वहाँ भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया जाए।

कृपया अपना आर्डर नीचे लिखे पते पर भेजें:—

प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, भारत सरकार, सिविल लाइंस, दिल्ली-6।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा-मंत्रालय, भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि त्रैमासिक पत्रिका

संस्कृति

(ग्रीष्म, पावस, शरत् और हेमंत मे प्रकाशित)

* * *

संपादकीय मंडल

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'
डा० नगेन्द्र
श्री दु० क० हिंगोरानी
राजेंद्र द्विवेदी (संपादक और पदेन सचिव)

* * *

संपादक संस्कृति,
शिक्षा-मंत्रालय,
13-3, करजन रोड 'ए' बैरक्स,
नई दिल्ली।

वार्षिक चंदा : चार रुपए
एक प्रत : एक रुपया

भारत-विद्या विशेषांक के मुख्य आकर्षण

विश्व एकता में प्राच्य विद्या का स्थान (हुमायून् कबिर), भारत विद्या की समस्याएँ और आवश्यकताएँ : एक संगोष्ठी (के० एम० पनिक्कर, ज्यां फिलियोजा, आर० सी० मजूमदार, वें० राघवन्, रमाप्रसन्न नायक, प्रभाकर माचवे), भारतीय तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान (सी० पी० रामस्वामी अय्यर), भारत में पुरातत्व और इतिहास (के० ए० नीलकंठ शास्त्री), राजकीय शासनलेख (बहादुरचंद्र छावड़ा), प्राचीन भारतीय नाटक (इंदुशेखर) नृत्य (कपिला वात्स्यायन), संगीत (पी० साम्बमूर्ति), मूर्तिकला (सी० शिवराममूर्ति), चित्रकला का इतिहास (मोतीचंद्र), प्राचीन भारतीय स्थापत्य (द्विजेंद्रनाथ शुक्ल), कला का इतिहास (चार्ल्स फावरी), संस्कृत साहित्य (रसिक बिहारी जोशी)।

राष्ट्रीय पक्षी (ए० के० भट्टाचार्य), संस्कृत और तमिल व्याकरण (डब्ल्यू० नोले), प्राचीन भारत में प्रजातंत्र (सी० एन० जुत्शी)।

स्तंभ संपादकोय, समीक्षा, चित्रमय समाचार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक-परिचय

- रघुवीर (डॉ०), प्रसिद्ध भाषाविद् तथा कोशकार।
- जगमोहनराव भट्ट, 5198/1, बालकृष्ण गली, पहाड़गंज, नई दिल्ली-1।
- देवेंद्रकुमार वर्मा, 945, बाई का बगीचा, जबलपुर (म० प्र०)।
- श्रवणकुमार गोस्वामी, हिंदी विभाग, डोरंडा महाविद्यालय, रांची।
- सुदर्शन सिंह मजीठिया, 5, रामकृपा, कॉमर्स कॉलेज के सामने, भावनगर।
- सरोज वर्मा (कुमारी), द्वारा, श्री कन्हैयालाल वर्मा, अध्यक्ष, राजनीति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- मोहनलाल पुरोहित, आचार्यों का चौक, बीकानेर।
- विश्वजीत, क० मुं० हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
- संपतसिंह ठाठुर, पेंशनर, मोतीतलाब पारा, जगदलपुर (म० प्र०)।
- कन्हैयालाल सहल (डॉ०), अध्यक्ष हिंदी तथा राजस्थानी विभाग, विद्या विहार, पिलानी।
- आर० आर० थॉमस, भाषाविद्।
- विनोदकांत गौतम, 152, पुरानी कोतवाली, झांसी।
- हरिहरप्रसाद गुप्त (डॉ०), शामली (जिला-मुज़फ्फरनगर)।
- रमानाथ शर्मा, सहायक प्राध्यापक, भाषा विज्ञान, हिंदी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- कांतिकुमार, हिंदी विभाग शासकीय महाविद्यालय, जगदलपुर (म० प्र०)।
- नारायणदत्त पालीवाल, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली-6।
- कृष्णकुमार, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली-6।
- हेमबरुआ, द्वारा, पब्लिकेशन सिंडिकेट, आर 635, न्यू राजेंद्रनगर, नई दिल्ली-5।
- मुनी नथमल, द्वारा आदर्श साहित्य संघ, 199/5, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-7।
- सोमशेखर, 'सोम', हिंदी विभाग, दि कम्यूनिटी सेंटर जयनगर, बंगलौर-22।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- **शिखरचंद जैन,** हिंदी अधिकारी, कोहिमा ।
- **सुमित्रानंदन पंत,** 18-बी, स्टेनली रोड, इलाहाबाद ।
- **रामचंद्र देसाई,** खड़की स्ट्रीट, देलाडवा (व्हाया-सूरत) ।
- **जयशंकर 'प्रसाद** (स्व०) हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि तथा नाट्यकार।
- **कृष्णा चतुर्वेदी,** 3, फासबेरी हाउस, 40, मेरी बेदरी रोड, बंबई-1।
- **कैलाश बाजपेयी,** (डॉ०) हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, मोती-बाग, नई दिल्ली ।
- **मनमोहिनी,** पो० बॉ० नं० 82, अजमेर ।
- **नारायण सीताराम फड़के,** 'दौलत', 42, विजयनगर कालोनी, पूना-2।
- **शरद मोझरकर,** सिविल वार्ड, दमोह (म० प्र०) ।
- **राजेंद्रबिहारी पांडेय,** 193, डालीगंज, लखनऊ ।
- **आलोक सरकार,** बंगला के लेखक ।
- **रामप्रसाद पांडेय,** ए० पी० एस० ऑफिस, ईस्टर्न रेलवे, हावड़ा।
- **संतसिंह सेखों,** अँग्रेज़ी विभाग, गवर्नमेन्ट कालेज, लुधियाना।
- **शाकिर पुरुषार्थी,** जगराओं ।
- **नरेंद्र धीर,** 13/2, वेस्टर्न एक्स्टेंशन एरिया, करौलबाग, नई दिल्ली।
- **प्रयाग शुक्ल,** द्वारा, श्री अशोक शेकसरिया, दैनिक हिंदुस्तान, कनाट प्लेस, नई दिल्ली ।
- **नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी,** 13/10, नार्थ टी० टी० नगर, भोपाल।
- **भगवंतशरण जौहरी,** अध्यक्ष, हिंदी विभाग, वल्लभ भवन, मंदसौर।
- **गुरुदत्त शर्मा,** सहायक निदेशक, हिंदी विभाग, पंजाब, पटियाला।
- **कुलदीप,** 6211, गली नं० 1, ब्लाक नं० 1, देवनगर, नई दिल्ली-5।
- **नरेंद्र व्यास,** II-जी/61-62, लाजपतनगर, नई दिल्ली-14 ।

भा. स. म. नासिक—बि 4-1 सी एच डी/65—१६६६—१६००, 400.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नियम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

*भाषा में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथा-संभव सरल और सुबोध भाषा में होनी चाहिए ।

*लेख आदि सामान्यत: फुलस्केप आकार के पाँच टाइप पृष्ठों से अधिक न होने चाहिएँ और हाशिया छोड़ कर कागज़ के एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिएँ ।

*साधारणतया हस्तलिखित सामग्री स्वीकार करने का नियम नहीं है ।

*अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना आवश्यक है ।

*सामग्री के प्रकाशन के विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा ।

*लेखों की स्वीकृति की सूचना पंद्रह दिन के भीतर दे दी जाती है; अस्वीकृत रचनाओं के संबंध में सूचना देने का नियम नहीं है।

*अस्वीकृत सामग्री लौटाने का नियम नहीं है ।

*समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजनी चाहिएँ ।

*पत्रिका की बिक्री की व्यवस्था प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, सिविल लाइंस, दिल्ली-6 द्वारा की जाती है । सदस्य बनने, विज्ञापन देने और वार्षिक चंदा जमा करने के लिए उन्हीं से पत्र-व्यवहार करना चाहिए ।

प्रकाशित विचारों के लिए संपादन-मंडल उत्तरदायी नहीं है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष : पांच
अंक : एक
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल पुस्तकालय कांगड़ी

५.११.६५

सितंबर 1965

भाषा

त्रैमासिक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा-मंत्रालय • भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

BHASHA QUARTERLY
ED. 305. III. 65
1400

उद्देश्य

- शिक्षा, कला, विज्ञान, अनुसंधान, क़ानून और शासन आदि के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण कर हिंदी की समृद्धि करना;
- हिंदी को सब प्रकार की अभिव्यक्ति का सशक्त और प्रभावशाली साधन बनाने के उद्देश्य से उसकी प्रकृति के अनुकूल प्रादेशिक भाषाओं का सहयोग लेना;
- समस्त भारतीय भाषाओं के बीच समानता की खोज करना और आदान-प्रदान का द्वार मुक्त करना।

मार्च, जून, सितंबर और दिसंबर में प्रकाशित

एक प्रति : एक रुपया पच्चीस पैसे या दो शिलिंग गयरह पेंस या पैंतालीस सेंट

वार्षिक : साढ़े चार रुपए या दस शिलिंग छः पेंस या एक डालर बासठ सेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

भाषा

त्रै मा सि क

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा-मंत्रालय ● भारत सरकार

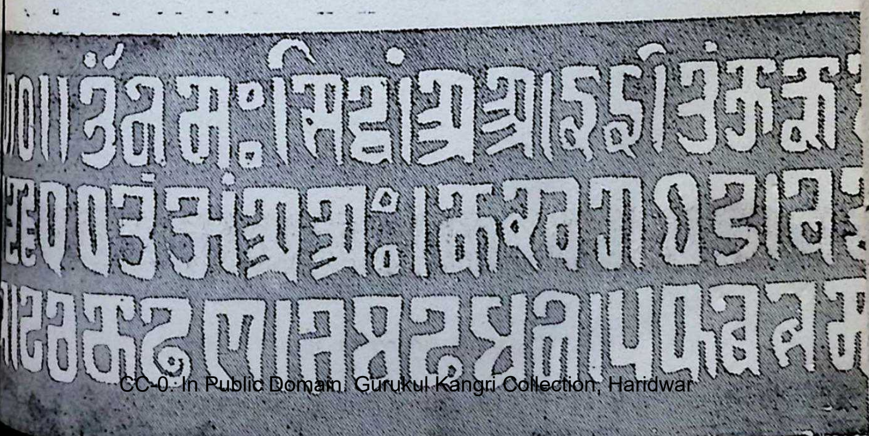

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

संपादकीय 5

हिंदी भाषा की समस्याएँ

*भाषा, लक्ष्य और लक्षण --विद्यानिवास मिश्र 9

*देवनागरी : प्राचीनतम और पूर्ण वैज्ञानिक लिपि —श्री० दा० सातवलेकर अनु०: जगमोहनराव भट्ट 18

*भारतीय भाषाई एकता-परंपरा और हिंदी --मालारविंदम् चतुर्वेदी 24

*संदर्भ किस प्रकार देने चाहिए --ब्रजमोहन 33

भाषा और व्याकरण

*दो आर्य भाषाएँ : खत्ति और मितान्नि --हेमचंद्र जोशी 41

*मध्यप्रदेश की लोकभाषाएँ --वसंतीलाल बंभ 46

*राजस्थानी की कुछ विशेष ध्वनियाँ --सुकनमल माथुर 61

*मलयालम की भाषाशास्त्रीय गवेषणा --वेल्लायणि अर्जुनन् 64

*यूरोपीय भाषाओं और भारत की आर्यभाषाओं का अभिन्न संबंध --कन्हैयालाल सहल 68

शब्द श्री

*हिंदी और मराठी के कुछ तद्भव शब्द --राजनारायण मौर्य 73

*भर्तृहरि की दृष्टि में अष्टाध्यायी का 'प्रकार' शब्द --कपिलदेव शास्त्री 80

*तमिल और देवनागरी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन --विमलेश कांति वर्मा 91

*हिंदी में संस्कृत के प्रचलित शब्द-प्रयोग --देवेंद्रकुमार शास्त्री 96

स्फुट विचार

*बघेली और उसका साहित्य : आपत्तियाँ एवं शंकाएँ --पूरनचंद श्रीवास्तव 103

*परिभाषा की भाषा --राजेंद्र अवस्थी 107

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* हिंदी साहित्य का इतिहास —श्यामसुंदर लाल 113
* राजभाषा तथा जनता —डालचंद जैन 115

द्वाभा

* वीरों का कैसा हो बसंत (कविता) —सुभद्राकुमारी चौहान, गुजराती अनु० : रामचंद्र देसाई 118
* कोटर और कुटीर (कहानी) —सियारामशरण गुप्त, गुजराती अनु० : रामचंद्र देसाई 122

स्रोतस्विनी

* कला धोबिन का वैधव्य (मराठी कहानी) —कुसुमावती देशपांडे, अनु०: रा० र० सरवटे 136
* उत्प्रेक्षा (गुजराती कविता) —अनिरुद्ध ब्रम्ह भट्ट, अनु० : "श्रेयस" 144
* यह मिट्टी भाल में लगाओ (मराठी कविता) —यशवंत, अनु०: सुरेंद्र शुक्ल 148

सरकारी कामकाज में हिंदी 152

भारतीय भाषाविद्

* सिख धर्म तथा गुरुमुखी के प्रवर्तक गुरु नानकदेव —नरेंद्र धीर 158

भारतीय साहित्य

* कबीर एवं वेमन—तुलनात्मक अध्ययन —कें० वेंकटेश्वर रेड्डी 163
* साहित्य शब्द का तात्त्विक मूल्यांकन और उसकी ऐतिहासिकता —संतोष व्यास 174
* रवींद्रनाथ ठाकुर का भाषा संबंधी दृष्टिकोण —हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' 178
* सन् 1947 के अनंतर अवधी साहित्य —त्रिलोकी नारायण दीक्षित 180

निकष गंगाप्रसाद विमल, अनामिका, अमिता सैली 185

हिंदी पाठ —नरेंद्र व्यास 189

लेखक परिचय 199

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा की परिभाषा के संबंध में विद्वानों में सदा से मतभेद रहा है। भाषा की परिधि इतनी व्यापक और विशाल है कि उसे किसी एक परिभाषा में बांध पाना कठिन है। विचारों की अभिव्यक्ति और उनका आदान-प्रदान भाषा के बिना संभव नहीं। विचारों के आदान-प्रदान के लिए यह आवश्यक नहीं कि कोई तीसरा व्यक्ति भौतिक रूप से सामने हो। मानव मस्तिष्क में उठे विचारों और भावों में ऊहापोह चलता रहता है—चिंतन और मनन निरंतर होता रहता है। यह व्यापार जिस प्रक्रिया द्वारा मानव मन में होता है, वह भाषा ही है। इसीलिए मोटे तौर पर परस्पर संबंध स्थापित करने वाले माध्यम को भाषा की संज्ञा दी जाती है।

भाषा की यह सामान्य परिभाषा जनसाधारण के काम की चीज़ हो सकती है, विषय के जिज्ञासुओं और शोधकर्ताओं का आधार हो सकती है, पर उसका अंत नहीं। जब तक किसी ऐसे तथ्य पर निश्चित रूप से नहीं पहुँचा जाता जो सर्वग्राह्‌य और विश्वजनीन हो तब तक इस विषय की खोज बराबर जारी रहेगी।

पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानों ने इस संबंध में अपने-अपने मत प्रतिपादित करते हुए जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है उसके कारण भाषा की परिभाषा को समझने में सहजता की अपेक्षा जटिलता अधिक आ गई है।

अनेकानेक दृष्टियों से भाषा की परिभाषा की विवेचना का यह परिणाम है कि आज भाषा की तीन परस्पर विरोधी परिभाषाएँ उपलब्ध हैं। पहली दार्शनिक, दूसरी ऐतिहासिक तथा तीसरी वैज्ञानिक।

दार्शनिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जो परिभाषा दी गई है, उसके अनुसार जगत् नाम की वस्तु की वास्तविकता भाषा की क्षमता द्वारा ही प्रमाणित हो सकती है। पाश्चात्य विद्वान् हंबोल्ट का विचार है कि मनुष्य जिस वस्तु जगत् में विचरण करता है, वह भाषा द्वारा निर्मित किया गया है।

ऐतिहासिक या सामाजिक परिभाषा के अनुसार भाषा समाज का एक धर्म है, जिसे धारण तो किया जा सकता है आरोपित नहीं। इसीलिए यूरोप के पुराने विद्वान् तथा भाषा वैज्ञानिक भाषा की परिभाषा देना पसंद नहीं करते थे। वे भाषा को एक ऐसा सिद्ध-तथ्य मानकर चलते थे जिसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं। हर्मनपॉल का कथन है कि 'भाषा को ऐतिहासिक संदर्भ से भिन्न किसी अन्य संदर्भ में देखा ही नहीं जा सकता, यहाँ तक कि उसका भौतिक और मानसिक पक्ष भी इसी के अधीन है'।

कतिपय अन्य यूरोपीय विद्वानों—सोसुर, ड्रोखाइन और मैइए—ने भाषा के सामाजिक तथ्य को अधिक मान्यता दी है। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि भाषा पृथक् तथ्यों का समूह मात्र नहीं बल्कि अपने में पूर्ण एक संघटना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ब्लूमफील्ड तथा उनके परवर्ती भाषा वैज्ञानिकों ने इसे वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने भाषा को परिपृच्छा का विषय माना है। उनका मत है कि भाषा अपने परिवेश का परिणाम तो जरूर है पर परिवेश में बँधने वाली नहीं। ब्लूमफील्ड आदि द्वारा भाषा की परिभाषा के वैज्ञानिक आधार दिए जाने पर भी इस विषय पर खोज जारी है और आज भी इस क्षेत्र में गवेषणा की गुंजाइश है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के साथ जो प्रश्न अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है वह है उसके शिक्षण की समस्या। यातायात के त्वरित साधन उपलब्ध हो जाने के कारण संसार बहुत छोटा हो गया है और उस के छोटा होने का एक लाभकारी परिणाम यह हुआ है कि विचार किसी देश विशेष की संपत्ति नहीं रह गए हैं। उनके आदान-प्रदान का क्षेत्र विस्तृत और असीम हो गया है। अब कोरी मातृभाषा के ज्ञान से हमारा काम नहीं चल सकता। देशी और विदेशी सभी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना युग की माँग है।

आवश्यकता इस बात की है कि भाषाओं को सीखा जाए उन्हें एक आदत बना लिया जाए। भाषा के बारे में जानना—यानी उसकी व्याकरण संरचना, वाक्य-विन्यास आदि तो बाद की बातें हैं। भाषा सीख लेने पर उसके बारे में ज्ञान अर्जन की प्रवृत्ति स्वाभाविक होगी। अपनी ओर से कोई भी भाषा सीखी जाए तो भाषा सीखने के संबंध में बहुत सी समस्याओं का हल स्वयं मिल जाए।

आज यह भावना ज़ोर पकड़ती जा रही है कि कोई भाषा विशेष देश पर आरोपित की जा रही है। आरोपण के कारण ही भाषा के संबंध में बवंडर और अविश्वास की भावना पनप रही है। जिस दिन समस्त देश एक मत से किसी भाषा विशेष को धारण कर लेगा उसी दिन सारा वैमनस्य और विरोध आपसे आप मिट जाएगा।

भाषा-शिक्षण की उलझनपूर्ण समस्या पर हम विद्वानों के विचार आमंत्रित करते हैं। हमारा विश्वास है कि ऐसे विचार-विमर्श से भाषाई एकता और भावनात्मक एकता को बल मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी भाषा की समस्याएँ

भाषा, लक्ष्य और लक्षण

देवनागरी : प्राचीनतम और पूर्ण वैज्ञानिक लिपि

भारतीय भाषाई एकता-परंपरा और हिंदी

संदर्भ किस प्रकार देने चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा, लक्ष्य और लक्षण

विद्यानिवास मिश्र

भाषा शब्द का प्रयोग व्यवहार में कई अर्थों में होता है। लाक्षणिक रूप से लोग इशारों की भाषा, पशु-पक्षियों की भाषा, पुष्पों की भाषा और तारों की भाषा की भी बात करते हैं और तब भाषा शब्द से अभिप्राय परस्पर संबंध स्थापित करने वाले एक माध्यम से होता है। या दूसरे शब्दों में जब हम तारों की भाषा की बात करते हैं तो हम तारों की स्थिति और दीप्ति के अनुसार जो अपने मन में भाव प्रतिबिंबित पाते हैं उन्हीं को तारों की भाषा कह कर आरोपित कर लेते हैं। भाषा शब्द का व्यवहार कभी-कभी मानवी वाक् के अर्थ में भी होता है और हम इससे किसी भाषा विशेष का बोध नहीं करते बल्कि मनुष्य के वाग्यंत्र से जो भी ध्वनियाँ निकलती हैं उनकी कुल राशि का बोध करते हैं। इसके अंतर्गत बच्चों की तुतली और अस्फुट वाणी से लेकर परिष्कृत से परिष्कृत भाषा आ जाती है और इस रूप में यह भाषा चाहे माध्यम के रूप में उपयुक्त हो न हो, चाहे किसी समुदाय के व्यवहार की साधन हो न हो, मनुष्य के वाग्यंत्र से निकलती है, बस इसलिए भाषा है। अंत में बहुत ही सीमित पर वास्तविक अर्थ में भाषा वह है जो किसी विशेष समुदाय की संपत्ति है। यह संपत्ति मूलतः बोले जाने वाले संबद्ध और सार्थक वर्ण रूपों का समुदाय है, पर गौण रूप से यह लिखित प्रतीकों में भी अभिव्यक्त होती है। भाषा-विज्ञान में भाषा शब्द का व्यवहार इस तीसरे अर्थ में ही उसके मूल रूप में किया जाता है। भाषा का व्यवहार पाणिनि की अष्टाध्यायी में उनके समय और देश में बोली जाने वाली एक ऐसी भाषा के अर्थ में किया गया है जो "छंदस्" या अनुष्ठान के उपयोग में आने वाली मूर्त भाषा से पृथक् है और पतंजलि के अनुसार इसके शब्द और अर्थ का संबंध लोक से प्रमाणित है। इससे यह सूचित होता है कि इन आचार्यों की दृष्टि में भाषा किसी लोक विशेष के द्वारा स्वीकृत वाचिक प्रतीकों का समुदाय थी। इनके अनुसार शब्द के अनुशासन करने का तात्पर्य न तो शब्द में नया अर्थ देना था न नए शब्द का निर्माण करना था, व्याकरण का प्रयोजन अवयवों में धर्म-नियम की व्याख्या करना था, जिससे कि भाषा का स्वरूप ठीक-ठीक समझ में आ सके और भाषा का विश्लेषण (व्याकरण) किया जा सके।

2—2 C.H. D. /65

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघटनात्मक भाषा विज्ञान के संस्थापक फ़र्दिनाँद सुसुरे ने इसी को दूसरे शब्दों में यों कहा कि भाषा और मानवी वाक् में अंतर स्पष्ट समझना चाहिए। मानवी वाक् एक सामान्य राशि है, जिसका विशिष्ट पर नितांत उपयोगी अंश है भाषा। मानवी वाक् बहुमुखी है, बहुजातीय है और इसका अध्ययन शरीर-विज्ञान, भौतिक विज्ञान और मनोविज्ञान तीनों के अंतर्गत आता है। यह जितनी ही व्यक्ति की संपत्ति है उतनी ही समाज की। इसे हम मानवी तथ्यों की किसी वर्गीकृत श्रेणी के अंतर्गत नहीं रख सकते, क्योंकि इसमें हमें एकता नहीं मिलती। इसके विपरीत भाषा स्वयंपूर्ण अखंड वर्गीकृत श्रेणी है। यह वाणी का अर्थात् मानवी वाक् का एक विशिष्ट अंश है। यह स्वयं उद्भूत न होकर अर्जित संपत्ति है। ह्विटली जैसे पुराने भाषाविद् भाषा को सामाजिक संस्था मात्र मानते थे, यह उनका आग्रह प्रतीत होता है, क्योंकि भाषा दूसरी सामाजिक संस्थाओं से इस माने में भिन्न है कि वह समाज से अर्जित होने पर भी व्यक्ति के ही वाग्यंत्र से निकलती है। इस प्रकार—

(1) भाषा मानवी वाक् का वह रूप है जिसे समाज की स्वीकृति प्राप्त है।

(2) भाषा का हम विश्लेषण कर सकते हैं, वाणी का नहीं।

(3) भाषा एक-जातीय है, वाणी अनेक-जातीय, यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें अर्थ और वाक् का संबंध ही केवल आवश्यक है। भाषा और वाक् दोनों मूर्त हैं (भाषा के संकेत मानसिक होने के कारण अमूर्त नहीं हो सकते, उनकी वास्तविकता ज्ञानेंद्रिय के द्वारा साक्षात् प्रतीत होती है) पर भाषा की मूर्तता वाक् की अपेक्षा अधिक निश्चित है, इसीलिए उन्हें लिखित संकेतों में रूपांतरित करना भी संभव हो जाता है, जबकि वाणी के रूप को ध्वनियंत्र में अंकित चाहे कर लिया जाए उसे लिपिबद्ध करना एक सीमा के बाहर असंभव सा है। भाषा में एक ध्वनि प्रतिमा का एक निश्चित अर्थ है, उस अर्थ की एक ही दृश्य प्रतिमा है, पर वाणी में प्रत्येक स्तर पर अनेकता ही अनेकता है।

लुई हेल्म्य स्लेफ ने इस संघटनात्मक परिभाषा को और आगे बढ़ाते हुए यों कहा है कि यह रूप और अर्थ की ऐसी संघटना है, जिसमें दूसरी ऐसी संघटनाओं को अनूदित किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना होता है या एक भाषा के भीतर अनेक प्रकार के रूपांतर करने होते हैं, तो जो भी प्रक्रिया होती है, वह प्रक्रिया पूरी संघटना को लेकर होती है। उसके एक अवयव को लेकर नहीं। उन्होंने इसीलिए भाषा के विवेचन में स्वयं उद्भूत दृष्टि को अधिक महत्त्व दिया है।

अमरीकी भाषा-विज्ञान के जनक लिओनार्ड ब्लूम फ़ील्ड ने भाषा की परिभाषा यों की—वाग् व्यापार ही को उक्ति कहते हैं, एक समुदाय में ऐसी उक्तियाँ सदृश या कुछ-कुछ सदृश होती हैं। इस प्रकार के समुदाय को एक बोली समुदाय कहा जाता है। इस प्रकार के बोली समुदाय में प्रयुक्त उक्तियों के कुल योग को उस बोली समुदाय की भाषा कहा जाता है। भाषा में हम रूप की प्रत्याशा कर सकते हैं। इसीलिए हम कभी-कभी कहते हैं कि शब्द ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

त जाते हैं। ब्लूम फील्ड की परिभाषा के और विस्तार में रूप और अर्थ का विवेचन है और रूप और अर्थ की इकाइयों का भी विवेचन है। ब्लूम फील्ड ने इसे स्पष्ट किया कि भाषा से हमारा तात्पर्य बोली जाने वाली भाषा से है और वह भी औसत आदमी की औसत भाषा से है। भाषा के दो पहलू हैं, एक तो जैव भौतिक, दूसरा जैव सामाजिक। जैव भौतिक पहलू ध्वनि के उत्पादन, संवहन तथा ग्रहण की प्रक्रिया से संबद्ध है और जैव सामाजिक इस तथ्य से संबद्ध है कि किसी भी समुदाय के व्यक्ति इन ध्वनियों को निश्चित स्थितियों में उत्पन्न करने के लिए तथा दूसरे के द्वारा उत्पन्न किए जाने पर उसके अनुसार क्रियाशील होने के लिए शिक्षित किए जाते हैं। यह शिक्षा परंपरागत होती है और बहुत कुछ यादृच्छिक होती है। उन्होंने भाषा को मानवीय व्यवहार का वह विशिष्ट अंग बतलाया, जो उसे इस माने में अन्य प्राणियों से अलग करता है कि भाषा अपने बोलने वाले व्यक्तियों के बीच एक व्यापक पमने पर अत्यंत सूक्ष्म और परिच्छिन्न अंतरवलंबन स्थापित करती है, अन्य प्राणियों में इस प्रकार का अंतरवलंबन इनी-गिनी स्थितियों तक ही सीमित है। "मनुष्य के व्यवहार में भाषा एक बहुत बड़ी उत्प्रेरक शक्ति के रूप में काम करती है। भाषा इस प्रकार क्रम और व्यवस्था का ही पर्याय है। क्रम और व्यवस्था का मुख्य प्रभाव यह है कि भाषा का प्रत्येक अर्थवान रूप एक या एक से अधिक छोटे-छोटे अर्थरहित तत्वों से बना होता है। भाषा के इसी अर्थ को नृतत्त्व की दृष्टि से, दूसरे शब्दों में एडवर्ड शपिर ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है कि भाषा सहजात कार्य नहीं है जैसे कि चलना या उठना या बैठना है। भाषा है अर्जित असहजात संस्कार-प्राप्त व्यापार, यहाँ तक कि भावावेग में जो ध्वनियाँ मानवीय व्यवहार में निकलती हैं वे विभिन्न भाषाओं में विभिन्न प्रकार की हैं। उदाहरण के लिए घृणा के लिए हिंदी में 'छिः' है, अँग्रेज़ी में 'उः', विस्मय के लिए हिंदी में 'ओहो' या 'अहा' है, संस्कृत में 'अहो' है। इसी तरह अनुरणनात्मक शब्द भी प्रत्येक भाषा में भिन्न प्रकार के हैं। हिंदी में घोड़े की 'हिनहिनाहट' है, अँग्रेज़ी में 'नेइङ्' है। हिंदी में चिड़ियों की 'चहचहाहट' है, अँग्रेज़ी में 'टिव्टर'। इन उदाहरणों से यह प्रतिपादित होता है कि प्रत्येक समुदाय आवेग या भिन्न मानवेतर ध्वनि के अनुकरण के लिए भी भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनि प्रतिमा गढ़ता है। वह प्रतिमा उस भाषा के साथ ही मेल खाती है। इस प्रकार भाषा एक अर्जित संस्कार है। शपिर ने इस आधार पर भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है—"भाषा इच्छापूर्वक प्रयत्न से उद्भूत प्रतीकों की संघटना के द्वारा विचारों, आवेगों और आकांक्षाओं को प्रेषित करने का शुद्ध रूप से मानवीय और संस्कार प्राप्त माध्यम है। ये प्रतीक मुख्यतः वाचिक होते हैं।"

इस दृष्टि का विस्तार होते-होते अब भाषा-विज्ञानी की दृष्टि में भाषा का स्वरूप बहुत स्पष्ट और अवच्छिन्न हो गया है।

(1) अब भाषाविज्ञानी बोली जाने वाली भाषा को भाषा मानता है, लिखित भाषा को नहीं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(2) वह भाषा की शुद्धि-अशुद्धि के प्रश्न की संगति नहीं समझता, इसका अर्थ नहीं कि वह अशुद्ध रूपों का [illegible] है, या शुद्ध या अशुद्ध के भेद की वास्तविकता से इंकार करता है। भाषा-भाषी के रूप में वह भी अपने समाज के संकेत से उतना ही बँधा हुआ है, जितना कि कोई भी दूसरा व्यक्ति। पर भाषा के विवेचक के रूप में उसका कर्तव्य है कि वह शुद्ध और अशुद्ध दोनों रूपों को ध्यान में रखे। यदि उस भाषा में ऐसा भेद है तो दोनों भेदों की सार्थकता की भी तलाश करे। दूसरे शब्दों में वह भाषा की पूर्ण वास्तविकता ध्यान में रखता है।

(3) भाषा विज्ञानी यह जानते हुए भी कि भाषा और साहित्य के बीच घनिष्ट संबंध है, इन दोनों के बीच सबसे महत्त्वपूर्ण भेद यह पाता है कि साहित्य की भाषा एक सिद्ध और विशिष्ट भाषा है और भाषाविज्ञानी को भाषा के सिद्ध और साध्य, विशिष्ट और सामान्य दोनों रूपों से मतलब रखना है।

(4) भाषाविज्ञानी इस भ्रम में नहीं रहता कि भाषा में जो कुछ तर्कसंगत नहीं है, वह ग़लत है। भाषा में तर्कसंगति की दृष्टि बहुत ही संकुचित दृष्टि है, क्योंकि भाषा का व्यवहार तथ्य को ही प्रकाशित करना नहीं है, अतथ्य को भी प्रकाशित करना है। यह झूठ-सच, सार्थक-निरर्थक, अनुनय-विनय, मनोरंजन, काम-काज; प्रेम और युद्ध—मानवीय अस्तित्व के समस्त विस्तार को अभिव्यक्त करने के उपयोग में आती है। इसलिए जहाँ भाषा की परिधि सीमित हुई है, वहाँ, उस परिधि के भीतर उसके क्षेत्र का इस मान्यता के अनुसार विस्तार भी हुआ है। भाषा अपने में पूर्ण संघटना मान ली गई है। इसके अवयवों के परस्पर संबंध के लिए भाषा से बाहर कोई तार्किक आधार ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध का प्रामाण्य भाषा में ही स्वतः सिद्ध है। इसकी ओर पाणिनि ने बहुत पहले संकेत किया था कि भाषा में ऐसी अनेक धारणाएँ हैं, जिनको विवेचन (अनुशासन) के अंतर्गत नहीं रखना चाहिए जैसे लिङ्ग का वस्तु जगत् से संबंध स्थापित करने का प्रयत्न, समास में प्रधान-अप्रधान के निर्णय के लिए भाषा से इतर प्रमाण ढूंढने की आवश्यकता और भाषा में काल के विचार को वास्तविक जगत् के काल से अभिन्न मानने का आग्रह। इसका अर्थ यह हुआ कि भाषाविज्ञानी के विचार में सार्थकता, भाषा के प्रत्येक अंग के दूसरे अंग से संबंध स्थापित करने में है। अर्थ का विचार भाषा के रूप से निरपेक्ष होकर नहीं है। वाग् और अर्थ को संपृक्त देखने का मतलब यही है। तर्क-शास्त्र से अभिभूत ग्रीक वैयाकरणों ने पश्चिम में और नैयायिकों ने पूर्व में जो दृष्टि अपनाई, वह दृष्टि भाषा को इतर-प्रमाण-सापेक्ष माननेवाली दृष्टि है। वर्तमान युग में भी यह आग्रह रखने वाले लोग हैं और उन लोगों का कार्यक्षेत्र भाषा-विज्ञान नहीं भाषा-दर्शन है। दूसरे शब्दों में भाषा का विवेचन वे वस्तु निरीक्षण के आधार पर नहीं कल्पित धारणा के आधार पर करना चाहते हैं। इसीलिए वे भाषा के अध्ययन को एक स्वतंत्र अनुशासन न मानकर मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, तर्कशास्त्र, शरीर विज्ञान और भौतिक विज्ञान जैसे दूसरे अनुशासनों पर आश्रित देखते हैं। इस प्रकार की भिन्न दृष्टियों के कारण भाषा की तीन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

परस्पर विरोधी परिभाषाएँ आज मिलती हैं--एक वैज्ञानिक, दूसरी दार्शनिक और तीसरी ऐतिहासिक। दार्शनिक परिभाषा के अनुसार बजाय यह कहने के कि भाषा नाम की वस्तु की क्षमता से, जगत् नाम की वस्तु की वास्तविकता प्रमाणित होती है, कहना यह चाहिए कि जगत् नाम की वस्तु का तथ्य भाषा नामक वस्तु को स्वीकार करना संभव बना देता है। जैसा कि हंबोल्ट ने कहा कि मनुष्य मुख्यत: अपने जिस वस्तु जगत के साथ रहता है, वह भाषा के द्वारा प्रस्तुत किया गया जगत् है। इसी की उपपत्ति यह है कि वह अपनी सत्ता में से कात-कात कर भाषा के सूत निकालता है और धीरे धीरे इस सूत में अपने को बाँध लेता है, हर भाषा अपने समुदाय के चारों ओर एक ऐसी लक्ष्मण रेखा बाँध देती है, जिससे वह समुदाय छूट नहीं सकता। एक तरह से भाषा समस्त चिंतन के पूर्व है, समस्त भेद व्यवस्था के पूर्व है और नाम-रूप के पूर्व है। सैद्धांतिक ज्ञान की धारणा का भी आधार भाषा ही है और इसलिए विभिन्न भाषाओं का भेद विभिन्न विश्वधारणाओं का भेद है, क्योंकि प्रत्येक भाषा का एक भीतरी रूप होता है। भारतीय शब्दावली में प्रत्येक वैखरी के पीछे एक पश्यंती होती है। दार्शनिकों की दृष्टि में इसलिए भाषा का विवेचन इस विश्व के संबंध का विवेचन है। ऐतिहासिक या समाज शास्त्रीय के लिए भाषा एक समाज का धर्म है, इसलिए यूरोप के पुराने भाषा विज्ञानी, भाषा की परिभाषा करना व्यर्थ मानते थे। भाषा को वे एक ऐसा सिद्ध तथ्य मानकर चलते थे, जिसे समझाने की आवश्यकता नहीं। हर्मन पाल ने स्पष्ट कहा कि भाषा को ऐतिहासिक संदर्भ से भिन्न किसी अन्य संदर्भ में देखा ही नहीं जा सकता। यहाँ तक कि भाषा का भौतिक और मानसिक पक्ष भी इसके अधीन होकर चलता है। पर पाल भाषा के एक-एक अंग को अलग देखने में विश्वास करते थे क्योंकि प्रत्येक अंग का अलग इतिहास है यह वे अनुभव कर रहे थे। सुसुरे, ड्रोंखाइन और मेइये ने भाषा के सामाजिक रूप को स्वीकार करते हुए इस पर भी बल दिया कि भाषा एक दूसरे से विलग तथ्यों की राशिमात्र नहीं है, वह एक अपने में पूर्ण संघटना है और भाषा में जो मूलभूत द्वैत है, सामान्य और विशेष के बीच, संदेश और संदेशवाहक के बीच तथा भाषा के प्रतिरूप और भाषा के तथ्य के बीच, उस द्वैत के कारण ही भाषा भाषा है। ट्रूबेट्स्क्वाय, स्येल्य स्लेफ और याकोब्सन ने सामाजिक दृष्टि को वैज्ञानिक दृष्टि के और समीप लाने का प्रयत्न किया। अमरीका में ब्लूमफ़ील्ड और उनके अनुवर्ती विद्वानों ने भाषा को वैज्ञानिक परिपृच्छा का विषय मानते हुए इस पर बल दिया कि समाज या संस्कृति से प्राप्त होने के ही कारण भाषा में ऐसा प्रतिरूपन है कि उसके अवयवों के परस्पर संबंध जानने के लिए भाषागत तथ्यों का पर्यवेक्षण और इस पर्यवेक्षण के आधार पर भाषा का विश्लेषण निरपेक्ष रूप से किया जा सकता है। दर्शन या इतिहास की उपयोगिता भाषा को समझने के लिए नहीं भाषा के परिवेश को समझने के लिए है। भाषा अपने परिवेश का परिणाम होते हुए भी परिवेश को बाँधने वाली होती है, परिवेश से बँधने वाली नहीं। इस वैज्ञानिक दृष्टि के कारण आज जिस प्रकार के भाषा-शिक्षण पर बल दिया जाने लगा है उसमें पाँच सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाता है। 1--भाषा बोली जाती है। 2--भाषा एक आदत है जो धीरे-धीरे बन जाती है। 3--भाषा सीखते समय भाषा के बारे में सीखना उतना महत्त्व

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रखता जितना भाषा को सीखना। 4—भाषा वह है, जिसे उसके बोलने वाले बोलें, न कि जैसा उन्हें बोलना चाहिए। 5—एक भाषा दूसरी भाषा से बिल्कुल भिन्न होती है। इस वैज्ञानिक दृष्टि के कारण भाषा की शिक्षा सहज और सरल दोनों हो गई है। कुछ लोग यह समझते हैं कि यह दृष्टि भाषा को बहुत गँवारू बना देगी। यह ख्याल वैसा ही भ्रामक है जैसा कि यह सोचना कि पाणिनि ने संस्कृत को एक कृत्रिम भाषा बना दिया। भाषाविज्ञानी चाहे वे पाणिनि हों, चाहे आज के संघटनावादी, भाषा बनाना या बिगाड़ना उद्दश्य अपने सामने नहीं रखते। उनके सामने एक ही उद्देश्य है कि भाषा मानवीय जीवन का एक जीता जागता व्यापार है। बल्कि व्यापारों का व्यापार है, वह व्यापार अपने में संगत है। इसलिए व्यापार के रूप में उसका ज्ञान अपने में ही एक चरम उद्देश्य है। इस ज्ञान का उपयोग भी हो सकता है, दुरुपयोग भी। जैसा किसी भी वैज्ञानिक-शोध का होता है। पर इससे इस ज्ञान की महत्ता कम नहीं होती। पाणिनि के सामने उनके समुदाय की एक जीती जागती भाषा थी, एक दूसरी भाषा भी थी, जो केवल सीमित कार्य के लिए सुरक्षित थी। पाणिनि ने पहले प्रकार की भाषा का विवचन किया। उन्होंने कभी कहीं भी यह नहीं कहा कि ऐसा होना चाहिए। बीजगणितीय संकेतों में उन्होंने उस भाषा के अवयवों का संबंध निरूपित किया। नितांत अबोध ही यह समझ सकता है कि संस्कृत बोलने वाला संस्कृत बोलने से पहले पाणिनि के नियम लगाकर भाषा का निर्माण करता है, तब उसे बोलता है। संस्कृत यदि कृत्रिम हुई तो पाणिनि के कारण नहीं, उत्तराधिकारिणी भाषाओं के प्रसार के कारण। संघटनात्मक भाषा विज्ञान ने इधर विभिन्न भाषाओं का जो विवेचन किया है, उसका उद्देश्य साहित्यिक भाषा का उत्कर्ष या अपकर्ष नहीं है। उसके लिए प्रत्येक समुदाय की भाषा एक सा महत्त्व रखती है, क्योंकि ज्ञान के विषय के रूप में भाषा का प्रत्येक तथ्य पवित्र है। भाषा अनेक ऐसी विभाषाओं का समूह है जो भिन्न होते हुए भी परस्पर संप्रेषणीय हैं और उनमें से कोई भी विभाषा सहजात नहीं है। चाहे मछुओं की भाषा हो, चाहे खेतिहर की भाषा, चाहे मिस्त्री की भाषा हो या वकील या आलोचक की भाषा। प्रत्येक को सीखने के लिए एक संस्कार की प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। सरलता या कठिनता की बात बिल्कुल सापेक्ष है। संघटना जितनी समीप होगी, भाषा उतनी ही सरल लगेगी। जिसे जन-भाषा कहा जाता है, वह भी सीखने से आती है और अर्द्धशिक्षित लोगों का यह बहुत बड़ा भ्रम है जो भाषा की उपमा नदी की धारा से देकर यह मान लेते हैं कि भाषा बिना किसी प्रयत्न के अपने आप मन में उमड़ जाती है। वैज्ञानिक दृष्टि ने भाषा के संबंध में इस भ्रांति को पूरी तरह से दूर कर दिया है। उसने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव समाज की रचना जितनी जटिलतर होती जा रही है भाषा के स्तर और रूप भी उतने ही जटिल होते जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी मात्रा में एक से अधिक भाषा बोलने और समझने के लिए बाध्य हो रहा है। यह समझना कि जो भाषा हम अपने एक सीमित पारिवारिक परिवेश में बोलते हैं वही व्यापक सामाजिक परिवेश में भी बोली जाती है, बहुत बड़ी भूल है। यदि दोनों के उपयोग की अनिवार्यता है तो दोनों सीखनी होंगी और यदि किसी व्यक्ति ने सीखने की कोशिश नहीं की या सीखने की अधूरी कोशिश की तो वह यह प्रमाणपत्र देने का अधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है कि वह भाषा इसलिए कृत्रिम है कि उसका बोलना और समझना उसके लिए मुश्किल है। भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति में इसका सांस्कृतिक दृष्टि का बहुत अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भाषा की परिभाषा यों की जाए कि **भाषा यादृच्छिक, वाचिक प्रतीकों की ऐसी संघटना है जिसके द्वारा एक विशिष्ट मानव समुदाय परस्पर व्यवहारशील होता है।** इस परिभाषा के चार अंश हैं––भाषा एक विशिष्ट मानव समुदाय की एक संपत्ति होती है। समुदाय का अर्थ है एक से अधिक व्यक्ति जो एक दूसरे के साथ अपने समुदाय के बाहर के व्यक्तियों से अधिक अर्जित संस्कार में अधिक समीप हों। इसलिए यदि किसी भाषा का बोलनेवाला केवल एक रह जाता है तो वह भाषा मृत हो जाती है। टुनिका (अमरीकी जनजातीय भाव) जैसी जाने कितनी भाषाएँ मानव इतिहास में लुप्त हो गई होंगी। समुदाय के व्यवहार का माध्यम होने के कारण भाषा अर्जित की जाती है और उसकी स्थिति सामाजिक स्वीकृति पर आधृत रहती है। समाज का माध्यम होने के कारण वह सतत परिवर्तनशील भी होती है पर एकांश में नहीं, अपने अखंड रूप में। भाषा की संप्रेषणीयता मनुष्य के व्यवहार में दूसरे माध्यमों से सबसे अधिक व्यापक और परिच्छिन्न है। संप्रेषण के दूसरे माध्यम भी भाषा पर ही अवलंबित हैं, उदाहरण के लिए तार का संकेत, झंडियों का संकेत जैसे दूसरे श्रव्य और दृश्य माध्यम भी भाषा के ही रूपांतर हैं। और इसलिए उनका प्रामाण्य भाषा में ही निहित है। दार्शनिक आग्रह से यह भी कहा गया है कि भाषा न केवल विचारों के संप्रेषण का माध्यम है बल्कि स्वयं विचार का माध्यम है। मनुष्य अपने मन में भी यदि कोई विचार करता है तो वह भाषा के अव्यक्त रूप के द्वारा ही पर भाषा विज्ञान की परिधि में उस अव्यक्त भाषा का विश्लेषण इसलिए नहीं आता कि वह भाषा ही नहीं है, जब तक कि वाग्यंत्र से बाहर उक्ति-खंड के रूप में न निकले। वह मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जरूर है। परिभाषा का दूसरा अंश है, भाषा एक संघटना है। जब हम संघटना कहते हैं तो हमारे मन में कुछ ऐसे निश्चित संबंध होते हैं जिन्हें जान लेने पर हम किसी भी भाषा विशेष के बारे में पहले से ही प्रत्याशा कर लेते। उदाहरण के लिए यदि हम हिंदी भाषा की संघटना जानते हैं तो जिस किसी वाक्य में हम 'ने' देखेंगे वहाँ क्रिया-रूप को या तो पुल्लिग एक वचन के रूप में पाएँगे या क्रिया के (यदि कोई कर्म है तो उस) कर्म के लिंग, वचन के रूप में पाएँगे। भाषा के संघटित होने के कारण ही हम प्रत्याशा कर सकते हैं कि उस भाषा का अमुक अवयव अमुक अवयव के साथ आता है या नहीं आता है। भाषा के संघटन होने का दूसरा परिणाम यह है कि भाषा में कोई भी परिवर्तन एकदेशीय रूप में नहीं हो सकता जो भी परिवर्तन होता है वह पूरी संघटना को लेकर होता है, इसीलिए एक भाषा की इकाई दूसरी भाषा की इकाई नहीं बन सकती। संस्कृत में नाम-रूप की इक्कीस विभक्तियाँ हैं, पाली में केवल बारह। संस्कृत की बहुवचन विभक्ति का यदि पाली की बहुवचन विभक्ति से समीकरण करें तो यह ठीक न होगा। संस्कृत का बहुवचन एक ऐसी श्रृंखला का अंग है जिसमें वचन त्रिधा विभक्त है। पाली में वह केवल द्विधा विभक्त है। इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृत की वचन-संघटना जब पूरी की पूरी बदल गई है, तब एक नई संघटना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने जन्म लिया जिसमें त्रिधात्मक भेद नहीं बल्कि द्विधात्मक भेद की सार्थकता है। संघटना का तीसरा रूप यह है कि भाषा के अवयव एक दूसरे से सुघटित होने के कारण विश्लेषण के विषय हो सकते हैं और हम वहाँ तक विश्लेषण को ले जा सकते हैं जिसके बाद विश्लेषण करने में उस भाषा की दृष्टि से कोई सार्थकता नहीं रह जाती। उदाहरण के लिए यदि हमें संस्कृत में राम शब्द का विश्लेषण करना हो तो हम इसको दो अर्थवर्ती इकाइयों 'रम+अ' में विभक्त कर सकते हैं, पर हिंदी में इसी शब्द का विश्लेषण करते समय हम राम को एक इकाई मानकर चलेंगे, क्योंकि हिंदी में 'रम्' और 'अ' के भेद की सार्थकता नहीं है। परिभाषा का तीसरा अंश है कि भाषा यादृच्छिक प्रतीकों को संघटना है। प्रतीक कहने से यह नियमन किया जाता है कि दो प्रकार से वस्तु का बोध कराया जाता है, प्रतीक के द्वारा और संकेत के द्वारा। प्रतीक वह है जो प्रतीयमान से नियत संबंध नहीं रखता। संकेत वह है, जो संकेतित से नियत संबंध रखता है। उदाहरण के लिए बच्चों के स्कूल की सन्निधि से बच्चों के चित्र से जब बोधित कराया जाता है तो यह स्कूल के लिए एक संकेत है जो किसी न किसी रूप में स्कूल से अव्यभिचरित रूप में संबद्ध है। पर स्कूल यह शब्द स्कूल के लिए प्रतीक है। स्कूल में स्, क्, ऊ, ल, के अलग-अलग उच्चारण से या समुदित उच्चारण से जो व्यक्ति स्कूल का अर्थ नहीं जानता है, उसके मन में स्कूल की कोई भी प्रतिमा उदित नहीं होती। प्रतीक और प्रतीयमान का संबंध किसी न किसी समझौते या समय पर अवलंबित है। प्रत्येक समुदाय का अलग समय हो सकता है और भाषा को समझने के लिए इस त्रिकोणात्मक संबंध को समझना आवश्यक होता है। प्रतीक, प्रतीयमान और प्रतीक-प्रतीयमान संबंध। इस संबंध को भारतीय विचारकों ने औत्पत्तिक संबंध कहा है। परिभाषा में प्रतीक का विशेषण दिया गया है यादृच्छिक (या मनमाना)। देखने में यह विरोधी लगता है कि भाषा एक ओर तो संघटना है दूसरी ओर उसमें यदृच्छा (मनमानेपन) को स्थान है। इस विरोध का परिहार यों है कि भाषा में प्रतीक-विशेष से जब प्रतीयमान-विशेष की अभिव्यक्ति की जाती है तो उसके पीछे कोई तर्कसंगति नहीं होती या कोई बाह्य वस्तु जगत् में स्थिति से लिया गया कार्य-कारण भाव होता है। उदाहरण के लिए किसी भाषा के लिंग वचन या पुरुष का विचार ले लीजिए, किसी भी भाषा का लिंग, वचन या पुरुष वस्तु जगत् के लिंग, वचन, पुरुष से बिल्कुल स्वतंत्र है। यह उस भाषा-भाषी की यदृच्छा नहीं तो क्या है? पर यह यदृच्छा संबंध के निर्धारण में होती है, संबंध निर्धारित हो जाने के बाद यह उस भाषा के बोलने वाले के लिए विवशता बन जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी में 'हवा चलती है' और 'आग जलती है' के पीछे यदृच्छा के सिवा कोई दूसरा हेतु नहीं हो सकता, पर एक बार हवा के साथ 'चलती है' यह संबंध स्थापित हो गया तो तब तक हवा 'चलता है' नहीं कहा जा सकता, जब तक हिंदी भाषा की लिंग व्यवस्था पूरी की पूरी बदल नहीं जाती। धीरे-धीरे आदमी अपनी भाषा से अभ्यस्त हो जाने पर इसीलिए यह भूल जाता है कि प्रतीक और प्रतीयमान का संबंध किसी यदृच्छा पर आधारित है। दूसरी भाषा सीखते समय उसे सबसे पहले यह बात अटपटी लगती है कि दूसरी भाषा बहुत अतर्कसंगत और कहीं-कहीं उपहासास्पद भी है। उदाहरण के लिए बंगला भाषी को हिंदी की लिंग व्यवस्था अटपटी लगती है। भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विज्ञान का विद्यार्थी मनमानेपन को भाषा का एक आवश्यक अंग मान कर तब तक उससे [illegible] नहीं होता, जब तक कि वह संघटना के विपरीत नहीं है।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
परिभाषा का चौथा अंश है कि भाषा वाचिक प्रतीकों की संघटना है अर्थात् वे प्रतीक मनुष्य के वाग् यंत्र से निकलते हैं। पाणिनि-शिक्षा में इस प्रतीक के निकलने के पूर्व जो मनोव्यापार होता है उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है :

आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनोयुङ्क्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहंति स प्रेरयति मारुतम् ।।

अर्थात् आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थ ग्रहण करती है। इसके अनंतर बुद्धि के द्वारा मन को कहने के लिए प्रेरित करती है। मन शरीर में रहने वाले तैजस तत्व को उकसाता है। तैजस तत्व (प्रकाश तत्व) प्राणवायु को प्रेरित करता है और वह प्राणवायु आभ्यंतर बाह्य प्रयत्नों के द्वारा वाग्यंत्रों के अवयवों के परस्पर व्यापार के द्वारा बाहर निकलते-निकलते जिस नाद को उत्पन्न करती है, वहीं मानवी वाक् का आधार है। भाषा वाचिक प्रतीकों की संघटना है, इसका अभिप्राय यह है कि 1--इसके अंतर्गत मानवतर प्राणियों का नाद नहीं आता। 2--इसके अंतर्गत मनुष्य की अव्यक्त, अस्फुट या असमंजस (असंघटित) उक्ति नहीं आती, जैसे--छींक, खाँसी और कराह क्योंकि इनका कोई प्रतीकात्मक मूल्य नहीं है। 3--इसके अंतर्गत लिखित भाषा नहीं आती। साथ ही ये प्रतीक वाचिक होने के ही कारण वक्ता-श्रोता के द्वैत की अपेक्षा रखते हैं और इन प्रतीकों की संप्रेषणीयता, तब तक वक्ता और श्रोता के द्वारा उत्पन्न किए गए वाचिक प्रतीकों के अंतर से प्रभावित नहीं होती, जब तक यह अंतर प्रतीक-प्रतीयमान संबंध की परिधि को प्रभावित नहीं करता। इसीलिए भाषा में महत्त्व प्रतीक की अभिन्न प्रतीति का है, प्रतीक की यथातथ्य अनुकृति का नहीं। भाषा अनुकरण से ही सीखी जाती है, यह सही है, पर इसके साथ ही यह भी सही है कि यह अनुकरण कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। कुछ न कुछ छूट देनी ही होती है, तभी उस भाषा के बोलने वालों का एक समुदाय बनता है। इस छूट की सीमा के बाहर जाते ही दूसरा समुदाय बन जाता है। भाषा में इसी अनुकरण की अपूर्णता के कारण दो आयामों में निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं--देश के आयाम में और काल के आयाम में। भाषा के अध्ययन भी दो आयामों में होते हैं--एक देशीय आयाम में और एककालिक आयाम में। इस प्रकार संघटना पर बल देते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि या सामाजिक दृष्टि का समन्वय किया जा सकता है और कुछ अंश तक दार्शनिक दृष्टि का भी समन्वय किया जा सकता है। यदि हम यह मानकर चलें कि भाषा मानव संस्कृति का अंग नहीं है, संस्कृति की वाहिका है, यह समस्त सांस्कृतिक क्रिया-कलाप का आधार है और किसी भी समुदाय के वैशिष्ट्य को समझने के लिए सबसे अधिक सुलभ और सबसे अधिक फलप्रद साधन भी है। इसीलिए भाषा के एक संघटित वर्णन से ही हम मानव-समुदाय के तौर तरीकों की गहराई में जा सकते हैं। साथ ही इसी के द्वारा हम मानव समाज की विविधता और परस्पर संबद्धता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और जब तक भाषा के ज्ञान के माध्यम से यह ज्ञान नहीं प्राप्त करते तब तक हम अंध विश्वास, पूर्वग्रह और आरोपित बौद्धिकता के गुलाम बने रह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी : प्राचीनतम और पूर्ण वैज्ञानिक : लिपि

श्री० दा० सातवलेकर

लेखन कला का प्रचलन भारत में वैदिक-युग में भी था। उस समय भी विद्वान अपने विचारों को दृश्य-रूप प्रदान करते थे। आधुनिक विद्वानों में प्रचलित एक धारणा यह है कि वैदिक ऋषिगण लेखन-कला से अनभिज्ञ थे, उस समय कोई वर्णमाला नहीं थी और इसलिए वैदिक वाङ्मय को स्मरण करना और दूसरों को सिखाना केवल उच्चरित शब्द द्वारा ही होता था। किंतु, मेरा विचार है कि उन दिनों में भी लेखन-कला प्रचलित थी और वैदिक ऋषि-गण लिपि से पूर्णरूप में परिचित थे।

वैदिक अंतःसाक्ष्य —

वेदों में ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं जिससे यह प्रकट होता है कि ऋषि-गण लेखन-कला से पूर्णरूप से परिचित थे। ऋग्वेद में कहा गया है "उतत्व पश्यन्नददर्श वाचं" (कि मनुष्य वाणी को हृदयंगम करने पर भी प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता)।

वाणी को किस प्रकार, बिना लिपि-बद्ध किए हृदयंगम किया जा सकता है? इसका अर्थ है कि उस समय भी वेदों को हृदयंगम करने का प्रत्यक्ष ज्ञेय रूप, लिपि के द्वारा, दिया जा चुका था। उपर्युक्त संदर्भ अशिक्षित व्यक्तियों से संबंध रखता है, जो वैदिक ऋचाओं को रट लेने पर भी, उनका भाव समझने में असमर्थ थे।

अथर्ववेद में एक ऋचा है जो मेरे इस विचार को पुष्ट करती है कि उन अतीत के दिनों में भी वेद पुस्तक रूप में ही थे। मंत्र इस प्रकार है :

> "यस्मात्कोशात् उत् अभराम वेदं।
> तस्मिन् अंतः अवदध्म एनम् ॥"

(चूंकि हमने अपना कर्मकांड पूर्ण कर लिया है, इसलिए हम वेद को उसी मंजूषा में रखते हैं, जिससे हमने इसे निकाला था)——अथर्व 19/72/1. ॥

यहाँ "रखना" और "निकालना" क्रियाएँ स्पष्ट निर्देश करती हैं कि वेद पुस्तक रूप में बद्ध थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में "अक्षर" शब्द कई बार प्रयोग में आया है। इस शब्द का अर्थ है "एक वर्ण"—। "अक्षाणि रमन्ते यस्मिन्" अर्थात् वह जो द्रष्टा के नेत्रों को सुख-प्रदान करता है—"अक्षर" कहलाता है। सुलेख सदैव आँखों को अच्छा लगता है। "निरुक्त" के एक व्याख्याकार श्री दुर्गाचार्य के मतानुसार "अक्षर" का अर्थ "स्वर" है। "ऋक्प्रातिशाख्य" में भी कहा गया है। "स्वरो अक्षरम्"।

वेदों का लेखन ईसा से 1000 वर्ष पहले हो चुका था।

पश्चिमी विद्वानों के अनुसार प्राचीन लोग लेखन-कला से पूर्णतः अनभिज्ञ थे। अपनी पुस्तक "प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास" में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर लिखते हैं: "पाणिनि की अष्टाध्यायी में ऐसा एक भी शब्द नहीं है जो प्राचीन भारतीय लोगों को लेखन प्रणाली के ज्ञान का दिग्दर्शन करा सके"। पाणिनि का समय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी है। इस प्रकार मैक्समूलर की धारणा है कि भारत में लेखन-कार्य चौथी शताब्दी के पश्चात् प्रचलित हुआ। "दक्षिण भारतीय-बहु-लिपिता" (South Indian Polygraphy) में बुरनेल कहता है कि भारतीयों ने लेखन-कला फोनिस्यावासियों से सीखी। ये लोग ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी से पहले भारत नहीं आए थे। इसीलिए उसका निष्कर्ष है कि ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी तक भारत में लिखने का कोई चिह्न भी नहीं था। किंतु बूहलर ने सफलतापूर्वक सिद्ध किया है कि ईसापूर्व दसवीं शताब्दी में भी लेखन-प्रणाली भारत में अवश्य ही विद्यमान थी।

प्राचीन लेखों के अनुसार यह कला ब्रह्मदेव से अवतरित हुई। "अनहिकातत्त्व" में बृहस्पति कहते हैं—"धात्रा अक्षराणि सृष्टानि" (धाता ने अक्षरों की रचना की)। "नारद-स्मृति" में भी कहा गया है कि :

"नाकरिष्यत् यदि ब्रह्मा लिखितं चक्षरुत्तमम्
तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविषयत् शुभा गति ॥"

(यदि ब्रह्मा ने नेत्र-सुखकारक अक्षर नहीं बनाए होते, तो निश्चय ही लोग अच्छी हालत में नहीं रहे होते)।

चीनी-यात्री ह्यूनसांग ईसवी सदी 629 से 645 तक भारत में रहा। उसने भी लिखा कि भारत में अक्षरों का मूल ब्रह्मदेव से है (सेमुअल बील: "पश्चिमी संसार का बुद्ध-वादी संग्रह", प्रथम भाग, पृष्ठ 77)। (Buddhist Record of the Western world).

मैक्समूलर-गलत—पाणिनि-सही—

मैक्समूलर का यह विचार कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में लेखन-कला के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है—ग़लत है। पाणिनि ने अपने ग्रंथ में लिपि, लिबि, लिपिकार के संबंध में लिखा है। इन शब्दों का संबंध लेखन-कार्य से ही है। पाणिनि को अपने समय की लिखी हुई अनेकों पुस्तकों का ज्ञान था। अष्टाध्यायी के अध्ययन से किसी को भी "भिक्षु-शास्त्र," "नाट्य-शास्त्र" (अष्टा-4/3/110-11) और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महाभारत (अष्टा-6/2/38) के संबंध में जानकारी हो जाती है। इसीलिए प्रत्येक को यह स्वीकार करना पड़ता है कि पाणिनि के समय में लेखन-कला प्रचलित थी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद में "अक्षर" शब्द प्रायः आता है। एक पद्य है :

अक्षराणां खं अच्छा जानती गात् ॥ (यजु॰ 33/59) ॥

एक प्रसिद्ध व्याख्याकार उव्वत इसकी व्याख्या करते हैं : अक्षराणां अकारादीनां रवं जानती प्रथमा अगात् गच्छति। (अक्षरों की ध्वनि सुनकर वह आती है)।

इसी वेद में अन्य स्थान पर ब्रह्मा ने उद्गत से पूछा है कि एक यज्ञ या बलिदान में कितने अक्षर होते हैं। उद्गत उत्तर देता है कि यज्ञ में सौ अक्षर होते हैं। वैदिक मंत्रों के छंद अक्षरों की संख्या पर आधारित होते हैं जैसे कि गायत्री छंद 24 अक्षरों का और उश्निक छंद 21 का होता है। यह भी सिद्ध करता है कि यजुर्वेदीय काल में लोगों को ज्ञात था कि किस प्रकार लिखना चाहिए।

ऋग्वेद में उल्लेख है कि एक कर्मकांडी वाणी को अक्षरों से नापा करता था।

अथर्वेद में भी एक पंक्ति है :

"यद्यद् द्युतं लिखितमर्पणेन"

जो भी कुछ अच्छे प्रकार से लिखा जाता है (देखने योग्य है) —(अथर्व 12/3/22) ॥

वेदों में "लिख-लेखने" (लिखना) धातु अनेक बार प्रयोग की गई है।

उपर्युक्त समस्त प्रमाण यह प्रदर्शित करने के लिए यथेष्ट हैं कि वैदिक काल में लेखन-कार्य अति विकसित था।

अब प्रश्न उठता है : यदि उस समय लेखन-कार्य विद्यमान था, तो वैदिक जन अपनी रचनाओं में कौन सी लिपि प्रयुक्त करते थे? भाषा-शास्त्रियों के मतानुसार प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी है, तथा भारतीय और सिंहली भाषाओं की अन्य लिपियाँ ब्राह्मी से ही निःसृत हैं।

ब्राह्मी-लिपि की शाखाएँ :—तीन

प्राचीनकाल में ब्राह्मी के अतिरिक्त एक अन्य लिपि भी थी। यह खरोष्ठी थी। ब्राह्मी लिपि बाईं ओर से दाईं ओर, देवनागरी लिपि की भाँति, लिखी जाती थी, और खरोष्ठी लिपि, उर्दू की भाँति, दाईं ओर से बाईं ओर को लिखीजाती थी। ब्राह्मी लिपि को खरोष्ठी की अपेक्षा उच्च स्थान प्राप्त था।

आगे चल कर, ब्राह्मी लिपि तीन वर्गों में विभक्त हो गई (1) उत्तरी लिपि, (2) दक्षिणी लिपि (3) पाली। देवनागरी लिपि प्रथम वर्ग से है, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ लिपियाँ दूसरे वर्ग से संबंध रखती हैं, और सिंहल-द्वीप और जावा की भाषाएँ तृतीय वर्ग की हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की विश्व की लिपियों में, निस्संदेह रूप से, देवनागरी लिपि का सर्वोच्च न है। इसका प्रथम और सर्वप्रमुख कारण यह है कि इस लिपि का सीधा संस्कृत से है अन्य अनेक कारण भी हैं जो देवनागरी लिपि को सर्वोत्तम करने में सहायक हैं। इनकी गणना इस प्रकार की जा सकती है :

(1) व्यापक और संपन्न वर्णमाला, (2) सुगम उच्चारण, (3) ठोसपन,) सुस्पष्टता, (5) लिखने में सरलता।

तम वर्णमाला

अब मैं इन कारणों पर एक-एक कर विशदरूप से विचार करना चाहूँगा।

लिपि की संपन्नता उसकी वर्णमाला में संनिहित होती है। देवनागरी लिपि 52 वर्ण हैं। संसार भर की अन्य किसी भी लिपि में इतने वर्ण नहीं हैं। 26 रों वाली रोमन लिपि देवनागरी की तुलना में निर्धन है। रोमन-लिपि में, के साथ-साथ, संयुग्म-अक्षरों की कठिन समस्या है। रोमन लिपि में वर्णों का योग 26 है। इनमें से अनेक ऐसे हैं जो एक अक्षर से अधिक अक्षरों द्वारा पित किए जाते हैं। देवनागरी लिपि में स्वर दो प्रकार के हैं—ह्रस्व और दीर्घ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ आदि। किंतु रोमन लिपि का प्रत्येक अकेला वर्ण ही स्व और दीर्घ दोनों स्वरों के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए "ए") अ, आ के लिए, "आई" (i) इ, ई के लिए, "यू" (u) उ, ऊ, के तथा अन्य भी इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। यह उच्चारण में तथा भाषा को ने में अत्यधिक कठिनाई उत्पन्न करती है।

इसी प्रकार, साहित्य की दृष्टि से भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक संपन्न मिल भाषा भी वर्णमाला की दृष्टि से विपन्नतम है। देवनागरी लिपि में पाँच र्ग हैं—प्रत्येक वर्ग में पाँच वर्ण हैं यथा "क" वर्ग, "च" वर्ग, "ट" वर्ग और " वर्ग। किंतु तमिल में केवल एक वर्ण ही प्रथम चार वर्णों के लिए प्रयोग किया ता है, अतः तमिल भाषा में "पुस्तक" शब्द को ही पुस्तक, फुस्तक, बुस्तक, भुस्तक पढ़ा जा सकता है। इसीलिए तमिल में पाठक को एक वर्ण का उच्चा- ण संदर्भानुसार करना पड़ता है। यही कारण उन लोगों को तमिल समझने में कठिनाई उत्पन्न करता है जिनकी मातृभाषा तमिल नहीं है। ऐसी ही स्थिति कुछ अन्य भाषाओं की भी है।

उच्चारण में सर्वोत्तम

देवनागरी लिपि की एक अन्य विशिष्टता भी है। नागरी में, लेखन और उच्चारण एक समान हैं जबकि अन्य लिपियों में शब्द का उच्चारण जिस प्रकार है लेखन में वैसा ही नहीं। रोमन और उर्दू-लिपियों में युग्मशाखिता अत्यंत भ्रम- कारी है। रोमन में "बी" (b) नागरी "ब" और "डब्ल्यू" (w) "व" के लिए है। इसी प्रकार एक ही वर्ण एक से अधिक अर्थ (ध्वनि) का द्योतक है यथा "ए" (a) ब, आ, ए के लिए है, और "यू" (u) है उ, ऊ, और "अ" के लिए। उदा- हरण के लिए "बैट", (Bat) "अशोक" (Ashok), "राम" (Ram) में एक ही वर्ण "ए" (a) "ए", "अ", "आ" का द्योतक है। "बट" (But)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

और "पट" (Put) शब्दों में एक ही स्वर "यू" (u) क्रमशः "अ" और "उ" उच्चारित होता है। और "यूनिटी" (Unity) में वही स्वर "यू" (u) ही बोला जाता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पश्चात् संयुग्म-अक्षरों की समस्या है। "डी एच" (Dh) "ढ" और "ध" दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। नागरी लिपि में इस प्रकार का अक्षरों का, कोई संभ्रम नहीं है।

सटीक और वज्ञानिक

एक पश्चिमी भाषा-शास्त्री ने देवनागरी लिपि के सटीकत्व पर प्रयोग करने का यत्न किया। उसने देवनागरी-अक्षरों के मिट्टी के प्रतिरूप तैयार किए। जब उसने उनमें हवा फूँकी तो वह यह जान कर आश्चर्य-चकित रह गया कि "अ" ध्वनि "अ" प्रतिरूप में से आई, "आ" की ध्वनि "आ" से और इसी प्रकार अन्य अक्षर-प्रतिरूपों का निर्माण हुआ है।

इस सटीकता का अन्य एक कारण यह है कि नागरी अक्षरों का उच्चारण नियत है, और आश्चर्यजनक रूप से मुख के विभिन्न भागों से संबद्ध है। संस्कृत के एक पद्य में उच्चारण का निम्नलिखित क्रम वर्णित है :

"बुद्धि से संबद्ध और कुछ बोलने की इच्छा से प्रेरित आत्मा मस्तिष्क को प्रेरित करती है और फिर मस्तिष्क पिंड में ऊष्मा उत्तेजित करता है, ताप वायु की सृष्टि करता है, और वक्ष से गुजरती हुई वायु स्वरों को जन्म देती है। स्वर भी मुख के विभिन्न भागों से घात-प्रतिघात करते हुए अपना आकार विभिन्न अक्षरों के रूपों में प्रस्तुत करते हैं।"

नागरी-अक्षरों के उच्चारण-स्थान हमारे मुख में निम्नलिखित हैं :

अ, "क" वर्ग, ह और विसर्ग . . .	कंठ
ई, "च" वर्ग, य और श	तालु
ऋ, "ट" वर्ग, र और ष	मूर्धा
लृ, "त" वर्ग, ल और स	दंत
उ, और "प" वर्ग	ओष्ठ
ञ, म, ङ, ण, न	नासिका
ए और ऐ	कंठ-तालु
ओ और औ	कंठ-ओष्ठ
व	दंत-ओष्ठ

स्थानों का इस प्रकार नियत करना शब्दों को सही उच्चारण करने में सुविधा प्रदान करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण में सरल

देवनागरी लिखने में भी सरल है। देवनागरी लिपि में शब्द वैसा ही लिखा जाता है, जैसा कि उच्चारण किया जाता है। रोमन लिपि में इस कारण जो गड़बड़ी है, उसका पहले ही दिग्दर्शन कराया जा चुका है। नागरी लिपि में ऐसी कोई गड़बड़ी नहीं है।

कालेलकर और विनोबा द्वारा परिशुद्धि

यहाँ मैं अपनी इस धारणा पर भी बल देना चाहूँगा कि नागरी लिपि को लिखने का पुरातन ढंग सर्वोत्तम है और इसमें किसी भी प्रकार के सुधार की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान ढंग को विनोबा और काका कालेलकर द्वारा भद्दा बनाया जा रहा है, जिन्होंने इस लिपि को लिखने का एक नया ढंग निकाल लिया है। वे "उसका" के स्थान पर "अुसका", "इ" और "ई" के स्थान पर "अि" और "अी" लिखते हैं। उन्होंने उत्तर-प्रदेश सरकार को इस पद्धति पर टाइपराइटर बनाने के लिए भी राज़ी कर लिया था। इस योजना पर हजारों रुपए व्यय भी किए गए थे, किंतु बाद में इन टाइप-राइटरों की योजना को समाप्त कर देना पड़ा था क्योंकि यह ढंग व्यवहार-योग्य नहीं पाया गया।

श्री सुनीति कुमार चटर्जी जैसे कुछ आधुनिक विद्वान देवनागरी लिपि को रोमन लिपि द्वारा बदलना चाहते हैं। वह हो ही नहीं सकता। यदि नागरी लिपि को बदला जाता है, तो संस्कृत, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का समस्त साहित्य नष्ट हो जाएगा। क्योंकि ये भाषाएँ देवनागरी लिपि में पूर्ण रूप में सही लिखी जा सकती हैं रोमनलिपि में नहीं।

देवनागरी की इन समस्त विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए मेरा यह निश्चित मत है कि संसार की कोई भी लिपि देवनागरी का स्थानग्रहण नहीं कर सकती।

--अनु० जगमोहनराव भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषाई एकता-परंपरा और हिंदी

मालारविंदम् चतुर्वेदी

भाषाविज्ञान की सुनिश्चित मान्यता है कि कोई भी दो व्यक्ति कभी एक समान भाषा नहीं बोलते। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने समुदाय, जिसमें वह अधिकांश समय रहता है, की भाषा का उपयोग करता है। उपर्युक्त मान्यता के अनुसार भाषाई एकता एक असंभावित सत्य प्रतीत होता है। जबकि द्वितीय मान्यता न केवल भाषाई एकता को एक मूलभूत सामाजिक सत्य सिद्ध करती है, वरन् इसी मान्यता पर समूचा भाषाविज्ञान आधारित है। वस्तुत: भाषा अपने प्रयोग काल में प्रत्येक व्यक्ति के साथ भिन्न रहती है परंतु उसके प्रयोग-क्षेत्र, विषय तथा रूप से संवद्ध उसकी कुछ ऐसी मूलभूत स्वरूपात्मक विशषताएँ होती हैं जो उसे एकत्व प्रदान कर देती हैं। ऐसी एकत्व विधायिनी मूलभूत विशेषताओं से युक्त किसी भाषा का प्रयोग-क्षेत्र व विषय यदि समूचा राष्ट्र तथा राष्ट्रीय महत्व के सभी विषय हों तो हम उसे राष्ट्र भाषा कहते हैं। राष्ट्र भाषा के लिए यह आवश्यक है कि वह राष्ट्र के नागरिकों द्वारा सहज स्वीकृत हो, शासक वर्ग द्वारा आरोपित नहीं। स्वदेशी या विदेशी शासक वर्ग द्वारा आरोपित भाषा राजभाषा कहलाती है, राष्ट्र भाषा नहीं। इसी प्रकार कुछ विशिष्ट अखिल देशीय समुदायों द्वारा भी कभी-कभी कोई विशिष्ट भाषा किन्हीं विशिष्ट विषयों के लिए स्वीकृत कर ली जाती है, जिन्हें हम अखिल देशीय भाषा तो कह सकते हैं परंतु न तो उसे हम राष्ट्र-भाषा कह सकते हैं और न राज्य-भाषा। प्रत्येक विशाल भूभाग में उक्त भाषा-रूपों के अतिरिक्त अनेक प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाएँ, उपभाषाएँ एवं बोलियाँ आदि भी होती हैं। भारतवर्ष जैसे विशाल देश में अनेक भाषाओं उपभाषाओं और बोलियों का होना सहज स्वाभाविक है। प्राचीन काल में यहाँ अनेक भाषाएँ रही होंगी, परंतु संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं तमिल के अतिरिक्त आज हमें किसी भी अन्य भाषा के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। उक्त भाषाओं के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा का साहित्य नहीं मिलता। उक्त भाषा ओं के साहित्य में यत्र-तत्र प्राचीन भारत की भाषाई स्थिति का जो वर्णन मिलता है, उससे यही ज्ञात होता है कि भारत में विभिन्न जनपदों की विभिन्न बोलियाँ थी। परंतु साहित्यिक भाषाएँ इतनी नहीं थी, जितनी आज हैं। आज विश्व के प्रसिद्ध तेरह भाषा परिवारों में से चार भाषा परिवारों की भाषाएँ यहा बोली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती हैं।[1] मुंडा तथा भोट चीनी परिवारों की भाषाएँ सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से तो महत्त्वहीन हैं ही, साथ ही आज उनके बोलने वालों की संख्या भी नगण्य है। भारोपीय एवं द्रविड़ परिवारों की भाषाएँ भारत की प्रमुख भाषाएँ हैं। यद्यपि ये भाषाएँ दो भिन्न भाषा परिवारों की भाषाएँ हैं, परंतु इनके रूप एवं शब्द समूह में अत्यधिक समानता है।[2] आज इनके रूप ऐसे घुल मिल गए हैं कि कुछ विद्वान इन्हें दो भिन्न परिवारों की भाषा मानने को तैयार नहीं हैं।[3] उत्तर भारत की भाषाओं में संस्कृत के विपरीत प्रत्ययों के स्थान पर परसर्गों के प्रयोग को, विद्वानों ने, द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव माना है।[4] मध्यकालीन अनेक तमिल लेखकों ने तमिल भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से मानी है।[5] आधुनिक आर्य एवं द्रविड़ भाषाओं के स्वरूप पर आज संस्कृत और तमिल का प्रभाव प्रायः सभी विद्वान मानते हैं।[6] डा० एम० वरदराजन् की मान्यता है कि मूल द्रविड़ भाषा प्रागैतिहासिक काल में समस्त भारत में बोली जाती थी। आधुनिक दक्षिण भारतीय भाषाएँ सीधी उक्त मूल द्रविड़ भाषा से विकसित हुई हैं जबकि आधुनिक उत्तर भारतीय भाषाएँ उसी मूल द्रविड़ भाषा से उत्पन्न होकर विदेशी शब्दों और भाषा-रूपों के मिश्रण के कारण बहुत कुछ बदल गई हैं।[7] आशय यह कि भारतीय आर्य एवं द्रविड़ भाषाओं में परस्पर इतना अधिक साम्य है कि हम उसे भारतीय राष्ट्रीयता की एकता तथा उसके प्रतिमान के रूप में सहज ही स्वीकृत कर सकते हैं।

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि प्राचीन तमिल भारतवर्ष की प्रथम भाषा है जो भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व सारे देश में बोली जाती थी।[8] लेकिन उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि संस्कृत से पूर्व भारत में कोई अखिल देशीय भाषा थी या नहीं। और यदि थी तो वह कौन-सी थी। परंतु वैदिक काल से लेकर मुसलमानों के भारत में साम्राज्य स्थापित कर लेने के समय तक एक ही राष्ट्र भाषा थी और वह थी संस्कृत। यह उचित ही है कि विद्वानों ने संस्कृत साहित्य को राष्ट्रीय साहित्य कहा है।[9] क्योंकि वह भारत की प्रथम प्रामाणिक राष्ट्र भाषा है। संस्कृत के अतिरिक्त

---

[1] भारत सरकार—राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन 1956, पृ० 17.

[2] Prehistoric South India—V.R.R. Dikshitar पृ० 179.

[3] The Aryan origin of Tamil—K. M. पृ० 6.

[4] Introduction to the Science of Linguistics—Sayce पृ० 174.

[5] Tamil language—Prof. S. Ilakkuvanar. पृ० 32.

[6] Studies in Dravidian Philology—Ramkrinaih. पृ० 9–10.
देखिए : Tamil language—S. Ilakkuvanar. पृ० 10 भी।

[7] Indian Literature—Ed. Dr. Nagendra. पृ० 7 तथा Tamil language—S. Ilakkuvanar. पृ० 10.

[8] Tamil language—S. Ilakkuvanar. पृ० 8.

[9] भारत की भौतिक एकता, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ०, 10।

3–2 C. H. D/65
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत में पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और तमिल भाषाएँ अवश्य मिलती हैं, परंतु इनमें से किसी को राष्ट्र भाषा नहीं कहा जा सकता है। ई० पू० 400 में लिखे गए प्रसिद्ध तमिल व्याकरण ग्रंथ 'तोल्कप्पियम्' से ज्ञात होता है कि उस समय तमिल का क्षेत्र उत्तर में तिरुवेंकटम् (अर्थात् तिरुपति) से लेकर दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक था।[10] आज इसका क्षेत्र और भी अधिक सीमित हो गया है। इससे सिद्ध है कि तमिल अन्य प्रांतीय भाषाओं के समान भारत की एक प्रांतीय भाषा ही है और उसका विषय विस्तार संस्कृत की तुलना में अत्यंत सीमित कहा जाएगा। साथ ही तमिल भाषी-प्रदेश में भी 200 ई० से ही संस्कृत राजभाषा के रूप में स्वीकृत कर ली गई थी।[11] तथा शिक्षादीक्षा, प्रशासकीय और सांस्कृतिक कार्यों में ही नहीं वरन् शिष्टकाव्य एवं शास्त्रों के प्रणयन में भी संस्कृत भाषा का प्रयोग होने लगा था। इस समय के सारे शिलालेख संस्कृत में ही मिलते हैं।[12] इससे सिद्ध होता है कि तमिल भाषी प्रदेश ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया था।

संस्कृत के पश्चात् पाली भारत की प्रथम अंत: प्रादेशिक या अखिल भारतीय भाषा कही जा सकती है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में अशोक के शिलालेख इस बात को सिद्ध करते हैं कि उस देश के सभी प्रांतों में यह भाषा समझी जाती थी। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों की भाषा के रूप में संस्कृत को स्वीकृत न कर इस भाषा को स्वीकृत किया था। परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के साथ-साथ एक प्रकार से पाली अखिल भारतीय भाषा बन गई थी। परंतु इसे राष्ट्रभाषा इसलिए नहीं कहा जा सकता कि यह एक धार्मिक संप्रदाय विशेष की भाषा बन कर रह गई। इसलिए इसमें बौद्ध धर्म के धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त और किसी प्रकार का साहित्य नहीं मिलता। बौद्ध धर्म के अनुयायी सम्राट अशोक तथा उसके परवर्ती कुछ अन्य राजाओं ने कदाचित् इस भाषा का प्रशासकीय कार्यों में प्रयोग किया हो, इसलिए अशोक के समय से लेकर 250 ई० तक सारे भारत में शिलालेख पाली या प्राक् महाराष्ट्री प्राकृत में ही मिलते हैं।[13]

जिस प्रकार पाली बौद्ध धर्म की भाषा बनकर अखिल भारतीय भाषा बन गई थी[14] उसी प्रकार अर्धमागधी जैन धर्म की भाषा बन कर सारे भारत में जैन मतावलंबियों की सामान्य भाषा बन गई थी।[15] परंतु पाली के समान ही धार्मिक संप्रदाय विशेष की भाषा होने के कारण इसे भी हम राष्ट्रभाषा न कह कर

[10] Tamil language—S. Ilakkuvaran, पृ० 18.
[11] Ibid—पृ० 38.
[12] Ibid—पृ० 38.
[13] Epigraphy—D. R. Bhandarkar, पृ० 204.
[14] हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० 27, सं० डा० राजबली पांडे पूर्व पीठिका।
[15] जैन गुर्जर कविओ प्रथम भाग, पृ० 13, मोहनलाल दलीचंद देसाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की एक अखिल भारतीय भाषा ही कह सकते हैं। जिस प्रकार महाराष्ट्री प्राकृत, जिसे शौरसेनी प्राकृत का ही एक विकसित रूप माना जाता है।[16] ललित साहित्य की एक अखिल भारतीय शैली मात्र ही कही जा सकती है। उसी प्रकार अपभ्रंश भाषा भी काव्य भाषा की एक अखिल भारतीय रूप तक सीमित भाषा मानी जा सकती है। अपभ्रंश भाषा में जैन साधुओं तथा बौद्ध सिद्धों द्वारा रचित धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त और जो भी साहित्य मिलता है,[17] वह लोक साहित्य के धरातल का हीं है, परिनिष्ठत शिष्ट साहित्य की गरिमा उसमें दृष्टिगोचर नहीं होती। आशय यह कि पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का प्रचार क्षेत्र किसी प्रांत विशेष तक सीमित नहीं था और न ही उसके साहित्य के लेखक और पाठक किसी प्रांत विशेष की सीमाओं में बँधे हुए थे, परंतु इन भाषाओं के प्रयोग-प्रयोजन एक देशीय होने के कारण इन्हें संस्कृत के समान भारत की राष्ट्रभाषा नहीं कहा जा सकता। इसीलिए इन भाषाओं के जीवन काल में संस्कृत भाषा के प्रयोग, विनियोग, स्थान, महत्त्व आदि किसी में किसी प्रकार की कमी देखने को नहीं मिलती। जिस प्रकार पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाएँ धर्म अथवा काव्य के कारण अखिल भारतीय भाषाएँ बन गई थी उसी प्रकार अरबी, फ़ारसी और अँग्रेज़ी को विदेशी शासकों ने प्रशासकीय प्रयोजनों से अखिल भारतीय भाषा अवश्य बना दिया था, परंतु इन भाषाओं का केवल किसी एक विषय के लिए सीमित क्षेत्र में प्रयोग होने के कारण, इन्हें भी हम राष्ट्र भाषा नहीं कह सकते।

राष्ट्र भाषा का प्रयोग, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राष्ट्रीय महत्त्व के सभी विषयों के लिए समूचे राष्ट्र द्वारा स्वेच्छा से होता है। अर्थात् राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के सभी विषयों और शिष्ट काव्य के लेखन के लिए तो राष्ट्र भाषा का प्रयोग होता ही है, साथ ही वह राष्ट्र के अंतर्प्रांतीय व्यवहार और उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में भी काम आती है। संस्कृत भाषा और साहित्य के इतिहास तथा उसके प्रयोग की परंपरा और विस्तार के अध्ययन से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि मुसलमानों के आगमन तथा भारत में उनके साम्राज्य स्थापन के समय तक संस्कृत भारत की एक मात्र राष्ट्रभाषा थी। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् संस्कृत भाषा के प्रयोग का क्षेत्र सीमित अवश्य हो गया किंतु उसका महत्त्व बहुत समय तक बना रहा। संस्कृत भाषा के विषय में संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान मोनियर विलियम के ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं, उन्होंने कहा है कि यद्यपि भारत में पाँच सौ से अधिक बोलियाँ प्रचलित हैं, परंतु हिंदुत्व को मानने वाले सभी व्यक्तियों के लिए, चाहे वे कितनी ही जाति, कुल, मर्यादा, संप्रदाय और बोलियों की भिन्नताओं से मुक्त क्यों न हों, सर्व सम्मति से स्वीकृत और समादृत एक ही पवित्र भाषा और साहित्य है और वह भाषा है संस्कृत, और वह साहित्य है संस्कृत साहित्य। जो वेद अर्थात् समस्त ज्ञान का एक मात्र आश्रय हैं, जो हिंदू देवता ज्ञान, दर्शन,

---

[16]हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० 293, सं० डा० राजबली पाँडे पूर्व पीठिका।

[17]हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० 332, सं० डा० राजबली पाँडे पूर्व पीठिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

धर्मशास्त्र या विधि शास्त्र और गल्प शास्त्र की एक मात्र वाहिका है, एक ऐसा दर्पण है जिसमें समस्त हिंदू संप्रदाय, उनकी मान्यताएँ, आचार व्यवहार रूढ़ियां यथार्थतः प्रतिबिंबित होती हैं। वह एक ऐसा रत्नाकर है जिससे भारतीय भाषाओं के विकास तथा महत्त्वपूर्ण धार्मिक और वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए समस्त आवश्यक सामग्री उपलब्ध की जा सकती है।[18]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत भाषा का मूल उद्गम स्थान भारत का कौन सा प्रदेश है निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। प्राचीन वैदिक साहित्य में मध्य देशीय भाषा की अनेक स्थानों पर प्रशंसा की गई है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि कुरु पांचाल प्रदेश की भाषा आदर्श भाषा है।[19] इसी प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण में एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि जो भाषा सीखना चाहता है उसे उत्तर दिशा की ओर जाना चाहिए या जो उस दिशा से आता हो, उससे भाषा सीखनी चाहिए।[20] इस प्रकार के उल्लेखों से एक बात निश्चित रूप से स्पष्ट हो जाती है कि वैदिक काल में मध्यप्रदेश जिसे आर्यावर्त और ब्रह्मर्षिदेश भी कहा गया है, भाषा की दृष्टि से आदर्श स्थान था।[21] अतः मध्यप्रदेश संस्कृत भाषा का उद्गम स्थान नहीं तो विकास स्थान अवश्य रहा होगा। क्योंकि प्रारंभ से ही यह प्रदेश संस्कृति का सर्वाधिक प्रमुख केंद्र रहा है।[22] अतः सांस्कृतिक दृष्टि से प्रधान और भौगोलिक दृष्टि से भी केंद्रस्थ प्रदेश की भाषा का भारत की राष्ट्र-भाषा बन जाना सहज-स्वभाविक प्रतीत होता है। संस्कृत भाषा केंद्रस्थ होने के कारण भारतीय संस्कृति की सहज वाहन बन गई।[23] संस्कृत भाषा के इतिहास के अध्ययन से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि उसमें न केवल धार्मिक और ललित साहित्य ही लिखा गया है, वरन् उसमें धर्मनिरपेक्ष वैज्ञानिक विषय तथा गणित, राजनीति, अर्थशास्त्र, रसायन, भूमिति, भूगोल, ज्योतिष, दर्शन-नीति, शिल्प, विभिन्न कलाएँ, काव्य शास्त्र एवं कामशास्त्र आदि विषयों पर प्रभूत साहित्य लिखा गया है। शिक्षा का माध्यम तो संस्कृत भाषा थी ही, प्रशासकीय सब कार्य संस्कृत भाषा में होते थे। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समस्त भारत को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति तथा भारतीय राष्ट्रीयता की प्रबलतम अभिव्यक्ति एवं प्रतिमान के रूप में संस्कृत भाषा की परंपरा अविच्छिन्न रूप में लगभग दो सहस्राब्दियों तक मिलती है।[24]

---

[18]Hinduism—By Moniar William, quoted by R. K. Mukharji in India Inheritance Vol. II, P. 91, Ed. K. M. Munshi.

[19]शतपथ ब्राह्मण 3, 2, 3, 15.

[20]कौषीतकी ब्राह्मण 7.6.

[21]हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास पृ० 21 22 सं० डा० राजबली पांडे पूर्व पीठिका।

[22]शौरसेनी की प्राचीन परंपरा, पृ० 77, सुनीतिकुमार, चाटुर्ज्या, कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ।

[23]Indian Inheritance, Vol. II, P. 91, Ed. K. M. Munshi.

[24]हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, पूर्व पीठिका 2,1,255 सं० डा० राजबली पांडे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भारतीय इतिहास के आदि काल सें मुसलमानों के आगमन तक राष्ट्रीय Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri भाषाई परंपरा के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से ज्ञातव्य कता की अविच्छिन्न हती है कि इस युग की समय सीमा में हमें तमिल के अपवाद के साथ कोई भी तीय भाषा संस्कृत के विरोध में राजनैतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक हत्व के कार्य में प्रयुक्त नहीं मिलती । आज भारत में जितनी भाषाएँ या क्षत्रीय तियाँ हैं, कदाचित् प्राचीन भारत में वे उनसे अधिक होंगी, परंतु राष्ट्रीय एकता धार्मिक आग्रह तथा प्रांतीय अभिमान के अभाव के कारण "एक राष्ट्र एक भाषा" सिद्धांत अक्षरश: चरितार्थ होता रहा। इस युग की समय सीमा में हमें पाली दि जो अखिल भारतीय भाषाएँ मिलती हैं वे भारतीय राष्ट्रीयता के भाषाई कता के प्रतिमान को और भी अधिक पुष्ट व प्रमाणित करती हैं। उक्त अखिल रतीय भाषाओं और संस्कृत, हिंदी राष्ट्रभाषाओं में यह समानता अवश्य ष्टिगोचर होती है कि ये सभी भाषाएँ मध्यदेशीया हैं,[25] साथ ही जैसा कि ले कहा जा चुका है कि इन भाषाओं में रचित साहित्य का संबंध किसी प्रांत शेष से न होकर समूचे राष्ट्र से रहा है।

भारत में विदेशी शासन के स्थापित होते ही विशुद्ध राजनैतिक और प्रशासकीय रणों से क्रमश: तीन विदेशी भाषाएँ अखिल भारतीय भाषाओं के रूप में स्थापित ई। अरबी, फ़ारसी और अँग्रेजी। वस्तुत: ये भाषाएँ भारतीय जनता पर रोपित की गई थीं। इसीलिए भारतीय संस्कृति इनमें प्रतिबिंबित न हो सकी। क्त विदेशी भाषाओं ने संस्कृत को उसके सार्वभौम आसन से च्युत कर प्रांतीय द भाव को जागृत होने का अवकाश प्रदान कर दिया था।[26] परंतु इसी समय तीय भाषाओं के साहित्य में परिनिष्ठ भाषा के रूप में स्थापित हो जाने के बाद भी हिंदी का अहिंदी-भाषी-क्षेत्रों में समानांतर भाषा के रूप में स्थान बना रहा। रिणामस्वरूप दीर्घ विदेशी दासता के समय में भारतीय राष्ट्रीयता का भाषाई कता का प्रतिमान अविच्छिन्न बना रहा। आशय यह कि भारतीय इतिहास के प्राक् मुसलमान काल तक राष्ट्रीयता का भाषाई एकता का प्रतिमान--"एक राष्ट्र और एक राष्ट्रभाषा" अर्थात् संस्कृत के रूप में तथा मुसलमान काल से आज तक समानांतर राष्ट्रभाषा अर्थात् हिंदी के रूप में निरंतर दृष्टिगोचर होता है। अर्थात् मुसलमान काल तक भारत के प्रत्येक प्रांत ने अपनी-अपनी एक-एक भाषा पूर्णत: परिनिष्ठित रूप में स्वीकृत कर ली थी, परंतु शासन द्वारा बहिष्कृत एवं अनाश्रित हिंदी को भारतीय जनता ने सामूहिक रूप से अंतर्प्रांतीय व्यवहार में एवं धार्मिक, सांस्कृतिक, तथा साहित्यिक प्रयोगों में राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया था।

भाषा की राष्ट्र भाषाओं तथा अखिल भारतीय भाषाओं की उपर्युक्त परंपरा में हिंदी का आज वही स्थान है जो प्राचीन काल में संस्कृत का था। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का कथन है कि "अपने देश से प्रेम रखने वाले, जो भारतीय

---

[25]शौरसेनी की प्राचीन परंपरा, पृ० 79, 81 सुनीति कुमार चाटुर्ज्या; पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ।

[26]जैन गुर्जर कविओ, प्रथम भाग, पृ० 15, श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राष्ट्र को एक और अखंड मानते हैं, वे अवश्य स्वीकार करेंगे कि हमारी राष्ट्रीय व्यापारिक तथा सांस्कृतिक एकता के लिए हिंदी भाषा एक बड़े भारी कार्य का साधन है। यहाँ तक कि मैं इस छिन्न और विक्षिप्त देश में तो संस्कृत के बाद हिंदी को ही ईश्वर के आशीर्वाद स्वरूप मानता हूँ।[27] हिंदी की आज जो स्थिति है उसके कारण के रूप में उसका मध्य देशीय होना तो है ही साथ ही उसके और भी अनेक धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक कारण हैं।[28] भारतीय राष्ट्रीयता के प्राचीन प्रतिमान संस्कृत का हिंदी अभिनव आधुनिक रूप है। क्योंकि एक ओर वह संस्कृत की समस्त सांस्कृतिक परंपरा का पूर्णतः संवहन कर रही है जो हिंदी के पूर्व कोई भी मध्य देशीय भाषा इतनी संपूर्णता के साथ नहीं कर पाई थी,[29] दूसरी ओर वह इतर प्रांतीय भाषाओं के समानांतर अविरोधतः समस्त आधुनिक भारतीय चेतना को अभिव्यक्त करने में सक्षम सिद्ध हो रही है।''

हिंदी आज अखिल भारतीय भाषा के रूप में निष्पन्न नहीं हुई, वरन् वह प्रारंभ से ही अंतर्प्रांतीय भाषा के रूप में विकसित हुई है।[30] प्रारंभ से ही हिंदी भारत के सभी प्रांतों में न केवल बोली व समझी जाती थी वरन् उसमें प्रायः समस्त प्रांतों के अहिंदी भाषी लेखकों द्वारा साहित्य सृजन भी हुआ था।[31] मध्यकाल में ही अनेक प्रांतों ने हिंदी को संस्कृत आदि भाषाओं के समान ही शिष्ट भाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया था।[32] विद्वानों की मान्यता है कि आठवीं शताब्दी में जब अरबों ने भारत पर अधिकार किया तो भारतीय मंत्रियों को राजकाज सौंपकर राजकीय कार्यालयों में ब्राह्मण कर्मचारी ही नियुक्त किए थे, जिससे हिंदी का चलन बना रहा।[33] अकबर के समय में टोडरमल ने सरकारी दफ़्तरों से हिंदी को निकाल कर फ़ारसी को स्थान दिया। फिर भी अकबर के शासन में हिंदी भाषा का महत्त्व कम नहीं हुआ, बल्कि स्वयं अकबर के अपना लेने से उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। दक्षिण में बहमनी राज्य में उसे सरकारी दफ्तरों में भी जगह मिली और हिंदी हिंद की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई।[34] कुछ विद्वानों की मान्यता है कि गुरु नानक ने अपने भ्रमण काल में बंगाल, असम, द्वारका, जगन्नाथ, लंका, मक्का, मदीना और तिब्बत आदि प्रदेशों में जो उपदेश दिए थे, वे हिंदी में ही थे।[35]

---

[27]शौरसेनी की प्राचीन परंपरा, पृ० 76, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ।

[28]विशेष विवेचन के लिए देखिए हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० 1.1.65 पूर्व पीठिका, डा० राजबली पांडे।

[29]वही पृ० 2.1.255।

[30]लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, जिल्द 9, भाग 1, पृ० 44, डा० ग्रियर्सन।

[31]सप्तम हिंदी साहित्य सम्मेलन कार्य विवरण, पृ० 14।

[32]गुजराती भाषा की उत्पत्ति, पृ० 25, वसंत मासिक, आश्विन 1970।

[33]हैदराबाद में हिंदी, पृ० 23, श्री मधुसूदन चतुर्वेदी।

[34]कचहरी की भाषा और लिपि, पृ० 12, श्री चंद्रबली पांडे।

[35]सप्तम हिंदी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण पृ० 94।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारत में मुसलमानों के प्रवेश के पश्चात् तो हिंदी का वहाँ खूब प्रसार हुआ ही परंतु उससे भी पहले हिंदी दक्षिण भारत में पहुँच चुकी थी।[36] सन् 1795 में बंगाल के कैप्टिन ब्लंट द्वारा चाँदा ज़िले में हिंदी बोलने वालों का उल्लेख मिलता है।[37] इसी प्रकार सन् 1766 में बंगाल के गवर्नर के आदेशानुसार ली टी० मोट्टे नामक अँग्रेज़ अधिकारी ने बस्तर कांकेर आदि प्रदेशों की यात्रा की थी जिसके वर्णन में उसने लिखा है कि वहाँ धाराप्रवाह हिंदी में बात करने वालों को देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था।[38] विद्वानों ने उचित ही हिंदी को भारत की सर्वजनीन भाषा कहा है।[39] मध्यकाल में हिंदी को कुछ राजनैतिक कारणों से प्रशासनिक भाषा बनने का अवसर नहीं मिला वैसे सभी राजा महाराजा और सामंत इस भाषा को जानते ही नहीं वरन् इसमें अपने आप को अभिव्यक्त भी कर सकते थे।[40] परवर्ती काल में हिंदी-भाषी-प्रदेशों में ही नहीं वरन् हैदराबाद जैसी दक्षिण भारतीय रियासतों में भी हिंदी (अपनी उर्दू शैली में) राज्यभाषा बन गई। अतः आज हिंदी को भारत गणराज्य की राष्ट्र भाषा कहना इतिहास सापेक्ष्य सत्य है काल्पनिक यथार्थ नहीं।[41] हिंदी के एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में होने के अतिरिक्त अन्य समस्त भारतीय भाषाओं में इतना अधिक साम्य है कि केवल भारत में एकाधिक भाषाओं के आज साहित्यिक रूप में स्थापित हो जाने के कारण उसे अराष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता। संसार में ऐसे राष्ट्र हैं जहाँ न केवल एकाधिक साहित्यिक भाषाएँ प्रचलित हैं, वरन् एकाधिक भाषाएँ राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत हैं।[42] परंतु भारत में न केवल संस्कृत की परंपरा में हिंदी एक राष्ट्र भाषा के रूप में प्राचीन काल से मिलती है वरन् भारतीय आर्य भाषाओं में ही नहीं, द्रविड़ भाषाओं में भी परस्पर इतना अधिक साम्य है कि विद्वानों ने इन्हें भिन्न भाषा कहने की अपेक्षा भारतीय संस्कृति के एक ही जीवन तत्व से अनुप्राणित विभिन्न बोली कहना अधिक उपयुक्त समझा है।[43] प्रसिद्ध भाषा शास्त्री कॉल्डवैल का कथन है कि भारतीय भाषाओं की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि जैसे जैसे ये परिनिष्ठित भाषा के रूप में विकसित होती हैं, इनकी साहित्यिक

---

[36]भारतीय इतिहास संशोधन मंडल, पूना, जिल्द 1, संख्या 2, 3, पृ० 34।

[37]British Relation with Nagpur State in 18th Century, p. 126.
हिंदी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा, पृ० 13 पर उद्धृत।

[38]Early European Travellers in Nagpur Territories, p. 132.
हिंदी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा, पृ० 13 पर उद्धृत।

[39]Indo-Aryan—Rajendra Lal Mitra, Vol. II, p. 308.

[40]Lingua-Indina—Swaminath Sharma, p. 6.

[41]शौरसेनी की प्राचीन परंपरा, पृ० 75 सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ।

[42]Psycholinguistics—Ed. Sob Sopanta p. 2.

[43]Gujrat and its literature (Intro.)—K. M. Munshi, p. XXIII.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शैली बोलचाल की सामान्य भाषा से भिन्न अपनी शब्द राशि और व्याकरणिक विशेषताओं के साथ एक भिन्न बोली के रूप में विकसित होने लगती है।[44] जो परस्पर अधिक निकट है। समस्त भारतीय भाषाओं की शब्द राशि मुख्यत: संस्कृत पर आधारित है ; तथा इनमें अनेक भाषा-वैज्ञानिक तथा व्याकरणिक समानताएँ हैं। अत: भारतीय भाषाएँ परस्पर इतनी अधिक समान हैं कि उनकी कुछ मूलभूत बोलीगत भिन्नताओं को छोड़ दिया जाए तो वे एक ही भाषा की विभिन्न शैलियाँ प्रतीत होंगी। आशय यह है कि भारतीय भाषाएँ जैसे-जैसे विकसित होती हैं उनमें परस्पर निकट आने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, दूर जाने की नहीं। वास्तव में यह भारतीय राष्ट्रीयता की एकत्वमूलक भावना की सहज अभिव्यक्ति एवं सिद्ध दोनों हैं। सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन् के ये शब्द अक्षरश: सत्य हैं कि "भारत अपनी मूल चेतना में एक है, चाहे वह कितनी ही जातियों और संप्रदायों में बँटा है। भारतीय समान सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भाषाई भेद कभी बाधक नहीं हुआ"।[45]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारांश यह कि न केवल भारत में प्राचीन काल में तमिल के अपवाद के साथ केवल अखिल भारतीय भाषाएँ ही मिलती हैं और वर्तमान काल में समस्त भारतीय भाषाओं में आश्चर्यजनक समानता है, वरन् भारतीय इतिहास के आदि काल से मुसलमानों के आगमन के समय तक राष्ट्र भाषा के सभी लक्षणों से युक्त संस्कृत राष्ट्र भाषा के रूप में मिलती है तथा उसके बाद विदेशी सम्राटों की नितांत उपेक्षा तथा व्यावहारिक विरोध के होते हुए भी हिंदी प्रारंभ से ही समूचे राष्ट्र की एक चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भारत के प्राय: सभी प्रांतों द्वारा प्रयुक्त होती आ रही है। राष्ट्रीयता की भावना के लिए विद्वानों ने भाषा की एकता को अनिवार्य नहीं माना[46] परंतु भारत में न केवल आज भाषाई एकता दृष्टिगोचर होती है वरन् उसकी सुदृढ़, सुस्पष्ट, सुदीर्घ परंपरा भी मिलती है, अत: यह कहा जा सकता है कि भारत प्राचीन काल से एक राष्ट्र है और राष्ट्रीयता के प्रतिमान-भाषाई एकता की जो प्राचीन परंपरा मिलती है, हिंदी उसकी अपनी ऐतिहासिक परंपरा के साथ आधुनिक सिद्धि है।

---

[44]Comparative Grammar of Dravidian Languages—Dr. Coldwell p. 81;

[45]राष्ट्रीयता डा० गुलाब राय, पृ० 18 पर उद्धृत।

[46]भारत सरकार——राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन, 1956।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र्भ किस प्रकार देने चाहिएँ

...मोहन

हमारे देश में संदर्भ निर्देशन की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। मान लीजिए ...हमें—

धीरेंद्रवर्मा : सं० हिंदी विश्वकोश (नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस) भाग-...क, प्रथम संस्करण (1960)

पुस्तक को एक ही लेख में कई स्थानों पर उद्धृत करना है। इसके लिए ...ली पद्धति के अनुसार उपरिलिखित ढंग से पुस्तक के पूरे नाम को लिख कर ...गामी उद्धरणों में देखिए 'धीरेंद्रवर्मा' मात्र निर्देश किया जाता है। केवल एक ...ी पुस्तक या लेख का संकेत निर्देशन करना हो तो इसमें कोई उलझन नहीं। किंतु ...दि धीरेंद्रवर्मा की अनेक पुस्तकों का उद्धरण एक ही लेख में देना हो तो उप-...क्त पद्धति पाठक के मन में द्विधा उत्पन्न करती है। एक दूसरी पद्धति ...द्वारा पहली ही पाद टिप्पणी में पुस्तक निर्देश पर आगामी स्थलों पर 'वही' पद ...े संदर्भ सूचित करते हैं। इस योजना में जहाँ भी पाठक की भेंट 'वही' से होती ...है, मूल निर्देशन का सिंहावलोकन करना पड़ता है। इससे ध्यानांतर तथा पुन-...चिंतन जैसी बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। तीसरी पद्धति में रचना के अंत में संदर्भों ...की एक तालिका देकर पाद-टिप्पणियों में अभीप्सित अंकों का निर्देश मात्र करते ...हैं। इसमें भी दूसरी पद्धति के दोष आ जाते हैं।

हमारे मत से, जहाँ तक हो सके, पाद-टिप्पणियों का बहिष्कार करना चाहिए। ...इससे पाठक की प्रगति विश्रृंखल होती है। विषय प्रवाह से हटकर बीच में ही पाद-टिप्पणी ढूंढनी पड़ती है। फिर लौटकर मुख्य विषय पर आना पड़ता है। इसलिए जहाँ तक संभव हो, उद्धरणों को अंत में ही तालिकाबद्ध करना चाहिए। यदि पाठ्य-सामग्री के बीच में संदर्भ निर्देशन नितांत आवश्यक जान पड़े तो उसे पाद-टिप्पणी में देने की अपेक्षा मूल लेख में ही देना चाहिए।

लेखक-नामों के अनुसार संदर्भों को सदैव अकारादि क्रम से सजाना चाहिए। जहाँ एक ही लेखक की अनेक कृतियों का उद्धरण देना हो, वहाँ सबको लेखक-सूची में लेखक के नाम के साथ पुनरांकित कर देना चाहिए। लेखकों के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण अंकों का प्रयोग करना चाहिए और उसी लेखक की अनेक कृतियों को निर्देशित करने के लिए कोष्ठकों में रोमन अंकों का।

लेखक नामों के इस आयोजन से एक कठिनता उत्पन्न हो जाती है। भारत में नामों का पूर्वपद उत्तरपद की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। पाश्चात्य देशों में जातीय नाम अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। उसी पद्धति के अनुसरण पर अनेक सुशिक्षित भारतीयों ने अपने वास्तविक नामों के पश्चात् परिवार-नामों को भी लिखना प्रारंभ कर दिया है। इससे अनेक उलझने उत्पन्न हो गई हैं। यदि किसी व्यक्ति का नाम अरविंद बनर्जी है तो वह 'ए० बनर्जी' लिखना अधिक पसंद करता है और दूसरे लोगों से 'बनर्जी' मात्र सुनकर प्रफुल्लित होगा। इस विस्तृत देश के किसी बड़े शहर में कतिपय अरविंद हो सकते हैं पर बनर्जियों की संख्या संभव है सैंकड़ों में पहुँचे। परिणाम यह होता है कि जातीय नाम विभेदक चिह्न के बदले भ्रमात्मक चिह्न हो जाते हैं। कभी-कभी एक ही लेख की बृहद् लेखक-तालिका में दर्जनों बनर्जी नाम आ जाते हैं।

आइए, वस्तुस्थिति पर प्रचलित प्रणाली के अनुसार ही विचार करें। जातीय नामों का रिवाज-सा हो गया है। अब प्रश्न इतना ही है कि लेखक नामों को किस प्रकार क्रमबद्ध किया जाए——व्यक्तिगत नामों के प्रथमाक्षरों के अनुसार अथवा पारिवारिक नामों के। अपने देश में परिवार-नाम से मतलब जातीय नाम से समझना चाहिए। पाश्चात्य लेखकों के नामों के संबंध में ऐसी कठिनाई उत्पन्न नहीं होती क्योंकि वे यदा-कदा ही पूरा नाम लिखते हैं। इसलिए उनके नामों को परिवार-नाम के अनुसार ही अकारादि क्रम से लगाना चाहिए। भारतीय नामों के लिए सर्वोत्तम ढंग यही है कि व्यक्तिगत नामों को ही यदि पूरा नाम दिया हो, प्रथम अक्षर के अनुसार क्रमबद्ध किया जाए। यदि पूर्वपद का संकेत मात्र हो तो नाम के उत्तरपद के प्रथम अक्षर को ही अकारादि क्रम से लगाना चाहिए। इस बात का भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि लेखकों के नाम उसी ढंग से लिखे जाए जैसे लेखक स्वयं लिखते हैं। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ रामानुजन के नाम के लिए 'श्री निवास रामानुजन' पद कभी नहीं लिखना चाहिए, केवल 'एस० रामानुजन' ही देना चाहिए।

पिछले कुछ वर्षों में परिवार-नाम को पूर्वपद में लिखकर उत्तरपद में व्यक्तिगत नाम को लिखने की प्रवृत्ति का विकास अधिक हुआ है। इससे कभी-कभी हम बेढंगी परिस्थितियों के चक्कर में आ जाते हैं, विशेषकर ऐसे लेखकों के नामों के विषय में जो जातीय नाम लिखते ही नहीं, जैसे

राय, लाजपत, अहमद, रफ़ीक

इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। सुकर तो यह है कि नामों को उनके प्रकृत रूप में ही लिखा जाए, चाहे पूर्वपद के लिए सांकेतिक अक्षर या संपूर्ण वर्ण लिखे गए हों। किंतु यदि नामों के सांकेतिक वर्ण ही दिए गए हों तो उन्हें अकारादि क्रम में सँजोने में उत्तरपद को प्रमुखता देनी चाहिए। एक उदाहरण से बात साफ़ हो जाती है——

(1) जी० एल० अग्निहोत्री (2) बद्रीप्रसाद (3) एल० सी० चंदन (4) जी० एच० हार्डी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आइए, संदर्भ निर्देशन के मुख्य विषय की ओर लौटें। मान लीजिए कि किसी लेखक का नाम एल०एस० कुशवाहा है। लेखक सूची में उसका स्थान 14वाँ है। हमें उसकी कृति सं० (7) का निर्देशन करना है। इसे हम इस प्रकार लिखेंगे—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुशवाहा 14(7) से यह स्पष्ट है कि————"

लेकिन कुछ लेखक इसका निर्देश "कुशवाहा 14" लिख कर करते हैं। हमारे दृष्टिकोण से यह बिल्कुल अनावश्यक है। गणित में संख्यांकों के घातों को सूचित करने के लिए हम संख्यांकों के ऊपर घातांकों को लिखते हैं। हमारा सुझाव उक्त संकेतों से उत्पन्न होने वाले भ्रम से पाठक को सुरक्षित रक्खेगा।

प्रत्येक संदर्भ को, जहाँ तक संभव हो, स्वतः पूर्ण होना चाहिए। किसी मौलिक पुस्तक के संदर्भ में प्रकाशन-स्थान, तिथि, संस्करण और प्रकाशक का निर्देश अवश्य होना चाहिए। किसी अनूदित, संपादित या संगृहीत पुस्तक के लिए संदर्भ में उक्त तथ्यों का ठीक-ठीक निरूपण होना चाहिए। आइए, कुछ उदाहरणों से इसकी परीक्षा करें।

1—धीरेंद्रवर्मा : सं० **हिंदी विश्वकोश भाग 1** (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) प्रथम संस्करण (1960)।

2—मुस्तफ़ा खाँ मद्दाह : संकलन **उर्दू-हिंदी शब्दकोश** (प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1959)।

3—रामचंद्र वर्मा : **शब्द साधना** (साहित्य रत्नमाला कार्यालय, 47, लाजपत नगर, मलदेहिया, वाराणसी) पहला संस्करण (1956) 50-6।

4—आर०डी० विद्यार्थी : **प्राणिशास्त्र भाग** 1-मेंढक (इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद) पंचम संस्करण (1957) 63-7।

5—संपादक मंडल : **हीरालाल खन्ना अभिनंदन ग्रंथ** (बी०एन०एस०डी० कालेज, कानपुर) (1950) 101-23।

उपरिलिखित उदाहरणों से कुछ सिद्धांत बिल्कुल स्पष्ट हो जाते है।

(1) जहाँ किसी पुस्तक के लेखक का नाम न हो, जैसे 5 में, तो उसके स्थान पर प्रकाशक का नाम देना चाहिए।

(2) पुस्तक का नाम रेखांकित या टेढ़ी मुद्रा में देना चाहिए। जहाँ पर कोई उप-शीर्षक हो, जैसे 4 में, तो उसे भी रेखांकित या टेढ़े अक्षरों से ही दर्शाना चाहिए। यदि पुस्तक कई जिल्दों में लिखी गई हो तो जिल्द-संख्या भी रेखांकित या टेढ़े अक्षरों में ही होनी चाहिए।

(3) प्रकाशक का नाम, प्रकाशन-स्थान इत्यादि को मुख्य शीर्षक के पश्चात् कोष्ठकों में देना चाहिए।

(4) संस्करण-संख्या को प्रकाशक के नाम के पश्चात् देना चाहिए, तदोपरांत कोष्ठकों में प्रकाशन तिथि देनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) जहाँ किसी पुस्तक के विशेष पृष्ठों की ओर संकेत करना हो जैसे 3, 4 में, वहाँ पृष्ठ-संख्या को अंत में देना चाहिए और जहाँ तक संभव हो संक्षेप में लिखना चाहिए—जैसे 60-7 न कि 63-67; 257-69, न कि 257-269।

किसी सामयिक पत्रिका के लेख का उद्धरण देते समय प्रकाशन-स्थान, प्रकाशन-तिथि, वर्ष-संख्या तथा पूर्ण-संख्या अवश्य देनी चाहिए। साथ ही यह भी बताना चाहिए कि पत्रिका मासिक, त्रैमासिक अथवा किस आवृत्ति की है। यह अत्यंत आवश्यक है क्योंकि कुछ पत्रिकाएँ एक ही वर्ष में दो जिल्दों में बँटकर प्रत्येक में कई अंक प्रकाशित करती हैं। इसके कुछ उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं :—

1—फिराक़ ग़ोरखपुरी : बंदे मातरम्—सरिता (मासिक, दिल्ली) 111 (जनवरी 1955) 94।

2—एन०जी० शब्दे : ऑन सम रिज़ट्ल्स इनवाल्विग लेजांड्री फकंशंसप्रोसीडिंग्स बनारस मैथ० सोसा० (षट्मासिक, लखनऊ) VII-1 न्यू सीरीज (जून 1945) 1-2।

3—वासुदेवशरण : पतंजलि और वाहीक ग्राम-नागरी प्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक) 44 (नवीन संस्करण भाग 20) 3 (कार्तिक संवत् 1996) 235-48।

4—संपूर्णानंद : कामायनी का दार्शनिक तत्त्व-प्रज्ञा (बनारस हिंदी यूनिवर्सिटी जर्नल, षट्मासिक) 1 (1958) 17-25।

5—ग़ोवर्धन शर्मा : जब इंद्र पानी भरता था—साप्ताहिक हिंदुस्तान (नई दिल्ली) 43 (वर्ष 13, 21 जुलाई '63) 21।

पाँचवें उदाहरण में पत्रिका की अवधि बताना आवश्यक नहीं है यह तथ्य तो शीर्षक से स्पष्ट हो जाता है। तीसरे और चौथे में प्रकाशन-स्थान देने की आवश्यकता नहीं है; वह तो पत्रिका के नाम से ही स्पष्ट है। लेकिन दूसरे में प्रकाशन स्थान का उद्धरण आवश्यक है। नाम से लगता है कि प्रकाशन-स्थान बनारस है, वस्तुतः इसका प्रकाशन-स्थान लखनऊ है।

ऊपर के उदाहरणों में अधिकांश पत्रिकाओं के पूरे नाम दिए गए हैं। परंतु कुछ अवस्थाओं में उनको संक्षेप में भी दिया जा सकता है—यदि उनकी मानक संक्षिप्तियाँ स्वीकार कर ली गई हों और संशय के लिए कोई स्थान न हो। उदाहरणके लिए, यदि हम गणित विषयक कोई लेख उद्धृत कर रहे हों, जैसा कि अधोलिखित उदाहरण में, तो उसे हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं—

गणेश प्रसाद-आन थोमेज़ क्राइटेरियन–
बुले० कल० सोसा० (त्रै०) XVIII-1 (मार्च 1957)

किंतु किसी भी अवस्था में शीर्षक को इस प्रकार संक्षिप्त नहीं करना चाहिए कि पाठकों को भ्रम हो जाए। समाचार-पत्रों से उद्धरण देते समय अंक की प्रकाशन-तिथि निश्चित रूप से देनी चाहिए, जैसे—

1—द : नार्दन इंडिया पत्रिका—इलाहाबाद (20 मार्च, 1960) 7।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2—आज—बनारस, रविवासरीय संस्करण, (15 अप्रैल, 1962) 3-4।

3—द: स्टेटस्मैन—दिल्ली (जनवरी, 1961) 1।

तीसरे उदाहरण में प्रकाशन स्थान का विशेष महत्त्व है क्योंकि यह समाचार-पत्र दो भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित होता है।

पांडुलिपि-संग्रहों का उद्धरण देते समय शीर्षक तथा स्थान स्पष्ट रूप से होने चाहिएँ, जैसे :—

महात्मा गांधी द्वारा महादेव देसाई—को—महात्मा गांधी के पत्र—नेशनल आर्कीव्स, नई दिल्ली (18 दिसंबर, 1932)।

तत्संबंधी कुछ अन्य बातों का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

(1) उद्धरण—छोटे उद्धरणों को, जो तीन पंक्तियों से अधिक लंबे न हों, रचनाकाय में ही उल्टे कामा के भीतर देना चाहिए। लंबे उद्धरणों को अलग अनुच्छेद-खंडों में देना चाहिए जो इकहरी स्थानांतरवाली पंक्तियों में छपे हों। इन्हें उद्धरण के विशेष चिह्नों में देने की आवश्यकता नहीं। अवांतर उद्धरणों को इकहरे उल्टे कामा चिह्नों में देना चाहिए।

रिक्त स्थानों को तीन बिंदुओं से सूचित करना चाहिए। जब रिक्त स्थान के उपरांत वाक्य समाप्त हो तो वहाँ चौथा बिंदु भी लगाना चाहिए, जैसे:—

यह जो कल्पना के गढ़े हुए रूप-जगत् का व्यापार है वह तब तक हमारी दृष्टि को——

न वहाँ धरती होगी, न गगन, न पानी, न पवन, न तिथि, न वार———

(2) तिथियों को लिखने का प्रचलित ढंग "16 नवंबर, 1959" है, 16 वाँ नवंबर अथवा नवंबर 16, 1959 नहीं। वास्तव में, यदि संदेह की आशा न रहे तो 1959 को, 59 ही लिखना चाहिए।

आइए, इसकी परीक्षा एक उदाहरण से करें। हमें रामचंद्र शुक्ल के चिंतामणि भाग 1 के एक ही पृष्ठ २३७ का निर्देश करना है। शुक्ल जी की पुस्तकों की सूची में इसका छठा स्थान है और लेखक-सूची में शुक्ल जी का स्थान ग्यारहवाँ है। अब हमें संदर्भ को इस प्रकार लिखना चाहिए ——

11–रामचंद्र शुक्ल —(I)
................—(II)
................——(VI) चिंतामणि, पहला भाग, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग (1962) 237।

वास्तव में, ऐसा उद्धरण तो लेख के अंत में दिया जाएगा। लेख के बीच में जहाँ इसका निर्देशन करना हो वहाँ तो हमें केवल——

रामचंद्र शुक्ल 11 (IV)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ही लिखना चाहिए। एक दूसरी अवस्था की कल्पना कीजिए। मान लीजिए कि हमें लेख के विभिन्न पृष्ठों पर एक ही पुस्तक के पृष्ठों 111, 235, 269 का निर्देश करना है। ऐसी स्थिति में पुस्तक-शीर्षक को लेख के अंत में इस प्रकार दिया जाएगा—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंतामणि पहला भाग—इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग (1962)।

पुस्तक पृष्ठों का उल्लेख यहाँ नहीं करेंगे, लेख में ही पृष्ठों का निर्देशन इस प्रकार करेंगे :—

रामचंद्र शुक्ल 11 (VI) 111

रामचंद्र शुक्ल 11 (VI) 235

रामचंद्र शुक्ल 11 (VI) 269

इन सामान्य नियमों का पूर्ण अथवा आंशिक पालन विभिन्न अवस्थाओं में आवश्यकतानुसार करना उपर्युक्त होगा। यदि किसी लेख में दो या तीन उद्धरणों का निर्देश करना हो और उनमें से किसी की पुनरावृत्ति अपेक्षित न हो तो उपर्युक्त प्रवृत्ति के आचरण की विशेष आवश्यकता नहीं, वहाँ तो पाद-टिप्पणियों में ही इनका समावेश सर्वोत्तम होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

76248
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा और व्याकरण

दो आर्य भाषाएं : खत्ति और मित्तान्नि

मध्यप्रदेश की लोक भाषाएं

राजस्थानी की कुछ विशेष ध्वनियां

मलयालम की भाषा-शास्त्रीय गवेषणा

यूरोपीय भाषाओं और भारत की आर्यभाषाओं का अभिन्न संबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ो आर्य भाषाएँ :

खत्ति और मित्तान्नि

—हेमचंद्र जोशी

डॉक्टर बेड्रिश ह्रात्सनी बोगाजकोई के शिलालेखों में वर्षों माथापच्ची करके ब निम्न वाक्य पढ़ पाया : **नु—नन्द—अन् एज्जतेनि, वदरम् अकुवतेनि** तो सके ज्ञान-चक्षु में अपूर्व ज्योति चमकी। ये शब्द उसे ऐसे लगे गोया उसने कभी न रखे हों। **नु** अँग्रेज़ी **नौ** (Now), जर्मन **नु** (Nu), लैटिन **नोवो** ौर संस्कृत **नव** 'नया' और प्राचीन समय में 'अब' के अर्थ में हैं। **नंद** 'आनंद ने वाला भोजन' तथा **नंदम्** 'भोजन को' किंतु अब तमाशा देखिए कि यह **नंद** ब किसी आर्य-भाषा में इस अर्थ में नहीं रह गया है। संस्कृत **आनंद** का अर्थ रा सुख' है। उक्त खत्ति भाषा का **नंद** शब्द बताता है कि कभी वैदिक और स्कृत भाषाओं के प्रचलन के समय इसका एक अर्थ 'भोजन' भी रहा होगा। आज भी जब किसी को भोजन कराया जाता है तो पेट अच्छी तरह भर जाने पर उसके ंत में थोड़ा बढ़िया मिष्ठान्न लेने के लिए कहा जाता है तो भोजन करने वाला हता है कि आनंद हो गया। इस वाक्य में **नंद** शब्द के अर्थ का पुराना रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। **अम्** संस्कृत भाषा में **राम्-म, नर-म** की भाँति आया है। और ुनिए **एज्जतेनी** अँग्रेज़ी ईट (Eat) और संस्कृत **अश्** और **अद्** धातु से संबंधित है। इसका अर्थ है 'हम खायँ, खाते हैं, **वादरम** में अँग्रेज़ी **वाटर** स्पष्ट रूप से आया है। 'अकुवतेनि' में पानी के लिए लैटिन शब्द **अक्वा** की छाप है। इसलिए सारे वाक्य का अर्थ निकला : 'अब हम लोग भोजन खाते हैं और पानी पीते हैं'। इससे यह भी निदान निकाला गया कि उक्त वाक्य आर्य भाषा का है और बोगाजकोई में अवश्य कभी बहुत पुराने समय में आर्य रहते होंगे।

भाषा-विज्ञान के एक रहस्य का समाधान भी सीखिए कि फ़ारसी में इस खत्ति भाषा के **नंद** शब्द की परंपरा चली आ रही है। फ़ारसी शब्द **नान-खताई** उस छोटी-सी गोल टिकिया को कहते हैं जो फारस में खताई चीन से गई। वहाँ के बिस्कुटों को ईरानवासियों ने अपनाया और उसका नाम रखा **नान-खताई** अर्थात् 'चीन का बिस्कुट'। इससे यह रहस्य खुला कि कभी-कभी भाषा की कड़ियाँ टूट जाती हैं और अकस्मात् किसी अति प्राचीन भाषा में शब्द का मूल-रूप मिलता है। खत्ति भाषा से प्राचीन संस्कृत

4—2CHD/65 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

के कई छिपे हुए अति गूढ़ नियमों का भी रहस्य उद्घाटित होता है । उदाहरणार्थ संस्कृत में कई शब्द ऐसे हैं जिनके अंत में न और र दोनों ही अक्षर मिलते हैं, जैसे **विद्वान** और उसका दूसरा रूप **विदुर, धन्वन** 'मारने वाली रेतीली भूमि' (मरुस्थल) और उसका दूसरा रूप '**धनुर**' 'मारने वाला एक अस्त्र' आदि-आदि । इस प्रकार के शब्दों की खत्ति भाषा में भरमार है। एक दूसरा नियम देखिए—ऋग्वेद में एक शब्द **देवत्त** है । इस शब्द का अर्थ कभी न खुलता यदि शाकल्य अपने पद-पाठ में इसका स्पष्ट रूप **देवदत्त** न दे देते । वेद में आदि आर्य भाषा अथवा उसकी पहली संतान खत्ति भाषा का व्यवहार काम में न लाते। खत्ति भाषा और स्वभावतः स्वयं आदि आर्य भाषा में भी अक्षरों का उच्चारण स्पष्ट रूप से नहीं मालूम होता, क्योंकि स्वयं खत्ति भाषा में **क** और **ग** का उच्चारण प्रायः एक-सा ही था। **त** तथा **द** की भी ऐसी ही दशा थी और **प** और **ब** प्रायः एक ही प्रकार से उच्चारित होते थे । अक्षरों के उच्चारण में कुछ इसी प्रकार की अस्पष्टता या घिसावट और मिलावट होने के कारण ऋग्वेद में यह देवत्त शब्द आ गया जिसके व्याकरण के नियम का खुलासा इस प्रकार होता है कि **देवत्त** के **त्त** में **द** और दो **त्त** एक साथ मिला दिए गए । यहाँ **त** और **द** की प्रायःएक ही ध्वनि मान ली गई है । जिसमें द+त्+त=त्त हो गए। इस प्रकार जब यूरोपीय महापंडितों ने खत्ति भाषा पढ़ी तो भारोपीय भाषाओं के व्याकरण तथा शब्द-निर्माण शास्त्र के कुछ रहस्य खुले । अब देखिए एज्ज़तेनि अँग्रेज़ी ईट (Eat) 'खाना', 'भोजन करना' का खत्ति रूप है । संस्कृत में इसका रूप हो गया अस्नामि, अद्मि । यह संस्कृत **अस्** और **अद्** धातु से संबंधित शब्द है। इसका अर्थ है 'अब भोजन खाते हैं' ।

पुरानी इंजील में लिखा है **खेत्थ** कनान का पुत्र था । कनान में यहूदी रहते थे । इसलिए कुछ समय तक बोगाज़गोई में, जो टर्की की राजधानी अंकोरा से प्रायः अस्सी मील की दूरी पर है इन खत्तियों की एक लाइब्रेरी तेरह सौ पुस्तकों की मिली है जिससे साफ़-साफ़ पता चल गया है कि आर्य जाति किसी समय पश्चिमी एशिया में राज करती थी । इन खत्तियों के भाषा के शब्द आर्य हैं, पर उनमें से अधिकांश यूरोपीय आर्य हैं, किंतु खत्ति क्षत्रिय या खत्री जाति के राष्ट्र के पास ही प्राग्भारतीय आर्य भाषा-भाषी भी रहते थे । यह बात भी उक्त लाइब्रेरी से मालूम होती है ।

प्राग्भारतीय आर्यों में घोड़ों को साधने की कला प्रायः पूर्णता को पहुँच चुकी थी । ऋग्वेद में दधिक्रावा नामक घोड़े को इतनी तारीफ़ की गई है कि शायद ही इतिहास में उसका जोड़ मिले । महाभारत तथा पौराणिक काल में नल और नकुल अश्व-शिक्षणशास्त्र में पारंगत थे । स्वयं भगवान कृष्ण इस कला के बहुत बड़े विशेषज्ञ माने गए हैं । उन्होंने अर्जुन का सारथ्य किया था । ठीक इनके टक्कर का एक घोड़ा साधने वाला किक्कुलि इन खत्तियों का गुरु था । बोगाज़-कोई में प्राप्त पुस्तकालय में अश्वशास्त्र पर किक्कुलि का लिखा हुआ एक ग्रंथ भी मिला है । इसके शब्द भारतीय आर्य-भाषा के हैं । यह किक्कुलि मित्तान्नि देश से गया था । यह मित्तान्नि हमारे वैदिक मितान्नि का पूर्व रूप है । ये मित्ताणि देशवासी भी आर्य थे । किक्कुलि की भाषा भारतीय आर्य है, इस तथ्य का पता यों चलता है कि उसने 'एक वर्तन्न', 'द्विवर्तन्न' आदि शब्दों का व्यवहार किया है। यूरोपीय आर्य भाषाओं में **एक** के लिए **वन** तथा तत्समान शब्द व्यवहृत होते हैं । 'एक' **ए** से निकला है जो **अयं** का अनुस्वाररहित रूप है । **वन** ग्रीक ओई-नोस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

nos) से निकला है जिसमें ओई (oi) ग्रीक ए का रूप है; किंतु
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लि ने एकवर्तन्न ... एक वर्तन या घोड़े का एक फेरा लिखा है जो साफ़ ीय आर्य शब्द है। दो को खत्ति भाषा में **तुवइ** या **दुवइ** कहते हैं, द्विवर्तन्न में तीय आर्य शब्द **द्वि** है। इसके अतिरिक्त **वसनश्**, **पदं**, **पदइ** 'पाद या पाँव', 'न:=हमें', **यश्** 'य:=जो' आदि बहुत से शब्द भारतीय हैं।

वैदिक देवता इंद्र, नासत्य, मित्र और वरुण इन मितान्नियों के देवता थे। न्नियों ने खत्तियों से संधि की। इस संधि में देवताओं की शपथ दिलवाई है। इंद्र का एक पुराना नाम मित्राणियों की भाषा में **इनर** मिलता है। **वरुण** पुराना नाम **अरुण** भी है। **उषा** भी प्राग्भारतीयों की देवी थी। किंतु सिंह-ली मातृमूर्ति का सबसे महान महत्व था। होम, हेरोडोटस आदि यूनानी कों ने बताया है कि खत्तियों में वीर नारियाँ युद्ध-क्षेत्र में अपने करतब ाती थीं। सिंहद्वार की प्रथा सबसे पहले खत्तियों ने चलाई। अशोक का आदि रूप भी खत्तियों में मिलता है।

लोकमान्य तिलक का कहना था कि अथर्ववेद में जो जादू टोने के मंत्र नमें **जर्फरी, तुर्फरी** आदि कई शब्द खल्दी भाषा के हैं। यह बात प्रायः सभी ते हैं कि प्रायः डेढ़ हजार वर्ष पहले तक अथर्ववेद की गिनती वेदों में न होती इसलिए वेदों को **त्रयी** अर्थात् तीन वेद कहते थे। खत्तियों की लाइब्रेरी आविष्कार और पठन ने यह साबित कर दिया है कि ऋग्वेद की कुछ बातें केशस या कास्पियन सागर के तट से आई हैं। उदाहरणार्थ यह तथ्य न देने योग्य है कि खत्तियों की ईंट में खुदी पुरानी पुस्तकों में एक कहानी ती है जिसमें गरमी, बरसात आदि ऋतुओं का देवता इलुयंकुश अहि नाम साँप से लड़ता है। इस कथा में इनरश यानी हमारे वेदों का मुख्य देवता भी इलुयंकुश की सहायता में साँप से लड़ने जाता है। ऋग्वेद में मुख्य कथा ही है। इंद्र पानी को रोकने वाले असुर अहि साँप के साथ बार-बार लड़कर उसे त करता है।

खत्ति जाति में क्षत्रियों के गुण थे और वह सख्ती से उचित शासन करना ानती थी। उनकी स्मृति हमारी मनुस्मृति से मिलती है। फिर राज करते ते दंड कम कठोर कर दिए गए। कौटिल्य ने लिखा है—**न तु आर्यस्य दास भावः** र्थात् आर्यों को कोई गुलाम नहीं बना सकता। येसे भाव खत्तियों ने भी प्रकट ए हैं। खत्तियों ने **आर्य** शब्द के स्थान में 'स्वतंत्र पुरुष' लिखा है। ऐसा नहीं कि खत्ति भाषा में यह आर्य शब्द न हो उनके एक राजा का नाम **आर्यश्** था। नु ने आठ प्रकार के विवाह बताए हैं। खत्तियों में तीन-चार प्रकार के विवाह ध माने जाते थे। इनमें गांधर्व, आसुर आदि विवाह प्रचलित थे।

बोगाज़कोई में ईंटों में खुदी खत्तियों की जो तेरह सौ पुस्तकें मिलीं, यूरोप के विद्वान उन्हें पढ़ने के लिए रातदिन एक करने लगे। अंत में उन्हें विजय मिली। पुस्तकें पढ़ी गईं। मिश्र, सीरिया, बैबलिन आदि में खुदे स्तंभ मिले और वे भी पढ़े गए। पता चला कि इस लाइब्रेरी और स्तंभों के रचयिता खत्ति या क्षत्रिय और थे जिन्होंने अपनी स्त्रियाँ भी विरांगनाएँ बना रखी थीं। इस वीर जाति के सामने महाप्रतापी मिश्र को झुकना पड़ा और बैबलिन ने माथा टेक दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मित्तान्नि जाति आर्यों की वह शाखा थी जों आदि-आर्य भूमि को छोड़ कर भारत आ रही थी। इसके साथ ईरानी भाई भी थे जो स्थान और भोजन की कमी के कारण प्राग्भारतीय और प्राग् ईरानी भाई भारत आते समय सीरिया और सीरिया के उत्तर ईरान में पहुँचे, इन दोनों की भाषा आदि-आर्य भूमि में ही एक दूसरे के पास रहने पर भी भिन्न-भिन्न विशेषताओं के कारण एक दूसरे की भाषा से उतनी ही बदल गई जितनी भारत की प्रादेशिक भाषाएँ—सिंधी, हिंदी, बंगाली, मराठी आदि। ये ईरानी लोग **अस्मि** नहीं कह सकते थे, इस कारण **अहमि** कहने लगे। संस्कृत **नर** का उच्चारण ये लोग **नॅरॅं** करने लगे। **आर्य** शब्द को **ऐर्य** कहने लगे आदि आदि। पाठक यह न समझें कि इनका उच्चारण संस्कृत से भिन्न होने के कारण अशुद्ध रहा होगा। ये **माता** को **मादा** कहते थे। शौरसेनी प्राकृत में भी माता का यही रूप है। दूसरी बात यह है कि आदि आर्य भाषा में खत्ति भाषा की भाँति **त** और **द** की ध्वनि प्रायः एक-सी ही थी जो भारत में भी **देवत्त** में एक ही रह गई। हमारे ईरानी भाई वैदिक भाषा को थोड़े भेद से पढ़ते थे। कुछ उच्चारण भेद रह गया। हमारा **स** उनके यहाँ **ह** हो गया। **ह** का **ज** हो गया। जैसे सप्त को वे हप्त कहते थे। **बाहु** को वे **बाजू** कहते थे। **मृग** का उच्चारण वे **मुर्ग** करते थे। मित्तान्नि वाले **स** को **स**, **ह** को **ह**, **ऋ** को **ऋ** ही उच्चारित करते थे। कभी-कभी **रु** भी करते ही होंगे, क्योंकि गुजराती और मराठी **ऋ** का उच्चारण **रु** ही करते थे। वे **ऋण** को **रुण**, **ऋषि** को **रुषि** उच्चारित करते हैं। जो हो मित्तान्नि के भारतीय आर्य थे जो आर्य भूमि छोड़ कर नाना देशों में विजय प्राप्त करके भारत को आ रहे थे। यह बात इनकी भाषा से सिद्ध हो जाती है। जर्मन विद्वान इनको आदि भारतीय कहते हैं। बात यह है कि खत्तियों और मित्तान्नियों के आविष्कार ने भारतीय भाषाओं के कई रहस्य खोले हैं। एक शब्द के विषय में एक बात जो मुझे स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रही है उसका वर्णन भी पढ़िए।

वाल्मीकि ने लिखा है कि रामचंद्र जी का जन्म अयोध्या के राजा दशरथ के घर में हुआ। कभी किसी ने यह विचार नहीं किया कि अयोध्या के राजा का नाम दशरथ क्यों पड़ा? दशरथ का अर्थ यही हो सकता है कि इस राजा के पास दस रथ रहे होंगे। क्या यह किसी बड़े राजा की महान योग्यता का सूचक है कि उसके पास दस अच्छी घोड़ा-गाड़ियाँ हों? दस गाड़ियाँ होना तो कोई बड़ी बात नहीं। इस दशा में अपने पास दसरथ होने से कोई महान राजा नहीं कहा जा सकता। इस कारण दशरथ राजा का यह नाम उनकी महानता का द्योतक नहीं है। इस नाम का रहस्य मित्तान्नि भाषा के एक शब्द से खुलता है। मित्तान्नि भाषा की राजवंशावलि में एक राजा का नाम **तुष-रुद्ध** या **दुष्-रुद्ध** था। दुष्-रुद्ध का अर्थ हुआ 'वह राजा जिसका सामना बड़े-बड़े वीर भी महान कठिनता से कर सकते हैं', अब तमाशा देखिए कि दशरथ राजा के विशाल राष्ट्र का नाम कौशल और अयोध्या था। कौशल का अर्थ है पटुता और अयोध्या का अर्थ है 'वह राष्ट्र जिससे बड़े-बड़े वीर भी युद्ध नहीं कर सकते'। अब दशरथ राजा के नाम का, अयोध्या के उक्त अर्थ के अनुसार, मूल-रूप पढ़ेंगे तो वह **दुष्-रुद्ध** ही होगा। राष्ट्र का नाम है **अयोध्या** अर्थात् जिस पराक्रमी राष्ट्र से कोई युद्ध नहीं कर सकता और स्वभावतः वहाँ के महान प्रतापी राजा का नाम होना चाहिए **दुष्-रुद्ध** अर्थात्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राजा जिसका सामना कोई वीर नहीं कर सकता', शब्दों में ध्वनि परिवर्तन
नियम सदा काम करता है। वेद में एक शब्द है कूर्मिन। यह वास्तव में कर्मिन्
होगा, क्योंकि **कूर्मिन** का वेद में अर्थ है 'परिवेश्रम से कर्म करने वाला'।
कल कूर्मि एक जाति का नाम है। इस शब्द का अर्थ आजकल हम कुछ
समझते। ऋग्वेद में एक प्रत्यय **त्वन्** है जो हिंदी में--**पन** हो गया है।—**पन**
हो गया, यह महान रहस्य है। बात यह हुई होगी कि **व न** को भाषा-अन-
लोग—**त्वन** कहने लगे होंगे। **त्वन** का कभी **त्पन** हुआ होगा और हिंदी
तन हो गया है। बच-पन आदि में यही **-पन** है। अब इसका मूलरूप पह-
ना ही कठिन हो गया है। इसी प्रकार **दुष्-रुद्ध** जनता की ज़बान में घिसते-
ते दशरथ के रूप में परिणत हो गया है। अयोध्या के राजा को तो **दुष्-रुद्ध**
कहना चाहिए, **दशरथ** नहीं। यह रहस्य भी प्राग्भारतीय भारतीयों की
यता से खुला है। अतः वैदिक संस्कृत और हिंदी के व्याकरण और शब्दों
पूरा रूप ज्ञात करने के लिए हमें यूरोपियन विद्वानों को धन्यवाद देना
हिए कि उन्होंने खत्ति और मित्तान्नि भाषाओं का आविष्कार कर हमें उपकृत
या है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यप्रदेश की लोकभाषाएँ

बसंतीलाल बंभ—

लोक-भाषाओं का जन्म धरती से हुआ है। इनमें हमारे देश की मिट्टी की सौंधी-सौंधी सुगंध समाहित हो गई है और विभिन्न जातियों की जीवन प्रणाली; उनके रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, धार्मिक-धारणाएँ एवं सामाजिक-मान्यताएँ सब कुछ मुखरित हो उठे हैं। इनमें पुरुष का अजेय-पौरुष, नारी की करुणामयी-ममत्व-भावना और शिशुओं का-सा सरल, स्वच्छंद, बाल-सुलभ भोलापन भरा पड़ा है। इनमें लोकमंगल की कल्याणकारी भावना से ओत-प्रोत साहित्य का अगाध स्रोत बहता रहता है और हमारे गौरवशाली अतीत की अमूल्य निधियां वर्तमान का सृजनात्मक विकास और भविष्य की असंख्य आशाएँ भरी पड़ी हैं।

लोक-भाषा की इस कोमल, सरल तथा प्रांजल धारा को 'मैथिल कोकिल विद्यापति-देसिल बअना, सब जन मिट्ठी'[1] कहकर उसे अपने सरस सुमधुर एवं मीठे गीतों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं, और जब ये गीत संध्या की धूमिल-वेला में बनों से लौटती हुई गायों के गले में बजने वाली घंटियों के झीने-झीने स्वरों में स्वर मिलाकर समवेत रूप में गाए जाते हैं, तब इनसे असंख्य राग-रागनियों के स्वर फूट पड़ते हैं और अनंत वाद्ययंत्रों की ध्वनियां गुंजित हो उठती हैं।

लोक-भाषाओं का महत्त्व

आधुनिक युग में लोकभाषाओं के महत्त्व का उचित मूल्यांकन करना, उनका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करना तथा उनमें लिखित एवं अलिखित साहित्य की मनोवैज्ञानिक भावभूमि का विश्लेषण करना इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है कि उनमें हमारे लोकजीवन के स्वस्थ शरीर में संचारित होने वाले रक्त का तीव्रतम स्रोत उन्मुक्त गति से प्रवाहित होता रहता है और जनजीवन के सुख-दुख की साँसें उनमें करवटें बदलती रहती हैं।

---

[1]महाकवि विद्यापति विरचित "कीर्तिलता" के प्रथम पल्लव से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-भाषाओं की पुरातन परंपरा का महत्त्व आँकते हुए लोकसाहित्य के सुविख्यात अन्वेषक श्री वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं :—

"जनपदीय अध्ययन की जो आँख है, उसकी ज्योति भाषा-शास्त्र की दृष्टि से कई गुना बढ़ जाती है। भाषा-शास्त्र में रुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए तो जनपदीय अध्ययन 'कल्पवृक्ष' के समान समझना चाहिए। किसान के जीवन की जो विस्तृत शब्दावली है, उसमें वैदिक-काल से लेकर अनेक शताब्दियों के शब्द संचित हैं। हम यदि चाहें तो प्राचीनकाल की ऐसी बहुत-सी शब्दावली का उद्धार कर सकते हैं, जिसका साहित्य में उल्लेख नहीं हुआ।[2]

लोक-भाषाओं में गाए जाने वाले गीतों की सरल, स्वाभाविक तथा अकृत्रिम अभिव्यक्ति का उल्लेख करते हुए फ्रांसिस ग्रूमर का प्रस्तुत कथन कितना समीचीन दीख पड़ता है :—

'लोक-भाषाओं का महत्त्व केवल इसी बात से नहीं है कि उनमें अकृत्रिम काव्य-भावना उपलब्ध होती है। वे परंपरा की भाषा में ही अपनी अभिव्यक्ति नहीं करते प्रत्युत जन-समूह की वाणी द्वारा प्रकाशन करते हैं। उनमें किसी प्रकार की गोपनीयता नहीं पाइ जाती, जो वस्तु जैसी है उसका यथातथ्य रूप में वे वर्णन करते हैं। वे स्वतंत्र हैं तथा खुली हवा की भाँति ताजे हैं। वायु और सूर्य का प्रकाश उनमें खेल करता है।'[3]

इसी कारण सुप्रसिद्ध भाषाविद् ग्रिम ने लोकभाषा व उसमें रचे गए लिखित एवं अलिखित साहित्य की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'जनता का, जनता के लिए रचा गया, जन काव्य'[4] कहा है।

लोक भाषा की ओजस्विता और उनमें घनीभूत भावनाओं से युक्त गीतों के प्राणवान स्वरूप की अन्य शास्त्रीय काव्यों से तुलना करते हुए पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं:—

'एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खंडिताएँ और धीराएँ निछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी हुई होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं। ये अपने आप में परिपूर्ण हैं।[5]

हमारे इतिहास, सभ्यता और संस्कृति के विकास-क्रम का अध्ययन सही रूप से तभी संभव हो सकता है, जब हम अपने देश की विभिन्न लोकभाषाएँ, उनमें उपलब्ध साहित्य तथा उनके व्याकरण आदि का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करलें।

---

[2]पृथ्वी पुत्र, पृष्ठ सं० 55।

[3]एफ०बी०ग्रूमर : 'दी पाप्युलर बैलेड—पृष्ठ सं० 417।

[4]डा० कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका'।

[5]पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी : 'हिंदी साहित्य की भूमिका', पृष्ठ सं० 130।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्रता के पश्चात् देश की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए भाषाओं के आधार पर नवीन प्रांतों की रचना करने के लिए, भारत सरकार ने राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की और आयोग द्वारा प्रस्तुत विवरण के अनुसार शासन ने देश की बिखरी हुई इकाइयों को एक सूत्र में बाँधने के लिए राज्य पुनर्गठन योजना को समस्त देश में क्रियान्वित किया। इसी के फलस्वरूप नवीन मध्य-प्रदेश का उद्भव हुआ। आज इस प्रदेश की नवीन रचना में भूतपूर्व मध्यभारत, भोपाल, विंध्य और महाकौशल राज्यों के विशाल क्षेत्रों को जिनका क्षेत्रफल 171200 वर्गमील तथा जनसंख्या 26100000 है, सम्मिलित किया गया। पूरब में बिहार और उड़ीसा राज्यों की पश्चिमी सीमाओं को स्पर्श करता हुआ, उत्तर में उत्तरप्रदेश की दक्षिणी सीमा से लगा हुआ, पश्चिम में राजस्थान व बंबई राज्यों की पूर्वी-उत्तरी सीमाओं को छूता हुआ तथा दक्षिण म बंबई तथा आंध्र राज्यों की उत्तरी सीमाओं से संलग्न भारत का हृदय-स्थल मध्यप्रदेश जो कि हमारे देश के बड़े राज्यों की क्रम संख्या में दूसरा स्थान रखता है--कई भाषाओं, संस्कृतियों व जातियों की सुपावन संगमभूमि बन गया है। इस प्रदेश में कुल ग्रामों की संख्या 66705 है, जिनमें 22658836 ग्रामीणजन निवास करते हैं। हमें मध्यप्रदेश के जनमानस की अंतर भावनाओं का अध्ययन करने के हेतु यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम हम वहाँ के लोक-जीवन का विभिन्न दृष्टियों से पर्यवेक्षण करें और उनकी लोक-भाषा, लोक साहित्य, लोक-कला, लोक-संस्कृति और लोक-व्यवहार आदि विभिन्न अंगों का सूक्ष्म दृष्टि से मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर उनके जीवन के स्पंदन की यथार्थता पहिचान सकें। आज चाहे हम इन असंख्य ग्रामीण किसानों को असंस्कृत कहते हों, परंतु ये ग्रामीणजन हमारे देश की रीढ़ हैं और इनकी भाषाएँ तथा बोलियाँ 'माँ भारती' की सिद्धिदायिनी बहिनें!

जब हम मध्यप्रदेशीय लोक भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन की प्राचीन परंपरा की ओर दृष्टि डालते हैं, तो बीसवीं सदी के पूर्व हमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिसमें हमारे प्रदेश की लोक भाषाओं का भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से कोई अध्ययन हुआ हो? फिर भी पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे देश में भाषाओं के वैज्ञानिक-अध्ययन की परंपरा का श्रीगणेश किया, उसके फलस्वरूप सन् 1866 में एस० हिस्लप की 'मध्यप्रदेशीय आदिम जातियों से संबंधित सामग्री'[6] के रूप में एक पुस्तिका का प्रकाशन नागपुर से हुआ, किंतु इसमें आदिवासियों की भाषा के संबंध में कोई वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत नहीं की गई। इसके पश्चात् सन् 1909 में सी०ई० ल्यूअर्ड द्वारा एथनॉलाजिकल-सर्वे ऑफ सेंट्रल इंडिया एजेंसी[7] नामक ग्रंथ के एक अंश में भूतपूर्व ग्वालियर, होल्कर व धार राज्यों के आदिवासियों में प्रचलित गीतों को संकलित किया गया, किंतु भाषा संबंधी अध्ययन का इसमें कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। सन् 1911 में डा० ग्रियर्सन ने भारत का भाषा सर्वे[8] नामक

---

[6]डा० कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका' पृष्ठ सं० 306 से उद्धृत।

[7]वही, पृष्ठ सं० 306।

[8]'दि लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया', डा० ग्रियर्सन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विशाल ग्रंथ का निर्माण किया, जिसमें भाषा तत्व के आधार पर आधुनिक भारतीय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आर्य भाषाओं का वर्गीकरण तीन उपशाखाओं में कर, उनके अंतर्गत छः विभिन्न भाषा समुदायों को मान्यता प्रदान की, साथ ही सन् 1911 की जनगणना के आधार पर इन भाषाओं के बोलने वालों की जनसंख्या के आँकड़े भी प्रस्तुत किए। डा० ग्रियर्सन ने भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है[9]

भारतीय आर्य भाषाएं

(1) बाहरी उपशाखा — (2) बीच की उपशाखा — (3) भीतरी उपशाखा

(1) बाहरी उपशाखा

(अ) पश्चिमोत्तरी समुदाय (1 करोड़ 26 लाख)
(1) लहंदा (2) सिंधी

(ब) दक्षिण समुदाय (2 करोड़ 9 लाख)
(1) मराठी

(स) पूर्वी समुदाय (9 करोड़ 56 लाख)
(1) उड़िया (2) बंगाली (3) आसामी (4) बिहारी

(2) बीच की उपशाखा

(अ) बीच का समुदाय (2 करोड़ 26 लाख)
(1) पूर्वी हिंदी

(3) भीतरी उपशाखा

(अ) अंदर का समुदाय (8 करोड़ 23 लाख)
(1) पश्चिमी हिंदी (2) पंजाबी (3) गुजराती (4) भीली (5) खानदेशी (6) राजस्थानी

(ब) पहाड़ी समुदाय (28 लाख)
(1) पूर्वी पहाड़ी या नेपाली (2) बीच की पहाड़ी (3) पश्चिमी पहाड़ी

डा० ग्रियर्सन के उपर्युक्त भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण के पश्चात् श्री शरत्चंद्र राय की सन् 1915 में 'दि आरोन्स ऑफ छोटा नागपुर'[10] तथा आर० व्ही० रसेन एवं श्री हीरालाल ने सन् 1916 में 'दि ट्राईब्स एंड कास्ट्स ऑफ सेन्ट्रल प्राव्हिंस ऑफ इंडिया'[11] की रचना की। इन दोनों ग्रंथों में भी मध्यप्रदेश की लोक-भाषाओं

---

[9] डा० ग्रियर्सन : 'दि लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया की भूमिका' अ० 11, पृष्ठ 120।

[10] डा० कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका' के 'लोक साहित्य संबंधी पठनीय सामग्री' नामक लेख से उद्धृत, पृष्ठ सं० 308।

[11] वही, पृष्ठ संख्या 308।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शास्त्रीय अध्ययन का कोई विस्तृत रूप नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त और ऐसी कोई अन्य प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती, जिससे कि हम अपने प्रदेश की लोक-भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन की आधार-भूमि मानकर भाषा-संबंधी शोधकार्य की दिशा का निर्धारण कर सकें। जहाँ तक वर्तमान मध्यप्रदेश की लोक-भाषाओं के भाषाशास्त्रीय अध्ययन का प्रश्न है--डा० ग्रियर्सन के 'भाषा सर्वे' के अतिरिक्त और अन्य कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। डा० ग्रियर्सन के भाषा सर्वे के अनुसार हम वर्तमान मध्यप्रदेश को लोक-भाषाओं के आधार पर निम्नलिखित सात भागों में विभाजित कर सकते हैं --

मध्यप्रदेश की लोकभाषाएँ

(वर्गीकरण)

(1) मालवी और उसकी उपभाषाएँ, (2) बुंदेली और उसकी उपभाषाएँ, (3) बाघेली और उसकी उपभाषाएँ, (4) छत्तीसगढ़ी और उसकी उपभाषाएँ, (5) आदिवासी और उनकी उपभाषाए, (6) ग्वालियर क्षेत्र का भाषा-समूह--(अ) तवरधारी, (ब) भदावरी, (स) ब्रज (मिश्रित), (द) बुंदेली (मिश्रित)।

(7) अन्य भाषाएँ

(अ) बिखरी हुई भाषाएँ (हिंदी, मराठी व उर्दू),

(ब) जातिगत भाषाएँ, (स) बोलियाँ।

डा० ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वे' में वर्तमान मध्यप्रदेश के तत्कालीन क्षेत्र में, उपरोक्त वर्गीकरण के अंतर्गत आने वाली लगभग लोकभाषाओं, उनकी उपभाषाओं एवं संबंधित बोलियों का उल्लेख किया है, जिनका कुछ महत्वपूर्ण अंश हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :

(1) मालवी और उसकी उपभाषाएँ

(1) प्रामाणिक मालवी अथवा अहीरी (2) होशंगाबादी मालवी (3) बेतूल मालवी (4) निमाड़ी (5) होंक्दवाड़ी या सौंधवाडी (6) डांगेसरी (डांगी) (7) ढोलेवाड़ी (8) भोयारी (9) बनजारी (ब्रिजारी) (10) बेपारी (11) जटकी (जाटकी) (12) रांगड़ी या रजवाड़ी (13) पटवी (14) उजइनी (उज्जेणी) (15) कटियाई [2]

(2) बुंदेली और उसकी उपभाषाएँ

(1) प्रामाणिक बुंदेली अथवा बुंदेलखंडी (2) दक्षिण की अपभ्रंश बुंदेली (3) उत्तर-पूर्वी मिश्रित बुंदेली (4) बाघेली मिश्रित बुंदेली (5) किराड़ी (6) माओली (7) बनाफरी (8) कोष्टी [2] (9) कुंभार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

या कुंहारी (10) लोधी (11) कुंडरी (12) पंवाड़ी (13) राधो-
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बंसी (14) सहेरिया

(3) **बाघेली और उसकी उपभाषाएँ**

(1) प्रामाणिक बाघेली[2] (2) पश्चिमी बाघेली (3) दक्षिणी बाघेली (4) गोंडवानी या मंडलाह (5) कुंडरी[1] (6) जुरार (7) मराड़ी (8) ओझी (9) पोंवाड़ी (10) रेंवाई (11) गोंडानी या गोंद्री (मिश्रित)

(4) **छत्तीसगढ़ी और उसकी उपभाषाएँ**

(1) प्रामाणिक छत्तीसगढ़ी (2) छत्तीसगढ़ी, लारिया या खल्ताही (3) छिंदवाड़ी (4) बेगानी (5) बिंझवाड़ी या बिंझवाली (6) कांकेरी (7) खलोटी (8) लारिया (9) सदरी कोरवाँ (10) सतनामी (11) सुरगूजियाई

(5) **आदिवासी और उनकी उपभाषाएँ (भीली व गोंडी) : भीली व उसकी उपभाषाएँ**

(1) प्रामाणिक भीली भाषा[2] (2) अलीराजपुर की भीली (भिलाड़ी) (3) बड़वानी की भीली (एठवी भिलाड़ी) (4) धार की भीली (5) निमाड़ी भीली (6) रतलामी भीली (7) बारेल (8) कायली (9) भिलाली या भिलाटी (10) नोटी (11) मथवाड़ी (12) पंचाली (13) रानी भीली (14) रनावत————————आदि

गोंडी व उसकी उपभाषाएँ

(1) प्रामाणिक गोंडी (2) भोई (3) बुरगंडी (4) चौरासीकी बोली (5) गट्टू (6) कोई (7) कुटकू (8) मारिया (9) नैंकी[2] (10) परजी (11) पारसी गोंडी (12) राज (13) भुंडारी

(6) **ग्वालियर क्षेत्र का भाषा-समूह**

(1) मिश्रित भाषाओं का समूह

(अ) ब्रज
(ब) बुंदेली
(स) भदावरी } तीनों का मिश्रित स्वरूप

(2) भदावरी (3) जादोबाती (4) सिपाड़ी (5) तवरधारी

(7) **अन्य भाषाएँ**

(अ) बिखरी हुई भाषाएँ (हिंदी, मराठी व उर्दू); (ब, स) जातिगत भाषाएं व बोलियाँ

(1) बागरी या बाड़ी (2) गूजरी (3) सहरिया (4) गवली (5) पारधी (6) कोरकू (7) साँसी साँसिया (8) नाली (9) कुरकू (10) कोरवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(11) मंडारी (12) ओसवाली (13) बनजारी (14) माहेसरी (15) कोर (16) किरसानी (17) खलूटी (18) मारिया (19) भामरी (20) भोई (21) बुरगंडी (22) अगरिया।

डा० ग्रियर्सन के भाषा सर्वे को आज लगभग 50 वर्ष व्यतीत हो चुके। इन 50 वर्षों की दीर्घावधि में कई भाषाओं के रूप, ध्वनि एवं शब्दों में परिवर्तन आए। उनकी उच्चारण पद्धति में स्वरों के उतार-चढ़ाव का भेद उत्पन्न हुआ। इन परिवर्तनों का बहुत कुछ श्रेय वर्तमान युग के आश्चर्यजनक वैज्ञानिक अविष्कारों को भी है। एक युग था, जब आवागमन के साधन इतने सुलभ नहीं थे, कि हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता से जा सकें। यात्रियों को मार्ग में बड़ी कठिनाइयों को सामना करना पड़ता था, परंतु आज बीसवीं सदी के इस वैज्ञानिक युग में जहाँ एक और मनुष्य आकाश लोक में विचर कर सौर-मंडल पर अपना अधिकार जमाने को आतुर हो उठा है, वह मंगलग्रह और चंद्रलोक तक लंबी-लंबी उड़ाने भर रहा है, वहाँ आवागमन के साधनों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए हैं। आज हम न केवल देश के, किंतु संसार के मानव समाज को एक दूसरे के निकट सरलता से ला सकते हैं। इन विकसित साधनों के परिणामस्वरूप, हमें अपने देश की ऐसी कई भाषाओं व जातियों से परिचय प्राप्त हुआ, जिन्हें हम पहले कभी नहीं जानते थे और इन्हीं परिवर्तनों के कारण हमारे इतिहास, साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृति ने सदियों के पश्चात् राष्ट्रीय पुनर्जागरण की भूमिका का नवीन पृष्ठ पलटा। इससे हमारे देश के लोक मानस में वर्ग छूचेतना की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। मध्यप्रदेश भी इससे अछूता न बच सका। इस प्रदेश की लोक-भाषाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा और डा० ग्रियर्सन के भाषा सर्वे के आधार पर हमने अपने प्रदेश की लोक-भाषाओं का जो वर्गीकरण पूर्व में प्रस्तुत किया है उसमें भी परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। यहाँ हम मध्यप्रदेश की लोक-भाषाओं के वर्गीकरण की नवीन रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं :—

मध्यप्रदेश की लोक-भाषाएँ

(1) मालवी और मालवी की उपभाषाएँ :

मालवी भाषा की सीमा और उसके क्षेत्र का विस्तार—दक्षिण में नर्मदा उपत्यकाओं में स्थित निमाड़ के खरगौन व खंडवा जिलों के क्षेत्र तक, पश्चिम में पंचमहल व दोहद की सीमाओं तक, उत्तर-पश्चिम में राजपूताना (मेवाड़, प्रतापगढ व बांसवाड़ा) की प्रारंभिक सीमा तक, उत्तर में कोटा (राजस्थान के क्षेत्र तक) व पूर्व तथा उत्तर पूर्व में बुंदेलखंड तक फैला हुआ है। उक्त सीमाओं के आधार पर मालवी के पाँच प्रकार किए जा सकते हैं :

(1) रांगड़ी या रजवाड़ी (2) सौंधवाड़ी (3) उमठवाड़ी (4) निमाड़ी (दक्षिण मालवी) (5) केंद्रीय मालवी।

उक्त पाँचों प्रकार में कुछ ऐसी सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं जो एक दूसरे के बीच में किसी प्रकार की विभाजन रेखा नहीं खींचती, फिर भी वे सीमांत प्रदेशों के प्रभाव से अछूते नहीं रह पाए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रांगड़ी या रजवाड़ी : झाबुआ, रतलाम, मंदसौर और उज्जैन जिले की उत्तरी-पश्चिमी सीमा के क्षेत्र में बोली जाती है। इस पर राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसमें 'ण' व 'ळ' वर्ण के आधिक्य से कठोरता आ गई है। रतलाम क्षेत्र 'ळ' वर्ण का उच्चारण 'र' करते हैं। मालवी के यां (यहाँ) वां (वहाँ) व को (कहाँ) को 'अठने', 'बठने' व 'कठने' कहकर संबोधित करते हैं।

सौंधवाड़ी : वर्तमान शाजापुर जिले के आगर, सोयत, सुसनेर क्षेत्र में, मंदसौर जिले की गरोठ तहसील व चंबल के आसपास के भागों में बोली जाती है। इसमें 'स' वर्ग को 'ह' तथा 'ब' वर्ण को 'व' बोलने की प्रवृत्ति पाई जाती है जैसे 'सुवागण' को 'हुवागण' व 'बात' को 'वात' कहते हैं। इस पर मेवाड़ी का प्रभाव काफ़ी मात्रा में पड़ा है।

उमठवाड़ी : जिला राजगढ़ के नरसिंहगढ़, खिलचीपुर छापीहेड़ा व सीहोर के उत्तरी क्षेत्र में बोली जाती है। इस पर बुंदेली का स्पष्ट प्रभाव होने के कारण क्रियापद के अंत में 'त' वर्ण का प्रयोग होता है। --जैसे 'लड़त है' (लड़ता है), 'करत है' (करता है), 'हिटी आयो' (निकल आया) आदि।

निमाड़ी : (दक्षिण मालवी)--निमाड़ के खरगौन व खंडवा जिलों में उन्मुक्त रूप से बोली जाती है। इस पर मराठी का स्पष्ट प्रभाव होने के फलस्वरूप भविष्यत् की जो क्रियाएँ हैं वे अपना रूप बदल देती हैं--जैसे 'तख', 'मख' (थारे, म्हारे), 'मारीस' (मैं मारूँगा), 'मारसे' (वह या तू मारेगा)। शब्द के अंतिम वर्ण पर जोर देकर बोलने के कारण भाषा के उच्चारण में कर्कशता आ गई है और इस कर्कशता का कारण भाषा पर मराठी का प्रभाव होता है।

केंद्रीय मालवी : इसे हम प्रामाणिक मालवी भी कह सकते हैं। यह उज्जैन, इंदौर, देवास व धार जिलों के क्षेत्र में बोली जाती है। यह गुजराती भाषा से अधिक प्रभावित है, क्योंकि मालव भूमि में गुजरात से अधिकांश जातियाँ आईं और यहीं बस गईं। गुजराती भाषा के 'की दो', 'ली दो' और 'दी दो' शब्दों का मालवी भाषा मे प्रयोग किया जाना इस बात को और भी प्रमाणित कर देता है।

मालवी बोलने वालों की संख्या 50 लाख से अधिक है। हम यहाँ मालवी भाषा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं :--

लोकोक्तियाँ :

(1) 'जसो धान खाय, वसी अक्कल आय'।
(2) 'मूंको निवालो तो गयो, पछे की कंई आस'।
(3) 'दाणा चारा कुछ नई, ने खुर्रा तीन-तीन बखत'।
(4) 'नवो काथो ने नवो चूनो।'

(2) बुंदेली और बुंदेली की उपभाषाएँ

बुंदेली बुंदेलखंड की बोली है। शुद्ध रूप में यह झाँसी, जालोन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिंदवाडा के कुछ भागों में पाए जाते हैं। बुंदेली बोलने वालों की संख्या 80 लाख के लगभग है। मध्यकाल में बुंदेलखंड साहित्य का प्रसिद्ध केंद्र रहा है। उक्त काल में रचे गए साहित्य की भाषा पर बुंदेली बोली का प्रभाव अधिक पाया जाता है। बुंदेली बोली और ब्रजभाषा में बहुत कुछ साम्य है। वैसे यदि देखा जाए तो ब्रज, बुंदेली तथा कन्नौजी एक ही बोली के तीन रूप हैं। कई स्थानों पर बुंदेली बघेली, बुंदेली ब्रज तथा बुंदेली कन्नौजी के मिश्रित रूप मिलते हैं। बुंदेली की प्रमुख प्रवृत्ति 'श' को 'स', 'व' को 'ब', तथा 'ल' को 'र' के उच्चारण से संबोधित करती है। उदाहरणार्थ : 1. मुंशी–मुंसी, 2. देश–देस, 3. चावल–चाबर, 4. विदेश–विदेस 5. डालना–डारना, 6. गला–गरा। बुंदेली में कर्ण-कटु वर्णों का अभाव है, वे 'ड़' वर्ण के स्थान पर 'र' का प्रयोग करते हैं–भीड़-भीर तथा इसकी प्रमुख प्रवृत्ति 'ओ'-कार बहुला है–खागओ, बिकगओ, या खैय्यो, जैय्यो, रैय्यो आदि। बुंदेली में द्वित्व वर्णों का प्रयोग नहीं होता, परंतु मदावरी व तवरधारी में यही भाषा अपना रूप बदल देती है, जैसे बुंदेली के 'खरच' शब्द को मदावरी का तवरधारी में 'खच्च' हलदी को 'हद्द', द्रव्य को 'दव्व' कहकर पुकारते हैं। यहाँ हम बुंदेलखंडी का एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

'मुंसी जाए, पटवारी आए, तेसिलदार आए,
लेंहगा बिक गयो,
लुगरा बिक गयो,
तकनी अंगिया बिक गई,
घर-घर की फजीयत हो गई,'

(3) बाघेली और बघेली की उपभाषाएँ

पूर्वी हिंदी में अवधी, बघेली व छत्तीसगढ़ी का समावेश होता है। इनका निम्नलिखित पाँच प्रांतों में प्रचलन है : उत्तरप्रदेश, बघेलखंड, बुंदेलखंड, छोटा नागपुर व मध्यप्रदेश।

अवधी भाषा के दक्षिण में बघेली का क्षेत्र है। इसका केंद्र रीवां राज्य है, किंतु यह मध्यप्रदेश के दमोह, जबलपुर, मांडला तथा बालाघाट के ज़िलों तक फैली हुई है। बघेली बोलने वालों की संख्या लगभग 50 लाख है, किंतु छिंदवाड़ा, सिवनी, शहडोल, बेतूल व मंडला जिलों में बाघेली बुंदेली, बाघेली-गोंडी के मिश्रित रूप पाए जाते हैं। जिस तरह बुंदेलखंड के कवियों ने ब्रजभाषा को अपना रक्खा था, उसी तरह रीवां के दरबार में बघेली कविगण साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का आदर करते थे। बघेली की प्रमुख प्रवृत्तियाँ वस्तुत: बुंदेली से कोई विशेष अंतर नहीं रखतीं। बघेली में भूतकाल की क्रिया में 'ते' अथवा 'तैं' वर्ण जोड़ दिया जाता है, किंतु अवधी में इसका अभाव है। इसमे 'औकार' बहुला प्रवृत्ति भी पाई जाती है। उदाहरणार्थ–'देखि हौं', 'खाई हौं' 'जाई हौं',–आदि शब्दों का प्रयोग बाघेली में होता है, जबकि अवधी में 'देखियो', 'खाईयो' का प्रयोग होता है। अवधी का 'जवाब' व 'जवान' बाघेली – 'जबाब' व 'जबान' के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इससे कहीं-कहीं अर्थ-वैभिन्य उपस्थित हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जवान-युवक (अवधि), जबान-जीभ (बाघेली) आदि। यहाँ बघेली भाषा का एक उद्धरण प्रस्तुत है

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गौरी के जुबनवा हुमकन लागे,
जैसे हिरनिया के सींग।'

(4) छत्तीसगढ़ी व छत्तीसगढ़ी की उपभाषाएँ

छत्तीसगढ़ी मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग के छः जिलों के विशाल क्षेत्र में प्रचलित है, जिनमें कुछ भागों में उसके ऐसे रूप जो आदिवासी भाषाओं (गोंडी) से मिश्रित पाए जाते हैं। छत्तीसगढ़ी को 'लरिया' या 'खल्ताही' भी कहते हैं। यह मध्य-प्रांत में रायपुर और विलासपुर के जिलों तथा कांकेर, नंदगांव, खेरागढ़, रायगढ़, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर तथा जशपुर आदि राज्यों में भिन्न-भिन्न रूपों में बोली जाती है। छत्तीसगढ़ी बोलने वालों की संख्या लगभग 38 लाख है, जो डेनमार्क की जनसंख्या के बिल्कुल बराबर है। मिश्रित रूपों को मिला कर बोलने वालों की संख्या 40 लाख के लगभग हो जाती है। छत्तीसगढ़ी में पुराना साहित्य बिल्कुल नहीं है। कुछ बाजारू किताबें अवश्य छपी हैं।[12]

छत्तीसगढ़ी बोली की व्याकरण संबंधी प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं।

(1) संज्ञा तथा सवनाम के अंत में निश्चयात्मक अर्थ के लिए 'हर' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार मालवी में 'ज' वर्ण का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ--मालवी में 'यांज', 'वांज', शब्दों में जिस प्रकार 'ज' वर्ण का प्रयोग तथा 'नाना होण' या 'हुण' शब्द संज्ञा के बहुवचन का द्योतक बन जाना है, ठीक उसी प्रकार छत्तीसगढ़ी में भी--'छोट हर', 'मोट हर' तथा 'छोकरा हर'-- छोटे ही, बड़े ही तथा छोकरे ही--अर्थ का द्योतक बन जाता है। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ी में बहुवचन के परसर्ग के स्थान पर 'मन' शब्द को जोड़ देने से उसके बहुवचन का बोध होने लगता है, जैसे --'घेंटा' 'सूअर', 'घेंटामन-सूअरों' आदि। जहाँ तक कारकों में परिवर्तन का संबंध है छत्तीसगढ़ी में करण कारक का परसर्ग 'से' के स्थान पर 'ले' या 'ला' का प्रयोग किया जाता है।

(5) ग्वालियर की भाषाएँ और उनका समूह

ग्वालियर क्षेत्र में प्रचलित लोकभाषाओं में प्रमुख रूप से मदावरी, तवरधारी, बुंदेली और व्रज के मिश्रित रूप मिलते हैं। सहरिया जाति की भाषा शिवपुरी के आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित है। इन भाषाओं की सीमा और विस्तार जिला शिवपुरी, ग्वालियर, भिंड व मुरैना के क्षेत्रों में है। जिला दतिया, गुना व भेलसा में बुंदेली भाषा का एक विशेष रूप ही देखने को मिलता है। इन भाषाओं में भी 'ओ' कार बहुत प्रवृत्ति पाई जाती है--जैसे (भदावरी) 'कडगओ'—समय निकल गया, 'गद्दापरर जाएगो'—गढ़ा भर जाएगा, आदि। संज्ञा के अंत में 'न' वर्ण लगाने से बहुवचन का द्योतन होता है। जैसे--'जनन' सभी लोगों के लिए,

[12]डा० धीरेंद्र वर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

‘सबन’—सभी ने, आदि। ग्वालियर समूह की भिंड व मुरैनां जिलों की भाषाएँ, जो कि बुंदेली का ही एक रूप है अपनी [illegible] का प्रभाव लिए हुए हैं। इनमें पौरुष का ओज दीख पड़ता है। भदावरी व तवरधारी बोलियों में द्वित्व वर्णों का प्रयोग होता है और यही एक ऐसा गुण है, जिससे बुंदेलखंड की बुंदेली व इन भाषाओं के बीच में सीमा-रेखा खींची जा सकती है। जैसे—‘हलदी’ को ‘हद्द’, ‘खर्च’ को ‘खच्च’ और ‘द्रव्य’ को ‘दब्ब’ आदि उच्चारण भदावरी स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। फिर भी इस आंशिक परिवर्तन से भाषा में अर्थ भेद उपस्थित नहीं होता, जो मालवी भाषा का एक विशेष गुण है। जैसे मालवी में ‘काल’ को ‘आने वाला कल’ कहते हैं, किंतु इसी शब्द को रांगडी (मालवी की एक उपभाषा) में ‘ल’ के स्थान पर वर्ण के परिवर्तन से अर्थांतर भी उत्पन्न हो जाता है—जैसे काळ—मौत, यमदूत आदि। यहाँ हम मिश्रित भदावरी के एक लोक गीत का अंश उद्धृत कर रहे हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धांधू-ऊदल संवाद (लोक-गाथा)

धाँधू— ‘भैय्या मिल लिए,
मिलनो होयतो भैय्या मिल लिए,
फेरि मिलनु नहीं होय,
अब के बिछुरै जाने फिरि कब मिले,
करतार करे सो होय।’

(6) भीली और भीली की उपभाषाएँ

विंध्याचल की उत्तुंग-शृंग-मालाएँ और सतपुड़ा की सात पर्तों का जाल हमारे प्रदेश में फैला हुआ है, इनमें ऐसी जातियाँ निवास करती हैं, जिनके माँस पेशियों से कसे हुए, ऊँचे-पूरे, भारी-भरकम, काले-कलूटे और विवस्त्र शरीर, जिनकी शक्तिशाली भुजाएँ, जो रात दिन एक हाथ पर ज़िंदगी और दूसरे पर मौत को लिए, बीहड़ वनों, घने जंगलों और गहरी कंदराओं में घूमा करते हैं, जिनके एक हाथ में तीर और दूसरे में कमान हमेशा सधी रहती है—ऐसी जातियों को आदिवासी जातियों के नाम से पुकारा जाता है। हमारे इस विशाल प्रदेश के विस्तृत-भू-भाग पर सिहावा पहाड़, मैकाव पर्वत, महादेव पर्वत, मांधाता की श्रेणियाँ और अरावली के काले-काले भयावने पर्वतों की गुफाओं में तथा इनके ढलानों पर घास-फूस की झोपड़ियों में निवास करने वाली ये आदिम जातियाँ भील, भिलालें, गोंड, आदि नामों से संबोधित की जाती हैं। भील जाति मध्यभारत क्षेत्र के अलीराजपुर, झाबुआ तथा निमाड़ जिले के पश्चिमी भाग में निवास करती हैं। इनकी भाषा को ‘भीली’ नाम से संबोधित किया जाता है। देश तथा काल के कारण भील जाति कई शाखाओं और उपशाखाओं में विभाजित हो गई हैं। उपर्युक्त क्षेत्रों में से जो भाग गुजरात के निकट आ गया है वहाँ के भील-भिलालों की बोलियों पर गुजराती भाषा का प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार जो भाग राजस्थान तथा खानदेश की सीमाओं से लगा हुआ है वहाँ वे राजस्थानी और मराठी भाषाओं से प्रभावित हुई हैं। वैसे तो भीलों की विभिन्न भाषाओं में मूलतः कोई अंतर प्रतीत नहीं होता, किंतु जहाँ तक इनके उच्चारण का प्रश्न है? भील-भिलाले उच्चारण में ‘ओ’

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...का अत्याधिक प्रयोग करते हैं, जिससे ये भाषाएँ मालवी, भीली, निमाड़ी, ...लाली, सौंघवाड़ी आदि से अपने आपको पृथक कर लेती हैं और यही कारण है ...भीली भाषा के उच्चारण में स्वराघात की प्रवृत्ति प्रमुख स्थान रखती है।

(1) भीली, भिलाड़ी भाषा में 'अ' का उच्चारण 'ओ' ही किया जाता है।

...दाहरणार्थ :

भीली-भिलाली	हिंदी
मोकड़ो	मकोड़ा
लोकड़ी	लकड़ी
दोगड़ू	दगगड़, पत्थर
नोणन्द	ननन्द
घोणी	घणी

(2) कहीं-कहीं 'ओ' का उच्चारण 'अ' भी हो जाता है।

पूरया	पोरया
पूसल्यो	पोसल्या

(3) कभी-कभी यह अंतर ध्वनि संबंधी भी होता है :

नीम	लीम

(4) शब्दों में माधुर्य उत्पन्न करने, तथा उच्चारण की सुविधा के लिए सामान्यत: प्रत्येक आदि वर्ण के अंत में लीं, ला, डा, डी, की——को जोड़ दिया जाता है। इस प्रयत्न लाघव से वर्ण——कर्कश शब्द भी सुकोमल एवं मनभाए बन जाते हैं :——

उदाहरणार्थ :

ऊँट	ऊँटड़ो	मोटली	ओछला
ईंट	ईंटड़ी	मोटकी	ओछली
कच्चा	काचली	नाकी	खाटली
आधी	आदली	छोटली	माटली

(7) गोंडी या गोंडवानी व उसकी उपभाषाएँ

मध्यप्रदेश का पूर्वी दक्षिणी भाग गोंडवाना के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में गोंड जाति का काफ़ी बिखराव है। उड़ीसा में स्थित——पूर्वीघाट की श्रेणियों का कुछ भाग, बादामी की पर्वतमालाएँ और मैकल की पहाड़ियों में ये आदिम-जातियाँ निवास करती हैं। ये लोग संयुक्त रूप से कहीं भी नहीं रहते। या तो बिखरे-बिखरे या फिर घूमते-फिरते अपनी जीवन-नौका चलाते रहते हैं।

अकेले मध्य प्रांत में ही उनकी संख्या तेईस लाख है। मध्यभारत, बिहार और उड़ीसा में उनकी आबादी दो लाख पैंतीस हजार के लगभग पाई जाती है। इसके अतिरिक्त आसाम, मद्रास और हैदराबाद के इलाकों में भी अल्पसंख्यक जातियों म उनकी गणना की जाती है। लगभग पचास हज़ार प्रवासी गोंड आसाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चाय के बगीचों में मजदूरी करते हैं। मध्यप्रांत के दो मुख्य भूभागों में गोंडों की बस्तियाँ अधिक हैं। इस प्रांत के ठीक बीचोंबीच सतपुड़ा का पठार, जिसमें छिंदवाड़ा, बेतूल, सिवनी और मंडला के ज़िले तथा आसपास के प्रदेश सम्मिलित हैं, गोंडों की प्रथम आवास-भूमि कहा जा सकता है, जहाँ विश्रृंखलित पर्वतश्रेणियों और जंगलों में वे अधिकता से पाए जाते हैं। दूसरा भूभाग अधिक विस्तृत और दुगम पहाड़ियों से घिरा हुआ है। और छत्तीसगढ़ के मैदानों से दक्षिण-पश्चिम की ओर गोदावरी की तलहटी तक फैला हुआ है। उसमें छत्तीसगढ़ के तीनों ज़िले, बस्तर और कांकेर रियासतें तथा चाँदा का अधिक भाग मिला हुआ है। यहाँ गोंडों की संख्या अधिक है। मध्यप्रांत का यह बहुत बड़ा इलाका पुराने समय में 'गोंडवाना' के नाम से प्रसिद्ध था और यहाँ एक जमाने में गोंड लोगों की अनेक संपन्न रियासतें थीं।

गोंड नाम की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी पता नहीं चलता। अनुमानतः यह नाम संभवतः हिंदुओं और मुसलमानों का रखा हुआ है, क्योंकि गोंड लोग अपने को 'कोईतूर' या 'कोई' कहते हैं। विद्वानों के कथनानुसार, प्राचीन काल में गोंड और खोंध, दक्षिण भारत की एक ही जाति थी, किंतु उत्तर की ओर जो लोग बढ़ आए वे गोंड कहलाने लगे और दक्षिण के लोग खोंध के नाम से प्रसिद्ध हुए। गोंड लोगों की प्राचीन आख्यायिकाएँ भी इसी वक्तव्य का समर्थन करती हैं।

गोंडों का देश 'गोंडवाना' कहलाया और उनकी अनेक व्यावसायिक शाखाएँ हो गईं। पेशे के हिसाब से उनके नाम पड़ गए, जैसे अगरिया (लुहार), वैगा (झाड़-फूंक करने वाला), परधान (पुरोहित), सोलाहा (बढ़ई), कोयलाभूती (नर्तक और वेश्यावृत्ति करने वाले) आदि। कालांतर में अन्य जातियों के लोग भी उनमें मिल गए। बस्तर के रहने वाले परजा जाति के लोग असली गोंड हैं। झाड़ी तैलंग लोग गोंड और हिंदुओं के मिश्रण से उत्पन्न हुए। हिंदू और द्रविड़ जातियों के मिश्रण से उत्पन्न हुए। हिंदू और द्रविड़ जातियों के संसर्ग से गोंडों की संख्या बहुत बढ़ गई, परंतु उनकी दो मुख्य शाखाएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हुईं—एक तो राजगोंड, दूसरी खटोला। राजगोंड राजपूतों और गोंडों के मिश्रण से बने और खटोला बने गोंडों और अन्य निम्न जातियों के संसर्ग से।[13]

गोंडों की समस्त जाति की कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ समान हैं नाटा कद, गठीला बदन, चिपटी नाक, मोटे होठं, खड़े बाल, और काला-रंग उनकी जातीय विशेषता के परिचायक हैं। पुरुष सिर घुटाए रहते हैं और चोटी रखते हैं। स्त्रियाँ अपने चेहरे और टाँगों पर गोदना गोदाती हैं।[14]

---

[13] ये भी मानव हैं: हिंदी विश्वभारती प्रकाशन, लखनऊ के 'गोंड भारतवर्ष की सबसे प्राचीन जाति' नामक लेख के पृष्ठ सं० 123 व 126।

[14] ये भी मानव हैं: हिंदी विश्वभारती प्रकाशन, लखनऊ के 'गोंड भारतवर्ष की सबसे प्राचीन जाति' नामक लेख के पृष्ठ क्र० 126।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यप्रदेश के इस विस्तृत क्षेत्र में कुल बड़े नगरों की संख्या 202 है। इन शहरों में अन्य प्रादेशिक भाषा के स्थान पर हिंदी (खड़ी बोली) का काफ़ी प्रचलन है। इंदौर, उज्जैन, जबलपुर, भोपाल, रतलाम, सागर आदि ऐसे विशाल नगर हैं जहाँ हिंदी भाषा बोली जाती है। हमारे नवीन प्रदेश का क्षेत्र विस्तार इतना फैला हुआ है कि इस राज्य में प्राचीन हिंदी के पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों प्रकार चलते हैं।

पूर्वी हिंदी का क्षेत्र पश्चिमी हिंदी के पूर्व में पड़ता है। व्याकरण संबंधी अधिकांश बातों में यह पश्चिमी हिंदी से संबंधित है किंतु कुछ विशेष लक्षण पूर्वी समुदाय की भाषाओं के भी मिलते हैं। पूर्वी हिंदी भाषा की दो मुख्य बोलियाँ हैं:—अवधी-बोली व छत्तीसगढ़ी। अवधी को कोसली के नाम से भी संबोधित करते हैं, क्योंकि अवध का दूसरा नाम कोसल भी कहा गया है। इसकी एक दूसरी बोली ब्रजभाषा, पूर्वी हिंदी की बोली अवधी के साथ कुछ काल पूर्व तक साहित्य के क्षेत्र में वर्तमान खड़ीबोली हिंदी का स्थान लिए हुए थी। इन दो बोलियों के अतिरिक्त पश्चिमी हिंदी में और भी कई बोलियाँ सम्मिलित हैं किंतु साहित्य की दृष्टि से ये विशेष ध्यान देने योग्य नहीं हैं। उत्तर मध्यभारत का वर्तमान साहित्य खड़ीबोली हिंदी में ही लिखा जा रहा है। पढ़े-लिखे मुसलमानों में उर्दू का प्रचार है।[15]

पश्चिमी हिंदी को प्राचीन काल से मध्य देश की प्रमुख भाषा कहा गया है। मेरठ व बिजनौर के निकट बोली जाने वाली पश्चिमी हिंदी का ही एक रूप खड़ी बोली से वर्तमान साहित्यक हिंदी व उर्दू की उत्पत्ति हुई है।

मराठी : दक्षिण में महाराष्ट्री अपभ्रंश की पुत्री दक्षिणी मराठी है। यह बंबई प्रांत में पूना के चारों ओर व बरार प्रांत तथा मध्यप्रांत के दक्षिण के नागपुर आदि चार ज़िलों में बोली जाती है। आज के मध्यप्रदेश की सीमाएँ उक्त चार ज़िले नहीं रहे किंतु सीमावर्ती भागों में मराठी के कई रूप मिलते हैं। कुछ भाषाओं पर तो मराठी का प्रभाव स्पष्टतः दीख पड़ता है। 'मराठी प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी व छापी जाती है। नित्य के व्यवहार में 'मोड़ी' लिपि का व्यवहार होता है। इसका आविष्कार महाराज शिवाजी (1627–80) के सुप्रसिद्ध मंत्री बालाजी अवाजी ने किया था। मराठी का साहित्य विस्तीर्ण, लोकप्रिय तथा प्राचीन है।'[16]

वर्तमान मध्यप्रदेश के क्षेत्र में मराठी भाषा के कई प्रकार पाए जाते हैं—छिंदवाड़ा, चाँदा व बस्तर क्षेत्र के महार लोगों में ढ़ेड़ी या पहाड़ी (मराठी का एक रूप) बोली जाती है। भंडारा, चाँदा, नरसिंहपुर, बालाघाट, रायपुर कांकेर राज्य आदि स्थानों में क्रमशः गोवारी, झाड़ी, कटियाई, मरेटी, कंमारी, नाहरी—(1) आदि बोलियाँ बोली जाती हैं, जो मराठी के विभिन्न प्रकार हैं। बस्तर व छत्तीसगढ़ में भी मराठी का भ्रष्ट रूप 'हलवी' के नाम से मिलता है। उपर्युक्त भाषाओं

---

[15] डॉ० धीरेंद्र वर्मा, 'हिंदी भाषा का इतिहास' पृष्ठ सं० 56।
[16] डॉ० धीरेंद्र वर्मा : 'हिंदी भाषा का इतिहास', पृष्ठ सं० 58।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

में से अत्यधिक भाषाएँ बिखरी-बिखरी-सी हैं जो केवल जाति विशेष की सीमाओं में बंधकर ही रह गई हैं और आज इनमें से कई बोलियाँ हैं, जो लुप्त होती जा रही हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन भाषाओं की मूल प्रवृत्तियाँ हिंदी और मराठी भाषा के प्रामाणिक स्वरूपों से मिलती-जुलती हैं।

(10) विभिन्न जातिगत भाषाएं और अन्य बोलियाँ

मध्यप्रदेश की लोक भाषाओं के उपर्युक्त विश्लेषण के अतिरिक्त संपूर्ण प्रदेश में कुछ ऐसी बोलियाँ भी हैं, जो या तो जाति विशेष से संबंध रखती हैं या फिर प्रदेश के विभिन्न भागों में बिखरी पड़ी हैं। इन भाषाओं के नाम जाति विशेष के नामों से संबंध रखते हैं—किसी जाति की कोई भाषा—बरगुंडों की 'बरगुंडी', गूजरों की 'गुर्जरी', बागरी की 'बागड़ी', कुलमी की 'कुरमी', बनजारों की 'बनजारी', कोरकू की 'कुरकू', ओसवालों की 'ओसवाली' और राज लोगों की 'राज' आदि। इसी प्रकार बिखरी हुई भाषाओं में 'साँसी या साँसियाँ', 'तूरीया या तुरिया', 'ओरिया या ओड़िया', 'राजवाड़ी या रजहाड़ी' माहेश्वरी, कुली, किरसानी—आदि हैं।

इन उपभाषाओं की प्रवृत्तियाँ या तो जिन भाषाओं की ये उपभाषाएँ हैं उनसे मिलती-जुलती हैं या फिर उनसे प्रभावित हैं।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थानी की कुछ विशेष ध्वनियाँ

—सुकनमल माथुर

हिंदी में पाई जाने वाली ध्वनियों के अतिरिक्त राजस्थानी की अपनी कुछ विशेष ध्वनियाँ हैं। राजस्थानी के पठन-पाठन के लिए इनकी जानकारी अत्यंत आवश्यक है। वस्तुतः भाषा का मूल उच्चारण ही है। उच्चारण के लिए ही लिपि का उपयोग होता है।

राजस्थानी में 'ळ' की ध्वनि काफ़ी पुरानी है किंतु लिपिमाला के अंतर्गत इसका उल्लेख 'ल' के रूप में ही किया जाता रहा है। सर्वप्रथम पं० रामकर्ण आसोपा ने अपने मारवाड़ी व्याकरण में 'ल' के नीचे बिंदी लगाकर इस ध्वनि का अलग से उल्लेख किया है। मध्यकालीन राजस्थानी के कुछ ग्रंथों में भी 'ळ' का प्रयोग हुआ है। ल एवं 'ळ' की ध्वनि में पर्याप्त अंतर है। 'ल' पार्श्विक अल्प-प्राण सघोष वर्त्स्य ध्वनि है किंतु 'ळ' पार्श्विक अल्पप्राण मूर्धन्य व्यंजन है।

राजस्थानी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी यह ध्वनि पाई जाती है। पंजाबी की गुरमुखी लिपि में 'ळ' के लिए वर्ण नहीं है यद्यपि पंजाबी भाषा में भी ल की ध्वनि मौजूद है। तमिल में भी ळ की ध्वनि पाई जाती है। दक्षिण के शिलालेखों में इसका प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। वेदों में भी इसका प्रयोग हुआ है किंतु बाद के संस्कृत साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता। प्राकृत में 'ळ' की ध्वनि है,[1] जो संभवतः वेदों से आई मालूम देती है। मराठी में तो इसका प्रयोग खूब हुआ है जनसाधारण इसे मराठी का ल ही मान बैठे हैं।

राजस्थानी में ल एवं ळ इन दोनों ध्वनियों का प्रयोग होता है। यहाँ कुछ ऐसे शब्दों का उल्लेख करना उचित होगा, जिनमें केवल इन ध्वनियों के उलट-फेर से ही शब्दों के अर्थ में भारी अंतर हो जाता है :—

कालो	–	पागल	काळो	–	काले रंग का
पालो	–	झड़बेरी के पत्ते	पाळो	–	पैदल

[1]–प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—मू० ले० पिशैल अनु० हेमचंद्र जोशी, पैरा 260।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

काल	—	कल	काळ	—	यम, मृत्यु
माल	—	संपत्ति	माळ	—	अरहट की चरखी पर घूमने वाली जल-पात्रों की माला
बोलो	—	बोलिए	बोळो	—	बधिर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'व' की ध्वनि भी राजस्थानी की अपनी विशेषता है। यह ध्वनि अन्य किसी भारतीय भाषा में नहीं पाई जाती। राजस्थानी में 'व' एवं 'व़' दोनों का प्रयोग हुआ है। दोनों ही दंत्योष्ठ्य संघर्षी ध्वनियाँ हैं किंतु 'व' अपूर्ण घोष है तथा 'व़' पूर्ण घोष है। इनके अंतर का थोड़ा बहुत आभास फ–फ़, क–क़ से मिल सकता है। राजस्थानी के 'व़' एवं 'व' के मध्य अंतर के संबंध में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं। श्री नरोत्तम स्वामी के अनुसार व का उच्चारण अँग्रेज़ी के 'डब्ल्यू' (w) और 'व़' का अँग्रेज़ी के 'वी' (v) के समान है।[1] किंतु डा० ग्रियर्सन 'व़' की वास्तविक ध्वनि न तो डब्ल्यू (w) में मानते हैं और न वी (v) में। वे इसे इन दोनों के बीच की ध्वनि मानते हैं।[2] डा० चाटुर्ज्या 'व' और 'व़' की दो ध्वनियाँ स्वीकार नहीं करते।[3] श्री मोतीलाल मिनारिया ने श्री नरोत्तम स्वामी के ही मत का समर्थन किया है।[4]

'व' एवं 'व़' की ध्वनि में अंतर तो है ही। दोनों दंतोष्ठ्य हैं। 'व' में दाँत होठों के नज़दीक जरूर जाते हैं, किंतु होंठों का स्पर्श नहीं करते। नज़दीक जाते हुए ही वे वायु निकालते रहते हैं। इसमें वायु अवरुद्ध नहीं होती किंतु 'व़' में वायु तनिक अवरुद्ध होकर अपेक्षाकृत अधिक वेग से निःसृत होती है। दोनों के प्रयोग से होने वाला अर्थभेद उल्लेखनीय है :—

वार	—	दिन, प्रहार	व़ार	—	सहायतार्थ पीछा करना
वीर	—	बहादुर	व़ीर	—	रवानगी, चल पड़ने का भाव
वात	—	वायु	व़ात	—	कहानी, कथा

यह खेद का विषय है कि 'राजस्थानी व्याकरण एवं राजस्थानी सबद कोस' आदि ग्रंथों में भी जहाँ इस ध्वनि-भेद को स्वीकार किया गया है वहाँ प्रयोग में इन ध्वनियों को एक मानकर ही लिखा गया है।

कुछ लोगों ने राजस्थानी में 'स' एवं 'स़' की ध्वनि में भी भेद माना है एवं 'स' को 'स़' का महाप्राण कहा है। इसके पीछे वही प्रवृत्ति काम करती है जिसके अनुसार महाप्राण ध्वनियों को ह-युक्त, तथा अल्पप्राण ध्वनियों को ह-रहित कहा

---

1 'राजस्थान रा दूहा' भाग–1 श्री नरोत्तम स्वामी, पृष्ठ 4।

2 लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया—खंड IX पृष्ठ 5।

3 डॉ० सहल द्वारा संपादित 'वीर सतसई' की भूमिका पृष्ठ 109।

4 राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ 32।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लिखा जाता है । अर्थात ख क्+ह (kh), या क=ख—ह । यह मत भ्रामक
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
। 'स' वर्त्स्य संघर्षी अघोष ध्वनि है । संघर्षी ध्वनियाँ प्रायः सभी महाप्राण
ी हैं क्योंकि उनमें वायु के शक्तिशाली प्रवाह की आवश्यकता पड़ती है ।

'स़' का प्रयोग पश्चिमी राजस्थानी में एक आम बात है । किंतु 'ळ' एवं 'व'
ध्वनियों के प्रयोग एवं 'स़' के प्रयोग में अंतर है । राजस्थानी में 'ल' और 'ळ',
और 'व़' अलग-अलग ध्वनियाँ हैं उनका प्रयोग निश्चित है तथा एक के स्थान
दूसरे के प्रयोग से अर्थ में अंतर हो जाता है किंतु 'स' और 'स़' के मध्य ऐसा
ई अंतर नहीं है । पश्चिमी राजस्थानी में प्रायः 'स' के स्थान पर 'स़' का ही
ोग किया जाता है :—

स़ाथी, स़ाल, स़ोरौ, सि़नान आदि ।

स़ की ध्वनि अंततोगत्वा 'ह' के रूप में 'स' के परिवर्तन की भूमिका है । पश्चिमी
जस्थानी में तो 'स' का परिवर्तन 'ह' के रूप में हो गया है किंतु लिखावट में
ी उसे स्वीकार नहीं किया गया है । चूँकि ऐसे परिवर्तन में 'ह' की ध्वनि अत्यंत
र्बल होती है । अतः इसे 'स़' के रूप में लिखा जा रहा है । वस्तुतः 'स़' की कोई
लग ध्वनि राजस्थानी में नहीं है । भविष्य में 'ह' के रूप में इस परिवर्तन को
वीकार करना होगा ।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयालम की भाषाशास्त्रीय गवेषणा

वेल्लायणि अर्जुनन

मलयालम् भाषा, साहित्य की सभी धाराओं से संपुष्ट होने पर भी भाषा-गवेषणा-शाखा के क्षेत्र में उसकी काफी अभिनंदनीय प्रगति दिखाई नहीं देती। अमरीका, ब्रिटेन आदि पाश्चात्य राज्यों में जो नए ढंग के भाषाशास्त्रीय तत्वों का विकास होता जाता है उनके अनुसार मलयालम में भी आजकल कुछ काम किया गया है। लेकिन बहुत पहले ही पौर्वात्य प्रणाली में भाषा संबंधी नाना प्रकार का अध्ययन हो चुका है। 14 वीं सदी का "लीलातिलकम्" इसका उत्तम उदाहरण है। मलायलम पर तमिल और संस्कृत भाषाओं का जो सुदृढ़ प्रभाव पड़ा है उसका विद्वत्तापूर्ण अध्ययन 'लीलातिलकम्' में मिलता है। इसके ग्रंथकार का नाम अज्ञात है। आट्टूर कृष्ण पिष्पारोटी, शूरनाट्टू कुम्मन पिल्लै और इलंकुलम कुंजन पिल्ले जैसे केरल के प्रकांड पंडितों ने इस ग्रंथ का विश्लेषण कर व्यक्त किया है कि यह मलयालम का सबसे पहला भाषा-शास्त्र ग्रंथ है। इसमें रस, अलंकार और व्याकरण का भी अच्छा अध्ययन मिलता है।

वस्तुत: मलयालम में भाषा विज्ञान संबंधी अध्ययन का उद्घाटन डा० गुंडर्ट ने किया है। डा० गुंडर्ट एक जर्मन पादरी थे जो केरल में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए आए थे। वे महान भाषा शास्त्री भी थे। उन्होंने पच्चीस साल तक केरल में रह कर मलयालम भाषा का सम्यक् अध्ययन किया और पंद्रह से ज्यादा ग्रंथ लिखे। गुंडर्ट की कृतियों में 'मलयालम भाषा का व्याकरण' (A Grammar of the Malyalam language—1868)—1872 और मलयालम इंग्लिश डिक्शनरी (Malyalam-English Dictionary) विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। अपनी 'मलयालम इंग्लिश डिक्शनरी' में उन्होंने जो भूमिका लिखी है, वह आधुनिक भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक पद्धति का अच्छा नमूना है। मलयालम भाषा के उद्भव और विकास पर उन्होंने उक्त लेख में काफी प्रकाश डाला है। उनका व्याकरण ग्रंथ भी साधारण ढंग का नहीं है। उस में वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषा विज्ञान की झलक स्फुट रूप में दिखाई देती है। इन दोनों ग्रंथों के द्वारा उन्होंने मलयालम में आधुनिक भाषाविज्ञान की नींव डाली है और अपने अनुगामियों के लिए रास्ता सुगम बना दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० गुंडर्ट के बाद करीब पचास साल तक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण काम नहीं हुआ। लेकिन, जब प्रोफेसर ए० आर० राजराज वर्मा का केरलपाणिनीयम्' (1917) प्रकाशित हो गया तब भाषा-तत्त्व वेत्ताओं के बीच में एक नव जागृति और स्फूर्ति हो उठी। प्रो० ए० आर० का 'केरलपाणिनीयम्' मलयालम का एक व्याकरण ग्रंथ है। ग्रंथकार ने ग्रंथ के आरंभ में जो विस्तृत और विवेचनापूर्ण पीठिका लिखी है उसमें मलयालम भाषा के उद्गम और परिणाम का विशद तथा सूक्ष्म निरीक्षण प्राप्त होता है। यद्यपि अण्णोंस्पादरी, अंजलो फ्रांसिस्, पौलिनोस् पादरी आदि विदेशी पादरियों तथा कोवुण्णी नेटुंगाटि (केरल कौमुदि) शेष गिरि प्रभु (व्याकरण मित्रम्–1904) आदि मलयालियों ने पहले ही मलयालम में व्याकरण ग्रंथ लिखे थे, किंतु फिर भी प्रो० वर्मा की रचना पद्धति विशिष्ट, नूतन और वैज्ञानिक थी। इस कृति के द्वारा प्रो० वर्मा ने ऐतिहासिक और वर्णनात्मक सिद्धांतों की कसौटी पर मलयालम भाषा को कसकर अपना नवीन मत भाषाशास्त्रियों के सामने रखा है। द्रविड़ भाषा विज्ञान के हर विद्यार्थी को ये सामग्रियाँ आज भी अमूल्य हैं।

प्रो० एल० वी० रामस्वामी अय्यर ने मलयालम के भाषा शास्त्र के अध्ययन को बहुत आगे बढ़ाया। प्रो० अय्यर तमिल, मलायलम और अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाया था। उनके लिखे हुए सत्तर से अधिक भाषा वज्ञानिक निबंध भारत और विदेश की पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। मलयालम तथा तमिल के रूप-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान, ध्वनि-विज्ञान और शब्द-विज्ञान पर उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण काम किया है, वह सर्वथा श्लाघनीय है।

प्रो० अय्यर के अनुगामी के रूप में डा० गोदवर्मा सामने आते हैं। डा० गोदवर्मा ने अपने नवीन सिद्धांतों के द्वारा केरल के अनेक विद्वानों को भाषा-शास्त्र की ओर आकृष्ट किया। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की प्रक्रिया को आधार मानकर मलयालम में आर्य-भाषाओं के आगत शब्दों के (Indo-Aryan Loans-Words in Malyalam) संबंध में उन्होंने गवेषणा की। उसके फलस्वरूप मलयालम में भाषा-विज्ञान की शाखा बहुत विकसित हो गई। मलयालम में आर्य भाषाओं से आए हुए सारे शब्दों के उद्भव, विकास और प्रभाव का विशद और विस्तृत विश्लेषण इस ग्रंथ में मिलता है। लंदन विश्वविद्यालय ने आपको इस पर पी०एच० डी० की उपाधि प्रदान की। 'केरल भाषा विज्ञानीयम्' उनका दूसरा ग्रंथ है जिसमें सामान्य भाषा विज्ञान और द्रविड़ भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है। बोलियों, मुहावरों, कहावतों और उपचार भाषाओं पर भी उन्होंने कई उपयोगी निबंध लिखे हैं।

वर्तमान काल के मलयाली भाषा शास्त्रियों में प्रो० इलंकुलम कुंजन पिल्लै का नाम प्रमुख है। प्रो० पिल्लै ने मलयालम भाषा-विज्ञान को बड़ा योगदान दिया है। उनके 'केरल भाषायुटे विकास परिणामंगल्' (केरल की भाषा के विकास और परिणाम) नाम ग्रंथ ने पूर्व भाषाशास्त्रियों के कई सिद्धांतों को तोड़ मरोड़ा गया है। शिला-लेखो और ताम्रपट्टियों के आधार पर प्रो० पिल्लै ने स्पष्ट किया है कि मलयालम तमिल से विकसित नहीं, बल्कि द्रविड़ परिवार की स्वतंत्र सदस्य है। लीलातिलकम् पर लिखी हुई व्याख्या और प्राक्कथन भी कई जटिल प्रश्नों पर नया प्रकाश डालने में पर्याप्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० ए० चंद्रशेखर की 'एवल्यूशन ऑफ मलयालम (Evolution of Malyalam) पी० एच० डी० की थीसिस है। डा० चंद्रशेखर (आज वे दिल्ली विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान विभाग में रीडर हैं) का यह गवेषणात्मक ग्रंथ एक नए ढंग पर लिखा हुआ है। नौ अध्यायों में प्रगल्भ ग्रंथकार ने मलयालम के ध्वनिविज्ञान (Phonology) और रूप विज्ञान (Morphology) का विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण किया है।

इस ग्रंथ में 13वीं सदी से लेकर 17वीं सदी तक की मलयालम भाषा के स्वरूप का अध्ययन 34 ताम्रपट्टों और शिलालेखों के आधार पर किया गया है। प्राचीन भाषा के नमूने दिखाने के लिए विद्वान् लेखक ने 7000 शब्दों का भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है।

डा० के० एम० जोर्ज का 'रामचरितम्' और प्राचीन मलयालम (Ramacharitam and Early Malyalam) दूसरा उल्लेखनीय ग्रंथ है। डा० जोर्ज ने रामचरितम् की भाषा के आधार पर मलयालम की प्राचीनता तथा उसके व्यक्तित्व का गवेषणात्मक अन्वेषण किया है। इस ग्रंथ के पहले खंड में मलयालम की उत्पत्ति की चर्चा भी पांडित्यपूर्ण ढंग से की गई है। डा० चंद्रशेखर और डा० जोर्ज के ग्रंथ मलयालम भाषा-विज्ञान के लिए विशेष कर द्रविड़ भाषाशास्त्र के लिए अमूल्य भेंट हैं।

डा० वासुदेवन नपूतिरिप्पाटु और डा० के० एन० एषुत्तच्छन् का शोध-प्रबंध भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं नपूतिरिप्पाटु के प्रबंध में मलयालम के आगत शब्दों का (Loan Words in Malyalam) शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें लेखक ने ऐसे भारतीय और विदेशी शब्दों का विशद् विवरण दिया है जो कई वर्षों से मलयालम में स्थायी रूप से अपना डेरा डाले हुए हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का जो अनुवाद ('भाषा कौटलीयम्') ग्यारहवीं सदी में तमिल मिश्रित प्राचीन मलयालम में हुआ था उसका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन है डा० एषुत्तच्छन् का शोध-प्रबंध।

एटमरत्तु सेबास्त्यन्, डा० एल० ए० रविवर्मा, शूरनाटु कुंजन पिल्लै, ए० सी० चाक्को, डा० एस० के नायर, डा० कुंचण्णि राजा, डा० पी० के० नारायण पिल्लै, डा० राघवन पिल्लै, वी० सी० बालकृष्णन् आदि भाषा शास्त्रियों ने भी इस दिशा में अभिनंदनीय प्रयत्न किए हैं। सेबास्तयन् का 'भाषाशास्त्रम्', डा० रविवर्मा का 'आर्यद्राविड़भाषकलुटे परस्परबंधतंम्' (आर्य द्रविड़ भाषाओं का पारस्परिक सबंध), ए० सी० चाक्को के 'पाणिनीय प्रद्योतम' और 'चिल शब्दगलुम् अवयुटे रूढ़ार्थगलुम्' (कुछ शब्द और उनके रूढ़ार्थ), डा० एस० के नायर का 'द्राविड़ चोल्लुकल' (द्रविड़ कहावतें), डा० कुंचुण्णि राजा का 'भाषा गवेषणम तथा वी० सी० बालकृष्णन् का 'भाषा विज्ञानम्', मलयालम के नए भाषा वैज्ञानिक ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों ने भाषा विज्ञान के विविध पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। डा० पी० के नारायण पिल्लै, शूरनाट्टू कुंजनपिल्लै, डा० राघवन पिल्लै और एस० गुप्तन नायर के लिखे हुए अनेक भाषा वैज्ञानिक लेख मलयालम की विविध मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। महाकवि उल्लूर, प्रो० पी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शंकरन नंप्यार, आर० नारायण पणिक्कर, ए० कृष्ण पिषारोटि, डा० चेल-
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नाट्टु अच्युतमेनोन आदि [प्रसिद्ध साहित्यकारों ने भी भाषाशास्त्र] के बारे में जो थोड़ा बहुत चिंतन किया है वह उनके प्रमुख प्रबंध संग्रहों में बिखरा पड़ा है।

केरल विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान विभाग हाल ही में खोला गया है। विभागाध्यक्ष डा० वी० ऐ० सुब्रह्मण्यम् हैं। वे द्रविड़ भाषा विज्ञान के धुरंधर विद्वान् हैं। आशा है कि उनके अनेक प्रयत्न के फलस्वरूप मलयालम की भाषा-विज्ञान-शाखा बहुत विकसित हो जाएगी।

भारत और विदेश के भाषा वैज्ञानिक जगत् में जो नवीनतम पद्धतियों के आविष्कार हो रहे हैं उन्हें अपनाने और मलयालम में प्रयुक्त करके अपनी मातृ-भाषा की विकास की ओर ले जाने के लिए आजकल के कुछ भाषा वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोपीय भाषाओं और भारत की आर्य-भाषाओं का अभिन्न संबंध

कन्हैयालाल सहल

यूरोपीय भाषाओं और भारत की आर्य-भाषाओं का परस्पर घनिष्ठ संबंध रहा है। यही कारण है कि भाषा-वैज्ञानिकों ने भारतीय आर्य-भाषाओं और यूरोप की भाषाओं को एक ही वर्ग में रखा जिसे आजकल 'भारोपीय परिवार' का नाम दिया गया है। मैक्समूलर ने तो इस परिवार का नाम 'आर्य' परिवार ही रखा था और इसमें भारत की आर्य-भाषाओं और यूरोप की सब भाषाओं का समावेश किया था। इससे स्पष्ट है कि मैक्समूलर के मस्तिष्क में आर्यों के विस्तार तथा यूरोप और भारत की आर्य-भाषाओं की परस्पर समानता की धारणा इतनी बद्धमूल थी कि उसने भारत और यूरोप किसी का नाम न लेकर केवल आर्य नाम रखना ही उचित समझा। यह सत्य है कि आजकल 'आर्य' शब्द से केवल भारत-ईरानी वर्ग का बोध होता है। इसलिए 'आर्य' शब्द का हम प्रचलित अर्थ में ही प्रयोग करेंगे, उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में मैक्समूलर ने इस शब्द का प्रयोग किया था।

आर्य-भाषाओं का अध्ययन न किया जाए तो यूरोपीय भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन संभव ही नहीं। भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी इस बात को भलीभांति जानते हैं कि यूरोप के विद्वानों ने जब संस्कृत का अध्ययन प्रारंभ किया, तभी सच्चे अर्थ में आधुनिक भाषाविज्ञान का जन्म हुआ।

यदि यूरोपीय भाषाओं का आर्य-भाषाओं के साथ अध्ययन न किया गया होता तो क्या ग्रिम नियम, ग्रासमैन तथा व्हर्नर के उपनियमों की सृष्टि हुई होती? ग्रिम नियम को वैज्ञानिक रूप देने वाला ग्रिम यह मान कर चला है कि ग्रीक, लैटिन तथा संस्कृत में क, त, प, हों तो अँग्रेज़ी आदि भाषाओं में क्रमशः ख, थ, फ हो जाते हैं। इस से भी यह स्पष्ट है कि ग्रीक, लैटिन तथा संस्कृत में परस्पर आश्चर्यजनक समानताएँ हैं। इन समानताओं को देख कर आधुनिक भाषावैज्ञानिकों ने कल्पना की है कि ये तीनों भाषाएँ परस्पर बहिनों के समान हैं और इनकी जन्मदात्री माँ कोई अन्य भाषा है। वह अन्य भाषा कौनसी है, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता किंतु भाषावैज्ञानिकों ने उस पेयरैंट भाषा (Parent language) की भी कल्पना कर ली है और उसका कल्पित नाम रखा है 'ऊर्संप्राख़' (Ursprache)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाषावैज्ञानिकों ने ग्रीक और संस्कृत आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया है।
ों भाषाओं में गठनात्मक समानता है, दोनों संहित भाषाएँ हैं। दोनों में
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विवचन पाया जाता है, दोनों में समास-रचना की अद्भुत शक्ति पाई जाती है।

इसी प्रकार लैटिन, ग्रीक और संस्कृत तीनों समानताओं पर प्रकाश डाला सकता है। किंतु विस्तार-भय से यह संभव नहीं। वाणी के लिए जहां संस्कृत 'वाक्' शब्द है, वहाँ लैटिन में वाणी के लिए शब्द है वोक्स (Vox) *

जैसे ऊपर ग्रिम नियम का उदाहरण दिया गया है उसी प्रकार तालव्यभाव नियम का भी उल्लेख हम यहाँ कर सकते हैं। इस नियम को समझने के लिए ग्रीक, लटिन, संस्कृत आदि शब्दों का सहारा लेना पड़ता है। इससे यह स्पष्ट कि यूरोपीय भाषाओं का अध्ययन बिना आर्य-भाषाओं के अपूर्ण ही रहेगा, अथवा भी कहा जा सकता है कि उनका भाषावैज्ञानिक अध्ययन आर्य-भाषाओं के ना संभव ही नहीं।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने भारतीय आर्य-भाषाओं में आए हुए बाहर शब्दों पर भी विचार किया है। उनके मतानुसार सुरंग शब्द ग्रीक शब्द सिरिक्स' से आया। ज्योतिष के होड़ा, केंद्र आदि शब्द यूनानी से संस्कृत में आए। आधुनिक काल में अँग्रेज़ी पुर्तगाली आदि शब्द भी हमारी भाषाओं में आए। लगभग सौ पुर्तगाली शब्द हमारी भाषाओं में होंगे। अँग्रेज़ी शब्दों का उदाहरण की आवश्यकता नहीं। मेरा कहना यह है कि आर्य-भाषाओं और यूरोपीय भाषाओं के अध्ययन की संगति पारस्परिकता की दृष्टि से देखनी चाहिए। यूरोपीय भाषाओं को आर्य-भाषाओं के साथ मिला कर और आर्य-भाषाओं को यूरोपीय भाषाओं के साथ मिला कर। जहाँ तक आर्य-भाषाओं का संबंध है, वैदिक संस्कृत और अवेस्ता में बड़ा साम्य है। पुरानी फ़ारसी और संस्कृत में जितनी समानता है उतनी और किन्हीं दोनों भाषाओं में संभवतः नहीं।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि ग्रीक आदि यूरोपीय भाषाओं का अध्ययन संस्कृत आदि आर्य-भाषाओं के साथ किया जाए तभी भलीभाँति वैज्ञानिक अध्ययन हो सकता है और यही उचित भी है।

भारोपीय भाषाओं की विशेषताओं का निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया जा सकता है :—

(1) भारोपीय परिवार की भाषाओं का व्याकरणिक संबंध विभक्तियों से व्यक्त किया जाता है। जैसे 'दातरि'। देने वाले में इसमें दा+तर्+ई इन तीन तत्वों को ले सकते हैं। इसी प्रकार ग्रीक 'दोतार्' हैं। विभक्तियाँ शब्द का अविभाज्य अंग होती हैं। उनको शब्द से अलग नहीं किया जा सकता।

(2) इस परिवार की प्रायः सभी भाषाएँ संहित से व्यवहित हो रही हैं। संहित (Synthetic) भाषाएँ वे होती हैं जिनमें विभक्तियों शब्दों का अभिन्न अंग होती हैं। संस्कृत संहित भाषा है किंतु संस्कृत से विकसित होने वाली भाषाएँ

---

*मिलाइए Vox-populi, vox dei (The voice of people is the voice of God. खुदा की जबान, खलक का नक्कारा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

व्यवहित होती गई हैं। हिंदी व्यवहित भाषा है। हिंदी में ने, को, से आदि शब्दों से अलग लिखे जाते हैं। जैसे राम ने श्याम को देखा। 'ने' तथा 'को' भाषा विज्ञान की शब्दावली में 'परसर्ग' कहलाते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) इस परिवार की भाषाओं में विभक्तियाँ प्राय: बहिर्मुखी होती हैं अर्थात् प्रकृति 'मूल शब्द या धातु' के पर में अर्थात् बाद में लगती है। जैसे रामम् 'रामको'। यहाँ पर प्रातिपदिक अथवा मूल शब्द राम के बाद 'अम्' विभक्ति है जो 'राम' के पर में या अंत में है। इसी प्रकार पठति 'पढ़ता है' में पठ् धातु के बाद 'ति' का प्रयोग हुआ है।

'अरबी भाषा' (जो दूसरे परिवार की भाषा है) की विभक्तियाँ अंतर्मुखी हैं अर्थात् इसमें व्याकरणिक संबंध शब्द के भीतर होने वाले रूप-परिवर्तन द्वारा सूचित किए जाते हैं। जैसे क़त्ल एक अरबी धातु है, उससे क़तल 'उसने मारा', क़ातिल 'मारने वाला' आदि शब्द बनते हैं।

(4) इस परिवार की भाषाओं में उपसर्ग होते हैं, पूर्वसर्ग नहीं होते। जैसे संहार, प्रहार, विहार आदि। इन शब्दों में 'सं', 'प्र' और 'वि' उपसर्ग हैं।

(5) इस परिवार की धातुएँ एकाक्षर होती हैं। अर्थात् एक अक्षर और एक या अधिक व्यंजन वाली। जैसे पठ् धातु में 'प' अक्षर है और 'ठ्' व्यंजन है। प में स्वर और व्यंजन दोनों मिले हैं।

(6) इस परिवार की भाषाओं में समास रचना की विशेष शक्ति पाई जाती है। सेमेटिक आदि परिवारों में यह शक्ति नहीं मिलती।

(7) अक्षरावस्थान (Vowel gradation) इस परिवार की अपनी विशेपता है। अक्षरावस्थान के सिद्धांत को पहले पहल जर्मन विद्वानों ने निकाला था। अब्लाउत (Ablaut) (अपश्रुति) उसका जर्मन नाम है। उसके बाद फ्रेंच लोगों ने तथा बाद में अँग्रेज़ों ने इसे अपनाया। इसके तीन रूप होते हैं: वीक, स्ट्रांग और लैंदंड (weak, strong and, lengthened)। नीति, नेता, नायक क्रमश: इनके रूपों के उदाहरण हैं। इसी प्रकार अँग्रेजी के सिंग, सैंग, संग (Sing, Sang, Sung) में भी आई, ए, यू (i, a, u.) इन स्वरों का अवस्थान स्पष्ट है। गुण, वृद्धि, संप्रसारण इनके संस्कृत नामांतर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी और मराठी के कुछ तद्भव शब्द

भर्तृहरि की दृष्टि में अष्टाध्यायी का 'प्रकार' शब्द

तमिल और देवनागरी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन

हिंदी में संस्कृत के प्रचलित शब्द-प्रयोग

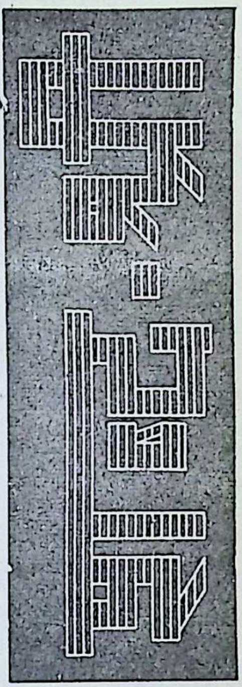

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[हिं]दी और मराठी

[कु]छ तद्भव शब्द

राजनारायण मौर्य

हिंदी और मराठी का मूल स्रोत संस्कृत है पर ई० सन् 1000 के आस-पास [ज]ब कि ये दोनों भाषाएँ अपने आधुनिक अस्तित्व में आईं––दोनों के स्रोतों [में] पर्याप्त अंतर आ चुका था। हम यह निर्देश कर चुके हैं कि संस्कृत के पश्चात् [वि]भिन्न प्राकृतें थीं और प्राकृतों के पश्चात् विभिन्न अपभ्रंश भाषाएँ थीं जिनसे इन [दो]नों भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी और मागधी अपभ्रंश [से] है। हिंदी के दो रूप––पश्चिमी और पूर्वी प्रारंभ से ही हैं। पश्चिमी हिंदी [की] उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से और पूर्वी हिंदी की उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश [से] है। यद्यपि पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की उत्पत्ति दो विभिन्न अपभ्रंशों से [है] परंतु उनकी शब्दावली में बहुत अधिक साम्य है। मराठी भाषा की उत्पत्ति के संबंध [में] मराठी विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई सीधे महाराष्ट्री-प्राकृत से, कोई नागर [अप]भ्रंश से, कोई अर्धमागधी से तो कोई सभी प्राकृत भाषाओं से मिलाकर मराठी की [उ]त्पत्ति मानते हैं। कुछ विदेशी विद्वान और भारतीय भाषाविज्ञानी इस मत पर [अ]धिक जोर देते हैं कि मराठी की उत्पत्ति महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुई है। यादव-[क]ालीन मराठी की प्रकृति और उसकी रचना प्रक्रिया का यदि ठीक से अध्ययन किया [ज]ाए तो मराठी की उत्पत्ति महाराष्ट्री अपभ्रंश से मानना अधिक समीचीन [ज]ान पड़ेगा। यह बात स्वाभाविक है कि मराठी में प्राकृतों के कुछ लक्षण [दि]खाई पड़ते हैं पर यह स्थिति तो सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ [है]। यदि हम प्राकृत के पश्चात् अपभ्रंश की स्थिति स्वीकार करते हैं तो हमें [ह]र हालत में मराठी की उत्पत्ति मराठी अपभ्रंश से ही माननी पड़ेगी।

हिंदी और मराठी, दोनों भाषाओं की शब्द संपत्ति का आधार संस्कृत है। [दो]नों भाषाओं में 90 प्रतिशत से अधिक शब्द संस्कृत से लिए गए हैं। ये संस्कृत के [श]ब्द दो रूपों में लिए गए हैं। प्रथम संस्कृत के शब्दों को उसी रूप में बिना किसी [प]रिवर्तन के और द्वितीय संस्कृत के शब्दों में परिवर्तन करके प्रथम को तत्सम [श]ब्द कहते हैं और द्वितीय को तद्भव। (यद्यपि हिंदी और मराठी में इसी [प्र]कार के अन्य भाषाओं के तत्सम और तद्भव शब्द हैं परंतु इस निबंध का उद्देश्य [के]वल संस्कृत के आए तद्भव शब्दों का अध्ययन है)। दोनों भाषाओं में तद्भव [श]ब्दों का बाहुल्य है। ये तद्भव शब्द ही हिंदी और मराठी की संपत्ति हैं। तद्भव

6—2CHD/65
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शब्दावली जन-भाषा की शब्दावली है जिसे सामान्य जनता ने अपनी उच्चारण-सुविधा, भाव-गरिमा और वातावरण के अनुसार ढाल लिया है। हिंदी और मराठी को यह तद्भव शब्दावली एक लंबी प्रक्रिया को पार करने के पश्चात् इस रूप में आई है। इस काल में हुए ध्वन्यात्मक परिवर्तनों के कारण हिंदी तथा मराठी ही नहीं बल्कि सभी भारतीय आर्यभाषाओं का कायाकल्प हो गया है। ध्वनियों के दो क्षेत्र में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से आधुनिक आर्य-भाषा तक आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। संस्कृत के शब्द प्राकृत में आए और वहाँ विभिन्न रूप धारण करते रहे। अंत में आधुनिक आर्य-भाषाओं में किसी अन्य रूप में आए है संस्कृत का एक शब्द विभिन्न आधुनिक आर्य-भाषाओं में विभिन्न प्रकार से विकसित हुआ है। हम यहाँ यह निर्देश करना चाहते हैं कि संस्कृत के मल शब्द हिंदी और मराठी में किस-किस परिवर्तन के साथ आए हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी और मराठी के तद्भव शब्दों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है कि कहीं स्वरों का आगम है और कहीं स्वरों का लोप। उसी प्रकार व्यंजनों के संबंध में भी है। नीचे हम कुछ उदाहरण स्वरागम के दे रह हैं :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
अर्ध	आधा	अर्धा
अलवण	अलोना	अळणी
क्वधक:	कढा	काढा
क्लृप	काटना	कापणें
कमठ	कांवर	कावर
गर्दभ	गदहा	गाढव
काण	काना	काणा
घोटक	घोडा	घोडा
कज्जल	काजल	काजळ

जैसा कि कहा जा चुका है और ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि स्वरागम की प्रवृत्ति दोनों भाषाओं में एक सी है पर कहीं-कहीं हिंदी में स्वरागम न हो कर केवल मराठी में ही हुआ है। जैसे:—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
काष्ठ	काठ	काठी
गर्जन	गरजना	गाजणें
कातर	कायर	कावरा

जिस प्रकार से दोनों तद्भवों में स्वरागम की प्रवृत्ति पाई जाती है उसी प्रकार स्वर-लोप की भी। नीचे कुछ उदाहरण स्वर-लोप के दिए जा रहे हैं :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
कपित्थ	कैथ	कवठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदली	केला	केळ
चुल्ला	चूल्हा	चूल

स्वर-लोप की यह प्रवृत्ति कहीं-कहीं मराठी में पाई जाती है पर हिंदी में नहीं। जैसे:—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
अंगुष्ठ	अंगूठा	अंगठा
गोपाल	गोआल (ग्वाल)	गवळी
जंबू	जामुन	जांब

स्वर-विपर्यय के भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। स्वर-विपर्यय में दोनों तद्भवों में कहीं साम्य है और कहीं वैषम्य। जैसे :—

संस्कृत		हिंदी	मराठी
जीर्ण	साम्य	जून	जुना
आदित्यवार		अइतवार	ऐतवार
कौपीन	वैषम्य	कौपीन	कुपीण
कर्पास		कपास	कापुस

स्वरों की तरह व्यंजनों का आगम भी दोनों भाषाओं के तद्भवों में पाया जाता है। कहीं-कहीं एक ही व्यंजन दोनों में आता है और कहीं-कहीं दोनों में भिन्न-भिन्न व्यंजन आते हैं। जैसे :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
आर्द्रक	अदरक, आदी	आले
अस्मे	हम	आम्ही
अतसी	अलसी	अळसी
उद्गमन	उगना	उगवणें
उत्पद्यते	उपजना	उपजणें
कील	किल्ली	किल्ली
करपत्र	करोत (आरी)	करवत
कुक्कुर:	कुकुर	कुत्रा
कुठार	कुल्हाड़ी	कुऱ्हाड
गर्गर	गागर	घागर
चर्मकार	चमार	चांभार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जाती है। उदाहरणार्थः—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत	हिंदी	मराठी
कर्पादिका	कौडी	कवडी
कर्तनम्	काटना	कातणें
आरात्रिका	आरती	आरती
अश्वगंध	अस्गंध	आसंद
उद्खल	ओखली	ऊखळ
उज्ज्वल	उजला	उजळ
उपवास	उपवास	उपास
उलूक	उल्लू	उल्लू
यूका	जुंआ	ऊभा
कोकिल	कोईल	कोइल
जामातृ	जवाई	जांवई

यहां मराठी की ळ ध्वनि पर विचार कर लेना आवश्यक है। यह ध्वनि मराठी शब्दों के मध्य या अंत में प्राप्त होती है। मराठी में ळ ध्वनि कब आई यह एक विवादास्पद प्रश्न है। ळ ध्वनि वैदिक संस्कृत में प्राप्त होती है। परंतु आगे संस्कृत में नहीं मिलती। पाली और प्राकृत में ळ ध्वनि मिलती है परंतु वहाँ ड और ल दोनों ध्वनियों के स्थान पर ळ होता पाया गया है। केवल पैशाची प्राकृत में संस्कृत शब्दों के दो स्वरों के मध्य काल प्रायः ळ में परिवर्तित हुआ है। प्राचीन मराठी में भी ळ ध्वनि नहीं मिलती। श्री राजवाडे द्वारा संपादित ज्ञानेश्वरी (ई० स० 1290), पाटण (ई० सं० 1206) और पंढरपुर (ई० स० 1273) के शिलालेखों में केवल ल मिलता है। सन् 1400 ई० की रचना "योगरत्न माला" में ळ अवश्य मिलता है। अतः मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि सन 1400 ई० के आसपास ही मराठी में ळ ध्वनि का प्रादुर्भाव हुआ होगा। कुछ विद्वानों के अनुसार मराठी की उत्पत्ति-काल से ही मराठी में ळ ध्वनि वर्तमान थी। उनका कथन है कि द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव महाराष्ट्र अपभ्रंश पर काफ़ी पड़ा और फलस्वरूप वहाँ ही महाराष्ट्री अपभ्रंश में यह ध्वनि प्राप्त होती है। अतः इसका मराठी में आना द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव है।

संस्कृत शब्दों के दो स्वरों के मध्य में आनेवाला ल मराठी तद्भव में प्रायः ळ हो जाता है परंतु हिंदी में ल ही रहता है। ळ ध्वनि मराठी में, शब्दों के प्रारंभ में कभी भी नहीं प्राप्त होती। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
आलस्य	आलस	आळस
कज़्जलम्	काजल	काजळ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदली	केला	केळ
कोकिल	कोइल	कोइळ, कोकिळ
तालिका	ताली	टाळी
कलिका	कली	कळी
उज्जवल	उजला	उजळ
कलश	कलश	कळश
कुल	कुल	कुळ
रसाल	रसाल	रसाळ
वेला	वेला	वेळ

संस्कृत शब्दों का संयुक्त व्यंजन क्ष मराठी में कहीं ख और कहीं स हो गया है जब कि हिंदी में वह सर्वत्र ख है। जैसे :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
क्षीर	खीर	खीर
क्षीरणी	खिरनी	खिरणी
क्षोड	खोरा	खोड
चक्षते	चखना	चाखणे
चोक्ष	चोखा	चोख
अक्षवाटकः	आखाडा	अखाडा
इक्षु	ऊख	ऊस
कुक्षि	कोख	कूस

संस्कृत से तद्भव रूप बनते समय हिंदी में शब्दों के अंत में जहाँ महाप्राण ध्वनियाँ हैं वहाँ मराठी में अल्पप्राण ध्वनियाँ हैं। उदाहरणार्थ :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
भिक्षा	भीख	भीक
जंघ	जांघ	जांग
स्कंध	कंधा	खांदा
संध्या	सांझ	सांज
भाषा	भाखा	भाक
हस्त	हाथ	हात
एक अर्ध	एकाध	एखादा
स्कंभ	खंभा	खांब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विपरीत शब्दों के प्रारंभ में या मध्य में कहीं-कहीं मराठी में महाप्राण ध्वनियाँ हैं जब कि हिंदी में अल्पप्राण ध्वनियाँ हैं। उदाहरणार्थ :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
अंकन	अंकित करना	आंखणें
एक अर्ध	एकाध	एखादा
कील	कील	खील
कर्कट	केकडा	खेकडा
गर्गर	गागर	घागर

यद्यपि हिंदी और मराठी तद्भवों में वर्णों का परिवर्तन कहीं-कहीं भिन्न ढंग से हुआ है पर वर्ण-विपर्यय के कुछ उदाहरण मराठी में बड़े विचित्र हैं। जैसे :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
केतक	केतकी	केकत
कक्षा	काँख	खांक

संस्कृत के शब्द कभी-कभी हिंदी और मराठी में आने के पश्चात् अपना मूल अर्थ त्याग कर एक नवीन अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। कुछ मराठी तद्भव शब्द यहाँ ऐसे दिए जा रहे हैं जिनके संस्कृत मूल और हिंदी तद्भव में एक ही अर्थ हैं, परंतु मराठी में उनका अर्थ भिन्न है :—

संस्कृत	हिंदी	मराठी
उत्दंड (उदंड)	उद्दंड (शरारती)	उद्दंड (खूब, अधिक)
उतमस	उमसना (गर्मी लगना)	उमसणें (गड़बड़ा जाना)
उक्षमन-उम्ह	ऊब (रुचि न होना)	ऊब (उष्णता)
ऊह+अपोह	ऊहापोह (सोच विचार)	ऊहापोह (बातचीत)
अवगोरणम् (भोजन)	ओगरना (थन में दूध आना)	आगरणें (परोसना)
अलिन्	अलि (भंवरा)	अळ (फल का कीड़ा)
काष्ठ	काठ (लकड़ी)	काठी (छड़ी)
घर्म	घाम (धूप)	घाम (पसीना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तद्भव निर्माण की दृष्टि से हिंदी और मराठी के कुछ और तद्भव द्रष्टव्य हैं। उदाहरणार्थ :—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत	हिंदी	मराठी
अंगार	अंगार	इंगळ
उत्सव	उछाह	उच्छाव
उल्लाल	उलहना	उल्हाळा
कटु	करू, करुआ	कडू
कुटी	कुटियां, कुरही	कुडी
गो	गोरू	गुरें
गोस्वामिन्	गोसाई	गोसावी
चित्रकार	चितेरा	चितारी
शाव (क)	छौना	छावड

यहाँ दोनों भाषाओं के तद्भवों का संकेत मात्र किया गया है। इस पर और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर्तृहरि की दृष्टि में अष्टाध्यायी का 'प्रकार' शब्द

कपिलदेव शास्त्री

संस्कृत-भाषा का 'प्रकार' शब्द सामान्यतः दो अर्थों में व्यवहृत हुआ है—'सादृश्य' तथा 'विशेष' जिसका उदाहरण क्रमशः 'पटुप्रकारो अयं माणवकः' तथा 'श्यामः बहुभिः प्रकारैः भुंक्ते' इन वाक्यों में देखा जा सकता है। संस्कृत-कोषकारों[1] ने भी 'प्रकार' शब्द के विषय में इन्हीं दो अर्थों का निर्देश किया है।

आचार्य पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी के चार सूत्रों में प्रकार शब्द का प्रयोग किया है। पर कहीं भी इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दिया है कि उन्हें इन सूत्रों में सादृश्य अर्थ अभिप्रेत है या विशेष। इसलिए इन सूत्रों में विद्यमान प्रकार शब्द के अर्थ के विषय में भर्तृहरि ने स्पष्टतः दो मतों की सूचना दी है[2]। प्रथम मत के अनुयायी आचार्य सर्वत्र इन चारों सूत्रों में प्रकार का अर्थ सादृश्य करते हैं जबकि दूसरे आचार्य विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रकार शब्द का प्रयोग मानते हैं। भर्तृहरि स्वयं प्रथम पक्ष के अनुयायी तथा प्रबल पोषक हैं। जिसमें प्रकार का अर्थ सर्वत्र सादृश्य माना जाता है।

अर्थ की दृष्टि से इन दोनों मतों में बहुत अधिक अंतर नहीं है क्योंकि सादृश्य में भिन्नता भी अंतर्निहित रहती ही है। जब कभी यह कहा जाएगा कि यह वस्तु उस वस्तु के समान है तो यहाँ यह अर्थ भी अंतर्निहित या सामर्थ्यगम्य होगा ही कि वह वस्तु अन्य वस्तुओं से भिन्न है। उदाहरण के लिए जब यह कहा जाता है कि रामः पंडितसदृशः वर्तते, तो वहाँ यह अर्थ भी छिपा हुआ है कि राम मूर्खों से भिन्न है। इसलिए जब कभी सादृश्य को अभिधेय माना जाएगा तो भिन्नता अर्थ भी सामर्थ्यगम्य होगा ही। अंतर इतना ही है कि सादृश्यवादी विशेष अर्थ को सामर्थ्यगम्य मानता है तथा भेदवादी सादृश्य अर्थ को।

---

1 दे० अमरकोष (3/3/162), शाश्वत्कोष (श्लोक सं० 681)।

2 सादृश्यमेव सर्वत्र प्रकारः कैश्चिद् इष्यते।
भेदेऽपितु प्रकाराख्या कैश्चिद् अभ्युपगम्यते॥
वाक्यपदीय-प्रकीर्ण कांड (श्लोक सं० 6218)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब देखना यह है कि पाणिनि के सूत्रों में जिस 'प्रकार' शब्द का प्रयोग हुआ है वह प्रधानतः किस अर्थ की अभिव्यक्ति कर रहा है। या संबद्ध प्रयोगों की दृष्टि से सादृश्य अर्थ को प्रधान माना जाए या भेद अर्थ को। इस दृष्टि से पहले हम पाणिनि के इन चार सूत्रों के अभिप्राय तथा उदाहरण एवं वृत्तिकारों तथा व्याख्याताओं की सम्मतियाँ प्रस्तुत करते हैं।

पहला सूत्र है—'प्रकार वचने थाल्'[1] जिसका अर्थ है प्रकार अर्थ के द्योतन के लिए किम सर्वनाम तथा बहु शब्द से थाल् प्रत्यय होता है। जैसे—यथा, तथा, सर्वथा इत्यादि।

दूसरा सूत्र है—'प्रकार वचने जातीयर्'[2] इसका अभिप्राय है प्रकार को कहने के लिए प्रातिपदिक शब्दों से 'जातीयर्' प्रत्यय होता है। यथा पटुजातीयः इत्यादि।

तीसरा सूत्र है—'स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्'[3] अर्थात् गणपाठ के स्थूलादि-गण में पठित स्थूल आदि शब्दों से प्रकार अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'कन्' प्रत्यय संयुक्त हुआ करता है। जैसे 'स्थूलकः', 'अणुकः', 'माषकः', 'चंचत्कः', 'बृहत्कः' इत्यादि।

प्रथम दो सूत्रों में प्रकार शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए काशिका के इस अध्याय के लेखक जयादित्य ने लिखा है 'सामान्यस्य विशेषो भेदकः प्रकारः'[4] अर्थात् सामान्य का भेद करने वाला—सामान्य से भिन्नता प्रस्तुत करने वाला जो विशेष है वही यहाँ प्रकार शब्द का अभिप्राय है। तीसरे सूत्र में भी प्रकार शब्द से जयादित्य को भेद ही अभिप्रेत है। इसीलिए उन्होंने यहाँ भी कहा कि 'प्रकारो विशेषः'[5] अर्थात् प्रकार का अर्थ है विशेष। जयादित्य के साथ-साथ जैनेंद्र व्याकरण,[6] शाकटायन व्याकरण तथा हैमव्याकरण[7] के आचार्यों ने भी इन उपर्युक्त प्रसंगों में 'प्रकार' का अर्थ 'भेद' ही माना है।

प्रथम दो सूत्रों की व्याख्या पतंजलि ने नहीं की है। तीसरा सूत्र महाभाष्य में मिलता तो है पर पतंजलि ने सूत्रस्थ प्रकार शब्द के विषय में कुछ भी नहीं कहा है। परंतु 'यथा असादृश्ये' सूत्र की व्याख्या के प्रसंग में पतंजलि ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'प्रकार वचने थाल्' इस सूत्र में 'प्रकार' शब्द का अर्थ 'सादृश्य'[8] है।

---

1 अष्टाध्यायी (5/3/23)
2 वही (5/3/69)
3 वही (5/4/3)
4 काशिका (5/3/23, 69)
5 वही (5/4/3)
6 दे० जैनेंद्र व्याकरण महावृत्ति (4/1/89)
7 दे० हैमव्याकरण लघुप्रक्रियावृत्ति (7/2/102)
8 यथेत्ययं प्रकारवचने थाल। सच सादृश्ये वर्तते महाभाष्य (2/1/7)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह 'प्रकारे गुणवचनस्य'[1] इस सूत्र की व्याख्या के प्रसंग में पतंजलि तो नहीं पर पतंजलि के उत्तराधिकारी व्याख्याता कैय्यट ने स्पष्ट कहा है कि 'प्रकार वचने जातीयर्' 'इत्यत्र सादृश्यं' प्रकारः केषांचिन्मते गृह्यते। अन्येषां तु भेदः प्रकारः'[2] अर्थात् 'प्रकार वचने जातीयर' इस सूत्र में प्रकार शब्द का अर्थ कुछ लोगों के मत से 'सादृश्य' है परंतु दूसरों के विचार में' 'भेद' अर्थ है। यहाँ सादृश्य अर्थवाला मत संभवतः पतंजलि तथा उनके अनुयायियों का है। क्योंकि ये लोग सर्वत्र प्रकार का अर्थ सादृश्य करते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में यह स्पष्ट कहा है कि सर्वत्र प्रकार शब्द के अर्थ के विषय में दो प्रकार का दृष्टिकोण[3] मिलता है जबकि कैय्यट ने उस स्थिति का संकेत केवल एक सूत्र के विषय में किया है।

ऊपर कैय्यट ने जिन दो मतों की ओर संकेत किया है उनका स्पष्टीकरण करते हुए नागेश[4] ने यह कहा है कि सादृश्य अर्थ वामन आदि का है तथा भेद अर्थ जयादित्य आदि का है। ऐतिहासिकों की दृष्टि में लगभग यह निश्चित हो चुका है कि काशिका के प्रथम पाँच अध्यायों के लेखक जयादित्य हैं तथा अंतिम तीन अध्यायों के लेखक वामन[5] हैं। ऊपर जिन सूत्रों को प्रस्तुत किया गया है वे सब पंचम अध्याय के हैं जिनमें जयादित्य ने सर्वत्र भेद अर्थ किया है। वामन चूँकि अंतिम तीन अध्यायों के लेखक हैं जिनमें अष्टम अध्याय में 'प्रकारे गुणवचनस्य'[6] सूत्र आता है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। इस सूत्र की व्याख्या में प्रकार का अर्थ सादृश्य स्वीकार किया गया है। परंतु पाँचवें अध्याय के 'प्रकार वचने जातीयर्'[7] सूत्र की व्याख्या जयादित्य ने लिखी है न कि वामन ने। इसलिए इस सूत्र की व्याख्या में वामन के द्वारा प्रकार शब्द का सादृश्य अर्थ किया गया है। इस तरह की बात कुछ असंगत सी अवश्य प्रतीत हो सकती है पर अष्टम अध्याय के 'प्रकारे गुणवचनस्य' सूत्र की व्याख्या में वामन 'प्रकार' का 'सादृश्य' अर्थ करते हुए सादृश्य, द्योतनार्थ गुणवाचक शब्दों से, विकल्प के रूप में, 'जातीयर्' प्रत्यय की स्थिति भी स्वीकार करता है[8] इससे स्पष्ट है कि इस व्याख्याकार–वामन–को 'प्रकार वचने जातीयर्'[9] इस सूत्र में प्रकार का सादृश्य अर्थ ही अभिमत है। पदमंजरीकार

---

1 अष्टाध्यायी (8/1/12)

2 प्रदीप महाभाष्य (8/1/12)

3 सादृश्यमेव सर्वत्र प्रकारः कैश्चिदिष्यते
भेदेपि तु प्रकाराख्या कैश्चिदभ्युपगम्यते ।।
वाक्यपदीय प्रकीर्णकांड (श्लोक संख्या 618)

4 केषांचित्मतेनेति-वामनादीनामित्यर्थः। अन्येषांत्विति-जयादित्यादीनाम्। उद्योत टीका। महाभाष्य (8/1/12)

5 दे० संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग पं० युधिष्ठिर-मीमांसक (पृ० 332)

6 अष्टाध्यायी (8/1/12)

7 वही (5/3/69)

8 काशिका (8/1/12)

9 अष्टाध्यायी (5/3/69)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरदत्त मिश्र ने वामन की इस स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए यह कहा है कि वामन को यहाँ प्रकार के दोनों––सादृश्य तथा भेद—अर्थ अभिप्रेत हैं।

तीसरे सूत्र 'स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्'[2] के प्रकार के विषय में जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भाष्यकार पतंजलि तो मौन हैं परंतु उनके व्याख्याकार कैय्यट ने, इसी सूत्र पर लिखित कात्यायन का वार्तिक 'चचंद बृहतोरूपसंख्यानम्' से निष्पन्न होने वाले 'चंचत्क' तथा 'बृहत्क' शब्दों के अर्थ पर विचार करते हुए स्पष्ट कहा है कि कन् प्रत्यय सादृश्य का द्योतक[3] है। नागेश, कैय्यट के कथन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखता है कि इस सूत्र में प्रकार शब्द का अभिप्राय सादृश्य[4] है।

यहाँ कैय्यट[5] चंचत्क तथा बृहत्क शब्दों के अर्थ के विषय में कहता है कि गतिशील या चंचल न होते हुए भी मणि इसलिए 'चंचत्कः' शब्द का अभिधेय बनता है कि उसमें से निरंतर ज्योति की किरणें विकीर्ण होती रहती हैं इसलिए वह गतिशील या चंचल सा प्रतीत होता है तथा इसी प्रकार बड़ा न होते हुए भी, निरंतर प्रकाशित एवं दूर तक प्रत्यवभासित होते रहने के कारण एक विशेष मणि ही 'बृहत्कः' शब्द का वाच्य बनता है क्योंकि वह शरीरवाला प्रतीत होता है।

कैय्यट से बहुत पूर्व भर्तृहरि[6] ने अपने प्रकीर्ण कांड के अंत में, 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य है इस अपने अभीष्ट मत की पुष्टि में 'चंचत्कः' शब्द के तीन मणि, मंडूक तथा खद्योत, अर्थों तथा 'बृहत्कः' शब्द के एक––मणि––अर्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है तथा यह बताया है कि मणि जिसमें से प्रभा कि किरणें निरंतर स्फुरित हो रही हैं, मंडूक, जो एक स्थान पर स्थित होकर भी श्वास के भरने तथा निकालने से पेट को फुलाता तथा घटाता रहता है, तथा खद्योत, जो एक क्षण के लिए अपनी जगमगाहट को विकीर्ण करता है तो दूसरे क्षण उसे वह अपने अंदर निगीर्ण कर लेता है, चंचत् से उपमित हुआ करते हैं। इसी तरह 'बृहत्कः' शब्द का अर्थ मणि होता है जो छोटा होता हुआ भी विस्तृत रश्मिजाल को प्रसारित करता रहता है इसीलिए बड़े के समान प्रतीत होता है।

---

1 पदमंजरी (5/3/69)

2 अष्टाध्यायी (5/4/3)

3 चंचत्कः सादृश्यस्य द्योतकः कन् प्रत्ययः। प्रदीप महाभाष्य (5/4/3)

4 सूत्रे प्रकार शब्देन सादृश्यं ह्युच्यते। उद्योत महाभाष्य (वही)

5 अचंचन्नपि यश्चंचन्निव लक्ष्यते स चंचत्को मणिः स्यन्दमानप्रभत्वात्। अवृहन्नपि बृहन्निव प्रसृतप्रभत्वात् यो दृश्यते स बृहत्कः। प्रदीप महाभाष्य (वही)।

6 चंचत्प्रकारश्चंचत्क बृहत्क इतिचापरे।
मणिमंडूकखद्योतान सादृश्येन प्रचक्षते।।
तत्रोन्मेषनिमेषाभ्यां खद्योत उपमीयते।
श्वासप्रबंधैर्मंडूक स्पंदमानप्रभो मणिः।।
वाक्यपदीय प्रकीर्ण कांड (श्लोक संख्या 615-16)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशिका के व्याख्याकार हरदत्तमिश्र ने इस सूत्र की व्याख्या में, जयादित्य के अभिमत सिद्धांत 'प्रकारो विशेषः' की व्याख्या करने के उपरांत संभवतः भर्तृहरि तथा कैय्यट आदि की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि कुछ विद्वानों के अनुसार इस सूत्र में सादृश्य अर्थ में कन् प्रत्यय का विधान किया गया है[1]। यों हरदत्तमिश्र का विचार है कि इस सूत्र में प्रकार का सादृश्य और भेद दोनों ही अर्थ अभिप्रेत हैं तथा कन्प्रत्ययांत जो शब्द जिस अर्थ सादृश्य या भेद को कहता है, उससे उसी अर्थ में इस कन् प्रत्यय की स्थिति को स्वीकार किया जाए। वृत्तिकार जयादित्य ने केवल उपलक्षण की दृष्टि से इन दोनों अर्थों को न कह कर केवल एक अर्थ-भेद को ही कहा है[2]। पर नागेश ने यह सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि जयादित्य की दृष्टि में 'प्रकार' का अर्थ केवल भेद या विशेष ही है[3]।

भाषावृत्ति के लेखक पुरुषोत्तम देव पंचम अध्याय के इन तीन सूत्रों में केवल एक सूत्र 'प्रकार वचने थाल्'––की व्याख्या में स्पष्टतः 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' करता है[4]। पर उससे अन्य दोनों सूत्रों में विद्यमान 'प्रकार' शब्द के अर्थ के विषय में उसकी स्थिति का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि इन तीनों सूत्रों का विषय एक ही है।

दुर्घटवृत्तिकार शरणदेव ने भी, 'प्रकार वचने थाल्' के प्रकरण में आने वाले इदमस्थमुः' सूत्र पर 'इत्थम्भूत' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में जो विवाद[5] उठाया है उससे यह निश्चित हो जाता है कि वह भी इन तीन सूत्रों में 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य ही मानता है।

सिद्धांत कौमुदी के लेखक भट्टोजी दीक्षित ने विवाद के विषयभूत, इन तीनों सूत्रों के, प्रकार शब्द के अर्थ के विषय में कहीं कुछ भी नहीं कहा है। पर उनके टीकाकारों ने इन सूत्रों में प्रकार का अर्थ भेद किया है।

इस तरह 'प्रकार' शब्द वाले पहले तीन सूत्रों के 'प्रकार' शब्द के विषय में दो तरह के मत स्पष्टतः मिलते हैं। 'सादृश्य' अर्थ मानने वालों में पतंजलि, भर्तृहरि, वामन, कैय्यट, नागेश, पुरुषोत्तम देव तथा शरणदेव हैं तथा 'भेद' अर्थ मानने वाले विद्वानों में जयादित्य, देवनंदी, शाकटायन, तथा हेमचंद्र इत्यादि हैं।

'प्रकार' शब्द वाला अंतिम सूत्र है 'प्रकारे गुणवचनस्य'[6] जिसका अभिप्राय है 'प्रकार में वर्तमान गुणवाचक शब्दों का दो बार प्रयोग किया जाना चाहिए'। जैसे 'पटुपटुः', 'पंडितपंडितः' इत्यादि। काशिका में इस सूत्र के व्याख्याकार वामन

---

1 अपर आह-सादृश्ये अत्र कन्। अचंचन्नपि यश्चंचन्निव लक्ष्यते
स्पंदमानप्रभत्वात् स चंचत्को मणिः। पदमंजरी (5/4/3)

2 प्रकारो भेदः सादृश्यं च उभयत्रापि यथाभिधानं कन् भवति।
वृत्तो तु प्रकार इत्युपलक्षणम्। पदमंजरी (वही)

3 दे० अन्येषांत्विति-जयादित्यादीनाम्। उद्योत, महाभाष्य (8/1/12)।

4 सादृश्यवृत्तिभ्यस्थाल् स्यात्। तेन प्रकारेण तथा। भाषावृत्ति (5/3/23)।

5 इमम् प्रकारमापन्न 'इत्थम्भूत' इति। प्रकारश्च सादृश्यम्।
तत्र तृतीया युक्ता। दुर्घट वृत्ति (5/3/24)

6 अष्टाध्यायी (8/1/12)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सादृश्य' अर्थ को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि परिपूर्ण गुण वाले व्यक्ति न्यून गुण वाले व्यक्ति की जब तुलना की जाती है तब इस प्रकार का द्विवचनात्मक प्रयोग किया जाता है।[1] जब सीधे यह कहना हो कि 'देवदत्त चतुर है' तब यही कहा जाएगा कि पटुर्देवदत्तः वहाँ 'पटु' शब्द का द्वित्व नहीं किया जाता।[2]

यहाँ भी पतंजलि ने 'प्रकार' शब्द के अर्थ के विषय में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कहा—शायद कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। पर 'गुणवचनस्य' इस सूत्र का जो प्रत्युदाहरण[3] 'अग्निमणिवकः' (बालक अग्नि के समान है) तथा गौर्वाहीकः (वाहीक गौ के समान है)——पतंजलि ने दिया है उससे सर्वथा स्पष्ट है कि वे निश्चित ही 'प्रकार' का अर्थ सादृश्य मानते हैं।

इस अंतिम सूत्र पर हमें जयादित्य के विचारों का पता नहीं लगता क्योंकि काशिका में इस सूत्र की व्याख्या वामन द्वारा की गई है जो सादृश्य पक्ष के मानने वाले हैं। 'भेद' वादी कोई दूसरा व्याख्याकार पाणिनीय संप्रदाय में नहीं दिखाई देता। इसलिए इस सूत्र पर हमें केवल सादृश्य परक व्याख्या ही देखने को मिलती है। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि जैनेंद्र, शाकटायन तथा हेम व्याकरण के प्रतिष्ठित विद्वानों ने भी, जो ऊपर के तीन सूत्रों में 'प्रकार' का अर्थ भेद करते रहे हैं, इस सूत्र[4] में विद्यमान 'प्रकार' शब्द का 'सादृश्य' अर्थ ही माना है।

प्रसंगतः यहाँ एक बात और निवेदन कर दूँ कि इन चारों सूत्रों से निष्पन्न होने वाले प्रयोगों में एक विशेष बात यह है कि प्रथम सूत्र 'प्रकारवचने थाल्' से सिद्ध होने वाले 'यथा' 'तथा' इत्यादि शब्द केवल 'प्रकार' या 'प्रकारता धर्म' को कहते हैं। भले ही 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' या 'भेद' कुछ भी किया जाए। दूसरी ओर शेष तीन सूत्रों से विनिर्मित-जातीयर् प्रत्ययांत, कन् प्रत्ययांत तथा गुण-वाचक शब्दों के द्विवचनात्मक-प्रयोग केवल 'प्रकार' या 'प्रकारता धर्म' को न कह कर उस 'प्रकार' से विशिष्ट 'प्रकारवान्' या प्रकारताधर्म से युक्त 'धर्मी' को कहा करते हैं। उदाहरण के लिए 'यथा देवदत्तस्तथायज्ञदत्तः' इस वाक्य में 'यथा' और 'तथा' शब्द केवल 'प्रकार' का ही ज्ञान करा पाते हैं। परंतु दूसरी तरफ 'पटु-जातीयः', 'स्थूलकः' या 'चंचत्कः' तथा 'पटुपटुः' या 'पंडितपंडितः' ये प्रयोग सदा ही 'प्रकारवान्' को कहते हैं——केवल धर्म को न कह कर तद्विशिष्ट व्यक्ति को कहते हैं[5]।

---

[1] परिपूर्णगुणेन न्यून गुणस्योपमाने सति एवं प्रयुज्यते। काशिका (8/1/12)

[2] प्रकारे इति किम्——पटुर्देवदत्तः। काशिका (वही)

[3] महाभाष्य (8/1/22) दे० गौर्वाहीक रीति द्वित्वे सादश्यं प्रत्युदाहृतम्।
शुक्लादौ सति निष्पन्ने वाहीकों न द्विरुच्यते
वाक्यपदीय प्रकीर्ण कांड (श्लोक सं० 624)

[4] दे० प्रकारे गुणोक्ते :——प्रकारः सादृश्यमिह गृह्यते। जैनेंद्र व्याकरण महावृत्ति।

[5] दे० (क) प्रकार वचनः कश्चित् प्रकारवति संस्थितः।
प्रकारमात्रे वर्तित्वा कश्चित् तद् व्यतिवर्तते। वाक्य पदीय,
प्रकीर्ण कांड (श्लोक सं० 619)
(ख) प्रकारवति चायं प्रत्ययः। थाल्
पुनः प्रकारमात्रे एव भवति। काशिका (5/3/69)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इसलिए यदि 'प्रकार वचने थाल्' में 'प्रकार' का अर्थ 'प्रकारधर्म' है तो अन्य तीन सूत्रों में उसका अर्थ है 'प्रकारवान् व्यक्ति' या 'धर्मी'।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तक प्रकार शब्द के विषय में विभिन्न व्याख्याताओं के विभिन्न मतों का उल्लेख किया गया। अब यह विचारणीय है कि इन सूत्रों के उदहारणभूत शब्दों से 'सादृश्य' अर्थ की अभिव्यक्ति होती है या 'भेद' अर्थ की।

जहाँ तक प्रथम सूत्र का प्रश्न है 'थाल्' प्रत्ययांत 'यथा' और 'तथा' शब्द 'यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः' जैसे वाक्यों में देवदत्त तथा यज्ञदत्त की समानता या 'सादृश्य' को अभिव्यक्त करते हैं। भेदवादी विद्वानों के अनुसार इस वाक्य का अर्थ होगा--यज्ञदत्त सामान्य व्यक्ति नहीं है अपितु जिन विशिष्ट गुणों से युक्त देवदत्त है उन्हीं गुणों से युक्त यज्ञदत्त भी है। अतः वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न है यह ठीक है कि यहाँ 'सादृश्य' तथा 'वैशिष्ट्य' दोनों ही अर्थ अभिव्यक्त होते हैं पर वक्ता की विवक्षा यही होती है कि देवदत्त तथा यज्ञदत्त में सादृश्य है। वह यह नहीं कहना चाहता कि यज्ञदत्त अन्य मनुष्यों से भिन्न है--भले ही वह अर्थ भी यहाँ सामर्थ्य-गम्य रहा करता है।

'यथा' की इसी साक्षात् सादृश्यवाचकता के कारण आलंकारिकों ने उपमावाचक शब्दों में 'यथा' को भी स्थान दिया है तथा 'यथा' से युक्त उपमा को 'श्रौती उपमा' का नाम दिया है जिसका अभिप्राय है 'यथा' को सुनते ही तुरंत उपमा की प्रतीति हो जाती है। इसका उदाहरण है--'मुखमिदुर्यथा'[1] जहाँ वाक्यगता श्रौती लुप्तोपमा मानी जाती है।

पर यदि 'यथा' को सादृश्य वाचक माना जाता है तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'अव्यय विभिक्ति'[2] इस सूत्र में 'यथा' पद से 'यथा' अर्थ में अव्ययीभाव समास का विधान कर दन पर फिर 'सादृश्य' अर्थ में उसी अव्ययीभाव समास का विधान करने के लिए पाणिनि ने उसी सूत्र में पुनः 'सादृश्य' पद को क्यों स्थान दिया।

इस प्रश्न का उत्तर भर्तृहरि ने दो ढंग से दिया है। प्रथम उत्तर में भर्तृहरि का यह कहना है कि 'यथा' शब्द द्वारा उन शब्दों में अव्ययीभाव समास का विधान किया गया है जिनमें 'सादृश्य' धर्म प्रधानतया कहा जाता है।

जैसे 'हरेः सादृश्यम् सहरि' (हरि की सदृशता)। इसके विपरीत 'सादृश्य' पद द्वारा अव्ययीभाव समास का विधान उन पदों में किया जाता है जहाँ समास के द्वारा सादृश्यवान् कहा जाता है। जैसे 'सदृशः रामेण सरामः' या 'सदृशः सख्या ससखि' (राम के सदृश्य या सखा के सदृश)। यहाँ राम या सखा के सदृश कोई अन्य व्यक्ति कहा जा रहा है[3]।

---

1 दे० साहित्यदर्पण (10/16/23)

2 अष्टाध्यायी (2/1/6)

3 सादृश्यग्रहणं सूत्रे सादृश्यस्योपलक्षणम्।
तुल्ययोरव्ययीभावे सहशब्दो अभिधायकः ॥
वीप्सासादृश्ययोर्वृत्तिः या यथार्थाभिधायिनः।
स चायमव्ययीभावे भेदो भेदेन दर्शितिः ॥
वाक्यपदीय प्रकीर्ण कांड (श्लोक सं० 620-21)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे समाधान में भर्तृहरि ने यह कहा है कि 'यथा (अर्थ)' पद द्वारा उन स्थलों में समास अभिप्रेत है जहाँ गुणगत सादृश्य की अभिव्यक्ति होती है । जैसे 'अनुरूपं वेषः' (रूप से सदृश वेष) । यहाँ रूप-गुण की सदृशता अभिहित हो रही है। इसके विपरीत 'सादृश्य' पद द्वारा उन स्थलों में अव्ययीभाव समास अभिप्रेत है जिनमें मूर्तिगत सादृश्य की अभिव्यक्ति होती है--जिसका संबंध वस्तु या व्यक्ति के अवयवों से होता है। इसका उदाहरण है--'सादृश्यं सख्या ससखि (सखा का सादृश्य) । इस प्रकार के 'सादृश्य' को 'सह' अव्यय कहा करता है।[1]

इस द्विविध स्थलों में अव्ययीभाव समास का विधान करने के लिए पाणिनि ने 'यथा' तथा 'सादृश्य' इन दोनों पदों को पृथक्-पृथक् अपने उपर्युक्त सूत्र में स्थान दिया ।

आश्चर्य की बात यह है कि भेदवादी जयादित्य ने भी, जो 'प्रकारवचने थाल्' सूत्र में प्रकार शब्द का केवल भेद अर्थ ही स्वीकार करता है, यहाँ 'यथा' को सादृश्य-वाचक मानते हुए, भर्तृहरि के ही प्रथम समाधान को संक्षेप में थोड़े शब्दांतर के साथ प्रस्तुत किया है ।[2]

एक प्रश्न और पूछा जा सकता है कि यदि 'यथा' शब्द का अर्थ 'सादृश्य' ही है तो पाणिनि ने अपने सूत्र 'यथा असादृश्ये'[3]--द्वारा 'असादृश्य' अर्थ में 'यथा' अव्यय का समान-विधान क्यों किया ? भर्तृहरि ने इस प्रश्न को नहीं उठाया है। पतंजलि ने, लगभग इसी प्रकार के एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में, यह कहा है कि केवल 'प्रकार-वचने थाल्' से निष्पन्न होने वाला व्युत्पन्न एवं थाल्--प्रत्ययांत--यथा शब्द ही सादृश्य का वाचक है । इसके अतिरिक्त एक अव्युत्पन्न थाल् प्रतिरूपक थाल् प्रत्ययांत-सदृश 'यथा' शब्द है जिसके 'सादृश्य' से इतर योग्यता, वीप्सा तथा पदार्थानतिवृत्ति अर्थ होते हैं ।[4] शाकटायन तथा हेम संप्रदाय के आचार्यों ने, पतंजलि के इस कथन के अनुसार ही, पाणिनि के 'यथा असादृश्ये' सूत्र के स्थान पर 'यथा अथा'[5] सूत्र का प्रयायन किया है जिसका अभिप्राय है कि थाल् प्रत्यय रहित अव्युत्पन्न 'यथा' का समर्थ सुबंत के साथ अव्ययीभाव समास होता है ।

---

[1] सादृश्यं योग्यता कश्चिदनावभ्युपगम्यते ।
यत्तु मूर्तिगतं साम्यं तत् सहेनाभिधीयते ।।
वाक्यपदीय (वही) (श्लोक सं० 622)

[2] दे० सादृश्यंतुल्यता । किमर्थम् इदम् उच्यते यथार्थ इत्येव सिद्धम् ?
गुणभूते अपि सादृश्ये यथा स्यात्-सदृशः सख्या ससखि ।
काशिका (2/1/6)

[3] अष्टाध्यायी (2/1/7)

[4] दे० अथेत्ययं प्रकारवचने थाल् स च सादृश्ये वर्तते ।
अयं यथाशब्दो अस्त्येवाव्युत्पन्नः प्रातिपदिकं वीप्सावाचि ।]
अस्ति प्रकारवचने थाल् ।
तत्र तद् अव्युत्पन्नं वीप्सावाचि तस्येदं ग्रहणम् ।।
महाभाष्य (2/1/7)

[5] हेम व्याकरण (3/1/41)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पर केवल अर्थ की भिन्नता की दृष्टि से एक ही 'यथा' शब्द को दो तरह का मान लेना किसी भी तरह सुसंगत नहीं प्रतीत होता।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर के प्रश्न का यह उत्तर दिया जा सकता है कि पाणिनि के 'असादृश्ये' पद का यह अभिप्राय कदापि नहीं निकालना चाहिए कि 'सादृश्य' से सर्वथा रहित। क्योंकि वैय्याकरणों की एक परिभाषा है। 'नञिव-युक्तम् अन्यसदृशाधिकरणे तथा हि अर्थगतिः[1] (नञ् तथा इव से युक्त पद में उससे भिन्न पर तत्सदृश द्रव्य या व्यक्ति का ज्ञान होता है।) इसीलिए 'अब्राह्मणमानय' कहने पर ब्राह्मणेतर पर ब्राह्मण-सदृश ही किसी क्षत्रिय आदि को लाया जाता है। इसी तरह 'असादृश्ये' का भी अभिप्राय यह है कि यथा 'देवदत्तस्तथा' यज्ञदत्तः में जिस प्रमुख सादृश्य की अभिव्यक्ति पाई जाती है वैसी सदृशता से रहित पर सामान्य सादृश्य से युक्त अर्थ में 'यथा' इस अव्यय का समास अभीष्ट है। इसीलिए 'यथारूपम्' तथा 'यथाशक्ति' या 'यथावृद्धम्' जैसे समस्त पदों म जहाँ 'यथा असादृश्य' सूत्र द्वारा समास का विधान किया जाता है तथा क्रमशः 'योग्यता' एवं 'पदार्थानितिवृत्ति' अर्थ अभिव्यक्त होते हैं वहाँ भी सादृश्य किसी न किसी रूप में रहता ही है।

इस तरह इस प्रथम सूत्र 'प्रकारवचने थाल्' में 'प्रकार' शब्द का अर्थ प्रधानतः सादृश्य ही प्रतीत होता है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए 'थाल्' प्रत्यय का विधान पाणिनि ने किया है।

दूसरे सूत्र—'प्रकारवचने जातीयर्'[2] के 'पटुजातीयः', 'मृदुजातीयः,' इत्यादि उदाहरणों में प्रायः गुणवाचक शब्दों से जातीयर् प्रत्यय का संयोजन दिखाई देता है। इन सब उदाहरणों में सादृश्य अर्थ की प्रधानता दिखाई देती है। 'पटुजातीयः' कहते हुए वक्ता की विवक्षा यही होती है कि वह पटुसदृश है। पटु नहीं है। भेद-वादी विद्वान यह अर्थ करेंगे कि वह पटुगुण युक्त व्यक्तियों के वर्ग का है। परंतु पाणिनि को यहाँ 'वर्ग' या 'जाति' को कहना अभीष्ट नहीं प्रतीत होता क्योंकि 'जाति' या 'वर्ग' को कहने के लिए पाणिनि का एक अन्य सूत्र है—'जात्यंतात् छ बंधुनि'[3] (जात्यंत शब्दों से, बंधु बिरादरी या जाति वाले को कहने के लिए 'छ' प्रत्यय होता है) जिसका उदाहरण है—'ब्राह्मण जातीयः' 'क्षत्रिय जातीयः' इत्यादि जिसका अभिप्राय है वह 'ब्राह्मण' जाति का है 'वह क्षत्रिय जाति का है'। इसलिए इस सूत्र के रहते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'प्रकारवचने जातीयर्' सूत्र में गुणवाचक शब्दों से ही सूत्रकार को जातीयर् प्रत्यय अभीष्ट है।

यहाँ सादृश्य अर्थ की प्रबलता इसलिए भी स्वीकारणीय है कि 'प्रकारे गुण-वचनस्य'[4] सूत्र से, जहाँ 'प्रकार' का अर्थ सभी विद्वान—चाहे वे भेदवादी हों या सादृश्यवादी, सादृश्य करते हैं, सादृश्य की अभिव्यक्ति के लिए गुणवाचक शब्दों के द्वित्व प्रयोग के विकल्प में जातीयर् प्रत्यय की स्थिति भी स्वीकार

---

[1] परिभाषेंदुशेखर (परिभाषा संख्या 75)
[2] अष्टाध्यायी (5/3/59)
[3] अष्टाध्यायी (5/4/9)
[4] वही (8/1/42)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जाती है[1] अर्थात् पटु सदृश व्यक्ति को कहने के लिए ही 'पटुपटु:' तथा 'पटुजातीय:' इन दोनों में से किसी भी एक शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार इस दूसरे सूत्र में भी 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' ही अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

तीसरे सूत्र 'स्थूलादिभ्य: प्रकारवचने कन्'[2] से निष्पन्न होने वाले 'चंचत्क:' तथा 'बृहत्क:', शब्दों के अर्थ के विषय में ऊपर भर्तृहरि तथा उनके अनुयायी कैयट के विचार दिए जा चुके हैं। उसके अनुसार इन शब्दों के अभिधेय-भूत अर्थों की दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सूत्र में सादृश्य अर्थ में ही 'कन्' प्रत्यय का विधान माना जा सकता है और इसलिए यहाँ का 'प्रकार' शब्द भी सादृश्य-वाचक ही है। इन दोनों शब्दों के अतिरिक्त स्थूलक, अणुक, माषक इत्यादि शब्द भी अर्थ की दृष्टि से क्रमश: 'स्थूल', 'अणु' तथा 'माष' की समानता से युक्त होते हैं। स्थूल सदृश को स्थूलक, चतुर निपुण, अल्प, स्तोक को अणुक, तथा, से न्यून एक विशेष परिमाण को 'माषक' कहा जाता है[3]।

पदमंजरी के लेखक हरदत्तमिश्र ने स्थूलादिगण के कुछ अन्य उदाहरणों का भी अर्थ प्रस्तुत किया है। जैसे 'युवक:' का अर्थ 'यवसदृश:', 'गोमूत्रक:' का गोमूत्रवर्ण वाला वस्त्र या आच्छादन विशेष, 'सुरक' का सुरा वर्णवाला तथा, 'जीर्णक:' का लगभग जीर्ण हो गए धान, इत्यादि।[4] इन शब्दों के ये अर्थ जिनकी पुष्टि कोषकार भी करते हैं, इस बात का प्रबल प्रतिपादन करते हैं कि प्रस्तुत सूत्र में 'प्रकार' शब्द का अर्थ 'सादृश्य' ही है।

चौथे सूत्र 'प्रकारे गुणवचनस्य'[5] के विषय में विशेष कहने की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि यहाँ तो उपरि निर्दिष्ट भेदवादी विद्वान भी 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' ही करते हैं। काशिका में इस सूत्र की व्याख्या भले ही भेदवादी जयादित्य के द्वारा नहीं की गई है अपितु सादृश्यवादी वामन के द्वारा की गई है। पर जैनेंद्र आदि तो भेदवादी ही हैं परंतु उन्हें भी यहाँ सादृश्य अर्थ ही[6] अभिप्रेत है।

इस तरह इन सूत्रों के विभिन्न उदाहरणों तथा उनके अर्थों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रकार' शब्द का प्रयोग पाणिनि के इन सूत्रों में 'सादृश्य' अर्थ में ही हुआ है और इस रूप में भर्तृहरि आदि सादृश्यवादी विद्वानों की स्थिति ही अधिक सुदृढ़ एवं मान्य प्रतीत होती है।

---

[1]दे० जातीयरो अनेन द्विर्वचनेन बाधनं नेष्यते । (काशिका 8/1/12)

[2]अष्टाध्यायी (5/4/3)

[3]दे० शब्द कल्पद्रुप

[4]दे० पदमंजरी (5/4/3)

[5]अष्टाध्यायी (8/1/12)

[6]प्रकारो गुणोक्ते :—प्रकार: सादृश्यमिह गह्ययते। जैनेंद्र व्याकरण महावृत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

परंतु भर्तृहरि का 'सर्वत्र' शब्द यह बताता है कि भर्तृहरि न केवल इन चार सूत्रों में 'प्रकार' का अर्थ 'सादृश्य' मानते हैं अपितु जहाँ कहीं भी 'प्रकार' शब्द का प्रयोग किया जाता है वहाँ सर्वत्र ही उसका सादृश्य अर्थ ही मानना चाहिए। पाणिनि के दो अन्य सूत्रों—'इत्थम्भूत लक्षणे'[1] तथा 'संख्याया विधार्थे धा'[2] में भी 'प्रकार' शब्द का अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है। पहले सूत्र का अर्थ है किसी विशेष प्रकारता की प्राप्ति के लक्षण या चिह्न के वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे 'जटाभिः तापसः' या 'कमंडलुना छात्रः' यहाँ तापसत्व या छात्रत्व रूप विशिष्ट प्रकार के क्रमशः लक्षण हैं। जटा तथा कमंडलु जिनसे तृतीया विभक्ति दिखाई देती है। दूसरे सूत्र का अर्थ संख्यावाचक शब्दों से प्रकार को कहने के लिए 'धा' प्रत्यय संयुक्त होता है। जैसे 'रामः पंचधा भुंक्ते' (राम पाँच तरह से भोजन करता है।)

स्पष्ट है कि इन दोनों स्थलों में 'प्रकार' का अर्थ 'भेद' है परंतु भर्तृहरि यहाँ भी बुद्धिस्थ 'सादृश्य'[3] मानते हैं। इन प्रयोगों में भेद-प्रतीति के ज्ञापक 'जटा' तथा कमंडल इत्यादि वस्तुएँ बाह्य हैं इसलिए उनके आधार पर जो भेद ज्ञान होगा वह भी अवास्तविक ही होगा। इसी तरह 'पंचधाभुंक्ते' इत्यादि में 'प्रकारता' या 'भेद' केवल साधनों में ही हो सकता है न कि क्रिया में क्योंकि क्रिया तो सदा भेद रहित ही हुआ करती है। इसलिए 'प्रकार' सर्वत्र सादृश्य अर्थ ही मानना चाहिए यह भर्तृहरि का अभिमत सिद्धांत है।

---

[1]अष्टाध्यायी (2/3/21)

[2]अष्टाध्यायी (5/4/9)

[3]इत्थम्भावेऽपि सादृश्यं बुद्ध्यवस्थानिबंधनम्।
ग्रहणे भेदमात्रस्य तत्रान्यैवाभिधीयते ।।
वाक्यपदीय प्रकीर्ण कांड (श्लोक सं० 623) तथा उसकी हेलाराज कृत टीका

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिल और देवनागरी

ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन

विमलेश कांति वर्मा

तमिल भाषा उत्तरी लंका एवं पूर्वी किनारे पर मद्रास नगर के उत्तर से लेकर कुमारी अंतरीप तक बोली जाने वाली दक्षिण प्रदेश की प्राचीनतम भाषा है। इस भाषा में उत्कृष्ट ग्रंथ होने के कारण साहित्यिक दृष्टि से भी इसका गौरव अक्षुण्ण है। तमिल भाषा तमिल लिपि में लिखी जाती है। इसलिए तमिल लिपि का भी विशिष्ट महत्त्व है। देवनागरी भारत की राष्ट्र-लिपि तथा उत्तर भारत की अति प्राचीन लिपि है। संस्कृत जैसी प्रमुख भाषा की लिपि भी देवनागरी ही है। इस प्रकार दक्षिण की लिपि तमिल और उत्तरी भारत की लिपि देवनागरी दोनों का विशष महत्व है। यहाँ तमिल और देवनागरी लिपि की ध्वनियों का भाषा-विज्ञान की पृष्ठभूमि में विस्तार से अध्ययन किया जा रहा है।

तमिल वर्ण माला में बारह स्वर और सत्रह व्यंजन हैं।

स्वर और व्यंजन से पृथक् एक और ध्वनि है जिसे 'आइदम' कहते ह। इसका लिपि चिह्न ∴ है। यह ध्वनि बहुत कुछ अरबी फारसी की ख़ ध्वनि से मिलती-जुलती है।

इस प्रकार बारह स्वर, सत्रह व्यंजन तथा आइदम ध्वनि को मिला कर तमिल में मुख्य रूप से तीस ध्वनियाँ हैं किंतु बाद में संस्कृत ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए पाँच ध्वनि-चिह्न तमिल में नए बनाए गए, जो संस्कृत ध्वनियों को व्यक्त करते हैं। शुद्ध तमिल या प्राचीन तमिल में इनकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

इन पाँच नए ध्वनि चिह्न को लेकर तमिल में तीस से बढ़कर पैंतीस ध्वनियाँ हो गई।

स्वर : देवनागरी में स्वरों की संख्या ग्यारह है—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऋ। ऋ का प्रयोग तत्सम शब्दों में ही होता है। ऋ स्वरात्मक ध्वनि है। यद्यपि आजकल इसका उच्चारण बहुत कुछ व्यंजनात्मक ऋ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

समान होता है। तमिल में स्वरों की संख्या बारह है। तमिल और देवनागरी के स्वरों के संबंध में निम्न बातें ज्ञेय हैं :—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) हिंदी का ऋ स्वर तमिल में नहीं है।

(ख) तमिल में हिंदी ए, ओ के अतिरिक्त इनके ह्रस्व रूप भी मिलते हैं जो हिंदी में नहीं हैं किंतु चारों प्रधान द्रविड़ भाषाओं तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड़ में मिलते हैं। इन ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरों में उच्चारणगत अंतर से अर्थगत अंतर भी आता है।

ह्रस्व ए के विषय में यह भी कहना आवश्यक है कि शब्द का आदि अक्षर यदि ए है तो प्रायः सभी द्रविड़ भाषाओं में उसका उच्चारण 'ये' होता है। उदाहरणार्थ तमिल एन्न =येन्न।

(ग) चारों द्रविड़ भाषाओं में शब्दांत 'आ' का उच्चारण ह्रस्व 'अ' की तरह होता है। सामान्यतया वर्णमाला के इस प्रथम वर्ण आ का उच्चारण ह्रस्व आ के समीप ही है।

व्यंजन

(1) तमिल में मूल व्यंजनों की संख्या सत्रह तथा देवनागरी में छत्तीस है।

(2) संस्कृत ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए तमिल में पाँच नए ध्वनि चिह्न बनाए गए हैं (ज), (स), (क्ष), (ष), (ह)। इस प्रकार तमिल में व्यंजनों की संख्या 22 हो जाती है। ये पाँच ध्वनियाँ प्राचीन तमिल में नहीं हैं। संस्कृत शब्द जो आर्यों के आगमन के बाद तमिल में आए उन की ध्वनि व्यक्त करने के लिए ये ध्वनि चिह्न बनाए गए थे।

(3) हिंदी में प्रयुक्त पंचमवर्ग के प्रथम और पंचम वर्ण ही तमिल में पाए जाते हैं। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ व्यंजन तमिल में नहीं हैं। इन की आवश्यकता शुद्ध तमिल में नहीं पड़ती।

तमिल में क च ट त प का प्रयोग अपने वर्ग की समस्त ध्वनियों के लिए (पंचम वर्ण-ध्वनि को छोड़कर) होता है। उदाहरणार्थ 'क' लिखने पर क-घ तक के बीच की समस्त अगणित ध्वनियों का बोध होगा। इस प्रकार उच्चारण की दृष्टि से तमिल का अध्ययन जटिल हो जाता है।

(4) सामान्यतया शब्द के प्रारंभ में वर्ण का उच्चारण लिखित अक्षर की तरह होता है और अन्य स्थानों में उसका सघोष रूप उच्चरित होता है। उदा०— क>ग, ट>ड, प>म

(5) 'न' के लिए तमिल में दो रूप दिए गए हैं और दोनों की ध्वनियाँ समान हैं। किंतु दोनों के प्रयोग के लिए स्थान नियत हैं। इन में से एक 'न' सर्वदा शब्द के प्रारंभ में आएगा। शब्दांत में इसका प्रयोग नहीं होता।[1] दूसरे का प्रयोग शब्दों में अधिकांश स्थलों पर होगा किंतु शब्दारंभ में नहीं। शब्दों के पूर्व तथा शब्दांत में यही आएगा।

---

[1] दो एक तमिल शब्द ऐसे मिलते हैं जिनके अंत में इस का प्रयोग होता है, किन्तु ऐसे शब्द संख्या में अति न्यून होने के कारण अपवाद स्वरूप ही गिने जाएंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी में ऐसी स्थिति नहीं है। एक ध्वनि के लिए एक ही ध्वनि चिह्न का प्रयोग होता है। तमिल लिपि में लिपि विज्ञान की दृष्टि से अतिव्याप्ति दोष है क्योंकि एक ही ध्वनि के बोधक दो चिह्नों का प्रयोग भाषा में जटिलता तथा अवैज्ञानिकता को जन्म देता है। देवनागरी इस दोष से मुक्त है। रोमन वर्णमाला में भी यह अतिव्याप्ति दोष है। वहाँ भी एक ध्वनि के लिए कई ध्वनि चिह्नों का प्रयोग होता है।

(6) 'र' के लिए तमिल में दो वर्ण हैं। इनमें उच्चारणगत तथा अर्थगत अंतर है। एक सहज उच्चरित र है जो देवनागरी की ध्वनि 'र' को व्यक्त करता है। किंतु इस में उच्चारणार्थ अधिक बल देना पड़ता है। इसका उच्चारण 'ऱ' के समान होता है। इस ध्वनि का यदि एक ही शब्द में दो बार साथ-साथ प्रयोग हो तो इसका उच्चारण ट्र सा हो जाता है।

(7) देवनागरी 'ण' से मिलती-झुलती तमिल में तीन ध्वनियाँ हैं। देवनागरी में इन ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए मात्र 'ण' ध्वनि चिह्न है। बाकी दो का प्रयोग देवनागरी में नहीं है। एक का प्रयोग मराठी भाषा में मिलता है। मराठी में इस ध्वनि को ळ से व्यक्त करते हैं। विशिष्ट 'ण' ध्वनि तमिल की विशेषता है। यह ध्वनि न मराठी में है न हिंदी में। मराठी ळ और तमिल ण ध्वनि वैदिक संस्कृत में प्रयुक्त होती थीं किंतु उच्चारण जटिलता के कारण मुख-सुख नियम से इस ध्वनि का बाद में लोप हो गया और हिंदी में यह ध्वनि गायब सी हो गई। वर्तमान संशोधित देवनागरी लिपि में ळ ध्वनि को प्रकट करने के लिए मराठी रूप स्वीकार कर लिया गया है।

(8) संस्कृत के प्रभाव से ग्रहण किए गए नए तमिल ध्वनि चिह्नों का संस्कृत शब्दों के लिए ही प्रयोग मुख्यरूप से होता है। साधारणजन वर्ग में संस्कृत शब्दों को तमिल रूप में परिवर्तित कर लिखने की प्रथा है।

(9) 'च' और 'श' के लिए तमिल में एक ही ध्वनि चिह्न है। तमिल में 'च' का प्रयोग च वर्ग के तृतीय व्यंजन ज के लिए नहीं होता क्योंकि तमिल में ज ध्वनि थी ही नहीं और संस्कृत के कारण जो नई ज ध्वनि आई उसके लिए नया लिपि चिह्न ही स्वीकार कर लिया गया। च और श में किस ध्वनि का कहाँ से बोध होगा इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। यह केवल अभ्यास साध्य ही है, किंतु जहाँ च की संधि होगी वहाँ च ही उच्चरित होगा, यह निश्चित है।

(10) वर्णों का हल रूप रखने के लिए वर्णों के ऊपर शून्य लिखने की प्रथा है।

(11) संयुक्ताक्षर तमिल में नहीं है। 'क्ष' संयुक्ताक्षर संस्कृत से ग्रहण किया गया है और इसकी ध्वनि को व्यक्त करने के लिए अलग लिपि चिह्न स्वीकार कर लिया गया है। तमिल में संयुक्ताक्षर को पृथक् लिखने की प्रथा है। इसी प्रकार त्र के लिए ह्रस्व त और र तथा द्य के लिए ह्रस्व द तथा य लिख कर काम चलाया जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(12) तमिल में बहुवचन बनाने के लिए एक अलग प्रत्यय है। इस प्रत्यय का प्रयोग जब शब्द के साथ होता है तो इसका उच्चारण 'घळ' होगा अर्थात् 'क' का उच्चारण घ के समान होगा।

(13) अनुनासिक वर्णों का उच्चारण ठीक देवनागरी के ही समान होगा।

(14) तमिल में अनुस्वार के लिए कोई पृथक् चिह्न नहीं है। अनुस्वार के लिए पंचमाक्षर का ही प्रयोग होता है। देवनागरी के समान वर्ण पर शून्य रख कर नहीं। देवनागरी विसर्ग के समान न तो तमिल में कोई ध्वनि है न ध्वनि चिह्न ही।

(15) देवनागरी की ड़ और ढ़ ध्वनि भी तमिल में नहीं है।

तमिल ध्वनियों के उच्चारण स्थान

तमिल में **ए, ओ** नए स्वर तथा तीन नए व्यंजन और ∴ आइदम नई ध्वनियाँ हैं जो देवनागरी में नहीं मिलती। अतः इनके ही उच्चारण प्रयत्नों पर विचार किया जाएगा। शेष तमिल ध्वनियाँ देवनागरी ध्वनियों के ही समान हैं।

स्वर

देवनागरी 'ए' के समान तमिल की ध्वनि अर्ध संवृत्त, अग्र, ह्रस्व, प्रसारित ओष्ठ है। अर्थात् इस ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा और तालु के बीच का स्थान न अधिक होता है न कम फिर भी संवृत्तता की ओर उन्मुख है ह्रस्व ध्वनि है। उच्चारण करते समय जिह्वा का अग्रभाग तथा कोमल तालु प्रयुक्त होता है, ओठों के कोने दोनों तरफ़ खिंचे रहते हैं।

देवनागरी 'ओ' के समान तमिल ध्वनि के उच्चारण में ओष्ठ गोलाकार होते हैं। ओष्ठों की स्थिति ठीक अँग्रेज़ी के 'ओ' (O) उच्चारण करते समय की सी होती है। जिह्वा के पिछले भाग और कोमल तालु का प्रयोग होता है तथा जिह्वा और तालु के बीच का स्थान तमिल ठा के उच्चारण की भाँति न अधिक है न कम, फिर भी प्रवृत्ति संवृत्तता की ओर है।

व्यंजन

देवनागरी 'ऱ' के समान तमिल ध्वनि सघोष, दंतमूलीय, लुंठित ध्वनि है। अर्थात् इस ध्वनि के उच्चारण में स्वरतंत्रियाँ निकट आ जाती हैं और स्वरतंत्रियों के निकट आ जाने से उनके बीच निकलती हुई हवा से उनमें कंपन होता है। जिह्वाग्र के पिछले भाग (Blade of the tongue) और ऊपरी दाँतों के पीछे मसूड़ों के खरदुरे भाग से यह ध्वनि सिद्ध होती है तथा जिह्वा लुंठन कर तालु के स्पर्श करती है। इसका उच्चारण देवनागरी के ऱ के कुछ समान सा होता है।

'ळ' के बराबरी की तमिल ध्वनि सघोष, मूर्धन्य, पार्श्विक ध्वनि है। उच्चारण में जिह्वा मूर्धा को स्पर्श करती है, हवा जिह्वा के दोनों पार्श्वों से निकलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ळ के समान ध्वनि सघोष मूर्धन्य संघर्षी ध्वनि है। इसमें भी उपर्युक्त दोनों तमिल व्यंजनों के समान स्वरतंत्रियाँ निकट आ जाती हैं और उनमें कंपन होता है, जिह्वा मूर्धा का स्पर्श करती हैं और इस ध्वनि के उच्चारण में मुखविवर इतना सकरा कर दिया जाता है कि निश्वास रगड़ खाकर निकलती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

⁘. आइदम

(ख)—तमिल की यह ध्वनि आइदम कहलाती है। यह अरबी, फ़ारसी की ख़ ध्वनि के समान जिह्वामूलीय अघोष, संघर्षी ध्वनि है। अर्थात् इसका उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु से लगा कर किया जाता है, इसमें हलक का दरवाज़ा बिल्कुल बंद नहीं होता अत: नि:श्वास रगड़ खाकर निकलती रहती है। किंतु तमिल की आइदम ध्वनि को उच्चारण करते समय ओष्ठ अरबी फ़ारसी ख़ के उच्चारण से अधिक गोलाकार होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त देवनागरी तथा तमिल की ध्वनियों के तुलनात्मक अध्ययन से दोनों की समता, विषमता तथा विशेषता पर प्रकाश पड़ता है।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी में संस्कृत के प्रचलित शब्द-प्रयोग

देवेंद्रकुमार शास्त्री

भाषा का स्वभाव है—बदलाव। सैंकड़ों बरसों क हेर-फेर में प्रायः बोली किसी न किसी भाषा का नाम-रूप ग्रहण कर लेती है। किंतु भाषाओं की बनावट में तथा शब्दावली में बोलियों का योग स्पष्ट रूप से देखा जाता है। वस्तुतः भाषा को समृद्धि बोलियों पर ही निर्भर है। केवल वैदिक भाषा में ही नहीं आर्मेनियन, ग्रीक, लेटिन आदि में भी—बोलियाँ सुरक्षित हैं।[1] किंतु भाषा के विकास में बोलियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझी जाती हैं। परंतु भाषाओं के इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषाओं के विकास में बोलियों का अत्यधिक योग रहता है। धीरे-धीरे बोलियों का अंश घुल-मिलकर बोली के रूप से भाषा में ही परिगत हो जाता है इसलिए हम सरलता से उसे पहचान नहीं पाते।

लगभग हजार वर्ब के पूर्व हिंदी (खड़ी बोली) का जन्म उत्तर भारत और मध्यदेश के बीच हुआ था। इसकी माता अपभ्रंश, मौसी प्राकृत और नानी वैदिक संस्कृत कही जाती है। इसलिए यह स्वभाविक है कि इसमें प्राचीन भाषाओं की शब्दावली ज्यों की त्यों तथा विकसित रूप में मिलती है। हिंदी मे यह प्रवृत्ति आज तक बनी हुई है। खड़ी बोली को सँवारने और सजाने में तो संस्कृत का बहुत बड़ा हाथ रहा है। किंतु आज हम देखते हैं कि हिंदी पर संस्कृत का प्रभाव होने पर भी हिंदी संस्कृत के पीछे नहीं है। खड़ी बोली का विकास अपनी स्वतंत्र चाल-ढाल पर हुआ है।

बोली जब भाषा के ढाँचे में ढलने लगती है तब सबसे पहला परिवर्तन शब्दों में होता है। यद्यपि भाषा का शब्दकोश शास्त्रीय भाषा के शब्दकोश से भरपूर बनाया जाता है पर उसमें देशी शब्द, नाम-रूप, सर्वनाम आदि अपने रूप में ही प्रतिष्ठित—मिलते हैं हिंदी को भी यही दशा है। किंतु वर्तमान हिंदी की सद्यः स्थिति में संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग इस तीव्रता से वृद्धिगत हुआ लक्षित होता है कि कुछ लोग हिंदी के यथार्थ रूप के संबंध में चक्रवाक की भाँति भ्रमित हो कर वास्तविकता से अपरिचित से जान पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में दो ही मार्ग हैं—या तो

[1]फाउंडेशन आव लेंग्वेज—लुई एच० ग्रे०, पृ० 304।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी संस्कृत के शब्द-प्रयोगों को ठीक-ठीक अपना कर संस्कृत का अनुसरण करे अथवा भारतीय बोलियों तथा भाषाओं का आँचल पकड़ कर अपना विकास करे। हिंदी के विकास में तीसरा मार्ग, जिस पर आज हिंदी बढ़ रही है अनुचित एवं अनुपादेय प्रतीत होता है हिंदी भाषा में प्रचलित संस्कृत के कई शब्द-प्रयोग अशुद्ध देखे जाते हैं। ऐसे शब्द-प्रयोगों में हमें न तो भाषा की एकरूपता का पता लगता है और न हम भाषा के नियमों को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। क्योंकि हम संस्कृत के पक्षपाती हो कर भी संस्कृत के शब्द-प्रयोगों का वास्तविक रूप नहीं समझते हैं। यदि हम संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम संस्कृत के नियमों से परिचित हो कर उनका सही प्रयोग करें। तब एक नया प्रश्न यह खड़ा हो उठता है कि क्या हिंदी का व्याकरण तथा भाषा विषयक नियम संस्कृत के मॉडल पर ही बनने चाहिए अथवा हिंदी की प्रकृति और प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर उसका विचार करना होगा। दोनों ही प्रश्न उलझन-पूर्ण हैं। इसलिए यहाँ पर उनका विशेष विचार न कर इतना ही कहना उचित समझता हूँ कि संस्कृत के जो शब्द-प्रयोग हिंदी में बरसों से चल रहे हैं उन्हें तो ज्यों के त्यों चलते रहना चाहिए, पर उनकी देखा-देखी जो नए शब्द गढ़े जा रहे हैं उन पर हमें पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए।

जीवित भाषाओं का यह गुण होता है कि वे जीविनी शक्ति से भरपूर होती हैं। उन्हें सशक्त बनने के लिए परमुखापेक्षी नहीं बनना पड़ता। इसलिए यदि वे किसी अन्य विदेशी भाषाओं से सहायता न लें तब भी बोलियों से शब्द-भंडार को भर सकती हैं, नए-नए शब्दों को रच सकती हैं और समर्थ भाषा बन सकती हैं। यह बात अलग है कि मातृभाषा में जो शब्द-प्रयोग चलते हैं उनमें हम ग्रामीणता की गंध पाते हों अथवा हमारे कानों को वे भले नहीं जान पड़ते हों। किंतु यदि सच पूछा जाए तो हिंदी की उन्नति प्रादेशिक भाषाओं के अधिकाधिक प्रयोग पर ही अवलंबित है।

हिंदी में संस्कृत के प्रचलित शब्द-प्रयोगों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि—वर्तमान स्थिति में अराजकता एवं भाषा संबंधी मनमानी अधिक बढ़ती जा रही है। इसीलिए जब तथाकथित विद्वान भी 'महत्तम' की चाल पर 'लघुत्तम' और 'बृहत्तर' के वजन पर 'लघुत्तर' जैसे अशुद्ध प्रयोग करते हैं तो आश्चर्य नहीं जान पड़ता। यही नहीं, अब **लब्धप्रतिष्ठित** विद्वानों को निमंत्रित किया जाने लगा है और उनकी उपस्थिति **प्रार्थनीय** लिखी जाती है। शुद्ध शब्द-प्रयोग है—लब्धप्रतिष्ठ जिसका अर्थ है प्रतिष्ठित, प्रतिष्ठा प्राप्त। इसी प्रकार 'प्रार्थनीय' का अर्थ है—प्रार्थना के योग्य।

हिंदी में प्रचलित संस्कृत शब्द-रूपों में संधियों की अव्यवस्था विशेष रूप से देखी जाती है। क्योंकि संस्कृत संधि एवं समासबहुलाभाषा है और हिंदी वियोग-प्रधान एवं विश्लिष्ट भाषा है। उदाहरण के लिए—संस्कृत का शब्द है "पुनर्विवेचन"। व्याकरण की दृष्टि से यह शुद्ध शब्द है इसी के ढर्रे पर हिंदी में कुछ लोग "पुनर-संशोधन" और "पुनर्शोध" लिखने लगे हैं जो बिलकुल अशुद्ध हैं। इसके लिए विसर्ग संधि का सामान्य नियम है कि यदि पहले शब्द के अंत में "अ और आ" को छोड़ कर स्वर से आगे विसर्ग तथा दूसरे शब्द में व्यंजन हो तो विसर्ग की रेफ होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और वह [illegible] होती है ; जैसे पुनर्जन्म । इसके पहले शब्द में 'अ' के अंत में पुन: –में विसर्ग हैं और दूसरे शब्द का–पहला अक्षर व्यंजन है (अ) इसलिए विसर्ग का रेफ यानी 'र' हो गया । लेकिन पुन: +संभवमें 'अ' के बाद विसर्ग होन पर भी उसे रेफ नहीं होता । इसके लिए संस्कृत में––विशेष नियम है कि स, श, ष तथा वर्गों के पहले, दूसरे अक्षरों (क, ख, प, फ) के आगे विसर्गों को विसर्ग ही होते हैं । इसलिए पुनर्संभव न हो कर पुन: संभव तथा यश:कीर्तन रूप शुद्ध माने जाते हैं ।

मूल शब्दों का ज्ञान न होने से भी गड़बड़ी देखी जाती है । जैसे कि कई लोग 'सुस्वागतम्' का प्रयोग करते हैं । यह शब्द 'गम्' धातु में आ उपसर्ग जोड़ कर कृदंत रूप आगत में 'सु' प्रत्यय लगा कर सु+आगत से मिल कर बना है । सु का अर्थ है अच्छा, भला । स्वागत का अर्थ है––भले पधारे । अब, सु के पहले एक सु और जोड़ने की क्या आवश्यकता जान पड़ती है ? इसलिए सुस्वागत जैसे प्रयोग भले ही जनता की जबान पर चढ़ गए हों पर भाषा की दृष्टि से अशुद्ध हैं । यही प्रवृत्ति हमें अभी भी, सभी भी आदि में दिखाई देती है । कुछ लोग कहेंगे कि किसी शब्द पर बल देने के लिए ही ऐसा किया जाता है । किंतु मेरा निवदन है कि क्या अब भी, सभी में बल पूर्वक कहने की सामर्थ्य नहीं है ? ये प्रयोग ऐसे ही समझने चाहिएँ जैसे कि 'रामगिरि पहाड़', विंध्याचल पर्वत आदि–हैं जिनमें द्विरुक्ति का भाव दिखलाई पड़ता है ।

इसी प्रकार हिंदी में संस्कृत से आए हुए शब्दों में भाववाचक संज्ञा की भी गड़बड़ी दिखाई देती है । उदाहरण के लिए––सुंदर शब्द की भाववाचक संज्ञा 'सौंदर्य' है । किंतु कुछ लोग उसमें 'ता' प्रत्यय और जोड़ कर सौंदर्यता निहारते हैं । सुंदर की सुंदरता तो ठीक है पर सौंदर्यता कहाँ से आ गई सो समझ में नहीं आती । इसी प्रकार 'चतुर' से 'चातुर्य' शब्द भाववाचक बनता है पर हम 'चातुर्यता' से काम चलाने लगे हैं । तब क्या चतुरता में चतुराई नहीं रह गई है ? हिंदी में प्रचलित नपुण्यता, दाक्षिणात्या, दाक्षिण्यता, कार्माण्यता आदि शब्द ऐसे ही हैं जिनमें 'ता' प्रत्यय केवल हिंदीपन बताने के लिए जोड़ दिया जाता है पर शुद्धाशुद्ध का विवेक नहीं सूझता है ।

यह सच है कि हिंदी जीवित भाषा है इसलिए व्याकरण के नियमों में बाँध कर उसे––स्थिरता प्रदान नहीं की जा सकती । किंतु भाषा की व्यवस्था एवं एकरूपता के लिए यह आवश्यक जान पड़ता है कि कम से कम शिष्ट जनों के प्रयोग किसी एक सरणि या पद्धति का अनुसरण करते हों । यह संभव है कि हिंदी पुराने, घिसे-पिसे, पिटे-पिटाए नियमों की पगडंडी छोड़ कर खुले मार्ग में विचरण करती रहे, किंतु बार-बार खेतों की मेंडों से टकरा काँटों में उलझना उचित नहीं कहा जा सकता ।

हिंदी भाषा की उन्नति के लिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है कि हम भाषा की प्रकृति यानी आत्मा को समझ कर उसकी जीवनीशक्ति को बढ़ाएँ। भाषा की यह जीवनी शक्ति हमे गाँवों की बोलियों में बिखरी मिलती है । जब तक हम हिंदी से प्रादेशिक भाषाओं का पूरा-पूरा संपर्क स्थापित नहीं करते तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने संजीवनी शक्ति नहीं मिल सकेगी। हिंदी का आंचलिक साहित्य तो प्रादेशिक भाषाओं का ही जीवित प्रतिमान है। साहित्य की प्रगति के लिए भी यह बढ़ा हुआ चरण कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि भारतीय जीवन की आत्मा तो उसी में से झाँकती है। उक्त प्रयोगों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में संस्कृत शब्द-प्रयोग शुद्ध रूप में चलने में कई कठिनाइयाँ हैं जिन्हें सब हल नहीं कर सकते। क्योंकि कोई भी पाठक भाषा विषयक कठिनाइयों को व्याकरण ले कर सुलझाने नहीं बठता। और फिर, कोई भी–अहिंदी भाषा-भाषी संस्कृत का व्याकरण पढ़ कर हिंदी को पढ़ने नहीं बैठेगा। क्योंकि प्रत्येक भाषा का अपना स्वतंत्र व्याकरण होता है। । ऐसी स्थिति में राष्ट्र भाषा की उन्नति के लिए हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम संस्कृत के प्रचुर तथा भारी-भरकम प्रयोगों से बच कर प्रादेशिक भाषाओं का अध्ययन कर हिंदी की प्रकृति के अनुरूप शब्दों को ग्रहण करें।

आज हम देखते हैं कि हिंदी में संस्कृत की अनुकरण की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। किसी समृद्ध भाषा से कुछ ग्रहण करना बुरी बात नहीं, पर अंधानुकरण करना उचित नहीं है। उदाहरण के लिए–संस्कृत में 'पंक' शब्द में इलच् प्रत्यय के मेल से 'पंकिल' शब्द सिद्ध होता है। इसी प्रकार फेनिल और रोमिल शब्द भी बनते हैं। किंतु संस्कृत-व्याकरण की दृष्टि से 'रोमिल' शब्द अशुद्ध है। क्योंकि मूल शब्द 'रोमन' है, रोम नहीं। फिर, संस्कृत में शब्द-रचना में सामान्य अंतर आ जाने पर अर्थ-भेद देखा जाता है। जैसे कि 'पिंग' शब्द से पिंगल और पिंगला दोनों रूप वनते हैं। किंतु 'पिंगला' शब्द पुल्लिग पिंगल शब्द का स्त्रीलिंग न हो कर उससे बिल्कुल भिन्न है। इसी प्रकार 'सिध्म' से बनने वाला सिध्मल और सिध्मला शब्द हैं। जिस प्रकार 'पिंगला' का अर्थ दिग्गज की पत्नी है उसी प्रकार 'सिध्मला' सूखे माँस का वाचक है। इसी प्रकार पिंगल का अर्थ ललाई लिए हुए भूरे रंग का और 'सिध्मल' से हुआ रोग वाले का बोधक है। दोनों में कितना अंतर है।

प्रिय-प्रवास की एक पंक्ति है ––

आके पूरा सदन उसने **सौरभीला** बनाया।

संस्कृत में 'सुरभि' का भाववाचक शब्द है––'सौरभ'। किंतु ऊपर लिखी पंक्ति में––'सुरभि' से 'सुरभीला' न होकर 'सौरभीला' का प्रयोग हुआ है जो संस्कृत-व्याकरण की दृष्टि में अशुद्ध है। इसी प्रकार 'वातुल' शब्द का प्रयोग है। संस्कृत का शुद्ध शब्द है––वातूल। 'वातूल' का अर्थ बवंडर या वायु सहने वाला है। हिंदी में यह 'संकुल' के अनुकरण पर प्रचलित जान पड़ता है। ऐसे कई शब्द संस्कृत तथा हिंदी में––मिलते हैं जिनका प्रयोग ठीक-ठीक नहीं होता तथा जो अशुद्ध रूप में चलते हैं। अतएव भाषा विषयक यह समस्या हमें इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि हमें हिंदी के ठेठ रूपों पर––विशेष ध्यान दे कर भाषा की जीवनी-शक्ति को बढ़ाते रहना चाहिए तथा हिंदी के टकसाली शब्दों का प्रयोग कर संस्कृत के अप्रसिद्ध एवं अपरिचित शब्द-प्रयोगों से बचना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें अपनी भाषाओं की विविधता के असुविधाजनक तथ्य को साहस के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि गमले में पौधा उगाने के लिए तो विदेशी मिट्टी काम में लाई जा सकती है, पर खेती के लिए नहीं। उसी तरह विदेशी भाषा सीमित संस्कृति के लिए उपयोगी हो सकती है, विशाल संस्कृति के लिए नहीं। जीवन के पोषण के लिए हमें ऐसी ही संस्कृति की आवश्यकता है ज़ो बृहत् और स्थायी हो और यह विदेशी भाषा के माध्यम से संभव नहीं।

मुझे मालूम है कि इस बात के खिलाफ यह तर्क दिया जाएगा, "आप उच्च शिक्षा भारतीय भाषाओं के माध्यम से देना चाहते हैं पर उसके लिए पाठ्य पूस्तकें कहां हैं?" मैं जानता हूं कि पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं पर जब तक उच्च शिक्षा हमारी भाषाओं के माध्यम से नहीं दी जाएगी तब तक पाठ्य पुस्तकें आएँगी कहाँ से ? यदि सिक्कों का चलन वंद कर दिया जाए तो हम टकसाल के चलते रहने की आशा नही कर सकते।

रवींद्रनाथ ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुट विचार

'बघेली' और उसका साहित्य
आपत्तियाँ एवं शंकाएँ

परिभाषा की भाषा

हिंदी साहित्य का इतिहास

राजभाषा तथा जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बघेली' और उसका साहित्य : आपत्तियाँ एवं शंकाएँ

पूरनचंद श्रीवास्तव

आजकल हिंदी बोलियों के अध्ययन की ओर लोगों की रुचि बढ़ रही है। परिनिष्ठित हिंदी की समृद्धि में यह रुचि सहायक होगी––इसमें संदेह नहीं। 'भाषा' त्रैमासिक के चतुर्थ वर्ष के प्रथम अंक में (सितंबर 1964) में श्री तजकुमार निर्मोही का 'बाघेली और उसका साहित्य' एक लेख प्रकाशित हुआ है। हम लेखक की अभिरुचि की सराहना करते हैं, किंतु हमें कुछ ऐसा लग रहा है कि जैसा अन्यान्य क्षेत्रों में चल रहा है, साहित्य और भाषा के क्षेत्र में भी चला हुआ है। इस बात की आवश्यकता है कि हम जिस साहित्यिक अथवा भाषा संबंधी कार्य को हाथ में लें, उसके प्रति अपनी संपूर्ण निष्ठा अर्पित करें, अन्यथा शोध-कार्य करके भी हम शोध कार्य न कर सकेंगे।

निर्मोही जी, के लेख में प्रयुक्त 'बाघेली' और 'मांडला' शब्दों को हम बानगी के रूप में लें। स्पष्ट होगा कि 'बाघेली' और 'मांडला' शुद्ध रूप नहीं हैं। शुद्ध शब्द 'वघेली' और 'मंडला' हैं। यहाँ लेखक ने कदाचित् अँग्रेज़ी में प्रयुक्त बाघेली (Bagheli) और मांडला (Mandla) शब्दों को आधार बनाया है और हिंदी में 'ा' का उपयोग कर दिया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी त्रुटि विदेशी-मातृभाषा वाले हिंदी के जानकारों से होती है और हो सकती है, किंतु हिंदी के उन विज्ञजनों से जो हिंदी को अपनी भाषा समझते हैं तथा जिन्होंने भारत के इतिहास और भूगोल का अध्ययन करने में गौरव का अनुभव किया है, ऐसी त्रुटियों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अँग्रेज़ी ध्वनियों का सहारा लेकर ही 'श्रीवास्तव' को 'श्रीवास्तवा' और 'शुक्ल' को 'शुक्ला' और 'आंध्र' को 'आंध्रा' कहा करते हैं। आजकल हिंदी की बहुत चर्चा चली हुई है अतः विषयांतर का सहारा लेकर इतना संकेत करना आवश्यक मानता हूँ कि किसी भी भाषा के ज्ञानार्जन में व्यक्ति दो कोटियों में बँट जाते हैं—एक वे जिनकी वह मातृ भाषा है। दूसरे वे जिनकी वह मातृ भाषा नहीं है। भाषा के संबंध में ज्ञान देने वाले को इन दोनों को दृष्टि में रखना चाहिए। दोनों की आवश्यकताओं को समझ कर चलना चाहिए। हिंदी के छात्र हिंदी की ध्वनियों के उच्चारण, वाक्य विन्यास, और शब्द-विन्यास से परिचित रहते हैं अतः उन्हें उतनी कठिनाई नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें शब्दावली का ज्ञान हो जाए तो बहुत कुछ काम निकल जाता है, किंतु अहिंदी भाषी प्रांतों में यदि हम हिंदी का ठीक ज्ञान-प्रसार करना चाहते हैं, तो वाक्य-विन्यास, शब्द विन्यास और ध्वनि-विन्यास का ध्यान रखना चाहिए। हम हिंदी का प्रसार तो चाहते हैं, परंतु तोड़ी-मरोड़ी हुई हिंदी का प्रसार नहीं। हम नहीं चाहते हैं कि 'मंडला' को 'मांडला' कहा जाए, और 'बघेली' को 'बाघेली'। अन्य भाषा भाषी ऐसा कहें-लिखें तो त्रुटि की स्वाभाविकता क्षम्य है किंतु यदि हम हिंदी वाले ही इन ध्वनियों को ग्रहण करने लगेंगे, तो हमारा भाषा का अपनापन, उसका निजत्व कहाँ रह जाएगा ?

बघेली की सीमा के संबंध में भी श्री तेजकुमार जी ने स्वयं निर्णय नहीं लिया। लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ् इंडिया में ग्रियर्सन ने लिखा कि बघेली का विस्तार जबलपुर-मंडला तक है। तबसे आज तक किसी ने इसे कसौटी पर कसने का प्रयत्न नहीं किया। जितने भी 'टेबिल-वर्कर' भाषाविज्ञान के विद्वान हैं, सबने उसी लकीर को पीटने का प्रयत्न किया है। आज इस बात की आवश्यकता है कि इस तरह के प्राचीन कथनों की परख की जाए। इस प्रसंग में हम यह कहना चाहते हैं कि दमोह-जबलपुर की बोली बुंदेली है, बघेली नहीं ; और मंडला की बोली प्रमुखत: गोंड़ी और छत्तीसगढ़ी की गड्डर है। बघेली कटनी-मुड़वारा से चंद्राकार मोड़ लेकर चंदिया, शहडोल की ओर प्रवाहित होती है, और इसी रूप में आगे छत्तीसगढ़ी के माध्यम से मंडला की बोली को बघेली मानना बहुत लंबा खिचाव होगा।

बघेली पर अन्य समीपवर्ती बोलियों के प्रभाव की चर्चा करते हुए श्री तेजकुमार जी लिखते हैं—"पूर्वी भाषाओं (अवधी) की इसमें मिश्रित अभिव्यक्ति पाई जाती है।" यहाँ हमें यह कहना है कि कोई भी बोली अपनी सीमावर्ती अन्य बोलियों से प्रभावित रहती है, आसपास की बोलियों का प्रभाव पड़ता ही है। ठीक है। किंतु जहाँ निर्मोही जी 'अवधी की मिश्रित अभिव्यक्ति' बताते हैं, वहाँ हमारा कहना है कि बघेली बोली अवधी की सगी बहिन है। बघेली और अवधी का वही संबंध है जो बुंदेली और ब्रज का।

अवधी :

एक रात जमराज औ नारद जी मां ई बतैं भईं की मनई सूध होत हवै कि नांही। जमराज कहिन की बनई तौ सद्म्वासर होत हवै, मुला नारद जी कहति रहैं कि मनई बहुत चलता-पुर्जा होत हवै। नारद जी ही कहैं लागि कि भाई जमराज, तुमका मरे मनइन ते हमेसा पाला परा हवै। जियत मनई समुहै परी तौ चौकड़ी बिसर जइहौ।

बघेली :

एक रोज जमराज अउ नारद जी माँही अस बातें भई की मनई सूध ह्वात है कि नाहीं। जमराज कहिन की मनई तो सद्म्वासर ह्वावत है, पै नारद जी कहत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है कि मनई बहुतै चलता-पुरजा ह्वात है। नारद जी यहै कहैं लाग कि मइलो,
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जमराज तुमहीं मरमनैन के हमेसा पालम परा है। जियत मनई अगाईं परी तो
चौकड़ी बिसर जइहा।

अवधी और बघेली तिङ्न्त बहुल बोलियाँ हैं ये दोनों प्राच्य वर्ग में आती हैं। बुंदेली प्रतीच्य वर्ग में आती है, किंतु श्री तेजकुमार जी ने लिखा है, "बुंदेली और बघेली में भी विशेष अंतर प्रतीत नहीं होता।"

लिए बुंदेली भाषा का नमूना

एक रोज जमराज जू और नारद जू में जे बातें भई कै मनंख सूधौ होत है कै नई? जमराज ने कहीं कै मनंख तो सूधो होत हैं, रहीं नारद जू कत रयें कै मनंख मौंत चलतो-पुरज़ो होत है (हो थे)। नारद जू येई कहन (कन) लगे कै भइया जमराज तुमखों मरे मनंख सें हमेसा पालो परो हैं। जियत मनंख आगें परहै तो चौकड़ी बिसर जैहो।

भाषा संबंधी विशेषताओं की दृष्टि से बघेली और अवधी में नाममात्र का ही अंतर है। डा० उदयनारायण तिवारी ने लिखा है कि बघेली को अवधी से पृथक् मानने की आवश्यकता नहीं है। बघेलखंड की जनता की भावना का आदर करने के लिए ग्रियर्सन ने इसे अलग स्थान दिया है। अवधी और बघेली दोनों में 'मैं', 'मोर', 'तोर' सर्वनाम चलते हैं, परंतु बुंदेली में 'में' होगा और 'मोर-तोर' के बदले 'मोरो-तोरो' कहा जाएगा। अवधी और बघेली में संप्रसारण की प्रवृत्ति देखी जाती है, किंतु यह बुंदेली में नहीं है। बुंदेली का ढब ब्रजीय है। 'मोहैं हलाहल नंद के द्वारे' ब्रज का है। अवधी में 'द्वारे' नहीं रहेगा। 'दुआरे' हो जाएगा। ऐसा ही बघेली में भी होगा। बुंदेली का 'मोरी देहरी तोरो-द्वारो', बघेली में 'मोर दिहरिया तोर दुआर' हो जाता है।

अवधी और बघेली में विशेषणों में पुंविभक्ति (ा) प्रायः नहीं है। 'भला' को बुंदेली में 'भलो' कहा जाएगा और——बघेली में 'भल' (बघेली में कर्ता के अनुसर्ग का अभाव है तथा संबंध के अनुसर्ग में लिंग के अनुसार परिवर्तन नहीं होते। इसी प्रकार के अन्यान्य विभेद बुंदेली और बघेली को एक दूसरे से पूर्णतः पृथक् करते हैं। बघेली की संज्ञा मिलती है यदि, तो अवधी से।

श्री निर्मोही जी ने जो बघेली के गीत दिए हैं वे शुद्ध नहीं हैं। डा० भगवती प्रसाद शुक्ल ने 'बघेली लोकरागनी' पुस्तकों में सब प्रकार के गीत दिए हैं। वे शुद्ध बघेली में हैं। अन्य सज्जनों ने भी जो संग्रह किए हैं उनसे भी बघेली गीत-विधान का बोध हो सकता है।

बघेली में कार्य करने वालों में लाखन प्रतापसिंह उरगेश, बल्देव 'बैदेही' और श्री श्रीचंद जैन आदि नामों के उल्लेख के साथ डा० भगवती प्रसाद शुक्ल का उल्लेख आवश्यक है। उनकी पी-एच० डी० की उपाधि बघेली का गौरव है।

2—2 CHD/65
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीचंद जैन ने अनेक कहानियों का संग्रह किया है और कुछ गीतों का भी। कहानियाँ तो छोटी पुस्तकों में प्रकाशित हुई हैं, किंतु गीतों का प्रकाशन नहीं हो सका। वे इस बोली के लोक साहित्य की किसी विधा पर शोध-कार्य प्रस्तुत करने का विचार कर रहे थ, कितु अभी-अभी उन्होंने दिशा बदल दी है, और बघेली के बदले बुंदेली की ओर झुक गए हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा निवेदन हैं कि बोली की सीमा और स्वरूप निश्चित करने में विद्वानों को चाहिए कि वे केवल पुस्तकालय में बैठकर ही छाँटा-फटका न करें। केंद्र स्थानों पर जा कर स्वयं वस्तु-स्थिति को समझना चाहिए। शब्दों के स्वरूपों को भी हिंदी के अनुसार ही लेना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिभाषा की भाषा

राजेंद्र अवस्थी

वाक्यों में व्यवस्थित शब्दों द्वारा विचारों का संचरण भाषा का एक प्रमुख कार्य है। श्रोता और वक्ता, लेखक और पाठक के बीच इस संचरण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि दोनों प्रयुक्त शब्दों के एक ही अर्थ स्वीकार करते हों। दूसरे, कथन की सत्यता आँकने के लिए भी यह आवश्यक है कि कथन का अर्थ स्पष्ट हो। शब्दों के अर्थ निर्धारित करना ही परिभाषा का प्रमुख उद्देश्य है। परिभाषित करने की रीतियों के संबंध में विचारकों में बड़ा मतभेद रहा है, और विभिन्न प्रकार की समस्याएँ उठती रही हैं। इस संबंध में एक यह भी प्रश्न विवादग्रस्त रहा है कि परिभाषा का 'विषय' क्या है : शब्द, वस्तु या विचार। जो विचारक शब्द को परिभाषा का विषय मानते हैं उनके अनुसार सभी परिभाषाएं नामवाची (nominalistic) हैं, अर्थात्, उनका कार्य केवल नाम और प्रतीक के पारस्परिक संबंध से है। दूसरी ओर कुछ विचारकों का कहना है कि हम वस्तु को परिभाषित करते हैं, और इसलिए सभी परिभाषाओं को वे वास्तविक परिभाषाएँ कहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य चिंतक विचार को परिभाषा का विषय मानते हैं। इनके अनुसार सामान्य जीवन में हम वस्तुओं का इतना विशद विवरण पाते हैं कि हमारे लिए उन वस्तुओं को परिभाषित करने की अपेक्षा 'वर्णित' करना अधिक सुगम होता है। 'वर्णन' का आधार मानसिक चित्र या प्रत्यक्ष अनुभव है जब कि 'परिभाषा' विचार पर आधारित है। 'वर्णन' कल्पना और स्मृति-संवेदक है, 'परिभाषा' विचार-संवेदक। फिर भी, ये विचारक भी यह मानते हैं कि वर्णन और परिभाषा परस्पर एक दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं।

शब्द हमारे विचारों के चिह्न या प्रतीक हैं, तथा अन्य चिह्नों की तुलना में अधिक सुबोध इसलिए है कि ये मौखिक और लिखित, दृश्य और श्रव्य दोनों ही हैं। फिर भी, सभी चिह्नोंको निर्देशित करने वाले नियमों का पालन इन्हे भी करना पड़ता है। इन नियमों में प्रमुख नियम यह है कि चिह्न द्वारा व्यक्त विचार के बीच एकवाची सादृश्य (univocal correspondence) हो[1]; अर्थात् प्रत्येक

---

[1]एक वाची सादृश्य का सिद्धांत आस्वल्ड (Ostwald) द्वारा प्रतिपादित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विचार के लिए एक ही चिह्न हो और प्रत्येक चिह्न के लिए एक ही विचार। इस दृष्टि से तर्कशास्त्रियों ने परिभाषा की जो परिभाषा की है वह विचारणीय है। Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri उनके अनुसार परिभाषा ऐसे दो पदों के बीच तार्किक समीकरण है जिनमें से एक वह प्रतीक है जिसे परिभाषित करना है और दूसरे ऐसा प्रतीकों से निर्मित है जिन्हें पहले से ही परिभाषित किया जा चुका है[1]। परिभाषा की यह परिभाषा तर्क संगत भले ही हो, परंतु यह अत्यधिक नाम वाची (nominalistic) है, क्योंकि यह परिभाषा के दोनों पक्षों—परिभाष्य तथा परिभाषित—को प्रतीक या प्रतीकों का समूह मानती हैं, इसका यह आशय लिया जा सकता है कि तार्किक विश्लेषण मात्र प्रतीकों का खेल है। प्रतीकों के मात्र इस खेल से बचने के लिए हमें यह कहना चाहिए कि परिभाषा के दूसरे पद—परिभाषित—का एक निश्चित अर्थ है, वह एक निश्चित विचार को अभिव्यक्त करता है, और इस प्रकार परिभाषा का कार्य इस अर्थ को अपने पहले पद के प्रतीक (जिसे हम परिभाष्य कहते आए हैं) को प्रदान करना है जिसका अभी तक कोई अर्थ नहीं है। इस विश्लेषण के आधार पर कम-से-कम इतना कहा जा सकता है कि परिभाषा का कार्य किसी प्रतीक को अर्थ प्रदान करना या किसी विचार को नाम देना है। परंतु विचार को नाम प्रदान करने का यह कार्य वस्तुतः मात्र औपचारिक है; परिभाषा का प्रमुख कार्य अपने पद—परिभाषित—द्वारा अभिव्यक्त होने वाले विचार की रचना करना है, उस विचार को नाम प्रदान करना गौण है। इस दृष्टि से परिभाषा आवश्यक रूप से विचार रचना से संबंधित है।

सामान्यतः यह विचार किया जा सकता है कि उन्हीं विचारों को परिभाषाबद्ध किया जाता है जो व्यावहारिकता की दृष्टि से उपयोगी होते हैं अर्थात् जो तार्किक विश्लेषण में बहुधा प्रयुक्त होते हैं। परंतु परिभाषा के प्रति नामवाची दृष्टिकोण के अनुसार एक नए प्रतीक का प्रयोग हम इसलिए करते हैं कि वह प्रतीकों के उस समूह का संक्षिप्त रूप में प्रतिनिधित्व करता है कि जिसका बार-बार का प्रयोग दुरूह होने लगता है। उदाहरण के लिए यह समीकरण लीजिए : राम = त्रेताकाल में अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र। इस उदाहरण में 'राम' परिभाष्य है तथा त्रेताकाल में अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र—प्रतीकों का यह समूह 'परिभाषित' है। प्रतीक 'राम' परिभाषित प्रतीकों के समूह का संक्षिप्त रूप से प्रतिनिधित्व करता है, और इसलिए इसका प्रयोग प्रतीकों के उस समूह के स्थान पर सुगमता से हो सकता है। इसका यह तात्पर्य हुआ कि परिभाषा विचार (जिस विचार की परिभाषा करनी है) कुछ शब्दों के समूह के रूप में बौद्धिक विश्लेषण में बहुधा व्यक्त होता रहता है, और इसीलिए इस बात की आवश्यकता होती है कि शब्दों के उस समूह को कोई एक नाम प्रदान किया जाए। इस प्रकार नैयमिक दृष्टि से यद्यपि तार्किक परिभाषाएँ अवश्य ही नामवाची हैं, तथापि वे विचार की भी परिभाषाएँ हैं, नाममात्र की नहीं।

पहले हम यह कह चुके हैं कि परिभाषा तर्क-समीकरण है, परंतु यह पूर्ण रूप से ठीक नहीं है। जैसा कि हमने देखा, तर्क-समीकरण दो पदों के बीच एक संबंध है, और इनमें से प्रत्येक पद का अपना महत्त्व है। परंतु परिभाषा दो ऐसे पदों के बीच स्थापित

---

[1]हम पहले को 'परिभाष्य', दूसरे को 'परिभाषित', तथा इन दोनों के समीकरण को 'परिभाषा' कहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीकरण है जिसमें से एक पद का अभी कोई अर्थ नहीं है जबकि दूसरे पद का निश्चित अर्थ है, और यह समीकरण इसी उद्देश्य से स्थापित किया गया है कि दूसरे पद का अर्थ पहले को प्रदान किया जा सके। वस्तुतः समीकरण एक प्रमेय है जो सत्य भी हो सकता है और मिथ्या भी। परंतु परिभाषा एक रीति है जो स्वयं न सत्य है और न मिथ्या। इस प्रकार हम यह कह सकते ह कि जहाँ तक परिभाषाएँ नामवाची हैं और इस रूप में पहले से स्वीकृत विचार को कोई अर्थ प्रदान करने का दावा नहीं करती, वहाँ तक वे विवाद से परे हैं। परंतु एक बार रीति की स्थापना हो जाने पर परिभाषा तर्क-समीकरण के अनुरूप हो जाती है, और उसके दोनों पदों को समान मानना पड़ता है। परिभाषा सत्य कथन नहीं है, परंतु फिर भी एक बार उसे स्वीकार कर लेने पर उसे सत्य भी मानना पड़ेगा क्योंकि फिर उसे अस्वीकृत या परिवर्तित करना असंगत होगा।

फलतः बौद्धिक विश्लेषण में तर्क-समीकरण के रूप में ही परिभाषाएँ प्रकट होती हैं। तर्क-समीकरण का प्रमुख लक्षण है किसी अन्य प्रमेय में उसके एक पद को दूसरे पद के स्थान पर प्रयुक्त करने की संभावना। यही परिभाषाओं की भी उपयोगिता है। वे परिभाष्य के स्थान पर परिभाषित और परिभाषित के स्थान पर परिभाष्य के प्रयोग की संभावना प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में, यदि हम किसी पद से संबंधित कोई प्रमेय सिद्ध करना चाहते हैं तो हमें उस पद को उसके 'परिभाषित' द्वारा स्थानापन्न करना होगा ताकि हम उसका विश्लेषण कर सकें और इस प्रकार उसका अर्थ प्रकट कर सकें, इस प्रकार के विविध संभावित परिवर्तनों के अनंतर हम परिभाषित को पुनः स्थापित कर, और अंततः उसे परिभाष्य द्वारा स्थानापन्न कर वह प्रमेय प्राप्त करते हैं जिसे सिद्ध करना था इस अर्थ में परिभाषा उपपादन (demonstration) का एक आवश्यक तत्त्व है क्योंकि हम किसी पद के संबंध में कोई तथ्य तब तक कैसे स्थापित कर सकते हैं जब तक हम उसके अर्थ को संदर्भ में न लें? यह अर्थ केवल परिभाषा द्वारा ही उपलब्ध होता है, क्योंकि किसी विचार को कोई ऐसा तत्त्व (यहाँ अर्थ से तात्पर्य है) प्रदान करना जो उसकी परिभाषा में (अर्थात् उसकी रचना-व्यवस्था में) विद्यमान नहीं है, वर्जित है।

अरस्तु के अनुसार परिभाषा ज्ञान का आदि और अंत दोनों हैं। यह कथन परिभाषा के संबंध में दो दृष्टिकोण उपस्थित करता है: एक दृष्टि से परिभाषा ज्ञान का आदि है, क्योंकि जिस विषय की जानकारी हम प्राप्त करना चाहते हैं उस विषय के संबंध में कम-से-कम हमारे कुछ स्पष्ट विचार तो होने ही चाहिएँ। इस अभिप्राय से उस विषय की जिस परिभाषा से हम प्रारंभ करें उस परिभाषा का मात्र वर्णनात्मक होना यथेष्ट होगा। इस प्रारंभिक परिभाषा के संबंध में हमें केवल यह ध्यान रखना होगा कि उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट हो। इसके लिए कुछ परंपरागत नियम भी हैं, यथा, परिभाषा उस विषय (परिभाष्य) के सारभूत लक्षणों का उल्लेख अवश्य करे। इसके लिए परिभाष्य विषय के 'सारभूत' और 'आकस्मिक' गुणों के बीच के अंतर को ध्यान में रखना आवश्यक बताया गया है। विषय का 'सारभूत' गुण यह है कि जिसके बिना वह जैसा है वैसा नहीं रह सकता। उदाहरण के लिए, कोई मनुष्य यदि वर्षों अकेले निर्जन बन में रहे तो वह संभव है वह मनुष्यता के 'सारभूत' गुण खो बैठे और मात्र एक वन्य पशु बन जाए, उन 'सारभूत' गुणों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना वह मनुष्य नहीं रह सकता। इसलिए 'मनुष्य' की परिभाषा करते समय उसके इस 'सारभूत' गुण को ध्यान में रखना पड़ेगा कि वह सामाजिक प्राणी है या यह कि उसे अन्य मनुष्यों की अपेक्षा रहती है। परिभाष्य के 'सारभूत' गुणों के उल्लेख के लिए दो बातें आवश्यक हैं : उसका 'वर्ग' (Genus), तथा उस 'वर्ग' के अन्य सदस्यों से उसकी भिन्नता (Differentia)। उदाहरण के लिए घोड़े की यह परिभाषा लीजिए : घोड़ा-खुरों वाला, अयाल-युक्त चौपाया जानवर। इस परिभाषा में 'खुरोंवाला चौपाया जानवर' कह कर यह व्यक्त किया गया है कि घोड़ा किस वर्ग का जानवर है। वह खुरों वाले चौपाए जानवरों के वर्ग का सदस्य है जिसमें गधा, खच्चर, बकरा आदि आते हैं। फिर 'अयालयुक्त' कह कर उसे वर्ग के अन्य सदस्यों से भिन्न किया गया है। इस प्रकार 'वर्ग' और 'भिन्नता' की दृष्टि से घोड़े की जो परिभाषा निर्धारित की गई उसका आधार घोड़े का 'सारभूत' गुण है। यदि इसके विपरीत यह कहा जाए कि घोड़ा 'घास खाने वाला जानवर है' तो इस कथन का आधार घोड़े का 'सारभूत' गुण नहीं वरन् 'आकस्मिक' गुण होगा और तब उसकी उपयुक्त परिभाषा न हो पाएगी।

परिभाषा संबंधी दूसरा परंपरागत नियम यह है कि परिभाषा व्यक्त करने वाला पद परिभाष्य के लिए सुगमता से प्रयुक्त किया जा सके, अर्थात् परिभाषा न तो अत्यधिक विस्तृत हो और न अत्यधिक संकीर्ण। किंवदंती है कि एक बार प्लेटो ने डायोजेनीज़ से मनुष्य की यह परिभाषा बताई कि मनुष्य 'पर रहित द्विपद जानवर है'। दूसरे दिन डायोजेनीज़ ने प्लटो के सम्मुख एक मुर्गे के पर नोच कर उपस्थित करते हुए पूछा, 'प्लेटो, क्या यही तुम्हारा आदमी है ?' स्पष्ट है कि प्लेटो द्वारा प्रतिपादित मनुष्य की परिभाषा अत्यधिक विस्तृत थी। इसी प्रकार अत्यधिक संकीर्ण परिभाषा भी दोषपूर्ण होगी, यथा मेज़ के विषय में यदि मैं यह कहूँ कि 'यह वह वस्तु है जिस पर मैं इस समय लिख रहा हूँ'।

तीसरे, परिभाषा संदिग्ध, लाक्षणिक तथा अस्पष्ट शब्दों द्वारा न व्यक्त की गई हो। परिभाषा का उद्देश्य संदिग्धता मिटा कर अर्थ स्पष्ट करना है, इसलिए संदिग्ध भाषा का प्रयोग उसके उद्देश्य के ही विपरीत है। अनावश्यक क्लिष्टता परिभाषा में अस्पष्टता ला सकती है, यथा 'भोजन करने' के लिए यह कहना कि 'क्रमशः चवर्ण, क्लेदन तथा ग्रसन की क्रियाओं को सफलता-पूर्वक करना भोजन करना है।' उसी प्रकार लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग भी कभी-कभी परिभाषा में अस्पष्टता ला सकता है, यथा 'निर्माण कला घनीभूत संगीत है।'

चौथे, जिसे परिभाषित करना है उसी पद का प्रयोग परिभाषा में वर्जित है। कहीं पर 'रस' की मैंने यह व्याख्या पढ़ी थी कि 'रस वह है जिससे मन रसने लगे।' स्पष्ट है कि ऐसी परिभाषा निरर्थक होगी। पाँचवे, परिभाषा जहाँ सकारात्मक हो सकती है जहाँ उसे नकारात्मक नहीं होना चाहिए, यथा, घोड़े की परिभाषा के लिए 'द्विपद नहीं है', 'इसके पंजे नहीं होते' आदि कथन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अनुपयुक्त होंगे। छठे, परिभाषा में अनावश्यक शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। 'ज्ञानराशि के संचित कोष का नाम साहित्य है' — यह कथन अनावश्यक शब्दों के प्रयोग का उदाहरण है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु जैसा कि कहा जा चुका है परिभाषा के ये परंपरागत नियम उसके प्रतिपादन या अभिव्यक्ति के लिए ही अनावश्यक हैं, और परिभाषा के प्रतिपादन या अभिव्यक्ति का प्रश्न तब उठता है जब उसकी खोज पहले की जा चुकी हो। अतः ये नियम परिभाषा की खोज के लिए नहीं हैं। इनका संबंध अरस्तू के कथन के पूर्व भाग ('परिभाषा ज्ञान का आदि है') से है। परिभाषा की प्राप्ति की प्रणाली वैज्ञानिक प्रणाली है। इस वैज्ञानिक प्रणाली का संबंध अरस्तू के कथन के दूसरे भाग (परिभाषाज्ञान का अंत है) से है। जब हम किसी विषय की पूर्ण रूपेण संतोषजनक परिभाषा का उल्लेख करते हैं तब हम वस्तुतः उस विषय की जानकारी के लिए किए गए वैज्ञानिक गवेषण के प्रतिफलों की चर्चा करते हैं। ऐसी दशा में परिभाषा का कार्य खोज के कार्य का एक भाग है। यहाँ हम परिभाष्य विषय के संबंध में यह जानना चाहते हैं कि वह विषय 'क्या' और 'कैसे' है, अर्थात् हम उसके अस्तित्व के 'कारणों' की खोज करते हैं और उसकी उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

परिभाषा की अभिव्यक्ति के लिए मान्य आधार 'वर्ग' और 'भिन्नता' हमें परिभाष्य के प्रयोग के लिए 'आवश्यक' और 'यथेष्ट' परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं, जैसे 'घोड़ा खुरोंवाला अयालयुक्त चौपाया जानवर है', इस कथन में वर्णित आवश्यक और यथेष्ट परिस्थितियाँ हैं: (1) खुरों वाला, (2) अयालयुक्त, (3) चौपाया, (4) जानवर, जिनके विद्यमान रहने पर ही हम 'घोड़ा', प्रतीक का प्रयोग कर सकते हैं। जो 'विषय' इन परिस्थितियों से बाहर है उसे 'घोड़ा' नहीं कहा जा सकता। 'वर्ग' और 'भिन्नता' के आधार पर निर्मित ये परिस्थितियाँ इस प्रकार विषय की परिभाषा निर्धारित करती हैं।

परंतु वस्तुतः 'वर्ग' और 'भिन्नता' के ये आधार सभी प्रकार के विषयों को परिभाषित करने में असमर्थ हैं। यथा, घोड़े की परिभाषा में भले ही ये आधार सहायक हों परंतु घोड़े की किसी विशेष नस्ल की परिभाषा निर्धारित करने में कठिनाई उपस्थित होगी। "अरबी घोड़ा वह है जिसमें 'अ', 'ब', 'स' गुण विद्यमान हों" इस परिभाषा को कंठस्थ करने वाले ऐसे साधारण व्यक्ति से जिसे घोड़ों की नस्लों का ज्ञान नहीं है, यह आशा करना अनुचित होगा कि वह घोड़ों की भीड़ में अरबी घोड़े को पहिचान ले। उस व्यक्ति को अरबी घोड़े का ज्ञान कराने के लिए कदाचित दूसरा व्यावहारिक ढंग होगा उसके सम्मुख अरबी घोड़ों के कई उदाहरणों को उपस्थित करना। परंतु इसमें भी यह आवश्यक नहीं कि सभी अरबी घोड़े एक ही रंग, शारीरिक गठन तथा वज़न के हों, यद्यपि ये सभी बातें प्रसंगसंगत हो सकती हैं, यथा, मान लीजिए साधारणतः अरबी घोड़े लाल रंग के होते हैं, अतः सामान्यतः अरबी घोड़े की पहिचान के लिए लाल रंग प्रसंगसंगत माना जाएगा। परंतु कोई अरबी घोड़ा काला या सफ़ेद भी हो सकता है, और इस अंतर के बावजूद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भी वह अरबी घोड़ा ही कहलाएगा क्योंकि वह वस्तुतः अरबी घोड़ा है। या दूसरा उदाहरण लीजिए—मान लीजिए अरबी घोड़े का यह स्वभाव है कि वह बठता नहीं, अब यदि किसी अरबी घोड़े ने बैठने की आदत अपना ली हो तो क्या यह कहना सत्य होगा कि यह अरबी घोड़ा **नहीं है**? दूसरी ओर, चूंकि परिभाषा के अनुसार अरबी घोड़ा नहीं बैठता, और यह घोड़ा बैठता है, इसलिए क्या यह कहना ठीक होगा कि यह अरबी घोड़ा है?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन उदाहरणों से दो निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथमतः अरबी घोड़ों के गुणों में यह अंतर तर्क-संगति के कारण हमें यह मानने के लिए बाध्य करता है कि अरबी घोड़ों के कोई सामान्य गुण नहीं होते; दूसरे शब्दों में, तर्क-संगति के कारण हमें यह मानने के लिए विवश होना पड़ेगा कि अरबी घोड़ों का कोई 'वर्ग' नहीं है। दूसरे निष्कर्ष के लिए हम उपर्युक्त उदाहरण का पुनः उल्लेख करेंगे। बठने वाले अरबी घोड़े के संबंध में ये दोनों कथन—(1) 'यह अरबी घोड़ा है,' (2) 'यह अरबी घोड़ा **नहीं है**'—अनुपयुक्त हैं। ऐसी दशा में यही कहना अधिक उपयुक्त होगा कि सामान्यतः ऐसे विचित्र उदाहरण नहीं होते, और परिभाषा निर्धारित करते समय चूंकि ऐसे विचित्र उदाहरणों को संदर्भ में नहीं रखा गया है इसलिए यह उदाहरण परिभाषा की सीमा और उसके क्षेत्र के बाहर है। यह प्रश्न ही नहीं उठता कि ऐसा असाधारण घोडा अरबी घोड़ा है या नहीं, क्योंकि जो व्यक्ति साधारण परिभाषा के अनुसार 'अरबी घोड़ा' पद प्रयुक्त कर रहा है उसे (इस साधारण परिभाषा को जिसमें ऐसे असाधारण उदाहरण संदर्भ में रखे ही नहीं गए, मान लेने के कारण) यह पूर्वकल्पना भी करनी पड़ेगी कि ऐसे असाधारण उदाहरण नहीं होते।

तात्पर्य यह कि परिभाषा के निर्धारण में पूर्व कल्पनाओं का महत्त्वपूर्ण योग है।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी साहित्य का इतिहास

श्यामसुंदर लाल

हिंदी साहित्य का इतिहास समझने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि संक्षेप में हम हिंदी भाषा का इतिहास समझ लें। किस प्रकार और किन परिस्थितियों में हिंदी भाषा का जन्म हुआ ? उसकी पूर्व परंपरा क्या है ? इन बातों को समझने के उपरांत ही हम साहित्य का इतिहास समझ सकते हैं।

हमारे देश में मुख्य रूप से दो परिवार की भाषाएँ प्रचलित हैं—एक आर्य और दूसरी द्रविड। हिंदी, बंगाली, गुजराती, मराठी, पंजाबी, असमिया, उड़िया आदि आर्य परिवार की हैं और तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड आदि द्रविड़ की। आर्यों के भारत में आने से पूर्व यहाँ पर द्रविड़ रहते थे। वे स्थायी रूप से इस देश में बस गए थे। उनकी भाषा, संस्कृति और साहित्य काफ़ी उन्नति कर चुका था। आर्यों के आने के बाद उन्हें उनके साथ संघर्ष करना पड़ा। धीरे-धीरे द्रविड़ भागकर दक्षिण की ओर स्थायी हो गए। बाद में आर्यों के यहाँ बस जाने पर संस्कृतियाँ एक हो गईं। दोनों ने एक दूसरे को काफ़ी प्रभावित किया और कालांतर में एक नई भाषा और संस्कृति का जन्म हुआ।

भारत में आने पर आर्यों की जो भाषा प्रचलित थी, वह वैदिक भाषा कही जाती है। उस समय तक यह भाषा केवल बोलचाल में थी। उसका सारा साहित्य मौखिक था, अब तक वह लिखी नहीं जाती थी। बाद में विद्वानों के प्रयत्न से लिपि-बद्ध हुई। आगे चल कर सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा अलग बनने लगी; जिस पर द्रविड़ भाषा के अनेक शब्दों का प्रभाव था। धीरे-धीरे विद्वानों की वैदिक भाषा और सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा में काफ़ी अंतर हो गया। अब कुछ विद्वानों ने बोलचाल की भाषा को ही साहित्य सृजन के लिए आवश्यक समझा। पर उन्होंने उसमें आवश्यकतानुसार सुधार आवश्यक समझा। उन्होंने सुधार कर के भाषा का जो स्वरूप स्थिर किया, उसका नाम बाद में संस्कृत भाषा पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संस्कृत हजारों वर्षों तक पूरे भारतवर्ष में प्रचलित रही। उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पश्चिम से पूर्व तक सब ने इसे अपनाया और देश भर में अनेक विद्वान हुए, जिन्होंने साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, राजनीति, दर्शन, समाज-शास्त्र आदि सभी विषयों पर रचनाएँ कीं। परिणामस्वरूप हमें अपने पूर्वजों से विरासत में संस्कृत साहित्य का अपार भंडार मिला है और आज भी संस्कृत के अनेक विद्वान भारत के सभी भागों में हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा का यह नियम है कि पढ़े-लिखे, सुशिक्षित एवं विद्वानों की भाषा में सामान्य जनता की भाषा से भिन्नता रहती है। अशिक्षित और सामान्य जनता के उच्चारण देश-काल की स्थिति के अनुसार भिन्न हो जाते हैं और यही उच्चारण की भिन्नता धीरे-धीरे कालांतर में नए शब्दों को जन्म देकर नई भाषा बना लिया करती है। इस स्वाभाविक नियम के अनुसार जब संस्कृत पूरे देश में प्रचलित थी, उस समय भी बोल चाल में भिन्न-भाषाएँ प्रचलित थीं। सामान्य जनता उन भाषाओं का ही उपयोग करती थी।

भगवान बुद्ध ने सामान्य जनता में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए पाली और मागधी भाषाओं का उपयोग किया। उस समय पूरा बुद्ध साहित्य इन्हीं भाषाओं में लिखा गया। पर ये भाषाएँ पूरे देश में प्रचलित न हो सकीं। बौद्ध काल के बाद पूरा भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया। राजनैतिक संघर्षों के कारण एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र में कम जाते थे। परिणामस्वरूप सभी क्षत्रों में जनता द्वारा भिन्न-भिन्न भाषाएँ अपनाई गईं। उन सब को हम अपभ्रंश भाषाएँ कह सकते हैं। उस समय मुख्य रूप से पाँच अपभ्रंश भाषाएँ प्रचलित थीं, जिनके नाम मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, पाश्चात्यी और महाराष्ट्री हैं। इन्हीं पाँचों अपभ्रंश प्राकृत भाषाओं से आज प्रचलित आर्यपरिवार की सभी भाषाएँ बंगाली, हिंदी, गुजराती, मराठी आदि निकली हैं। 'शौरसेनी' नामक अपभ्रंश से धीरे-धीरे हिंदी भाषा का विकास हुआ है।

आज हिंदी के जिस स्वरूप का प्रयोग हम करते हैं, वह पिछले डेढ़ सौ वर्षों के भीतर ही विकसित हुई है। इससे पूर्व राजस्थान, ब्रज, अवध, भोजपुर आदि क्षेत्रों में प्रचलित शैलियों का ही साहित्य में भी उपयोग होता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज भाषा तथा जनता

डालचंद्र जैन

कार्यरूप देना और योजना बनाना--इन दोनों में अंतर है।

प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है, यह कार्य कैसा होगा और इसका विकास किस रूप में होगा तथा किस तरह कार्य का छोटा अंकुर एक विशाल वट वृक्ष की शाखाओं की तरह बन जाएगा। पर कोई व्यक्ति इस बात को सोचने के लिए अपना थोड़ा-सा अमूल्य समय नहीं दे पाता कि अगर उस योजना को कार्यरूप दिया जाए तो क्या ही अच्छा हो और उसका छोटा-सा अंकुर वट वृक्ष की भाँति स्वयं ही पनपने लगे।

आज हमारे सामने यह मसला है कि किस तरह हिंदी को सरकारी कार्य में लाया जाए तथा उच्चतर स्नातकों को हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाए। सोचते सब यही हैं पर उसे कार्यरूप में लाने के लिए एक छोटे से संकुचित दायरे में आकर पीछे हट जाते हैं। ऐसा क्यों? अगर हम किसी योजना को एक मकान की नींव की भाँति खड़ा करके चलें तो क्या वह योजना पूर्ण रूप से तयार उस मकान की भाँति नहीं होगी? मकान की नींव को पक्का व मजबूत करने के लिए उसमें उपयुक्त चूना-मिट्टी का रोड़ा, राख का प्र ोग करना होता है इसी प्रकार आज हमारे समक्ष हिंदी राष्ट्र भाषा के निर्माण का प्रश्न है।

अपनी राष्ट्र भाषा को जब हम लोग स्वयं ही एक हौआ समझकर दूर भागते हैं तो दूसरे देशवासी तथा अन्य व्यक्ति कैसे उसे अपनाएँगे। हम सोचते तो बहुत दूर की हैं पर उसे कार्यरूप देने की लगन हम में नहीं है। केवल योजना बनाने तथा बड़ी-बड़ी उड़ान भरने से क्या लाभ। जब तक हम स्वयं ही यह ध्यय बना कर न चलें कि हमें अपनी राजभाषा को विश्व के स्तर पर लाकर खड़ा करना है तथा उसकी नींव को पक्का बनाना है चाहे कितने ही तूफान-भूकंप क्यों न आएं पर उसकी नींव राष्ट्रीय-एकता के बल पर ही दृढ़ करेंगे तब तक यह महान काम पूरा नहीं हो सकता।

यह नींव राष्ट्रीय एकता के बल पर ही दृढ़ हो सकेगी। हिंदी भाषी जनता अहिंदी भाषी जनता को प्रमपूर्वक राजभाषा अपनाने के लिए सहानुभूति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाए तथा उन पर दबाव न डाले। अहिंदी भाषी जनता भी अपना कर्तव्य समझती हुई राजभाषा सीखने में पूर्ण सहयोग दे उसे किसी प्रकार दबाव न समझे। हिंदी भाषी तथा अहिंदी भाषी दोनों का ही कर्तव्य है कि राजभाषा को विश्व के आंगन में हरा-भरा देखने के लिए एकता का दृढ़ संकल्प करना है। प्रांतीय भाषाओं का सीखना और सिखाना अपना ध्येय बनाना चाहिए। केवल छोटी-छोटी तुच्छ भावनाओं के आधार पर चलने से तो दोनों ही भाषियों को हानि होने की संभावना है।

इसके अतिरिक्त उन भाइयों से मेरा अनाग्रह है जो अँग्रेज़ी सभ्यता तथा विचार व भाषा के परिधान को पहिन कर अपने को पूर्ण बौद्धिक समझते हैं, राजभाषा अपनाने में अपमान अनुभव करते हैं, वे संकुचित विचारों को दूर कर यदि राजभाषा की नींव को दृढ़ करने में सहयोग दें तो वे स्वयं ही एक आंतरिक आनंद का अनुभव करेंगे। मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि वे अँग्रेज़ी में वार्तालाप जहाँ तक हो उचित स्थान पर ही करें। हर समय गीतों के रूप में गाने से तो उसका रंग चढ़ेगा ही। आप आफिस या अन्य ऐसे स्थान जहाँ पर आपका कार्य बिना अँग्रज़ी के चल ही नहीं सकता उनके अतिरिक्त शेष स्थानों तथा समय में हर समय हिंदी का ही प्रयोग करें तो कितना अच्छा हो। अगर अँग्रज़ी के वाक्यों को ही हिंदी लिपि में लिखें तो स्वयं ही हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। इसके अतिरिक्त हिंदी भाषी लोगों का भी कर्तव्य है कि वे व्यवहार में हिंदी का प्रयोग स्वयं करें तथा अपने अहिंदी भाषी भाइयों से करावें।

उद्योग–व्यापार से जिन वस्तुओं का निर्माण होता है उन वस्तुओं का नाम अगर हिंदी में हो तो कितनी सरलता आ जाए। इसके साथ-साथ वस्तुओं का प्रसार तथा प्रचार करने के लिए विज्ञप्ति-पत्र हिंदी में हो तो इससे जो ग्रामीण भाई हैं वे भी उन वस्तुओं के उपयोग का लाभ उठा सकेंगे।

इस प्रकार राज भाषा का प्रसार स्वयं होने लगेगा तथा इसके प्रसार करने में जनता सहयोग देगी। केवल योजना बनाने मात्र से कार्य नहीं चल सकेगा। जब तक हम स्वयं उसे अपनाने में रुचि उत्पन्न नहीं करेंगे। कहने-करने में बहुत अंतर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

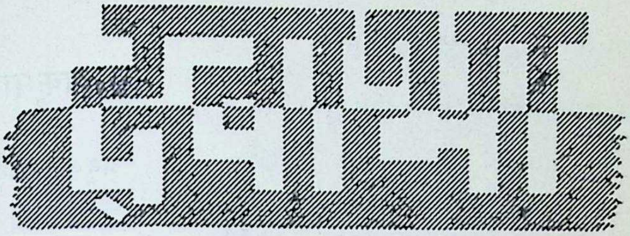

वीरों का कैसा हो वसंत ?

(कविता)

सुभद्राकुमारी चौहान

कोटर और कुटीर

(कहानी)

सियारामशरण गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरों का कैसा हो वसंत ?

सुभद्राकुमारी चौहान

अनु०--रामचंद्र देसाई

(1)

वीरों का कैसा हो वसंत ?
आ रही हिमाचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार बार।
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग् दिगंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

(2)

कली सरसों ने दिया रंग ।
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वसु वसुधा पुलकित अंग अंग,
है वीर वेश में किंतु कंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

(3)

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आए हैं आदि-अंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

વીરોની વસન્ત

સ્વ. સુભદ્રાકુમારી ચૌહાણ
અનુ.–શ્રી રામચંદ્ર દેસાઈ

(૧)

વીરોની વસન્ત કેવી હોય ?
હિમાલયથી પોકાર આવી રહ્યો છે.
સમુદ્ર વારંવાર ગર્જના કરી રહ્યો છે,
પૂર્વ દિશા, પશ્ચિમ દિશા, ધરતી, અનંત આકાશ,
દશે દિશાઓ-બધા પૂછી રહ્યા છે
કે વીરોની વસંત કેવી હોવી જોઈએ ?

(૨)

ખીલેલી સરસવે રંગ આપ્યો,
કામદેવ રસ લઈને આવી પહોંચ્યો.
પૃથ્વી રૂપી પત્નીનાં અંગેઅંગેમાં આનંદ સમાયો છે,
પરંતુ પતિ વીર પુરૂષનો સ્વાંગ સજીને આવ્યો છે.
એ જાણવા માંગે છે કે વીરોની વસંત કેવી હોવી જોઈએ ?

(૩)

આ તરફ કોયલ આલાપ મારી રહી છે,
પેલી તરફ લડાઈના વાજા પર ગીત વાગે છે.
એક તરફ આનંદ છે, બીજી તરફ યુદ્ધ છે.
આ પ્રમાણે આનંદનો આરંભ અને અંત
વસંતમાં ભેગા મળે છે.
વીરોની વસન્ત કેવી હોવી જોઈએ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(4)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलवारें हों या हों कृपाण,
चल-चितवन हो या धनुषबाण,
अब यही समस्या है दुरंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

(5)

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझ में क्यों लगी आग ?
ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

(6)

हल्दी घाटी के शिलाखंड,
ऐ दुर्ग ! सिंहगढ़ के प्रचंड,
राणा ताना का कर घमंड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

(7)

'भूषण' अथवा कवि 'चंद' नहीं,
बिजली भर दे वह छंद नहीं,
है कलम बंधी स्वच्छंद नहीं,
फिर हमें बतावे कौन, हंत ?
वीरों का कैसा हो वसंत ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(૪)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ભલે ગળામાં હાથ નાંખેલા હોય કે કટાર હોય,
ભલે ચંચળ ચિંતન હોય કે ધનુષ્ય બાણ હોય,
હવે એજ મુશ્કેલ સવાલ છે
કે વીરોની વસન્ત કેવી હોવી જોઈએ ?

(૫)

હે ભૂતકાળ ! તું મૌન છોડીને કહે,
અરે લંકા ! તારામાં આગ શા કાજે લાગી ?
અરે કુરૂક્ષેત્ર ! હવે તું જાગ, જાગ
અને તારા અપાર અનુભવને આધારે કહે
કે વીરોની વસન્ત કેવી હોવી જોઈએ ?

(૬)

ઓ હલ્દીઘાટના પહાડો,
ઓ સિંહગઢના પ્રચંડ કિલ્લા,
મહારાણા પ્રતાપ અને તાનાજીનું ગૌરવ લો
અને આજે જ્વલંત યાદગીરીઓ જગાવો
જેથી ખબર પડે કે વીરોની વસન્ત કેવી
—હોવી જોઈએ ?

(૭)

આજે કવિ 'ભૂષણ' કે કવિ 'ચન્દ' નથી
અને વીજળી જેવો જુસ્સો ભરી દે એવા
કવિતાના છંદ પણ નથી.
આજે કલમ બંદ થઈ ગઈ છે.
એની મરજી મુજબ ચાલી શકતી નથી.
અફસોસ છે કે તો આપણને પછી કોણ બતાવે
કે વીરોની વસન્ત કેવી હોવી જોઈએ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटर और कुटीर

स्व० सियारामशरण गुप्त

अनु०--रामचंद्र देसाई

दोपहर का समय था। सूर्य की तेज किरनों से जमीन तमतमा रही थी। वृक्षों के पत्ते निस्पंद थे। मानों किसी और भयंकर कांड की आशंका से साँस-सी साधे खड़े थे। इसी समय अपने छोटे से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा—पिताजी!

बाहर की प्रकृति के रूखेपन की तरह ही वह स्वर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—"क्या है बेटा?"

"है और क्या? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गए हैं।"
"बेटा, अधीर न हो। समय सदा एक-सा नहीं रहता।"

"तो यही तो मैं भी कहता हूँ—समय सदा एक-सा नहीं रहता। पुरानी बातें पुराने समय के लिए थीं। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाए हुए हैं जिस तरह वानरी मरे बच्चे को चिपकाए रहती है। घनश्याम की बाट आप जोहते रहिए। अब मुझसे यह नहीं सध सकता।"

"घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।"

"आप कहते हैं कि कोई अनर्थ नहीं हुआ, मैं कहता हूँ, प्यास की इस यंत्रणा से बढ़कर और अनर्थ क्या होगा। जहाँ से भी होगा मैं जल ग्रहण करूँगा ही।"

चातक सिहर कर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उन अश्रव्य (न सुनने योग्य) वचनों और कानों के बीच में कोलाहल की खाई-सी खड़ी कर देनी चाही। थोड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કોટર અને કુટિર

સ્વ. સિયારામશરણ ગુપ્ત

અનુ.—રામચંદ્ર દેસાઈ

બપોરની વેળા હતી. સૂર્યનાં પ્રખર કિરણોથી ધરતી ધીકતી હતી. વૃક્ષોના પર્ણો પણ નિસ્પંદ હતાં, જાણે કોઈ ભયાનક કાંડ મંડાવાની આશંકામાં એ સૌ શ્વાસ થંભાવી ઊભાં હતાં. એવે વખતે પોતાના નાનકડા કોટરમાં બેઠેલા ચાતકપુત્રે કહ્યું; 'પિતાજી !'

બહારની પ્રકુતિની રૂક્ષતા જેવો જ એ કંઠસ્વર પણ રૂખો હતો. ચાતકે બાળકની પીઠે ચાંચ ફેરવી પંપાળતાં પ્રેમપૂર્વક પૂછયું; 'શું છે બેટા ?'

'હોય શું બીજું ? આ તરસે તો પ્રાણ કંઠે આવી ગયો છે.'

'અધીરો થા મા બેટા ! સમય સદાકાળ નથી રહેતો.'

'તે હું પણ એ જ કહું છું ને !— સમય, સદાકાળ એક સરખો નથી જ રહેતો જુની વાતો જુના જમાનાને માટે હતી. મરેલા બાળકને વાંદરી વળગાડી રાખે છે તેમ તમે પણ હજી જૂની વાતો છાતીએ વળગાડી રાખી છે. વાદળણી રાહ તમે જોયા કરો, મારાથી હવે એ બને એમ નથી.'

'વાદળ સિવાય બીજા કોઈનું પણ જળ આપણે ગ્રહણ નથી કરતા, આપણા કુળનું એ વ્રત છે એ વ્રતને લીધે જ તો આપણા ગોત્રમાં નથી કોઈ મૃત્યુ પામ્યું કે નથી કોઈ અનર્થ થયો.'

'તમે કહો છો, કોઈ અનર્થ નથી થયો ! તૃષાની આવી વ્યથા કરતાં યે વધારે બીજો કોઈ અનર્થ હશે ખરો ? હું તો જ્યાંથી મળી જશે ત્યાંથી પાણી પી લઈશ.'

ચાતકે થરથરી પાંખો ફફડાવી. જાણે આ અશ્રાવ્ય વચનો અને શ્રવણેન્દ્રિયના માર્ગ વચ્ચે કોલાહલની એક ખાઈ ખોદી નાખવા પ્રયાસ કર્યો. થોડીવાર ચૂપ રહી

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

देर चुप रह कर वह बोला—"बेटा, धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरतीमाता की गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाड़ले लड़के ने कहा—"व्रत पालन करते हुए इतने दिन तो हो गए, पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गए। फिर सूर्य के और निकट रहनेवाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है ?"

"बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवनदान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए थोड़ी सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है।"

"पिताजी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता। परंतु यह भी नहीं चाहता हूँ कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूँ। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूँगा। घनश्याम को भी सोचना चाहिए था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बंदोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और जल नहीं छूऊँगा। हमीं क्यों इस तरह कष्ट सहें ? आप चाहे मुझे रखें या छोड़ें, मैं यह झंझट नहीं मानूंगा।"

चातक ने देखा मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—"यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?"

चातक-पुत्र चुप रह गया। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था, जिस प्रकार लाखों जीव-जंतु जल पीते हैं, उसी प्रकार मैं भी पिऊँगा। परंतु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा, कमज़ोरी यही है। वह जानता था कि कमज़ोरी पर ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढ़ी है। बोला—"चुप कैसे रह गए ? बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?"

हिचकिचाकर, अपनी बात स्वयं ही खंड-खंड करते हुए लड़के ने कहा—"जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा।"

पिताने कहा, "पड़ोस में वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं। तुम वहाँ जल पी सकोगे ? बोलो, है हिम्मत ?

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आगई, अह, उसमें कितनी गंदगी है। पत्ते, सूखे डंठल आदि गिर-गिर कर उसमें सड़ते रहते हैं। कीड़े कुला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

એણે કહ્યું; 'ધીરજ રાખ, બેટા ! આપણા આ વ્રતને લીધે જ તો વરસાદ વરસે છે
ધરતીમાતાનો ખોળો લીલોછમ થઈને લહેરિયાં લે છે! આ વ્રત [illegible] દેવા માટે
નથી.'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

લાડકવાયા દીકરાએ કહ્યું ? 'વ્રત પાળતાં પાળતાંયે આટલા દિવસ તો થઈ ગયા પણ પાણીનું તો કયાંય નામનિશાનેય નથી જણાતું. ને ગરમી પણ કેવી પડે છે ! બધાં નદીનાળાં પણ સૂકાઈ ગયાં. આવામાં સૂર્યની વધારે નિકટ રહેનારાં એ આકાશનાં વાદળોમાં તો પાણી કયાંથી જ ટકી શકે ?

'બેટા, પૃથ્વીનો આ નિર્જળ ઉપવાસ છે. આના પુણ્યથી જ એને જીવનદાન મળશે. ભોજનનો પૂરેપૂરો સ્વાદ માણવો હોય ને પૂરેપૂરી તૃપ્તિ પામવી હોય, તો થોડી ભૂખ સહી લેવી એ માત્ર અનિવાર્ય જ નહીં, આવશ્યક પણ છે.'

'થોડી ભૂખના પ્રશ્નથી હું નથી ગભરાતો, પિતાજી ! પણ સાથે જ આખો વખત ભૂખ જ સહયા કરવાની પણ મારી તૈયારી નથી. એવું વ્રત મને વ્યર્થ લાગે છે દેવતાઓના શાપ વહોરીને પણ હું આ વ્રત તોડીશ. વાદળે પણ વિચારવું તો જોઈએ ને કે એના વિના કોઈના પ્રાણ નીકળી રહ્યા છે ! મનુષ્ય જાતે પણ વાદળોનો વિશ્વાસ છોડીને ખેતીની રક્ષા માટે નહેર, તલાવ કે કુવાની વ્યવસ્થા કરી લીધી છે. ખેતરોએ તમારી જેમ ડોકું નહોતું ધુણાવ્યું કે વાદળ સિવાય બીજા કોઈનો સ્પર્શ પણ નહીં કરીએ. આપણે જ શા માટે આટલું વેઠવું ? તમે મને જોડે રાખો યા કાઢી મૂકો, પણ હું તો આ જંજાળમાં રહેવાનું પસંદ નથી કરતો.'

ચાતકે જોયું કે વાત બગડવા માંડી છે; આવી રીતે આ નહીં માને. એટલે પૂછયું 'વારુ, પણ એ તો કહે કે તું પાણી પીશ કયાંનું ?'

ચાતક પુત્ર મૌન રહયો. આ વિશે તો હજુ સુધી એણે વિચાર જ નહોતો કર્યો. એણે ધારેલું કે બીજા લાખો જીવોની જેમ જ એ પણ પાણી પી લેશે. પણ એ શી રીતે બને છે એ એને સમજાયું નહોતું.

દીકરાને ચૂપ જોઈને બાપ સમજી ગયો કે નબળી કડી અહીં જ છે. એ જાણતો હતો કે નબળી બાજુ પર આક્રમણ કરવું અજ વિજયનું પ્રથમ સોપાન છે. એણે કહ્યું; 'કેમ ચૂપ થઈ ગયો ? બોલ તો ખરો ! તું પાણી કયાંનું પીશે ?'

અચકતાં, તૂટક શબ્દોમાં પુત્રે કહ્યું; 'બીજા જયાંથી પીએ છે ત્યાંથી હું પણ પી લઈશ.'

પિતાએ કહ્યું; 'અહીં પાસે જ પેલી તલાવડી છે. કેટલાયે પશુ-પક્ષીઓ ને મનુષ્યો પણ ત્યાંનુ પાણી પીએ છે. તું ત્યાંનું પાણી પી શકીશ, બોલ, છે હિંમત.'

એ તલાવડીના સ્મરણમાત્ર થી જ ચાતકપુત્રને કમકમાં આવી ગયાં. ઓહ ! કેવી ગંદકી હતી એમાં ? પાંદડા, સૂકાં ડાળાં, ઝાંખરાં ને એવું કંઈ કેટલુંયે એમાં પડયું

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बुलाते हुए उसमें साफ़ दिखाई दे सकते हैं। लोग उसमें कपड़े निखारने आते हैं या गंदे करने, कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था। एक बार एक आदमी को अंजुली से पानी पीते देख उसने पिता से कहा था—"देखो पिताजी, ये कैसे घृणित जीव हैं? अवश्य ही उसने अपने व्रत का जिक्र उस समय नहीं किया था, परंतु उसके मन में उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता कैसे से कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पीऊँगा।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चातक बोला—"बेटा, अभी तुम ना समझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परंतु जब इसके लिए बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुमसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?"

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिताजी की बात बिना सुने वह बोल उठा—"मैं गंगाजल ग्रहण करूँगा।"

चातक ने कहा—"गंगाजी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता तो जा। परंतु यदि तूने कहीं एक बूंद भी ली, तो हमें मुँह न दिखाना।"

चातक-पुत्र प्रणाम करके फुर्र से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर भी झुक कर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दत्तक' से पूरी किया चाहती थी।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातक-पुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक उसके पैरों में जीवनयात्रा की इतनी ही मंजिल तय करने के योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके मानो आधे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

પડ્યું સડતું. ખદબદતા કીડા પણ નરી આંખે જોઈ શકાતા. લોકો એમાં કપડાં ધોઈ તે ચોખ્ખાં કરવા આવતા હતા કે વધારે ગંદાં કરવા, એ કેટલીય વાર વિચાર કરવા છતાં એ સમજી નહોતો શકયો. એક વાર એક માણસને એમાંથી હથેલી વડે પાણી પીતાં જોઈને એણે પિતાને કહ્યું; 'જુઓ ને પિતાજી ! આ કેવા ઘૃણાસ્પદ જીવો છે!' અલબત, તે વખતે એણે એમનાં વ્રતનો ઉલ્લેખ તો નહોતો કર્યો. પણ એના મનમાં તો એજ બાબતનો ગર્વ કેવો ઉભરાતો હતો ! અત્યારે હવે એ પિતાને શી રીતે કહે કે, 'હું એ તળાવડીનું પાણી પીશ.'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ચાતકે કહ્યું; 'બેટા, હજુ તું નાદાન છે. ગમે ત્યાંથી પાણી પી લેવાની વાત તને સહેલી લાગે છે. પણ એ માટે તું જયારે બહાર નીકળીશ, ત્યારે જ તને સમજ પડશે. આપણી તૃષામાં કરોડોની તૃષાની વ્યથા સમાયેલી છે ને આપણી તૃપ્તિ સાથે કરોડોની તૃપ્તિ સંકળાયેલી છે. એકલા તૃપ્તિ પામવાનું તારાથી બની શકશે ?'

ચાતક પુત્રે એ વખતે પોતાની જીદને ટેકો આપી શકે એવી કોઈ દલીલ વિચારતો હતો. પિતાનું સાંભળ્યા વિના જ એ બોલી ઉઠયો, હું ગંગાજીનું પાણી પીશ, પિતાજી !

ચાતકે કહ્યું; 'ગંગાજી તો અહીથી છેક પાંચ દિવસના અંતરે છે. તારે નર્યો જ માનવું તો જા, પણ જો કયાંયથી પણ એક ટીપું પીએ, તો અમને મોં બતાવવા પાછો ના આવતો !'

ચાતકપુત્રે પ્રણામ કર્યો ને પાંખો ફફડાવતો તે ઊડી ગયો.

કુટિર

બુધ્ધનના કાચા ઘરના છાપરાં પર નળિયાં પથરાયેલાં હતાં. નાની નાની બે કોટરીઓ ને એને જ અનુરૂપ આંગણું ને ઓશરી હતાં. પુરાણું છાપરું પણ ઝૂકીને ઘરની અંદર આશ્રય લેવોનો વિચાર કરી રહ્યું હતું. પ્રકાશના અભાવમાં દીવાલો એ માટેની હોંશ એમાં પડેલાં બાકોરાં ને ચિરડાને 'દત્તક' લઈને જાણે પૂરી કરતો હતી.

એ ઘરમાં બીજું કંઈ હોય કે ન હોય, પણ એના આંગણાની વચ્ચે ચાતકપુત્રને માટે વિસામાને યોગ્ય એક લીમડાનું વૃક્ષ તો હતું જ. ત્રીજા દિવસનો થાક ઉતારવા એ આ લીમડાના ઝાડ પર ઊતર્યો. લીમડાની સ્નિગ્ધતા ને સઘનતાએ ચાતકપુત્રના હૃદયમાં પોતાનાં આમ્રવૃક્ષની સ્મૃતિ જગાડી. વિસામો મળ્યાં છતાં એના મનમાં એક પ્રકારની વ્યાકૂળના જાગી હતી. પાકેલી લીંબોળીની જેમ એ વેદનામાં પણ કંઈક માધુર્ય હતું.

નીચે વૃક્ષની છાયામાં બુધ્ધન સૂતેલો પડયો હતો. એણે પચાસ કરતાં વધારે વરસો જોયાં હતાં, અને હજુ થોડા દિવસ પહેલાં તો જીવન યાત્રાની બીજી એટલી જ મજલ કાપવાની હામ એના હૈયામાં ઉભરાતી હતી. પણ એક દિવસ લકવાએ અચાનક એનું હલનચલન અટકાવી દીધું––જીવન અને મૃત્યુએ જાણે આપસમાં સમજુતી પર

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आधे शरीर का बटवारा कर लिया। स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में 15-16 वर्ष का एकमात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन संध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आए थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट के नीचे तक उतरने की शक्ति नहीं थी तो भी उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सवेरे थोड़े-से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोड़े से चने और पीने का पानी यथास्थान रख गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था, शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा। परंतु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल हो उठा। जो समय आनंद की स्निग्ध-शीतल छाया में शीतकाल के दिन की तरह मालूम ही नहीं होने पाता और निकल जाता है, वही दुःख की दाहक ज्वाला में गरमी के पहाड़ से दिनों की भाँति अकाट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परंतु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों हो गए। बार-बार अपने कान खड़े करके रात के सन्नाटे में वह गोकुल के पद-शब्द सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज़ सुनकर वह चौंका। वास्तव में गोकुल ही था। उसने कहा—"कौन, गोकुल! बेटा, आज बड़ी, देर लगाई।"

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबराकर पूछा—"क्या हुआ, बेटा? क्या हुआ?"

"आज मजूरी नहीं मिली। अब कैसे चलेगा?"

"ऐं, मजूरी नहीं मिली! फिर इतनी देर क्यों हुई?"

शांत होकर गोकुल ने उसे अपना हाल सुनाया।

* * *

सवेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले पड़ गए। सोचा—आज भगवान् ही मालिक है। काम पर पहुँच कर उसने देखा—ओवरसियर साहब आज कुछ ज्यादा सफ़ा हैं। इंजीनियर साहब काम देखने आए थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसियर साहब को ही देख गए थे। अन्याय का यह बोझा उन्होंने दिनभर मज़दूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मज़दूरी देने के समय भी साफ इंकार कर दिया—आज दाम नहीं दिए जाएँगे। उस अदालत के फ़ैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती? ओवरसियर साहब का हुक्म मानकर मजदूर अपने-अपने घर लौट गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

આવીને અડધા-અડધા શરીરના ભાગ વહેંચી લીધા. એની પત્ની તો આ પહેલા જ વિદાય થઈ ચૂકી હતી. ઘરમાં પંદર-સોળ વર્ષનો એક માત્ર પુત્ર ગોકુળ રહ્યા હતો એને આધારે જ એના બાકીના દિવસો પસાર થતા હતા.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ગોકુળ એક જગાએ કામ પર જતો હતો. કામ પૂરું કરીને રોજ સાંજ થતામાં એ પાછો આવી જતો. આજે હજુ સુધી એ પાછો નહોતો ફર્યો. એટલે બુધ્ધન વ્યાકુળ હતો. ઉપર આકાશમાં તારા વેરાઈ ગયા હતા. ચારે તરફ નિસ્તબ્ધતા ફેલાઈ હતી ને ઘરમાં બુધ્ધન એકલો હતો. જો કે એનામાં તો ખાટલાની નીચે પગ પણ મૂકવાની શકિત નહોતી, છતાં મન તો એનું કોણ જાણે કયાંયે ફલાંગો મારતું ફરતું હતું.

ગોકુળ સવારે થોડા ચણા ખાઈને કામ પર ગયો હતો. બુધ્ધન માટે પણ થોડા ચણા અને પાણી પાસે મુકી ગયો હતો. ઘરમાં આજે બિલ્જું કંઈ ખાવાનું નહોતું. કહી ગયો હતો કે 'સાંજે મજૂરીના પૈસા મળશે તે માંથી લોટ લાવીને રોટલી બનાવી દઈશ.' પણ આજે તો એ હજુ સુધી આવ્યો પણ નહોતો. અનેક આશંકાઓથી ઘેરાઈને એનું મન બેચેની અનુભવતું હતું. જે સમય 'આનંદની સ્નિગ્ધ શીતળ છાયામાં, શિયાળાના દિવસોની જેમ' ખબર પણ ન પડે ને પસાર થઈ જાય છે, તે જ સમય, દુખની દાહક જવાળામાં ગરમીના પહાડ જેવા દિવસોની જેમ પસાર કરવો અઘરો થઈ પડે છે. હજુ સુધી રાત બહુ નહોતી થઈ છતાં જાણે વર્ષો વીતી ગયાં હોય એવું બુધ્ધનને લાગતું હતું. વારે વારે કાન સરવા કરી કરીને એ રાત્રિની નિસ્તબ્ધતામાં ગોકુળના પદરવનો અણસાર સાંભાળવાનો પ્રયત્ન કરતો હતો. ઘણી વાર પછી એની પ્રતીક્ષા સફળ થઈ' દરવાજો ઉઘડાવાનો અવાજ સાંભળી એ ચોંકી ઊઠયો. ખરેખર એ ગોકુળ જ હતો. એણે પૂછયું, 'કોણ ગોકુળ ? બેટા, આજે બહુ મોડું કર્યું ?'

ગોકુળ ધીમે ધીમે પિતાના ખાટલા પાસે આવ્યો ને રડી પડયો.

બુધ્ધને પૂછયું, 'શું થયું બેટા ? શું થયું ?'

'આજે મજૂરી ન મળી, હવે શું કરીશું ?'

'હે ! મજૂરી ન મળી ! ત્યારે આટલું મોડું કેમ થયું ?'

શાંત થઈ ગોકુળે માંડીને વાત કરી.

સવારે ઘેરતી નીકળતાં જ ગોકુળે સામે ખાલી ઘડો જોયો. જોતાં જ એના પગ ઢીલા થઈ ગયા. થયું, આજે તો ભગવાન કરે તે ખરું. કામે પહોંચ્યો તો જોયું ઓવરસિયર સાહેબ આજે કંઈક વધારે ગુસ્સે હતા. ઍન્જિનિયર સાહેબ કામ જોવા આવ્યા હતા. કામની ખબર કાઢવાને બદલે ઓવરસિયર સાહેબની જ ખબર લઈ ગયા હોય એમ લાગતું હતું. અન્યાયનો આ ટોપલો એમણે આખો દિવસ પેટ ભરીને મજૂરો પર ખાલી કર્યા કર્યો ને એટલાથી સંતોષ ન હોય તેમ સાંજે મજૂરીના પૈસા ચૂકવવાની વેળાએ ચોખ્ખું સુણાવી દીધું : 'આજે પૈસા નહીં મળે' ઓવરસિયર સાહબનો હુકમ એટલે સર્વોચ્ચ અદાલતનો હુકમ ! અની સામે તો અપીલ પણ કયાંય ન થઈ શકે !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा दिखाई दिया। पास पहुंचने पर मालूम हुआ, रुपए-पैसे रखने का बटुआ है। उठाकर देखा तो काफ़ी वज़नदार था। वह सोच में पड़ गया——इसे खोल कर देखना चाहिए या नहीं? न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा। कौतुहल निवृत्ति करने के लिए उसे टटोला। टटोलने पर मालूम हुआ। रुपए हैं और बहुत कम भी नहीं। थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा सोचता रहा——इसका क्या करूं? उसके पिता ने उसे अब तक जो सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले। वह यही सोच रहा था कि यह बटुआ किस का है? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है, तब उसकी क्या दशा होगी? रुपए-पैसे का क्या मूल्य है, यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके वह इस प्रकार सिहर उठा, मानो उसी का बटुआ खो गया हो।

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी। उस पर कान में मोती पिरोई सोने की बाली पहने हुए एक महतो बैठे थे। संभव है यह बटुआ उन्हीं का हो। और किसी के पास इतने रुपए होना आसान भी नहीं है। यहाँ कुएँ पर गाड़ी रोक कर उन्होंने पानी पिया होगा और आगे चल कर तंबाकू भरा होगा। एक जगह आग जलाई जाने के चिह्न मौजूद थे। उसने इस बात का विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड़ पड़ा।

लगभग आधे घंटे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास पहुंच गया। गोकुल ने हाँफते-हाँफते पूछा——महतो, तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया?

महतो ने चौंक कर गाड़ी में इधर-उधर देखा। साथ ही जेब पर हाथ रखा तो पाषाण की तरह निस्पंद हो गए। गोकुल से महतो की वह अवस्था देखी न गई। वह बटुआ दिखा कर उसने झट से प्रश्न कर दिया——यह तुम्हारा है?

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वंद्व सा हो गया। मानो बिजली के खटके से प्रकाश बुझा कर घर फिर से उद्दीप्त कर दिया गया हो।

महतो ने कहा——"भगवान् तुझ सुखी रखें। भैया। इसे। कहाँ पाया?"

"रास्ते में पड़ा था। इसमें कितने रुपए हैं?"

महतो ने हिसाब लगा कर बताया। बयालीस रुपए एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने के पैसे, एक कागज, एक चाँदी का छल्ला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ગોકુળ પાછો આવતો હતો, ત્યા એક જગાએ એણે રસ્તામાં કંઈક પડેલું જોયું. જોતાં જણાયું કે કોઈનો પૈસા રાખવાનો બટવો હતો. ઉઘાડીને જોયું તો ઠીક વજનદાર લાગ્યો. એ વિમાસણમાં પડયો. ઉઘાડીને જોવું કે નહીં? ન જોવાને નિર્ણય જ દૃઢ કરવો પડયો. કુતૂહલવૃત્તિ નિવારવા એણે બહારથી જ એ પર હાથ ફેરવી જોયું. અંદર રૂપિયા હોય એમ લાગ્યું. ને તે પણ કંઈ ઓછા નહોતા. થોડી વાર સુધી તો એ ત્યાં જ ઉભો ઉભો વિચારતો રહ્યો. આંનું શું કરવું? અત્યાર સુધી માતા પિતાએ એને જે કંઈ શીખવ્યું હતું, તેણે આ બટવો પોતાની પાસે રાખી લેવાનો તો વિચાર પણ કરવાની તક નહોતી આપી. એને તો એ જ વિચાર થતો હતો કે આ હશે કોનો? જ્યારે એને ખબર પડશે કે બટવો ખોવાઈ ગયો છે, ત્યારે એની કેવી દશા થશે? રૂપિયા-પૈસાની કેટલી ને કેવી કિંમત છે, તે આ થોડા દિવસામાં ગોકુળ સારી રીતે સમજતો થયો હતો. એ વ્યકિતની એ વખતની દશાની કલ્પના કરતા જ એ એવી રીતે ધ્રૂજી ઉઠયો, જાણે એનો પોતાનો જ બટવો ન ખોવાઈ ગયો હોય!

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

એને યાદ આવ્યું કે થોડે દૂર એણે એક ગાડી જતી જોઈ હતી. કાનમાં મોતી વાળી સોનાની વાળી પહેરેલા એક સજ્જંન એમાં બેઠા હતા. કદાચ આ બટવો એમનો હશે ને બીજા કોઈ પાસે તો આટલા રૂપિયા હોય પણ કયાંથી? અવું કંઈ ગળે ઉતરે એમ નહોતું. એમના જ હશે. અહીં કૂવા પાસે ગાડી ઊભી રખાવીને એમણે પાણી પીધું હશે ને તાપણું કરીને તંબાકુ ભરી હશે. પાસે જ તાપણું કર્યાનાં ચિન્હો દેખાતાં હતાં. એને એ વિચાર પણ ન આવ્યો કે હવે એ ગાડી સુધી પહોંચવું હોય તો કેટલો વખત લાગે! બસ, દોડવા જ માંડયું. લગભગ અડધા કલાકની મહેનત પછી એ ગાડી પાસે પહોંચ્યો. એણે હાંફતાં હાંફતાં પૂછ્યું; 'ભાઈશ્રી, તમારું કંઈ ખોવાયું તો નથી ને?'

સદ્ગૃહસ્થે ચોંકીને ગાડીમાં આમતેમ નજર કરી. સાથે જ હાથ ગજવા પર ગયો ત્યાં પાષાણની જમ નિ:સ્તબ્ધ થઈ ગયા. ગોકુળ પેલા ભાઈની આ સ્થિતિ વધુ જોઈ શકયો. તરત બટવો બતાવી અણે પૂછ્યું; 'આ તમારો છે?'

એક ક્ષણ ભરમાં તો જાણે જીવન અને મૃત્યુનું દ્વંદ્વયુધ્ધ થઈ ગયું. જાણે વીજળીની ચાંપ દાબી એક ઝટકામાં પ્રકાશ ઓલવી દઈ પુન: ઘરમાં અજવાળું થઈ ગયું. સજજને કહ્યું; 'ભગવાન તારું ભલું કરે, ભાઈ! તને આ કયાંથી મળ્યો?'

'રસ્તામાં પડયો હતો. આમાં કેટલા રૂપિયા છે?'

સદ્ગૃહસ્થે મનમાં જ ગણતરી કરીને કહ્યું 'સો રૂપિયા, એક આઠ આના બાર આનાના પૈસા, એક કાગળ, એક ચાંદીની વીંટી.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गोकुल ने बटुआ खोल कर रुपए गिने। सब ठीक निकले बटुआ हाथ में लेकर महतो की आँखों में आँसू भर आया। बोले—इतनी बड़ी रकम पाकर भी जिसे उसका लोभ न हो, भैया, मैंने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा। यदि किसी और को यह बटुआ मिलता, तो मेरा मरण हो जाता। मेरा रोम-रोम असीस रहा है, भगवान् तुम्हें सदा सुखी रखें। यह कह कर महतो ने बटुए से निकाल कर गोकुल को दो रुपए देने चाहे। उसने सिर हिला कर कहा—मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है। मुफ्त के ये रुपए मैं न लूंगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महतो के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गए। गोकुल थोड़ी ही देर में उस अंधकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया।

सब वृत्तांत सुनाकर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा होकर बोला—बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँग लाता तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।

बुद्धन की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे।

गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भर कर उसने छाती से लगा लिया। आनंदातिरेक ने उसका कंठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा, वह दो एक दिन की तो बात ही क्या, जीवन भर की क्षुधा शांत कर सकती है। धन-संपत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ से प्रतीत होने लगे। मानो एकाएक उसके सब दुःख-रोग दूर हो गए हैं। अब वह बिना किसी चिंता के मृत्यु का आलिंगन उसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को संभाल कर बुद्धन बोला—अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपए उधार नहीं लाया। वह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता। भगवान् ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देखकर निहाल हो गया। दो एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल न लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया कि यह तू मुझ से भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ—सदा ऐसी मति रखना। चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नीयत न डुलाना।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ગોકુળે બટવો ખોલીને રૂપિયા ગણી જોયા. બધું બરોબર નીકળ્યું. બટવો હાથમાં ાં સજ્જનની આંખમાં આંસુ ભરાઈ આવ્યાં. બોલ્યા, 'આટલી મોટી રકમ હાથમાં ાવ્યા છતાં જેને એ માટે લોભ ન જાગ્યો એવો માનવ આજ સુધી તો મેં ી જોયો, ભાઈ ! બીજા કોઈને હાથે આ બટવો ચડયો હોત, તો હું મરી જ ત.. મારું રોમ-રોમ તને આશીર્વાદ આપે છે. ભાઈ ભગવાન તને સદાયે સુખી ખો!'

આમ કહેતાં ગજવામાંથી દશ રૂપિયા કાઢી એણે ગોકુળને આપવા માંડયા. પણ ે માથું હલાવી કહ્યું; 'મારા બાપુએ કોઈની પાસે ભીખ લેવાની મનાઈ કરી છે. મફતના રૂપીયા હું નહિ લઉં.'

સદ્‌ગ્રહસ્થનાં સજળ નેત્રો વિસ્મયથી ખુલ્લાં જ રહી ગયાં ને જોતજોતામાં કુળ એની નજર સામેથી અંધકારમાં અદૃશ્ય થઈ ગયો.

વાત પુરી કરીને ગોકુળ અપરાધીની જેમ ઊભો થઈને બોલ્યો, 'બાપુ ાજે ખાવા માટે કાંઈયે નથી. પેલા સજ્જન પાસેથી થોડા રૂપીયા ઉછીના પણ ગી લીધા હોત તો વળી કંઈ થઈ શકત. પણ તે વખતે મને એ વાત ન ઝી.'

બુધ્ધનની આંખો ઝરઝર કરતી આંસુ વરસાવતી હતી.

ગોકુળને બાથમાં લઈ એ ભેટી પડયો. આનંદના અતિરેક થી એનો કંઠ ાઈ ગયો. એના ક્ષુધાપિડીત નિર્જીવ દેહમાં એને પ્રાણ સંચાર થતો લાગ્યો. તૃપ્તિ એણે અનુભવી તે એક-બે દિવસની જ નહીં, પણ જીવનભરની ક્ષુધા- તિ કરે એવી હતી. ધન-સંપત્તિ, માન અને મોટાઈ, સર્વ કંઈ તેને તુચ્છ ગવા માંડયું. એકાએક જાણે એનાં બધાં દુ:ખ, બધાં જ રોગો દૂર થઈ યા. અત્યારે એ કોઈ પણ પ્રકારની ચિંતા વિના મૃત્યુને ભેટી શકે એમ તું.

ઘણી વાર પછી સ્વસ્થ થતાં બુધ્ધનને કહ્યું; 'સારું જ કર્યું બેટા! ઉછીના માગવા ે પણ માગવું તો ખરું જ ને! ભગવાને તને આવી બુધ્ધિ આપી એ જોઈને હું તો ાલ થઈ ગયો. એકબે દિવસ ભૂખ્યા રહીશું, તો તેથી કંઈ નુકશાન નથી થઈ જવાનું. જેમ ચાતક, પ્રાણ જાય તોયે વર્ષાનાં વારિ સિવાય બીજું કોઈ પણ પાણી ન પીવાનું વ્રત નથી તોડતું, તેમ તું પણ ઈમાનદારીની આ ટેક કદી ના છોડતો. આજે તને ખાતરી થઈ કે આ વાત તું મારા કરતાં પણ વધારે સારી રીતે સમજ્યો છે. છતાં હી રાખું છું હમેશા આવી જ મતિ રાખજે. ગમે તેવી વિપદ આવી પડે તોયે ટેક દી ના છોડતો.'

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ऊपर चातक पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी झरझर आँसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़ सबेरे वह फिर उठा। परंतु आज वह विपरीत दिशा को चला, उसी दिशा को, जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज़ हो गई थी। फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गए। दूसरे दिन से ही मघों ने उठकर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुक-रुककर ही वह वहाँ तक पहुँच सका।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ઉપર પેલો ચાતકપુત્ર આ બધું સાંભાળતો હતો. એની આંખો માથી પણ આંસુ માંડયાં. મહામુશ્કલીપૂર્વક અણે રાત વિતાવી. પ્રભાત થતાં જ અણે પુન: ઊડવા —પણ આજે એ ઊલટી દિશામાં જતો હતો. જ્યાંથી આવ્યો હતો તે તરફ. અત્યારે ગતિ પહેલાં કરતાંયે વધારે ઝડપી હતી. છતાં પોતાના કોટર સુધી પહોંચવામાં ત્રણને બદલે સાત દિવસ લાગ્યા. બીજા દિવસથી જ ઘનશ્યામ વાદળોએ એકઠાં એવી ઝડી વરસાવી કે વચ્ચે વચ્ચે કેટલીય જગાએ રોકાઈ રોકાઈને જ એ ઘર પહોંચી શક્યો.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(સંપૂર્ણ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

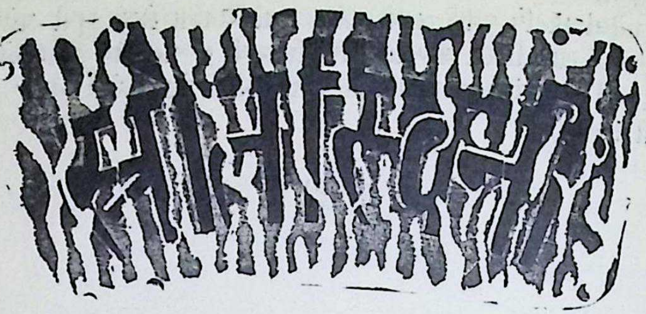

कला धोबिणीचें वैधव्य

सौ० कुसुमावती बाई देशपांडे

अनु० रा० र० सरवटे

कला धोबीण आमच्याकडे कामाला लागली तेव्हांपासूनच माझा तिच्यावर जीव जडला. तिची मूर्ति मोठी ठसकेबाज. सगळ्या धोबी-धोबिणींच्या पद्धतीप्रमाणें तिची साडी नेहमीं परीटघडीची—मग ती फाटकी कां असेना. त्या परीटघडी पांढरेपणामुळें तिचा तजेलदार कुळकुळीत रंग उठून दिसे. नाकीं डोळीं अगदीं नीटस, व डोळे चांगले तीक्ष्ण. नजर स्वच्छ. गालांत नेहमीं पान दाबललें व त्यामुळें ओंठ आवळलेले. भरदार दंडावर चांदीच्या वाकड्या वेळ्या व पायांत चांदीच्या सोंवळ्या. सांखळ्या सगळ्यांत तेजस्वी नाकांतील चमकी. आपल्या तिलंगगांतल्या संस्कृतीची तेवढी एक खूण तिने कायम ठेवली होती व मधूनच हिंदी बोलतांना होणारा शब्दांचा अधर अवर उच्चार वहेल. ती सहा-सात पोरांची भारदस्त आई, पण चाले अशी झपझप, पायांतल्या साखळ्यांची किंवा गोल साडीची कांहींहि तमा न बाळगतां, कीं वाटे ही कपड्यांच्या भट्टीचे हंडेच्या हंडे सहज उचलून टाकीत असेल. पण तरीहि तिच्या चेहऱ्यावर व एकंदर आकृतींतच एक प्रकारचा नाजुकपणा वाटे, अभिजातता जाणवे. मला तर नेहमी वाटे कीं, ही म्हणजे धोबिणींची राणी.

परीटघडीच्या कपड्यांचें सौंदर्य तुम्हाला कधीं जाणवलें का ? तलम धोतरें, सदऱ्यांच्या घड्या, एखाद्या सुरेख शर्टाची रेखीव इस्त्री, रंगबेरंगी साड्यांची चळद, आणि स्वच्छ चादरी अभ्रयांचा गठ्ठा ! तुमचे कपडे मुळांतच चांगले असतील; मोठे भारी, तलम आकर्षक; पण तुमच्या धोब्यानें ते एका चादरींत बांधून नेले तेव्हांचें त्यांचें स्वरूप आठवावें. व आतां तुम्हीं ते मोजून परत घेतांना त्यांचें स्वरूप पाहावे. कलानें ते धुवून आणले, म्हणजे तर त्यांचा तलमपणा केवढा उठून दिसतो. त्यांच्या अंगीं जणु फुलांची सुकुमारता व फुलांची प्रसन्नता येते ! पाहतां पाहतां त्यांचें स्पर्शसुख तुम्हांला जाणवतें ! ती साडी इतकी झुळझुळीत यापूर्वीं कधींच दिसली नव्हती...त्या कपड्याचा रंग, त्या वरचे ठिपके, इतके सुंदर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला धोबिन का वैधव्य

सौ० कुसुमावती बाई देशपांडे

अनु०—रा० र० सखटे

कला धोबिन जब से हमारे घर काम पर लगी तभी से वह मेरे जी में बस गई। उसकी मूर्ति बड़ी शानदार—सारे धोबी-धोबिनों की प्रथा की तरह उसकी साड़ी हमेशा इस्तरी की हुई, फिर वह फटी ही क्यों न हो उस इस्तरी की हुई सफेद स्वच्छ साड़ी के कारण उसका चमकदार काला रंग उभर उठता। नाक-नक्शा बिल्कुल ठीक और आँखें काफी तीक्ष्ण, नज़र साफ। गाल में हमेशा एक गिलौरी दबी हुई जिसके कारण होंठ कसे हुए। गठीली भुजाओं पर चांदी के टेढ़े कड़े और परों में चाँदी के चमकते हुए साँकड़े। सब में तेजस्विनी थी नाक की लौंग। अपने तिलंगाने की संस्कृति की यह एक निशानी उसने अभी तक कायम रखी थी और हिंदी बोलते समय शद्बों का अधर-अधर उच्चारण और अंतिम अक्षर को अधिक लंबाने का ढंग वह छः-सात; बच्चों की प्रौढ़ माँ थी—पर चलती इतनी जल्दी कि उस समय उसे अपने साँकड़ों और साड़ी की जरा भी परवाह न होती। उसे देखकर लगता कि कपड़ों की भट्टी के बड़े बड़े हंडे वह सहज उठा लेती होगी। इसके बावजूद उसके चेहरे पर और कुल आकृति में ही एक प्रकार की कोमलता लगती—कुलीनता महसूस होती। मुझे तो हमेशा लगता कि वह धोबिनों की रानी है।

इस्तरी किए हुए कपड़ों का सौंदर्य क्या कभी आपको महसूस हुआ है? महीन और चिकनी धोती, कुरतों की तहें, किसी सुंदर शर्ट की सुडौल ईस्तरी रंगविरंगी साड़ियों की थप्पी और स्वच्छ चादरों और गिलाफों का गठ्ठा। आपके कपड़े पहले से ही अच्छे होंगे, कीमती होंगे, महीन और आकर्षक होंगे। पर आपका धोबी जब चादर में बाँधकर उन्हें ले जाता है उस समय के उनके स्वरूप की याद कीजिए और जिस समय आप गिनकर उन्हें उससे वापिस लेते हैं उस समय का उनका स्वरूप देखिए। कला जब उन्हें धोकर लाती है उस समय उनका मुलायमपन उभर कर दिखता है। उनमें जैसे फूलों की सुकुमारता और प्रसन्नता आ

10—2 CHD/65 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[illegible] होता ना ? धोबी म्हणजे तरी एक किमयाच करतो म्हणायची. कधीं कधीं उलटी किमया करतो. धड कपडयाची चाळण बनवतो; नरम, तलम कपडयाला, [illegible] निकून, चांगले लठ्ठ बनवून पाठवतो. पण आमच्या कला धोबिणीची किमया या तऱ्हेची नाहीं. तिच्याकडे विशष चांगले कपडे काळजी-पूर्वक धुवायला द्यावे; मुद्दामच जास्त लवकर आणायला सांगावे; म्हणजे तिला जणुं वेगळाच हुरूप चढतो. मग एखाद्या संध्याकाळीं ती स्वतःच हातावर घडया घेऊन येते. वर गुंडाळलेला कपडा अलगद दूर करते व अत्यंत अभिमानानें त्या झुळझुळीत घडया घेऊन उभी राहते. त्या वेळीं ती रजकाच्या कलेची पुतळीच वाटते; त्या कलचें सारसर्वस्व ओतून बनवलेली मूर्ति वाटते; जिच्यापासून ती कला उत्स्फूर्त होते, अशी चैतन्यदायिनी वाटते; व तिच्या हातच्या घडया घेतांना निर्मळतेच्या सौंदर्याचा प्रसादच पण आपण घेत आहों, अशी भावना होते.

ही सारी किमया आपली आहे, असें मात्र ती कधींच म्हणत नसे. तिला एखादा डाग दाखवला, एखादी काळवंडलेली कोटाची कॉलर दाखवली कीं ती म्हणे––"हां बाई––धोबी निकाल देगा. उसको सब मसाला मालूम है––" तिच्या सर्व कारागिरीची खाण तिथें होती... "धोबी–––" ! त्या शब्दाच्या उच्चारांतच अभिमानाची ऊब भरलेली असे. 'धोब्या'च्या सर्वज्ञतेची तिची जाणीव तिच्या शब्दा शब्दांतून ओसंडत असे. कोण्या साहेबाचा गरम सूट 'किसी ने तो भी' कसा खराब केला होता, त्यावर 'धोब्या'नें किती मेहनत केली व तो नव्यासारखा करून दिला; कुणाच्या जॉर्जेटचें काय झालें व त्याची कोरडी धुलाई कशी सही सही साधली, याचीं तिची वर्णनें रसभरित असत. या वर्णनांत विशेष म्हणजे बाकी सारे धुणारे 'कोई तो भी' व तिचा नवरा तेवढा 'धोबी'. पण म्हणून तिचा अभिमान आंधळा बनला होता, असें मात्र मुळींच नाहीं. ज्या दिमाखानें ती त्याच्या कौशल्याचें वर्णन करी, तितक्याच मोकळेपणानें ती त्याच्या संतापीपणाच्याहि गोष्टी सांगे. तिच्या नवऱ्याचे धुण्याचे दर जगावेगळेच व हिशेबहि चोख. महिन्यांकांठीं वाकडे तिकडे इंग्रजी आंकडे लिहिलेला कागद तुमच्या समोर पेश व्हावा. त्याविषयीं आपण काहीं म्हटलेंच किंवा चूक दाखवली तर तिनें म्हणावें, "बोलूंगी बाई––आप जो देंगे वह मैं तो ले लूंगी...लेकिन वह बड़ा रंज करता... चिल्लाता...तो मैं क्या करूं? " असें म्हणून ती उगीचच डोक्यावरचा पदर सावरील, पाय वाकडा करून उभी राहील, पण त्यांस छचोरपणा तुम्हांला मुळींच दिसणार नाहीं. नुसतीच स्त्रीसुलभ चाळवाचाळव. तिच्या या बोलण्यांत थोड़ा धूर्तपणाहि असेल. नाहीं तरी सगळयाच बायकांना नाहीं का, "त्यांना आवडणार नाहीं––!" या सबबीचा मोठा आधार वाटेल? कुठलेंहि काम करायची स्वतःचीच इच्छा नसली कीं, हें कारण तयारच. "त्यांना आवडणार नाहीं––" करायची स्वतःचीच इच्छा असलीच तर मात्र खूप मार्ग सुचतील ! कलाच्या या मखलाशीमुळेंच कदाचित् ती मला विशेष नागर वाटे. का कोण जाणे, तिच्याशीं बोलण्यांत खूप गंमत वाटे, एवढें मात्र खरें. तिच्या नवऱ्याला मी कधींच पाहिलें नव्हतें. पण तिच्या प्रत्येक शब्दामागें मला त्याच्या मूर्तीची जाणीव होई; तिनें धुवून आणलेल्या प्रत्येक कपडयाच्या धुलाईंत मला त्याचा हात दिसे.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जाती है। देखते-देखते उनका स्पर्श-सुख आपको महसूस होने लगता है। वह साड़ी इतनी चमकदार इससे पहले क्या कभी दिखी थी? उस कपड़े का रंग और उस पर के बुंदके इससे पहले क्या कभी इतने चमके थे ? तो कहना चाहिए कि धोबी कपड़ों पर जादू ही कर देता है। पर कभी-कभी उलटा जादू भी कर देता है। अच्छे साबुत कपड़े की छलनी बना देता है। नरम महीन कपड़ों को जैसे मायके में रख कर अच्छा मोटा बना कर भेजता है। परंतु हमारी कला धोबिन का जादू ऐसा नहीं। यदि उससे कपड़ों को अधिक सावधानी से धोने को कहा जाए, या जानबूझ कर ही उन्हें धोकर जल्दी लाने को कहा जाए तो उस समय उस पर एक अलग ही जोश चढ़ जाता है। फिर किसी शाम वह खुद हाथ में धुले कपड़े लेकर आती है। उन पर लिपटा हुआ कपड़ा धीरे-से हटाती है और बड़े अभिमान से उन कपड़ों को लिए खड़ी रहती है। उस समय वह रजक-कला की पुतली जैसी लगती है उस कला का निचोड़ ऊँडेलकर बनाई गई मूर्ति-सी लगती है—उस कला को स्फूर्ति देने वाली चैतन्यदायिनी लगती है। उससे कपड़े लेते समय ऐसी भावना पैदा होती है मानो निर्मलता के सौंदर्य का प्रसाद ही हम ग्रहण कर रहे हैं।

लेकिन यह अलबत्ता वह कभी नहीं कहती कि वह सब जादू उसका है। उसे कोई दाग दिखाया जाए अथवा किसी कोट का काला पड़ गया हुआ कालर वताया जाए तो वह कहती–हाँ बाई साहब, धोबी निकाल देगा। उसे सब मसाले मालूम हैं—उसकी सारी कारीगरी की खदान वहाँ होती है—धोबी—। उस शब्द के उच्चारण में ही अभिमान की गरमाहट भरी होती है। धोबी की सर्वज्ञता की प्रतीति उसके हर शब्द से छलकती रहती है। किसी साहब का गरम सूट किसी ने भी किस तरह खराब कर दिया था। उस पर धोबी ने कितनी मेहनत की थी और फिर उसे किस तरह बिल्कुल नया जैसा बना दिया था———किसकी जार्जेट साड़ी का क्या हुआ था और फिर उसकी सूखी धुलाई करके धोबी ने उसे किस तरह बिल्कुल ठीक कर दिया था———इस विषय के उसके वर्णन बड़े रसपूर्ण होते। इन वर्णनों में विशेष बात यह होती कि बाकी के धोने वाले कोई भी होते और उसका पति ही सिर्फ धोबी होता। पर इसलिए उसका अभिमान अंधा था यह बात न थी। जिस शेखी से वह उसके कौशल का वर्णन करती उतने ही खुले दिल से वह यह भी वताती कि उसका पति किस तरह बात-बात पर बिगड़ उठता है। उसके पति के धुलाई के रेट दुनिया से अलग थे और हिसाब भी हमेशा सच्चा रहता। महीने के अंत में आपके सामने बिल पेश किया जाता जिसमें अंग्रेजी के आड़े-टेढ़े अंक लिखे रहते। उस बिल के बारे में आपने यदि कुछ कहा अथवा उसमें कोई ग़लती निकाली तो वह कहती "बोलूंगी बाई—आप जो देंगी वह मैं तो ले लूंगी—लेकिन वह बड़ा रंज करता है—चिल्लाता है—तो मैं क्या करूँ?"—ऐसा कह कर वह यों ही सिर का आँचल संभालते हुए पर टेढ़ा करके खड़ी हो जाएगी। पर उसमें छिछोरपन आपको बिल्कुल नहीं दिखेगा। वह सिर्फ स्त्री-सुलभ टालमटोल होती। उस कहने में थोड़ी धूर्तता भी रहती होगी। वैसे देखा जाए तो सभी औरतों को—उन्हें अच्छा नहीं लगेगा, इस बहाने का बड़ा सहारा होता है। किसी काम को करने की उनकी खुद की इच्छा न हुई तो हर औरत के पास यह बहाना तैयार ही रहता है—उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। अगर करने की स्वयं इच्छा हुई तो वहुत से उपाय उन्हें सूझ जाते हैं। इस टीका-टिप्पणी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पण म्हणून नवऱ्याच्या व्यक्तित्वाने ती दडपली गेली होती, असें मात्र नव्हतें. एवढा गरजणारा, एवढा निष्णात नवरा, पण त्याच्या दम्याच्या उबळीबद्दल
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ती बोलुं लागली कीं, वाटे, जणुं तान्ह्या मुलाविषयीं बोलते आहे. मग मात्र ती म्हणे, "मी किती पैसे खर्च केले बाई. वैद्याचें औषध दिलें 'धोब्या'ला. डाक्टरानीं सांगितलें तर...चार रुपये की शीशी बुलवाई और उसको खिलाई, लेकिन आराम नहीं होता——" हें सारें ती अशा थाटांत सांगे कीं, तुमच्या डोळ्यांपुढें स्पष्ट चित्र उभें राहावें——इतक्या दिमाखाचा, करडा पुरुष तो. पण तुम्हाला तो खोकून खोकून व्याकुळ झालेला दिसे, दीनवाणा झालेला दिसे, व मग ही त्याची बायको जणुं आपल्या पदरचे पैसे काढून त्याला औषध पाजी. अखेर, त्याच्या जीवनांतला सारा जोम हिच्या वात्सल्यावर व जोपासरेवर अवलंबून.

एकदां आमच्याकडे पाहुणे आले होते. त्यांच्या 'अर्जंट' कपड्यांचा गठ्ठा कलाकडे पोंचता झाला होता. व तो त्या दिवशीं धुवून यायचा होता. उन्हाळ्याचे दिवस होते. सकाळीं सहा साडे सहाच्या सुमारास आम्हीं सर्व अंगणातल्या आपापल्या बिछान्यावर अजून साखरझोपेंतच होतों. तों कलाच्या पोरीचा हुकमी आवाज आले, "बाई—कपडे——" माझें मन अगदीं चवताळून उठलें. ही काय धोब्यानें कपडे आणायची वेळ ? उशीवरून डोकें उचलून मी तिच्यावर खेकसलेंच. पण त्या पोरीनें मला एकदम गार केलें. ती स्फुंदूं लागली व म्हणाली, "फिर फुरसुद नहीं होगी बाई. मेरा बाप परसो मर गया——उसका तीसरा दिन आज करना है...!"

परवां मेला ? हें काय झालें——? कलाचा नवरा परवां मेला आणि आपल्याला काहींच कळलें नाहीं, याचेंच मला आश्चर्य वाटत होतें. इतक्या गुपचुप एखादा जीव निघून जातो, हें जणुं मला नव्यानेंच कळलें. मृत्यूचें असेंच असतें. दर रोज वर्तमान पत्रांतून दंग्यांतील मृत्यूचे किती तरी आंकडे येतात, युद्धांतील मृत्यूचेही येत असत. तरी पण मृत्यूच्या कल्पनेला मन सरावत नाहीं. आपल्या थोड्याशाहि माहितींतला मनुष्य दगावला म्हणजे मात्र मृत्यूच्या निःशब्द पावलांची, त्याच्या दगलबाज हल्ल्याची एकदम जाणीव होते. कला धोबिणीचा नवरा मेला. तिचा डोंगरासारखा आधार नाहींसा झाला——पोराबाळांनीं भरलेला तिचा संसार धुळीस मिळणार——! तिची ती ऐटबाज मूर्ति——तिच्या हातावरच्या त्या घड्या, तिच्या नवऱ्याच्या कौशल्याची साक्ष देणाऱ्या. . . . .

माझें पांढरपेशी मन व्याकुळ होऊन गेलें, सारी सकाळ एक विचित्र हुरहुर मनांत भरून राहिली. वाटे, वैधव्याची विकलता आतां कलाच्या जीवनावर पसरली असेल——कोण तिला आधार देईल? पण पुन्हां वाटे——तरी ही तिनें अचूक वेळेवर कपडे तयार करून पाठवले ! कसें होऊं शकलें असेल हें ?

दुपारीं तिची मुलगी पुन्हां आली——आईच्या सांगण्यावरून काहीं पैसे उसने मागायला. मी मुकाट्यानें तिच्या हातीं नोट दिली.

ती आतां पुन्हां कपडे न्यायला येणार नाहीं, त्यांचा धंदा आतां बंदच होणार, अशी माझी कल्पना. आतां कुणाला तरी दुसरा धोबी पाठवायला सांगावे लागणार, असा विचार माझ्या मनांत. पण चार-आठ दिवसांतच पोरगी आली. "कोण धुईल ग?" मी म्हटलें.

"हम धो लेंगे, बाई. अभी चार दिन मामा भी आया है......"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कारण ही वह मुझे विशेष नागर लगती । कह नहीं सकती क्यों पर उससे बातें करने में मुझे बड़ा मज़ा आता——यह जरूर सच है । उसके पति को मैंने कभी नहीं देखा था । परंतु उसके प्रत्येक शब्द के पीछे मुझे उसके पति की मूर्ति की प्रतीति हो जाती और उसके द्वारा लाए गए प्रत्येक कपड़े की धुलाई में मुझे उसके पति का हाथ दीख पड़ता था ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इसके कारण वह पति के व्यक्तित्व से दब गई थी यह बात नहीं । इतना गुस्सैल, इतना कुशल पति । परंतु जब वह उसके दमा की बीमारी के बारे में कहने लगती तो लगता जैसे किसी छोटे बच्चे के बारे में बोल रही है । ऐसे वह कहती——मैंने बहुत पैसे खर्च कर दिए बाई । चार रुपए की शीशी मँगाई । उसकी दवा खिलाई । लेकिन आराम नहीं होता——यह सब वह ठाट से कहती कि आपकी आँखों के सामने स्पष्ट चित्र खड़ा हो जाता । इतनी शान का कड़ा पुरुष था वह । पर आपको खांस-खांस कर व्याकुल हुआ दीख पड़ता——दीन हुआ नज़र आता । और फिर उसकी यह औरत अपनी गाँठ से पैसे खर्च कर उसे दवा देती और अंत में ऐसा लगता जैसे उसके जीवन का सारा जोर पत्नी के वात्सल्य और संगोपन पर अवलंबित हो ।

एक दिन हमारे घर मेहमान आए थे । उनके अर्जेंट कपड़ों का गठ्ठा कला के घर पहुँचा दिया गया था और वह उसी दिन धोकर लाना था । गरमी के दिन थे । सुबह छः–साढ़े छः बजे के लगभग हम सब सहन में अपने-अपने बिस्तर पर गुलाबी नींद में ही थे कि कला की लड़की की पूरी आवाज आई——बाई——कपड़े—— मेरा मन बिल्कुल झल्ला उठा । भला यह भी क्या धोबी के कपड़े लाने का कोई वक्त हुआ । सिरहाने से सिर उठा कर मैं उस पर बिगड़ ही पड़ी । पर उस लड़की ने मुझे एकदम ठंडा कर दिया । वह सिसकने लगी और बोली, फिर हमें फुरसत नहीं मिलेगी बाई । मेरा बाप परसों मर गया——उसका तीसरा दिन आज करना है——।

परसों मर गया? यह क्या हुआ ? कला का पति परसों मर गया और हमें कुछ भी पता न चला इसी का जैसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था । इतने चुपचाप कोई जीव चल देता है यह जैसे मुझे पहली बार ही मालूम हुआ । मृत्यु की यही बात होती है । रोज़ अखबारों में हम दंगों में मृत हो जाने वालों की संख्या पढ़ते हैं । युद्ध में मर जाने वालों की संख्या भी हम पढ़ते हैं । फिर भी मन मृत्यु की कल्पना का अभ्यस्त नहीं होता । परंतु अपने थोड़े से ही परिचित किसी व्यक्ति की जब मृत्यु हो जाती है तब अवश्य मृत्यु के निःशब्द पैर और उसका विश्वासघाती आक्रमण हमें एकदम महसूस होता है । कला धोबिन का पति मर गया । उसका पहाड़ जैसा सहारा जाता रहा । बाल-बच्चों से भरी उसकी गृहस्थी धूल में मिल जाएगी———। उसकी वह शानदार मूर्ति——उसके हाथ में रखी धुले कपड़ों की तहें———उसके पति के कौशल की साक्ष देने वाली . . . . .

मेरा सफेदपोशी मन व्याकुल हो उठा । दिन-भर एक अजीब-सी बेचैनी दिल में भरी रही । वैधव्य की विकलता अब कला के जीवन पर फैल गई होगी——कौन उसे सहारा देगा ? पर पुनः लगता——फिर भी उसने ठीक समय पर कपड़े तैयार करके भेज दिए । यह कैसे हो सका होगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार दिवसांनीं मामा गेला आणि मग कला स्वतःच आली. काहींशी उतरून गेलेली. मी समोर दिसतांच तिची मान खालीं झाली. माझ्या जिवांत खालवर होऊं लागलें. ती मात्र मंद पण निश्चयी पावलांनीं पुढें आली. तिच्या डोळ्यांतली चमक गली होती, पण तिथें असहायतेचा लेशहि नव्हता. तिनें दूसरें तिसरें कांहीहि न बोलतां कामाची गोष्ट काढली. आणखी दोन घरी तिनें काम मिळविलें होतें; त्यांच्याजवळ आपली शिफारस करायला मला सांगण्यासाठीं ती आली होती. नवऱ्याच्या चार दिवसांच्या आजारांत व मागच्या क्रियेच्या जेवणांत बराच पैसा खर्च झाला, कर्ज झालें "फेडून टाकायला हवें." म्हणाली. तिच्या डोळ्यांतून घळघळ पाणी वाहूं लागलें, पण ती कामाचेंच बोलत होती. तिचें अंतःकरण दुभंगून गेलें होतें. मला तें स्पष्टपणें जाणवत होतें. तरी पण तिच्या वृत्तींत विकलता मात्र मुळींच नव्हती.

तिच्या हातांत तिचें रेशनकार्ड होतें. हाताखांद्याशीं दोन पोरी होत्या. आठवड्याचें धान्य आणायला ती निघाली होती. पण त्याच्या आधीं तिला आणखी काहीं विचारायचें होतें--अगदीं अवघड असें. तिने रेशनकार्ड पुढें धरलें व म्हणाली —"इसमें से काटना पड़ेगा, नाहीं बाई?...उनका अनाज! कहां जाऊं... किसे पूंछूं—? "

अतिकष्टानें मी तिला माहिती दिली. तिलाच हें सारें करावें लागत होतें व ती कुठेंहि कमी पडत नव्हती. सर्व हिंमतीने जागरूकपणें सावरत होती. तिने लहान पोरीचा हात धरला व म्हणाली, "चलो बेटा, जाएंगे." बापाच्या मृत्यूनें तिचा पोरीबाळींचा निवारा कमी झाला असेल, पण त्या उघड्या पडल्या नव्हत्या. त्यांच्या पाठीशीं त्यांची आई दुणावल्या हिंमतीने उभी झाली होती.

—आणि आम्हां सुखवस्तूचें तें तोंड लपवणें..तें पाचोळ्याचें जीवन-- तो पोरकेपणा—

आम्हांला त्यांचें सहजीवनहि लाभणें नाहीं; ती खुलेपणाची कामधंद्यातली बरोबरी नाहीं, व ती मागची हिंमत व स्वावलंबनहि नाहीं. आमच्या संरक्षकांच्या पाळ्या तेवढ्या बदलायच्या!

तिचा नवरा मेला. तिचा भाऊ आला. गेला. पण तिची पाठ मुळींच वाकली नाहीं. तिची चाल मुळींच मंदावली नाहीं. अजूनहि ती हातावर खास धुलाईच्या घड्या घेऊन येते. त्या वेळीं तिच्या डोळयांत आतां अभिमान नसतो. पण कुशलतेचा आत्मविश्वास खास असतो. तिचा नवरा गेला, पण तिला आपल्या कलेची वारसदार करून गेला. माझें पांढरपेशी मन मात्र तिच्या चेहऱ्याकडे पाहून अजून भरारून जातें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दोपहर उसकी लड़की पुनः आई। मुझसे कुछ पैसे उधार लाने को माँ ने उसे भेजा था। मैंने चुपचाप उसके हाथ में एक नोट रख दिया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा ख्याल था कि अब फिर कपड़े लेने वह नहीं आएगी। उनका धंधा अब बंद ही हो जाएगा। इसलिए मैं सोच रही थी कि मुझे अब किसी से दूसरा कोई धोबी भेज देने को कहना पड़ेगा। पर चार-छः दिन के बाद ही कला की लड़की कपड़े लेने आई, कौन धोएगा री? मैंने पूछा।

हम धो लेंगे बाई। अभी चार दिन मामा भी आया है।

चार दिन के बाद मामा चल दिया और फिर कला स्वयं आई। कुछ उतर सी गई थी। मुझे सामने देखते ही उसकी गर्दन झुक गई। मेरे प्राण मुँह को आने लगे। पर वह मंद, किंतु निश्चयी कदमों से मेरे सामने आई। उसकी आँखों की चमक चली गई थी, पर वहाँ असहायता का लेश भी नहीं था। उसने इधर-उधर की कोई बात न कर, काम की बात निकाली। उसने और भी दो घरों का काम प्राप्त कर लिया था वह मुझसे यह कहने आई थी कि उन दो घरों से मैं उसकी सिफारिश कर दूं। पति की चार दिन की बीमारी में और उसकी अंत्येष्टि-क्रिया आदि में उसका बहुत रुपया खर्च हो गया था——उस पर कर्जा भी हो गया था। वह बोली——यह कर्ज़ा चुका देना होगा। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी पर वह काम की ही बातें कर रही थी। उसका हृदय फट गया था यह मुझे साफ़ महसूस हो रहा था। इसके बावजूद उसकी वृत्ति में विकलता बिल्कुल ही न थी।

उसके हाथ में उसका राशन कार्ड था। एक बच्ची को वह कंधे पर लिए थी और एक की अंगुली पकड़े थी। हफ्ते का अनाज लाने के लिए वह घर से निकली थी। पर इससे पहले उसे कुछ पूछना था——बड़ा कठिन। उसने राशन कार्ड आगे बढ़ाया और बोली——क्यों बाई, इस में से काटना पड़ेगा न——उनका अनाज। कहाँ जाऊँ? ——किससे पूंछूँ।

अति कष्ट से मैंने उसे जानकारी दी। उसे ही——उसे ही यह सब करना पड़ रहा था और वह कहीं भी कम नहीं पड़ती थी। सब काम बड़ी हिम्मत से, सावधानी से वह संभाल रही थी। उसने छोटी लड़की का हाथ पकड़ा और बोली चलो मुन्नी, अब चल। पिता की मृत्यु से उसका उसके बाल-बच्चों का सहारा कम हो गया होगा, पर वे अनाथ नहीं हुए थे। उनके पीछे उनकी माँ दूनी हिम्मत से खड़ी हो गई थी।

और हम खुशहाल लोगों का वह मुँह छिपाना——वह सूखे पत्तों की जिंदगी ——वह विवशता——

हमें उनका सहजीवन भी प्राप्त नहीं——स्वतंत्र काम-धंधे की बराबरी नहीं—— और वह बाद की हिम्मत और वह स्वावलंबन भी नहीं। हमारे संरक्षकों की सिर्फ पालियाँ बदल जाती हैं।

उसका पति मर गया। उसका भाई चला गया। पर उसकी पीठ-तनिक भी न झुकी। उसकी चाल जरा भी मंद नहीं पड़ी। आज भी वह हाथ पर धुले कपड़ों का गठ्ठा लेकर आती है। पर उस समय अब उसकी आँखों में अभिमान नहीं होता। परंतु कुशलता का आत्मविश्वास निश्चित होता है। उसका पति चल बसा, पर उसे अपनी कला का उत्तराधिकारिणी बना गया। पर मेरा सफेदपोशी मन उसके चेहरे की ओर देख कर, अभी तक थरथरा उठता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ઉત્પ્રેક્ષા

અનિરુધ્ધ બ્રમ્હભટ્ટ
અનુવાદક—'શ્રેયસ'

અણજંપ મારો ઓરતો જંપી ગયો?
થાકી ગયેલું શ્વાન જાણે ટુંટિયું વાળી પડયું.
મધરાત ચાલી જાય
ઝિલ્લીના ઝંકાર એની આંખમાં અંજાય,
પાનખરનાં પાંદડાં
કાળ પરથી દિન સમાં
ખરતાં રહે—
અવકાશમાં તરતાં રહે—
ફફડાટ ત્યાં આ વાયુનો
કારઝી આ તે ભૂતાવળ શી ઘૂમે!
અધખૂલેલી આંખ
થોડીવાર બસ આકાશમાં તાકી રહે
ને પોપચે તોળાય પાછો ભાર—
ને પાંપણો પાછી ખૂલે!
કોણ એ?
ઉત્પ્રેક્ષ થઈ જોઈ લાધું.
એ તો બધા ભણકાર.
આખું જગત પોઢી ગયું.
શિલ્પનગરી વિશ્વકર્માએ અહીં જાણે સજાવી!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्प्रेक्षा

अनिरुद्ध ब्रह्म भट्ट
अनु०—श्रेयस्

अतृप्त मेरी कामनाएँ हो चुकी हैं तृप्त,
अथवा
थके कुत्ते की तरह बैठी हुई हैं
बिना भौंके, पाँव मोड़े
रात चलती जा रही है
आँख में औंजे हुए झंकार झिल्ली की
शरद के पत्र झरते हैं
काल के मानो दिवस हों झर रहे--
अवकाश भरते हैं ।
हवा यह चीत्कारवंती डोलती है यों
चुड़ैलें हों भयानक ज्यों
अधखुली आखें कुछ क्षण
खुले नभ को ताकती हैं
पलक पल-भर भार-नत हो
पुनः खुलते !
कौन है,
कोई नहीं, संभ्रम है सब
जगत सारा सो रहा है
शिल्प-नगरी विश्वकर्मा की
पड़ी है सुप्त सज्जित
(प्रश्न मेरा गुंज कर लज्जित !
जागते हैं, इस तरह का भ्रम करें
और इसमें तृप्ति मानें हम, मरें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

જાગવાનો ભ્રમ કરીને જંપવાનું છે અહીં ?
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
થોડા ભટકતા શ્વાસ ને નિ:શ્વાસ તો
અતલાન્ત સાગરને તળે ડૂબી ગયા--
આંખ શું નિમીલન હવે ભૂલી ગઈ ?
તો કાનને સરવા કરી
ચાલ્યા જવું
એમ કરતાં જો યુધિષ્ઠિર-પંથની
કંઈકે પ્રતીતિ--
હાડ ગાળી નાંખતી ઠંડી પડે
જિંદગીના થાક સૌ અંગે ચડે
શિખરો પરે શિખરો વળોટી દૂર બસ ચાલ્યા જવું
ઊંચે--ઘણે ઊંચે......

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कौन जाने श्वास और निश्वास
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
किस सागर तलें डूबे भटक कर,

आँख भूली देखना,

तो कान ही के सहारे बाकी बचा

पथ रेखना ।

पंथ यह जैसे युधिष्ठिर का—

जान पड़ता है कि जैसे

हड्डियों को गलाती-सी ठंड पड़ती है

और जीवन की थकावट अँगूठे से पाँव के

आ-शीष चढ़ती है ।

चोटियों पर चोटियाँ लांघे चलो

ऊँचे, बहुत ऊँचे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावुनि घ्या माती भाळीं

यशवंत

अनु०--सुरेंद्र शुक्ल

या हो या, लावुनि घ्या ही माती भाळीं
लाजु नका मनि मुळींच जरि वरुनि काळीं

साधु सन्त वारकरी लोकांचे मळे
ह्याच शिवारामधुनि किति आले गेले
तबकांतुनि त्यांच्या जो नित्य बुका गळला
तोच रंग हा इथल्या मातीला चढला
जी सालोसाल अशी पावन हो झाली
या हो या लावुनि घ्या ही माती भाळीं ।।1।।

परक्यांच्या जुलमाच्या खाताना लाथा
ह्याच मातिमधुनि नवा उद्भवला शास्ता
त्यानें देतांच हांक गिरिकंदर उठले
बघुनि ते उठाव कंप शत्रूंना सुटले
चर्चुनि भंडार तदा वीरगडी झटले
पारतंत्र्य-बंध खळाखळ सारे तुटले
तैं रुधिरें भिजलेली ही वेळोवेळीं
लावुनि घ्या माती ही वरुनि जरी काळी

या हो या लावुनि घ्या ही माती भाळीं
ही समर्थ द्यायां नव मंत्र नव्या काळीं ।।2।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मिट्टी भाल में लगाओ

यशवंत

अनु०——सुरेंद्र शुक्ल

आओ हो, आओ
इस मिट्टी को भाल में लगाओ
यह ऊपर से काली है तो भी मन में तनिक न लजाओ।
इस मिट्टी में कितने ही साधु-संत, वारकरी भजनकारों के जत्थे के जत्थें
जन्मे और चले गए उनकी ही नित्य पूजा की थाली से जो काला बुक्का
(भस्म) गिरता था, उसका ही रंग इस मिट्टी पर चढ़ गया है। इस तरह
यह वर्षों से पवित्र होती आई है
आओ हो, आओ
इसे भाल में लगाओ
यह ऊपर से काली जरूर है, पर अंदर से एकदम आरक्त है ।।1।।

विदेशी शासकों के जुल्मों को सहते हुए भी इस मिट्टी से नए शासक का
उद्भव हुआ और उसके एक ही आवाहन से गिरि-कंदराएँ उठकर खड़ी
हो गई। यह उठाव देखकर शत्रुओं के कपकँपी छूटने लगी, जब वे वीर,
धीर साथी आत्म-शक्ति का बोधकर ईमानदारी से जूझे, तब परतंत्रता की
जंजीरें खड़ाखड़ कर चूर-चूर हो गईं, समय-समय पर उन वीरों के रक्त से
नहाई हुई यह मिट्टी, ऊपर से काली है तो क्या, इसे
भाल में लगाओ
यह मिट्टी
नए युग में (आज भी) नया मंत्र देने में समर्थ है ।।2।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आज हवें नेकीचें पीक नवें या या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज नको शह द्याया सत्तेनं न्याया

जेथे घरादाराला मुकुनि बसे जनता

तेथे बेचैन हवा व्हायाला शास्ता

अन्तरास व्हावयास तेजाचीं स्फुरणे

रंध्रातुनि फांकाया शौर्याचीं किरणें

या हो या लावुनि घ्या ही माती भाळीं

ही तुळजा, चामुण्डा हीच महांकाली ॥3॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आज इस मिट्टी पर नेकी की फसल उगाओ। आज सत्ता की शक्ति का पक्ष लेकर न्याय को चुनौती न देनी चाहिए जहाँ की प्रजा बेघर-बार रहे, वहीं के शासक को जनता के दुःख के लिए आकुल-व्याकुल रहना चाहिए और उसके अंदर से तेज की चिनगारियों का स्फुरण होना चाहिए, शौर्य की किरणें फूट निकलनी चाहिएं।

आओ हो, आओ
इस मिट्टी को भाल में लगाओ
यह मिट्टी ही तुलजा, चामुंडा
और है
महाकाली ॥3॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी कामकाज में हिंदी

इस स्तंभ में सरकारी विज्ञापन, अधिसूचना तथा आदेश क दो-दो नमूने दिए जाते हैं। यह अंश अस्वाभाविक, कठिन और बनावटी है यथा

[एक]

विषय : समितियों, आयोगों और जानकारी मंडलों पर व्यय-सदस्यों को भला (संसद सदस्यों तथा राज्य विधानांगों के सदस्यों सहित)

भारत के राष्ट्रपति का यह निर्णय है कि इस मंत्रालय के उपर्युक्त विषय पर दिनांक 5 सितंबर, 1960 के कार्यालय ज्ञापन संख्या एफ० 6(26) ई० IV/59 में निम्न परिवर्तन किए जाएँ।

(1) धारा 'क' के परिच्छेद आ (1) के दूसरे वाक्य में लिखित 'अधिकतम 20 रुपए प्रति दिवस तक' शब्दों और अंकों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द और अंक जोड़े जाएँ अर्थात् :—

"अधिकतम 30 रुपए प्रतिदिवस तक"

(2) धारा 'ख' के परिच्छेद (आ) के दूसरे वाक्य में लिखे '21 रुपए प्रतिदिवस की दर से दैनिक भत्ता' शब्दों और अंकों के स्थान पर निम्नांकित शब्द और अंक रखे जाएँ, अर्थात् :—

'31 रुपए प्रतिदिवस की दर से दैनिक भत्ता'

(3) वर्तमान परिच्छेद 2 के स्थान पर निम्नांकित परिच्छेद प्रतिस्थापित किया जाए, अर्थात् :—

धारा 'क', 'ख', और 'ग' में उल्लिखित सदस्य समितियों आदि की सभाओं से संबंधित वास्तविक यात्राओं के लिए यात्रा भत्ता प्राप्त किए जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी अंश का दूसरा नमूना यहाँ दिया जा रहा है, जो हिंदी की प्रकृति के अनूकूल सीधा और सरल है।

प्रशासनिक कार्य के लिए हमें ऐसी भाषा का विकास करना है जो संतुलित हो और भावों को सरलता से व्यक्त कर सके।

[एक]

विषय :—समितियों, आयोगों और पूछताछ बोर्डों पर व्यय—सदस्यों का भत्ता

(संसद सदस्यों और राज्य विधान मंडलों के सदस्यों समेत)

राष्ट्रपति यह निश्चय करते हैं कि इस मंत्रालय के उपर्युक्त विषय के 5 सितंबर, 1960 के कार्यालय ज्ञापन संख्या एफ० 6(26) ई० IV/59 में निम्न संशोधन किए जाएँ :—

(1) धारा 'क' के पैरा आ(1) के दूसरे वाक्य में लिखे "अधिकतम 20 रुपए प्रतिदिन तक" शब्दों और अंकों की जगह निम्नलिखित शब्द और अंक रखे जाएँ अर्थात् :—
"अधिकतम 30 रुपए प्रतिदिन तक"

(2) धारा 'ख' के पैरा (आ) के दूसरे वाक्य में लिखे "21 रुपए प्रतिदिन की दर से दैनिक भत्ता" शब्दों और अंकों की जगह निम्नलिखित शब्द और अंक रखे जाएँ, अर्थात् :—
"31 रुपए प्रतिदिन की दर से दैनिक भत्ता"

(3) वर्तमान पैरा 2 की जगह निम्नलिखित पैरा रखा जाए, अर्थात् :—
"धारा 'क', 'ख', 'ग', में उल्लिखित सदस्य समितियों आदि की बैठकों के संबंध में की गई वास्तविक यात्राओं के लिए यात्रा भत्ता ले सकते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
11—2 C. H. D./65

(1) पूर्वघोषित अपने स्थायी निवास स्थान से सभा स्थान पर्यंत तथा वापिस : Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस व्यवस्था के अधीन यदि कोई सदस्य अपने स्थायी निवास स्थान के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान से सभा स्थान के लिए यात्रा करे अथवा सभा समाप्ति के पश्चात् अपने स्थायी निवास स्थान की बजाए किसी अन्य स्थान पर जाए तो यात्रा भत्ते का परिकलन वास्तविक यात्रा की अथवा स्थायी निवास स्थान और सभा स्थान के मध्य की दूरी में से जो भी न्यून हो, के आधार पर किया जाएगा।

(2) यदि संसद राज्य विधानांग के सत्र में भाग लेते समय संसद/राज्य विधानांग की सभा के स्थान से समिति आदि के स्थान से समिति आदि के सभा स्थान तक तथा वापसी की यात्रा की जाए।

(3) यदि दो सभाएँ तुरंत एक दूसरे के बाद हुई हों तो इस तरह की पहली सभा के स्थान से इसी प्रकार की दूसरी सभा के स्थान तक

(क, ख, ग)
उप-सचिव, भारत सरकार

[दो]

विषय : छः मास से अधिक की अवधि के लिए भविष्य निधि के शेष पर ब्याज की अदायगी

मुझे उपर्युक्त विषय पर, इस मंत्रालय के कार्यालय ज्ञापन संख्या एफ० 5(2) ई० IV बी०/63 दिनांक दो मई, 1963 का संदर्भ देते हुए मुझे निदेश हुआ है जिसमें कार्यालय ज्ञापन संख्या एफ० 49(1) ई० V/60 दिनांक 11 मार्च, 1960 में दिए गए आदेशों की अवधि में दो वर्ष के लिए अर्थात् दिनांक 10 मार्च, 1965 तक वृद्धि की गई है।

2. भारत सरकार ने यह निश्चय किया है कि उपरोक्त आदेशों की अवधि में आगे 11 मार्च, 1965 से दो वर्ष की और वृद्धि की जाए।

3. जहाँ तक अंकेक्षा और लेखा विभाग के कर्मचारियों का संबंध है, ये आदेश भारत के महानियंत्रक और महा अंकेक्षक के परामर्शोपरांत जारी किए गए हैं।

[तीन]

विषय : प्राचीन और नवीन दिल्ली के मध्य राजकीय यात्राओं के लिए लघुतम मार्ग

मुझे यह कहने का निदेश हुआ है परियात की वर्तमान परिस्थितियों में प्राचीन दिल्ली और नवीन दिल्ली के मध्य, राजकीय यात्राओं के लिए किस व्यवहार्य मार्ग को लघुतम माना जाए, यह समस्या भारत सरकार के विचाराधीन रही है। व्यापार में पर्याप्त वृद्धि के कारण तथा फलस्वरूप धीरे और तेज़ चलने वाले यानों की संख्या में वृद्धि के कारण इन स्थानों के मध्य कुतबरोड से होकर जाने वाला मार्ग भयंकर हो गया है तथा उसमें समय का भी अपव्यय होता है। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(1) पूर्व घोषित अपने स्थायी निवास स्थान से बैठक के स्थान तक और वापिस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बशर्ते कि यदि कोई सदस्य अपने स्थायी निवास स्थान के अलावा किसी और स्थान से बठक के स्थान के लिए यात्रा करे अथवा बैठक खत्म होने के पश्चात् अपने स्थायी निवास स्थान की बजाए किसी और स्थान को लौटे तब यात्रा भत्ते का हिसाब वास्तविक यात्रा की दूरी अथवा स्थायी निवास स्थान और बैठक स्थान के बीच की दूरी में से जो भी कम हो, के आधार पर किया जाएगा।

(2) यदि संसद राज्य विधान मंडल के सत्र में भाग लेते समय संसद/राज्य विधान सभा की बैठक के स्थान से समिति आदि की बैठक के स्थान तक और वहाँ से वापसी की यात्रा की जाए।

(3) यदि दो बठकें एक के बाद एक हुई हों तो उस तरह की पहली बैठक के स्थान से उसी तरह की दूसरी बैठक के स्थान तक।

(क, ख, ग)

उप-सचिव, भारत सरकार

[दो]

विषय :—छः मास से अधिक की अवधि के लिए भविष्य निर्वाह निधि के शेष पर ब्याज़ की अदायगी

मुझे उपर्युक्त विषय पर, इस मंत्रालय के कार्यालय ज्ञापन सं० एफ० 5(2) ई० V बी०/63 तारीख 2 मई, 1963, का हवाला देने का निदेश हुआ है जिसमें कि कार्यालय ज्ञापन संख्या एफ० 49(1) ई० V/60, तारीख 11 मार्च, 1960 में दिए गए आदेशों की अवधि को दो वर्ष के लिए यानी 10 मार्च, 1965 तक बढ़ाया गया था।

भारत सरकार ने यह निर्णय किया है कि उपर्युक्त आदेशों की अवधि को आगे तारीख 11 मार्च, 1965 से दो वर्ष के लिए और बढ़ाया जाए।

जहाँ तक भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग में काम करने वाले व्यक्तियों का संबंध है, ये आदेश भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक से परामर्श करके जारी किए गए हैं।

[तीन]

विषय :—पुरानी दिल्ली और नई दिल्ली के बीच सरकारी यात्राओं के लिए सबसे छोटा मार्ग

मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि यातायात की वर्तमान परिस्थितियों में पुरानी दिल्ली और नई दिल्ली के बीच, सरकारी यात्राओं के लिए किस व्यवहार्य मार्ग को सबसे छोटा माना जाए, इस प्रश्न पर भारत सरकार विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राष्ट्रपति ने सहर्ष निर्णय किया है कि नवीन दिल्ली तथा प्राचीन दिल्ली के मध्य यात्राओं के लिए दिल्ली दरवाजा, दरियागंज और कश्मीरी दरवाजा से होकर जाने वाला मार्ग अनुपूरक नियम–30 के प्रयोजनार्थ लघुतम माना जाए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. जहाँ तक भारतीय अंकेक्षा और लेखा विभाग में कार्य करने वाले व्यक्तियों का संबंध है, ये आदेश भारत के महानियंत्रक और महा अंकेक्षक के परामर्शोपरांत जारी किए जाएँ।

[चार]

विषय : यात्रा भत्तों के संगठनार्थ सरकारी कर्मचारियों का क्रम निर्धारण का पुर्नविलोकन

अधोहस्ताक्षरी को निदेश किया गया है कि वह इस मंत्रालय के इसी संख्या के कार्यालय यादी दिनांक 29–12–62 की ओर निर्देशित करते हुए यह कहे कि उक्त कार्यालय यादी के वर्तमान परिच्छेद 2 (आ) के स्थान पर निम्नलिखित प्रति स्थापित किया जाए :—

1. "द्वितीय क्रम में वे सरकारी कर्मचारी शामिल किए जाएंगे जो 220 रुपए या इससे अधिक तथा 800 रुपए प्रतिमास से कम प्राप्त कर रहे हैं।"
2. उपर्युक्त निर्णय के परिणामस्वरूप आवश्यक शुद्धि-पत्र संलग्न है।
3. भारतीय अंकेक्षा और लेखा विभागों में नियोजित व्यक्तियों पर प्रयोग के समय ये आदेश भारत के महानियंत्रक और महा अंकेक्षक से परामर्श के उपरांत जारी किए जाएंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती रही है। यातायात में काफ़ी बढ़ोतरी हो जाने के कारण और उसके फलस्वरूप धीरे और तेज़ चलने वाली गाड़ियों की बहुतायत हो जाने के कारण इन स्थानों के बीच कुतबरोड से होकर जाने वाला मार्ग खतरनाक हो गया है और उसमें समय भी काफ़ी खर्च होता है, इसलिए राष्ट्रपति ने यह निर्णय करने की कृपा की है कि नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली के बीच यात्राएँ करने के लिए दिल्ली गेट, दरियागंज और कश्मीरी गेट से होकर जाने वाले मार्ग को अनुपूरक नियम–30 के प्रयोजनों के लिए सबसे छोटा मार्ग माना जाए।

2. जहाँ तक भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग में काम करने वाले व्यक्तियों का संबंध है, ये आदेश भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक से परामर्श करके जारी किए गए हैं।

[चार]

विषय :—यात्रा भत्ते के हिसाब के लिए सरकारी कर्मचारियों के पदक्रम पर पुर्नविचार

मुझे इस मंत्रालय के इसी संख्या के कार्यालय ज्ञापन तारीख 29 दिसंबर, 1962 का हवाला देने और यह लिखने का निदेश हुआ है कि उक्त कार्यालय ज्ञापन के वर्तमान पैरा 2(ख) के स्थान पर निम्नलिखित अंश जोड़ दिए जाए :

1. "द्वितीय ग्रेड में वे सरकारी कर्मचारी शामिल माने जाएँगे, जिनका मासिक वेतन 220 रुपए या अधिक, पर 800 रुपए से कम हो।"

2. उपर्युक्त निर्णय के कारण पूरक नियमावली में जो संशोधन आवश्यक हो गया है उसकी पर्ची संलग्न है।

3. जहाँ तक भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग में काम करने वाले व्यक्तियों का संबंध है, ये आदेश भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक से परामर्श करके जारी किए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषाएँ

सिख धर्म तथा गुरुमुखी के प्रवर्तक—गुरु नानक देव

नरेंद्र धीर

गुरु नानक देव ही सिख धर्म के प्रवर्तक तथा गुरुमुखी लिपि के प्रवर्तक थे। तत्कालीन संत कवियों के समान गुरु नानक निर्गुणवादी थे। वे मूर्ति पूजा, अवतार-वाद, बाह्याचार आदि को नहीं मानते थे। उन्होंने काफी यात्राएँ और भ्रमण किए। उनके बराबर भ्रमण करने वाला कोई अन्य संतकवि नहीं हुआ। कामरूप से मक्का-मदीना और काँगड़ा से लेकर लंका तक उनका भ्रमण क्षेत्र रहा। उनके पश्चात् उनकी परंपरा में गुरु अर्जुनदेव तक उनकी विचारधारा ही सिख गुरुओं में प्रचलित रही। गुरु हरगोविंद के समय से उनमें सामरिकता का प्रादुर्भाव होने लगा। गुरु नानक की सबसे बड़ी शिक्षा यही थी कि ईश्वर सर्वव्यापी है। ईश्वर को उन्होंने वाहगुरु की संज्ञा दी। इनके पश्चात् गुरु अंगद, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविंद सिंह हुए। इस प्रकार गुरु परंपरा में इन दस गुरुओं के नाम आते हैं। प्रत्येक गरु अपने अंत समय में अपने उत्तराधिकारी को पद सौंप कर उसे पंथ का उत्तराधिकारी घोषित कर देता था। गुरु गोविंद सिंह ने अपने पश्चात् गुरु-ग्रंथ साहब को गुरु घोषित किया और सिखों को उसे ही गुरु मानने का आदेश दिया। गरु गोविंद सिंह के पश्चात् गुरु गद्दी समाप्त हो गई।

प्रत्येक महापुरुष, भले ही वह धार्मिक, सामाजिक अथवा ऐतिहासिक महत्व का हो, के लिए विभिन्न लोक भाषाओं के कवियों ने अपनी अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। गुरु नानक के संबंध में भी विभिन्न लोक कवियों ने समय समय पर अपनी श्रद्धांजलियाँ प्रस्तुत की हैं। लोक काव्य में बारह मासा के रूप में जीवन वृत्तांत प्रस्तुत करने का अपना विशिष्ट ढंग है। सदियों से सैकड़ों बारह मासे गुरु नानक संबंधी लिखे गए होंगे और लिखे जाएंगे। वे समय की परतों में धीरे-धीरे दबते जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु नानक का जन्म संवत् 1526 शुक्ल पक्ष की तृतीया को वैसाख में तलवंडी नामक ग्राम में हुआ था। परंतु इनका जन्मदिवस कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है। इनके पिता का नाम महता कालू जी था जो पटवारी थे और माता का नाम तृप्ता था। गुरु नानक का जीवनवृत्त विश्वस्त कहीं भी प्राप्त नहीं होता। यद्यपि गुरु नानक की विभिन्न जनम साखियाँ प्राप्त होती हैं। पौराणिकता की छाप के कारण कई बार तो यह पता लगाना भी असंभव सा हो जाता है कि वास्तविक तथ्य क्या हैं?

बचपन में मेहता कालू जी ने किसी ज्योतिषी हरदयाल से इनका भविष्य पूछा, जिसने कहा कि ये भविष्य में महापुरुष होंगे। नानक जब सात वर्ष के हुए तो इन्हें पढ़ने के लिए पाठशाला भेजा गया किंतु पढ़ने लिखने में इनका मन न लगा। ये प्रारंभ से ही एकांत प्रिय थे। पाठशाला में कहा जाता है कि इन्होंने कुछ पदों की रचना भी की किंतु उन रचनाओं की प्रौढ़ता को देखकर इस कथन के बारे में संदेह होता है।

इनके पिता ने पढ़ने के प्रति अरुचि देख कर कुछ समय बाद इन्हें पाठशाला भेजना बंद कर दिया और भैंसे चराने भेजा। कहते हैं ये सो गए और भैंस खेतों को चर गईं। इनकी शिकायत गाँव के मालिक राय दुलार से की गई। राय दुलार ने जाँच की तो शिकायत को निराधार पाया।

चौदह वर्ष की अल्पायु में ही गुरु नानक का विवाह बटाला निवासी मूलजी की सुपुत्री सुलखनी से हुआ। किंतु गृहस्थी में भी नानक का मन न रमा। वैवाहिक जीवन के संबंध में हमें अधिक जानकारी नहीं मिलती। इनके दो पुत्र हुए श्रीचंद और लक्ष्मीचंद।

नानक के उपदेशों और एकांतप्रियता से तंग आकर उनके पिता ने इन्हें व्यापार करने की सलाह दी। नानक को उन्होंने चुहार खाना (जिला गुजरानवाला) जाकर नमक खरीदने को कहा। नौकर को साथ लेकर वे नमक खरीदने चल पड़े। रास्ते में कुछ साधुओं से उनकी भेंट हुई। उन्होंने सारे पैसे साधुओं में बाँट दिए। नौकर ने पर्याप्त आपत्ति की किंतु नानक न माने। नानक वापिस अपने ग्राम लौट आए और एक वृक्ष के नीचे बैठ गए जहाँ कहा जाता है कि उनके पिता ने नानक की पिटाई की। इस व्यापार को गुरु नानक "सच्चा सौदा" कहते थे। नानक के घर वाले अंततः उन्हें पागल समझने लगे, किंतु रायदुलार और जयराम नामक इनके मित्र इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि नानक महात्मा हैं और उन्हें उनके परिवार वालों के दुर्व्यवहार से बचाना चाहिए। गाँव की रक्षा के लिए गाँव की सीमा पर उसने एक दुर्ग बना रखा था। तलवंडी के आसपास का वातावरण नानक के आध्यात्मिक चिंतन के लिए अनुकूल था। ये इस भाग में आकर घंटों विचार निमग्न रहा करते थे।

जयराम नानक को सरकारी नौकरी के लिए सुलतानपुर ले गए। नानक की पत्नी ने साथ जाने के लिए अनुरोध किया किंतु नानक ने समझा बुझा कर उसे तलवंडी में ही रहने दिया। जयराम ने दौलतखांसे नानक का परिचय करवा दिया। दौलतखां लोदी उस समय इब्राहीम लोदी के अधीनस्थ पंजाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का राज्यपाल था। नानक की प्रशंसा जयराम से सुनकर दौलतखां ने उन्हें मोदीखाने का निरीक्षक नियुक्त कर दिया। नानक को जो भी वेतन मिलता उसे वे अधिकतर गरीबों ही में बाँट देते। मोदीखाने की नौकरी करते समय जब ये एक बार आटा तोल रहे थे उस समय तेरह का वचन आते ही ये भावावेश में आ गए और तेरा तेरा जपने लगे। इस कारण उन्होंने अधिक आटा तोल में दे दिया। परिणाम यह हुआ कि इन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ा। इन्हीं दिनों में उनके घरेलू नौकर बाला तथा मर्दाना भी तलवंडी से सुलतानपुर ही आ गए थे।

कहा जाता है कि इसी समय नानक को ज्ञान प्राप्त हुआ। और उन्होंने अपनी वेष-भूषा में परिवर्तन कर लिया। उनकी विचार धारा ने लोगों को चकित कर दिया। ये अधिकतर न हिंदू न मुसलमान के भावों से भरे ही उपदेश देते थे।

ये पहले पहल भ्रमण करते हुए सैयदपुर-एमनाबाद पहुँचे। यहाँ ये भाई लालो नामक एक बढ़ई के घर ठहरे। वहाँ उन्होंने भोजन भी किया। बढ़ई की गणना शूद्रों में की जाती थी। अतएव नानक को लोगों ने पर्याप्त भला बुरा कहा किंतु इन्होंने किसी की भी न सुनी। वर्णाश्रम को अनुपयोगी समझते हुए परिश्रम से कमाई हुई रोटी को उन्होंने उत्तम माना। अपने सिद्धांतों का प्रचार कर लालो का दो-चार दिन आतिथ्य स्वीकार कर आगे बढ़े।

ये ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र जा पहुँचे। वहाँ से हरिद्वार की ओर चल पड़े। हरिद्वार में मेला लगा हुआ था। लोग अपने पितरों को पानी दे रहे थे। नानक ने उन लोग के समक्ष ही पूर्व की बजाय पश्चिम की ओर पानी उलीचना प्रारंभ कर दिया। लोगों ने आपत्ति की और कारण पूछा कि वे पश्चिम की ओर पानी क्यों दे रहे हैं तो नानक ने उत्तर दिया कि यदि तुम्हारे द्वारा पूर्व की ओर उलीचा जल तुम्हारे पितरों की प्यास बुझा सकता है तो मेरे द्वारा पश्चिम की ओर उलीचा जल मेरे खेतों में जा सकता है। लोग नानक का संकेत समझ गए और उनके अनुयायी हो गए। वहाँ से नानक पानीपत होते हुए दिल्ली गए। यहाँ इब्राहीम लोदी से इनकी भेंट हुई। दिल्ली से काशी होते हुए नानक जी बंगाल गए। बनारस होते हुए ये गया भी गए। इसके पश्चात् ये कामरूप गए। जनमसाखी के लेखकों के अनुसार उस समय यहाँ नूरशाह नामक रानी का राज्य था। उसने जादू टोने के प्रभाव से नानक को प्रभावित करना चाहा किंतु वह असफल हुई और नानक की अनुयायी हो गई। वहाँ से उन्होंने जगन्नाथपुरी की यात्रा की जहाँ से वे वापिस पंजाब आए और शेखफरीद से मिलने पाक-पट्टन चले गए।

फरीद से मिल कर नानक तलवंडी आ गए और अपने परिवार के व्यक्तियों से मिले। परिवार से मिल कर वे पश्चिम की यात्रा को रवाना हुए। इसके पश्चात् वे हिमालय की तराई में स्थित बिसियर नामक रियासत की ओर गए। कहा जाता है कि नानक मान सरोवर भी गए किंतु यह कहाँ तक सत्य है कहना कठिन है। इस बीच मरदाना थक चुका था। वह एक कदम भी आगे बढ़ने को तैयार न था। उसने नानक से घर लौटने के लिए कहा। नानक को भ्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए बारह वर्ष बीत चुके थे। नानक वापिस तो लौटे किंतु तलवंडी नहीं गए। गाँव के बाहर तीन मील दूर पर ठहर गए। मरदाना को गाँव में भेज दिया। पलभर में ही गाँव भर में नानक के लौट आने की खबर फैल गई। माता पिता ने नानक से लौटने के लिए कहा किंतु वे न माने।

नानक अपनी मंडली सहित पुनः भ्रमण के लिए चल पड़े। रावी और चिनाब को पार करते हुए वे पश्चिम की ओर सैयदपुर की ओर बढ़े जहाँ पुनः लालो बढ़ई के अतिथि रहे। सैयदपुर में विजयी बाबर की सेनाओं ने नानक को पकड़ कर बाबर के समक्ष हाजिर किया। पहले तो बाबर ने नानक को कैद कर दिया किंतु बाद में उनके उपदेशों से प्रभावित हो कर उन्हें छोड़ दिया। बाबर ने नानक से पुरस्कार माँगने के लिए कहा। नानक ने समस्त कैदियों को रिहा कर देने के लिए कहा। समस्त कैदी छोड़ दिए गए। बाबर से भेंट करने के पश्चात् ये बसरूर होते हुए स्यालकोट गए। वहाँ से मीठाकोट की ओर बढ़े। यहाँ उनकी भेंट मिया मीठ से हुई। रावी के किनारे किनारे ये लाहौर चले गए। लाहौर में दूनी चंद नामक एक करोड़पति का हृदय परिवर्तन किया जिसने अपनी समस्त जायदाद गरीबों में बाँट दी।

उत्तर-पूर्व की ओर जाकर किसी धनवान स्त्री को नानक ने इतना प्रभावित किया कि उसने रावी के किनारे कर्तारपुर नामक नगर बसाया और सिख गुरुद्वारा बना कर गुरुनानक को अर्पित कर दिया। नानक ने अपने स्थायी निवास के लिए कर्तारपुर को ही चुना।

कर्तारपुर में ही रहकर गुरुनानक भजन गान किया करते थे। यहीं उनकी भेंट एक बालक से हुई जो नित्य प्रति भजन कीर्तन में आता था। नानक इस बालक से प्रभावित हुए और इसका नाम भाई बुड्डा रख दिया। भाई बुड्डा की आयु कालांतर में 107 वर्ष की हुई जिसने अपने हाथों से पाँचों गुरुओं को तिलक द्वारा अभिषिक्त किया।

इसी समय नानक ने दक्षिण की यात्रा भी की। उस समय उनके साथ सैदो और घट्टो नामक जाट थे। कहा जाता है कि यहाँ से मद्रास होते हुए नानक सिंहल भी गए। 'जनम साखी' के लेखकों के अनुसार उस समय सिंहल में शिव नामक राजा का राज्य था। उसी के उद्यान में नानक ने डेरा डाला था। 'प्राण संगली' नामक प्रथम पंजाबी ग्रंथ की रचना यहीं हुई। सैदो और घट्टो ने इसे लिपिबद्ध किया था। सिंहल से लौटने के पश्चात् अचल बटाला में लगने वाले शिवरात्रि के मेले में उन्होंने कई जोगियों का सत्संग किया। इसी समय उन्होंने कश्मीर का भ्रमण किया।

पंजाब लौटने के पश्चात् उन्होंने भारत के पश्चिमोत्तर भाग की यात्रा प्रारंभ की। वे हसन अब्दल पहुँचे। वहाँ एक घमंडी फकीर रहता था। नानक ने उस पहाड़ी की तराई में अपना डेरा लगा लिया। नानक को पानी की आवश्यकता हुई। उन्होंने उस फकीर वली कंधारी के पास मरदाना को पानी लाने भेजा। पहाड़ पर एक छोटा सा कुंड था। वली कंधारी ने वहाँ से पानी न लेने दिया और कहा कि यदि नानक में शक्ति है तो पानी का स्वयं ही प्रबंध क्यों नहीं कर लेता। यह सुनकर नानक ने उस कुंड के तल में एक छिद्र कर दिया। पानी की धारा बह निकली। कुंड छोटा था। शीघ्र ही पानी समाप्त हो गया। क्रोध में आकर वली कंधारी ने ऊपर से एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चट्टान ढकेल दी। चटटान को आते देख नानक ने उसे अपने दाहिने हाथ से थाम लिया। चट्टान रुक गई। उस चट्टान में उनके पंजे का निशान पड़ा है। उसे पंजासाहिब कहा जाता है। यह भाग इन दिनों पाकिस्तान में है। इसके बाद नानक पेशावर होते हुए मक्का की ओर बढ़े। मक्का में भी उन्होंने अपने कई अनुयायी बनाए। मक्का से वे मदीना होते हुए बग़दाद से मुलतान लौट आए। वहाँ से वे पुनः कर्तारपुर आ गए।

कर्तारपुर में रहते हुए नानक लहिना के संपर्क में आए। लहिना ने नानक के साथ रहते हुए असीम श्रद्धा और भक्ति का परिचय दिया। बाद को नानक ने उन्हें ही अपना सत्तराधिकारी बनाया। लहिना का नाम अंगद रखा गया।

इसके पश्चात् नानक रावी के दूसरे किनारे जीवन के अंतिम दिन व्यतीत करने चले गए। जिस स्थान पर वे रहा करते थे उसका नाम डेराबाबा नानक पड़ गया। यह स्थान अब पाकिस्तान में चला गया है।

गुरु नानक अपने अंतिम समय एक वृक्ष के नीचे जा बैठे। भजन गाने वाली एक मंडली के साथ वे आत्म चिंतन में लीन हो गए। जिस समय जपु जी साहब का पाठ हो रहा था उस समय वाहगुरु करते हुए वे शांत हो गए। नानक का स्वर्गवास अश्विन शुक्ल 10सं० 1595 (सन् 1538) में कर्तारपुर में 69 वर्ष 10 मास 10 दिन की अवस्था में हुआ। इनके निधन पर रावी तट पर हिंदु और मुसलमानों ने समाधि और कब्र बनाईं। परंतु रावी ने दोनों को ही अपने साथ बहा लिया। शायद इसलिए कि गुरु के अंतिम स्थल की पूजा मूर्ति पूजा के रूप में न हो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर एवं वेमन--तुलनात्मक अध्ययन

के० वेंकटेश्वर रेड्डी

भारतवर्ष संतों तथा साधुओं का देश रहा है। विश्व के किसी भी देश में इतने अधिक संतों का आविर्भाव नहीं हुआ, जितना कि भारत में। मंदाकिनी की भाँति पवित्र, स्निग्ध एवं ताप रहित रह कर इस देश के संतों ने मनुष्य मात्र के हितों का पूर्ण संपादन किया है। संतों के साहित्य में भारतीय धर्म चेतना एवं समाज सुधार का रूप विकसित हुआ है। उपनिषदों के तत्वज्ञ मनीषियों की निर्गुण रहस्यवादी एवं आत्मपरक विचारधारा से सदैव ही भारतीय संत अनुप्राणित रहे। यही कारण है कि संतों के साहित्य में स्वानुभूति के साथ विश्व-मंगल कामना का भी सरस संयोग हो गया है। पद-दलित समाज के उद्धार के लिए संतों ने जो कार्य किए उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उन्होंने अनीति के स्थान पर नीति की स्थापना की, असत्य का बहिष्कार कर सत्य का उद्-घाटन किया। इस प्रकार भारतीय संत प्रगतिशील, समाजसुधारक, मानवीय धर्म के संस्थापक एवं जीवनोन्मुखी साहित्यकार थे।

कबीर एवं वेमन भी भारतीय संतों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पर-मात्मा का निश्चल ध्यान एवं प्राणि-मात्र के साथ शुद्ध व्यवहार इन दोनों संतों के धर्म का सार है। उत्तर भारत के हिंदी साहित्य एवं समाज में कबीर तथा दक्षिण भारत के तेलुगु साहित्य एवं समाज में वेमन जन जागरण के अग्र-दूत माने जाते हैं। उनके कार्य सत्यानुमोदित और आदर्श महान हैं।

कबीर और वेमन आस्थावान संत थे। उन दोनों ने ईश्वर-चिंतन में ही जीवन की सार्थकता सिद्ध की। परंतु उनका ईश्वर-चिंतन संसार के संघर्षों से पलायन करके किसी गुफा-विशेष में नहीं हुआ, वह तो समाज के मध्य ही परोपकार साधना के साथ संलग्न था। इन दोनों संतों के समाज और धर्म सुधार, योग साधना, आध्यात्मिक विचार एवं इन दोनों की वाणियों में साहित्यिक विषयों का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत अध्ययन का आधार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर एवं वेमन के जीवन वृत्त :—कबीर और वेमन के जीवन वृत्तों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ये दोनों समकालीन संत थे। कबीर का स्थितिकाल सन् 1398 से 1518 (सं० 1455–1575) तक मान्य है और वेमन का स्थिति काल सन् 1412 से 1480 (सं० 1469–1537) तक माना जाता है। कबीर जाति के जुलाहे और वेमन रेड्डी थे।

कबीर ने स्वामी रामानंद से दीक्षा ग्रहण की तथा वेमन लंबिका शिवयोगी द्वारा दीक्षित हुए। दोनों का शिक्षाज्ञान निम्नाधिक रूप में समान ही था। दोनों आशु कवि थे। दोनों का व्यक्तित्व क्रांतिकारी था। दोनों महान योगी, ज्ञानी और दार्शनिक थे। इस प्रकार दोनों महापुरुषों के व्यक्तित्व में सर्वत्र समानता दृष्टिगत होती है।

जहाँ कबीर जीवन पर्यंत सामान्य सात्विक गुणी रहे वहाँ वेमन ने अपने जीवन के पूर्वार्ध में योगी बन कर विलासमय जीवन व्यतीत किया एवं उत्तरार्ध में महान योगी होकर सात्विक गुण का पालन किया। कबीर जितने योगी थे उतने भोगी नहीं, परंतु वेमन समान रूप से प्रथम भोगी तदुपरांत योगी थे।

कबीर ने समस्त उत्तर भारत में भ्रमण किया तथा वेमन ने आंध्र देश के सभी ज़िलों में पर्यटन किया।

कबीर और वेमन की समाज सुधार दृष्टि :—समाज, व्यक्तियों के विकासार्थ निर्मित वह संस्था है जिसमें व्यक्तियों के सत्याचरण पर बल दिया जाता है और उनकी स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण होता है तथा व्यक्ति परस्पर बँधे रहते हैं। इतिहास के पर्यवेक्षण से सिद्ध हो जाता है कि समाज में बढ़ती हुई उच्छृंखलता के शमनार्थ या दमनार्थ समय-समय पर योग्य सुधारकों का आविर्भाव होता रहा है। पंद्रहवीं शताब्दी में समग्र भारत की सामाजिक स्थिति डावाँडोल थी। समाज में नाना प्रकार की कुरीतियों की दूषित हवा बह रही थीं। ऐसे ही समय में उत्तर भारत में कबीर का तथा दक्षिण भारत के आंध्र देश में वेमन का आविर्भाव हुआ। उन्होंने आवश्यकतानुसार व्यक्ति एवं समष्टि सभी की दुर्वृत्तियों का अनावरण किया। कुरीतियों को कुचल दिया और लोगों के बाह्याचारों का प्रबल विरोध किया। उन दोनों ने समाज को सच्ची मानवता का पाठ पढाया तथा सौहार्द और विश्व-बंधुत्व को बढ़ावा दिया।

सुधारक कबीर ने समाज में काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की व्याप्ति खी। अत: वे लोगों को जागरूक होने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं :—

'कामी क्रोधी लालची इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय ।।'

वेमन भी कहते हैं कि काम, क्रोधादि से विरत हुए बिना परमात्मा का साक्षात्कार कभी हो ही नहीं सकता।

यथा :—"काम मोह मुलनु गलिगियुंडु नरुलु,
इष्ट दैव गुरुल नेरुग लेरु,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इष्ट मेरिगिनतडे इल मंचि बुधु डौनु
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विश्वयाभिराम विनुर वेमा"

अर्थात् : काम एवं मोह में अनुरक्त मनुष्य अपने गुरु और इष्ट-देवता तक को विस्मृत कर देता है। इष्टदेव का ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी माना जाता है।

कपटी एवं परनिंदारत व्यक्तियों की दोनों सुधारकों ने तीव्र आलोचना की। उनका कथन है कि छिद्रान्वेषण करने वाला व्यक्ति पापों का स्थायी गढ़ है। दोनों संतों ने जीव-हत्या का प्रबल विरोध किया। मांसाहारियों को कबीर का यही सवाल है :—

"बकरी पातीं खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवल।।

मांसाहार का विरोध करने में वेमन कबीर से कुछ कम नहीं है। वे मांस भक्षकों की निंदा प्रभावोत्पादक शब्दों में करते हैं :—

'नोरेरिगि तामवेमियु नेरनि,
जंतुवुल जंपि नेम्मदि दिनुना,
क्रूरपु संकर जातुल मारण,
मेमंदु निंक महिलो वेमा'

अर्थात् अज्ञान और अबोध पशुओं का वध करके खाने वाले क्रूर संकर जाति के मनुष्यों का नाश किस प्रकार होता है, इसकां स्पष्टीकरण कष्ट साध्य है। आशय यह कि उन अत्याचारियों को नरक की प्राप्ति अवश्य होती है।

वेमन और कबीर ने व्यभिचारी लोगों की भी भर्त्सना की। वेमन का कथन है कि रंभा, मेनका जैसी सुंदर और सीता, सावित्री जैसी साध्वी पत्नियों को त्याग कर जो मूर्ख मनुष्य वेश्याओं के पात्रों का पूजन करते हैं या परतियगामी बनते हैं वे सबसे अधिक नारकीय है। कबीर ने 'परनारी राता फिरै' व्यक्तियों को निरादृत किया। कबीर एवं वेमन ने उन स्त्रियों की भी खूब आलोचना की जो कि कामदेव समान पतियों को छोड़ कर पर पुरुष की बाट जोहती हैं।

कांचन और कामिनी समाज की आध्यात्मिक उन्नति में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अत: कबीर ने 'एक कनक अरु कामिनी' से सावधान रहने की चेतावनी दी है। वेमन का कथन है कि जिस वस्तु को देखने मात्र आँखें चौंधिया जाएँ वह वस्तु वस्तु नहीं, वरन् हलाहल है। कबीर और वेमन सत्संगति को ईश्वर-प्राप्ति का मूल हेतु मानते थे। तत्कालीन समाज में इन संतों ने कुसंगति की व्याप्ति देखी। अतएव उन दोनों का कथन है कि सज्जन भी कुसंगति से बचे न रहे तो 'दूध कलारिन हाथ' की उक्ति चरितार्थ होगी। यदि समाज को पतनोन्मुख होने से बचाया जा सकता है तो उसका एक ही रास्ता है—सदाचरण और वह सत्संगति से ही संपन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में व्याप्त ऊँच-नीच छुआ-छूत आदि वर्ग भेदों के प्रश्न पर भी उन दोनों संतों ने विचार किया। वेमन का कथन है कि य मूर्ख-जन—जब कि समस्त मानव जाति के अंतर्गत एक ही रक्त-मांस प्रस्तुत है किसे नीच एवं किसे उच्च कहते हैं? उन्हीं के शब्दों मे उक्त भाव देखिए :—

'मालवानिनेल महिमीद निंदिय,
नोडल रक्त मांस मोकटि गादे,
वानिलोन नुन्न वानि कुंलवेद्धि ।। विश्व ।।

इस विषय में वेमन और कबीर का भावसाम्य दर्शनीय है :—

'हमारे कैसे लोहू, तुम्हारे कैसे दूध।
तुम कैसे ब्राह्मण पांडे, हम कैसे सूद ।।

इस प्रकार दोनों संतों ने समाज के परिष्कारार्थ स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने जन कल्याण के लिए स्वयं को अर्पित कर दिया। उनके इसी त्याग के फलस्वरूप आज उनकी यशःपताका फहरा रही है। उत्तर भारत में प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर 'कबीरा' शब्द नाच रहा है और दक्षिण भारत के आंध्र देश में 'वेमन' शब्द नृत्य कर रहा है। जहाँ सूक्ति की आवश्यकता होती है वहाँ कबीर और वेमन की सूक्तियाँ कंठाग्र रहती हैं। जहाँ किसी भी आध्यात्मिक संकेत की अपेक्षा होती है वहाँ इन संतों की वाणियाँ दोहराई जाती हैं।

कबीर एवं वेमन का धर्म सुधार विवेचन :—महर्षि कणाद के अनुसार लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति में सहायक सिद्ध होने वाला ही धर्म है :—

'यतोभ्युदय निःश्रेयः संसिद्धिः सः धर्मः'।

कबीर एवं वेमन ने जिस मानवीय धर्म की स्थापना के लिए प्रयास किया है वह सांगोपांग रूप में लौकिक और पारलौकिक उन्नति प्रदान करने वाला है। ये दोनों महात्मा मानवीय धर्म के कट्टर पक्षपाती थे। ये दोनों उसी को सच्चा धर्म वेत्ता मानते हैं जो अंतः तथा बाह्य दोनों ओर से पूर्णतः निष्कलुष हो एवं जो विशुद्ध मन से भगवान का कल कीर्तन करता हो।

दोनों संतों ने राम-रहीम को एक ही माना है। भ्रम वश दुनिया को उन दोनों में अंतर दृष्टिगत होता है, अन्यथा उनमें कुछ भी तात्विक अंतर नहीं है। धार्मिक मतभेद के निवारण के लिए दोनों संतों ने अकथ प्रयास किया है। हिंदू और मुसलमानों में धर्म के नाम पर नित्य प्रति होने वाले परस्पर संघर्षों को देखने पर सुधारक कबीर के हृदय में छिपी क्रांति ज्वाला भभके बिना नहीं रही। वे संप्रदायों की तीव्र आलोचना करते हुए कहते हैं :—

'हिंदु कहत है राम हमारा, मुसलमान रहिमाना।
दोनों आपसि लरि लरि मुए, मरम न कोऊ जाना ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वेमन ने यही विषय उपदेश के रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया है कि किसी भी
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मत के व्यक्ति क्यों न हों, सभी के लिए सर्वथा की अपेक्षा भगवत् भक्ति ही अधिक वांछनीय है ।

बहुदेवोपासना और मूर्तिपूजा की भर्त्सना करते हुए कबीर कहते हैं :—

"पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूंजूँ पहार ।
ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार ।।

संत वेमन मूर्ति-पूजकों की खिल्ली उड़ाते हुए कहते हैं कि मूर्ति के मुख में धूल डाल कर मूर्तिपूजक पांडे स्वयं भोग चट कर जाते हैं ।

यथा :—उपर्वासिचुचुंडि योगिनील्ल मुनिगियु,
कूडुवंडि वेमपु गुड्कु मनुचु,
दानिनोर, गोहि तामे तिदुंरुगदा ।। विश्व ।।

इस विषय में वेमन और कबीर का भाव साम्य द्रष्टव्य है :—
"लाडू लावर लापसी, पूजा चढ़ै अपार ।
पूजि पुजारा ले गया, दे मूरति के मुख छार ।। '

वेमन स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जो लोग अन्तःवासी परमात्मा को भूल कर निर्जीव शिलाओं की उपासना करते हैं वें अपने वास्तविक जीवन लक्ष्य से कोसों दूर हो जाते हैं ।

दोनों सुधारकों ने तीर्थ यात्रा की भी तीव्र-निंदा की । कबीर का कथन है :—
"कहा नेम तीरथ व्रत कीन्हे जो नहीं तत्व विचारा ।।"

संत वेमन भी तर्क उपस्थित करके कहते हैं कि "तिरुपति" जाने मात्र से मुसलमान वैष्णव नहीं हो सकता । काशी गमन मात्र से शूकर से हस्तिन् नहीं बन सकता । गोदावरी में स्नान करने से भला कहीं श्वान सिंह बन सकता है ।

यथा : तिरुपतिकिनि बोव तुरक दासरिगाडु,
काशिकेग बंदि गजयु गादु,
कुवक सिंगमगुने गोदावरिकी बोव ।। विश्व ।।

दोनों संत एक स्वर में कहते हैं कि बिना हृदय की शुद्धि के तीर्थ-यात्रा के बल पर मोक्ष की प्राप्ति आकाश कुसुम के समान असंभव है । वेमन की स्पष्टोक्ति भी यही है :—

मक्ककु जननेल मगुडदा राऩेल,
एकमन चित्त में दुगलदो
अन्निट बरिपूर्ण मल्लामहम्मदु ।। विश्व ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आशय यह कि शुद्ध हृदय वाले व्यक्ति का शरीर ही समस्त तीर्थों का आवास है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रत, उपवास की भी कबीर और वेमन ने तीव्र आलोचना की। वेमन ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मिथ्याचारी लोग उपवास करके पुनर्जन्म में शूकर-योनि को प्राप्त होते हैं। कबीर ने भी बिना संकोच यही बात यों कह दी है कि व्रत-उपवास के बल पर ईश्वर प्राप्ति की इच्छा शाल्मली फूल के समान निस्सार एवं निरर्थक है। इस प्रकार रोज़ा, व्रत, होमाचार आदि के थोथेपन का इन दोनों संतों ने रहस्योद्घाटन किया।

माथे पर चंदन लगाने वाले और गले में माला धारण करने वाले कपट योगियों की भी कबीर और वेमन ने कटु आलोचना की। सिर मुडाने वाले पापिष्टि साधुओं को संबोधित कर कबीर कहते हैं :—

केशन कहा बिगारियो, सो मूंडो सौ बार।
मन को काहे न मूंडियो, जामैं विषय विकार।।

वेमन भी यही बात यों कहते हैं :—

'तलपुलोनि मरुल तल पेरुंगगलेमि,
तललु वोडु लैन कलमु लेदु
तललुबोडु लैन तलपुलु बोडुला ।। विश्व ।।

अर्थात् विषय विकार रूपी मनोमालिन्य के प्रक्षालन किए विना सिर मुंडाने से कोई लाभ नहीं। सिर मुंडाने से कहीं मन-स्थित विषय वासनाएँ मुंड सकती हैं ?

दोनों संत मानवता के पुजारी थे। अतः मानवता की स्थापना ही उनका जीवन लक्ष्य था। सत्यानुमोदित हितकारी गुणों के संघटित रूप अर्थात् मानवता के स्थापनार्थ उनकी वाणियों की सृष्टि हुई थी। दोनों संतों ने सुप्त मानवता को जागृत करने के लिए ही बाह्याचारों को समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया।

कबीर और वेमन की योग साधना :—दर्शनशास्त्र में योग का अभिप्राय किसी विशिष्ट क्रिया के द्वारा आत्मा एवं परमात्मा में एकात्मता स्थापित करने से होता है। योग शिरोमणि महर्षि पतंजलि के अनुसार योग की परिभाषा इस प्रकार है :—

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"

अर्थात् चित्त की वृत्तियों को स्थगित करना ही योग है। वस्तुतः योग वह साधन है जिसके द्वारा साधक अपनि चित्तवृत्तियों का निरोध कर, आत्मा को उस सत्-चित्-आनंद स्वरूप में विलीन करने का प्रयत्न करता है। आत्मा माया के प्रभाव से रहित हो, सत्य का अनुभव कर समाधिस्थ हो, परमात्मा के ध्यान में मग्न हो जाने में ही योग की पूर्ण सफलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर और वेमन दोनों साधकों ने योग की अपरिहार्य महत्ता की उद्घोषणा की है। दोनों संत चित्त की चंचलता का निरोध करने का पूर्ण प्रयास कर उसमें सफल हुए हैं। चित्तवृत्तियों का निरोध यम, नियम, आसन आदि योग के अंगों द्वारा संभव है। कहना न होगा कि कबीर और वेमन उक्त योगांगों की साधना में पूर्णरूपेण सफल हुए हैं। आसन के अंतर्गत आने वाली खेचरी आदि प्रक्रियाओं के प्रति दोनों साधकों की अपूर्व आस्था थी। इसीलिए तो वेमन का कहना है कि खेचरी मुद्रा के मर्म को न जानने वाले कुतर्की व्यक्तियों की जिह्वा काट लेनी चाहिए। यही भाव निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है :—

'खेचरी मुद्रकु कीलेरुंगग लेक
वादुलाडुनहि वारिनेल्ल

त्रोविक नाल्क बहि तुदिगोय वलयुरा ।। विश्व ।।

'प्राणायाम' की साधना का वर्णन कबीर और वेमन अनुभूति के आधार पर करते हैं न कि कोरे सिद्धांत या शास्त्र बल पर। कबीर का कथन है कि प्राणायाम द्वारा मनरूपी द्वीप प्रकाशित होता है। नाद की बात करते हुए यदि कबीर 'अनहद शब्द उठै झंकार, तहाँ प्रभु बैठे समरथ सार' कहते हैं तो वेमन 'नादमलर जेसि नादंबु बोगिंचि भेदमित लेक पेनगिनपुडु' आदि शब्दों द्वारा नाद की व्यापकता की स्पष्ट घोषणा करते हैं।

'प्रत्याहार' से किसी प्रकार इंद्रियाँ मनोनुकूल हो जाती हैं, इसका स्पष्ट वर्णन दोनों संतों के काव्यों में प्राप्त होता है। धारणा के संबंध में दोनों साधकों का एक ही मत है, शब्दांतर है, अर्थांतर नहीं।

कबीर 'साधो सहज समाधि भली' की बात करते हैं। वेमन की स्पष्टोक्ति भी यही है कि परब्रह्म के साक्षात्कार के लिए कठिन साधनाओं की अपेक्षा नहीं है।

आसनमुलु बन्नि अंगबु बिगिर्यिंचि,
योडलु विरचु कोनेडियोग मेल्ल
जेट्टि सामु कन्न चिताकु तक्कुब ।। विश्व ।।

अर्थात् आसन लगाना, अंगों को कठिन बनाना, शरीर को अधिक कष्ट देना, आदि कार्य कुश्ती लड़ने वालों की साधना से अंश मात्र कम ही है। दोनों संतों ने साधना में सहज पद्धति को अपना लिया।

'नाड़ी का योगसाधना से घनिष्ट संबंध है। कबीर और वेमन इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का विशद वर्णन करते हैं। महात्मा कबीर के शब्दों में जीवात्मा के शरीर में स्थित नाड़ियों का सुंदर वर्णन दर्शनीय है :—

'बिच इंगला पिंगला तीन नाड़ी।
सुषुम्ना से भोजना पावता है ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
12—2CHD/65

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाड़ी साधन के विषय में योगी वेमन के अनुभव भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं :—

इड पिंगला नाडुल कुन्नडुम,
सुषुम्न वेलग नडयाडंगा,
गडु दुस्तर मदिगन ना नडुमने,
इन चन्द्रहरुल नगरमु वेमा

अर्थात्–इड़ा, पिंगला नाड़ियों के मध्य तेजोमय सुषुम्ना नाड़ी वर्तमान है। उसी में सूर्य, चंद्र और अग्नि विद्यमान हैं। साधारण जनता के लिए इसका ज्ञान प्राप्त करना दुस्तर है।

कुंडलिनी शक्ति के जाग्रत किए जाने का विधान दोनों संत कवियों के द्वारा स्पष्ट ढंग से वर्णित है। 'मछली चढ़ै खजूरी' जैसी उलटबासियों में कबीर ने कुंडलिनी का मनोहारी चित्रण किया है। वायुओं के संबंध में भी दोनों योगी विस्तृत रूप में कहते हैं कि जब वायुओं का प्रवेश त्रिकुटी में हो जाता है तो परमात्मा दर्शन सुलभ हो जाते हैं।

चक्रों की सूक्ष्मता का ज्ञान देख कर हमें इन दोनों योगियों की योगसाधना पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा चक्रों का वर्णन दोनों साधक एक समान करते हैं।

सहस्रदल कमल और ब्रह्मरंध्र के संबंध में इनकी उक्तियाँ कम दर्शनीय नहीं हैं। कबीर का कथन है कि 'गगन मंडल में घर करना' चाहिए और वेमन भी अन्य शब्दों में यही कहते हैं—'वयल निल्लू गहि परिकिंपगा वलयु'। यहाँ पर इन दोनों का अर्थ साम्य दर्शनीय है।

जब दोनों संतों को साधना में सफलता प्राप्त होती है तो दोनों को एक ही विषय का अनुभव होता है कि सर्वत्र परब्रह्म की व्यापकता है :—

'ब्रह्म् मन्निट तगु परिपूर्ण में यंडु' (वेमन)
'अबरन एक अकल अविनाशी घट घट आप रहै वासी' (कबीर)

कबीर एवं वेमन क आध्यात्मिक विचार :—ब्रह्म-जिज्ञासु कबीर और वेमन को सद्गुरु की आवश्यकता अनिवार्य प्रतीत हुई। इन दोनों ने सद्गुरु को अधिक महत्त्व दिया। सदगुरु द्वारा ही ये दोनों साधक आत्मज्ञान की उपलब्धि में सफल हुए और उनकी कृपा द्वारा ही ये दोनों ध्यान सागर में मग्न होकर मुक्ति-रत्न को हस्तगत करने में कृत्कृत्य हो गए। सदगुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान-ज्योति के प्रकाश में कबीर एवं वेमन ने ब्रह्म का साक्षात्कार किया। इन दोनों दार्शनिकों के ब्रह्मविचार इस साक्षात्कार की अनुभूति का साकार रूप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म :—कबीर और वेमन के ब्रह्म निरूपण संबंधी अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन दोनों के ब्रह्म का स्वरूप किसी एक निश्चित दार्शनिक विचार धारा से प्रभावित नहीं है अपितु स्वानुभूति मूलक है अथवा अनेक धर्मों एवं दर्शनों की पद्धतियों से प्रभावित है। इन दोनों का ब्रह्म निरूपण अधिकांशतः वैदिक ब्रह्मनिरूपण के सदृश होने पर भी उसमें बौद्ध, सिद्ध, योगी, नाथपंथी आदि अन्य अनेक दार्शनिक विचार धाराओं का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। फिर भी प्रधान रूप से दोनों का उपास्य निर्गुण, निराकार, निरुपाधि एवं सर्वांतर्यामी परब्रह्म ही है। दोनों की साधना पद्धति में भी पर्याप्त साम्य है।

किंतु कबीर ने वेमन की अपेक्षा भक्ति रूपी और एक अन्य साधन का व्यवहार किया। यहीं पर कबीर और वेमन के व्यक्तित्वों में किंचित् अंतर दृष्टिगत होता है। जहाँ वेमन ने केवल योग साधना एवं ज्ञान के द्वारा परब्रह्म तक पहुँचने का प्रयास किया है वहाँ कबीर ने योग और ज्ञान के साथ साथ भक्ति को भी भगवान की उपलब्धि का साधन बनाया है। इस प्रकार कबीर और वेमन के ब्रह्म निरूपण में अनेक समानताओं के साथ एक असमानता भी है।

माया :—संत कबीर और वेमन ने माया के विविध रूपों का वर्णन विस्तार रूप में किया है। इन दोनों का माया वर्णन शंकराचार्य के मायावाद से अधिक सहमत है तथा उस पर उपनिषदों का प्रभाव ही दृष्टिगत होता है। इन दोनों की माया वेदांत ग्रंथों में वर्णित प्रकृति के समान त्रिगुणात्मिका भी है। प्रधानतः दोनों ने माया को भ्रमरूप माना है। कबीर ने पत्थर को परमात्मा समझना भ्रम मान लिया है तो वेमन ने रज्जु एवं सर्प के उदाहरण द्वारा माया को भावात्मक भ्रम सिद्ध किया है। दोनों ने ब्रह्म को मायापति और माया को ब्रह्म की शक्ति मान लिया है जो कि उपनिषदों को मान्य है। जैसे कबीर ने ब्रह्म एवं जीव के सम्मिलन में माया को बाधक माना है वैसे ही वेमन ने आत्मा के परमात्मा से तादात्म्य होने में माया को सबसे बड़ी बाधक शक्ति माना है। कबीर ने माया की निंदा करते समय ठगिनी, वेश्या, डायन, पापिनी, डाकिनी, पिशाचिनी आदि शब्दों का प्रयोग किया है तो वेमन ने नरक कारागार, ठगिनी आदि शब्दों का व्यवहार किया है। अंततः दोनों संतों ने माया से बचने के लिए एक ही प्रकार का उपदेश दिया है कि चित्त को संसार से विमुख बना कर ईश्वराभिमुख कर देना नितांत आवश्यक है।

जगत :—कबीर और वेमन के जगत संबंधी विचार किसी एक निश्चित दार्शनिक पद्धति पर निर्भर नहीं है। ब्रह्म एवम् जगत के सबंधों की अभिव्यक्ति में इन दोनों ने अद्वैतवादियों में प्रसिद्ध अध्यात्मवाद, विवर्तवाद और प्रतिबिंब वाद को प्रश्रय दिया है। शब्दाद्वैत वादियों के समान इन दोनों वेदांतियों ने ओंकार (शब्द ब्रह्म) से सृष्टि की उत्पत्ति मान ली है। गीता एवं उपनिषदों के अनुरूप दोनों महात्माओं ने नामरूपात्मक जगत का आधार ब्रह्म को माना है। सांख्य वेदांतियों में प्रचलित त्रिगुणात्मिका प्रकृति से जगत की अभिव्यक्ति दोनों दार्शनिकों की स्वीकृति है। इस प्रकार कबीर और वेमन के जगत संबंधी विचार अनेक दार्शनिक विचारधाराओं से सहमत है। इन दोनों के जगत संबंधी विचारों में पग-पग पर समानता परिलक्षित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष :—कबीर और वेमन के मोक्ष संबंधी विचार बहुमुखी हैं। मुक्ति संबंधी इन दोनों के विचारों में उपनिषदों में वर्णित मोक्ष, योगियों के कैवल्य तथा बौद्धों के निर्वाण का प्रभाव द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त इन दोनों ने वेदांत ग्रंथों में वर्णित जीवन्मुक्ति एवं विदेह मुक्ति का भी वर्णन किया है।

रहस्यवाद :—रहस्यवाद का अर्थ, किसी परोक्षसत्ता का अवलंबन लेकर हृदय की व्याकुलता प्रकट करना है। रहस्यवाद में आत्मा एवं परमात्मा का तादात्म्य आवश्यक तत्व है। कबीर और वेमन दार्शनिक दृष्टिकोण से शंकाराचार्य के अद्वैत-वाद के अनुगामी थे। दार्शनिक होते हुए भी रहस्यवादी होने के कारण कबीर एवं वेमन दोनों ने अपना दृढ़ विश्वास प्रकट किया है कि आत्मज्ञान की प्राप्ति तर्क द्वारा नहीं हो सकती वरन् स्वानुभूति द्वारा ही संभव है।

वेमन का रहस्यवाद दर्शन संबंधी रहस्य वाद है। यही कारण है कि रहस्यानुभूति की प्रथम स्थिति में वेमन में ब्रह्मज्ञान संबंधी जिज्ञासा उत्पन्न होती है। कबीर का रहस्यवाद दर्शन संबंधी है और प्रेम संबंधी भी।

कबीर और वेमन की वाणियों में काव्यत्व :—काव्य को ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है क्योंकि काव्य के पठन या श्रवण से अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। जिस काव्य में कवि की सच्चिदानंद स्वरूपिणी आत्मा की स्पष्ट अभिव्यक्ति विद्यमान है तथा जिस काव्य का प्रणयन मानवीय जीवन के उपादानों के आधार पर एवं आध्यात्मिक कल्पना के साथ होता है वह काव्य ब्रह्मानंद की संज्ञा पाता है। ऐसे काव्य में गुण, छंद, अलंकार जैसे बाह्य उपादानों की अपेक्षा नहीं होती, क्योंकि वह स्वयं सौंदर्यमय होता है।

प्रतीक योजना :—साधारणत: क्लिष्ट विषयों (अध्यात्म और योग संबंधी) को बोध गम्य बनाने के लिए प्रतीकों का आश्रय लिया जाता है। यही अभिव्यक्ति परक प्रयोग साहित्यिक भाषा में प्रतीक-योजना के नाम से प्रसिद्ध है।

कबीर और वेमन की वाणियों में योगियों में प्रचलित पारिभाषिक सांकेतिक संख्यामूलक आदि विविध प्रतीकों का सफल प्रयोग हुआ है। हा, पिंगला के लिए गंगाजमुना, मूलाधार के लिए सूर्य एवं सहसार के अमृत तत्व के लिए चंद्र आदि अनेक पारिभाषिक प्रतीक योगियों में प्रचलित है। कबीर के शब्दों में इड़ापिंगला के लिए—'अधर उधर की गंगा जमुना', 'गंगतीर मेरी खेती-बारी जमुन तीर खरिहाना' आदि अनेक उदाहरण प्राप्त किए जाते हैं। वेमन ने भी 'गंगा यमुनल नड्मनु, आदि शब्दों द्वारा उक्त विषय व्यक्त किया है।

जहाँ वेमन की वाणियों में केवल योगियों में प्रचलित प्रतीकों के उदाहरण प्राप्त होते हैं वहाँ कबीर के काव्य में योगियों तथा भक्तों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के विविध रूप उपलब्ध होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्रतीक योजना में कबीर वेमन से एक पग आगे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलंकार :––अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। काव्य में अलंकारों का व्यवहार उस समय होता है जिस समय किसी तथ्य, अनुभूति, घटना अथवा चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है। कबीर और वेमन ने क्रमशः साम्यमूलक रूपक तथा उपमा अलंकारों का प्रयोग बहुलता के साथ किया है। दोनों संतों की महानता का कारण यह है कि दोनों ने उन्हीं उपमानों का प्रयोग किया जिनसे जनसाधारण सुपरिचित हैं। कल्पना की लंबी-लंबी उड़ाने भरना उनका लक्ष्य नहीं था।

छंद :––कबीर के साहित्य में साखी, सबद, रमैनी, बावनी, थिंथी, वार. चौंतीसी, विप्रमतीसी, वसंत, कहरा, चांचर, वेली, बिरहुला, हिंडोला आदि अनेक प्रकार के छंद प्राप्त पाए जाते है। वेमन की उपलब्ध वाणियों में निम्नलिखित छंद पाए जाते हैं : आटवेलदि, तेटगीती, कंदमु, सीसमु, उत्पलमाला, चंपकमाला, मत्तकोकिला धृवकोकिलोपमा, उत्साहमु, गीतमु, चित्रपदमु सीस मालिक, मधुरगति रगड, तत्व-पद आदि।

छंद के अनेक प्रकारों में रचना करने पर भी कबीर का प्रिय छंद साखी तथा वेमन का इष्ट छंद आटवेलदि है और ये दोनों कवि क्रमशः उक्त दोनों छंदों के लिए अत्यंत प्रसिद्ध भी हैं।

भाषा:––कबीर की वाणियों में उत्तर भारत में प्रचलित अनेक भाषाओं का मिश्रित रूप उपलब्ध होता है। वेमन की वाणियों में आंध्र देश में व्यवहृत तेलुगु भाषा के अनेक रूप प्राप्त किए जाते हैं। इन दोनों महात्माओं की भाषाओं की सर्वप्रमुख विशेषता है कि वे भाव, व्यक्ति और समय के अनुरूप होती है। उनकी भाषाओं में विषय एवं समय के अनुकूल शब्द तोड़-मरोड़ कर गढ़े जाते हैं। अपनी इच्छानुसार शब्दों को काट-छाँट कर कविता में बिठाना वे दोनों अच्छी तरह जानते हैं। यही कारण है कि कबीर और वेमन की वाणियों में पाठकों अथवा श्रोताओं के हृदय तक पहुँचने की अद्वितीय शक्ति है। अंततः यही कहा जा सकता है कि कबीर ने उत्तर भारत में अनेक बोलियों का मिश्रित रूप अपने भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बना लिया है और वेमन ने आंध्र प्रांत में प्रचलित घरेलू बोली को अपना लिया है।

किसी भी युगद्रष्टा संत महात्मा के लिए यह वांछनीय है कि वह जो भी कार्य करे उसका महत्व भावी युगों में भी मंद न पड़ने पाए। संत में ऐसे उच्चादर्शों की व्याप्ति परमावश्यक है जिनसे आगे आने वाले व्यक्ति उन्हें अपना अग्रजन्मा बता कर उनके चरणचिह्नों पर चल सकें। कबीर और वेमन दोनों ही युगद्रष्टा थे, क्योंकि उनके आदर्शों से अनुप्राणित होकर भारत में अनेक संतों का आविर्भाव हुआ।

कबीर और वेमन ने दलित शूद्रों को संस्कृत करने का जो उपक्रम किया वह कार्य बीसवीं सदी में जगतवंद्य बापू ने पूरा किया है। वर्णव्यवस्था को मानवीय धर्म के मार्ग में वाधा समझनेवालों में उक्त संतों के नाम उल्लेखनीय हैं।

कबीर और वेमन की सर्वोपरि विशेषता उनकी निष्पक्ष और निःस्वार्थ मानव सेवा है। वे पापी से घृणा न कर, पाप से ही घृणा करते थे। अतः उनका कहना था कि व्यक्ति को अच्छाइयों के प्रति मोह और बुराइयों के प्रति द्रोह प्रकट करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य शब्द का तात्विक मूल्यांकन और उसकी ऐतिहासिकता

संतोष व्यास

'साहित्य' शब्द जिस तात्पर्य को लेकर प्रयुक्त किया जाता है उससे आज सभी अवगत हैं। उपन्यास कहानी कविता निबंध समीक्षा और लेखन संज्ञा की अन्य सभी विधाएँ आज साहित्य संज्ञा से विभूषित हैं। साहित्य को समाज का दर्पण भी एक स्वर से मान लिया गया है। किंतु जिस धारणा को लेकर साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है यदि उस दृष्टिकोण से ही सोचा जाए तो साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाना यथेष्ट है—क्योंकि आधुनिक युग में सामाजिक चित्रण को ही "साहित्य" मान लिया गया है। आधुनिक-धारणा से परे हट कर "साहित्य" शब्द का यदि औचित्यानुसार वैज्ञानिक संधान किया जाए तो साहित्य समाज का मात्र दर्पण न होकर विज्ञान है। "साहित्य" संस्कृत का शब्द है और उसका शुद्ध अर्थ होता है—सामूहिक सार्वभौमिक हित। किसी भी समाज का चित्रण समाज का दर्पण हो सकता है। किंतु सामूहिक हित के संकल्प से रचा गया साहित्य समूह का दर्पण न हो कर उसका **प्रशास्ता** ही कहा जाएगा।

'साहित्य' का मौलिक अर्थ बहुत ही व्यापकता और गूढ़ता लिए हुए है। किंतु आधुनिक युग में साहित्य को जिस रूप तथा अर्थ में स्वीकारा गया है उसमें वैज्ञानिक-मात्रा कम और सामान्यता अधिक है। तात्त्विक कसौटी पर देखा जाए तो साहित्य की दर्पण से तुलना नितांत असंगत है। शास्ता तथा प्रशास्ता साहित्य युग का दर्पण भर नहीं बना रह सकता क्योंकि साहित्य में आचार्यत्व है उसे युग-प्रवाह में बह जाने की साधारण लघुता में नहीं लाना चाहिए। हां इतिहास को युग तथा समाज का दर्पण अवश्य कह सकते हैं। किंतु साहित्य के प्रति यह तथ्य न्यायोचित नहीं।

साहित्य के साथ एक और वंचना श्लील-अश्लील की है। प्रायः आलोचनाओं प्रत्यालोचनाओं में विवेचकगण 'यह साहित्य श्लील है', 'यह अश्लील है' ऐसा लिखते हैं। अश्लीलता के साथ साहित्य को जोड़ना कितना असंगत है, इस पर सुधि-मर्मज्ञ निर्णय लें। जो श्लील है वह तो स्वयं साहित्य है ही किंतु अश्लीलता के साथ साहित्य को मिलाना तर्कयुक्त नहीं लगता। साहित्य को उसके अर्थ की वैज्ञानिकता के अनुसार ही मान्यता दी जानी चाहिए। इस संबंध में भाषावेत्ताओं एवं शास्त्रियों को अधिक विचार करना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

यद्यपि साहित्य शब्द बहुत प्राचीन नहीं है। किंतु वैज्ञानिक महत्त्व का अवश्य है। इसके अर्थ में व्यापकता एवं महत्ता सन्निहित है। वैदिकयुग में साहित्य शब्द का अस्तित्व नहीं था। तब साहित्य के लिए सूत्र, श्रुति तथा वेद ही नाम प्रयुक्त थे। पुराण तथा इतिहास साहित्य शब्द से बहुत प्राचीन हैं। ऋग्वेद में भी इनका उल्लेख है। पुराण पुरानी कथाओं को एवं इतिहास प्राचीन समाज की वास्तविक स्थिति के ज्ञान को कहा जाता था जैसा कि आज भी कहते हैं। किंतु साहित्य—जैसा कि आज नाम प्रसिद्ध है—उस युग में अस्तित्व में नहीं था और न उसे आज के अर्थ में मान्यता ही थी। वेद ही साहित्य थे। तब श्रुति क्रिया द्वारा इन्हें सुरक्षित रखा जाता था। इसीलिए छंदों की व्युत्पत्ति हुई। छंद का तात्पर्य होता है—गूढ़ता (छद्मता)। अधिक से अधिक गूढ़ता को कम से कम शब्दों में सुरक्षित रखने के लिए छंदों का निर्माण किया गया। छंदों में गेयता एक विशेषता होती थी। वेदों का उद्गान (उद्गीथ) किया जाता था। यह इसलिए कि गूढ़ तथा गुह्य अर्थों का उच्चारण अस्पष्ट न हो। इसके लिए हाथ के संकेत भी हैं। जब वेदों का उद्गान किया जाता था तब अर्थों के अनुपात से हाथों को भी हिलाया जाता था। हाथों को हिलाने के संकेतों का भी गंभीर वैज्ञानिक विधान है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत से छंदों तथा मंत्रों (मंत्र वह जिसमें मंतव्य हो) का संकलन ग्रंथ कहा जाता था। ग्रंथ इसलिए कि उसमें सूत्रबद्ध रूप से छंदों का ग्रंथन (गठन-बंधन) किया जाता था। तब पुस्तक नाम की भी उत्पत्ति नहीं हुई थी। पुस्तक शब्द का प्रचलन भी 'साहित्य' की भाँति बहुत बाद में हुआ। किन्तु 'कवि' शब्द बहुत ही प्राचीन है। वेदकार कवि ही कहे जाते थे—साहित्यकार नहीं।

वेदों का ज्ञान श्रुति क्रिया द्वारा (वाग्दान द्वारा) अनुगत हुए योग्य तथा समर्थ अंतर्वासी (आश्रम में रहनेवाले शिष्य) को ही दिया जाता था। इच्छुक व्यक्ति आचार्य को समिधा प्रस्तुत कर उपसंपदा लेकर निष्ठाभाव से वेदों को हृदयंगम करते थे। वैदिक मंत्रों को ''श्रुति' और 'स्मृति' कहा जाता था, क्योंकि उन्हें श्रवण करने के बाद प्रतिदिन नियमित आवर्ती करके इन्हें स्मृति में रखना अनिवार्य होता था। वेदों को सुनने वाले शिष्य इसीलिए श्रोत्रिय कहलाते थे।

पश्चात् युग में सामाजिक जीवन के आचार-विचार का नियोजन करने तथा नीति, नियम एवं विधान निर्देशित करने वाला साहित्य 'शास्त्र' कहा जाने लगा। शास्त्र इसलिए कि उसमें शस्त्र की भाँति ही जीवन का संरक्षण होता था। किंतु इसके पूर्व सभी शास्त्र वेदों में ही निहित थे। वेदों का जानकार विज्ञाता कहा जाता था। साहित्य का वेदों में जो स्वरूप है, वह विज्ञान ही है। तब साहित्य मनोरंजन का तथा महज़ चित्रण का साधन न होकर शोधयुक्त परिष्कार का विषय था। साहित्य (मंत्रों) की रचना विकास, उत्थान तथा ज्ञान वर्धन के लिए ही की जाती थी। इसीलिए वैदिक ऋचाकार 'कवि' तथा विज्ञाता थे। व्याकरण को भी तब वेद ही माना जाता था। वेद का तात्पर्य होता है समझ, और वेदों को समझने के लिए जो शास्त्र (व्याकरण) था वह भी वेद ही कहा जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान की व्यापकता और गहनता के कारण उस युग में वैदिक मंत्रों की रचना का कार्य ब्राह्मण ही करते थे। इसलिए उस युग के साहित्यकार ब्राह्मण ही थे। फिर उपनिषद्काल में क्षत्रियों ने इसमें हस्तक्षेप कर अधिक रुचि ली, और विज्ञान तथा शोध-कार्य में वे ब्राह्मणों को चुनौती देने लगे, यहाँ तक कि कई ब्राह्मण विज्ञाता राजाओं के शिष्य भी बन गए।

जैसा कि पहले कहा गया है, मंत्र-निर्माताओं को 'कवि' कहा जाता था। 'कवि' शब्द का अर्थ भी ब्राह्मण शब्द की भाँति व्यापकता लिए हुए है। 'कवि' आत्मा तथा सूर्य का दूसरा नाम है। समाज को जो सूर्य की भाँति प्रशस्त तथा प्रभामय बनाता था एवं आत्मा के विकास में सहायक होता था अर्थात् आत्मबल प्रदान करता था, वह कवि कहलाता था। कवि शब्द में सार्वभौमिकता तथा करुणा का सम्मिश्रण है। जो करुण-भावना के साथ विकासयुक्त कामना से विश्व के हितार्थ चिंतन मनन करता था वही मनीषी 'कवि' कहलाने का अधिकारी था। संभवतः साहित्य शब्द भी 'कवि' शब्द के अर्थ की इसी व्यापकता से प्रभावित होकर उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है।

उपनिषद्काल में भी 'साहित्य' का जन्म नहीं हुआ था। उपनिषद्कार भी कवि ही थे। उनके साहित्य में भी वैज्ञानिकता की गहनता है। उपनिषदों का दर्शन वैज्ञानिक तत्त्व से संपुटित दर्शन है। आत्म-विकास की भावना को लेकर उपनिषदों की रचना की गई। उपनिषद् का अर्थ होता है—गुह्य-ज्ञान और इस ज्ञान के जानकार युगपुरुष कवि ही कहलाए। उन्होंने अपने साहित्य में आत्मतत्त्व को लेकर वैश्विक भावना को जन्म दिया।

छांदोग्य उपनिषद् में नारद जी एक प्रसंग में अपने को अनेक शास्त्र तथा विद्याओं के साथ-साथ नृत्य और नाट्य का भी ज्ञाता बताते हैं। संगीत की भी स्वीकारोक्ति करते हैं किंतु 'साहित्य' से विस्मत रहते हैं। गीता में भी श्रीकृष्ण अर्जुन को अपने स्वरूप के दिग्दर्शन में, मैं वेद हूँ तथा वेदों का वेद (व्याकरण) हूँ कहते हैं। कवियों में कवि उशना (शुक्राचार्य) हूँ, कहते हैं। किंतु साहित्य शब्द का प्रचलन न होने से उसका उल्लेख नहीं करते। रामायण के रचियता महर्षि बाल्मीकि भी समाज का सूक्ष्म तथा सजीव चित्रण करने के पश्चात् भी साहित्यकार नहीं कहलाए। युगमान्यतानुसार उन्हें 'कवि' की ही संज्ञा मिली। अधिक सम्मान-भावना से उन्हें आदि कवि कहा गया, क्योंकि वही एक ऐसे प्रथम पुरुष थे जिन्होंने अपनी युक्ति से तात्कालिक समाज का वृहद्-मौलिक चित्र सूत्रात्मकरूप से छंदबद्ध प्रस्तुत किया। रामायण के बाद महाभारत नामक विशाल ग्रंथ की रचना हुई। इसे भी महाकाव्य माना गया। साहित्य शब्द का जन्म तब तक भी नहीं हो पाया था। यद्यपि साहित्य के परिष्कार एवं संस्कार की दृष्टि से महाभारत का रचनाकाल बहुत ही महत्व का तथा युगांतरकारी युग था। इसी युग में वेदों के मंत्रों का संकलन तैयार हुआ। उपनिषदों का संकलन भी इसी युग के आसपास हुआ। गीता भी, जो उपनिषद्-ज्ञान का सार-रूप है, इसी युग में सामने आई। महाभारत के साथ ही साथ पुराण कथा-गाथाओं का संस्कार तथा परिष्कार का संक्रमणकाल भी यही है। यूं तो पुराणों के लिखने का क्रम गुप्तकाल तक माना जाता है। किंतु यह एक ऐसा युग था जब कि प्राचीन शास्त्रों का संस्कार एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गंभीर आयोजना के साथ किया गया था। परंतु इस संस्कार युग में भी साहित्य शब्द को जन्म नहीं दिया गया। 'कवि' अपनी पूर्णप्रभा के साथ जीवित रहा और विकासवान होता रहा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य शब्द की उत्पत्ति महाभारत रचनाकाल के बाद तथा बौद्धकाल के आस-पास हुई प्रतीत होती है। तब के कुछ ग्रंथों में 'साहित्य' नाम देखने को मिलता है। किंतु फिर भी इसे कवि के समान प्रसिद्धि तथा मान्यता प्राप्त नहीं हुई। साहित्य शब्द का प्रचलन ई० पू० दूसरी-तीसरी शती में अधिक हुआ और इसे आशातीत प्रसिद्धि मिली। इतनी प्रसिद्धि कि प्रथम शती के महान् कवि भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में यह तक लिख दिया कि साहित्य तथा संगीत विहीन मनुष्य पूँछरहित पशु के समान है। ई० पू० दूसरी और तीसरी शती के आसपास ही 'पुस्तक' शब्द का भी उद्भव हुआ।

ई० पू० दूसरी तथा तीसरी शती के आसपास साहित्य में एक और नया प्रयोग शुरू हुआ। पुराण-कथाओं की तरह शिव-पार्वती के माध्यम से शिक्षाप्रद रोचक साहसिक वृत्तांतों के लिखने का क्रम चला। इनके नायक विद्याधर तथा राजा-महाराजा एवं कई ब्राह्मणकुमार भी थे, जो अनेक संघर्षों का सामना कर उच्चता प्राप्त कर गए। इस प्रकार ग्रंथों में गुणाढ्य की वृहत्कथा-मंजरी प्रथम प्रयास है। बाद में प्रथम शती के आसपास उसी का नया रूप कथासरित्सागर के रूप में सामने आया। बाणभट्ट की कादंबरी भी उसी कड़ी का एक प्रयास है। किंतु धीरे-धीरे साहित्य काम-केलि, हास-परिहास और विलास का माध्यम बन गया और वज्ञानिकतत्त्व उससे दूर हटता चला गया। आज जो साहित्य का स्वरूप है, उससे तो सभी परिचित् हैं। साहित्य के मर्म-वेत्ताओं को इस संबंध में गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

o o o o

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवींद्रनाथ ठाकुर का भाषा-संबंधी दृष्टिकोण

हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

गुरुदेव के परिवार में अपनी भाषा के प्रति अनन्य प्रेम भी देश-भक्ति का प्रतीक माना गया है। उनके परिवार के प्रायः सभी व्यक्ति अपनी भाषा में ही पत्र-व्यवहार करते थे। गुरुदेव ने अपना संपूर्ण साहित्य अपनी मातृभाषा में ही लिखा, जबकि उनसे कई व्यक्ति अँग्रेज़ी में लिखने के लिए कहते रहे, परंतु गुरुदेव का मत था कि भावों की जितनी सुंदर अभिव्यक्ति अपनी भाषा में हो सकती है उतनी विदेशी भाषा में किसी भी रूप में नहीं हो सकती है। गुरुदेव के पूज्य पिता महर्षि देवेंद्रनाथ सदा अपनी भाषा में ही पत्र-व्यवहार करते थे। एक समय की बात है कि महर्षि देवेंद्रनाथ के नाम किसी ने अँग्रेज़ी में एक पत्र भेजा। पत्र में किसी के विवाह-संबंधी रिश्ते की बात थी, परंतु महर्षि इसी बात पर नाराज हो गए कि पत्र अँग्रेजी में क्यों लिखा। फलतः पत्र भेजने वाले को उसी समय लौटाया गया और उसका कोई उत्तर भी नहीं दिया गया। उनका कहना था कि अँग्रेज़ी भाषा के प्रति इतना मोह हमारी मानसिक दासता का द्योतक है। हम इतने पराधीन हो गए कि पारस्परिक पत्र-व्यवहार भी अपनी भाषा में नहीं कर सकते।

"अँग्रेज़ी सीखकर जिन्होंने विशिष्टता प्राप्त की है, सर्वसाधारण के साथ उनके मनका मेल नहीं होता। हमारे देश में सबसे बढ़कर जाति-भेद यही है, श्रेणियों में परस्पर अस्पृश्यता इसी का नाम है। अँग्रेज़ी भाषा के घूंघट में छिपी विद्या अपने स्वभाव से ही हमारे मन की सहवर्तिनी होकर नहीं चल सकती। यही कारण है कि हममें से अधिकांश लोगों को जितनी शिक्षा मिलती है उतनी विद्या नहीं मिलती। अपने चारों ओर की आबहवा से यह विद्या विछिन्न है, बिछुड़ गई है।"

"शिक्षा के क्षेत्र में 'स्वराज' पाने का उत्साह हमारे अंदर जागृत नहीं हुआ—ऐसे आदमी आज भी हमारे देश में मौजूद हैं, जो समझते हैं कि शिक्षा को मातृभाषा के आसन पर बिठा देने से उसकी कीमत ही घट जाएगी।"

राजभाषा और शिक्षा के माध्यम के प्रति आज भी जिन लोगों के मन में भ्रम और ग़लतफहमी है, वे रवींद्रनाथ ठाकुर के उपर्युक्त शब्दों पर गंभीरतापूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विचार करें। गुरुदेव ने स्पष्ट शब्दों में स्वतंत्रता प्राप्त करने से कई साल पहले कहा था कि राजनीतिक क्षेत्र के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी हमें स्वराज लेना है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज के कुछ तथाकथित पढ़े-लिखे लोगों की दृष्टि में भारत का विशाल-रूप नहीं आता। वे इने-गिने लोगों को लेकर ही कह बैठते हैं कि अँग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम हो और वही राजभाषा भी। परंतु आश्चर्य है कि ऐसे व्यक्ति अपने देश को नहीं देखते। वे समस्या को केवल अपने ही तक सीमित रखते हैं। ऐसी विचार धारा वालों को देखकर गुरुदेव ने कहा था कि——

"शहर में रहने वाले एक विशेष दल को इस मौके पर (अँग्रेज़ी शासन में) शिक्षा मिली, इज्जत मिली, रुपया मिला और वे बन गए, ऐनलाइटड अर्थात् प्रकाशमान। उस प्रकाश के पीछे बाकी बचे हुए देश में पूर्ण ग्रहण लग गया। जिन्होंने शिक्षा की चमकती हुई दृष्टि की अंधता में स्कूल की बेंचों पर बैठकर अँग्रेज़ी का सबक याद किया है——वे देश का मतलब समझते हैं शिक्षित समाज, 'मोर' का मतलब निकालते हैं मयूरपंख और हाथी कहने से समझते हैं गजदंत।

इतना ही नहीं। ये पढ़े-लिखे लोग ऐसा कहने में अपना गौरव समझते हैं कि वे अपनी भाषा नहीं जानते। आज भी ऐसी कुत्सित मनोवृति कई लोगों में है जो अपनी मातृ-भाषा में बोलने और लिखने में अपना अपमान समझते हैं।

गुरुदेव ने अपने एक निबंध में स्पष्ट कहा है कि शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा होनी चाहिए तथा राज-भाषा और राष्ट्र-भाषा वही हो सकती है जो बहुजन भाषा हो।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में गुरुदेव ने मिस रथबोन के भारतीयों के प्रति अवज्ञापूर्ण एक पत्र के उत्तर में जोरदार शब्दों में उसका विरोध करते हुए लिखा था कि जिस अँग्रेजी भाषा की आप इतनी शेखियाँ बघारती हैं 1931 की जनगणना के अनुसार इन दो-तीन शताब्दियों में अंग्रेज़ी राज्य और अँग्रेज़ी भाषा का सरकार की ओर से जोर-शोर से प्रचार-प्रसार होने पर भी अँग्रेज़ी जानने वालों की संख्या भारत में बिल्कुल नहीं के बराबर है। और जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है केवल दो प्रतिशत बच्चे ही शिक्षित हैं। जबकि रूस में 1932 में केवल 15 वर्षों के सोवियत सरकार के शासन में नौ प्रतिशत बच्चे शिक्षित हो गए हैं।

वास्तव में गुरुदेव जहाँ अपने युग के महान साहित्य सृष्टा हुए वहाँ वे सच्चे अर्थों में महान देश-भक्त भी थे। अपनी भाषा, सभ्यता और संस्कृति के प्रति उनके मन में अनन्य अनुराग था, इसका प्रतिबिंब उनके साहित्य और भाषणों में सर्वत्र मिलता है। भाषा के प्रति उनका दृष्टिकोण बिल्कुल ही स्पष्ट था, जो स्वतंत्र भारत के कर्णधारों के लिए विचारणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् 1947 के अनंतर अवधी साहित्य

त्रिलोकी नारायण दीक्षित

अवधी जीवित बोली है, जिसमें आज भी साहित्य सृजन हो रहा है, और आज भी दैनिक जीवन में वह भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनी हुई है। अवधी की साहित्यिक परंपराएँ अत्यंत गौरवपूर्ण और उज्ज्वल रही हैं। इस भाषा, विभाषा या बोली के माध्यम से पचासों महाकाव्य का प्रणयन हुआ है, जिनमें से कतिपय प्रकाश में आए और अधिकांश आज भी अप्रकाशित हैं। तुलसीदास, मलिक मोहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन, नूर मुहम्मद, शेख नबी, शेख निसार, नजफ अली सलोनी, कासिम शाह, घाघ, भड्डरी, गिरधर कविराय, सबल सिंह चौहान, प्रताप नारायण मिश्र, धनसिंह राय, भावन, मौन, शंभुनाथ मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्वारिका प्रसाद मिश्र जैसे महाकवियों की प्रतिभा का प्रकाशन जिस बोली के माध्यम से हुआ हो, उसके सौभाग्य की समता कौन भाषा कर सकती है? अवधी काव्यधारा आज भी साहित्य के धरातल पर प्रवाहमान है। तुलसी से बहुत पूर्व आविर्भूत संतों ने भी अवधि के माध्यम से अपने विचारों को काव्य परिधान पहनाकर जनता तक पहुँचाया था और आज भी इस परंपरा को अपनी प्रतिभा से बल देने वाले कवियों की संख्या कम नहीं है।

सन् 1947 भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण वर्ष हैं। सैकड़ों वर्षों की दासता की शृंखलाएँ विच्छिन्न हुईं। राजनीतिक परिस्थितियों के साथ ही साथ साहित्यिक प्रकृतियों में भी परिवर्तन समुपस्थित हुआ। समाज एवं जीवन की प्रगति की दिशाओं में परिवर्तन हुआ। जीवन के मापदंड और मूल्य बदल गए। अवधी के कवि और लेखक इन ऐतिहासिक परिवर्तनों तथा क्रांतियों द्वारा समुपस्थित अभिनव वातावरण से अछूते न रहे। यह सत्य है कि कृष्णायन के अनंतर अवधी में आज तक दूसरा महाकाव्य या चरित्र काव्य नहीं लिखा गया, न श्रीयुत द्वारिका प्रसाद मिश्र जैसी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा ही आज अवधी के किसी कवि में है, फिर भी अवधी काव्य क्षेत्र कवि विहीन नहीं है। जहाँ 'कृष्णायन' हिंदी साहित्य के इतिहास में अपने उत्कृष्ट काव्यत्व, महाकाव्यत्व और भाषा सौष्ठव के कारण बारंबार समारोह पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों में उल्लिखित होगा वहाँ रमई काका, भुशुंडि, वागीश, ब्रज नंदन, पढ़ीस, लिखसी, हितैषी, कृपाशंकर मिश्र आदि अपने तीव्र व्यंग, शब्द चयन तथा ग्रामीण जीवन की छटा की अभिव्यक्ति के लिए सदैव स्मरण किए जाएँगे। 'कृष्णायन' के अनंतर अवधी काव्य स्फुट और विविधता से पूर्ण है। आज अवधी में काव्य लिखने वाले प्रतिभावान कवियों की संख्या प्राय: 70–75 है। इन कवियों ने काव्य विषय को आधुनिक जीवन से ग्रहण किया है, समाज से ग्रहण किया है। इनके विषय में रोचक बात यह है कि ये अपनी सरकार की नीति और योजनाओं का पूर्णतया समर्थन भी करते हैं, और सरकार की असफलताओं, महंगाई, गरीबी, बढ़ती हुई बेकारी, बीमारी, भ्रष्टाचार, पक्षपातवाद, भाई भतीजावाद, जातिवाद आदि की डट कर निंदा भी करते हैं। सन् 1947 के बाद के कवियों की रचनाएँ लघु पर व्यंगों से पूर्ण हैं। ये रचनाएँ पाठकों या श्रोताओं के अंतस् को छूने में समर्थ हैं। बढ़ती हुई महंगाई, बेकारी तथा भ्रष्टाचार ने आज के कवियों को सर्वाधिक आकर्षित किया है। आज का अवधी कवि राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित होकर चीनियों के अन्याय पूर्ण अभियान की निंदा और आलोचना एवं भारतीय सैनिकों की वीरता का गान करने में भी किसी से पीछे नहीं है। तात्पर्य यह है कि अवधी का कवि आज भी अपने दायित्वों से पूर्णतया परिचित और सक्रिय हैं। जीवन, समाज, संसार की गतिविधि से वह परिचित एवं जागरूक है। आज की अवधी कविता का वर्ण्य विषय दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम है सामाजिक तथा द्वितीय है राजनैतिक। सामाजिक विषयों में उक्त समस्या, मुकदमेबाजी, वरखोज, किसान, वृद्ध विवाह, खलिहान, लक्ष्मी पूजन, सोना, लोहा, परवशता, पुरानी चुनरी, दिग्शूल, धरती, व्रत के ढोंग, चुनाव, शराब के दुष्प्रभाव, बेकारी, मकानों की दुर्लभता, घूसखोरी की वंदता, महंगाई में पर्व, कंट्रोल की दूकान, क्रोधी अफसर, जननी की आशा, अन्य देवता, गोधन, दुखी गाँव, गाँव का तालाब, कृपण सास, दीवाली, खटमल, फैशन विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रत्येक विषय का हमारे दैनिक जीवन से संबंध है। कवियों विशेषकर रमई काका, भुशुंडि, कृपाशंकर मिश्र, नूतन, देहाती, ब्रजनंदन, लिखीस, वागीश, शास्त्री आदि ने इन विषयों में व्यंगों के माध्यम से आज के विडंबना पूर्ण जीवन का चित्रण किया है। व्यंग्य लेखन में बैसवारे का प्रत्येक कवि कुशल है। हिंदी के पाठकों को बैसवारे के प्रसिद्ध लेखकों निराला, सनेही, हितैषी, रामविलास शर्मा, नंद दुलारे वाजपेई, देवीदत्त शुक्ल, प्रताप नारायण मिश्र के मार्मिक व्यंग बिसरे नहीं होंगे। उपर्युक्त वर्ण्यविषय में देश की दुर्दशा और सामाजिक विपन्नता का चित्रण हुआ है। इन विषयों में सत्य एवं यथार्थ कटु रूप में सामने आता है। राजनैतिक विषयों में भारत की महानता, भारत की दुर्दशा, गाँधी, नेहरू, राजेंद्र प्रसाद तथा सुभाष बोस की उपलब्धियों का विशेष वर्णन है। इस दृष्टि से रमई बाबा की 'भारत का सिपाही', 'नेताजी का तुलादान', भुशुंडि की 'भारत के वीर' तथा कृपा शंकर मिश्र की रचना 'सैनिक की पाती' विशेष रूप से पठनीय हैं। अवधी के कवियों ने चीनी आक्रमण के अवसर पर ओज-पूर्ण उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। नेताजी बैसवारे के कवियों के प्रियजन नायक हैं। रमई काका का 'नेताजी' शीर्षक आल्हाखंड विशेष जन प्रिय है। यह आल्हाखंड नस-नस में वीर रस का संचार करने वाला है।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अवधी के कवियों का नीतिकार का रूप बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली है।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रमई काका, देहाती, भुशुंडि की कहावतें बहुत प्रचलित हैं। काका की रचना से कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं :—

ई आही पक्के लखनऊवा।
कहै चीनी के दूने दाम, बात बात मां करै सलाम।
चीकट तकिया चटक लिहाफ, घर मां गंदे बाहर साफ।।
बड़ा तकल्लुफ कडके खांय, याक कौर का सत्तर दांय।।
नाजुक देहीं सिर पर पल्ला, आंखिन सुरमा अंगुरिन छल्ला।।
तितुर लडावैं कवौ कबुतरन के हैं फेर।।
तिथि तेउहार उडे कनकउवा, जानि लीन्हों पक्का लखनऊवा।।

इसी प्रकार परमात्मादीन पाड्डे की कहावतें बैसवारे में बहुत प्रिय ह। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय पंक्तियाँ दी जाती हैं :—

1—नंगा, संगा, भंगा तीन।
साथ न लीजे आतमदीन।।

2—गांठी, लाठी, काठी तीन।
पौढ़ि के बांधौ आतमदीन।।

3—साखी, माखी, पांखी तीन।
तुच्छ कहावै आतमदीन।।

अवधी के नीतिकारों में खगनिया विशेष प्रसिद्ध है। खगनिया पुरवा (जि० उन्नाव) की रहने वाली और बासू तेली की पुत्री थी। अशिक्षित खगनिया की कतिपय पहेलियाँ यहाँ उद्धृत हैं :—

1—भीतर गूदर ऊपर नांगि, पानी पियै परारा मांगि।
तिहि की लिखी करारी रहै, बासू केरि खगनिया कहै। दावात।

2—लंबी चौड़ी आगुर चारि, दु हूं और ते डारेनि फारि।
जीव न होय जीव का गहै, बासू केरि खगनिया कहै।। कंघी।।

इसी परंपरा में कवि देहाती की रचनाएँ भी पठनीय हैं :—

बनकट चाकर पौकट जूत। चंचल बिटिया बंचर पूत।।
नटखट तिरिया लागै भूत। लडे मुकदिमा बिना सबूत।।
कहै दिहाती रखियों याद। इनकी धोय गई मर्याद।।

इस प्रकार आज के अवधी काव्य का वर्ण्य विषय विधिता संपन्न तथा सरस है।

अवधी कवियों की रचनाओं से उनके व्यक्तित्व की मस्ती, सरलता एवं निर्भयता प्रतिबिंबित होती है। संभवतः यह इस अवध प्रदेश का पुण्य प्रभाव है। 'कवि न होऊ नहि चतुर कहावौं' लिखकर महाकवि तुलसीदास ने जो विनम्रता का परिचय दिया था, वह आज के कवियों के लिए आदर्श बन गया। पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र से लेकर आज तक तरुण कवि सुंदर सरस छंदों की रचना करता हुआ भी आत्मनिवेदन में तत्पर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन अवधी काव्य की रचना प्रमुखतया दोहा चौपाई छंदों में हुई। यह परंपरा जायसी से लेकर द्वारिका प्रसाद मिश्र तक अक्षुण्ण रही है। परंतु आज का कवि इस परंपरा का विसर्जन करके आगे बढ़ गया है। आज सवैय्या, घनाक्षरी, कवित्त, गजल, दोहा, रोला आदि अवधी कवियों के प्रिय छंद है। इन प्रचलित छंदों के अतिरिक्त गीत, गजलों में भी अवधी कविता की रचना हो रही है। कृपाशंकर मिश्र वर्तमान अवधि के बेजोड़ प्रतिभासंपन्न कवि हैं। खड़ी बोली और अवधी दोनों में ही मिश्र जी काव्य रचना करते हैं। मिश्रजी ने अवधी में भी अतुकांत काव्य की रचना की है। उदाहरणार्थ :—

ठाढ है हरू नींबी की डार,
कल्वाना वैलु ठाढ पगुर्याय,
दुसरका परा,
गलारे कउबा रव्वादे कान,
किलोनी चपठा
गउझारि के नींबि के तरे परा
जर जर खेतिहर ॥

रमई काका सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग करने में कुशल हैं। उनका विरहा छंद देखिए :—

जेठ दुपहरिया मां लूक के बयरिया,
देहिया उघारे माड़ै मड़नी किसनवा।
थके थके पाँव धरे डगमग-होइकै,
तन ते बहत वूंद बूंदन पसिनवा ॥

अवधी में लोक छंदों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। विरहा, विदेसिया छंदों का तो खूब प्रयोग हुआ ही है, साथ ही आल्हा छंद में भी प्रचुर रचना हुई है। अवधी में अनेक आल्हाखंडों की रचना हुई, जिनमें रमई काका का 'नेता जी' तथा ललिताप्रसाद मिश्र की रचनाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। प्राचीन एवं नवीनतम छंदों का प्रयोग बराबर अवधी में हो रहा है, यह अवधी की प्रगतिशीलता का द्योतक है। लोकोन्मुख होने के कारण तथा युग की लोकचेतना की पुकार के कारण अवधी ने लोक धुनों और सभी प्रकार के छंदों को अपनाया है।

रस की दृष्टि से अवधी काव्य का मूल्यांकन भी आवश्यक है। आज अवधी में शृंगार, हास्य, करुण तथा वीर रसों की अभिव्यक्ति विशेष हो रही है। हास्य रस की रचना में रमई काका, भुशुण्डि, कृपाशंकर मिश्र, देहाती, वागीश आदि विशेष सफल हुए। इनका हास्य शिष्ट, मर्यादित तथा व्यंग्य प्रधान है। करुण रस से ओतप्रोत कविताएँ रमई काका, कृपाशंकर मिश्र, ब्रजनंदन, नूतन, दीप नारायण 'दीप' आदि लिखने में सफल हुए हैं और वीर रस की रचना तो प्रायः प्रत्येक कवि ने सफलता के साथ की है। हास्य एवं वीर रस अवधी के कवियों को बहुत प्रिय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अवधी का यह सौभाग्य है कि अनेक कवयित्रियाँ भी इस भाषा में काव्य रचना कर रही हैं। [illegible] सन् 1947 के बाद दमयंती दीक्षित, तोरन देवी शुक्ल 'लली', सुमित्रा कुमारी सिन्हा आदि ने प्रचुर अवधी काव्य रचना की है। इनका योगदान महत्वपूर्ण है। सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने अवधी में सुंदर गीतों की रचना की है। 'आषाढ़ का आगमन', 'माटी का न्योता' उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। दमयंती दीक्षित की 'अप्रस्तुत योजना' बड़ी स्वाभाविक और अच्छी है। उदाहरणार्थ :—

हवई रहा रहै दिन का अंत, पच्छिम मां छाई अरुनाई।
मानौ रजनी कै मांग भरै, संध्या कुंकम अच्छत लाई।

कवयित्रियों के काव्य का वर्ण्य विषय प्रकृति चित्रण से अधिक संबंधित है। इनकी अप्रस्तुत योजना सरल एवं स्वाभाविक है।

सन् 1947 के बाद का अवधी साहित्य एकांगी नहीं है अर्थात् उसमें कविता, कहानी, नाटक, निबंध साहित्य की सभी विधाओं की रचना हुई है और हो रही है। रमई काका ने अवधी में अनेक सुंदर नाटकों का प्रणयन किया है। काका एकांकी रचना में भी कुशल हैं। भुशुण्डि ने अवधी में कहानियों और गद्य पैराडी की रचना की है। 'उसने कहा था' के आधार पर लिखित उनकी पैराडी बड़ी रोचक है। रमई काका ने अवधी में निबंधों की रचना भी की है, जो समय-समय पर लखनऊ, इलाहाबाद रेडियो से प्रसारित होते रहे हैं।

अवधी लोक गीतों के संग्रह एवं आलोचनात्मक अध्ययन का कार्य लखनऊ एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालयों में संपन्न हो रहा है। इस दिशा में इंदुभूषण-पांडय का प्रयास सराहनीय है। उनकी पुस्तक 'अवधी लोकगीत' इस दिशा में प्रथम प्रयास है।

० ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष

साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य : ले० डा० रघुवंश : प्रकाशक– भारतीय ज्ञान पीठ, काशी : मूल्य– पाँच रुपए

'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' नई प्रवृत्तियों की पीठिका का विचारात्मक विश्लेषण है। 'साहित्यिक मूल्य' के अंतर्गत जितने निबंध आए हैं उन्हें भी इस पीठिका से बाहर का नही माना जा सकता। 'मूल्यगत संक्रमण और समीक्षा का मानदंड' में "युग युग की समीक्षा" के प्रतिमान एक-सें नहीं हो सकते कि सामान्य समस्या-परिक प्रपति के पश्चात् डा० रघुवंश ने पूरे नवलेखन या नवलेखन से कुछ पूर्व की स्थिति को अनिश्चिति की स्थिति माना है, यद्यपि इस अनिश्चय के साथ-साथ 'स्थायी मूल्यों' की संगति का भी प्रारूप उन्होंने स्वीकार किया है "दायित्व और स्वतंत्रता का अविच्छिन्न मूल्य", "साहित्य में प्रयोगवाद" तथा "रस सिद्धांत" और "आधुनिक मनोविज्ञान" निबंधों से डा० रघुवंश के समग्र चिंतन की झलक मिल जाती है। जीवन के महत्त मानवतावादी पक्ष से उनका वैचारिक आधार संपृक्त है जो किसी वादविवाद से निरपेक्ष होते हुए भी जीवन के वृहत्-संदर्भों से सापेक्ष (संबंद्ध) भी है।

'आधुनिक काव्य' के निबंधों में 'नव-काव्य' की पूर्व परंपराओं का परिचय 'सूचनात्मक परिचय' से अलग किस्म का मिलता है। सही ढंग से देखा जाए तो इतिहास लेखन की ईमानदारी की रक्षा करते हुए यह विवेचन पूर्व परंपराओं की संगति का भी उल्लेख करता है। पूरे प्रसंग की आधारभूत स्थापनाओं के बारे में अनेक मत हो सकते हैं और डा० रघुवंश भी उनसे पूरी तरह परिचित हैं क्योंकि उन्होंने भूमिका में स्वीकार किया है, "युवक लेखकों का हमारा एक ऐसा वृत्त भी रहा है, जिसके साथ पिछले साहित्यिक चिंतन के आंदोलनों से मेरी भी गहरी संसक्ति रही है ।" यह अलग बात है इन वर्षों की रचना-पीढ़ी के कई एक युवक रचनाकार परंपरा की पूरी आधारभूमि को अस्वीकार की दृष्टि से देखते हैं। यह केवल 'नव रचना' की तर्क सिदधि के लिए नहीं अपितु नए 'मानव यथार्थ' के समक्ष परंपरा का पूरा दय अर्थहीन भी लगता है। नई कविता की समसामयिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव-भूमि और नई कविता का सामाजिक परिवश निबंधों में नई समस्याओं, नए रूप विधान के बारे में विशिष्ट संदर्भों में चर्चा मिलती है। इन दो निबंधों तथा तभी प्रवृत्तियों के पाँच निबंधों में नई कविता के रचनात्मक इतिहास की समीक्षा मिलती है। नई प्रवृतियों के पाँच निबंध निश्चय ही समीक्षक के दायित्व के परिचायक हैं। अनेक नए कवि और प्रवत्तियाँ ऐसी है जिनकी ओर शास्त्रीय समीक्षकों की तो हिम्मत नहीं पड़ी तथाकथित नए समीक्षक भी कलम उठाते हुए डरते हैं—क्यों ?

डा० रघुवंश के निबंध निश्चित रूप से नवलेखन को समझाते हैं और रचनात्मक गहराई तथा सौंदर्य दृष्टि के प्रति नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। यह समझ नहीं आया कि डा० रघुवंश नई कविता संबंधी अपने निबंधों में एक विशेष वर्ग को ही अध्ययन का केंद्र क्यों बनाते हैं। क्या एक वर्ग विशेष तक सीमित रहना समीक्षक की ईमानदारी पर प्रश्न नहीं खड़ा करता। कुल मिला कर साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य नए साहित्य का अधिकारिक विवेचन तो है ही।

गंगाप्रसाद विमल

भाषा और संवेदना : डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी : भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित : मूल्य रु० 2·50

भाषा अभिव्यक्ति का वह माध्यम है जिससे मनुष्य जीवन के कार्य-व्यवहार निश्चित रूपों में एक दूसरे तक पहुँचते हैं। वर्तमान जगत में भाषाओं के विविध वैज्ञानिक अध्ययन ने भाषा के विकास-क्रम से हमारा परिचय कराया है। भाषा केवल सीखे हुए संकेतों, ध्वनियों या दृश्य-जगत की प्रतिक्रियाओं की वाहक मात्र नहीं है। अपितु वह रहस्यमय संवेदना के अँधेरे कक्षों को भी प्रकाशित करती है। प्रस्तुत पुस्तक में भाषा के इसी महत्वपूर्ण प्रसंग की चर्चा हुई है। यद्यपि आज विज्ञान की सांकेतिक भाषाएँ, जो गणना में असंख्य हैं, और विधिवत् निर्णय देती हैं वह स्पोकन (Spoken) भाषा की कमज़ोरियों को बताती भी हैं, तथापि अभिव्यक्ति का जीर्ण माध्यम होने पर भी संवेदना के अदेखे कक्षों का उद्घाटन करने के साथ वह हमारी सुंदर अपेक्षाओं को भी तृप्त करती है।

'भाषा और संवेदना' में हिंदी कविता की भाषा पर अनेक शीर्षकों के अंतर्गत विचार हुआ है। कथा संबंधी भाषा के बारे में भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। काव्य-भाषा का क्रमागत संस्कार भाषा की शक्ति के विकास का लक्षण है। छायावाद के पूर्व की काव्य-भाषा अत्यंत कृत्रिम कही जा सकती है। छायावाद में कविता की भाषा का नया रूप हमें मिलता है। लेखक की इस बात का समर्थन किया जाना चाहिए कि भाषा जितनी सृजनात्मक होगी कला-कृति उतनी ही विशुद्ध और प्रामाणिक होगी। लेखक की यह उक्ति भी सत्यता के निकट है कि बोलचाल की भाषा काव्य भाषा नहीं बन सकती, बोलचाल की भाषा के आधार पर काव्य भाषा विकसित हो सकती है। विद्वज्जन मानेंगे कि काव्य-भाषा को बोलचाल की भाषा गहराई की शक्ति देती है। प्रयोगात्मक ढंग पर काव्य भाषा बोलचाल की भाषा से अलग होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कविता के युग में आज जब कविता के सभी परंपरागत भेदक, लक्षण, तुक, छंद, अलंकरण, लय (शायद सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व-रस भी) धीरे धीरे विलुप्त हो चले हैं तो काव्य-भाषा ही वह अंतिम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधार शेष रह जाता है, जिसके सहारे कविता के आंतरिक संघटन को समझने की चेष्टा हो सकती है। यह सच है कि हिंदी समीक्षा में काव्य-भाषा के विश्लेषण के लिए बहुत उल्लेख योग्य यत्न अभी तक नहीं हुए हैं। इस बात की आवश्यकता पर लेखक ने ज़ोर दिया है कि काव्य-भाषा का सुचिंत्य अध्ययन होना चाहिए। इस अध्ययन में रस तत्त्व की अपेक्षा नहीं होनी चाहिए। लेखक के मतानुसार तो रस-तत्त्व विलुप्त हो चला। किंतु अगर भारतीय काव्य शास्त्रीय परंपराओं में से भाषा के वैज्ञानिक, मान्य तथ्य लिए जाएँ तो उसमें रस-तत्त्व अनिवार्यतः होगा। हाँ, रस-तत्त्व का जड़ और व्यर्थ अनुकरण अब नहीं होना चाहिए।

अच्छी भाषा लेखक की संवेदना को निश्चय ही ऊपर उठाएगी। इस कथन में संदेह नहीं क्योंकि अच्छे लेखकों में भाषा के द्वारा अछूती संवेदना आकार पाती है। पश्चिम के बड़े-बड़े लेखकों का लिरिकल प्रोज़ उदाहरण के रूप में देखा जाना चाहिए। हिंदी में डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, डा० नगेंद्र, अज्ञेय और नई कविता के कितने ही लेखकों की भाषा में प्रवाह तत्त्व मिलेगा।

'भाषा और संवेदना' का लेखक बधाई का पात्र है। उसने महत्त्वपूर्ण विषय का आरंभ किया है। भाषा में जड़ प्रवृतियाँ, कथानक रूढ़ियाँ, प्रतीक, पुराण कथाएँ, पुरा-प्रसंग, बिंब, अनुभूति बिंब, लोक-बोलियों के मीठे प्रयोग अनेक प्रकार से जड़ता या शक्ति संचार करते हैं। इस विषय का और भी गहराई से विचार किया जाना चाहिए। इससे अहिंदी क्षेत्रों और दुराग्रहियों के उस प्रश्न को भी उत्तर मिलेगा जो हमारे राष्ट्र के एकता के मार्ग में खड़ा है। इस पुस्तक को पढ़ने पर हिंदी भाषा की काव्य भाषा की शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है।

अनामिका

नाटक साहित्य का अध्ययन——अनुवादक : इंदुजा अवस्थी संपादन एवं भूमिका : डा० सुरेश अवस्थी, प्र काशक—— आत्माराम एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्लीं-6 मुल्य : रु० 7.50

"नाटक साहित्य का अध्ययन" हिंदी नाट्यालोचन जगत की, अनुवाद-संबंधी नवीनतम उपलब्धि है। वस्तुतः किसी भी भाषा के उत्कृष्ट साहित्य से अपनी भाषा के भंडार को समृद्ध करने की दृष्टि से अनुवाद किए जाते हैं। प्रसिद्ध अमरीकी समीक्षक जेम्स ब्रैंडर मैथ्यूज की पुस्तक 'ए स्टडी आफ दि ड्रामा' नाट्यलोचना संबंधी व्यापक सिद्धांतों का गंभीर विवेचन है।

संस्कृत नाटक का परंपरागत दाय एवं पाश्चात्य नवीन मूल्यों के मध्य हिंदी नाट्य परंपरा जहाँ एक ओर समृदध हुई है, वहाँ वह नवीन रंगमंचीय स्थापनाओं के प्रति द्विविधाग्रस्त भी है। पुस्तक के प्रथम अध्याय में पाश्चात्य नाटक-समीक्षकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एवं लेखकों हन, ग्रास आदि के सशक्त उद्धरणों से पुष्ट-मत, धारा प्रवाह अनुवाद में प्रस्तुत हैं। "मूल के प्रति आस्था एवं स्वतंत्र अनुवाद" के माध्यम से यत्र-तत्र नाटक-साहित्य के मान्य सिद्धांतों की पुष्टि हुई है। "हिंदी रंगमंच की कोई समर्थ परंपरा नहीं रहीं है"––इस दृष्टिकोण से रंगमंच संबंधी तीन तत्व रंग-शाला, अभिनेता और दर्शक-समाज को देखते हुए अभिनेता का प्रभाव, रंगशाला का प्रभाव, दर्शकों का प्रभाव, ये तीन अनुपादित अध्याय महत्त्वपूर्ण ही नहीं अत्यंत आवश्यक हैं। 'नाटक का विधान' अध्याय में (फ्रांसिसी आलोचक) ब्रूने-त्यार द्वारा प्रतिपादित 'मानव ईहा' (मनुष्य-इच्छा) समस्त पाश्चात्य नाट्य जगत को एक महत्त्वपूर्ण देन रही है। इस दृष्टि से इस अध्याय का अनुवाद महत्त्व-पूर्ण है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० सुरेश अवस्थी के अनसार प्रसिद्धतम नाटककारों की नाट्य कृतियों के ही अधिकांश उद्धरण व आलोचना पत्तियाँ अनुवाद के उपयुक्त थे अतः शेष अन्य उद्धरण हिंदी-नाठक के लिए अग्राह्य मानकर छोड़ दिए गए। यद्यपि सार तत्त्व-ग्रहण की प्रवृत्ति सराहनीय है, तथापि इससे अनुवाद की सीमा और भी अधिक व्यापक, मूल क अधिक समीप एवं विस्तृत हो जाती, जिससे किंचित वृद्धि ही अपेक्षित थी। ग्यारहवें अध्याय में एलिजावेथकालीन प्रसिद्ध नाटक-कारों की नाट्य-कला संबंधी वृत्तियों का अच्छा परिचय है।

पुस्तक के अंतिम भाग में दिए गए परिशिष्टों का भी विशेष महत्त्व है। सर्वमान्य नाट्य सिद्धांत संबंधी प्रश्नों के लिए, पाश्चात्य अभिनेताओं रंगशाला व्यवस्थापकों, नाटककारों एवं विदेशी व्यक्तियों का परिचय पुस्तक में दिया गया है, उनसे संबंधित टिप्पणियों के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीसरा भाग है जिसमें प्रचलित अंग्रेज़ी नाट्य शब्दावली का हिंदी अनुवाद दिया गया है। उदाहरणार्थ––गाथात्मक-गीत Lyical Burlesque के लिए और शोभा-मंच–– Pagent के लिए, इसी प्रकार अन्य शब्द भी हैं।

पुस्तक की व्यवस्था क्रमबद्ध एवं स्वच्छ होने के साथ ही आकर्षक भी है। छपाई की दृष्टि से भी पुस्तक उत्तम है। वस्तुतः पुस्तक सामयिक है।

कुल मिला कर नाटक साहित्य का अध्ययन हिंदी नाट्यालोचन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है। स्वतंत्र तथा व्यवस्थित वृत्ति से अनुपादित होने के कारण आधि-कारिक तो है ही किंतु साथ ही अनुवादिका श्रीमती इंदुजा अवस्थी का यह प्रयत्न इस दृष्टि से भी निस्संदेह उत्साहपूर्ण एवं है सराहनीय है कि विदेशी ज्ञान-विज्ञान, अनुवाद के माध्यम से अपनी भाषा में लाया जा सकता है। पारिभाषिक शब्दावली के अंत में परिशिष्ट नाट्य साहित्य के अनुवाद के लिए काफ़ी काम की चीज है।

अमिता सैली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी पाठ

नरेंद्र व्यास

NUMERALS

Numerals are used for denoting numbers. They may either be *Cardinals*, used for counting or *Ordinals*, denoting position and order or *Multiplicatives*, indicating multiplication.

The Cardinals

Hindi cardinals reproduced below in words and in figures with their corresponding Arabic forms would, facilitate familiarity with their pronunciation.

In words	*Deva-nagari*	*Arabic*	*In words*	*Deva-Nagari*	*Arabic*	*In words*	*Deva-nagari*	*Arabic*
शून्य	०	0						
एक	१	1	आठ	८	8	पंद्रह	१५	15
दो	२	2	नौ	९	9	सोलह	१६	16
तीन	३	3	दस	१०	10	सत्रह	१७	17
चार	४	4	ग्यारह	११	11	अठारह	१८	18
पाँच	५	5	बारह	१२	12	उन्नीस	१९	19
छह (छः)	६	6	तेरह	१३	13	बीस	२०	20
सात	७	7	चौदह	१४	14	इक्कीस	२१	21

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाईस	२२	22	पैंतालीस	४५	45	अड़सठ	६८	68
तेईस	२३	23	छियालीस	४६	46	उनहत्तर	६९	69
चौबीस	२४	24	सैंतालीस	४७	47	सत्तर	७०	70
पच्चीस	२५	25	अड़तालीस	४८	48	इकहत्तर	७१	71
छब्बीस	२६	26	उन्चास	४९	49	बहत्तर	७२	72
सत्ताईस	२७	27	पचास	५०	50	तिहत्तर	७३	73
अट्ठाईस	२८	28	इक्यावन	५१	51	चौहत्तर	७४	74
उनत्तीस	२९	29	बावन	५२	52	पचहत्तर	७५	75
तीस	३०	30	तिरपन	५३	53	छहत्तर	७६	76
इकत्तीस	३१	31	चौवन	५४	54	सतहत्तर	७७	77
बत्तीस	३२	32	पचपन	५५	55	अठहत्तर	७८	78
तैंतीस	३३	33	छप्पन	५६	56	उनासी	७९	79
चौंतीस	३४	34	सत्तावन	५७	57	अस्सी	८०	80
पैंतीस	३५	35	अट्ठावन	५८	58	इक्यासी	८१	81
छत्तीस	३६	36	उन्सठ	५९	59	बयासी	८२	82
सैंतीस	३७	37	साठ	६०	60	तिरासी	८३	83
अड़तीस	३८	38	इकसठ	६१	61	चौरासी	८४	84
उन्तालीस	३९	39	बासठ	६२	62	पचासी	८५	85
चालीस	४०	40	तिरसठ	६३	63	छियासी	८६	86
इक्तालीस	४१	41	चौंसठ	६४	64	सतासी	८७	87
बयालीस	४२	42	पैंसठ	६५	65	अठासी	८८	88
तैंतालीस	४३	43	छियासठ	६६	66	नवासी	८९	89
चवालीस	४४	44	सड़सठ	६७	67	नब्बे	९०	90

इक्यानवे	९१	91	एक सौ एक	101
बानवे	९२	92	दो सौ	200
तिरानवे	९३	93	एक हजार	1000
चौरानवे	९४	94	दस हजार	10,000
पचानवे	९५	95	एक लाख	100,000
छियानवे	९६	96	दस लाख	1,000,000
सत्तानवे	९७	97	एक करोड़	10,000,000
अट्ठानवे	९८	98	दस करोड़	100,000,000
निन्यानवे	९९	99	एक अरब	1,000,000,000
सौ	१००	100	दस अरब	10,000,000,000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

The year 1965 can be read either as एक हजार नौ सौ पैंसठ or more commonly as उन्नीस सौ पैंसठ. The telephone numbers are generally pronounced in two digit sequences, thus 273216 will be spoken as सत्ताईस, बत्तीस, सोलह.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

These numerals are not affected by gender or case. As for number, obviously, एक is singular and all the rest are plural.

Fractional Numbers

Fractional numbers in Hindi are irregular upto two and a half and all the rest are regular. These are as follows :

$\frac{1}{4}$	(one divided by four)	एक बटे चार, चौथाई or पाव
$\frac{1}{3}$	(one divided by three)	,, ,, तीन, तिहाई
$\frac{1}{2}$	(one divided by two)	,, ,, दो, आधा
$\frac{3}{4}$	(three divided by four)	तीन बटे चार, तीन चौथाई or पौन
$1\frac{1}{4}$	(one and a quarter)	एक सही एक बटे चार, सवा but not सवा एक
$1\frac{1}{2}$	(one and a half)	एक सही एक बटे दो, डेढ़ but not साड़े एक
$1\frac{3}{4}$	(two less by quarter)	एक सही तीन बटे चार, पौने दो
$2\frac{1}{4}$	(two and a quarter)	दो सही एक बटा चार, सवा दो
$2\frac{1}{2}$	(two and a half)	दो सही एक बटे दो, ढाई but not साड़े दो
$2\frac{3}{4}$	(three less by quarter)	दो सही तीन बटे चार, पौने तीन

One quarter more is expressed by सवा........ ....., one half more is expressed by साढ़े..........., and one quarter the less is expressed by पौने........... This is also applicable to the fractions of hundreds, thousand, ten thousands etc. Thus, the alternative expressions are :

125	एक सौ पच्चीस	or	सवा सौ (but not सवा एक सौ)
150	एक सौ पचास	or	डेढ़ सौ (but not साड़ एक सौ)
175	एक सौ पंचहत्तर	or	पौने दो सौ
250	दो सौ पचास	or	ढाई सौ (but not साड़े दो सौ)
2500	दो हजार पाँच सौ	or	ढाई हजार
325000	तीन लाख पच्चीस हजार	or	सवा तीन लाख

Indefinite numbers : An indefinite number is expressed either by putting कोई or लगभग before a cardinal number or by putting

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

after it. Thus :

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ कोई पाँच सौ आदमी होंगे	There would be about 500 people.
मैं लगभग पाँच बजे आऊँगा	I shall come at about 5 O'clock.

मुझे यहाँ आए दसेक (दस एक) साल हुए हैं I came here about ten years ago.

Approximation is also expressed by putting certain numerals together : एक आध (very few, one here and there) पांच-छः, दस-पंद्रह, सौ-सवासौ, चार (सौ)-पाँच सौ, हजार-दो हजार, तीन चार लाख etc.

Distributives : The cardinal number is repeated to express the distributives : बच्चों को दो-दो आम दे दो (give the children two mangoes each), or to express 'at a time'; in pairs 'एक एक करके आओ' (come one by one or come one at a time), हर मेज पर दो-दो आदमी बैठे हुए हैं, 'The people are sitting in pairs at each table.'

The Ordinals

The first six ordinals (except the fifth) are irregular: पहला (first), दूसरा (second), तीसरा (third), चौथा (fourth), पाँचवाँ (fifth) छठा (sixth)—All others are formed by appending—वाँ with the corresponding cardinal number. Thus: आठवाँ (eighth), दसवाँ (tenth), पच्चीसवाँ (twenty-fifth), सौवाँ (hundredth), हजारवाँ (thousandth).

These ordinals are also used as adjectives and hence they are modified according to gender, number and case of the noun qualified by them. For example :

चौथा आदमी	'The fourth man'.
दसवीं औरत	'The tenth woman'.

हर तीसरे वर्ष मैं यहाँ आता हूँ । I come here every third year.

In place of these indigenous Hindi ordinals, Sanskrit ordinals (प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ etc.) are also used, specially, in literary writing (with Tatsama words) प्रथम अध्याय (first chapter), द्वितीय श्रेणी (second class), तृतीय व्यक्ति (third man) etc.

The Multiplicatives

The multiplicatives are expressed by suffixing गुना to a cardinal number. These upto eight are slightly irregular : दुगुना or दूना (double), तिगुना (three-fold), चौगुना (four-fold), पँचगुना or पाँच गुना (five-fold), छैगुना or छहगुना (six-fold), सतगुना (seven-fold), अठगुना (eight-fold). After eight the forms are regular : दसगुना (ten-fold or ten times), सौ गुना (hundred fold). The गुना suffix may also be attached to fractions : सवा गुना ($1\frac{1}{4}$ times as much), ढाई गुना ($2\frac{1}{2}$ times as much).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

These are also affected by gender, number and case : दुगुना रेल किराया (double railway fare): चौगुनी चीजें (things four times) तुम मेरे मकान से तिगुने ऊँचे मकान में रहते हो (you reside in a house three times higher than mine).

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Aggregation : ओं is suffixed to a cardinal number for denoting aggregation, which means 'all' (दोनों—both--is an exception where नों is appended in place of ओं): तीनों (all three), पाँचों (all five), आठों (all eight). These forms are not affected by gender and number.

Time Enquiry

In Hindi, the verb बजना (to be struck) is used for time. e.g.

क्या बजा है ? or कितने बजे है ?	What O' clock is it ?
or क्या समय हुआ है ?	What time is it ?
एक बजा है ।	It is one O' clock.
तीन बजे हैं ?	It is three O' clock.
डेढ़ बजने वाला है।	It is going to be half-past one.
पौन बज चुका है ।	It is gone 12·45 (P. M.)
सवा बज गया है ।	It is already 1·15 (P. M.)
दो बज रहे हैं।	It is two O' clock.
ढाई बजेंगे ।	It will be half past two.

The conjunctive participle बजकर and the inflected infinitive बजने में are used in the following manner.

पाँच बजकर आठ मिनट हुए हैं ।	It is eight minutes past five.
बारह बजकर पच्चीस मिनट होने वाले हैं।	It is about 12·25.
सात बजने में बारह मिनट (बाकी) हैं ।	It is twelve minutes to seven.
तुम छह बजने में पाँच मिनट पर तैयार रहना ।	Be ready at five minutes to six.

The expression like 'at.........O' clock' is rendered into Hindi by the Past Participle बजा as in गाड़ी तीन बजे आती है (the train arrives at three O' clock). बैंक दस बजे खुलता है (The bank opens at ten O' clock).

Division of a day : The Indian day time is divided into the following parts :

ब्राह्म मुहूर्त (before sun-rise), प्रातःकाल or सुबह (morning), मध्याह्न (midday or noon), अपराह्न (after-noon), संध्या or साँझ (evening), रात्रि or रात (night) and मध्यरात्रि or आधीरात (mid-night). The

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

division into प्रहर (equivalent to 3 hours) and घड़ी (equivalent to 24 minutes) is now obsolete and hence not very important. The word घंटा (gong, bell) is used generally to indicate an hour-division.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Important Vocabulary

Division of Time

शताब्दी or सदी (centuary), सन् or संवत् ('era) वर्ष or साल (year), मास or महीना (month), सप्ताह (week), दिन or वार (day), तारीख or दिनांक (date), शुक्लपक्ष (bright half), कृष्णपक्ष (dark fortnight), पक्ष or पखवाड़ा (fortnight), पूर्णिमा or पूनम (full-noon day), अमावस्या (new-moon day).

Months मास *or* महीना

1. According to *Gregorian* calendar (ईसवी सन्) --

जनवरी (January), फरवरी (February), मार्च (March), अप्रैल (April), मई (May), जून (June), जुलाई (July), अगस्त (August), सितंबर (September), अक्तूबर (October), नवंबर (November), दिसंबर (December).

2. According to *Indian* Calendar (शक् संवत् or विक्रम संवत्) चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, आग्रहायण (मार्गशीर्ष), पौष, माघ, फाल्गुन ।

Days (दिन *or* वार)

रविवार or इतवार (Sunday), सोमवार (Monday), मंगलवार (Tuesday), बुधवार (Wednesday), गुरुवार or बृहस्पतिवार (Thursday), शुक्रवार (Friday), शनिवार (Saturday).

Seasons (ऋतुएँ)

बसंत (Spring), ग्रीष्म or गर्मी (Summer), वर्षा or बरसात (Rainy Season), शरद् or जाड़ा (Winter), हेमंत (Frost), शिशिर (Autumn).

Directions (दिशाएँ)

पूर्व or परब (East), पश्चिम (West), उत्तर (North), दक्षिण (South), ईशान् or उत्तर-पूर्व (North-East), आग्नेय or दक्षिण-पूर्व (South East), नैऋत्य or दक्षिण-पश्चिम (South-West), वायव्य or उत्तर-पश्चिम (North-West), बायाँ (Left), दायाँ or दाहिना (right).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भाषा' त्रैमासिक का महत्त्वपूर्ण विशेषांक

शांति–रक्षा अंक

● जय जननी, जय भारती

सर्वश्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', संजय भट्टाचार्य, नरेंद्र शर्मा, राजीव सक्सेना, सदानंद रेगे, जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चौधरी, स्वदेशरंजन दत्त, जगदीश गुप्त, शांतिलाल आहूजा तथा दिनकर सोनवलकर की कविताएँ।

● सात कहानियाँ

कहानीकार : सर्वश्री कमलेश्वर, संतोखसिंह धीर, स्टीपेन ज़ोरयान्, शक्तिपाल केवल, नरेंद्रपाल सिंह, शिवकुमार जोशी तथा सूबासिंह।

● द्वाभा

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंशराय 'बच्चन' तथा नंद चतुर्वेदी की कविताएँ (अनुवाद सहित)।

● लेखक का दायित्व

सर्वश्री बालकृष्ण राव, जनार्दन वाघमारे, भगवतशरण उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, वासुदेवशरण अग्रवाल तथा प्रफुल्लदत्त गोस्वामी के सारगर्भित लेख।

● सुमित्रानंदन पंत का गीतिनाट्य 'ध्वंस-शेष'–गुजराती अनुवाद सहित।

● श्री दिनकर कौशिक का 'आपत्कालीन स्थिति तथा कलाकार' शीर्षक लेख।

● **भारतीय कविता** के अंतर्गत समस्त भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कविताएँ।

सुनीतिकुमार चटर्जी, हेम बरुआ तथा प्रेमनाथ धीर के इंटरव्यू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब एक और विशेषांक

भाषा द्विवेदी स्मृति-अंक

त्रैमासिक

भाषा की गौरवपूर्ण परंपरा में एक नूतन अध्याय

- हिंदी तथा हिंदीतर भाषाओं के विद्वानों की रचनाएँ
- द्विवेदी जी के अंतरंग जीवन की झांकियाँ।
- द्विवेदी जी के दुर्लभ चित्र।
- द्विवेदी जी के संस्मरण।
- द्विवेदी युगीन साहित्य पर सारगर्भित लेख।
- द्विवेदी जी के संपादक, भाषा सुधारक, काव्य समीक्षक, निबंध लेखक, आलोचक तथा कवि रूप का अधिकारी विद्वानों द्वारा विषद तथा तुलनात्मक अध्ययन।
- द्विवेदी जी के एक गद्यांश का चौदह भारतीय भाषाओं में अनुवाद।
- द्विवेदी जी के हाथ से संशोधित की गई प्रसिद्ध रचनाओं की पांडुलिपियों और द्विवेदी जी के पत्रों के चित्र।
- द्विवेदी शताब्दी समारोह का विस्तृत एवं सचित्र विवरण।

तथा

श्रद्धांजलियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिभाषिक शब्द-संग्रह

(अँग्रेज़ी-हिंदी)

यह शब्द-संग्रह दस वर्ष के अनुसंधान कार्य का परिणाम है। इसमें विभिन्न विषयों और शास्त्रों के विशेषज्ञों और विद्वानों की सहायता से वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड के तत्वावधान में निर्मित शब्दावली संकलित की गई है।

भारत के संविधान के अनुसार हिंदी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि यह भारत की सामयिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत तथा गौणतः भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करने का दायित्व भारत सरकार को सौंपा गया है।

स्ट्रॉबोर्ड कवर

पृष्ठ संख्या : 1370

मूल्य: 12 रुपए

भारत सरकार ने 1950 में हिंदी और प्रमुख भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली तैयार करने के लिए एक वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की थी।

बोर्ड का यही दृष्टिकोण रहा कि जहाँ तक हो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग किया जाए और जहाँ राष्ट्रीय शब्दावली उपलब्ध न हो सके वहाँ भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया जाए।

कृपया अपना ऑर्डर नीचे लिखे पते पर भेजें :—

प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, भारत सरकार, सिविल लाइंस, दिल्ली-6।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113550

सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि त्रैमासिक पत्रिका

संस्कृति

(ग्रीष्म, पावस, शरद् और हेमंत में प्रकाशित)

संपादकीय मंडल

श्री रामधारी सिंह दिनकर

डा० नगेंद्र

श्री दु० क० हिंगोरानी

राजेंद्र द्विवेदी (संपादक और पदेन सचिव)

संपादक 'संस्कृति'

शिक्षा मंत्रालय

1 ई, 3 करजन रोड, ए-बैरक्स, नई दिल्ली ।

वार्षिक चंदा : चार रुपए

एक प्रति : एक रुपया

भारत-विद्या विशेषांक के मुख्य आकर्षण :

विश्व एकता में प्राच्य विद्या का स्थान (हुमायूंन् कबिर), भारत विद्या की समस्याएँ और आवश्यकताएँ : एक संगोष्ठी (के० एम० पनिकर, ज्यों फिलियोज़ा, आर० सी० मजूमदार, वें० राघवन्, रमाप्रसन्न नायक, प्रभाकर माचवे), भारतीय तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान (सी० पी० रामस्वामी अय्यर), भारत में पुरातत्व और इतिहास (के० ए० नीलकंठ शास्त्री), राजकीय शासनलेख (बहादुरचंद्र छाबड़ा), प्राचीन भारतीय नाटक (इंदुशेखर), नृत्य (कपिला वात्स्यायन), संगीत (पी० सांबमूर्ति), मूर्तिकला (सी० शिवराममूर्ति), चित्रकार का इतिहास (मोतीचंद्र), प्राचीन भारतीय स्थापत्य (द्विजेंद्रनाथ शुक्ल), कला का इतिहास (चार्ल्स फाबरी), संस्कृत साहित्य (रसिकविहारी जोशी)। राष्ट्रीय पक्षी (ऐ० के० भट्टाचार्य), संस्कृत और तमिल व्याकरण (डब्ल्यू० नोले), प्राचीन भारत में प्रजातंत्र (सी० एन० जुत्शी)।

स्तंभ : संपादकीय, समीक्षा, चित्रमय समाचार।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक-परिचय

- विद्यानिवास मिश्र (डॉ०), रीडर, संस्कृत विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
- श्री० दा० सातवलेकर,- अध्यक्ष, स्वाध्याय-मंडल, पारडी (जिला-सूरत)।
- जगमोहन राव भट्ट, 5198/1, बालकृष्ण गली, वसंत मार्ग, पहाड़गंज, नई दिल्ली-1.
- मालारविंदम चतुर्वेदी, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात)।
- ब्रजमोहन (डॉ०), प्रधानाचार्य, सेंट्रल हिंदी कॉलेज, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- हेमचंद्र जोशी (डॉ०), 189, रामसे रोड, तल्लीताल, नैनीताल।
- वसंतीलाल बंम 1588,- राइट टाउन, जबलपुर।
- सुकनमल माथुर।
- वेल्लायणि अर्जुनन, प्राध्यापक, मलयालम विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़।
- कन्हैयालाल सहल (डॉ०), बिड़ला कॉलेज, पिलानी।
- राजनारायण मौर्य (डॉ०), हिंदी विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना-7.
- कपिलदेव शास्त्री (डॉ०), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
- विमलेशकांति वर्मा, 422-मुट्ठीगंज, जमुना बेसिक स्कूल के समीप, इलाहाबाद-3.
- देवेंद्रकुमार शास्त्री, द्वारा, श्री अमरचंद जेठमल वैद्य, सदर बाजार, रायपुर (म० प्र०)।
- पूरनचंद श्रीवास्तव (डॉ०), स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, हितकारिणी सिटी कॉलेज, जबलपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

- राजेंद्र अवस्थी, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- श्यामसुंदर लाल, सी० के० 16/64, सुड़िया, वाराणसी-1.
- डालचंद्र जैन, 4-सी०, तालकटोरा लेन नई दिल्ली।
- सुभद्राकुमारी चौहान (स्व०), हिंदी की कवयित्री।
- रामचंद्र देसाई, खड़की स्ट्रीट, देलाडवा (वाया-सूरत)।
- सियारामशरण गुप्त (स्व०) हिंदी के कवि तथा कथाकार।
- अनिरुद्ध ब्रह्म भट्ट, मिस्त्री बिल्डिंग, बंदर रोड, बिल्लिमोरा (जिला-सूरत)।
- श्रेयस् द्वारा, ज़्योति देसाई, खड़की स्ट्रिट, देलाडवा (वाया-सूरत)।
- कुसुमावती देशपांडे (स्व०) मराठी की लेखिका।
- रा० र० सरवटे, 1180, जहांगीराबाद, जबलपुर-1.
- यशवंत, मराठी के कवि।
- सुरेंद्र शुक्ल, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा।
- नरेंद्र धीर, 13/2, वेस्टर्न एक्सटेंशन एरिया, करोलबाग, नई दिल्ली।
- के० वेंकटेश्वर रेड्डी,
- संतोष व्यास, योगीपुरा, उज्जैन।
- हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' (डॉ०), दून स्कूल, देहरादून।
- त्रिलोकी नारायण दीक्षित (डॉ०), 9, सोज़ा रोड, लखनऊ।
- गंगाप्रसाद विमल (डॉ०), हिंदी विभाग, दिल्ली कालेज, अजमेरी गेट, दिल्ली।
- अनामिका, 27/53, रामजस रोड, करोलबाग, नई दिल्ली।
- अमिता सैली, 44/3, पटेल चैस्ट फ्लैट्स, प्रौबिन रोड, दिल्ली-9.
- नरेंद्र व्यास, II-जी/61-62, लाजपत नगर, नई दिल्ली।

पुस्तकालय 113550

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भा० स० मु० ना०—से० 4—2 सी० एच० डी०165—1-9-65—1400

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

*'भाषा' में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथा-संभव सरल और सुबोध भाषा में होनी चाहिए ।

*लेख आदि सामान्यतः फुलस्केप आकार के पाँच टाइप पृष्ठों से अधिक न होने चाहिएँ और हाशिया छोड़ कर कागज़ के एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिएँ ।

*साधारणतया हस्तलिखित सामग्री स्वीकार करने का नियम नहीं है ।

*अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना आवश्यक है ।

*सामग्री के प्रकाशन के विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा ।

*लेखों की स्वीकृति की सूचना पंद्रह दिन के भीतर दे दी जाती है; अस्वीकृत रचनाओं के संबंध में सूचना देने का नियम नहीं है ।

*अस्वीकृत सामग्री लौटाने का नियम नहीं है ।

*समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजनी चाहिएँ ।

*पत्रिका की बिक्री की व्यवस्था प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, सिविल लाइंस, दिल्ली-6 द्वारा की जाती है । सदस्य बनने, विज्ञापन देने और वार्षिक चंदा जमा करने के लिए उन्हीं से पत्र-व्यवहार करना चाहिए ।

भाषा में प्रकाशित विचारों के लिए संपादन-मंडल उत्तरदायी नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar